

पुष्टि भक्ति  
तथा  
शरणागति में फल  
(चर्चा संगोष्ठी)



श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी-कच्छ

**प्रकाशक :**

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट,  
कंसारा बजार, मांडवी-कच्छ, गुजरात  
पिन. ३७०४६५  
☎ (०२८३४) २३१४६३  
© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

**प्रथम संस्करण :**

वि.सं. २०६८, वल्लभाब्द : ५३४

**प्रकाशन सहाय :**

१०० (+ पोस्टेज-कुरियर अतिरिक्त)

**WWW.PUSHTIMARG.NET**

**मुद्रक :**

# श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट ( मांडवी - कच्छ )

## सेमिनार : (आयोजित)

१. शब्दखण्डीया विद्वत्परिचर्चा, गांधीनगर-गुजरात
२. कार्यकारणभावविचार, वडोदरा-गुजरात
३. अन्यख्यातिवादीया विद्वत्सङ्गोष्ठी, पुणे
४. प्रत्यक्षप्रमाण सङ्गोष्ठी, पुणे
५. वार्तापरिचर्चा, हालोल-गुजरात
६. अधिकारपरिचर्चा, हालोल-गुजरात
७. पुष्टिभक्तिमार्गीय साधनाप्रणाली, मुम्बई
८. “कथायां वा” / गुणगान साधना, मुम्बई
९. World Philosophy Conference, Delhi (Cosponsored with Indian Philosophical Congress)
१०. International Conference on World Peace, Ahmedabad (Cosponsored with Uni. of Gujarat)
११. अन्धकारवाद विद्वत्परिचर्चा, पुणे
१२. शरणागति संगोष्ठी, मुम्बई
१३. सेवा-समर्पण संगोष्ठी, मुम्बई
१४. जघन्याधिकार संगोष्ठी, मुम्बई
१५. पुष्टिभक्ति और प्रपत्ति में प्रतिबन्ध, मुम्बई
१६. पुष्टिभक्ति और प्रपत्ति में फल, मुम्बई

## अध्ययनसत्र

तर्कामृतम् - न्यायसिद्धान्तमुक्तावली

वेदान्तसार

न्यायशास्त्र. स्थान : श्रीवल्लभसुखधाम, कांदीवली, मुम्बई

## ग्रन्थप्रकाशन :

ग्रन्थ

प्रकाशनसहाय

गोस्वामी श्रीशरदकुमारजी लिखित साम्प्रदायिक परीक्षाकी पाठ्यपुस्तके

प्रवेशिका ( गुज. )	१०
प्रवेशिका ( अंग्रेजी )	१०
प्रवेशिका ( हिन्दी )	१०

पुष्टिप्रवेश (हिन्दी)	२०
पुष्टिपथ (हिन्दी)	२०
पुष्टिप्रवेश (गुजराती)	२०
पुष्टिपथ (गुजराती)	२०
प्रमेयरत्नसंग्रह (गुजराती)	२५
Manual of the devotional path of Pushti	65
<u>तत्त्वदर्शन विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठीओंमें प्रस्तुत हुवे</u>	
<u>विभिन्न शोधपत्र तथा चर्चा का संग्रह (संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी)</u>	
शब्दखण्डीया विद्वत्परिचर्चा ( संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी )	२००
कार्यकारणभाव विषयक संज्ञोष्ठी	१५०
अन्यख्यातिवादीय विद्वत्संज्ञोष्ठी ( संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी )	१५०
प्रत्यक्षप्रमाण विद्वत्संगोष्ठी	१५०
अन्धकारवादीया विद्वत्संगोष्ठी	२००
<u>साम्प्रदायिक विचारगोष्ठीमें प्रस्तुत हुवे</u>	
<u>विभिन्न शोधपत्र तथा उनपर हुई विशद चर्चा का संग्रह</u>	
वार्तापरिचर्चा	१५
अधिकारपरिचर्चा	१००
पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणाली(अनुपलब्ध)	५०
कथासाधना	५०
शरणागति संगोष्ठी	५०
सेवा-समर्पण संगोष्ठी	५०
जघन्याधिकार संगोष्ठी	१००
पुष्टिभक्ति और प्रपत्ति में प्रतिबन्ध	१००
पुष्टिभक्ति और प्रपत्ति में फल	१००
पुष्टिअस्मिता संवर्धक शिविर (गुजराती)	२५
<u>नित्यस्तोत्रपाठ</u>	
पुष्टिपाठावली (हिन्दी)	२०
पुष्टिपाठावली (गुजराती)	२०
श्रीपुरुषोत्तमनामसहस्रम्-त्रिविधलीलानामावली (संक्षिप्तगुर्जरानुवाद सहित)	२०
<u>सन्दर्भग्रन्थ</u>	
पुष्टिविधानम् पादानुक्रमणिका	१०
Summary of Shuddhadvait Vangmay लेखक : श्रीशरद् गोस्वामी	१५



वाल्लभवेदान्त (हिन्दी)

सेवाकौमुदी/नवधाभक्ति (हिन्दी)

अनुपलब्ध

पुरुषोत्तमप्रतिष्ठाप्रकार (गुजराती)

ब्रह्मवाद (हिन्दी)

भक्तिवर्धिनी (गुजराती)

अनुपलब्ध

सेवा और ब्रजलीला (ब्रजभाषा)

सेवा और ब्रजलीला (गुजराती)

सेवा (ऋतु-उत्सव-मनोरथ) (ब्रजभाषा)

सेवा (ऋतु-उत्सव-मनोरथ) (गुजराती)

सिद्धान्तनुं आचमन, प्रश्नोत्तरी (गुजराती)

आधुनिकन्यायप्रणाली एवं पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणालीका आपसी टकराव(हिन्दी)

आधुनिकन्यायप्रणाली तथा पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणालीनो आपसी टकराव(गुजराती)

चित्र :

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य. ९ \* ११

(निःशुल्क)

श्रीगोपीनाथप्रभुचरण. ९ \* ११

(निःशुल्क)

### शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्तिमार्गीय वाङ्मय :

शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्तिमार्गके आधारभूत संस्कृत-ब्रज-गुजराती आदि भाषामें लिखित मूल गद्य-पद्य ग्रन्थसाहित्य, उनका अनुवाद एवं उनके ऊपर लिखित विवेचन आदिका (साम्प्रदायिक शब्दकोश, साम्प्रदायिक वचनानुक्रमणिका, भगवद्गीतापादानुक्रमणिका आदि सहित अध्ययनोपयोगी साहित्यका) बृहत् संग्रह. डाउनलोड एवं मार्गदर्शन केलिये लिंक :

<http://www.pushtimarg.net/pushti/pushti-vangmay.html>

गोपाल गोशाला

हलिखित ग्रन्थोंका संग्रह – संरक्षण ; पुस्तकालय

यावत्प्राप्य साम्प्रदायिक श्लोकोंकी पादानुक्रमणिका

**Catalogus Catalogorum** of the manuscripts of Shuddhadvaita-Pushtibhakti Sampradaya.

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजीद्वारा सम्पादित-पुनर्मुद्रित

## शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्ति सम्प्रदायके

### मूल संस्कृत ग्रन्थ

१. सव्याख्यषोडशग्रन्थ

संयुक्तप्रकाशन, दुर्लभ

खंड १. श्रीयमुनाष्टकम् से सिद्धान्तरहस्यम्

खंड २. नवरत्नम् से भक्तिवर्धिनी

खंड ३. जलभेदः से सेवाफलम्

२. सव्याख्यषड्ग्रन्थाः

संयुक्तप्रकाशन, दुर्लभ

३. तत्त्वार्थदीपनिबन्ध

खंड १. शास्त्रार्थ-सर्वनिर्णयप्रकरण

खंड २. भागवतार्थप्रकरण स्कन्ध १-५

खंड ३. भागवतार्थप्रकरण स्कन्ध ६-१२

४. प्रकाश-रश्मि व्याख्या सहित ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्

खंड १. प्रथमाध्याय नाथद्वारा टेम्पलबोर्ड, अतिदुर्लभ

खंड २. प्रथमाध्याय

खंड ३. द्वितीयाध्याय

खंड ४. तृतीयाध्याय

खंड ५. चतुर्थाध्याय

५. श्रीमद्भागवतसुबोधिनी

खंड १. प्रथम-द्वितीयस्कन्ध

खंड ४. जन्मप्रकरण

खंड ५. तामसप्रमाणप्रकरण

खंड ६. तामसप्रमेय-साधनप्रकरण

खंड ७. तामसफलप्रकरण

खंड ८. राजसप्रमाण-प्रमेयप्रकरण

खंड ९. राजससाधन-फलप्रकरण

६. वेदान्ताधिकरणमाला-भावप्रकाशिका

७. विविधविवरणोपेत पत्रावलम्बनम्

८. प्रस्थानरत्नाकर

९. विद्वन्मण्डनम्

१०. श्रीबालकृष्णग्रन्थावली

११. वादावली

ब्रह्मवाद, वादकथा, विग्रहवाद, प्रपंचवाद, प्रपंचसंसारभेदवाद, ब्रह्मजीवतदैक्यस्वरूपनिरूपणम्, विरुद्धधर्माश्रयत्वविवेचनम्, आत्मवादः, प्रश्नोत्तरसाहस्रीपर्यालोचनम्, प्रश्नोत्तरसाहस्रीचर्चित-प्रकृत्यधिकरणसमालोचनम्, केवलाद्वैतवादाभिमतविद्यास्वरूपविमर्शः, अक्षरपुरुषोत्तम-द्वैतनिरासवादः

१२. अवतारवादावली

खंड २. भेदाभेदवाद, सृष्टिभेदवाद, आविर्भावतिरोभाववाद, ख्यातिवाद, प्रतिबिम्बवाद, अन्धकारवाद.

खंड ३. ब्राह्मणत्वादिदेवतावादः, जीवव्यापकत्वखण्डनवाद, जीवप्रतिबिम्बत्व-  
खण्डनवादः, भागवतस्वरूपविषयकशमानिरासवादः, उपदेशादिविषयकशमा-  
निरासवादः, भगवत्प्रतिकृतिपूजनवादः, ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणवादः, तुलसीमाला-  
धारणवादः, शफवक्रधारणवादः, भक्तिरसत्ववादः, भक्त्युत्कर्षवादः,  
नामफलादि-प्रकारवादः, जयश्रीकृष्णोच्चारणवादः, स्ववृत्तिवादः,  
वस्त्रादिसेवावादः, मूर्तिपूजनवादः, भागवतपाठादेः शंकानिरासवादः.

१३. पुष्टिविधानम् गुजराती, ब्रज तथा संस्कृत संस्करण

१४. श्रीवल्लभमहाप्रभुस्तोत्राणि

१५. श्रीपुरुषोत्तमप्रतिष्ठाप्रकारः

४क्र.१, २ तथा ४/१, ४/२ को छोड़ कर सभी ग्रन्थ श्रीवल्लविद्यापीठ-श्रीविट्ठलेश्वर-प्रभुचरण आ.हो.ट्रस्ट  
(कोल्हापुर) द्वारा प्रकाशित.

### प्रकाश्य :

श्रीमद्भागवतसुबोधिनी :

तृतीयस्कन्ध, सात्त्विक प्रमेय-साधन-फल प्रकरण, गुण प्रकरण, एकादशस्कन्ध

श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचित :

वादावली खंड १, गीता टीका, उपनिषद् टीका, उत्सवप्रतान-अपराधनिरूपणम् आदि

### गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजीकी हिन्दी-गुजराती पुस्तकें

- वाल्लभवेदान्त निबन्धसंग्रह (हिन्दी)
- रसदृष्टिनी तरफेणमां (हिन्दी-गुजराती)
- विवेक (हिन्दी)
- विशोधनिका (चार खंड) (गुजराती-हिन्दी)
- पुरुषोत्तमयोग (गुजराती-हिन्दी)
- नवरत्नम् (गुजराती-हिन्दी)
- श्रीयमुनाष्टकम् (हिन्दी)
- सिद्धान्तनुं आचमन (गुजराती)
- सिद्धान्तसूक्ति (गुजराती)
- पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद (गुजराती)
- वार्तानुकी सैद्धान्तिक संगति
- पुष्टिमार्गीय पीठाधीश स्वरूप और कर्तव्य
- चतुःश्लोकी (हिन्दी)
- चिरकुट चर्चा समीक्षा (हिन्दी-गुजराती)
- गृहसेवा और ब्रजलीला (गुजराती-हिन्दी)
- ब्रह्मवाद (वादावली सम्पादकीय)
- सेवाकौमुदी/नवधाभक्ति (हिन्दी)
- साकारब्रह्मवाद (तत्त्वचिन्तन भक्ति और संस्कृति विमर्श) (हिन्दी)
- नवरत्नोपदेशका मानसविश्लेषण (गुजराती-हिन्दी)
- श्रीवल्लभाचार्यके दर्शनका यथार्थ स्वरूप (हिन्दी)
- शरणागतिविचारगोष्ठी एक पूरक प्रश्नोत्तरी (गुजराती)
- धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी पुष्टिमार्गीय विवेचना (हिन्दी-गुजराती)
- भगवत्सेवानो सिद्धान्तशुद्ध प्रकार : एक प्रश्नोत्तरी (गुजराती)

**सम्पर्क :** गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी, ब्रजकमल, ६३ स्वस्तिक सोसायटी, ४था रास्ता, जुहु स्कीम,  
विलेपार्ले(पश्चिम), मुम्बई. फोन : (०२२) २६१४४३२६



## ॥ प्रकाशकीय ॥

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी-कच्छ द्वारा विगत कई वर्षोंसे सम्प्रदायके तत्त्वदर्शन एवं धर्मदर्शन विषयक विभिन्न पक्षों पर चर्चागोष्ठीओंका आयोजन निरन्तर होता आ रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थमें “पुष्टि भक्ति तथा प्रपत्ति में फल” विषयको लेकर श्रीवल्लभ सुखधाम, कांदीवली-मुम्बईमें समायोजित चर्चागोष्ठीके अंतर्गत प्रस्तुत हुवे आलेखपत्र तथा उन पर हुई चर्चा का संकलन किया गया है।

समयाभावके कारण जिन आलेखपत्रों पर चर्चा हो नहीं पाई थी उनको ग्रन्थके परिशिष्टतया प्रकाशित किया गया है।

इस चर्चागोष्ठीमें, यद्यपि, सम्प्रदायके कई प्रमुख ग्रन्थोंमें किये गये फल विषयक निरूपण पर विचार-विमर्श हुवा तथापि, षोडशग्रन्थान्तर्गत अनेक ग्रन्थोंके अतिरिक्त श्रीगोपीनाथप्रभुचरण विरचित साधनदीपिका-सेवाश्लोक-सेवाभावनाश्लोक, श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरण विरचित विद्वन्मण्डन-भक्तिहंस-भक्तिहेतुनिर्णयादि ग्रन्थ, श्रीहरिरायचरण रचित ग्रन्थ तथा ब्रज तथा गुजराती भाषाके भक्तकवीओं द्वारा रचित कीर्तन-धौल-पद जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ साहित्यमें हुवे फल विषयक निरूपण पर विचार होना अभी शेष है जिसे फल विषयक एक ओर चर्चागोष्ठीमें किया जायेगा।

विशेषमें, इस वर्ष श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट द्वारा निर्धारित और जिज्ञासु जनोमें चिरकालप्रतीक्षित एक बड़ा कार्य प्रभुकृपा एवं श्रीआचार्यचरणोंकी अनुकंपा के बलसे सम्पन्न हुवा है। और वह है स्वमार्गीय ग्रन्थाध्ययनोपयोगी “शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्तिमार्गीय वाङ्मय” नामक (फ्रीवेर स्टेन्ड् अलोन्) सोफ्टवेर् एप्लिकेशन का निर्माण।

स्वमार्गीय ग्रन्थोंका अध्ययन/अनुसन्धान करनेके इच्छुक लोगोंकेलिये यह सोफ्टवेर् अतीव उपयोगी सिद्ध होगा। इसमें खासकर संस्कृत तथा ब्रज-गुजराती आदि भाषामें भी लिखित शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्तिमार्गके आधारभूत गद्य-पद्य ग्रन्थसाहित्य, उनका अनुवाद एवं उनके ऊपर लिखित विवेचन आदिका (साम्प्रदायिक शब्दकोश, साम्प्रदायिक वचनानुक्रमणिका, भगवद्गीतापादानुक्रमणिका आदि सहित अध्ययनोपयोगी साहित्यका) बृहत् संग्रह इस समय उपलब्ध है। नामशः कहा जाये तो इतना साहित्य प्रायोगिक रूपमें उपलब्ध कराया गया है :

**षोडशग्रन्थ** (सभी संस्कृत टीका, हिन्दी ग्रन्थपरिचय, गुजराती अनुवाद सहित)

**तत्त्वार्थदीपनिबन्ध**

-शास्त्रार्थप्रकरण (टिप्पणी-आवरणभङ्ग-योजना-सत्सनेहभाजन, अनु. = गुज. -ब्रज)

-सर्वनिर्णयप्रकरण (संस्कृत टीका = टिप्पणी-आवरणभङ्ग, अनु. = ब्रजभाषा)

-भागवतार्थप्रकरण (सभी संस्कृत टीकाएं)

ब्रह्मसूत्राणुभाष्य	शिक्षापद्यानि	(सभी संस्कृत टीकाएं)
मधुराष्टकम्	परिवृढाष्टकम्	(सभी संस्कृत टीकाएं)
पुरुषोत्तमनामसहस्रम्	त्रिविधनामावली	(सभी संस्कृत टीकाएं)
सुबोधिनी	सेवाश्लोका	
विद्वन्मण्डनम्	सौन्दर्यपद्य	(ब्रजभाषा टीका)
साधनदीपिका		
पुरुषोत्तमप्रतिष्ठाप्रकार		(मूल-संस्कृतटीका-हिन्दी अनुवाद)
श्रीभागवतपुराण		(स्कन्ध १-७, १०, ११ मूल तथा हिन्दी-गुजराती अनुवाद)
श्रीहरिरायवाङ्मुक्तावली		(५५ ग्रन्थ, मूल तथा गुजराती अनुवाद)
द्रव्यशुद्धि		(मूल तथा गुजराती-ब्रजभाषा अनुवाद)
८४ वैष्णववार्ता		(मूल-भावप्रकाश, ब्रजभाषा)
२५२ वैष्णववार्ता		(मूल-भावप्रकाश, ब्रजभाषा) ४१ शिक्षापत्र (मूल तथा ब्रजभाषा टीका)

आगे जैसे-जैसे नये ग्रन्थ, टीकाएं, अनुवाद, कोश, वचनानुक्रमणिका आदि तैयार होते जायेंगे वैसे-वैसे उनको [www.pushtimarg.net](http://www.pushtimarg.net) वेबसाईट द्वारा उपलब्ध कराया जायेगा. डाउनलोड एवं मार्गदर्शन केलिये लिंक : <http://www.pushtimarg.net/pushti/pushti-vangmay.html> का उपयोग किया जा सकता है.

दूसरा एक महत्वाकांक्षी कार्य, 'श्रीवल्लभाचार्य विद्यापीठ' के (प्रथमचरणका) निर्माण, सम्पन्न होने पर है. सम्प्रदायके पास अध्ययनोपयोगी निवास, भोजन, अध्ययनकक्ष, अध्यापक, ग्रन्थालय जैसी अत्यावश्यक सुविधाओंसे सम्पन्न हो ऐसा शुद्ध साम्प्रदायिक एक भी स्थान आज उपलब्ध नहीं है. इस आवश्यकताकी कुछ सीमा तक पूर्ति 'श्रीवल्लभाचार्य विद्यापीठ' कर पायेगी ऐसा विश्वास है.

अन्तमें, "पुष्टि भक्ति तथा प्रपत्ति में फल" इस चर्चागोष्ठीके इस फलात्मक ग्रन्थके प्रकाशनावसर पर 'शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्तिमार्गीय वाङ्मय' तथा 'श्रीवल्लभाचार्य विद्यापीठ' रूपी दो अवान्तरफलोंकी भी प्राप्ति होनेकी सुखद अनुभूति करते हुवे....

शरत्पूर्णमा-रासोत्सव  
वि.सं. २०६८

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट द्वारा  
शरद् गोस्वामी (मांडवी-कच्छ)

# विषयानुक्रमणिका

मुक्तितारतम्यम्	श्रीविठ्ठलेश्वरप्रभुचरणकृतम्	१
मुक्तितारतम्यम् ग्रन्थका हिन्दीभावानुवाद		५
<u>फल संगोष्ठी उपक्रम</u>	गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी	११
‘मुक्तितारतम्यनिर्णय’ ग्रन्थमें प्रतिपादित फलका स्वरूप		१५
	गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी	
	चर्चा	३६
ब्रह्मसूत्राणुभाष्यमें पुष्टिफल	श्रीशरद् गोस्वामी	४६
	चर्चा	७०
श्रीसुबोधिनीजिमां पुष्टिभक्तिना परमइलनुं निःपाश		८०
	श्रीगोपालदास शाह	
	चर्चा	९५
<u>द्वितीय दिवसीय उपक्रम</u>	गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी	१०५
श्रीयमुनाष्टकम्में पुष्टिफल	श्रीमनोज गोस्वामी	१०९
	चर्चा	१२७
पुष्टिइण : पुष्टिप्रवादभार्यदाग्रन्थना संदर्भमां		१४२
	श्रीमती निकिता-जगदीश शेठ	
	चर्चा	१५०
पुष्टिमार्गीय इण विचार : ‘सिद्धान्तरत्नस्य’ ग्रन्थना सन्दर्भमां		१६०
	श्रीपरेश शाह	
	चर्चा	१६९
<u>तृतीय दिवसीय उपक्रम</u>	गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी	१८६
विवेकधैर्याश्रय ग्रन्थमां इण	श्रीरसिक शाह	१९१
	चर्चा	२०५
षोडशग्रन्थमें पुष्टिमार्गीयफल : मोक्षके परिपेक्ष्यमें		२१०
	श्रीअनिल भाटिया	
	चर्चा	२१८
निरोधलक्षण ग्रन्थमें फल	श्रीधर्मेन्द्रसिंह झाला	२२५

	चर्चा	२४०
पुष्टिमार्गीय इलवियार : 'भक्तिवर्धिनी' ग्रन्थना संदर्भमां	श्रीअंशु गोपालदास शाह	२४५
	चर्चा	२५३
<u>चतुर्थ दिवसीय उपक्रम</u>	गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी	२५९
पुष्टिमार्गीय इल 'पंचपद्यानि'ना संदर्भमां	श्रीमती कुंजबाला	२७४
	चर्चा	२८६
ग्रंथ संन्यासनिर्णयमां इलसंबंधी निरूपण	श्रीअसित शाह	३०५
	चर्चा	३१४
शिक्षाश्लोकी ग्रन्थ संदर्भमां पुष्टिइल	श्रीजयेन्द्र सोनी	३२१
<u>पञ्चम दिवसीय उपक्रम</u>	गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी	३३१
पुष्टिमार्गीय फल-विवेचन शास्त्रार्थ प्रकरणके सन्दर्भमें	डॉ. गजानन शर्मा	३४२
	चर्चा	३५५
पुष्टि भक्ति और प्रपति में फलविचार : साधनप्रकरणके संदर्भमें	भावेश परमार	३५९
	चर्चा	३६९
सेवाफल ग्रन्थान्तर्गत फलका निरूपण	श्रीयोगेश गोस्वामी	३७०
	चर्चा	३८८
उपसंहार	गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी	३९६
<u>परिशिष्ट</u>		
न्यासादेश ग्रन्थमां पुष्टिइल	श्रीहितेन्द्र शाह	४०८
वार्ता साहित्यमां इलनिरूपण(पुष्टि)	श्रीदेवेन्द्र शाह	४२०
कीर्तन साहित्यमें फलका स्वरूप	श्रीख्याति द्वारकादास	४३९
भक्तकवि श्रीसूरदासजीके पदोंमें		
'फल'का निरूपण	श्रीअरविन्द भट्ट	४५९

॥श्रीकृष्णाय नमः॥  
॥श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः॥

गोस्वामिश्रीविठ्ठलेश्वरप्रभुचरणकृतम्

## ॥मुक्तितारतम्यम्॥

(तत्र पूर्वपक्षः)

\*ननु मुक्तौ तारतम्यं न अस्ति, <sup>क</sup>प्रमाणाभावात्, “परमं साम्यम् उपैति” (मुण्ड.उप.३।१।३) इति <sup>ख</sup>तारतम्याभावश्रुतेः च. मुक्तौ तारतम्ये दूषणं च अस्ति. तत् किम्? इति चेद् उच्यते, <sup>ग</sup>स्वर्ग-संसार-साम्यं स्याद् मुक्तेः इति एकं दूषणम्. द्वितीयं कथ्यते, <sup>घ</sup>मुक्तस्य अधिकदर्शने दुःखद्वेषेष्यादिकं स्याद्\* इति पूर्वपक्षे प्राप्ते,

(उत्तरपक्षे प्रथमानुपपत्तिनिरसनम्)

<sup>क</sup>प्रमाणाभावाद् इति असिद्धं, बहुप्रमाणसत्त्वात्.

श्रुतिप्रमाणैः मुक्तितारतम्योपपादनम् :

“सैषा आनन्दस्य मीमांसा भवति... ते ये शतं मानुषाः आनन्दाः स एको मनुष्यगन्धर्वाणाम् आनन्दः श्रोत्रियस्य च अकामहतस्य” (तैत्ति.उप.२।८) इत्यादि-तैत्तिरीयश्रुत्या, “अथ ते ये शतं कर्मदेवानाम् आनन्दाः स एकः आजानजानां देवानाम् आनन्दः” (तत्रैव), “यश्च श्रोत्रियो अवृजिनो अकामहतः” (बृह.उप. ४।३।३३) इत्यादिवाजसनेयश्रुत्या, “अक्ष्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेषु असमाबभूवुः” (ऋक्.संहि.१०।७१।७) इत्यादितैत्तिरीयश्रुत्या,

स्मृतीतिहासपुराणप्रमाणैः मुक्तितारतम्योपपादनम् :

“नृपाद्याः शतधृत्यन्ताः मुक्तिगाः उत्तरोत्तरं सर्वे गुणैः शतगुणाः मोदन्ते इति हि श्रुतिः” (पद्मपुरा.न उपलभ्यते), “मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने” (भाग.पुरा.६।१४।५) इत्यादिस्मृतिभिः,

श्रुतिस्मृत्यादिश्रुतार्थापत्त्या मुक्तितारतम्योपपादनम् :

“यः ते आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक्” (तत्रैव ७।१०।४), “स वै भृत्यः स वै स्वामी, गुणलुब्धो न कामुको, मुमुक्षोः अमुमुक्षुस्तु परो हि एकान्तभक्तिमान्” ( . . ।। ) इत्यादिसाधनतारतम्येन फलतारतम्यप्रतिपादकस्मृत्या,

“भक्तिः सिद्धेः गरीयसी” (भाग.पुरा.३।२५।३३) इति स्मृत्या अल्पभक्ति-  
साध्यमुक्तितो अधिकभक्तिसाध्यमुक्तेः आधिक्यस्य प्रतिपादिकया, “अन्येतु एवम्  
अजानन्तो श्रुत्वा अन्येभ्यः उपासते, तेऽपिच अतितरन्त्येव मुक्त्युं श्रुतिपरायणाः”  
(भग.गीता.१३।२६) इत्यत्र ‘अपि’शब्देन, “स्त्रियो वैश्याः तथा शूद्राः तेऽपि यान्ति  
परां गतिं, किं पुनः ब्राह्मणाः पुण्याः भक्ताः राजर्षयः तथा” (भग.गीता.१।३२)  
इत्यादिसाधनतारतम्येन फलतारतम्यप्रतिपादिकया स्मृत्या, “साधनस्य उत्तमत्वेन साध्यं  
च उत्तमम् आप्नुयुः ब्रह्मादयः क्रमेणैव यथा आनन्दश्रुतौ श्रुताः” ( . . । । ) इति  
स्मृत्या “अधिकं तव विज्ञानम् अधिका च गतिः तव” (महाभा.१२।३१४।४४),  
“युक्तं वै साधनाधिक्यात् साध्यादिक्यं सुरादिषु, न आधिक्यं यदि साध्ये स्यात् प्रयत्नः  
साधने कुतः?” ( . . । । ) इति युक्तिगतार्थवचनात्,

श्रुत्यादिप्रमाणान्यथानुपपत्त्या मुक्तितारतम्योपपादनम् :

“त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा सात्त्विकी राजसी चैव तामसी  
च इति तां शृणु. श्रद्धामयो अयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः सएव सः” (भग.गीता.१७।२)  
इत्यादिस्मृत्या ‘स्वभावजा’ इति स्वरूपं भूतभक्तितारतम्येन चतुर्मुखादयः इतरेभ्यः  
उत्कृष्टा इति उत्कृष्टत्वप्रतिपादकतया “अस्मदादिमुक्तिभोगः मुक्तचतुर्मुखभोगाद्  
निकृष्टो, अस्मदादिभोगत्वात् संसारस्थास्मदादिभोगवद्” इत्यादियुक्तिभिः च  
मोक्षतारतम्यसिद्धेः. “श्रोत्रियस्य च अकामहतः च” (तैत्ति.उप.२।८) इति  
श्रुतिगतस्य, “यश्च श्रोत्रियः अवृजिनो अकामहतः” (बृह.उप. ४।३।३३) इति  
वाक्यद्वयस्यापि अयम् अर्थः : अकामहतत्वं कामाकृतोपद्रवत्वं नतु अकामत्वं,  
‘हत’शब्दवैयर्थ्यात्. सच (“यत्र आनन्दाः च मोदाः च मुदः प्रमुदः आसते)कामस्य  
यत्र आप्ताः कामाः तत्र माम् अमृतं कृधि” (ऋक्संहि.९।११३।११) इत्यादिश्रुतेः,  
“सहि मुक्तो अकामहतः” (ब्रह्मा.पुरा.न उपलभ्यते) इति ब्रह्माण्डोक्तेः च.  
‘अवृजिन’त्वमपि अदुःखत्वम् अपापत्वं वा मुक्तस्यैव घटते. अपरोक्षज्ञानिन्यपि  
प्रारब्धपाप-तत्कार्यदुःखयोः सत्त्वात्. श्रोत्रियत्वं च मुक्तस्यैव मुख्यं,  
“प्राप्तश्रुतिफलत्वाच्च श्रोत्रियाः प्राप्तमोक्षिणः तएव च आप्तकामत्वात् तथा  
अकामहताः मताः” (महाभा. । । ) इति भारतोक्तेः.

(उत्तरपक्षे द्वितीयानुपपत्तिनिरसनम्)

ख (ननु) \* “परमं साम्यम् उपैति” (मुण्ड.उप.३।१।३) इति मुक्तसाम्यश्रुतेः  
कथं मुक्ततारतम्यम्? \* इति चेत्

तस्य सावकाशत्वाद् दुःखाभाव-सत्यकामत्वादिना सरःसागरयोरिव स्वयोग्यानन्दपूर्त्या च साम्यात्. “लिंगाभेदः परानन्दो दुःखाभावो समाः मताः” ( . . । । ) इति स्मृतेः. अन्यथा मुक्तस्य ईश्वरवद् जगत्सृष्ट्वादिकं स्यात्. तच्च “जगद्व्यापारवर्जम्...” (ब्र.सू.४।४।१७) इति सूत्रे त्वयापि निषिद्धं, “भोगमात्रसाम्यलिंगात् च” (ब्र.सू.४।४।२१) इति सूत्रस्थ ‘मात्र’शब्दस्य मन्मते भोगसामान्येव साम्यं न भोगविशेषः इति अर्थः. त्वन्मतेऽपि भोगसामान्ये मुक्तस्य ब्रह्मसाम्याद्; अन्यथा अपसिद्धान्तत्वात्.

(उत्तरपक्षे तृतीयानुपपत्तिनिरसनम्)

ग वाराहेच “स्वाधिकानन्दसम्प्राप्तौ सृष्ट्यादिककृतिष्वपि मुक्तानां नैव कामः स्याद् अन्यान् कामान् च भुञ्जते” (वारा.पुरा. । । ) इति.

(उत्तरपक्षे तुरीयानुपपत्तिनिरसनम्)

घ नच हर्षेर्ष्यादिप्रसंगोह

निःशेषगतदोषाणां बहुभिः जन्मभिः पुनः।  
स्याद् आपरोक्ष्यं हि हरः द्वेषेर्ष्यादि ततः कुतः ?।।  
भवेयुः यदि च ईर्ष्याद्याः समेष्वपि कुतो न ते ?।  
तप्यमानाः समान् दृष्ट्वा द्वेषेर्ष्यादियुता अपि।।  
दृष्यन्ते बहवो लोकाः दोषा एव अत्र कारणम्।  
हतः सौगन्धिकवने मणिमान् च पुनः कलौ।।  
जातो मिथ्यामतिः सम्यग् आस्तीर्यापि तमो अधिकम्।  
इन्द्रजालधिया सृष्टिं मन्यन्ते ज्ञानदुर्बलाः।।  
नित्यनिरस्तेन्द्रजाले स्वतएव कथं भवेत्।  
अशक्ताः सत्यसृष्टौ हि मायासृष्टिं<sup>२</sup> वितन्वते।।  
अचिन्त्यानन्तविभवः कथं ताम् ईहते हरिः।  
अणुमात्रोऽपि अयं जीवः स्वदेहं व्याप्य तिष्ठति।।  
यथा व्याप्य शरीरेषु हरिचन्दनविषुषः।  
ब्रह्मविष्णुवीशरूपाणि त्रीणि विष्णोः महात्मनः।।  
ब्रह्मणि ब्रह्मरूपी ईशः शिवरूपी<sup>३</sup> शिवे स्थितः।  
पृथगेव स्थितो देवो विष्णुरूपी जनार्दनः।।

किञ्च ब्रह्मणि अप्रतिपन्नोपाध्यभावेऽपि पारमार्थिकत्वरूप-धर्माभावस्य

ब्रह्मणि अपरिच्छिन्नसद्रूपत्वाविरोधिवद्, घटादेः प्रतिपन्नोपाधिसद्भावेऽपि पारमार्थिकत्वाभाववत्त्वस्य घटादौ परिच्छिन्नसद्रूपत्वाद् अविरोधोपपत्तेः<sup>४</sup> च. एवञ्च ब्रह्म कालत्रयेऽपि सद् वियदादिरूप्यपि च कदाचिदेवेति नित्यत्वानित्यत्वाभ्यामेव वैषम्यं नतु सत्यत्वमिथ्यात्वाभ्याम्.<sup>५</sup> तथाच संग्रहः :

स्वरूपेण त्रिकालस्य निषेधो न अस्ति ते मते।  
रूप्यादेः तात्त्विकत्वेन निषेधस्तु आत्मनोऽपि च॥

इति श्रीमद्विठ्ठलेश्वरविरचितो  
मुक्तितारतम्यनिर्णयः  
सम्पूर्णः

### पाठभेदतालिका

१. 'स्वरूपभूतभक्ति' इति भुवने.म.सा.१ पाठः, 'स्वरूपभूतभक्तितारतम्येन' इति कोटा.पाठः.
२. 'मायासृष्टिम्' इति जो पाठः शेषेषु 'मायासृष्टौ' इति.
३. 'शिवे स्थितः' इति प्रथमेशसंग्रहः, म.स.१-२ पाठः. शेषेषु 'शिवस्थितः' इति.
४. 'पारमार्थिकाभावस्य... सद्रूपत्वोपपत्तेः च' इति भुवने.पाठः, 'सद्रूपत्वाविशेषोपपत्तेः' ख.पाठः, 'सद्रूपत्वाविरोधापत्तेः च' इति जोध.श्रीमथु.म.स.१.पाठः.
५. 'तथाच संग्रहः' इति भुवने.पाठः, शेषेषु 'तच्च संग्रहः' इति शेषेषु.

.....+.....

### एतद्ग्रन्थसंशोधने विमृष्टाः मातृकाः :

१. गड्डुलालाजी ग्रन्थागारीया 'पुष्टिभक्तिसुधा' मासिकपत्रिकायाः ३वर्षस्य १२अंके ई.सं.१९१४ वर्षे मुद्रिता आधारभूता मातृका.
२. जो.=जोधपुर राजकीय पुस्तकालयस्थायाः प्रतिलिपिः
३. म.स.१-२.=ऑरियन्टल् इन्स्टिट्यूट ऑफ महाराजा सयाजिराव बडोदा वि.वि.ग्रन्थागारीया मातृका.
४. मथुरेशजी.=कुत्रत्या इयम् इति निश्चेतुम् अशक्या.
५. कोटा.=गो.श्रीप्रथमेशग्रन्थागारीया.
६. भुवने.=भुवनेश्वरी पीठ, गोंडलग्रन्थागारीया.



॥श्रीकृष्णाय नमः॥  
॥श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः॥

गोस्वामिश्रीविठ्ठलेश्वरप्रभुचरणकृत

## ॥मुक्तितारतम्यम्॥

(पूर्वपक्ष)

इस ग्रन्थके नाममात्रके श्रवण करनेपर कुछ अनुपपत्तियां बुद्धिमें उभरतीं हैं। अतः जीवात्माओंके मुक्त हो जानेके बाद उनमें परस्पर तारतम्य मानना उचित नहीं लगता।

<sup>क</sup>सर्वप्रथम अनुपपत्ति तो ऐसा कोई भी प्रमाणवचन उपलब्ध न होनेके कारण उभरती है।

<sup>ख</sup>दूसरी अनुपपत्ति श्रुतिमें भी तारतम्य अस्वीकार करनेको ही मुक्तात्मा और ब्रह्म के बीच परम साम्य “परमं साम्यम् उपैति” (मुण्ड.उप.३।१।३) इस वचनमें स्वीकारा गया होनेके कारण उभरती है।

<sup>ग</sup>तीसरी अनुपपत्ति यह है कि मुक्तावस्थामें जीवात्माओंके बीच तारतम्य स्वीकारनेपर मोक्षावस्था और संसार या स्वर्ग एकसमान ही सिद्ध होंगे।

<sup>घ</sup>चौथी अनुपपत्ति यह है कि मुक्तात्माओंके बीच भी परस्पर न्यूनाधिक्य हो तो अधिक मुक्तके बारेमें न्यून मुक्तजीवके भीतर दुःख द्वेष ईर्ष्या आदिके मुक्तिविपरीत भाव भी उभर सकते हैं, ऐसी सम्भावना स्वीकारनी पड़ेगी।

(उत्तरपक्षतया <sup>क</sup>अनुपपत्तिका निरसन)

प्रथम अनुपपत्तिमें यह जो कहा गया कि मुक्तात्माओंके बीच तारतम्य होनेके कोई प्रमाण नहीं मिलते वह असमीक्षित विधान है, क्योंकि शास्त्रवचनोंके बहुत सारे प्रमाण मिलते ही हैं।

श्रुतिवचनोंके आधारपर तारतम्यकी उपपत्ति : तैत्तिरीयोपनिषद्के “यह तो उस आनन्दकी मीमांसा है... ऐसे मनुष्योंके सौ आनन्दके बराबर मनुष्यगन्धर्वका एक

आनन्द होता है; और इतना ही आनन्द जो श्रोत्रिय कामनाओंसे ग्रस्त नहीं होता उसका भी होता है” (तैत्ति.उप.२।८) इस वचनमें तारतम्य सुस्पष्टतया प्रतिपादित हुआ ही है. इसी तरह “अपने पुण्यकर्मोंद्वारा देवयोनि प्राप्त करनेवाले देवोंके सौ आनन्दके बराबर आजानज देवोंका एक आनन्द होता है” (यथापूर्व) यह भी कहा ही गया है. बृहदारण्यकोपनिषद्में भी “जो श्रोत्रिय वृजिनरहित और कामनाओंसे ग्रस्त नहीं होता” (बृह.उप.४।३।३३) ऐसी प्रशंसा की गयी है. एक अन्य तैत्तिरीय शाखाके वचनमें तो यह भी कहा गया है कि “अक्ष्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेषु असमाबभूवुः” (ऋक्संहि.१०।७१।७).

स्मृतिवचनोंके आधारपर तारतम्यकी उपपत्ति : न केवल श्रुतिवचनोंमें अपितु स्मृतिवचनोंमें भी ऐसे अनेक विधान उपलब्ध होते हैं कि “नृपोंसे ले कर शतधृति पर्यन्त मुक्ति पानेवाले सभी उत्तरोत्तर शतगुणित गुणोंसे अधिक गुणोंवाले होनेसे अधिकाधिक मोदप्रमोदका भोग करते हैं, ऐसा श्रुतिओंमें कहा गया है” (पद्मपुरा. । । ). “करोड़ों सिद्ध पुरुषोंमें प्रशान्तात्मा हो कर कुछ मुक्त हो पातें हैं, उनमें भी नारायणपरायण तो सुदुर्लभ ही होते हैं” (भाग.पुरा.६।१४।५) ऐसे अनेक वचनोंमें भी मुक्तोंमें भी नारायणपरायणके सुदुर्लभ होनेका उल्लेख तारतम्यको सिद्ध करता है.

श्रुतार्थापत्तिमूलिका उपपत्ति : “जो किसी तरहकी आशा रख कर भगवान्का भजन करता है वह तो भगवान्का भृत्य न हो कर भगवान्को भी क्रयविक्रयके व्यवहारमें फंसाना चाहता व्यापारी है” (भाग.पुरा.७।१०।४), “सच्चा भृत्य तो वही है और सच्चा स्वामी भी वही होता है जो एक-दूजेके गुणोंसे लुब्ध हो. नकि एक-दूजेसे अपनी कोई कामना पूर्ण कर लेना चाहता हो. मुक्तिकी कामना रखनेवालोंमें भी अमुमुक्षु होनेके कारण ऐसा जीव तो परम ऐकान्तिकी भक्तिवाला होता है” ( . . । । ) इन स्मृतिवचनोंमें देखा जा सकता है कि साधनोंके तारतम्यका निरूपण किया गया है; अतः अर्थापत्तिके बलपर फलोंमें भी तारतम्य प्रतिपादित मानना ही पड़ेगा.

अतएव भागवतमें भी आता है कि “भक्ति तो मुक्तिपर्यन्त सिद्धिओंसे भी कहीं अधिक गरीयसी है” (भाग.पुरा.३।२५।३३). अतः अल्पभक्तिद्वारा साध्य मुक्तिकी तुलनामें अधिकभक्तिद्वारा साध्य मुक्तिका भी आधिक्य स्वीकारना ही पड़ेगा. अतएव भगवद्गीताके “अन्य तो कुछ लोग किसीसे अन्यथा कुछ सुन रखा होनेके कारण ऐसा समझ ही नहीं पाते; और उपासनामें प्रवृत्त हो जाते हैं. ऐसे भी, परन्तु,

श्रुतिपरायण होनेके कारण मृत्युके चक्रके चक्रसे बाहर तो निकल ही जाते हैं...” (भग.गीता.१३।२६) इस वचनमें ‘भी’ (=‘अपि’) शब्दका प्रयोग किया गया है. अतः साधनोंके तारतम्यवश फलतारताम्यको स्वीकारना ही पड़ता है. “स्त्रीगण वैश्यगण तथा शूद्रगण भी परा गतिको प्राप्त कर पाते हों तो पुण्यशाली भक्त ऐसे ब्राह्मणों या राजर्षिओं के मृत्युसंसाररूपी सागरके पार उतर पानेमें तो कोई शंका ही उठ नहीं सकती” (भग.गीता.१।३२) इस स्मृतिवचनके आधारपर भी तारतम्य सिद्ध होता ही है.

इन वचनोंके अलावा भी “ब्रह्मा आदि सभी, क्रमशः, अपने-अपने साधनोंकी उत्तमताके अनुरूप उत्तम सिद्धि प्राप्त करते हैं, जैसा कि आनन्दके प्रतिपादक तैत्तिरीयोपनिषद्के वचनमें उपलब्ध होता ही है” ( . . । । ) इस तरहके श्रुत्युक्त तारतम्यके उपोद्बलक स्मृतिवचन भी तो मिलते ही हैं. जैसे कि “उसका विज्ञान अधिक उत्तम होता है अतएव उसकी गति भी अधिक उत्तम होती है” (महाभा.१२।३१४।४४), “देवगणोंको मिलता आनन्द उनके साधनोंकी श्रेष्ठताके अनुरूप होता है. क्योंकि यदि श्रेष्ठ फल न मिलता हो तो अधिक श्रेष्ठ साधनाके हेतु कौन प्रवृत्त होना चाहेगा?” ( . . । । ) ऐसे युक्तिगर्भित शास्त्रवचन भी मिलते ही हैं.

“अपने-अपने स्वभावके अनुरूप देहधारियोंकी श्रद्धा भी तीन तरहकी होती है : सात्त्विकी राजसी और तामसी. अतः पहले इन्हें सुन लो. यह पुरुष श्रद्धामय होता है अतः जो जिसमें श्रद्धाशील होता है वह वैसा बन जाता है” (भग.गीता.१७।२) ऐसे स्मृतिवचनोंमें श्रद्धाको ‘स्वभावजा’ कह कर उत्तम मध्यम कनिष्ठ यों तत्तत् प्रकारकी श्रद्धाओंसे पनपी भक्तिके स्वरूपमें ही तारतम्य होनेके कारण चतुर्मुख ब्रह्मा आदि इतरोंसे उत्कृष्ट माने गये हैं. अतः “हमारे मुक्तिसुखका उपभोग चतुर्मुख ब्रह्मा आदिके मुक्तिके सुखोपभोगसे निकृष्ट होता है, हम हीनाधिकारिओंका मुक्तिसुखोपभोग होनेके कारण, हमारे सांसारिक सुखके उपभोगकी तरह” इत्यादि युक्तिओंके आधारपर भी मोक्षके प्रकारोंमें तारतम्य सिद्ध हो जाता है.

अतः “जो श्रोत्रिय कामनाओंसे ग्रस्त न हो उसे भी ऐसी ही आनन्दानुभूति होती है” (तैत्ति.उप.२।८) इस श्रुतिवचन और “और जो निष्पाप श्रोत्रिय कामनासे ग्रस्त नहीं होता” (बृह.उप.४।३।३३) इन दोनों श्रुतिवचनोंका अर्थ यों समझना चाहिये : कामनासे ग्रस्त न होनेका अर्थ सर्वथा निष्काम होना नहीं प्रत्युत मिथ्या कामनाओंके

कारण प्रकट होते उपद्रवोंसे रहित होना है, अन्यथा 'अकामहत' पदमें 'हत'पद अर्थहीन सिद्ध होगा. यह "सत्य होनेके कारण जो कामनायें परिपूर्ण होती उन कामनाओंवाला मुझे अमृत बनाओ" ( . . । । ) ऐसी श्रुतिओंके अवलोकन करनेपर यह प्रकट होता है. अतएव ब्रह्माण्डपुराणमें भी एक वचन ऐसा मिलता है कि "जो कामनाओंसे ग्रस्त नहीं होता वह मुक्त होता है" (ब्रह्माण्डपुरा. । । ). 'अवृजिन' होना भी दुःखरहित या पापरहित होना मुक्तात्माके साथ ही सार्थक होता है. क्योंकि अपरोक्षज्ञानमें भी प्रारब्ध पाप और उसके फलरूप मिलते दुःख तो होते ही हैं. अतएव श्रोत्रिय होना भी मुक्तात्माके साथ मुख्यतया संगत होता है. जैसा कि महाभारतमें भी कहा ही गया है "जिन्हें श्रुत्युक्त फल मिल गया हो ऐसे मोक्ष प्राप्त कर लेनेवाले ही आप्तकाम होनेके कारण श्रोत्रिय तथा अकामहत होते हैं" (महाभा. । । ).

(उत्तरपक्षतया<sup>ख</sup> अनुपपत्तिका निरसन)

अब इस आशंकाका समाधान भी खोजा जा सकता है कि तब "परमं साम्यम् उपैति" (मुण्ड.उप.३।१।३) इस 'परमसाम्य'पदका अभिप्राय क्या समझना. इसे इस तरह समझा जा सकता है कि जैसे कोई सरोवर और सागर की अपनी-अपनी विभिन्न गहराई और विभिन्न विस्तार होनेके बावजूद कोई सरोवर अपनी गहराई और विस्तार के अनुरूप लबालब भर कर सागरकी तरह लहरा रहा हो तो हो उसे 'सागर' भी कहते हैं. इसी तरह ब्राह्मिक आनन्द अन्य अनेक विलक्षणताओंके साथ सत्यकाम आदि गुणोंके कारण सर्वथा दुःखरहित होता है, वैसे ही मुक्तात्माका आनन्द भी उसकी अपनी विलक्षणताके बावजूद सत्यकाम आदि गुणोंके कारण सर्वथा दुःखरहित होता है; और इस अर्थमें दोनोंमें परमसाम्य स्वीकारना उचित ही है. इसलिये कहा भी गया है कि "मुक्तात्माओंमें लिंगोंका भेद नहीं होता और उनमें प्रकट होता आनन्द भी ब्रह्मकी तरह सर्वथा दुःखोंसे रहित ही परम कोटिका होता है" ( . . । । ). ब्रह्म और मुक्तात्माओं के बीच यदि कतिपय प्रमुख गुणोंके समान होनेकी अपेक्षावश 'परमसाम्य' कहा गया न मान कर ऐकान्तिक परमसाम्य स्वीकारनेपर तो मुक्तात्माओंके भीतर परमेश्वरकी तरह जगत्के सृष्टा पालक या संहारक होनेका भी सामर्थ्य स्वीकारना गलेपतित होगा. वह तो "जगद्व्यापारवर्जम्..." (ब्र.सू.४।४।१७) इस ब्रह्मसूत्रमें मायावादिओंने भी कहा स्वीकारा है? "भोगमात्रसाम्यलिंगात् च" (ब्र.सू.४।४।२१) इस ब्रह्मसूत्रगत 'मात्र' पदका हमारे मतमें भी उक्त दुःखाभावरहित आनन्दके साधारण भोगकी अपेक्षावश ही साम्य माना गया है, ब्रह्मके देश-काल-स्वरूपतः सर्वथा अपरिच्छिन्न आनन्दोपभोगकी दृष्टिसे नहीं. शांकर मतमें भी इसी तरह सामान्य

आनन्दोपभोगको लेकर ही मुक्तात्माओंकी ब्रह्मके साथ समानता निरपित हुयी है. ऐसा न माननेपर तो अपसिद्धान्त होनेकी आपत्ति उठ खड़ी होगी.

(उत्तरपक्षतया <sup>ग</sup> अनुपपत्तिका निरसन)

अतएव वाराहपुराणमें कहा गया है कि “अपने स्वरूपसे अधिक आनन्दके मिल जानेके कारण सृष्टिकी संरचना-पालन-संहरणादिकी परमेश्वरोचित क्रिया-कर्मोंमें उलझनेको मुक्तात्माओंके भीतर कामना जागती ही नहीं है अतः मुक्तात्मायें इन क्रिया-कर्मोंको करनेकी कामनाके बजाय अन्य ही कुछ कामनाओंका उपभोग करते हैं” (वारा.पुरा. ११).

(उत्तरपक्षतया <sup>घ</sup> अनुपपत्तिका निरसन)

जहां तक मुक्तात्माओंके भीतर राग-द्वेष हर्ष-शोक ईर्ष्या आदि मनोभावोंसे ग्रस्त होनेकी आपत्ति दिखलायी गयी, उस विषयमें यह कहना उचित होगा किह

अनेकानेक जन्मोंके बाद सारे दोषोंके निरस्त हो जानेपर जब श्रीहरिके अपरोक्ष दर्शन होते हैं तब द्वेष ईर्ष्या जैसे क्षुद्र मनोभावोंका प्रसंग कहाँसे उभर सकता है?

यदि श्रीहरिके अपरोक्ष दर्शनके बाद भी ईर्ष्या-द्वेष आदि मनोविकार उभर पाते हों तो परमसाम्यावस्थामें भी क्यों उभर नहीं पायेंगे? अपने समान तप करनेवालोंमें भी द्वेष ईर्ष्या आदिके मनोविकार भी तो बहुत सारे साधकोंमें दिखलायी देते ही हैं. अतः ऐसे मनोविकारोंके प्रकट होनेमें साम्य या तारतम्य हेतु नहीं होता प्रत्युत मनोगत वासनायें ही दोषरूपा कारण बनती हैं.

सौगन्धिक वनमें जो मणिमान्को मार दिया गया था वही पुनः कलियुगमें द्वैत या तारतम्य मात्रको मिथ्या माननेवालेके रूपमें प्रकट हुवा होनेके कारण अधिकाधिक तमोदृष्टिका विस्तार अब करता हुवा लगता है. अतः ज्ञानदुर्बलोंको लगता है कि सारी सृष्टि इन्द्रजाल है परन्तु परमेश्वरके अपरिच्छिन्न एवं अकुण्ठित ज्ञान-वैराग्य आदि गुणोंसे सम्पन्न होनेके कारण उनके समक्ष इन्द्रजाल कौन फैला सकता है?

जो सत्य सृष्टिकी रचनार्थ अक्षम हो वही मायासृष्टिके प्रदर्शनमें प्रवृत्त होता है. अचिन्त्य अनन्त सामर्थ्यवाले श्रीहरिको ऐसी

ऐन्द्रजालिकी सृष्टिकी रचनामें प्रवृत्त होनेका कोई हेतु विचारणीय नहीं लगता.

यह जीव तो परिमाणमें अणुमात्र है तो भी अपने देहमें अपनी चेतनाको फैला कर अवस्थित होता है जैसे चन्दनके कुछ छींटे शरीरपर कहीं लगानेपर सारे शरीरमें शीतलताकी अनुभूति होती है.

ब्रह्मा विष्णु और महेश तीनों कही महामहिम विष्णुके ही विभिन्न अमायिक रूप हैं. ब्रह्मामें वह ब्रह्मरूपी है, महेशमें वह शिवरूपी होनेपर भी वह देव पृथक्तया भी अवस्थित होता है.

मायावादके अनुसार ऐसी आपत्ति करनेवालेको यह बात लक्ष्यमें रखनी चाहिये कि ब्रह्ममें पारमार्थिक सत् होनेका धर्म अपनी प्रतिपन्न=प्रतीत होती ब्रह्मरूप उपाधिमें जैसे माना नहीं गया है फिरभी इस पारमार्थिकसत्तारूपी धर्मका अभाव स्वयं ब्रह्मके अपरिच्छिन्न सद्रूप होनेमें बाधक नहीं बनता. इसी तरह घट-पट आदि प्रापंचिक विषयोंमें भी अपनी प्रतीत होती उपाधिमें पारमार्थिक सत् न होनेपर भी उनके वस्तुतः पारमार्थिक होनेमें बाधक होना नहीं चाहिये क्योंकि घट-पट आदि विषय भी परिच्छिन्न सद्रूप तो ही हैं अतः कोई विरोध उभरना नहीं चाहिये. अतः ब्रह्म त्रैकालिक सत् होनेपर भी आकाश-वायु-तेज-जल-पृथ्वी आदि प्रापंचिक रूप कभी धारण करता है तो कभी नहीं भी. इसलिये दोनोंके बीच कौन नित्य तो कौन अनित्य आदि ऐसी दृष्टिसे वैषम्य हो ही सकता है. परन्तु एतवता ब्रह्मको ही केवल पारमार्थिक सत्य और प्रपंचको मिथ्या मान लेना विचारसंगत कथा नहीं लगती :

प्रापंचिक किसी भी पदार्थका स्वरूपेण तो त्रैकालिक निषेध मायावादमें भी नहीं माना गया है रजत आदिकी तरह अपने प्रतीत होते अधिष्ठानपर कालत्रयमें प्रतीत न होनेकी अपेक्षावश किया जाता निषेध आत्माका भी किया ही जा सकता है.

इस तरह श्रीमद्विठ्ठलेश्वर प्रभुचरणद्वारा विरचित  
मुक्तितारतम्यनिर्णय यहां समाप्त होता है



## उपक्रम

### गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी

चिन्तासन्तानहन्तारो यत् पादाम्बुजरेणवः ।  
स्वीयानां तान् निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥  
यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत् ।  
तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमदवल्लभनन्दनम् ॥  
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।  
चक्षुस्मूलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥  
नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धिशायिनम् ।  
लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् ॥  
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा ।  
षड्भिर् विराजते योऽसौ पञ्चधा हृदये मम ॥

प्रतिबन्ध और वाके बाद जघन्याधिकार, जो प्रतिबन्धको सबटॉपिक् है, वाके बाद अपनी विचारगोष्ठीको विषय फलविचार है. या सन्दर्भमें अपनकु दो बातें खास ध्यानमें रखनी चाहिये.

जब अपन पुष्टिमार्गमें फलविचार कर रहे हैं तब फलके बारेमें पुष्टिमार्गके अनुरूप अपने कुछ एक्सपेक्टेड शन् पैदा हो जावे हैं. पर पुष्टिमार्ग एक ऐसो मार्ग है के जो केवल जीवकु चलके भगवान तक पहुँचवेको नहीं है, थोड़ो-बहुत भगवान् भी जीवकी तरफ चलके आवे है. पहले कुछ कदम भगवान जीवके तरफ बढ़ावे है. जब भगवान जीवात्मासु मिलवे आतो होवे तब पुष्टिजीव जैसे अक्सर आकाशमें घटना होवे है के कोई बड़ो उल्कापिंड कोई ग्रहके तरफ आतो होवे और यदि वो ग्रह गेसियस् या लिक्विड होवे तो वा ग्रहको एट्रेक्शन, उल्कापिंडको एट्रेक्शन, ग्रहकी गति दोनों एक-दूसरेसु समीकृत होवे हैं. 'समीकृत' मतलब जैसे तीस किलोमीटर प्रति घंटाकी स्पीडसु आमने-सामनेसु आती दो ट्रेन आपसमें टकरावें तो उनकी टक्कर साठ किलोमीटर प्रति घंटाकी स्पीडसु होवे है. ऐसे उल्कापिंडके पास आनेसु ग्रहमें भी कोई तरहकी उथल-पुथल मचती होवे है. याको प्रत्यक्ष प्रमाण है : चन्द्रमाके कारण होती समुद्रमें उथल-पुथल. तो पुष्टिमार्ग केवल पुष्टिजीवको पुष्टिप्रभुके तरफ जानेको मार्ग नहीं है. पुष्टिप्रभु भी पुष्टिजीवके तरफ आवे है. ये कोलाईज़न् बहुत फोर्सफुल् है. यामें बहोतसी मर्यादाएं टूटती होवे हैं : “परमानन्द वेदसागरकी मर्यादा गयी तूट”. जब या बातपे अपन ध्यान दें तो एक ओर सिग्निफिकेंट

फीचर पुष्टिमार्गके हिसाबसु ध्यानमें आवे है के अपन अपने एंगलसु जब पुष्टिमार्गके फलको विचार सोच रहे हैं वो अपनो एक विचार है. पर पुष्टिप्रभुके तरफसु जब फलको विचार करें तो वो फलविचारको एक अलग पर्स्पेक्टिव् है. वाकेलिये अपनकु अपनो दिमाग खुलो रखनो पड़ेगो, हृदय खुलो रखनो पड़ेगो, वाणीकु वा तरहसु कल्टिवेट् करनी पड़ेगी. सबसु पहले ये अपेक्षा में या विचारगोष्ठीसु रख रह्यो हूं.

दूसरी बात ये है के जब अपन पुष्टिप्रभुके एंगलसु फलके बारेमें सोचें हैं तब ऐसी बात भी अपनकु सोचनी पड़ेगी के जो शायद या सेमिनार्की प्रोपर् सब्जेक्टमेटर् नहीं है पर साथ-साथ जाको विचार अपन यहां करने जा रहे हैं वाकी पृष्ठभूमिमें तो वो रह्यो भयो है ही. क्योंकि पुष्टिप्रभु यदि मौजूद है तो वो क्या फल देनो चाह रह्यो है वो पर्स्पेक्टिव् अपने दिमागमें रखनो पड़ेगो. या विषयपे मैं आप लोगनको ध्यान खींचनो चाहूंगो.

पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद ग्रन्थमें श्रीमहाप्रभुजीने समझायो है के “**भगवानेव हि फलं स यथाऽऽविर्भवेद् भुवि, गुणस्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत्**”. अर्थात् भूतलपे भगवान जा तरहसु आविर्भूत होवे हैं वा तरहके प्रभुको आविर्भाव पुष्टिजीवकेलिये पुष्टिमार्गमें फलरूप है. श्रीमहाप्रभुजी यहां खुली बात रख रहे हैं. “भगवान जैसे आविर्भूत होवें” ऐसे कही है, आपने यहां फल गिनाये नहीं हैं. तुम्हारी अपेक्षा क्या है वो पुष्टिजीवके एंगलसु फलको विचार है. और भगवान कैसे आविर्भूत होवे हैं वो बात पुष्टिजीवके एंगलसु नहीं है, पुष्टिप्रभुके एंगलसु है.

ये पुष्टिफलके विचारमें आधारवाक्य है. दूसरी बात आप आज्ञा करे हैं “**मूलेच्छातः फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेऽपि च, कायेन तु फलं पुष्टौ भिन्नेच्छातोऽपि नैकधा**”. यापे ध्यान दो. ‘मूलेच्छा’ मतलब “**एकोऽहं बहु स्याम् प्रजायेय**”. ‘प्रजायेय’ मतलब उच्चनीचभावेन जायेय. अब विचार करो के मूलेच्छासु भगवानके जो नाम-रूप-कर्म लोकमें प्रकट भये हैं वो प्रवाही जीवकेलिये फल हैं के नहीं? उच्चतम भाव अपन शुद्धपुष्टि जीवको समझें और नीचतम भाव दुर्ज्ञा आसुरी जीवको समझें. तो ‘प्रजायेय’में ये सब कवर हो रहे हैं. तो “**भगवानेव हि फलं स यथाविर्भवेद् भुवि**” विसाविस मूलेच्छातः फलं लोके, वेदोक्तं वैदिकेऽपि च. कुत्र? भूतले. भगवानेव हि फलम्. स यथा भुवि आविर्भवेद्. वेदोक्तप्रकारेण तदा मर्यादा, मूलेच्छातः प्रकारेण तदा प्रवाहः और न मूलेच्छातः न वेदोक्तप्रकारेण, लोकवेदातीतप्रकारेण यदा



भगवान् आविर्भवितुम् इच्छति तदा पुष्टिमार्गः। ये कोन्टेक्सट् है। तो मूलेच्छासु जो फल लोकमें और वेदमें दियो जा रह्यो है वाकु अपन चाहे यों कहें के वामें आनन्दको आविर्भाव नहीं है अथवा लोकवेदप्रथित नामरूपकर्म हैं, पर वो भी भगवानके द्वारा ही दियो जातो फल है। वामें अपन द्वैतवाद प्रकट नहीं कर सके हैं। ये साफ समझ अपनेमें होनी चाहिये।

पुष्टिप्रभुके द्वारा ही वेदोक्त प्रकारसुं यदि कोई नाम-रूप-कर्म फलतया स्पृहणीय है तो वो पुष्टिप्रभु ही देंगे। पर वो वेदोक्तप्रकारसुं देंगे। तो पुष्टिप्रभुके एंगलसुं ये सब बातें ओपन हैं। पर अपने एंगलसुं ये सब क्लोस् हो जा रही हैं। पुष्टिजीवके एंगलसुं पुष्टिमार्गमें मिलते फल और पुष्टिप्रभुके एंगलसुं पुष्टिमार्गमें मिलते फल वाके दोनोंके पर्सपेक्टिव् ... जैसे अपन यों जा रहे हैं तो प्रभुमें कोन्सन्ट्रेट हो रहे हैं। पर क्रोस् होनेके बाद अपन प्रभुके यहां यों हो जायेंगे। प्रभु कोई भी एंगलसु आ सके हैं, उनकु अपन रोक नहीं सके हैं। “मूलेच्छातः फलं लोके”। क्यों? “एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय”। ये वाकी इच्छा है। वाकी इच्छा यदि अपन नहीं मानेंगे... अपन समझोके ऐसो विभाजन करें के ये पुष्टिप्रभुकी इच्छा नहीं है। तो कौनकी इच्छा है? क्या ब्रह्मा-विष्णु-शिव गुणावतारकी इच्छा है? क्या अक्षरब्रह्म या काल-कर्म-स्वभाव-प्रकृति-पुरुषके कारण पैदा भयी इच्छा है? यदि इनकी इच्छा है तो क्या वो पुरुषोत्तमकी इच्छाकु सब्ड्यु करवेवाली इच्छा है के वाकी सबोर्डिनेट् है? यदि दबानेवाली है तो पुरुषोत्तम परमेश्वर नहीं रह जायेगो, भगवान् नहीं रह जायेगो, कर्तुमकतुमन्यथाकर्तुं समर्थ नहीं रह जायेगो। और यदि सबोर्डिनेट् है तो एक बात अपनकु अकामेन अङ्गीकरणीय होयगी के प्रवाही जीवकु भी जिन-जिन नाम-रूप-कर्मात्मना फल मिल रह्यो है वो पुष्टिप्रभुकी मूलेच्छासु ही। और मर्यादामें प्रभुने “वचसा वेदमार्गो हि” साधन-फलको प्रकार वाणीसु निर्धारित कियो है। और पुष्टिमार्गमें साधन-फलको प्रकार वाणीसु भी निर्धारित नहीं है और मूलेच्छासु भी निर्धारित नहीं है। पुष्टिमार्गमें “यमेवैष वृणुते” मार्गीय वरणरूपी स्पेसिफिक् इच्छासु साधन-फलभाव निर्धारित भयो है। यदा यं जीवं प्रभुः येन प्रकारेण उद्धिधीर्षुः भवति तं जीवं तदा तेन प्रकारेण फलम् अनुभावयति। ये अपनो पर्सपेक्टिव् है जामें रहके अपनकु ये बात समझनी चाहिये। पुष्टिमार्गके एंगलसु फलविचार तो या विचारगोष्ठीको मुख्य विषय है। पर याकी पृष्ठभूमिमें ये एक वाईडर् स्कीम है जाकु भूलनो नहीं चाहिये। या ही सब बातनकु बतानेकेलिये श्रीगुसांईजीने ‘मुक्तितारतम्य’ ग्रन्थ लिख्यो है जो कई अरसा तक लोगनके ध्यानपे नहीं आयो। बहोत पहले वाडीलालभाईने गट्टुलालजीकी लायब्रेरीमेंसु या ग्रन्थकी हस्तलिखित प्रति

खोजके याकु 'पुष्टिभक्तिसुधा' मासिकपत्रिकामें प्रकाशित करी हती. या ग्रन्थमें श्रीगुसांईजीने "फलमत उपपत्ते:"को विचार करके ये निर्णय दियो है के जो भी कछु फल होवे है वो परमात्माकी इच्छासु होवे है फिर वो फल मर्यादामार्गीय होवे, पुष्टिमार्गीय फल होवे या चाहे प्रवाहमार्गीय फल होवे. या इन तीनों मार्गीय फलसु अतीत, अपन एक नई टर्म कोईन् करके कहनो चाहें तो, स्वरूपमार्गीय फल होवे वो सभी फल प्रभुकी इच्छाके कारण होवे है. प्रभुमें विविध फलदानकी सामर्थ्य बतानेकेलिये श्रीगुसांईजीने 'मुक्तितारतम्य' ग्रन्थ लिख्यो. या बखत ये ग्रन्थ अपने सेमिनारको आधारपत्र है. बात समझो के यामें खास पुष्टिमार्गीय मुक्तिको निरूपण नहीं है. इन मोस्ट जनरल् टर्म ब्रह्मके सन्दर्भमें ब्रह्ममें कितनी प्रकारकी मुक्ति प्रदान करवेकी सामर्थ्य है, उनमें कौनसे प्रकारके तारतम्य है उन बातनको विचार है.



॥श्रीकृष्णाय नमः॥  
॥श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः॥

## गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथ प्रभुचरणविरचित 'मुक्तितारतम्यनिर्णय' ग्रन्थमें प्रतिपादित फलका स्वरूप

गोस्वामी श्याम मनोहर, किशनगढ-पाला

### उपक्रम :

गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथ प्रभुचरणद्वारा विरचित अनेक निर्णयग्रन्थों, नामशः, 'भक्तिहेतुनिर्णय' 'गीतातात्पर्यनिर्णय' 'जन्माष्टमीनिर्णय' या 'रामनवमीनिर्णय', की तरह वादशैलीमें ही लिखा गया प्रस्तुत 'मुक्तितारतम्यनिर्णय' भी एक लघुकाय निर्णयग्रन्थ है. इन निर्णयग्रन्थोंमें मिलती निरूपणशैलीके अवलोकन करनेपर यह एक तथ्य उभर कर सामने आता है कि अपने समक्ष यदा-कदा उठे विवादोंके बारेमें अपना अभिप्राय स्पष्ट करनेको ही ये सारे ग्रन्थ प्रभुचरण द्वारा लिखे गये हैं. इनमें कुछ ग्रन्थोंपर तो प्राचीन व्याख्याकार विद्वानों द्वारा लिखित व्याख्यायें उपलब्ध होती हैं और प्रकाशित भी हैं. इस 'मुक्तितारतम्यनिर्णय' ग्रन्थपर या तो प्राचीन किसी विद्वान् लेखकने कोई व्याख्या लिखी नहीं है; या लिखी हो तो अब उपलब्ध नहीं होती है. कमसे कम मुझे तो किसी प्राचीन लेखककी कोई व्याख्या उपलब्ध नहीं हुयी.

वैसे यह ग्रन्थ, अन्यान्य हस्तलिखित ग्रन्थोंकी तरह, श्रीगड्डलालाजीके हस्तलिखितग्रन्थागारीय संग्रह(मुंबई)में भी उपलब्ध था. सो करीब ९६ वर्ष पूर्व श्रीवाडीलाल नगीनदास शाहके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होनेवाली 'पुष्टिभक्तिसुधा' नामिका मासिक पत्रिकाके ३२ वर्षके १२वें अंकमें यह ग्रन्थ सन् १९१४ में प्रकाशित भी हुवा था.

उसके बाद प्रभुचरणग्रन्थावलीके प्रकाशनकी योजनाके अन्तर्गत विविध हस्तलिखित ग्रन्थोंकी प्रतियां एकत्रित करनेके प्रयासमें इस ग्रन्थकी अन्य भी छह-सात हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हो पायी. इन हस्तलिखित प्रतियोंके आधारपर तुलनात्मक पाठभेदोंका निर्धारण भी चिरंजीवी गोस्वामी श्रीशरदने पाठसंशोधनार्थ तैयार किया था किन्तु प्रभुचरणग्रन्थावलीके दूसरे-तीसरे खण्डोंके प्रकाशनमें होते विलम्बको देखते

हुवे, इस विचारगोष्ठीके अवसरपर, इसके संशोधित सानुवाद संस्करणको प्रकाशित करनेके लोभका संवरण हो नहीं पाता. अतः इस विचारगोष्ठीमें प्रस्तुत किये जानेवाले आलेखपत्रोंमें मुझे इसपर अपना आलेखपत्र प्रस्तुत करनेका मनोरथ प्रकट हुवा है.

### **ग्रन्थप्रतिपाद्य विषय, संशय और प्रयोजन :**

अपने शीर्षकके अनुरूप इस ग्रन्थका प्रतिपाद्य विषय क्या है यह तो इंगित हो ही जाता है :

“द्वयाः ह प्राजापत्याः दैवाः च आसुराः च” – “द्वौ भूतसर्गौ लोके अस्मिन् दैवः आसुरएव च, दैवी सम्पद् विमोक्षाय निबन्धाय आसुरी मता” (बृह.उप.१.३.११-भग.गीता.१.६।५-६) वचनोंके अनुसार, दैवी सृष्टिके अन्तर्गत जो विविध जीवात्मा प्रकट हुयी हों, उन्हें मुक्तिदानार्थ भगवत्कृत विविध वरण; और उन विविध भगवद्वरणोंके अवान्तर व्यापाररूप विविध साधनोंकी भी विविधताओंके अनुरूप, क्या उन साधनाओं द्वारा प्रकट होती फलानुभूतिओंके भी प्रकारोंमें विविधता रहती है या एकरूपता ही? यहां निर्धारणीय यही है कि क्या विविधता और तदनुगुण तरतमता केवल सांसारिक अनुभूतियोंका ही विषय बनती हैं; अथवा मोक्षावस्थाकी अनुभूतिमें भी वे अनुवृत्त हो पाती हैं? यदि हां तो आत्मस्वरूपकी तरह मुक्तावस्थामें अनुभूत होते अलौकिक आनन्दकी अनुभूतिओंमें भी मुक्तात्माओंकी विविधता या तरतमता सिद्ध होगी ही.

यह, परन्तु, श्रुति-स्मृति-पुराण आदि शास्त्रोंको अभिमत हो सकता है या नहीं? यह निर्धारित करना ही प्रस्तुत ग्रन्थका प्रमुख विषय और प्रयोजन है.

### **संशयांग विरुद्धकोटियोंके उद्भावक पूर्वोत्तरपक्षोंके परस्परविरुद्ध व्याख्यानान्तरिक शास्त्रवचनोंके सन्दर्भ :**

प्रस्तुत ग्रन्थमें ग्रन्थकारके उद्गारोंका विमर्श करनेपर ऐसा भी प्रतीत होता ही है कि किसी मायावादी शांकर वेदान्त-सम्प्रदायके चर्चाकारने श्रुति-स्मृति आदि शास्त्रवचनोंकी केवलद्वैतवादानुसारिणी व्याख्या प्रस्तुत करते हुवे, परममोक्षलाभकी अवस्थामें किसी भी तरहका तारतम्य उपपन्न नहीं हो पाता, ऐसी आशंका प्रभुचरणके समक्ष निश्चय ही प्रस्तुत की होगी. इस आशंकाके समाधानार्थ ही साकार-ब्रह्मवादी वेदान्तसम्प्रदायके अनुसार श्रुति-स्मृति-पुराण-महाभारत आदि शास्त्रोंके वचनोंकी

शुद्धाद्वैतवादनुसारिणी व्याख्या प्रस्तुत कर प्रभुचरणने उसे ग्रन्थतया लेखबद्ध भी कर दिया होगा।

अतः ग्रन्थनिर्दिष्ट सैद्धान्तिक समाधानकी मीमांसामें प्रवृत्त होनेसे पहले, पूर्वपक्षकी प्राग्धारणा तथा तदनुसारी श्रुत्यादि शास्त्रोंके वचनोंकी व्याख्याओंका भी विमर्श, न केवल आवश्यक है अपितु उपकारक भी होगा ही।

### मायावाद :

केवलाद्वैतवादी वेदान्तसम्प्रदायके अनुसार जागतिक नाम-रूप-कर्मोंके द्वैत, पारमार्थिक न हो कर अज्ञान या माया द्वारा, ब्रह्मपर आरोपित होते हैं। अतः वे सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय मिथ्या होते हैं। परमार्थतः सत्य न होनेपर भी इन नाम-रूप-कर्मोंके द्वैतकी मिथ्याप्रतीति, रज्जुपर सर्प या शक्तिपर रजत की तरह, द्वैतात्यन्ताभावोपलक्षित पारमार्थिक अधिष्ठानरूप ब्रह्मपर होती है। ब्रह्मके ऐसे स्वरूपका निरूपण, मायावादके अनुसार, अधोनिर्दिष्ट श्रुतिवचनोंमें उपलब्ध होता है :

ब्रह्म : <sup>१</sup>“सदेव... एकमेव अद्वितीयम्” (छान्दो.उप.६।२।१), <sup>२</sup>“अतो अन्यद् आर्तम्”, “न इह नाना अस्ति किञ्चन, मृत्योः स मृत्युम् आप्नोति य इह नानेव पश्यति”, “यत्र हि द्वैतमिव भवति... तद् इतरे इतरं विजानाति... यत्रतु अस्य सर्वम् आत्मैव अभूत्... तत् केन कं विजानीयाद्” (बृह.उप.३।४।२, ४।४।१९, ४।५।१५), <sup>३</sup>“निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्” (श्वेता.उप.६।१९), <sup>४</sup>“यतो वाचो निर्वर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह” (तैत्ति.उप.२।४), <sup>५</sup>“स एष ‘न’ इति-‘न’ इति आत्मा, अगृह्यो न नहि गृह्यते... असंगो नहि सज्यते...” (बृह.उप.३।९।२६)।

मोक्ष : <sup>१</sup>“यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामाः ये अस्य हृदि स्थिताः अथ मर्त्योः अमृतो भवति, अत्र ब्रह्म समश्नुते” (कठोप.२।३।१४), <sup>२</sup>“इह चेद् अवेदीद् अथ सत्यम् अस्ति, न चेद् इह अवेदीद् महती विनष्टिः, भूतेषु-भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्य अस्माद् लोकाद् अमृताः भवन्ति” (केनोप.२।१३), <sup>३</sup>“तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत... न अनुध्यायन् बहून् शब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत्” (बृह.उप.४।४।२१), <sup>४</sup>“तमेव विदित्वा अतिमृत्युम् एति, न अन्यः पन्था विद्यते अयनाय” (श्वेता.उप.३।८) <sup>५</sup>“तम् एवं विद्वान् अमृतः इह भवति, न अन्यः

पन्था अयनाय विद्यते” (तैत्ति.आर.३।१।३), “स यथा इमाः नद्यः  
 स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्य अस्तं गच्छन्ति, भिद्येते तासां नाम-रूपे  
 ‘समुद्रः’ इत्येव प्रोच्यते, एवमेव अस्य परिद्रष्टुः इमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः  
 पुरुषं प्राप्य अस्तं गच्छन्ति, भिद्येते च आसां नाम-रूपे, ‘पुरुषः’ इत्येव  
 प्रोच्यते. स एष अकलो भवति अमृतो भवति” (प्रश्नोप.६।५) <sup>९</sup>“तदा विद्वान्  
 पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यम् उपैति”(मुण्ड.उप.३।१।३)

केवलाद्वैतवादके अनुसार इन श्रुतिवचनोंमें सर्वप्रथम ब्रह्मका <sup>१</sup>एकमेव  
 अद्वितीय सन्मात्र होना निर्दिष्ट हुआ है. द्वितीय वचनमें <sup>२</sup>ब्रह्मसे अतिरिक्तका अनृत  
 होना निरूपित हुआ है; अर्थात् नाना न होना, नानात्वदर्शीकी निन्दा भी की गयी है.  
 ब्रह्मेतर किसी पदार्थका अस्तित्व ही न होनेके कारण द्वितीयका प्रामाणिक अनुभव भी  
 अशक्य माना गया है. अतएव तृतीय वचनमें <sup>३</sup>ब्रह्मका निष्कल निष्क्रिय शान्त निर्दोष  
 निरञ्जन ही होना प्रतिपादित हुआ है. चतुर्थ वचनमें <sup>४</sup>वाणी और मन से अगोचर होना  
 स्पष्ट कहा गया है. पांचवें वचनमें, अतएव, <sup>५</sup>निखिल द्वैतघटित नाम-रूप-कर्मोंके  
 अपोहन द्वारा ही ब्रह्मका निरूपण शक्य होनेसे, उसका वाणी और मन से अग्राह्य  
 होना स्वीकारा गया है.

इस तरह मोक्षप्रद ज्ञानका और उसके विषयका पारमार्थिक स्वरूप दिखलाया  
 गया है. इसी तरह मोक्षके स्वरूपनिरूपणमें भी मोक्षप्रदायक ब्रह्मके स्वरूपकी  
 उपलब्धि प्रतिपादित हुयी है :

यथा : <sup>१</sup>अमर आत्माको मर्त्य बनानेवाली कामनाओंकी निवृत्तिके बाद ही  
 ब्रह्मोपलब्धि शक्य मानी गयी है. द्वितीय वचनमें <sup>२</sup>प्रत्येक भूत या वस्तु में धैर्यपूर्वक  
 ऐसे उस ब्रह्मको खोजनेवालेको ही इस लोकसे विदा होनेके बाद अमृतत्व और  
 सत्यकी उपलब्धि होती है. अन्यथा महान् विनाशकी नियति भी दरसायी है. तीसरी  
 वचनमें <sup>३</sup>मन-वाणीके विषय बननेवाली मिथ्यावस्तुओंकी उपेक्षा करके मन-वाणीसे  
 अगोचर उस ब्रह्मको ही केवल भलीभांति जान कर समझ लेनेकी आवश्यकता  
 प्रतिपादित हुयी है. चतुर्थ वचनमें <sup>४</sup>ऐसे ब्रह्मको जाने बिना जन्म-मृत्युके चक्रसे बाहर  
 निकल कर मुक्ति पानेका अन्य कोई मार्ग नहीं है, यह दिखलाया गया है. पांचवें  
 वचनमें <sup>५</sup>उसे इस तरह जान लेनेकी मुक्त्युपयोगी आवश्यकतापर भार दिया गया है. छठे  
 वचनमें <sup>६</sup>अनेकविध नाम-रूपोंवाली नदियां समुद्रमें मिल जानेपर जैसे अपना नाम-रूप

खो देती हैं, ठीक उसी तरह आत्मचेतनाके साथ जुड़ी पञ्चमहाभूत पञ्चज्ञानेन्द्रिय पञ्चकर्मेन्द्रिय और अन्तःकरण रूपी सोलहों कलायें उस ब्रह्ममें लीन हो जानेपर जीवचेतनाको नाम-रूपातीत निष्कल और अमृत बना देती हैं, ऐसा उपपादित किया गया है। सातवें वचनमें <sup>६</sup> ब्रह्मको जाननेवाला अपने सारे पुण्य-पापोंसे उभर कर निर्लेप=निरञ्जन ब्रह्मके साथ परम साम्य प्राप्त कर लेता है, यह प्रतिपादित हुवा है।

ऐसी स्थितिमें मुक्तिके एकमात्र विषयावलम्बन एकमेवाद्वितीय ब्रह्मकी तरह ब्राह्मिकी मुक्तिमें भी किसी प्रकारका वैषम्य सिद्ध नहीं हो पायेगा। यों केवलाद्वैतवेदान्तके अनुसार नाम-रूप या पुण्य-पाप आदिके द्वैतोंसे रहित ब्रह्मका स्वरूप और उसके ही तथा ऐसे ही ज्ञानसे मोक्ष सिद्ध हो पाता है। साथ ही साथ नाम-रूप या पुण्य-पाप आदिके सभी द्वैतोंसे मुक्तावस्थाका अतीत होना भी अर्थापत्तिसिद्ध हो जानेके कारण पूर्वपक्षीय सन्दर्भ सुस्पष्ट हो जाता है।

अब स्वमतीय समाधानके ज्ञानार्थ इन ब्रह्म और मुक्ति के बारेमें प्रस्तुत इन वचनोंके शुद्धाद्वैतवादानुसारी अभिप्रायकी भी मीमांसा प्रासंगिक बनती है। तदनुसार सबसे पहले प्रथम वचनको अविकल निहार लेना आवश्यक होगा :

### सिद्धान्त-ब्रह्म

“उत तम् आदेशम् अप्राक्ष्यः <sup>क</sup> येन... अविज्ञातं विज्ञातं भवति...  
<sup>ख</sup> यथा... एकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्. वाचारम्भणं  
‘विकारो’ नामधेयं ‘मृत्तिका’ इत्येव सत्यं... <sup>ग</sup> तद्भू एके आहुः ‘असदेव  
इदम् अग्रे आसीद् एकमेव अद्वितीयं, तस्माद् असतः सद् जायत’.  
कुतस्तु खलु... एवं स्याद्... कथम् असतः सद् जायेत? इति  
<sup>घ</sup> सदेव... इदम् अग्रे आसीद् एकमेव अद्वितीयम्. <sup>ङ</sup> तद् ऐक्षत बहु स्यां  
प्रजायेय इति” (छान्दो.उप.६।१-२।१-२).

इन <sup>क</sup> से <sup>ङ</sup> विधानोंके क्रमानुपाती अभिप्रायका विमर्श करनेपर इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि इन श्रुतिवचनोंका प्रतिपादनभार ब्रह्मकी कार्य-कारणभावातीत एकाकिता या अद्वितीयता पर न हो कर कार्यभावापन्न नाम-रूप-कर्मात्मक जगत् और ब्रह्म के बीच उपादान-उपादेय-भावात्मक स्वाभाविक अनन्यत्व या तादात्म्य पर ही है। अतएव श्रुतिवचनमें विवर्तोपादानके उदाहरणके बजाय परिणामशील उपादानरूपा

मिट्टीसे बने उपादेयरूप घड़ेको अपने उपादानकारणसे अन्य न समझनेकी बात कारणावस्थाके 'मृत्तिका' नामको कार्यावस्थामें भी सत्य माननेके आग्रहके साथ दी गयी है, यदि कार्यावस्थाका 'विकार' नाम भेदज्ञापन करता हो तो उसे 'वाचारम्भण' अर्थात् उपादानोपादेयभावदृष्ट्या वास्तविक भेद न मान कर वाचिक भेद माना गया है. अर्थात् तभी उपादानकारणको जान लेनेपर उपादेयभूत कार्योंकी अनुभूतिमें उपादानकारणके सद्भावको पहचान पाना सुकर हो पायेगा. अवधेय है कि नाम-रूप-कर्मात्मना उत्पत्तिसे पहले इदमास्पद प्रपञ्चको 'सन्मात्र' माननेका अभिप्राय भी सुस्पष्ट ही है. क्योंकि केवल उत्पन्न होनेके अपराधवश जगत्को कोई असत् मानता हो तो श्रुतिका यह प्रतिप्रश्न कि "असत् सद्रूपेण कैसे प्रकट हो सकता है?" कथमपि संगत नहीं होगा. अतः सिद्ध हो जाता है कि इस वचनमें कार्यको न तो उत्पन्न होनेके बाद और न उत्पत्तिसे पूर्व ही असत् माना है. साथ ही साथ इदमास्पद प्रपञ्चको स्वयं उसके बहुभवनके भाक्त संकल्पवश प्रकटा हुवा माननेपर तो ब्रह्मवादका प्रत्याख्यान और स्वभाववादको अनुमोदन प्रदान करनेकी कथा बन जायेगी. अतः उद्भवसे पूर्व इदमास्पद जगत्को सद्रूपात्मक ब्रह्म माननेपर, उत्पत्तिके बाद भी यदि वह ब्रह्मात्मकतया सद्रूप न हो तो, ब्रह्मैक्यविज्ञान द्वारा सर्वविज्ञान भी सम्भव नहीं रह जायेगा. अतएव ब्रह्मविज्ञानके सिद्ध होनेपर जड़जीवात्मक जगत्का बाध नहीं प्रत्युत ब्रह्मात्मक सत्के रूपमें भान होने लगता है, ऐसा स्वीकार करना चाहिये. अतः इदमास्पद नाम-रूप-कर्मात्मक जगत्को सृष्ट्यात्मना प्रकट या व्यक्त होनेसे पूर्व अव्यक्त सन्मात्र होनेके अर्थमें ही "सदेव इदम् अग्रे आसीद्" वचनाभिप्रेत मानना पड़ता है. परिणामरूपेण प्रस्तुत श्रुतिवचनके ही "कथम् असतः सद् जायेत?" वाक्यांशमें प्रत्याख्यात असत्के सत्में रूपान्तरणकी प्रक्रिया असिद्ध हो जाती है. अतः नाम-रूप-कर्मात्मक जगत्का आद्यन्तमें असद्भाव और मध्यमें केवल मायिक सद्भाव, इस वचनमें प्रतिपाद्य नहीं माना जा सकता है. निष्कर्षतया जागतिक नाम-रूप-कर्मोंकी भिन्नता विविधता या तरतमता भी ब्रह्मोपादानिका होनेके कारण ब्रह्मकी तरह पारमार्थिक सिद्ध हो जाती है.

यों असत्कार्यवाद यदि स्वीकार भी लें, तब तो या तो स्वयं ब्रह्मको असत् मानना पड़ेगा और वह "असन्नेव स भवति 'असद् ब्रह्म' इति वेद चेत्" (तैत्ति.उप.२।६) इस वचनसे विरुद्ध जानेवाली बात होगी. अन्यथा अग्रिम वाक्यांश :

“सो अकामयत 'बहु स्यां प्रजायेय' इति... इदं सर्वम् असृजत. यद्



इदं किञ्च तत् सृष्ट्वा तदेव अनुप्राविशत्. तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्च  
अभवत्...विज्ञानञ्च अविज्ञानञ्च, सत्यञ्च अनृतञ्च सत्यम्  
अभवत्. यद् इदं किञ्च तत् 'सत्यम्' इति आचक्षते”  
(तैत्ति.उप.२।६).

इस वचनमें घोषित इदमास्पद निखिल व्यक्ताव्यक्त निरुक्तानिरुक्त  
निलयनानिलयन विज्ञानाविज्ञान सत्यानृत, तदुपलक्षित अन्य भी असंख्य  
इतरेतरविरुद्धतया भासित होते, जगत्का ब्रह्म कर्ता तथा समवायी भी अर्थात्  
अभिन्ननिमित्तोपादान कारण सिद्ध हो जाता है. अन्यथा प्रस्तुत वचनका मुख्यार्थ  
बाधित हो जायेगा.

और इसे बाधितार्थक न मानना हो तो “त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म... ब्रह्म  
एतद्धि सर्वाणि... नामानि... रूपाणि... कर्माणि बिभर्ति. तदेतत् त्रयं सद् एकम्  
अयम् आत्मा, आत्मा उ एकः सन् एतत् त्रयं, तदेतद् अमृतं सत्येन च्छन्नम्. प्राणो वा  
अमृतं नामरूपे सत्यं ताभ्याम् अयं प्राणः छन्नः” (बृह.उप.१।६।१-३) वचनमें  
प्रतिपादित न केवल नाम-रूप-कर्मोंकी ब्रह्मात्मकता या ब्राह्मैक्य प्रत्युत आत्मा या  
एकमेवाद्वितीय ब्रह्मकी भी नाम-रूप-कर्मतया त्र्यात्मकता भी उपपन्न हो ही जाती  
है.

इसी तरह अन्य श्रुतिवचनमें शब्दशः -

१. “आत्मैव इदम् अग्रे आसीत् पुरुषविधः. सो अनुवीक्ष्य न  
अन्यद् आत्मनो अपश्यत्. सो 'अहम् अस्मि' इति अग्रे व्याहरत्.  
ततो 'अहं'नामा अभवत् ... तद्ध इदं तर्हि अव्याकृतम् आसीत्. तद्  
नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत 'असौनामा अयम्' - 'इदंरूपः' इति.  
तदिदमपि एतर्हि नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियते 'असौनामा अयम्' -  
'इदंरूपः' इति. सएष इह प्रविष्टः... ब्रह्म वा इदम् अग्रे आसीत्. तद्  
आत्मानमेय अवेद 'अहं ब्रह्म अस्मि' इति. तस्मात् तत् सर्वम्  
अभवद्” (बृह.उप.१।४।१-१०).

२. “सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो नामानि कृत्वा अभिवदन्  
यद् आस्ते” (तैत्ति.आर.३।१२।७).

ऐसे श्रुतिवचनोंमें इदमास्पद नाम-रूप-कर्मात्मक जगत्के बारेमें मिलता निरूपण कि यह जगत् ब्रह्मका आत्मव्याकरण है, वह भी उपपन्न हो जाता है. उत्पत्तिसे पूर्व तत्तद् नाम-रूप-कर्मात्मना अव्याकृत सदात्माके तत्तद्-नाम-रूप-कर्मात्मना आत्मव्याकरणको, यदि अनितरसचिव या स्वेतरोपाधिरहित ब्रह्मकी आत्माभिव्यक्ति माननेके बजाय मायारूपी उपाधिके वश होता मिथ्याभास मानते हैं तो, सर्वप्रथम तो ब्रह्मकी एकमेवाद्वितीयता बाधित हो जायेगी. इस भीतिवश उस मायाको सदसद्विलक्षण मिथ्या माननेके कारण केवलाद्वैतका बाध न भी स्वीकारें तबभी मायाका यह लक्षण “अनादिमत् परं ब्रह्म न ‘सत्’ तद् न ‘असद्’ उच्यते” (भग.गीता.१३।१३) वचनके अनुरोधवशात् स्वयं ब्रह्ममें ही अतिव्याप्त मानना पड़ेगा. इस वचनमें प्रयुक्त ‘सद्-असद्’पदोंको व्यक्ताव्यक्त नाम-रूपोंके निषेधपरतया अभिप्रेत माननेपर तो “न असद् आसीद् नो सद् आसीत् तदानीं, न आसीद् रजो न व्योमा परो यद्... अम्भः किम् आसीत्... आनीद् अवातं तद् एकं, तस्माद् अन्यद् न परः किञ्चन आस” (ऋक्संहि.१०।१२९।१-२) वचनमें सदसद्विलक्षण मायाके उपाधितया सृष्टिसे पूर्व विद्यमान होनेके बजाय रज-अम्भ-वात-व्योम द्वारा उपलक्षित मूर्तामूर्तरूप पञ्चमहाभूतके निषेधमें ही पर्यवसान स्वीकारना पड़ेगा. साथ ही साथ इन महाभूतोंकी तब ब्रह्ममैक्यभावापन्न सदात्मिका अवस्था भी स्वीकारनी पड़ेगी. अन्यथा असत्से सद्रूपान्तरण गलेपतित होगा. अतएव :

“एकएव अग्निः बहुधा समिद्धः, एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः।  
एकैव उषा सर्वम् इदं विभाति, एकं वा इदं वि बभूव सर्वम्॥”  
(ऋक्सं.८।५८।२).

इस वचनके अनुसार एकाकी ब्रह्मको ही इस नाम-रूप-कर्मात्मक जगत्का इतरोपाधिरहित कर्ता तथा समवायी कारण मान लेना उचित लगता है. इस श्रुतिके वचनके ऐसे विशिष्ट अभिप्रायके बुद्धिगत होनेपर द्वितीय वचनकी संगति भी बुद्ध्यारूढ़ हो पायेगी.

यथा : ब्रह्मसे अन्यतया कुछ भी जानना सत्य वस्तुको विषय बनानेवाले ज्ञानको भी अनृतानुभूतिमें पर्यवसित कर देता है. क्योंकि ब्रह्मके भीतर अब्रह्मात्मक नाना कुछ भी होता ही नहीं है, जबकि ब्रह्मात्मक नानात्व तो स्वयं ब्रह्मके संकल्पके द्वारा ही प्रकट होता माना गया है. अतः इसी अब्रह्मात्मक द्वैतकी असम्भाव्यता और

निन्दा माननी चाहिये, नकि एक ब्रह्मकी निजी इच्छासे प्रकटे नानात्वकी. क्योंकि ब्रह्मैक्यका विधान जडजीवात्मक जगत् और ब्रह्म के तत्त्वतः अनन्य होनेका विधान है, न कि अन्यतरके निषेधका. अतएव ब्रह्मकी अज्ञेयता भी ब्रह्मेतर ज्ञाताके सन्दर्भमें ही उपपन्न होती है, नकि ब्रह्मात्मक ब्रह्मांशभूत ब्रह्मचैतन्यके भी अविषय होनेके अर्थमें. वह तो ब्रह्मकी स्वयंप्रकाशरूपताकी ही आंशिक अभिव्यक्ति है (बृह.उप.३।४।२, ४।४।१९, ४।५।१५). अतएव “**ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं, स आत्मा, तत् त्वम असि**” (छान्दो.उप.६।८।७) वचनमें भी ‘तत्’पदको आत्मपरामर्शी माननेके बजाय ‘ऐतदात्म्य’परामर्शी मानना ही उचित लगता है, ‘आत्मा’रूप पुंलिङ्गपदका परामर्श नपुंसकलिङ्गवाले ‘तत्’पदके बजाय ‘स’पदद्वारा अधिक उचित लगता होनेसे.

अतएव तीसरे वचन(श्वेता.उप.६।१९)में <sup>३</sup>ब्रह्मके निष्कल निष्क्रिय शान्त निरवद्य या निरञ्जन होनेका विधान भी अब्रह्मात्मिका कला क्रिया अशान्ति रूप दोष अथवा लिप्तता से वर्जित होनेसे. ब्राह्मिकी कला या क्रिया से वर्जित होनेके अर्थमें माना नहीं जा सकता.

इसीलिये चतुर्थ वचन(तैत्ति.उप.२।४)में भी मूलरूपेण <sup>४</sup>ब्रह्म अवाच्य या अचिन्त्य होनेपर भी अपने भीतर स्वयंसृष्ट नाम-रूप-कर्मोंके रूपमें वाच्य तथा चिन्त्य भी हो सकता है और हुवा ही है, यही दिखलाना अभिप्रेत है.

इसी तरह पांचवें वचन(बृह.उप.३।९।२६)में भी <sup>५</sup>स्वयंके उपादानभावमें प्रकट किये गये नाम-रूप-कर्मोंके किसी एक क्षुद्र अंशमें ब्रह्मको परिच्छिन्न माननेपर ही “**‘न’इति-‘न’इति**” निषेध सार्थक होता है. स्वयं श्रुत्युक्त प्रकारक ब्रह्मके श्रुतिवाच्य या श्रुतरूपेण अचिन्त्य अग्राह्य या असंग होनेके अर्थमें नहीं. यह “**द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चैव-अमूर्तञ्च मर्त्यञ्च-अमृतञ्च स्थितञ्च-यच्च सच्च-त्यच्च. तदेतद् मूर्तं यद् अन्यद् वायोश्च अन्तरिक्षाच्च. एतद् मर्त्यम्, एतत् स्थितम्, एतत् सत्, तस्यैतस्य मूर्तस्य मर्त्यस्य स्थितस्य एतस्य सतः एषो रसो यएष तपति सतोहि एष रसः...** अथातः आदेशो **‘न’इति-‘न’इति नहि एतस्माद् इति, ‘न’ इति अन्यत् परम् अस्ति. अथ नामधेयं ‘सत्यस्य सत्यम्’ इति**”(बृह.उप.२।३।१-६) इस वचनमें यदि ऐकान्तिकतया ब्रह्मका निखिल नामोंसे अवाच्य होना अभिप्रेत होता तो “**अथ नामधेयं ‘सत्यस्य सत्यम्’**” वाक्यांशमें निखिल मूर्तामूर्तादिके द्वन्द्वोंके अन्तर्गत प्रत्येकका निषेध तो कर ही दिया गया होनेसे बाधित हो जानेके कारण असत्य नाम-

रूपोंको 'सत्य' कह कर पुनः ब्रह्मको उनका भी 'सत्य' कहना उपपन्न नहीं हो पायेगा.

यों ब्रह्मके बारेमें पूर्वपक्षाभिमत अभिप्रायसे जो पृथक् अभिप्राय सिद्धान्तिका है, उसे संक्षेपमें जान लेनेके बाद अब श्रुत्युक्त मोक्षके स्वरूपके बारेमें भी शुद्धद्वैतवादके अनुसार इन वचनोंका समाधान जान लेना उचित होगा.

### सिद्धान्त-मोक्ष

जैसा कि प्रथम वचन(कठोप.२।३।१४)में <sup>१</sup>ब्रह्मात्मक नाम-रूप-कर्मोंके बारेमें उन्हें ब्रह्मसे भिन्नतया काम्य बनानेवाली कामनाओंके रहते ब्रह्मानुभूति शक्य नहीं रह जाती होनेसे, ऐसी कामना करनेवाला मर्त्य कभी अमृतत्वको पा नहीं सकता, यही श्रुति समझना चाहती है. एतावता निष्काम ब्रह्मज्ञानी इस भूतलपर जीवन्मुक्त न हो पाता हो तो “अत्र ब्रह्म समश्नुते” वाक्यांश निरर्थक सिद्ध होगा. इसे, परन्तु, अस्वीकार करनेपर तो “ब्रह्मविद् आप्नोति परम्. तद् एषा अभ्युक्ता : सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म, यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सो अश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता” (तैत्ति.उप.२।१) इस श्रुत्यन्तरमें ब्रह्मज्ञानके बाद मिलनेवाले ब्रह्मके द्वैतघटित सहभावमें जीवात्माके सर्व कामोंके उपभोगकी स्तुतिको सर्वथा बाधितार्थप्रशंसा माननी पड़ेगी.

अतएव द्वितीय वचन(केनोप.२।१३)में <sup>१</sup>ब्रह्मको इस नाम-रूप-कर्मात्मक जगत्की प्रत्येक वस्तुमें या प्रत्येक भूतमें उसके अनन्य उपादानतया तथा प्राकट्यके कर्ताके रूपमें जान लेनेवाले ज्ञानियोंको, इस लोकके छूटनेके बाद अमृतत्वके प्रापक सत्यका साक्षात्कार होता माना है. अन्यथा महाविनाश होना भी दिखलाया गया है. यहां भी, परन्तु, यह अवधेय है कि इस वचनमें ब्रह्मका पारमार्थिक होना और भूत-भौतिक पदार्थोंका सदसद्विलक्षण मिथ्या होना यदि विवक्षित होता तो ब्रह्मको प्रत्येक भूतवस्तुके भीतर देखनेके बजाय प्रत्येक भूत-भौतिक वस्तुसे अतीत या असंसृष्ट होनेके रूपमें देखना ही मुक्तिका साधन होना चाहिये था. इसके अलावा “भूतेषु-भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्य अस्माद् लोकाद् अमृताः भवन्ति” वाक्यांशमें मुक्तोंका बहुत्व भी तो कण्ठतः प्रतिपादित है ही; और वह यदि ब्रह्मके ऐकान्तिक अद्वैतमें आपत्तिजनक न हो तो, विविधता या तरतमता को भी ब्रह्मके पारमार्थिक अद्वैतके विपरीत कथमपि माना नहीं जा सकता. यहां “तदा विद्वान् पुण्यपापे विहाय परे अव्यये सर्वम्

एकीकरोति” (मैत्रा.उप.६।१८) इस वचनान्तरमें निरूपित एकीकरणसे विरुद्ध जानेकी आशंका प्रकट नहीं करनी चाहिये. क्योंकि वह तो मुक्तात्माको अनुभूत होते ब्राह्मैक्यकी दृष्टिसे फलित हो रहा है. यह ऐसी फलानुभूति करनेवाली मुक्तात्माओंकी अनेकताके निषेधार्थ कही गयी उक्ति नहीं है.

अतएव तीसरे वचन(बृह.उप.४।४।२१)में भी ऐसे <sup>१</sup>उस सर्वोपादानभूत सर्वकर्ता ब्रह्मके बोधक वचनोंका अनुध्यान करनेकी बात अभिप्रेत है. यह तो “यो वै भूमा तत् सुखं न अल्पे सुखम् अस्ति. भूमैव सुखं, भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः” (छान्दो.उप.७।२३।१) श्रुतिमें निर्दिष्ट न्यायके अनुसार जागतिक नाम-रूप-कर्मोंके अल्पसुखरूप होनेके कारण किया गया विधान है नकि मिथ्या होनेके कारण.

चतुर्थ वचन(श्वेता.उप.३।८)में भी <sup>२</sup>मुक्त्यर्थ हमारी ज्ञानमार्गीय साधनाके विषयतया केवल उसीके ज्ञानकी अनिवार्यतापर भार दिया गया है, नकि शास्त्रोपदिष्ट अन्यान्य कर्म उपासना योग त्याग वैराग्य भक्ति आदि साधनोंके मुक्तिमार्ग न बन पानेके अभिप्रायवश. ज्ञानकी मोक्षप्रापकता भी विषयसापेक्षतया अर्थात् ब्रह्मज्ञान होनेके कारण ही मान्य होती है. ब्रह्मनिरपेक्ष स्वरूपतया ज्ञान या अज्ञान होनेके कारण नहीं; अतएव, “अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये अविद्याम् उपासते ततो भूयइव तमो य उ विद्यायां रताः. ‘अन्यदेव आहुः विद्यया, अन्यद् आहुः अविद्यया’, इति शुश्रुम धीराणां ये नः तद् विचचक्षिरे. विद्यां च अविद्यां च यः तद् वेद उभयं स ह अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते” (ईशा.उप.९-११) इस वचनमें ब्रह्मव्यतिरिक्त तो अविद्याकी तरह विद्याकी भी निन्दा हमें मिलती ही है. और चाहे जिस विवक्षाके वश मानो मृत्युके चक्रसे छुड़ानेवाली होनेके रूपमें अविद्याको भी माना तो गया ही है. केवल विद्याको ही नहीं.

पांचवे वचन(तैत्ति.आर.३।१।३)में भी <sup>३</sup>ब्रह्मका जैसा स्वरूप श्रुति-आदि शास्त्रवचनोंमें उपदिष्ट है, तदनुसार उसे जान पाना अमृतत्वार्थ या मुक्त्यर्थ अनिवार्य माना गया है, नकि मोक्षके मार्गान्तरोंका निषेध यहां विवक्षित हो सकता है. क्योंकि अन्यथा “न अयम् आत्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन यमेव एषः वृणुते तेन लभ्यः” (कठोप.१।२।२३) इस वचनमें प्रवचन-श्रवण-मेधा रूपी ज्ञानावाप्तिके उपायोंसे अलभ्य दिखला कर परमात्मकृत जीवात्मवरणको परमात्मप्राप्तिके हेतुतया बिरदाना असंगत हो जायेगा.

ऐसी स्थितिमें छठे वचन(प्रश्नोप.६।५)में भी <sup>१</sup>समुद्रगामिनी नदियोंके नाम-रूपोंका मिथ्यात्व विवक्षित कैसे माना जा सकता है? यदि उन-उन नामोंवाली और रूपोंवाली नदियोंके नाम-रूपके निवृत्त होनेके कारण उन्हें मिथ्या मानना आवश्यक लगता हो तो-तो नदियोंके भी समुद्रमें लीन होनेके कारण नाम-रूपोंकी तरह उन्हें भी मिथ्या मानना पड़ेगा. यदि नदियोंके समुद्रमें मिल जानेपर उनकी समुद्ररूपापत्तिके कारण उन्हें अमिथ्या मानना हो तो वह नदियोंके नाम-रूपोंकी भी समुद्रके नाम-रूपोंमें भी स्वीकारनी ही पड़ेगी. इसी तरह ब्रह्मदर्शनके बाद जीवचेतना भी, अपनी सोलह कलाओं समेत ही, ब्रह्मचेतनामें पर्यवसित होती मानी गयी है. अतः ब्रह्मेतरतया प्रतिभासित होती कलाओंकी विवक्षावश ही वह अकल या निष्कल हो जाती है. एतावता ब्राह्मिकी अमृतकलाओंका ब्रह्ममें न होना मानना तो अकाण्डताण्डव ही होगा.

अन्तिम सात(मुण्ड.उप.३।१।३)वें वचनके बारेमें भी, अतएव, यह उल्लेखनीय हो जाता है कि <sup>२</sup>ब्रह्मवेत्ताकी ब्रह्मभावापत्ति उसे पुण्य-पापातीत बना देती होनेकी विवक्षाके वश ही 'परमसाम्य' पद प्रयुक्त हुवा है. यह सर्वथा द्वैतात्यन्ताभावोपलक्षित ऐक्यापत्तिकी विवक्षाके वश नहीं.

यों श्रौत वचनोंमें ब्रह्म और मोक्ष के बारेमें केवलाद्वैतवाद और शुद्धाद्वैतवाद की दृष्टिओंमें रहे मौलिक तारतम्यको निरख लेनेपर ग्रन्थकारोपपादित रीतिके अनुसार प्रतिपाद्य विषयके विमर्शार्थ अब अग्रसर हुवा जा सकता है.

**प्रस्तुत ग्रन्थके पूर्वपक्षका सार :**

मुक्तिमें मिलते आनन्दकी अनुभूतिमें तरतमताकी धारणाके विरोधमें पूर्वपक्षके अन्तर्गत चार तरहकी अनुपपत्तियां उठायी गयी हैं, प्रथम दो शास्त्रीय विधानोंके सन्दर्भमें तथा द्वितीय दो यौक्तिक अनुपपत्तिके सन्दर्भमें :

तदनुसार मुक्तिकी अवस्थामें भी तारतम्य स्वीकारनेपर सर्वप्रथम शास्त्रीय दूषण तो यही है कि ऐसे <sup>३</sup>तारतम्यका साधक किसीभी तरहका शास्त्रीय प्रमाण उपलब्ध नहीं होता. <sup>४</sup>दूसरा दूषण "परमं साम्यम् उपैति" श्रुतिवचनमें स्वीकृत 'परमसाम्य'से तारतम्यकी धारणाका विपरीत होना है.

इसके अलावा यौक्तिक दूषण तो यही है कि <sup>५</sup>मुक्तिकी अवस्थामें भी यदि

तारतम्य स्वीकारते हैं तो उस आनन्दानुभूति और स्वर्ग या संसार में मिलती आनन्दानुभूति में पार्थक्य नहीं रह जायेगा. दूसरा दूषण यह और है कि मुक्त जीवात्माओंमें परस्पर तारतम्य होनेपर अन्य किसी मुक्तात्माकी तुलनामें स्वयं अपने अनुत्कर्षको जान लेनेपर मुक्तजीवके भीतर भी अशेष दुःखोंके अभावके स्थानपर दुःखी होनेकी मनोभावना प्रबल हो सकती है. इसी तरह परायेके उत्कर्षका बोध होनेपर उसके प्रति द्वेष या ईर्ष्या आदिके सांसारिक भाव भी प्रसक्त होने लगेंगे!

### प्रस्तुत ग्रन्थके उत्तरपक्षका सार :

<sup>अ</sup>प्रथम अनुपपत्ति कि मुक्तावस्थामें तारतम्यके साधक शास्त्रवचन उपलब्ध नहीं होते, इस बारेमें ग्रन्थकारने तैत्तिरीयोपनिषद्गत आनन्दमीमांसाके आधारपर ब्रह्मानन्दका स्वरूप समझानेको जो मानुषानन्दसे शतगुणित उत्तरोत्तर अधिक होनेके क्रममें प्राजापत्यानन्दके बाद ब्रह्मानन्द पर्यन्त जो प्रक्रिया दिखलायी है, उसे तारतम्यके प्रबल श्रौत प्रमाणतया उपस्थापित किया है. इसका उपोद्बलन भी पुराण-महाभारतके अनेक वचनोंके आधारपर किया है. इन और ऐसे अन्य भी श्रुत्यादि शास्त्रवचनोंमें उपलब्ध होते साधनतारतम्य तथा फलतारतम्य के आधारपर भी मुक्तितारतम्यकी उपपत्ति दी गयी है. भगवद्गीतामें कहे गये स्वस्वभावानुगुण श्रद्धात्रैविध्य और तन्मूलक भक्तित्रैविध्यका भी विचार करनेपर उत्कृष्टतर प्रकारकी श्रद्धासे प्रसूत उत्कृष्टतर प्रकारकी भक्तिका फल भी उत्कृष्टतर स्वीकारना ही पड़ेगा, ऐसी उपपत्ति प्रस्तुत की है.

<sup>आ</sup>द्वितीय अनुपपत्ति यह थी कि मुक्तात्माओंके अथवा मुक्तिके तरतम होनेकी धारणा, परमात्माके साथ मुक्तात्माओंके श्रुत्युक्त 'परमसाम्य' से विपरीत है, वह भी असमाधेय नहीं है. क्योंकि प्रकृत 'साम्य' पद ऐकान्तिक साम्यकी विवक्षावश नहीं प्रयुक्त हुवा है प्रत्युत मुक्तिके सामान्य स्वरूपके अनुरोधवश कतिपय प्रमुख गुणधर्मोंकी अपेक्षावश ही प्रयुक्त हुवा है. अन्यथा परमेश्वरके साथ सर्वथा एकवद्भाववापन मुक्तात्माओंमें सृष्टिके उत्पादक पालक एवं संहारक होनेके अर्थमें भी साम्य गलेपतित होगा.

<sup>इ</sup>तृतीय आपत्ति यह थी कि मुक्तिकी अनुभूतिमें तारतम्य स्वीकारनेपर मुक्तिसुख और स्वर्गसुख या सांसारिकसुख के बीच कोई अन्तर नहीं रह जायेगा. इसका, किन्तु, स्वतन्त्र निरसन अनावश्यक है. क्योंकि तैत्तिरीयोपनिषद्में उपलब्ध होती आनन्दकी मीमांसामें ही मानुष आनन्द, मनुष्यगन्धर्वके आनन्द, देवगन्धर्वोंके आनन्द, चिरलोकलोकवाले पितरोंके आनन्द, आजानजदेवोंके आनन्द, कर्मदेवोंके

आनन्द, इन्द्रके आनन्द, बृहस्पतिके आनन्द, प्रजापतिके आनन्द और अन्तमें ब्रह्मके आनन्दमें कण्ठतः श्रुतिमें ही तारतम्य प्रतिपादित किया ही गया है. अतः इन आनन्दोंमें समानता खोजनी श्रुतिवचनके मुख्यार्थकी उपेक्षा सिद्ध होगी.

चतुर्थ आपत्तिका परिहार, प्रभुचरणद्वारा, इस तरह दिया गया है कि द्वेष या ईर्ष्या आदिके मनोविकार सुख या आनन्द के तारतम्यके वश नहीं होते परन्तु अन्यविध हीनाधिकारक स्वभावोंके वश होते हैं. वैसी हीनाधिकारक वासनाओंके होनेपर तो अपने समान भी किसीको देख कर द्वेष/ईर्ष्या आदि मनोविकार प्रकट हो ही सकते हैं.

### **ग्रन्थोपसंहारतया प्रदत्त उपपत्ति :**

मुक्तिमें निखिल नाम-रूप-कर्मोंके द्वैतके बाधके बाद सिद्ध होते मुक्तिरूप परमसाम्यके निर्वाहार्थ जो जगत्की सृष्टिको मिथ्या माना गया है. वह मान्यता भी स्वीकरणीय नहीं है. क्योंकि इन नाम आदिके उत्पत्ति-स्थिति-लयके कर्ता और समवायि होनेके रूपमें ब्रह्मको परिभाषित किया गया है. तदर्थ ब्रह्म जिस तरह अपने तीन ब्रह्मा विष्णु और शिव रूप प्रकट करता है, वे भी मिथ्या सिद्ध होंगे, कर्ता और कार्य एवं समवायी और समवेत के इतरेतरसापेक्ष होनेके कारण. इस विषयमें इष्टापत्ति भी की नहीं जा सकती है. क्योंकि ऐसी स्थितिमें या तो ब्रह्मका लक्षण इन तीनोंके समुदित रूपोंमें अतिव्याप्त हो जायेगा. अथवा इन्हें ब्रह्मके ही तीन रूप मान कर अतिव्याप्तिके दोषका परिहार करने जानेपर तो, जैसे ब्रह्मा विष्णु और शिव के नामभेद रूपभेद और कर्मभेद एकमेव अद्वितीय ब्रह्मके अद्वैतमें बाधक नहीं होते, ऐसे ही जागतिक नाम-रूप-कर्मोंके द्वैत भी ब्रह्माद्वैतके अनुगुण ही मान लेनेमें आपत्ति रह नहीं जायेगी. ब्रह्मा विष्णु या शिव यदि जगत्के उत्पादन पालन और संहरण में असमर्थ हों तो उन्हें मायाके साचिव्यकी अपेक्षा रहेगी. वे यदि स्वतःसमर्थ हों तो मायाके साचिव्यकी अपेक्षा उन्हें सतायेगी ही नहीं. और ब्रह्मादिकी त्रिपुटीको स्वतःसमर्थ न मान कर मायावश समर्थ मानना तो इन्हें वस्तुतः असमर्थ ही माननेमें पर्यवसित होगा. अतएव प्रपञ्चकी तरह इन्हें भी ब्रह्मके अद्वैतमें मायाकल्पित माननेपर यह प्रश्न उठ खड़ा होगा कि स्वयं ब्रह्मका पारमार्थिक होना अथवा सत्य-ज्ञान-आनन्द-रूप होना भी पारमार्थिक होता है या अपारमार्थिक? पारमार्थिक माननेपर तो द्वैतापत्ति होगी ही. और इन गुणधर्मोंके भी अपारमार्थिक माननेपर तो या तो ब्रह्मको भी अपारमार्थिक मानना पड़ेगा अथवा इन गुणधर्मोंके अपारमार्थिक होनेपर भी ब्रह्म यदि पारमार्थिक ही रहता हो तो जागतिक नाम-रूप-कर्मोंके द्वैतके बावजूद ब्रह्मके



पारमार्थिक अद्वैतमें भी कोई बाधा पहुंचनी तो नहीं चाहिये. अब यदि इस विषयमें इष्टापत्ति दरसायी जाती हो तो, अब्रह्मात्मक नाम-रूप-कर्मोंके द्वैत ही ब्रह्मके अद्वैतमें बाधक हो पायेंगे, ब्रह्मात्मक नाम-रूप-कर्मोंके द्वैत नहीं, यह भी अकामनया गलेपित होगा.

**त्रैकालिक निषेध प्रसक्त होनेसे ब्रह्मको भी मिथ्या माननेका प्रसंग सिद्ध होगा.**

मायाद्वारा प्रदर्शित व्यावहारिकसत्ता/प्रातिभासिकसत्ता और अमायिक पारमार्थिकसत्ता के बीच तारतम्यका हेतु तो मिथ्यात्वका “स्वप्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगिता” रूप लक्षण ही होता है. क्योंकि मिथ्याव्यवहार या मिथ्याप्रातिभास का अपने पारमार्थिक अधिष्ठानपर बाधित होना ही व्यावहारिकी या प्रातिभासिकी सत्ताके सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय होनेका विनिगमक बनता है. यहांपर यह उल्लेखनीय बन जाता है कि किसी भी प्रतीतिगोचर पदार्थके, बाधज्ञानवश किये जाते, त्रैकालिक या कादाचित्क निषेधमें उसका स्वरूपतोनिषेध तो समर्पित होता नहीं है. अर्थात् पारमार्थिक अधिष्ठानतया ही परतोनिषेध होता है. वह तो पारमार्थिक ब्रह्मके बारेमें भी सम्भव है. क्योंकि “ब्रह्म भी कालत्रयमें व्यावहारिक सत् या प्रातिभासिक सत् नहीं हो सकता” ऐसे निषेधका प्रतियोगी ब्रह्म भी हो ही सकता है.

यदि कहा जाये कि व्यावहारिक या प्रातिभासिक वस्तुपर ब्रह्मत्व प्रतीतिगोचर ही नहीं होता; अतः स्वप्रतिपन्नोपाधिमें त्रैकालिक निषेधकी भी कोई प्रसक्ति सोची नहीं जा सकती. यह युक्ति, किन्तु, ठीक नहीं है. क्योंकि साकारब्रह्मके कार्यभूत या अंशभूत जड़जीवात्मक जगत्से साकारब्रह्मका शुद्धाद्वैत माननेवालोंके मतमें “सर्वं खलु इदं ब्रह्म” (छान्दो.उप.३।१४।१) “ऐतदात्म्यम् इदं सर्वम्” (छान्दो.उप.६।८।७) “इदं सर्वं यद् अयम् आत्मा” (बृह.उप.२।४।६) सदृश अनेकानेक शास्त्रवचनोंके आधारपर इदमास्पद प्रपञ्चरूप अधिष्ठानपर शाब्दिक वृत्तिद्वारा बोधित ब्रह्मका भान तो होता ही. क्योंकि इन विधानोंमें इदमास्पद प्रत्यक्ष जगत्को उद्देश्य बना कर उसके ब्रह्म होनेका विधान किया जा रहा है न कि परोक्ष ब्रह्मको उद्देश्य बना कर उसके अपरोक्ष जगत् होनेका. अतः श्रुतिवाक्यसे जन्य शाब्दबोध भी इदमास्पदोद्देश्यक ब्रह्मत्वप्रकारक ही होगा. इसे इन्द्रियजन्य ज्ञानगोचर न होनेके अपराधवश मिथ्या न माना जाये तो भूतकालिक या भविष्यत्कालिक पदार्थोंकी तरह, शब्दैकगम्य, स्वर्ग-देव आदि पारलौकिक पदार्थोंकी भी इन्द्रियजन्य अनुभूतिगोचरता न होनेके कारण उनका भी अमिथ्यात्व प्रसक्त होगा. अतः इदमास्पद

प्रपञ्चको ब्रह्मकी स्वप्रतिपन्न उपाधि मानना पड़ेगा. उसपर केवलाद्वैतवादके अनुसार प्रसक्त होते त्रैकालिक निषेध कि “ब्रह्म न तो भूतकालमें कभी व्यावहारिक या प्रातिभासिक सत् था, न वर्तमानमें हो सकता है और न भविष्यत्कालमें कभी हो पायेगा” ऐसा त्रैकालिक निषेध प्रसक्त होनेसे ब्रह्मको भी मिथ्या माननेका प्रसंग तो अपरिहार्य ही सिद्ध होगा.

### अन्तिम अधिकरणांग संगति :

श्रीमद्भागवत पुराणके एकादशस्कन्धमें उद्धवजीने भगवान्‌के समक्ष एक गम्भीर प्रश्न प्रस्तुत किया है : एक ओर भगवान्‌ गुणदोष दर्शन करनेवाली दृष्टिके दोषपूर्ण और गुणदोषोंका दर्शन न करनेवाली दृष्टिके निर्दोष होनेका विधान कर रहे हैं. दूसरी ओर कर्मोंके गुणदोषोंके भेदके आधारपर ही किसी कर्मका विधान तो अन्य किसीका निषेध वेदवचनोंमें किया हुआ दिखलायी देता है. इन विरोधाभासी वचनोंकी परस्पर संगति कैसे बैठानी? इसके अलावा प्रतिलोम या अनुलोम सतन्तीके लिये वर्णाश्रमाचारके विधि-निषेध भी भेदभावपर अवलम्बित हैं. द्रव्य देश वय काल स्वर्ग नरक आदिके अनेक प्रभेदोंमें गुणदोषोंके निर्दर्शन भेददृष्टिके बिना कैसे सार्थक हो पायेंगे? मनुष्योंको पितरोंको या देवोंको भी अपने-अपने निःश्रेयस्के साध्य-साधनोंका परिज्ञान वेदोंके अलावा अन्य किसी भी प्रमाणसे शक्य नहीं. अतः वेदोंके विधि-निषेधोंको परमेश्वरकी आज्ञा मान कर अनुसरण कर्तव्य बनता है. अतः ऐसी स्थितिमें गुणदोषोंके दर्शन करनेवाली दृष्टि भगवदाज्ञारूप वेदमूलक ही हो तो उसे कैसे दोषरूप मानना?

इसपर भगवान्‌ने उद्धवजीको समझाया कि मनुष्योंके निःश्रेयस्के लिये कर्मयोग ज्ञानयोग एवं भक्तियोग यों तीन उपाय स्वयं भगवान्‌ने ही दिखलाये हैं. इनके अलावा वेदोंमें जो भी उपाय हैं, वे इनके अंगरूप तो हो सकते हैं परन्तु स्वतन्त्र उपाय नहीं. इन्हें कौन अपनाये उसके बारेमें भी तीन तरहके अधिकारोंका निरूपण किया गया है कि कर्म या उससे मिलनेवाले फलोंमें विरक्त साधकोंको ज्ञानयोगमें प्रवृत्त होना चाहिये, अविरक्त सकाम अधिकारीको कर्मयोगमें प्रवृत्त होना चाहिये तथा भगवत्कथामें यदृच्छया श्रद्धाशील साधक, जो न अतिविरक्त हो या न अति-अनुरक्त हो, उसे भक्तियोगमें प्रवृत्त होना चाहिये. इन्हीं सकाम कर्मोंके निष्काम अनुष्ठान करनेवालेको न स्वर्गलोक मिलता है और न नरकलोक ही. परन्तु ज्ञान या भक्ति तो कभी न कभी सिद्ध हो ही जाती है.

एतावता यह फलित हुआ कि ब्रह्मके स्वरूपके विचारसे न तो ब्रह्मेतरतया अवगत किसी वस्तु या व्यक्ति में उसके कोई अपने गुण होते हैं और न अपने कोई दोष ही होते हैं. फिरभी इस सृष्टिलीलामें प्राकृत गुणोंके संघातमें प्रकट होनेवाले हमारे प्राकृत या कृत्रिम कर्तृत्व ज्ञातृत्व और भोक्तृत्व के यथाक्रम अवलम्बन द्वारा प्रकट होनेवाले कर्ममार्ग ज्ञानमार्ग एवं भक्तिमार्ग में मार्गौपयिक गुणदोषोंकी भलीभांति सावधानी बरतना भगवल्लीलाके अनुसरणद्वारा लीलाकर्ता भगवान्के स्वरूपके साक्षात्कारकी दिशामें अग्रसर हुआ जा सकता है.

### **विभिन्न प्रकारकी भक्तिके विभिन्न फल :**

एकमेवाद्वितीय भगवान्ने लीलार्थ जो अनेकविध द्वैत प्रकट किये हैं उन्हें दृष्टिगत रखते हुवे ही श्रीभागवतपुराणके तृतीय स्कन्धके २९वें अध्यायमें भक्तियोगकी भी मनुष्योंके गुण और स्वभाव के भेदोंपर अवलम्बित होनेवाली बहुविधता निरूपित की गयी है. हिंसा दम्भ या मात्सर्य आदि दुर्गुणोंके वश भेददृष्टिसे आक्रान्त व्यक्तिकी भक्ति तामसी होती है. विषयकामना यशोलिप्सा या ऐश्वर्यादिके लाभार्थ की जाती भेददृष्टिवाले व्यक्तिकी भक्ति राजसी होती है. 'कांटेसे कांटा निकालनेकी तरह कर्मनिर्वाहसे कर्मनिर्हारके हेतु कर्मोंका अनुष्ठान, 'भेददृष्टि रखते हुवे यावद्देहाभिमान विधि-निषेधके बन्धनोंको अनुल्लंघ्य मान कर उनके अनुरोधवश कर्मोंके अनुष्ठान; अथवा ३परमात्माको समर्पित करनेकी भावनाके साथ स्वकर्मोंके अनुष्ठान करनेवालोंकी भक्ति सात्त्विकी होती है. सभी पुरुषों या जीवात्माओं के भीतर तादात्म्यभावसे बिराजमान पुरुषोत्तम या परमात्मा के गुणोंके श्रवणमात्रसे प्रकटा निर्हेतुक अव्यवहित अविच्छिन्न मनोगतिवाला भक्तिभाव तो निर्गुण भक्तियोग होता है. ऐसे इस भक्तिभावके प्रकट होनेपर सालोक्य साष्टि सामीप्य सारूप्य अथवा एकत्व/सायुज्य की भी स्पृहा भक्तको रह नहीं जाती. ऐसे इस भक्तियोगका साधक प्रकृतिके तीनों गुणोंके बन्धनोंसे उभर कर भगवद्भावापन्न हो जाता है. यद्यपि सगुणा भक्तिके फलोंका कण्ठतः निरूपण यहां भगवान्ने किया नहीं है, फिरभी निर्गुणा भक्तिकी साधनाका प्रकार और फलानुभूतिका प्रकार यहां दिखलाया है : ऐसे साधकको अपने स्वधर्मका निषेध निनिमित्तभावसे करना चाहिये, अतिहिंस्र क्रियायोगोंसे अपने आपको अधिक जोड़ना नहीं चाहिये, भगवान्के प्राकट्यस्थानोंके दर्शन स्पर्शन पूजा स्तुति अभिवन्दन सकल प्राणियोंमें भगवद्भावना मनको निःसंग बना निभानी चाहिये, बड़ोंका बहुमान निभाते हुवे, दीनजनोंके प्रति अनुकम्पाका मनोभाव रखना चाहिये, आत्मतुल्योंके प्रति मैत्रीभाव निभाना चाहिये, अकुटिलतापूर्वक यम-नियम आध्यात्मिक निरूपणोंके

अनुश्रवण और नामसंकीर्तन करना चाहिये, श्रेष्ठजनोंके साथ सत्संग करना चाहिये, अहंकारसे बचना चाहिये। ऐसा साधकजन भगवान्‌के धर्मोंके कारण और इन्हीं गुणोंके कारण भी भगवान्‌के गुणोंके केवल श्रवणमात्रसे भगवान्‌को पा सकता है।

क्योंकि उपनिषद्‌में ब्रह्मके “सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म” (तैत्ति.उप.२।१) जैसे ब्रह्मज्ञानौपयिक स्वरूपलक्षणकी तरह ही ब्रह्मजिज्ञासौपयिक “तद् आत्मानं स्वयम् अकुरुत... रसो वै सः. रसं ह्येव अयं लब्ध्वा आनन्दी भवति... एष ह्येव आनन्दयाति”, “यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्ति-अभिसंविशन्ति”, “ब्रह्म एतद्धि सर्वाणि नामानि रूपाणि कर्माणि बिभर्ति” (तैत्ति.उप.२।७,३।१, बृह.उप.१।६।१-३) फललक्षण एवं कार्यलक्षण भी उपदिष्ट हुये ही हैं। अतः <sup>१</sup>जनन <sup>२</sup>जीवन <sup>३</sup>प्रयाण और <sup>४</sup>लय का ब्राह्मिक याथार्थ्य और जीवितावस्था और विदेहावस्था में सिद्ध होनेवाली फलानुभूतिके ब्राह्मिक याथार्थ्यका भागवतपुराणमें <sup>१</sup>सर्ग-विसर्ग <sup>२</sup>स्थान-पोषण-ऊति-मन्वन्तर-ईशानुकथा-निरोध <sup>३</sup>मुक्ति और <sup>४</sup>आश्रयभावापत्ति के दशविध रूपोंमें संकीर्तन हुवा है। तदन्तर्गत मुक्तिके अनेकविध प्रकार भी सिद्ध होते ही हैं।

इस सन्दर्भमें महाप्रभुके मतके अनुसार फलभेद या मुक्तितारतम्य का सिद्धान्त वाल्लभ चिन्तनके भवनमें एक सुदृढ आधारशिलाका प्रयोजन पूर्ण करता है।

एक बहुप्रचारित मिथ्या धारणा, जो न केवल विसाम्प्रदायिक विद्वान् लेखकोंकी कृतिओंमें प्रत्युत वाल्लभ सम्प्रदायके अनुगामी लेखकोंकी कृतिओंमें भी, प्रायः साधारणतया दृष्टिगत होती है, उसके बारेमें स्पष्टीकरण देना आवश्यक लगता है। इस मिथ्या धारणाके अनुसार वाल्लभ सम्प्रदायमें केवल भक्तिसाधनाको ही मान्य किया गया है; और, इस पुष्टिभक्तिरूपा साधनाके फलतया गोलोककी प्राप्ति ही मोक्षतया मान्य रखी गयी है(!). इससे अधिक अन्यथाव्याख्यान महाप्रभुके चिन्तन या दृष्टिकोण के बारेमें और क्या हो सकता होगा! अतः ऐसी भ्रमपूर्ण अवधारणाओंका निरसन भी इस प्रसंगमें अति-आवश्यक हो जाता है। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य और उनके कनिष्ठ आत्मज गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथ प्रभुचरण, दोनों ही, के मोक्षसम्बन्धी विचारोंको भलीभांति समझना हो तो यह लघुकाय निर्णयग्रन्थ वस्तुतः एक आधारशिलोपम प्राधारणाको प्रस्थापित करनेवाला माना जा सकता है। केवल भक्ति ही मोक्षप्रापिका होती है या अन्य भी, इस विषयमें महाप्रभुका हार्द समझना हो तो

सरलतम अतीव हृदयंगामी निरूपण चरित्रवार्तामें यों मिलता है :

“एक समय श्रीआचार्यजी गुजरात पधारे. सो पुरुषोत्तम जोशी मध्याह्नके समय एक तलावपर सन्ध्या करत हुते. तब श्रीआचार्यजी तलावपर पधारिके सन्ध्यावन्दन करन लागे. सो सो पुरुषोत्तम जोशीकी ओर कृपा करिके दैवी जानि देखे. तब पुरुषोत्तम जोशी श्रीआचार्यजीके पास आई नमस्कार करि पूछ्यो ‘महाराज यह कर्ममार्ग बड़ो के ज्ञानमार्ग बड़ो?’ तब श्रीआचार्यजी कहें ‘जाके मनमें दृढ़ जो मार्ग आवे, जामें जाको विश्वास होय, वाके भाये तो वह मार्ग बड़ो; और बड़ो तो भक्तिमार्ग है जामें जीव कृतार्थ होइ. और ज्ञानमार्ग कर्ममार्ग सों कृतार्थता कठिनतासों होई. सो काहूसों निर्वाह होय नाहीं. काहेते ? जो कष्टसाध्य हैं. सो या कालमें शरीरको कष्ट कार्यों न जाई. कोऊ अपने शरीरको कष्ट सहे तो मन ठिकाने न रहे. ताते भक्तिमार्गमें जीव कृतार्थ होई और आश्रय नाहीं’ ”

(पुरुषोत्तम जोशीकी वार्ता ८४ वै.वा.)

यही सिद्धान्त महाप्रभुने तत्त्वार्थदीपनिबन्धके शास्त्रार्थप्रकरणमें प्रारम्भमें भी घोषित किया है :

“ज्ञाननिष्ठा तदा ज्ञेया सर्वज्ञो हि यदा भवेत्, कर्मनिष्ठा तदा ज्ञेया चित्तं प्रसीदति, भक्तिनिष्ठा तदा ज्ञेया कृष्णः प्रसीदति. निष्ठाभावे फलं तस्माद् नास्त्येव इति विनिश्चयः निष्ठा च साधनैरेव न मनोरथवार्तया. स्वाधिकारानुसारेण मार्गः त्रेधा फलाय हि अधुना हि अधिकारास्तु सर्वएव गताः कलौ, कृष्णः चेत् सेव्यते भक्त्या कलिः तस्य फलाय. सर्वेषां वेदवाक्यानां भगवद्बचसामपि श्रौतो अर्थो हि अयमेव स्याद् अन्यः कल्प्यो मतान्तरैः” (त.दी.नि.१।१७-२०).

निःश्रेयस्के भी पुनः जीवन्मुक्ति/विदेहमुक्ति अथवा क्रममुक्ति/सद्योमुक्ति आदि अनेक प्रकार होते हैं. इसी तरह मुक्तिके इन विविध प्रकारोंमें अनुभूत होते

आनन्दोंके भी अनेकविध तारतम्य तैत्तिरीयोपनिषद्में निरूपित हुवे ही हैं। इन विविध प्रकारके आनन्दके प्रदायक विविध कर्ममार्ग ज्ञानमार्ग एवं भक्तिमार्ग; और, इन मार्गोंके अन्तर्गत अवान्तरमार्ग भी विविध शास्त्रोंमें प्रतिपादित हैं ही। इनके विस्तारमें जाना प्रस्तुत आलेखमें शक्य न होनेसे, इन सभीके बारेमें यहां केवल इतना स्पष्टीकरण दे देना पर्याप्त होगा कि अतएव मुक्तिलाभके अन्तर्गत भी फलतारतम्य स्वीकारना ब्रह्मके स्वरूप और लीला दोनोंकी दृष्टिसे अकामांगीकरणीय है।

अतएव महाप्रभुके अनुसार श्रौत निष्कामकर्ममार्ग, योगसाधना और सांख्यसाधना का फल आत्मानन्द होता है। तत्तद् देवोपासनाओंका फल तत्तद्देवलोकोमें सालोक्यादिका आधिदैविकानन्द होता है। अक्षरब्रह्मके श्रुत्युक्त स्वरूपप्रकारक ज्ञानका फल आध्यात्मिक ब्रह्मानन्द होता है। पुरुषोत्तमकी मर्यादाभक्ति और/अथवा पुष्टिभक्ति के फलतया भी आधिदैविक परमानन्दकी प्राप्ति दिखलायी गयी है।

इसी परमानन्दानुभूतिकी विविध अवान्तरानन्दानुभूतियां भी प्रतिपादित हुयी हैं। ये महाप्रभु-प्रभुचरणके षोडशग्रन्थ आदिमें भी निरूपित हुयी हैं। यथा : <sup>१</sup>समस्तदुरितक्षयपूर्वक श्रीमुकुन्दरति श्रीमुरारिपुसन्तोष और तनुनवत्वरूप स्वभावविजय, <sup>२</sup>भगवदाश्रय और भगवदीयता की सिद्धि, <sup>३</sup>निजतनुवित्तके भगवत्सेवामें विनियोगद्वारा चित्तके श्रीकृष्णैकप्रवण हो जानेके कारण श्रीकृष्णकी निरन्तर मानसी सेवा, <sup>४</sup>इस भूतलपर भगवान्का स्वरूप-गुणभेदेन प्राकट्य, <sup>५</sup>सब कुछ भगवान्को समर्पित करनेके कारण भगवदीय बनी सकलसामग्रीद्वारा भगवत्सेवाका निर्वाह, <sup>६</sup>श्रीकृष्णकी भक्ति और/अथवा प्रपत्ति के कारण प्राप्त होनेवाली निश्चिन्तता, <sup>७</sup>विवेकधैर्याश्रयलभ्या अलौकिकमनःसिद्धि, <sup>८</sup>अन्याश्रयरहित श्रीकृष्णका आश्रय, <sup>९</sup>पुष्टिजीवके धर्मार्थकाममोक्ष पुरुषार्थोंका श्रीकृष्णसे जुड़ जाना, <sup>१०</sup>स्वगृहमें भगवत्सेवा और/अथवा भगवत्कथा के अनुष्ठानसे सुदृढ़ बने भक्तिके बीजभावकी उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती प्रेम-आसक्ति-व्यसन अवस्थाके भेद, <sup>११/१२</sup>भगवत्कथाके श्रवणवश लौकिक-वैदिक विषयोंमें अनुरागकी निवृत्ति और भगवान्के स्वरूप-गुण-लीला आदिके बारेमें अज्ञानकी निवृत्ति हो जानेपर ऐसा भगवद्गुणगानानन्द कि जो भगवान्में भी हमारी अरतिको भलीभांति निवृत्त कर श्रीकृष्णकी रसानुभूतिमें हमारे मनको निमग्न कर देता हो, <sup>१३</sup>भगवद्विप्रयोगजनित विकलता या अस्वास्थ्य, <sup>१४-१५</sup>प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवान्में सभी तरहसे निरुद्ध हो जानेके कारण भगवत्सेवाके अवसरमें संयोगसुख और अनवसरमें

विप्रयोगदुःख, साथ ही साथ भगवत्कथामें गुणगानका परमसुख रूप निरोधकी सिद्धि,  
<sup>१६</sup>तनुवत्वरूप अलौकिकसामर्थ्य, सायुज्य; अथवा, वैकुण्ठ आदि दिव्य लोकोंमें  
 भगवत्सेवोपयोगी नूतन तनुकी प्राप्ति. इस तरह पुरुषोत्तमके स्वरूप गुण या लीला के  
 कारण अनुभूत होते पूर्णानन्दके भी अवान्तर आनन्दोंके विविध प्रकार षोडशग्रन्थोंमें  
 निरूपित हुवे हैं. इनमें आनन्दानुभूतिमें तारतम्य न भी हो परन्तु परमानन्दके  
 रसास्वादनमें विविधता तो मान्य करनी ही पड़ती है.

इस तरह कहीं विविधता, तो कहीं तारतम्य भी पुष्टिमार्गीय प्रपत्ति एवं भक्ति  
 के प्रकारोंमें सुस्पष्ट झलकता ही है. उसे सैद्धान्तिक आधार यह 'मुक्तितारतम्यनिर्णय'  
 ग्रन्थ प्रदान करता है. और यही इसकी इस फलविचारगोष्ठीमें प्रस्तुत करनेकी  
 आत्यन्तिक उपादेयताकी संगति है.

सकलान्तरात्मा श्रीहरिः प्रसन्नो भवतु



## चर्चा

गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथ प्रभुचरणविरचित  
'मुक्तितारतम्यनिर्णय' ग्रन्थमें प्रतिपादित फलका स्वरूप

### गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी

**गो. शरद :** ...इन शास्त्रवचननकी व्याख्या जैसे आपने वाल्लभ वेदान्तानुसारी बताई है ऐसे ही इन ही वचननकी व्याख्या स्वमतानुसारी मायावादी भी देवे हैं. जैसे श्रुतिवचनमें वो गौणवचन/महावाक्य ऐसे भेद करे हैं. कुछ श्रुतिवचनकुं वो सगुणब्रह्मपरक माने हैं, कुछकु निर्गुणब्रह्मपरक माने हैं. अपन जिन वचननके आधारपे ब्रह्मकु जगत्सृष्टा सिद्ध करे हैं या जगतकु ब्रह्मात्मक सत्य सिद्ध करे हैं उनकु शांकर सगुणब्रह्मपरक अथवा गौणश्रुति बतावे हैं. ऐसेमें अपन यहां जितने तर्क उन वचननके आधारपे दे रहे हैं उनकी क्या स्थिति बनेगी?

**गो. श्या. म. :** जहां भी चर्चा होवे है वो हर बखत ऐसी चर्चा नहीं होवे है के कोई युक्ति देदी तो वासु कोई अन्तिम निर्णय हो गयो. पुराने जमानामें कई शास्त्रार्थ ऐसी शर्तपे होते हते के जामें जो हारे वो अपनो मत छोड़के जीतनेवालेके मतकु स्वीकार लेवे. उनमें कई बखत ऐसो भी होतो हतो के हारनेवालो मतदोषके कारण नहीं हायोंहोवे पर अपनी मतिदोषके कारण हायोंहोवे. ऐसेमें कई बखत ऐसो भी होतो हतो के जिन युक्तिसु मतको खण्डन भयो होवे उन युक्तिनको जवाब खोज लियो गयो होवे जो शास्त्रार्थके बखत स्फुर्योनहीं होवे. यासु “मतेर्दोषः नतु मतस्य” ऐसी उक्ति प्रचलित भई. बादमें अपने यहां मत बदलनेकी शर्तवाले शास्त्रार्थ होने कम हो गये. जैसे वेदान्तदेशिकने ‘शतदूषणी’ ग्रन्थ लिख्यो वाको आठसौ वर्ष तक खण्डन नहीं भयो. पर हमारे दादाजीके विद्यागुरु अनन्तकृष्ण शास्त्रीजीने वाको खण्डन लिख दियो. शास्त्रीजीने खण्डन लिख्यो तो वाको उत्तर उत्तमूरवीरराघवाचार्यजीने दे दियो. फिर वाको उत्तर शास्त्रीजीने लिख्यो. ऐसो चलतो ही रहे है. तो ऐसे बड़-बड़े आचार्यनके शास्त्रार्थके भी निर्णय नहीं भये हैं. कोई ग्रन्थ ऐसो नहीं है के जाको कोईने खण्डन नहीं लिख्यो होवे. यासु अपन यहां कोई निर्णयात्मक शास्त्रार्थ करवेकी दृष्टिसु लिख नहीं रहे हैं.



ऐसो न उद्देश्य है और न वो प्रैक्टिकलि सम्भव ही है. मैने यहां केवल तुलनात्मक विचार कियो है. शास्त्रके वचन हैं. उनके विषयमें शांकरनको क्या खयाल है और अपनो क्या खयाल है उतनो मैने दिखायो है. याकु देखनेसु अपन ये समझ सके हैं के जाने श्रीगुसांईजीके सामने शंका करी है वाके प्रिसपोज़िशन् क्या होंगे.

**गो. शरद् :** मुक्तिमें तारतम्य तो शास्त्रसिद्ध है. कोई भी वेदान्त याकु अमान्य नहीं कर सके है. क्या ऐसे कोई मत हैं के जो मुक्तिमें तारतम्य नहीं मानते होवें? आपने शाङ्करनकु पूर्वपक्षमें क्यों लिये हैं?

**गो. श्या. म. :** दरसल् शांकरवेदान्त भी यों नहीं कहे है के मुक्तिमें तारतम्य नहीं होवे है. मुक्तिमें तारतम्य तो वो माने हैं पर परममुक्तिमें तारतम्य वो नहीं माने हैं. क्योंके सदेहमुक्ति, विदेहमुक्ति, सद्योमुक्ति, क्रममुक्ति वगैरह मुक्तिके प्रकार उनके यहां मान्य हैं ही. परन्तु परममुक्तिमें उनने तारतम्य नहीं मान्यो है. जाने श्रीगुसांईजीके सामने शंका करी है वाने परममुक्तिके बारेमें शंका करी है. शांकरनको सिद्धान्त ये है के सदेहमुक्ति आवरणके दूर होनेके बाद विक्षेपकी अनुवृत्ति है. और विदेहमुक्ति आवरण और विक्षेप दोनोंकी निवृत्तिरूपा मुक्ति है. जो बद्ध हैं उनमें आवरण और विक्षेप दोनों मौजूद हैं. परममुक्ति तो ब्रह्मसायुज्य या एकत्व है. वा स्थितिमें तो वो लोग यहां तक कहे हैं के “अहं ब्रह्मास्मि” भी नहीं रह जायेगो. यदि “अहं ब्रह्मास्मि” मौजूद है तो वो मुमुक्षुको अनुभव है. परममुक्तको अनुभव “अहं ब्रह्मास्मि” हो ही नहीं सके है. “अहं ब्रह्मास्मि” ये ज्ञान ब्रह्मकु नहीं भयो है पर ईश्वरकु भयो है के जो ईश्वर अविद्याकल्पित है. “अविद्याख्या: कामधेनो: वत्सतरौ उभौ, जीवेश्वरौ” ऐसे वो कहे हैं. यासु “एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय” या वचनकु वो ब्रह्मप्रतिपादक वचन नहीं मानें हैं, ईश्वरको प्रतिपादक माने हैं. अविद्यारूपा कामधेनुको एक बछड़ा ईश्वर है और दूसरो बछड़ा जीव है. जीव जब ये जान लेवे के मैं ब्रह्म हूं तो वो मुक्त हो जावे है. पर ईश्वर उनके मतमें ऐसो है के वो जाने है के मैं ब्रह्म हूं तब भी मुक्त नहीं हो पावे है. पता नहीं वो कब मुक्त होयगो. “मैं ब्रह्म हूं” ऐसे भानसु ईश्वर सृष्टि पैदा करे है. और अपनकु जब ये भान होवे है तब सृष्टिको बाध होवे है.

**गो. योगेश :** परममुक्ति और मुक्ति में क्या भेद है?

**गो. श्या. म. :** शांकरनके साथ अपनो मतभेद होते भये भी कई बातनमें अपन एक हैं.

वामें ये भी एक बात है. शांकर माने हैं के मुक्तावस्था भी कोई-न-कोई मिथ्यावस्थाकी कन्टीन्युटी है. जब मुक्ति भी बाधित हो जावे तब परम अवस्था आवे है. ये बात दूसरी दृष्टिसे अपनकु भी मान्य है के मुक्तावस्था भी चरमावस्था नहीं है. क्योंकि मुक्ति भी भगवानकी एक लीलामात्र है. यासु श्रीमहाप्रभुजीने दो तरहकी सृष्टि कही है एक बन्धसृष्टि है और दूसरी मुक्तनकी भी सृष्टि है. तो अपने और शा'रन में अन्तर कितनो पड़यो? उनके यहां बद्ध और मुक्त अवस्था अविद्याकी सृष्टि है और अपने यहां ये दोनों ब्रह्मकी इच्छासे प्रकट भयी सृष्टि है. मुक्तसृष्टि ब्रह्मकी इच्छासे प्रकट भयी सृष्टि है पर वो फाईनल् स्टेज नहीं है. या विषयमें अपन और शा'र एक हैं के मुक्तावस्था अन्तिम अवस्था नहीं है. बन्धनको अन्त है वा अर्थमें अन्तिम है पर सृष्टिके विचारसे वो अन्तिम अवस्था नहीं है. या विषयमें अपनो उनके साथ मतैक्य है. यासु भागवतमें एकादशस्कन्ध मुक्तिलीला है और द्वादशस्कन्ध आश्रयभावापत्ति है. मुक्तिलीलाके बाद आश्रयभावापत्ति अन्तिम अवस्था अपने यहां मानी गयी है. शांकरनके मतकु सरलतासे समझनो होवे तो ऐसे कह सकें के नशा उतरनेके बाद हेंगोवर् रहेतो होवे है. ऐसे संसारको नशा उतरनेके बाद मुक्ति एक प्रकारको हेंगोवर् है. वो स्वास्थ्य नहीं है. ऐसो उनको सिद्धान्त है. यहां अपन और वो एक हो रहे हैं. या लिये ही अपने यहां “मुक्तानाम् आश्रयः कृष्णः” कह्यो है. मुक्ति उपपन्त्य है, अन्तिम अन्त नहीं है.

**असित शाह :** प्रलयमें भी तारतम्य होवे है ?

**गो. श्या. म. :** प्रलय अनेक तरहके होवे हैं. नित्यप्रलय, नैमित्तिकप्रलय, खण्डप्रलय, महाप्रलय...और वैसे देखें तो जितनी भी मुक्ति हैं वो एक तरहको छोटी प्रलय ही तो है! भागवतकार कहे हैं के प्रलय द्रष्टा और दृश्य दोनों एंगलसे होवे है. दृश्य कायम रहे और द्रष्टाको लय होवे और द्रष्टा कायम रहे और दृश्यको लय हो जावे ऐसे दोनों सम्भावनाएं हैं. यासु ब्रह्मकी परिभाषामें “यत्प्रयन्ति अभिसंविशन्ति” कह्यो है. ‘प्रयन्ति’में एक तरहको लय है और ‘अभिसंविशन्ति’में दूसरी तरहको लय है.

**असित शाह :** महाप्रलयके विषयमें सोचें तो वा बखत जीवकी विविधता...

**गो. श्या. म. :** वा बखत जीवकी विविधता लीन हो जायेगी पर अनेकता लीन नहीं होयगी. दूसरे मतनने ‘विविधता’ और ‘अनेकता’ कु पर्याय मान लियो है.

पाराके गोलापे आघात करें तो अनेकता तुरन्त पैदा हो जायेगी पर विविधता नहीं होगी। कई ठिकाने विविधता पैदा होवे पर अनेकता नहीं होवे है। जैसे रसमलाई, रसमलाईमें अनेकता नहीं है पर विविधता होवे है। भीतर खोवा होवे, दूधमें ही डुबोयो जाये, वो फिर दूध पी जाये। तो भीतर, बाहर सब दूध ही दूध है। अनेकता नहीं है पर फिर भी विविधता है। यासु 'विविधता' और 'अनेकता' कु पर्याय नहीं समझनो। याके सूक्ष्म भेदकु नहीं समझनेके कारण घोटाला होवे हैं। “कृत्वा तावन्तम् आत्मानं यावतीर्ब्रजयोषितः”। यहां अनेकता प्रकट भई है, विविधता नहीं है। सबनकु फलात्मक स्वरूप ही अनुभूत भयो है। पर वा फलरूप भगवान्को अनुभव करवेवाली गोपीजन और स्वयं भगवान् के बीच विविधता भी केवल अनेकता नहीं।

**असित शाह :** शांकरनके यहां प्रलयमें ऐसो माने हैं?

**गो. श्या. म. :** उनके यहां तो प्रलय भी मिथ्या है, सृष्टिकी तरह।

**असित शाह :** मिथ्या भले है पर शास्त्रवचनको व्याख्यान करें तब वाकी व्यवस्था...

**गो. श्या. म. :** हां, मिथ्या व्यवस्था दिखावें हैं। प्रलयमें अविद्या तो निरस्त होवे नहीं है। लफड़ा ये है के प्रलय “अहं ब्रह्मास्मि”के ज्ञानसु नहीं होवे है। प्रलय ईश्वरको सोनो है। यासु उने दोनों मॉडल् बताये हैं। एक तो ईश्वरको सपना देखनो सृष्टि है। यासु अपन ईश्वरके स्वप्नको भाग हैं। दूसरी थियरी उनकी ऐसी है के सृष्टि ईश्वरको स्वप्न नहीं है पर सचमुचमें ईश्वरने सृष्टि बनाई है। पर वो ईश्वर खुद मिथ्या है, कल्पित है। कल्पित व्यक्तिकी सृष्टि अकल्पित तो हो नहीं सके है। यासु सृष्टि भी कल्पित है।

**गो. शरद् :** वाल्लभ सिद्धान्तके अनुसार प्रलयकालमें जीवकी नित्यता बनी रहे है ऐसो ऐकान्तिक सिद्धान्त है ?

**गो. श्या. म. :** जीवकी नित्यताके दो मतलब हो सके हैं। एक तो जीवको जीवत्व बन्यो रहनो। यदि जीवको जीवत्व बन्यो भयो है तब तो प्रलय ही नहीं भयो। क्योंकि जीवत्व कहांसु आ रह्यो है?...

**गो. शरद् :** ...जीवत्व मतलब देहाभिमानी रूपमें ...

**गो. श्या. म. :** देहाभिमान नहीं देहधारी के अर्थमें। सूक्ष्मशरीरधारीके अर्थमें जीव...

**गो. शरद् :** ...अपन सेफ कोर्स लेके 'चिदंश' कहें।

**गो. श्या. म. :** चिदंश तो रहेगो ही न. वो तो पारमात्मिक है।

**गो. शरद् :** वाकी अंशरूपता भी रहेगी?

गो. श्या. म. : अंशरूपता कायम रहेगी.

गो. शरद् : तब फिर पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदमें “जीव-देह-कृतीनां च भिन्नत्वं नित्यता श्रुतेः, यथा तद्वत् पुष्टिमार्गेद्वयोरपि निषेधतः” कह्यो है. केवल पुष्टिजीयकेलिये ही नित्यता क्यों कही है, दूसरेनकी क्यों नहीं कही है?

गो. श्या. म. : ये नित्यता तात्त्विकी नित्यता नहीं है. लीलाकी नित्यता है.

गो. शरद् : अपन भी तो महाप्रलकी बात कर रहे हैं. “लयः सर्वसुखावहः” श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं. वा सन्दर्भमें सोचें तो? और सुप्तप्रतिबुद्धन्यायसुं “कल्पादौ विसृजाम्यहम्” दूसरे कल्पमें उनको फिरसु जगनो...पुनः सृष्टि होवे वामें...

गो. श्या. म. : पुनः सृष्टि जीवकी होयगी तो जीव जाको प्रभुने वरण कियो है पुष्टि तरीके...अब ‘जीव’ मत कहो ‘चिदंश’ कहो. तो सबसु पहलो मेटाफिसिकल् ईश्यु ये है के वरण जीवको हो रह्या है के चिदंशको. जब तक आनन्दांश प्रकट है तब तक तो वरणको प्रश्न ही नहीं उठे है. क्योंके ब्रह्मभावापन्न है. आज भी आनन्दांशके आविर्भावसु ब्रह्मभावापन्नता आ रही है. आनन्दके तिरोधानके बाद निराकारता आवे है. निराकारताके कारण वापे अविद्याको प्रभाव पड़े है. वाके कारण वामें पञ्चविध अध्यास पैदा होवे हैं. या जंकचरपे प्रभु वाको वरण करे हैं के याके अध्यासकु मैं अपनी भक्तिकेलिये वापरूंगो, याके अध्यासकु मर्यादाफल देवेकेलिये वापरूंगो और याके अध्यासकु मैं न भक्तिकेलिये वापरूंगो और न मर्यादाकेलिये वापरूंगो पर “सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा” सृष्टिकेलिये वापरूंगो. तो वरण तो कोम्प्लेक्स फेक्टर् है, सिम्पल नहीं है. जहां सिम्पल् फेक्टर् है वहां वरण नहीं है. वहां तो सब कुछ ब्रह्म ही है.

गो. शरद् : पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदमें “भिन्नत्वं नित्यता श्रुतेः”की व्याख्या श्रीपुरुषोत्तमजीने अलग तरहसु करी है.

गो. श्या. म. : मूल मुद्दा वामें समझनेको ये है के जा बखत चिदंश जीवभावापन्न होवे है तब जीवको वरण है. ...एक बात समझो के “नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन, यमेव एष वृणुते तेन लभ्यः”. यमेव. कम्? आनन्दांशं, चिदंशं, जीवभावापन्नं? कं यमेव? याको खुलासा करेंगे तो सारी बात स्पष्ट हो जायेगी.

असित शाह : जाकु अलभ्य है वाकेलिये ये वचन प्रसक्त होयगो. आनन्द जामें प्रकट

ही है...

**गो. श्या. म. :** ...आनन्दात्मक व्युच्चरण भयो है वा अंशमें तो वरणको प्रश्न ही नहीं उठ रह्यो है. आनन्दांशके तिरोधानके बाद भी जीव तो सबके सब समान हैं. भेद आ रह्यो है जीवभावापत्ति. याकु ऐसे समझवेको प्रयास करो. होलीमें ठाकुरजीके सन्मुख गणपति, महादेवजी, भूत-प्रेत, ऋषि, ब्रह्माजी आदिके स्वांग धारण किये जाय हैं. इन सबनके मेकपको सामान जटा-दाढी-मुखौटा-माला-वस्त्रादि अपने यहां भर्योरहे है. होलीमें निकलतो. मेकप पहनेनेवाले बदलते रहते.

**गो. शरद् :** आत्यन्तिक प्रलयमें भी ऐसो ही होवे है?

**गो. श्या. म.:** आत्यन्तिक प्रलयमें भी ये ही बात है. अन्तर इतनो पड़ेगो के आत्यन्तिक प्रलयमें मेकअप्की सामग्री भी प्रलीन हो जायेगी और मेकप पहनेनेवालो एक्टर भी बदल जायेगो. पर साथ-साथ प्रभुके भीतर उनके कन्सेप्ट लीन नहीं होवे हैं. कन्सेप्ट मौजूद रहे हैं. ब्रह्माजीकु सृष्टि करवेकी आज्ञा दी और जब ब्रह्माजीकु कैसी सृष्टि बनानी वो समझमें नहीं आयो तब प्रभुने सृष्टिकी ब्ल्युप्रिंट ब्रह्माजीकु दिखाई. या अर्थमें अपन उनकु नित्य माने हैं. नित्यको मतलब ये नहीं है के मेकप पहनेनेवालो एक्टर खुद नित्य है. महाप्रलयमें तो वो भी प्रलीन हो जायेगो.

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** नित्यलीला भी वहां स्टोप् हा जायेगी? क्योंकि श्रीकृष्णकु अपन परब्रह्म माने हैं. उनकी लीला भी नित्य है.

**गो. श्या. म.:** नित्यताके दो अर्थ होवे हैं. कालिकी नित्यता और स्वरूपात्मिका नित्यता. अपन कालिकी नित्यता समझके कफ्युज़्ड हैं. कालिकी नित्यता तो अपने यहां अनित्यताको ही कोई प्रकार है, देवामरन्यायसुं. स्वरूपात्मिका नित्यता जाकु आश्रयभावापत्ति कह रहे हैं वामें तो प्रभुमें सब कछु है ही. प्रभुके श्रीअङ्गमें मैं और तू भी हैं. क्योंकि यदि प्रभुमें स्वरूपत्मिका नित्यता नहीं होवे तो ये सृष्टि प्रकट ही नहीं हो सके है. तब तो असतः सद् जायेत हो जायेगो.

**गो. शरद् :** भाष्यमें या सन्दर्भमें उपपत्तिपक्ष और उत्पत्तिपक्ष को विचार है. वहां ये विचार भयो है के जीवात्माकु उच्च-नीच भाव कैसे होवे है. उच्च-नीच कर्मसु होवे है ऐसो कहें तो सृष्टिमें प्रथम जन्म जब होवे है तब तो उनके पूर्व कर्म कछु भी नहीं होवे हैं! तो ये कह्यो है के पूर्वकल्पके कर्मनको अनुशय

માનનો. યાકુ કૈસે સમઝનો ?

**ગો. શ્યા. મ. :** કન્સેપ્ટ્યુઅલ્ અર્થમેં, એક્ચ્યુઅલ્ અર્થમેં નહીં. આજકી શબ્દાવલીમેં કહેં તો વો વર્ચ્યુઅલ્ હૈં, એક્ચ્યુઅલ્ નહીં હૈં. હર એક્ચ્યુઅલ્ રિયાલિટિકે કોરોસ્પોન્ડિંગ એક વર્ચ્યુઅલ્ રિયાલિટિ હોવે હૈ. જૈસે દો તરહકી એ-બી-સી-ડી હોવે હૈ. સ્મોલ્ એ - કેપિટલ્ એ, સ્મોલ્ બી - કેપિટલ્ બી. સ્ક્રિપ્ટોલોજિકે હિસાબસુ રનિંગ આલ્ફાબેટ્ ગ્રીક હૈ ઓર કેપિટલ્ આલ્ફાબેટ્ રોમન્ હૈ. દોનોમેં એ ટુ ઝેડ્ હૈ. અપન દોનોંકુ એક માને હૈં. ક્યોં એક માને હૈં ? ક્યોંકે દોનોં આલ્ફાબેટ્કે કોરોસ્પોન્ડિંગ એક વર્ચ્યુઅલ્ કેરેક્ટર્ અપનને અપને દિમાગમેં બના રખ્યો હૈ કે ‘એ’ રોમન્ બી હો સકે હૈ ઓર ગ્રીક બી હો સકે હૈ. તો જૈસે અપને દિમાગમેં વર્ચ્યુઅલ્ ‘એ’ બન જાવે હૈ એસે કમ્પ્યુટર્ બી હર વસ્તુકી એક વર્ચ્યુઅલ્ રિયાલિટિ જનરેટ્ કરે હૈ. ‘વર્ચ્યુ’ માને ગુણ. વામેં ગુણ સારે વો-કે-વો હી હૈં. જૈસે “ક્રિયા સર્વાપિ સૈવાત્ર પરં કામો ન વિદ્યતે” હૈ એસે હી “ગુણાઃ સર્વેઽપિ તેવ પરં દ્રવ્યં ન વિદ્યતે”. પ્રભુમેં વર્ચ્યુઅલિ સબ હૈં પર એક્ચ્યુઅલિ નહીં હૈં. ક્યોંકે નહીં તો તો પ્રભુમેં કર્તૃત્વ હી નહીં આયેગો, કારણત્વ નહીં આયેગો.

**જયેન્દ્ર શાહ :** જ્યારે જીવોનું વ્યુચ્ચરણ થાય છે તે વખતે શુદ્ધ અવસ્થા હોય છે. અવિદ્યાના સંસર્ગ પહેલા વરણ કે તે પછી વરણ.

**ગો. શ્યા. મ. :** ‘શુદ્ધ’ના બે અર્થ અહીં હોઈ શકે છે. એક અર્થ અમિશ્રિત અને બીજો અર્થ મુખ્ય. બ્રહ્મનું જે મૂળ રૂપ છે તે રૂપમાં શુદ્ધ છે. જેને શ્રીમહાપ્રભુજી “સ્વરૂપસ્થો યદા જીવઃ કૃતાર્થઃ સ નિગદ્યતે” થી કવર્ કરે છે. તેથી એકંદરે જીવના બે શુદ્ધ રૂપો થયા : ૧.આધિદૈવિક શુદ્ધ સ્વરૂપ અને ૨.આધ્યાત્મિક શુદ્ધ સ્વરૂપ. પહેલું શુદ્ધ સ્વરૂપ જીવનું સચ્ચિદાનન્દાત્મક છે જ્યારે બીજું કેવલ સચ્ચિદાત્મક છે. આ બન્ને સ્વરૂપો શુદ્ધ છે. પહેલામાં આનન્દ પણ પ્રકટ છે તેથી તે અક્ષરાત્મક છે. એમાં જ્યારે આનન્દાંશ તિરોહિત થયો એટલે એ ચિદંશ બન્યો. તે પછી એને અવિદ્યાનો સંસર્ગ થાય. તે વખતે અનું વરણ થાય છે. કેમકે એ વખતે એને કોઈ રોલ્ એસ્કાઈબ્ કરવામાં આવી રહ્યો છે.

**જયેન્દ્ર શાહ :** પણ ફળનો નિર્ણય...પહેલા વરણ કરે કે કયા જીવને કયું ફળ આપવું છે તદનુસાર શુદ્ધપુષ્ટિ કે મિશ્રપુષ્ટિ...

**ગો. શ્યા. મ. :** જ્યારે તમે ‘જીવ’ કહી રહ્યા છો ત્યારે જ તમે સ્વીકારી લીધું. કેમકે બ્રાહ્મિકી અવસ્થામાં તો જીવભાવ છે જ નહીં. ત્યારે તો અજીવ છે. તે વખતે વરણ નથી. વરણ ત્યારે થાય કે જ્યારે જીવભાવાપન્ન થાય.

**જયેન્દ્ર શાહ :** ફળનો નિર્ણય બ્રહ્મ કયા સ્ટેજ ઉપર કરે ?

**ગો. શ્યા. મ.:** જીવભાવાપત્તિ વખતે. જ્યાં સુધી એ ચિદંશ છે ત્યાં સુધી પણ એનું વરણ નથી. કેમકે ચિદંશની અવસ્થા સુધી પ્રવાહી-પુષ્ટિ-મર્યાદા જીવ એકદમ અક્ષરાત્મક છે. એ અક્ષરાત્મક ચિદંશને પોતાનું ધામ બનાવીને ધામી તરીકે પુરુષોત્તમ બિરાજે છે. “તદ્ધામ પરમં મમ” એ તો ધામ છે, જીવ છે જ નહીં.

**જયેન્દ્ર શાહ :** હું જીવના વ્યુચ્ચરણની વાત કરી રહ્યો છું.

**ગો. શ્યા. મ.:** વ્યુચ્ચરણ તો આનન્દાંશનો થાય છે.

**જયેન્દ્ર શાહ :** સત્-ચિત્ પણ ખરું ને!

**ગો. શ્યા. મ.:** આનન્દાંશના તિરોધાનથી સદંશતા અને ચિદંશતા આવે છે. આગમાંથી આગ જ ઝરે, પૃથ્વી ન ઝરે. આગ જ્યારે ઓલવાઈ જાય તે પછી તે આગ ન રહી જાય. તેમ બ્રહ્મ સચ્ચિદાનન્દાત્મક હોવાથી બ્રહ્મમાંથી તો સચ્ચિદાનન્દના આણુઓ જ ઝરે છે. એમાં કોઈક આણુમાંથી આનન્દનો તિરોધાન થાય છે. તે ચિદંશ કહેવાય છે. જેમાં ચિત્ અને આનન્દ બન્નેનો તિરોધાન થાય છે તે સદંશ કહેવાય છે. ચિદંશમાં આનન્દનો તિરોધાન થવાથી એમાં ઐશ્વર્ય યશ શ્રી જ્ઞાન વીર્ય વૈરાગ્ય નો પણ તિરોધાન થાય છે. એ કારણે એને અવિદ્યા વળગી શકે છે. અવિદ્યા વળગે તે વખતે એને મેકઅપ્ આપવામાં આવે છે.

**જયેન્દ્ર શાહ :** અવિદ્યાગ્રસ્ત થાય ત્યારે વરણ થાય.

**ગો. શ્યા. મ.:** એ સાયૂમલ્ટેનિયસ પ્રોસેસ છે. એટલે જીવનું વરણ થાય છે, ચિદંશનું વરણ નથી થતું. કેમકે એ તો અક્ષરાત્મક છે. તેથી જ જીવને જ્યાં-જ્યાં અક્ષર કહેવામાં આવ્યો છે ત્યાં એ જ અર્થ લેવો જોઈએ. જીવભાવાપન્ન અક્ષર નથી પણ જીવભાવથી અતીત ચિદંશ અક્ષરાત્મક છે. આપણામાં ત્રણ તત્ત્વ કામ કરી રહ્યા છે: આધિદૈવિક, આધ્યાત્મિક અને આધિભૌતિક. આધિદૈવિક રીતે આપણે સચ્ચિદાનન્દ બ્રહ્મ પુરુષોત્તમ છીએ. આધ્યાત્મિક રીતે આપણે અક્ષરબ્રહ્માત્મક છીએ. આધિભૌતિક અને આધ્યાત્મિક વચ્ચે પણ એક બફર સ્ટેટ છે શ્રીમહાપ્રભુજીના હિંસાબે. હાડ-માંસના મનુષ્યની આપણી સ્થિતિ આધિભૌતિક છે. પણ સૂક્ષ્મશરીર-વિશિષ્ટ જીવ પ્રાકૃત છે પણ આધિભૌતિક નથી. પ્રકૃત્યુદ્ભૂત છે પણ પ્રાકૃતભૂતોદ્ભૂત નથી. આ વચ્ચેની અવસ્થા છે. આમ કુલ ચાર અવસ્થા છે : આધિભૌતિક, આધિપ્રાકૃત, આધ્યાત્મિક અને આધિદૈવિક.

**જયેન્દ્ર શાહ :** પણ શરીર તો જીવનું આધિભૌતિક સ્વરૂપ કહેવાય ને?

**ગો. શ્યા. મ.:** આ દેહમાં આપણે આધિભૌતિક થઈ ગયા. સૂક્ષ્મશરીરમાં આવ્યા ત્યારે આધિપ્રાકૃત થયા. એના પહેલા આપણે આધ્યાત્મિક ચિદંશરૂપે હતા. અને એનું મૂળ આધિદૈવિક રૂપ છે.

**ગો. શરદ્ :** દેવતાનુકે દેહ મ્હી આધિપ્રાકૃત હૈ.

गो. श्या. म.: प्राकृत हैं पर भौतिक नहीं हैं.

गो. मनोज : ब्राह्मिकी और आधिदैविक में क्या आन्तर है?

गो. श्या. म.: अपनी अभीकी अवस्था भी ब्राह्मिकी ही है. ब्रह्मको मतलब ही ये है के जो अधिभूत, अध्यात्म और अधिभूत तीनोंमें जो कायम होवे वो. मैं अक्सर एक बात कहूं हूं के परमात्मा या परमेश्वर दुनियाके प्रायः सभी धर्मनने मान्यो है. यहूदी, मुसलमान, क्रिश्चियन सबने परमेश्वर मान्यो है. पर उनने ब्रह्म नहीं मान्यो है. ब्रह्म केवल अपने वैदिक दर्शनकी ही विशेषता है. अपने यहां परमेश्वर ब्रह्मको एक पक्ष है. वेदको दर्शन छोड़ें तो ओर सारे दर्शन अब्राहमिक हैं. दोनों अर्थमें अब्राहमिक हैं. एक तो अब्राहमके उपदेशसुं प्रवृत्त भये हैं वाके कारण अब्राहमिक हैं और ब्रह्मकु नहीं स्वीकारे हैं वाके कारण भी अब्राहमिक हैं.

परेश शाह : फलकी विविधता वरणके समय निश्चित होवे है के जीव जैसे साधन करे वापे डिपेंड करे है?

गो. श्या. म. : श्रीगुसांईजीने वादके मूडमें ये सिद्ध कर दियो के सब कछु नित्य है. अनित्य कुछ भी नहीं है. मेजर डीटेईल् नहीं माईन्युटेस्ट डीटेईल् नित्य है. रमण महर्षिके सामने कोई अंग्रेज स्कॉलरने पूछ्यो के “यः कल्पः सः कल्पः पूर्वः” ये आपको सिद्धान्त है ये तो समझमें आवे है. पर क्या आप ये कहनो चाहो हो के मेरे और आपके बीचके संवाद भी पिछले कल्पमें हते? जो मैं आपसु अभी पूछ रह्यो हूं वो क्या मैने पिछले कल्पमें भी पूछ्यो हतो? रमण महर्षिने जवाब दियो के हां, पूछ्यो हतो. और ये ही जवाब मैने तोकु गये कल्पमें भी दियो हतो. अपने यहां भी या तरहकी दादागिरि है. पर या कन्सेप्टकी डिफिकल्टि ये है के यदि या तरहसु हर बात नियत है तो सृष्टिकी लीलात्मकता नहीं रहे है. सृष्टि यान्त्रिक बन जावे है. लीलाको सिद्धान्त अपन अपने एंगलसु कहे हैं, ब्रह्मकी दृष्टिसु कर्तुम्-अकर्तुम्-अन्यथाकर्तुं सामर्थ्य वामें है. जो वाने नियत कियो है वाकु यदि वो अन्यथा नहीं कर सके है तो वाके कर्तृत्वमें क्षति आयेगी. पर वाके अन्यथाकर्तुं सामर्थ्यकु अपन जान नहीं रहे हैं, अपने सामने तो वाको कर्तुं सामर्थ्य प्रकट भयो है. वो अपने लिये पूर्वनियत है. अपनकु जो दीख रह्यो है वोही वाकु दीख रह्या है ऐसो कोई दावा करे तो वो सच नहीं है. वाको तो सामर्थ्य अक्षुण्ण है. पर कोई अब्राहमिकता दिखानेकेलिये वाद करे तो श्रीगुसांईजीने भी कह दियो है के



सब कछु नित्य है. रमण महर्षिके मूडमें श्रीगुसांईजी भी यों कहनो चाहेंगे के तुम्हारी मूर्खता भी नित्य है और हमारो समाधान भी नित्य है.

**जयेन्द्र शाह :** “यमेवैष वृणुते” ओ सन्दर्भमां इण ब्रह्मनुं प्रेरोगेटिव् छे. ओटवे कोने शुं इण आपवुं तदनुसार ओनी पासे ओना साधन करावे छे. ओटवे इणनो निशुपि वरण्ण वज्जते ४ थई ग्राय ने!

**गो. श्या. म. :** छः.

**जयेन्द्र शाह :** ओटवे ७ इण आपवुं छे तदनुसार ओनुं वरण्ण थाय ओने तदनुसार...

**गो. श्या. म. :** भाष्यमां कछुं ४ छे.

**हितेन्द्र शाह :** मुक्तिको तारतम्य समझमें आयो. याकु पुष्टिमार्गीय फलकी विचारगोष्ठीमें बेजपेपरके रूपमें कैसे समझनो वापे आप थोड़ो प्रकाश डालो.

**गो. श्या. म. :** यद्यपि भक्तितारतम्यनिर्णय यहां श्रीगुसांईजीने कियो नहीं है पर भक्तिहंस और भक्तिहेतुनिर्णय में श्रीगुसांईजीने कियो है. और भक्तिकु अपने यहां मुक्तिस्थानीय नहीं मान्यो है, पञ्चम पुरुषार्थ मान्यो है, अबाउ द भक्ति मान्यो है. पर सवाल ये है के भक्ति मुक्तिसु अतीत है के मुक्त्यन्तःपाति है. भक्तिको सबक्लास् मुक्ति है के मुक्तिको सबक्लास् भक्ति है. भक्तिके साथ मुक्तिके सभी तरहके सम्बन्ध हो सके हैं. कोई रूपमें भक्ति मुक्तिको पार्द हो जायेगी. कोई रूपमें मुक्ति भक्तिको पार्द हो जायेगी. कोई ठिकाने दोनों बिलकुल अलग हो जायेंगे. कोई ठिकाने दोनोंके इंटरैक्शन बनैंगे. पर उन सबके पीछे अपने शुद्धाद्वैतको मॉडल् के एक सर्कलके भीतर दोनों रह सके हैं. विरुद्धधर्माश्रय होनेके कारण ब्रह्ममें ये दोनों सम्भावनाएं रही भयी हैं के वो मुक्तिकु भक्त्यात्मिका बना सके और भक्तिकु मुक्त्यात्मिका बना सके. भक्ति संसारात्मिका भी हो सके है. ब्रह्मभावापन्न होवेके करते तो संसार अच्छो. क्योंके मुक्त तो केवल आत्मासु ही आनन्दको अनुभव करे है. और भक्त तो सकलेन्द्रिय, कुटुम्ब, घर सहित भजनानन्दको अनुभव करे है. यासु भक्ति संसारात्मिका भी हो सके है, संसारातीत भी हो सके है, मुक्त्यात्मिका भी हो सके है, मुक्त्यतीत भी हो सके है. अपनो ये मॉडल् है. जामें वो सब मॉड जामें वो सब मॉडल् समाविष्ट हो सके हैं. भक्तिके अनेक मॉडल् तृतीयस्कन्ध सुबोधिनीमें बताये हैं. भक्तिहंस-भक्तिहेतुनिर्णयमें श्रीगुसांईजीने बताये हैं.



श्रीकृष्णाय नमः  
श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः

## ब्रह्मसूत्राणुभाष्यमें पुष्टिफल

गोस्वामी शरद्

### उपक्रम

वैदिक सिद्धान्तानुसार जड-जीवात्मिका इस समग्र सृष्टिमें तत्त्व एकमेव ब्रह्म ही है<sup>१</sup>. अतः वैदिक उत्तमाधिकारी तत्त्वबुभुत्सुको उस ब्रह्म-तत्त्वकी ही जिज्ञासा करनी चाहिये. ब्रह्मसूत्रका आरम्भ भी अतएव ब्रह्मजिज्ञासाके साथ होता ही है<sup>२</sup>. महर्षी वेदव्यासने इस चतुर्लक्षणी ब्रह्ममीमांसामें ब्रह्म विषयक प्रमाण, प्रमेय, साधन और फल विषयक वेदान्तसिद्धान्तका निरूपण किया है.

प्रथमाध्यायमें वेदान्तमें उपलब्ध होते कार्यके प्रतिपादक, अन्तर्यामीका प्रतिपादन करनेवाले, उपास्य रूपोंका निरूपण करनेवाले तथा प्रकीर्ण वाक्योंमें तथा उन वाक्योंमें प्रयुक्त 'आकाश' 'दहर' 'प्राण' 'आयतन' आदि शब्दोंमें होनेवाले सन्देहोंका निराकरण करके यह प्रतिपादन किया गया है कि सभी वेदान्तवाक्य ब्रह्ममें ही समन्वित होते हैं. अतः इस अध्यायको 'समन्वयाध्याय' भी कहा जाता है. इसे 'प्रमाणाध्याय' भी कहा जाता है क्योंकि वेदही ब्रह्मके विषयमें प्रमाण है यह इसमें सिद्ध किया गया है.

ब्रह्मसूत्रका दूसरा अध्याय 'अविरोधाध्याय' नामसे जाना जाता है. पूर्वाध्यायमें सभी श्रुतिओंका ब्रह्ममें जो समन्वय सिद्ध किया गया उसको स्थिर करनेकेलिये श्रुतिओंमें परस्पर विरोधका परिहार करते हुवे श्रुतिविरोधी स्मार्त मत तथा सांख्य, न्याय, बौद्ध, जैन आदि अन्य मतोंका भी निराकरण करके यह सिद्ध किया गया है कि प्रमेय तो एकमेव ब्रह्म ही है.

तृतीय अध्यायमें ब्रह्मप्राप्तिके अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग साधनोंका उनके उपकरणों सहित विचार किया गया है अतः इसे 'साधनाध्याय' कहा जाता है.

चतुर्थाध्यायमें अवसरप्राप्त फलका निरूपण किया गया है अतः इसे 'फलाध्याय' भी कहा जाता है. इस अध्यायमें कर्मक्षयका प्रकार, सद्योमुक्ति-क्रममुक्तिका प्रकार, सद्योमुक्तिमें सूक्ष्मशरीरके त्यागका प्रकार, क्रममुक्तिमें जीवके

निर्गमनके द्वार आदिका निरूपण, ब्रह्मप्राप्तिके विभिन्न मार्ग, ब्रह्मलोक-ब्रह्म-ब्रह्मप्राप्तिका स्वरूप, सद्योमुक्तिमें ज्ञानमार्गी-भक्तिमार्गीको प्राप्य अक्षर-पुरुषोत्तमकी प्राप्तिरूप फलोंका उल्लेख, पुष्टिमार्गीय नित्यलीलानुभवरूपी फल, लीलानुभवके उपकरणरूप शरीर, परब्रह्मका अप्राकृत स्वरूप, उसके अनुभवका प्रकार आदि विषयोंका निरूपण किया गया है।

### ‘फल’का सामान्य अर्थ :

शास्त्रमें ‘फल’ शब्दका प्रयोग आनन्द, रस, सुख, काम, अपुनरावृत्ति, अमृतत्व, मुक्ति, साक्षात्कार, स्वर्ग, पुरुषार्थ जैसे अनेक अर्थोंमें किया जाता है। शास्त्र जब फलकेलिये इन शब्दोंका प्रयोग करता है तब उनका अर्थ शास्त्रीय सन्दर्भमें सुपरिभाषित होता है। ‘फल’ शब्दका प्रयोग, परन्तु, लौकिक बोल-चालमें भी होता है। लोकव्यवहारमें उसका प्रयोग सामान्यतया आम्रादि वृक्षफल/बीजकोश, कर्मजन्य सुख-दुःखादि, प्रयोजन-उद्देश्य, कर्मपरिणाम, सिद्धि, भोग इत्यादि अर्थोंमें होता है। प्रथम अर्थको छोड़ दिया जाय तो शेष अर्थोंके सम्बन्धमें ‘न्यायकोश’कारने न्याय-व्याकरण-मीमांसा दर्शनोके फलविषयक वचनोंका सङ्कलन किया है :

**जन्य** = “जन्यत्वम्. यथा घटजन्यो घटध्वंसः”.

**उद्देश्य** = “प्रवृत्त्युद्देश्यत्वम्. यथा मङ्गलस्य विघ्नध्वंसः”.

**प्रयोजन** = “स्वकर्तव्यताप्रयोजकेच्छाविषयत्वम्. यथा स्वर्गार्थयागकर्तव्यताप्रयोजक-स्वर्गेच्छाविषयत्वेन स्वर्गो यागफलं भवति”.

**परिणाम** = “क्रियाजन्यफलशालित्वं कर्मत्वम्. यथा “ग्रामं गच्छति” इत्यादौ उत्तरदेशसंयोगः फलम्”.

**सिद्धि** = “यस्यार्थस्य प्रसिद्ध्यर्थम् आरभ्यन्ते पचादयः, तत् प्रधानं फलं तेषां न लाभानिः प्रयोजनम्” (भर्तृ.) यथा पाकादिजन्यं भोजनं फलं, यागादिजन्यं पुण्यं फलं, न वेतनादिरूपम्.

**भोग** = भोगः, सुख-दुःखान्यतरसाक्षात्कारः. (तर्कभाषा)

उपर्युक्त सभी अर्थ फलके सभी प्रकारोंसे सङ्गत न भी होते हों फिर भी फलके भिन्न-भिन्न पक्षोंको उजागर अवश्य करते हैं। प्रकृत सन्दर्भमें फलके स्वरूपका निरूपण आगे जा कर किया जायेगा।

### फलके प्रकार :

फलके स्वरूपका विचार करनेके अनन्तर शास्त्रमें उपलब्ध होते फलके अधोलिखित प्रकार भी प्रसङ्गवश देख लेने चाहिये.

**मुख्यफल :** “सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा” “मानसी सा परामता”

**गौण :** “स एको ब्रह्मण आनन्दः” “उभयोरप्यभावे तु पापनाशस्ततो भवेत्”  
“अन्तवत्तु फलं तेषाम्”

**चरमफल :** “मद्भक्ता यान्ति मामपि”

**अवान्तर/मध्यपाति फल :** “ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम्”

**आधिभौतिक :** धन-पशु-पुत्रादि

**आध्यात्मिक :** स्वर्ग-मोक्ष

**आधिदैविक :** भगवत्प्राप्ति

**अन्तरङ्ग (तर-तम) :** भगवत्प्राप्ति, मानसी-सेवोपयोगिदेहाप्ति

**बहिरङ्ग (तर-तम) :** ब्रह्मोद-संसारदुःखनिवृत्ति

**जीवत्फल :** “शुचीनां श्रीमतां गेहे” “युवा स्यात् साधुयुवाध्यायकः...  
स एको मानुष आनन्दः”

**देहपातानन्तर :** “न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं” “ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकम्  
अश्नन्ति दिव्यान् दिविदेवभोगान्”

**इहलौकिक :** “न सार्वभौमं न रसाधिपत्यं न योगसिद्धिः”

“अत्युग्रपुण्यपापानाम् इहैव फलमश्नुते”

**पारलौकिक :** “ते ये शतं देवगन्धारवाणाम् आनन्दाः.

स एक चिरलोकलोकानामानन्दः”

**अलौकिक / लोकोत्तर :** “सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा”

**अभिलषित :** “यच्च दुःखं यशोदायाः....मे मनसि क्वचित्!”

**नियत :** “मूलेच्छातः फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेपि च, कायेन तु फलं पुष्टै”,  
“क्षिपाम्यजस्रम् अशुभान् ... ततो यान्त्यधमां गतिम्”.

अनभिलषित नियत : “पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रिया”

“ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम्”

अभिलषित नियत : “ते प्राप्नुवन्ति मामेव”

अनियत अनभिलषित : “दीयमानं न गृह्णन्ति”

अनियत अभिलषित : “फलं वा ह्यधिकारो वा”

जीवप्रयत्न/प्रमाण-साधन साध्य : “ये यथा मां प्रपद्यन्ते”

भगवत्प्रयत्नलब्ध-प्रमेय-कृपैक साध्य : “यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः”

अनिष्टनिवृत्तिरूप : “अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि”

इष्टप्राप्तिरूप : “योग-क्षेमं वहाम्यहम्”

मिश्र : “अनिष्टम् इष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्”

इस आलेखका प्रमुख विषय ब्रह्मसूत्रमें हुवे पुष्टिफल विषयक विचारका निरूपण करना है. अतः सर्वप्रथम ब्रह्मवादके परिप्रेक्ष्यमें फलका स्वरूप विवेच्य बनता है.

### ब्रह्मवादके परिप्रेक्ष्यमें फल :

रमणार्थसृष्टि : सृष्टि प्रक्रियाका वर्णन करते हुवे वेद कहता है : “पहले पुरुषविध आत्मा ही था. अनुवीक्षण करनेपर उसने अपने अतिरिक्त ओर किसीको नहीं पाया. ... वह रममाण नहीं हुवा”. “उसने ईक्षण किया ‘मैं बहुत हो जाऊं’ ”. “जिस तरह मकड़ी अपनी लारके तन्तुओंके सहार ऊपर जाती है तथा जैसे अग्निमेंसे छोटी-छोटी चिनगारियां निकलती हैं उसी तरह इस आत्मामेंसे सभी प्राण, सभी लोक, सभी देवगण और सभी प्राणी प्रकट होते हैं”. “इस तत्त्वको ‘अक्षर’ कहते हैं... इस अक्षरके ही प्रशासनमें सूर्य चन्द्रमा द्युलोक पृथिवी निमेष मुहूर्त अहोरात्र पक्ष मास ऋतु संवत्सर आदि स्थित रहते हैं”<sup>३</sup>.

अतएव वेदान्तसिद्धान्तानुसार सृष्टि ब्रह्मकी क्रीड़ा है<sup>४</sup>, एकमेव ब्रह्म ही समग्र सृष्टिको बनानेवाला-कर्ता है और वह स्वयं सृष्टिरूपसे बनता भी है. इस तरह परब्रह्म ही सृष्टिकर्ताके रूपमें पुरुषोत्तम-कृष्ण और सृष्टिकारणके रूपमें अक्षर रूपोंको धारण करता है.

उसी तत्त्वका एक अन्तर्यामी रूप समग्र सृष्टिमें समष्टि-व्यष्टि भेदसे रहता है.

सृष्टिमें आविर्भूत ब्रह्मके जीव-जड रूपोंमें तो यथाक्रम आनन्द और चिदानन्द तिरोहित होते हैं किन्तु सृष्टिके भीतर रह कर उसका नियमन करनेवाला ब्रह्मका अन्तर्यामी स्वरूप पुरुषोत्तम-अक्षरकी ही तरह प्रकट आनन्दस्वरूप होता है. “वह पृथिवीमें रहनेवाला पृथिवीके भीतर है, जिसे पृथिवी नहीं जानती, जिसका पृथिवी शरीर है और जो भीतर रहकर पृथिवीका नियमन करता है वह अन्तर्यामी है”. “वह सबको अपने वशमें रखनेवाला सर्वनियामक है. वह सभी भूतोंका अन्तरात्मा है”. “इस देहमें वह उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता, महेश्वर और परमात्मा कहा जानेवाला श्रेष्ठ पुरुष है”<sup>५</sup>.

इस तरह एक ही तत्त्व सारथी, रथी और तदन्तःस्थित की तरह पुरुषोत्तम-कृष्ण, अक्षर और अन्तर्यामी के भेदसे सृष्टिकालमें व्यवहार करता है<sup>६</sup>.

आनन्दतिरोधान : इस लीलासृष्टिमें क्रीडा तो प्रमुखतः परब्रह्म और जीवात्मा के बीच ही होती है. परब्रह्म अनन्त है, आनन्दनिधि है. जीव ब्रह्मका ही अणुपरिमाण अंश है<sup>७</sup>. परन्तु भगवदिच्छासे जीवमेंसे ब्राह्मिक आनन्द अंशका तिरोधान हो जाता है. क्रीडाका आरम्भ यहींसे होता है. आनन्दको खो देनेके कारण जीवात्मामें उसके ब्राह्मिक स्वरूपके विपरीत पराधीनता, दुःखोंको सहना, हीनता, जन्म-मरणादि आपत्तिको सहना, देहादिमें अहंबुद्धि, विषयासक्ति आदि दुर्भाव भर जाते हैं<sup>८</sup>. अतएव वह ‘काममय’ बन जाता है. आनन्दके तिरोधानवश जीवात्माके भीतर आया खालीपन उसको खोये हुवे आनन्दकी पुनः प्राप्तिकेलिये निरन्तर उकसाता रहता है. जीवात्मा अपने खोये हुवे आनन्दको जब तक पुनः प्राप्त कर नहीं लेती है तब तक उसके साथ परब्रह्मकी सृष्टिक्रीडा चलती रहती है. आनन्दप्रप्तिके अनन्तर या तो वह जीवात्मा परब्रह्मकी नित्यक्रीडामें प्रवेश पा लेती है जहां परब्रह्म प्रकटानन्दधर्मा सदा मुक्त जीवोंके साथ नित्यालीलारत होते हैं, या परब्रह्ममें प्रवेश करती है, या फिर उसका अपने कारणरूप अक्षरमें विलय हो जाता है. इस तरह आनन्दके तिरोधानसे आरब्ध हुई सृष्टिक्रीडा आनन्दके पुनः आविर्भाव पर सम्पन्न होती है. अतः तत्त्वविचारसे आनन्दकी प्राप्ति ही फल है.

### आनन्द :

आनन्दमयाधिकरणमें तथा “आनन्दादयः प्रधानस्य” (ब्रह्मसू. ३।३।११) में यह सिद्ध किया गया है कि आनन्द ब्रह्मका स्वरूप है. सृष्टिके बखत इनका धर्मात्मक रूप भी प्रकट होता है. स्वरूपात्मक और धर्मात्मक आनन्द भी पुनः आधिदैविक-

आध्यात्मिक-आधिभौतिक भेदसे तीन-तीन तरहके होते हैं. इसे नीचे दी गई तालिकासे समझा जा सकता है.

स्वरूपात्मक सच्चिदानन्द

१. आधिदैविक - भगवान् पुरुषोत्तम
२. आध्यात्मिक - अक्षर
३. आधिभौतिक - क्षर प्रथम पुरुष

धर्मात्मक सच्चिदानन्द

१. आधिदैविक - लीलापरिकर
२. आध्यात्मिक - वैकुण्ठादिपरिकर
३. आधिभौतिक :

- + सदंशात्मक - २८ तत्त्वनिष्ठ
- + चिदंशात्मक - तत्त्वनिष्ठ ज्ञान
- + आनन्दांशात्मक - तत्त्वनिष्ठ सुख

(तत्त्वार्थदी.नि. २ । २८८, ८९ आवरणभङ्ग)

लोक-परलोकमें जीवात्माको जो सुख-दुःखाभाव-दुःखका अनुभव होता है वह स्वरूपात्मक और/अथवा धर्मात्मक आनन्द के आविर्भाव-तिरोभावके कारण ही होता है. इसे अधोलिखित प्रकारसे समझा जा सकता है :

**सुख :**

स्वरूपात्मक आनन्दका सर्वथा उद्भव होने पर 'सुख' होता है.

१. सर्वथा उद्भूत (भगवान् पुरुषोत्तम)
२. अधिक आविर्भाव (अक्षर)
३. ईषद् आविर्भाव (क्षर प्रथम पुरुष)

धर्मात्मक आनन्दका सर्वथा उद्भव होने पर लौकिक सुख होता है.

१. सर्वथा उद्भूत (ब्रह्मानन्द)
२. अधिक आविर्भाव (स्वर्गादिलोके)
३. ईषद् आविर्भाव (जगति)

**दुःखाभाव :**

लौकिक : धर्मात्मक तत्त्वनिष्ठ आधिभौतिक आनन्दका ईषत् तिरोभाव होने पर दुःखाभाव होता है.

अलौकिक-मोक्ष-यज्ञफल : स्वरूपात्मक आधिदैविक-आध्यात्मिक आनन्दका ईषत् तिरोभाव होने पर दुःखाभावरूप मोक्ष फल होता है.

**दुःख :** (आनन्दस्य सर्वथा तिरोभावं दुःखम्, अनिर्वृतिरूपत्वात्)

सर्वत्र (द्वन्द्वात्मकं दुःखम्)

जगत्में धर्मरूप सुखाकारसे प्रकट और स्वरूपात्मक सुखाकारसे ईषत् तिरोहित होते हैं अतः जगत्में द्वन्द्वात्मक दुःख होता है<sup>१</sup>.

नरक (दुःखबाहुल्यम्)

यमलोकमें स्वरूपात्मक सुखाकारका सर्वथा तिरोभाव होता है. धर्मरूप सुखाकारसे भी भगवान् वहां स्वल्प ही प्रकट होते हैं. अतः यमलोक तथा नरक में दुःख अधिक होता है<sup>१०</sup>.

तमस् (दुःखरूपम्)

शुद्धतमस्में तो दैत्योंका वास होनेसे वहां आनन्दका सर्वथा तिरोभाव होता है<sup>११</sup>.

एक भिन्न रीतिसे तैत्तिरीयोपनिषत्में आनन्दके प्रकारोंकी गणना मानुष आनन्द, मनुष्यगन्धर्व आनन्द आदिसे लेकर ब्रह्मानन्द के रूपमें भी की गयी है.

आनन्दके, उपर्युक्तरीतिसे, आविर्भाव-तिरोभाववश अनेक प्रकार बनते हैं. इन प्रकारोंको प्रमुखतः **विषयानन्द**, **आत्मानन्द**, **ब्रह्मानन्द** और **पूर्णानन्द** के रूपमें समझा जा सकता है. इनमेंसे उत्तरोत्तर आनन्द पूर्वपूर्वसे उत्कृष्ट होता है. श्रेष्ठतम आनन्द पूर्णानन्द होता है जो परमात्माकी विशिष्ट कृपासे भाग्यवान् भक्तको प्राप्त होता है.

**अधिकारभेदसे फलानुभूतिमें भेद :**

तैत्तिरीय उपनिषद्में कहा गया है “यदि यह आनन्द आकाशकी तरह सर्वत्र व्याप्त न होता तो कौन यहां जीवित रह सकता, कौन यहां सांस ले पाता! यह परब्रह्म ही सबको आनन्द प्रदान करता है”<sup>१२</sup>. इस वचनसे और अनुभवसे भी यह स्पष्ट है कि संसारके सभी जीव किसी न किसी तरहसे सदा न सही तो कभी न कभी आनन्दका अनुभव तो करते ही हैं. आनन्दका यह अनुभव परन्तु सभीको एकसा नहीं होता है. दूसरे शब्दोंमें कहा जाये तो आनन्दको यद्यपि फल माना गया है किन्तु सृष्टिके सभी जीवोंको, भगवान् द्वारा किये गये अधिकारभेदके कारण, आनन्दके उक्त सभी प्रकारोंमें फलात्मकताका बोध नहीं होता है.



ब्रह्मांश होनेके कारण सभी जीव यद्यपि तत्त्वतः एक समान होते हैं तथापि लीला तो वैचित्र्यके बिना हो नहीं पाती है अतः, ब्रह्म अपने चिदंशरूप जीवमें भी उच्च-नीच भावोंको प्रकट करता है. “वह जिसको ऊपर उठाना चाहता है उससे साधुकर्म करवाता है और जिसे नीचे पटकना चाहता है उससे असाधु कर्म करवाता है”<sup>१३</sup>. सत्साधनोंको करवाकर जिन जीवात्माओंका भगवान् उद्धार करना चाहते हैं उनका वे ‘दैवीजीव’के रूपमें वरण करते हैं. जिनकी गति भगवान् प्रलयपर्यन्त जन्म-मरणरूपा ही होती रहे ऐसा चाहते हैं वे ‘आसुरी-प्रवाही’ जीव कहलाते हैं<sup>१४</sup>. भगवत्कृत वरण ही इस व्यवस्थामें एकमेव कारण होता है.

भगवत्कृत वरणके प्रभावसे आसुरी जीवोंकी रुचि-प्रवृत्ति लौकिक साधन-फलमें होती है जबकि दैवीजीवोंकी स्वाधिकारानुसार रुचि-प्रवृत्ति कर्म-ज्ञान-भक्ति-प्रपत्तिरूपी मार्गमें और उनसे लभ्य फलकी प्राप्तिमें होती है.

ब्रह्मसूत्रानुसारी पुष्टिफलका निरूपण करनेसे पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि यहां फलका निरूपण प्रमुखतः तत्त्वबुभुत्सुओंकेलिये उसके तात्त्विक स्वरूपको लेकर और साधनाचरणद्वारा जीवात्मा फल पर्यन्त किन प्रक्रियाओंमेंसे होकर पहुंचती है उसका निरूपण किया गया है. साम्प्रदायिक साधकोंको फलविषयक अधिक निरूपणकेलिये सम्प्रदायके प्रकरणग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिये.

फलके सम्बन्धमें यहां कुछ प्रश्न उठते हैं :

- ▶ फल कौन देता है?
- ▶ क्या फलप्राप्ति साधनसे ही होती है?
- ▶ क्या सभी फल साधनसाध्य होते हैं?
- ▶ फल कितने तरहके होते हैं?
- ▶ किस जीवात्माको कौनसा फल प्राप्त होता है?
- ▶ पुष्टिफलमें मुख्य और अवान्तरफल क्या होते हैं?
- ▶ सर्वात्मभाव किसे कहते हैं?
- ▶ भूतलपर भगवदनुभूति क्या प्राकृत देहेन्द्रियोंसे होती है?
- ▶ पुष्टिजीवकी विदेहमुक्तिके पूर्व उसके प्रारब्धभोग / पापक्षय कैसे होते हैं?
- ▶ पुष्टिजीवके सूक्ष्मशरीरका त्याग कैसे होता है?
- ▶ पुष्टिजीवोंकी क्रममुक्ति होती है अथवा सद्योमुक्ति?

- ▶ पुष्टिजीव फलभोग कैसे करते हैं ?
- ▶ फलानुभूतिके उपकरणभूत देहादि कैसे होते हैं ?
- ▶ क्षुद्र जीव सर्वकामोपोगसमर्थ कैसे बनता है ?
- ▶ भोग लौकिक होता है या अलौकिक ?
- ▶ क्या मुक्त जीवात्माकी पुनरावृत्ति होती है ?

### फल कौन देता है ?

ब्रह्मसूत्रके तृतीयाध्यायके द्वितीय पादमें “फलमतः” अधिकरणमें यहा सिद्धान्तित किया गया है कि फल भगवान् ही देते हैं यह श्रुति-स्मृति प्रमाणोंसे सिद्ध होता है.

“अग्निष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत” “इष्टान् भोगान् ही वो देवा” इत्यादि श्रुति-स्मृतिमें यज्ञादि कर्मसे फल प्राप्त होनेका निरूपण मिलता है. देवता/भगवान् को भी फलदानमें कर्मकी अपेक्षा रहती है. अतः कर्म ही फल देता है ऐसा महर्षि जैमिनीका मानना है.

महर्षि जैमिनीके मतका अस्वीकार करते हुवे ब्रह्मसूत्रकार कहते हैं कि “सर्वस्यवशी सर्वस्येशनः” “लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान्” “सुखं दुःखं भवोऽभावो... मत्तएव” इत्यादि श्रुति-स्मृतिमें ईश्वर ही इस सृष्टिका अनन्य स्वामी और नियन्ता है, ईश्वर ही सबको फल देता है अथवा ईश्वरके कर्मसचिव देवता ईश्वराज्ञासे फल देते हैं. और “एष एव साधु कर्म कारयति... असाधुकर्म कारयति” श्रुतिसे यह सिद्ध ही है कि जैसे ईश्वर फलदाता है ऐसे कारयिता भी ईश्वर ही है. श्रुत्यनुकूल तर्क देते हुवे भाष्यकार लिखते हैं कि किसी ओरकी वस्तु कोई दूसरा कैसे दे सकता है! इस सृष्टिका स्वामी ईश्वर है अतः जिसे जो भी देना है वो ईश्वर स्वयं ही देता है. अतः सिद्ध होता है कि ईश्वरके अतिरिक्त कर्म-अदृष्ट आदि कोई भी स्वतन्त्रतया फलदानमें समर्थ नहीं है<sup>१५</sup>.

### क्या फलप्राप्ति साधनसे ही होती है ?

इस सृष्टिमें कोई सुखी है तो कोई दुःखी. यदि ब्रह्म फलदान करता है तो वह किसीके प्रति दयालु और किसीके प्रति क्रूर सिद्ध होता है. “वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथा हि दर्शयति” (ब्रह्मसू.२।१।३४) इस सूत्रमें इस आक्षेपका परिहार

करते हुवे “मनुष्य पुण्य कर्मसे पुण्यवान् होता है और पापकर्मसे पापी होता है” (बृहदा.उप.३।२।१३) इस श्रुति वचनसे यह समाधान दिया गया है कि जीव जैसे कर्म करता है तदनुसार ही ब्रह्म उसको सुख-दुःखादि देता है। वृष्टि-बीजका दृष्टान्त देतेहुवे भाष्यकार लिखते हैं कि जीवको होते सुख-दुःखादिमें भगवान् वृष्टिवत् साधारण कारण होते हैं और जीवकृत कर्म-साधन बीजवत् असाधारण कारण होते हैं।

“कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहित-प्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः” (ब्रह्मसू. २।३।४२) सूत्रमें भी यही सिद्ध किया गया है कि प्रयत्न पर्यन्त तो जीवकी कृति होती है, उससे आगे सम्भव न होनेके कारण भगवान् स्वयं कृति करवाते हैं, जैसे प्रयत्नशील बालककी रुचिको देखकर पिता उस कार्यको सम्पन्न करा देता है।

अतः जीवकृत साधनके अनुसार भगवान् ही फल देते हैं यह सिद्ध होता है।

### क्या सभी फल साधनसाध्य होते हैं?

सामान्यतया भगवान् जीवकृत ज्ञान-भक्ति-कर्मादि प्रयत्नसापेक्ष हो कर जीवोंको फलदान करते हैं। परन्तु फल लौकिक-अलौकिक अनेक तरहके होते हैं। सभी फलोंकी प्राप्ति साधनबलसे नहीं हो सकती है। इस विषयका निरूपण “प्रदानवदेव तदुक्तम्” (३।३।४३)<sup>१६</sup> सूत्रमें और लिङ्गभूयस्त्वाधिकरणमें किया गया है।

“तस्मात् त्वमुद्धवोत्सृज्य...” (भाग.पुरा.१.१।१२।१५) वचनमें सर्वात्मभावसे शरणमें जानेकी आज्ञा भगवान्ने दी है। इससे सिद्ध होता है कि सर्वात्मभाव साधनसाध्य है। इस पक्षका निराकरण “नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो...यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः” (मुण्ड.उप.३।२।१३) श्रुतिसे यह कहकर किया गया है कि भगवच्छरणकी ही तरह सर्वात्मभावकी प्राप्ति भी वरप्राप्तिकी तरह भगवत्कृत वरणलभ्य ही है, अन्य किसी साधनसे साध्य नहीं है। भगवद्वरण काल-कर्मादिकृत प्रतिबन्धोंसे भी बलिष्ठ होता है। अतः कितने ही प्रतिबन्धोंके होने पर भी यदि भगवान् किसी जीवात्माका वरण कर लेते हैं तो उसे वरणके प्रभावसे ही भगवच्छरण प्राप्त हो जाता है।

### फल कितने तरहके होते हैं?

फलको प्रमुखतः तीन भागमें बांटा जा सकता है : भोग, मोक्ष और

भगवत्प्राप्ति. इसमें प्रथम भौतिक, दूसरा आध्यात्मिक और अन्तिम आधिदैविक कहलाता है.

तत्त्वदृष्ट्या आनन्द-सुखको फल कहा जाता है. अतः विषयानन्द अथवा सांसारिक सुखको भी (आधिभौतिक) फल कहा जा सकता है. परन्तु फलमें भी अनेक कारणवश तारतम्य होता है यह शास्त्र हमें समझाता है. सुख यदि फल है तो सात्त्विक-राजस-तामस-निर्गुण, लौकिक-अलौकिक अथवा प्रेयस्-श्रेयस्, क्षयिष्णु-चिरस्थायी, अपूर्ण-पूर्ण, परिच्छिन्न-अपरिच्छिन्न होने आदिके कारण उसमें तारतम्य होता है. सामान्यतया प्राकृत लौकिक प्रेयस् क्षयिष्णु अपूर्ण परिच्छिन्न फलोंको तुच्छ माना जाता है. इनकी तुलनामें निर्गुण अलौकिक श्रेयस् चिरस्थायी पूर्ण अपरिच्छिन्न फलको उत्कृष्ट माना जाता है. शास्त्रदृष्ट्या भोगकी तुलनामें मोक्ष और उसकी तुलनामें भगवत्प्राप्ति श्रेष्ठ फल है.

### किस जीवात्माको कौनसा फल प्राप्त होता है ?

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य कहते हैं कि “भिन्न-भिन्न जीवोंको भिन्न-भिन्न प्रकारसे फल देनेकी भगवान्की इच्छाके कारण प्रवाही जीवोंको लौकिक फल प्राप्त होता है, मर्यादा जीवोंको वोदोक्त फल प्राप्त होता है और पुष्टिजीवोंको साक्षात् भगवत्स्वरूपानन्दकी प्राप्ति रूपी फल प्राप्त होता है”<sup>१७</sup>. भगवान्की ऐसी इच्छाके परिणामस्वरूप

**प्रवाही-आसुरी जीव** विषयानन्दको फलरूप जानते हैं,

**मर्यादा जीव** आत्मसुख-देवसायुज्य-ब्रह्मानन्दादिको फल मानते हैं. जबकि

**पुष्टिजीव** विषयानन्दसे लेकर ब्रह्मानन्द पर्यन्तके सुखोंको तुच्छ मानकर

अपने भजनीय श्रीकृष्ण और उनकी भक्ति को ही फलरूप मानते हैं.

अतः प्रवाही-आसुरी जीवोंकी “**जायस्व-प्रियस्व**” (छान्दो.उप. ५।१०।८) रूपा तृतीय गति होती है<sup>१८</sup>. मर्यादाजीवोंको पुरुषोत्तम सायुज्य, अक्षरप्राप्ति, आत्मसुख-आत्मानन्द, स्वर्गलोक आदि फल प्राप्त होते हैं और पुष्टिजीवोंको निरवधि आनन्दस्वरूप भगवत्प्राप्ति होती है यह “**अक्षरधियाम्**” (३।३।११।३३-३४) इस अधिकरणमें सिद्ध किया गया है.

“**विशेषानुग्रहाच्च**” तथा “**अतस्त्वितरज्यायो लिङ्गाच्च**” (३।४।३७-

३८) सूत्रोंमें पुष्टिफलकी उत्कृष्टता दिखलाते हुवे यह प्रतिपादित किया गया है ज्ञानीको मोक्षफलकी प्राप्ति होती है और मुक्तावस्थामें देहेन्द्रियादिके न होनेसे वह केवल आत्मासे ही ब्रह्मानन्दका अनुभव कर पाता है. जबकि पुष्टिभक्तके ऊपर भगवान् विशेष अनुग्रह करते हैं अतः उसे साक्षात् प्रभुकी प्राप्ति होती है और वह अलौकिक देह-इन्द्रियादिको प्राप्त करके उत्कृष्टतम भजनानन्दका अनुभव करता है<sup>१९</sup>.

### पुष्टिफलमें मुख्य और अवान्तरफल :

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यने पुष्टिफलका निरूपण प्रमुखतः षोडशग्रन्थार्गत 'सेवाफल' ग्रन्थमें किया है. यहां आप लिखते हैं : “भगवानेव हि फलम्” “कायेन तु फलं पुष्टौ”. पुष्टिजीवका फल भगवान् ही अर्थात् भगवत्प्राप्ति ही होता है.

सेवाफल ग्रन्थमें आपने भगवत्सेवामें प्राप्त होते तीन फलोंका निरूपण किया है :

१. अलौकिकसामर्थ्य

२. सायुज्य और

३. वैकुण्ठादिमें सेवोपयोगी देहकी प्राप्ति

इन फलोंके अतिरिक्त षोडशग्रन्थमें निरूपित पुष्टिमार्गीको प्राप्त होते अन्तरङ्गतमसे लेकर बहिरङ्गतम फलोंकी सूचि पर्याप्त लंबी है. यथा :

मानसी (सि.मु.)	प्रेमासक्ति-व्यसन (भ.व.)
आधिदैविकी सेवा (से.फल)	तनुनवत्व (यमु.)
सर्वात्मभाव (चतुः)	अलौकिकमनःसिद्धि (वि.धै.आ.)
निरोध (नि.ल.)	व्यसनोत्तरकृतार्थता (भ.व.)
ब्रह्मता (सि.र.)	आश्रय (कृष्णा.)
आविर्भाव(गुण-स्वरूप) (पु.प्र.म.भे)	विरहदुःखानुभव(नि.ल.)
संयोगसुखानुभव(नि.ल.)	सच्चिदानन्दता (नि.ल.)
ब्रह्मबोध (सि.मु.)	विरहानुभव(संन्या.नि.)
संसारदुःखनिवृत्ति (सि.मु.)	स्वभावविजय(यमु.)
संसार-विरह-क्लेशाभाव(नि.ल.)	दुरितक्षय (यमु.)
विषयविराग (नि.ल.)	दुःखाभाव(नि.ल.)
हरिवत्सुख(नि.ल.)	बहिःप्राकट्य(नि.ल.)
लौकिकगत्यभाव (नवर.)	लोकनाश (सि.मु.)
पापनाश <sup>(३१३१७-२८)</sup>	-अभय-योग-क्षेम-अपराधनिवारण (वि.धै.आ.) इत्यादि.

इनमेंसे कुछ समान कक्षाके द्योतक हैं तथापि उस कक्षाके किसी भिन्न पक्षको प्रकट करते हैं और कुछ मुख्यफलके द्योतक भी हैं यह अवधेय है.

पुनश्च पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणालीकी तीन धाराएं हैं : सेवा, गुणगान और शरणागति. प्राचीन व्याख्याकारोंके भावभेदोंकी चर्चा न की जाये तो सेवाकर्ता, गुणगानकर्ता और शरणागत पुष्टिजीवोंको भूतलपर जीवनमुक्तितुल्य यथाक्रम मानसी-ब्रह्मता, निरोध-सर्वात्मभाव और आश्रय रूप फल मिलते हैं. पुष्टिजीवका देहान्त होनेपर तीनोंको भगवत्प्राप्तिरूप चरमफल प्राप्त होता है.

जो/जिन फल/फलोंकी उपलब्धि, वो अभिलषित हो या न हो, मुख्य/चरम फलकी प्राप्तिके पूर्व होती हो उसे **अवान्तरफल/मध्यपातिफल** कहा जा सकता है. इस दृष्टिसे सोचा जाये तो देहान्तके पश्चात् प्राप्त होनेवाले पुष्टिजीवके चरमफलके पूर्व उसे प्राप्त होते सभी फल अवान्तर/मध्यपाति फल कहे जा सकते हैं. यहां यह स्मर्तव्य है कि हर अवान्तरफलका गौणफल होना आवश्यक नहीं है. सि.मु.की विवृतिमें प्रभुचरणोंने जिन संसारदुःखनिवृत्ति और ब्रह्मबोध फलोंको कण्ठतः 'अवान्तरफल' कहा है उसका मुख्य हेतु तो प्राधान्येन व्यपदेश और ज्ञानमार्गसे भक्तिमार्गका उत्कर्ष दिखलाना है, इतर फलोंकी अवान्तरफलताका निराकरण करना नहीं.

**मुख्यफल** : पुरुषोत्तम प्राप्ति ही पुष्टिजीवका फल है यह “**विशेषं च दर्शयति**” (४।३।१७) सूत्रके भाष्यमें भाष्यकारने निरूपित किया है :

“अब शुद्धपुष्टिमार्गमें अङ्गीकृतोंकी व्यवस्था बतलाई जाती है. तैत्तिरीयोपनिषत्में कहा गया है कि “वह विपश्चित् ब्रह्मके साथ सभी भोगोंको भोगता है”. इसे यह समझना चाहिये कि जैसे परब्रह्म लोकमें स्वयं प्रकट हो कर लीला करते हैं उसी तरह अत्यनुग्रहवशात् सायुज्य प्राप्त भक्तोंको भी बाहर प्रकट करके उनके स्नेहातिशयसे वश हो कर अपनी सर्वलीलारसका अनुभव कराते हैं. इस तरह वे भक्त भी परब्रह्मके साथ सभी भोगोंको भोगते हैं. इससे सिद्ध होता है कि ज्ञानमार्गीयोंको अक्षरकी ही प्राप्ति होती है. पुरुषोत्तमकी प्राप्ति तो भक्तोंको ही होती है”<sup>१०</sup>.

**अवान्तरफल** : जीवित पुष्टिमार्गीके अवान्तरफलका निरूपण “**तद्भूतस्य तु**

न अतद्भावो जैमिनिरपि निमयातद्रूपाभावेभ्यः” (३।४।३९) “आप्रायणात् तत्रापि हि दृष्टम्” (४।१।१२) सूत्रोंमें किया गया है।

भागवतके पञ्चमस्कन्धके “भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः” (भाग.पुरा.५।६।१७) वचनमें भगवदीयताको सर्वार्थ-फलरूप कहा गया है। तदीयता सिद्ध हो जाये अर्थात् भगवान् जीवात्माको स्वकीय भक्ततया स्वीकार लें ये ही भक्तिमार्गीका फल है। ऐसी भगवदीयताकी सिद्धिमें भगवदिच्छाके अतिरिक्त ओर कोई साधन नियामक नहीं होता है। अतः भगवदीयताके सिद्ध होने पर भक्तको कृतार्थताका अनुभव होता है। ऐसा होने पर वह मुक्तिको भी तुच्छ जानता है। तदीयताको प्राप्त हुवे भक्तको भगवद्दर्शन नित्य होते हैं यह “तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः” (तैत्ति.सं.१।३।६) श्रुतिसे सिद्ध है। “आप्रायणात् तत्रापि हि दृष्टम्” (४।१।१२) सूत्रोंमें यह कहा गया है कि जिसके सामने अथवा भीतर भगवत्प्राकट्य हो चुका है ऐसे पुष्टिभक्तकी ‘आ-प्रायण’ अर्थात् भगवत्प्राप्तिरूप परमफलकी प्राप्ति पर्यन्त वैसी ही अवस्था सदा रहती है। अर्थात् उसको निरन्तर प्रभुका अनुभव होता रहता है। यह जीवित पुष्टिमार्गीका अवान्तरफल कहलाता है<sup>२१</sup>।

### सर्वात्मभाव :

भगवद्वियोगके तीव्र हो जाने पर अतिविगाहभाववाले भक्तको भगवदितर वस्तुकी स्फूर्ति नहीं रह जाती है। ऐसेमें जब भगवत्प्राकट्य नहीं होता है तो विरही भक्त सर्वत्र भगवानको देखने लगता है। यह भक्तकी जीवन्मुक्ततुल्य अवस्था होती है। सर्वात्मभावसम्पन्न भक्तके हृदयमें भगवद्विषयक अनेक तरहके सञ्चारीभाव आते-जाते रहते हैं। उसकी अनुभूतिका वर्णन श्रुति इस तरह करती है:

“भगवान्के अतिरिक्त कुछ और नहीं देखता है, कुछ और नहीं सुनता है, और नहीं जानता है वह भूमा है। वह भूमा अपनी महिमामें प्रतिष्ठित है। वही नीचे है, वही ऊपर है, पीछे-आगे दायें-बायें वही है और वही सब कुछ है। ...मैं ही नीचे हूं, मैं ही ऊपर हूं, मैं ही पीछे-आगे दायें-बायें हूं, मैं ही सब कुछ हूं। ... आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा ही पीछे-आगे दायें-बायें है, आत्मा ही सब कुछ है”<sup>२२</sup>।

सर्वात्मभाव भक्तिकी एक उत्कृष्टतम अवस्था है। यह भगवद्वरणके विना

असाध्य है<sup>३३</sup>. सर्वात्मभावको पुरुषोत्तमकी महिमा भी कहा गया है. मर्यादामार्गीय सिद्धियोंकी प्राप्तिमें काल-कर्मादि प्रतिबन्धक होते हैं परन्तु सर्वात्मभाव तो क्योंकी भगवान् स्वयं ही प्रदान करते हैं अतः उसकी प्राप्तिमें कालादि बाधक नहीं होते हैं (३।३।४४). भगवद्विप्रयोगमें भक्तको दुःसह विरह-तापका अनुभव होता है किन्तु यह विरह-ताप रसरूप भगवानका ही धर्म होता है, लौकिक विरह-ताप जैसा नहीं, अतः वह भी रसात्मक ही होता है. और इसी भावके फलस्वरूप भक्तको भगवत्स्वरूपानन्दकी प्राप्ति होती है अतः वह भी फलके समान ही होता है, दुःखरूप नहीं (४।२।११). “अनुबन्धादिभ्यः प्रज्ञान्तरपृथक्त्वाद् दृष्टश्च तदुक्तम्” (३।३।५०) में यह सिद्ध किया गया है कि सर्वात्मभाव भगवदात्मक होता है. विरही भक्तको साक्षात् भगवत्संग प्राप्त न हुवा हो तब भी केवल तदीयभाव भी अशनवत् साक्षात् भगवत्स्वरूपके भोगके समान ही माना जाता है<sup>३४</sup>. क्योंकि जिस भक्तको भगवान् अपने जिस लीलाविशिष्ट स्वरूपका अनुभव कराना चाहते हैं उसकी हृदयगुहामें उस लीलाके आश्रयरूप अक्षरस्वरूपको वैकुण्ठकी तरह आविर्भूत कर देते हैं<sup>३५</sup>. श्रुति इसे साक्षात् पुरुषोत्तमप्रापक मानती है<sup>३५</sup>. अतः सर्वात्मभावको ही श्रुति जीवका ‘बल’ कहती है<sup>३६</sup>. सर्वात्मभाव जिसे सिद्ध हो जाता है उसका सायुज्यादि मुक्तिमें पर्यवसान नहीं होता है. उसे भगवान् भजनानन्दका दान करते हैं (३।३।४३).

जिस प्रकार विरही भक्त भगवान्से अतिरिक्त किसी अन्य फलकी अपेक्षा नहीं करता है उसी तरह गृहस्थित पुष्टिमार्गी भी स्वगृहमें ही भगवत्स्वरूपकी स्नेहपूर्वक विविध प्रकारसे सेवा करते हुवे उसीमें इतने अधिक आनन्दका अनुभव करते हैं कि वो उसके आगे मुक्तिको भी तुच्छ मानते हैं. अतएव सेवाकर्ता गृही भक्तकी श्रेष्ठताका निरूपण करते हुवे भागतमें कहा गया है कि “भगवत्सेवामें जिनका मन अनुरक्त हो गया है उनकेलिये मुक्ति भी तुच्छ है”<sup>३७</sup>. गृहत्याग भी वो ही भक्त करते हैं कि जिनको स्वगृहमें भगवत्सेवाका अवसर प्राप्त न हुवा हो. क्योंकि त्यागदशामें तो केवल वाणी और मन का ही भगवान्में विनियोग हो पाता है जब कि रह कर भगवत्सेवा करनेसे तो सेवाकर्ताकी सकल इन्द्रियां, घर-सम्पत्ति और परिवारजनों का भी भगवत्सेवामें विनियोग होता है. अतः भगवत्सेवामें सभी तरहसे कृत्स्नता होती है<sup>३८</sup>. महाप्रभु भी, अतएव, सकलेन्द्रियोंके यथायोग्य भगवद्विनियोगको ही इन्द्रियवान्का फल कहते हैं<sup>३९</sup>. विरही भक्तको सर्वत्र भगवदनुभूति होनेको सर्वात्मभाव कहा जाता है उसी तरह गृहस्थित भक्तका सर्वात्मभाव सकलेन्द्रियोंका भगवद्विनियोग होता है.



### प्रारब्धभोग / पापक्षय कैसे होते हैं?

अपुनरावृत्तिरूप मोक्ष ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग दोनोंसे प्राप्त होता है। मोक्षप्राप्तिकेलिये यह आवश्यक होता है कि उसके संचित और प्रारब्ध पाप-पुण्यका नाश हो। फलाध्यायके प्रथम पादके छठे अधिकरणमें यह सिद्ध किया गया है कि मर्यादामार्गीके चित्तकी शुद्धि होने पर ब्रह्मज्ञानोदयसे उसके पूर्व सभी पाप-पुण्यका नाश हो जाता है और उसके पश्चात् वे पुनः उत्पन्न नहीं होते हैं। अनारब्ध पूर्वकर्मोंका नाश होने पर भी, प्रारब्धकर्मोंके शेष रहजानेके कारण, और उनका नाश भोगसे ही होता होनेके कारण, ब्रह्मविदोंको भी अग्निहोत्रादि कर्म करने पड़ते हैं। इनके कर्म विद्या पूर्वक किये गये होनेसे वीर्यवत्तर होते हैं। अतः इन कर्मोंसे प्रारब्ध कर्मोंका नाश तो होता ही है, साथसाथ स्वयं भी निरन्धन अग्निकी तरह शान्त हो जाते हैं। अतः ब्रह्मज्ञानी कर्मसंश्लिष्ट नहीं होता है।

यहां यह जिज्ञासा होती है कि पुष्टिमार्गीके प्रारब्ध कर्मोंका नाश कैसे होता है। क्या “नाभुक्तं क्षीयते कर्म” यह नियम उसके ऊपर भी लागू होता है?

“अतोऽन्यापि ह्येकेषाम् उभयोः” (ब्रह्मसू. ४।१।१७) सूत्रमें उक्त जिज्ञासाका यह समाधान दिया गया है कि पुष्टिमार्गीके प्रारब्ध और अप्रारब्ध कर्मोंका नाश बिना भोगके भगवत्कृपाबलसे ही हो जाता है। ऐसेमें भगवान् द्वारा स्थापित “प्रारब्ध भोगैक नाश्य है” इस मर्यादाका भङ्ग भी नहीं होता है क्योंकि “तस्य पुत्रा दायमुपयान्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम्” श्रुति यह कहती है कि भगवान् भगवत्कृपापात्र जीवोंके प्रारब्धका भोग उनके पुत्र-मित्र-शत्रु आदिसे करवालेते हैं। ऐसा होनेमें अकृताभ्यागमका दोष प्रसक्त नहीं होता है क्योंकि ईश्वर अन्यथाकर्तुं समर्थ है। और पुष्टिमार्गका तो स्वरूप ही मर्यादासे विपरीत है। अतः मर्यादाविपरीत होना यह तो पुष्टिमार्गमें भूषण कहलाता है। वस्तुतः सूत्रकारने सूत्रमें “अतोऽन्यापि हि एकेषाम् उभयोः” ‘एकेषाम्’ पदका प्रयोग करके ऐसा अधिकार दुर्लभ होता है यह जता दिया है।

### पुष्टिजीवके सूक्ष्मशरीरका त्याग कैसे होता है?

सृष्टिमें अविद्या और देहादिकृत बन्धन जीवात्माको ही होते हैं अतः मुक्ति भी जीवात्माकी ही होती है। मुक्ति होनेसे पूर्व प्राकृत स्थूल-सूक्ष्म देहका जीवात्मासे वियुक्त होना आवश्यक होता है। अतः ब्रह्मसूत्रके चतुर्थाध्यायके द्वितीयपादमें पुष्टिजीव

और मर्यादाजीव के इन्द्रियादिके विलयके प्रकारभेदका निरूपण हुवा है. स्थूल दहेका त्याग तो सभीका सार्वजनीन होता है अतः उसका विवेचन आवश्यक नहीं है अतः इस पादमें सूक्ष्मशरीरके त्यागका प्रकार दिखलाया गया है.

भगवान् जिस जीवका पुष्टिमार्गमें अङ्गीकार करते हैं उसको अन्त समयमें उसकी एकतानता भगवान्में ही रहे तदर्थ, भगवानने जैसे वृत्रासुरको दर्शन दिये थे उसी तरह, प्रियमाण पुष्टिजीवको दर्शन देते हैं. अथवा जैसे अन्तर्गृहगता ब्रजभक्तोंको वेणुनाद सुनाया था उसी तरह वेणुनाद सुनाते हैं. ऐसे समय भगवन्नाम लेते हुवे पुष्टिजीवकी वागीन्द्रिय भगवान्में एकतान हुव मनमें लीन हो जाती है. छान्दोग्योपनिषत्में “तस्य एतस्य वाङ् मनसि सम्पद्यते, मनः प्राणे” (६।८।६) इसे आगेका क्रम यह दिखलाया गया है कि उसका मन इन्द्रियोंके सहित प्राणमें लीन होता है. “सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः” (४।२।४) सूत्रमें यह कहा गया है कि उस जीवके भगवदङ्गीकारके कारण उसके प्राणका विलय मन और सर्व इन्द्रिय सहित भगवान्में हो जाता है.

### पुष्टिजीवोंकी क्रममुक्ति होती है अथवा सद्योमुक्ति ?

वेदमें सद्योमुक्ति जिनकी नहीं होती है उनको फलकी प्राप्ति क्रमिक रूपसे होती है ऐसा कहा गया है. इसी तरह भगवान् जीवात्माको जब तक आत्यन्तिक फल प्रदान नहीं करते हैं तब तक मुक्तियोग्य जीवात्मा भी उनके संचित-प्रारब्ध कर्मोंके अनुसार विभिन्न उच्च-नीच लोक और योनि में आरोहण-अवरोहण करती रहती है.

तृतीयाधाय प्रथम पादके तीसरे एवं चौथे अधिकरणोंमें मृतात्माओंका आरोहण-अवरोहण उनके विभिन्न अधिकारानुसार अर्चिरादि, धूमादि और तृतीया गति जैसे विभिन्न मार्गोंसे होता है उस सम्बन्धमें विचार किया गया है.

मुक्तिके भेद : इस विषयमें यह ध्यातव्य है कि जो जीवात्माएं सदाकेलिये इस लोकको छोडकर जाती हैं उनमेंसे भी कुछ तो भूलोकसे सीधे ही मुक्तिको प्राप्त हो जाती हैं जब कि कुछ जीवात्माओंको अनेक लोकोंमें भटकते हुवे अन्तमें मुक्तिलाभ होता है. मुक्तिके इस भेदको यथाक्रम सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति कहा जाता है.

सद्योमुक्ति : सिद्धान्ततः यह ज्ञातव्य है कि पुष्टिभक्तको पुरुषोत्तम प्राप्तिरूपका

सद्योमुक्ति प्राप्त होती है. अतएव इन मार्गोंका आश्रय पुष्टिजीवोंको नहीं करना पडता है. मर्यादा जीवोंमेंसे कुछ ज्ञानी और इसी तरह मर्यादा भक्तोंको भी सद्योमुक्ति प्राप्त होती है.

### **फलभोगका प्रकार :**

“ब्रह्मवेत्ता परको प्राप्त करता है ... ब्रह्म सत्य, ज्ञान और आनन्द स्वरूप है ... वह विपश्चित् ब्रह्मके साथ सर्व भोगोंको भोगता है” ३१. इस तैत्तिरीय श्रुतिमें ब्रह्मवेत्ताके ब्रह्मके साथ भोगकी बात कही गयी है. भगवत्स्वरूपानन्द ही पुष्टिजीवका परम फल है. यहां यह शङ्का होती है कि जिसकी सद्योमुक्ति हो गई हो वह भोग कैसे भोग सकता है? क्योंकि कर्मके शेष न रहनेके कारण मुक्तात्माके तो देहेन्द्रियादिका विलय हो गया होता है! लयावस्थामें भेदके न रहनेसे ब्रह्मके अन्तःस्थित हो कर भी भोग सम्भव नहीं है. यदि यह कहा जाये कि मुक्तात्माका पुनर्जन्म होता है तो वह भी सम्भव नहीं है. क्योंकि “न स पुनरावर्तते” श्रुतिसे विरोध होता है.

इन आशङ्काओंका समाधान करनेकेलिये “सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात्” (४।४।१) सूत्र योजित किया गया है. यहां यह निर्णय दिया गया है कि भगवान् जिसे अपने भजनानन्दका दान करना चाहते हैं उसके ऊपर अत्यनुग्रह करके अपनेमेंसे उसको आविर्भूत करते हैं. यह आविर्भाव भगवदिच्छासे और भगवान्की प्रपञ्चातीत नित्यलीलामें होता है अतः इसमें न तो कर्माभाव बाधक बनता है और न “न स पुनरावर्तते” श्रुतिका विरोध ही होता है.

### **फलानुभूतिके उपकरणभूत देह :**

भगवदनुग्रहसे मुक्त जीव भगवान्मेंसे आविर्भूत हो कर भगवान्के साथ सर्व कामोपभोग करता है इसका निरूपण करनेके पश्चात्त यह विचार किया गया है कि आविर्भूत जीव प्राकृत शरीरसे भोग करता है या अप्राकृत शरीरसे. यहां यह पूर्वपक्ष किया गया है कि जीवात्माका कामभोग लौकिक होता है अतः भोगोपकरणभूत शरीर भी लौकिक ही होना चाहिये. इस पक्षका निराकरण करते हुवे “ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः” और “एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः” (४।४।५,७) सूत्रोंमें यह सिद्ध किया गया है कि लौकिक देहका सम्बन्ध परब्रह्मके साथ सम्भव नहीं है अतः जीवात्मा लौकिक नहीं प्रत्युत ब्राह्म-अलौकिक देहसे दिव्य भोगोंको भोगती है.

“देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम्” (भाग.पुरा.७।१।३४) वचनमें वैकुण्ठवासीओंको देहेन्द्रिय-प्राण नहीं होते हैं ऐसा कहा गया है। ऐसी स्थितिमें मुक्त पुष्टिजीवका भोग कैसे उपपन्न होगा? इस शङ्काका निवारण “द्वादशाहवद् उभयविधं बादरायणोतः” (४।४।१२) सूत्रसे यह कह कर किया गया है कि जैसे द्वादशाह यज्ञ सत्ररूप भी होता है और अहीन भी इसी तरह भक्तके शरीरके विषयमें भी समझना चाहिये। पुष्टिजीवको अलौकिक भोगकेलिये भगवान् अलौकिक देहसम्पन्न बनाते हैं किन्तु मुक्त ज्ञानीको वैसे देहकी प्राप्ति नहीं होती है।

यहां यह ध्यातव्य है कि भगवान् परम कृपालु होकर जीवात्माको स्वस्वरूपानन्दका अनुभव करानेकेलिये उसे स्वसमान बनाते हैं। जीवात्माकी ऐसी समानावस्था, परन्तु, केवल भोगविषयक ही होती है ऐसा समझना चाहिये। यह निर्णय सूत्रकारने “भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च” (४।४।२१) सूत्रमें दिया है। अन्यथा “न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते” (श्वेता.उप.६।८) श्रुतिका विरोध होता है। इस तरह इस सूत्रसे, साम्यताके बिना जीवात्मा स्वरूपानन्दकी प्राप्तिके योग्य बन नहीं पाती है और सर्वांशमें समानता स्वीकारने पर श्रुतिविरोध होता है इस, उभयतो पाशका वारण किया गया है।

### जीवकर्तृक भगवद्भोग :

वेद कहते हैं “न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते”। उससे न तो कोई अधिक है और न समान्। परब्रह्म निरवधि ज्ञान-क्रियाशक्ति सम्पन्न है। उसके सामने जीव अति क्षुद्र होता है। यहां यह शङ्का होती है कि ऐसे जीवद्वारा भगवद्भोगरूप अनुभव कैसे सम्भव है?

इस शंकाका निराकरण “प्रदीपवदावेशस्तथा हि दर्शयति” (४।४।१५) सूत्रसे करते हुवे यह कहा गया है कि जीवके नैसर्गिक सामर्थ्यसे तो वैसा भोग होना सम्भव नहीं है अतः भगवान् जीवमें प्रदीपवद् आविष्ट हो कर उसे भोगसामर्थ्य प्रदान करते हैं। जैसे बातीको तेलमें भिगाकर प्रज्वलित दीपकके साथ उसको लगानेपर बाती भी प्रज्वलित हो जाती है उसी तरह जीवमें भी भगवदावेशके प्रभावसे भोगसामर्थ्य आ जाता है।

### भोगकी अलौकिकता :

यहां संशय यह किया गया है कि भोग सदा लौकिकव्यापारयुक्त होता है।

अतः जीवद्वारा किया जाता ब्रह्मके साथ सर्वकामोपभोग भी लौकिकव्यापार सहित ही होगा. इस संशयका निराकरण करते हुवे “जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणाद् असन्निहितत्वात् च” (४।४।१७) में यह निर्णय दिया गया है कि ब्रह्मके साथ सर्वकामोपभोगमें लौकिक व्यापार नहीं होते हैं. सूत्रकार इसमें दो हेतु देते हैं :  
 “ब्रह्मविदाप्नोति परम्” वचन मुक्तिप्रकरणमें पठित है इस कारण और प्रभुकी लीला काल-माया आदिसे अतीत होनेसे नित्य और अप्राकृत होती है, नित्यलीलास्थ भोगसामग्री भी अप्राकृत होती है अतः उस भोगमें लौकिकताकी गन्ध भी सम्भव नहीं है.

### न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते :

कर्मफलोंके भोगोंको भोगलेनेके अनन्तर जीवात्माकी मर्त्यलोकमें जैसे पुनरावृत्ति होती है वैसे परब्रह्मके साथ सर्वकामोपभोगके अनन्तर क्या पुष्टिजीवकी भी आवृत्ति होती है? इस सन्देहका निराकरण अन्तिम सूत्रसे किया गया है. “तयोर्ध्वमायन् अमृतत्वम् एति” (छान्दो.उप.८।६।६), “न तेषां पुनरावृत्तिरेतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते” (तत्रैव ४।१५।६) “ब्रह्मलोकम् अभिसम्पद्यते. न च पुनरावर्तते” (तत्रैव ८।१५।१) इत्यादि श्रुतिवचनोंमें ज्ञानीकी अपुनरावृत्ति कही गयी है. भक्तको तो भगवत्कृत वरणके कारण स्वरूपानन्दकी प्राप्तिरूप फल प्राप्त होता है. अतः भगवान् कहते हैं कि “ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तम् इममं परम्, हित्वा मां शरणं याताः कथं तान् त्यक्तुमुत्सहे” (भाग.पुरा.९।४।६५) जो सब कुछ छोड़कर मेरी शरणमें आता है उसका त्याग मैं कैसे कर सकता हूं! अतः स्पष्ट है कि भक्तकी भी पुनरावृत्ति नहीं होती है. और नश्वर तो वह होता है जो कालीधीन हो. भगवल्लीला तो अनश्वर होती है, पुरुषोत्तममें कालका प्रभाव नहीं चलता है. अतः भक्तकी मर्त्यलोकमें पुनरावृत्ति नहीं होती है.

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

### सन्दर्भसूचि :

१. एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म
२. अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (१।१।१)
- ३

► “आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुषविधः. सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत् ... स वै नैव रेमे, तस्माद्

- एकाकी न रमते, स द्वितीयम् ऐच्छत् स हैतावानास” (बृहदा.उप.१।४।१-३)
- ▶ “एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ... तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय” (छान्दो.उप.६।२।१)
- ▶ “स यथोर्णनाभिस्तनुनोच्चरेत् यथाम्नेः क्षुद्राः विस्फुल्लिङ्गाः व्युच्चरन्ति एवमेव अस्माद् आत्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति” (बृहदा.उप.२।१।२०)
- ▶ “स होवाच एतद् वै तद् अक्षरं गार्गी! ... एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी! सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः; ... द्यावा-पृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः; ... निमेषा मुहूर्ता अहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरा इति विधृताः” (तत्रैव ३।८।८-९)
४. लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्” (२।१।३३)
- ५.
- ▶ “यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतः. यो अप्सु तिष्ठन् अद्भ्यो अन्तरो यम् आपो ... यो अग्नौ तिष्ठन् ... यो अन्तरिक्षे तिष्ठन्... यो वायौ तिष्ठन् ... यो दिवि तिष्ठन् ... य आदित्ये तिष्ठन् ... यश्चन्द्रतारके तिष्ठन् ... य आकाशे तिष्ठन्... यस्तमसि तिष्ठन्... यस्तेजसि तिष्ठन् ... यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् ..” (बृहदा.उप.३।७।३)
- ▶ “एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति” (कठोप.२।२।१२)
- ▶ “उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः परमात्मेति चाप्युक्तो देहेस्मिन् पुरुषः परः” (भग.गीता१३।२२)
६. “अन्तर्याम्यक्षरं कृष्ण ब्रह्मभेदाः” (तत्त्वा.नि.सर्वनि.१.२०)
७. नाणुरतच्छ्रुतेः अंशो नानाव्यपदेशात्.
८. “पराभिधानात् तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्ध-विपर्ययो”.
९. धर्मरूपसुखाकारेण प्रकटः स्वरूपसुखाकारेण अप्रकटः इति ईषत् तिरोहितः तस्मात् जगति द्वन्द्वात्मकं दुःखम्. (आवरणभङ्ग)
१०. यमलोके तु धर्मरूपसुखाकारेणापि ईषदेव प्रकटो नारकीयनिर्वितरूपेण नरकेऽपीति तत्र दुःखबाहुल्यम्. (आवरणभङ्ग)
११. शुद्धे तमसि तु दैत्यानां निवासात् सर्वथा तिरोभावः (प्रका). शुद्धतमसि नैकेनापि रूपेणेति तत्र तथा इति अर्थः (आवरणभङ्ग).
१२. “को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेश आकाश आनन्दो न स्यात्. एष ह्येवानन्द याति” (तैत्ति.उप.२।७)
१३. “एष उ एव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते. एष उ एव असाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते” (कौ.उप.३.८) १४. “दैवीसम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मताः” (भग.गीता१६।११?)
१५. (३-२-३८-९) “अतः ईश्वरादेव फलं भवति यत्किञ्चिद् ऐहिकं पारलौकिकं वा. कुतः? उपपत्तेः. “सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः” इति श्रुतिः वस्तुमात्रेशितृत्वम् असङ्कुचितम् आह. न हि अन्यस्य वस्त्वन्यो दातुं समर्थः. अतो भगवानेव तथा इति अर्थः” (भाष्य)
१६. प्रदानवत्. प्रकृष्टं दानं प्रदानं वरदानम् इति यावत्, तद्वदेव इति अर्थः. वरेण हि स्वकृत्यसाध्यमपि सिध्यति इति तथा. (भाष्य)
१७. “मूलेच्छातः फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेऽपि च, कायेन तु फलं पुष्टौ भिन्नेच्छातोऽपि

नैकधा”(पुष्टिप्र.म.भे.१०)

१८. “न तृतीये तथोपलब्धेः” ३।१।१८

१९.

मर्यादाफल :

“भगवदानन्दरूपं फलं ब्रह्मज्ञानयुक्तस्य यथोक्तकर्मकतुरिव ... मर्यादायां क्रममोक्षएव फलम्. सद्योमुक्तिस्तु अतिकृपया. ब्रह्मज्ञानाभावे तु पञ्चात्मकात् भगवतः सर्वसुखं ... स च स्वर्गो द्विविधः ... सत्त्वाकारान्तःकरणे सर्वहानिवृत्तौ यद् आत्मसुखं प्रकटीभवति तद् अग्निहोत्रादिसाध्यम्. सर्वदेवानाम् अधिकृतानां तुष्टौ आध्यात्मिकत्वे यागस्य जाते आत्मानन्दः प्रकटो भवति. एतदभावे तु भौतिकत्वे स्वर्गलोको भवति इति अर्थः” (तत्त्वदी.नि.सर्वनि. ४-५)

पुष्टिफल :

“रसो वै सः. रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति ... एषह्येव आनन्दयाति” (तैत्ति. उप. २।७।१)

“सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता” (तैत्ति.उप. २।१।१)

“गतेरर्थवत्त्वम् उभयथा अन्यथा हि विरोधः” (ब्रह्मसू. ३।३।२९)

“गतेः ज्ञानस्य अर्थवत्त्वं फलजनकत्वम् उभयथा मर्यादापुष्टिभेदेन इति अर्थः. अत्र अयम् आशयः. “एष उ एव साधु ...लोकेभ्य उन्निनीषति” (कौ.उप.३।८) इत्यादिश्रुतिभ्यो भगवान् सृष्टिपूर्वकालएव एतस्मै जीवाय एतत्कर्म कारयित्वा एतत्फलं दास्य इति विचारितवानिति तथैव भवति. तत्र उक्तरीत्या मुक्तिसाधनानुगमे हेतुः अवश्यं वाच्यः. एवं सति कृतिसाध्यं साधनं ज्ञानभक्तिरूपं शास्त्रेण बोध्यते. ताभ्यां विहिताभ्यां मुक्तिः मर्यादा. तद्रहितानामपि स्वस्वरूपबलेन स्वप्रापणं पुष्टिः इति उच्यते. तथा च यं जीवं यस्मिन् मार्गे अङ्गीकृतवान् तं जीवं तत्र प्रवर्तयित्वा तत्फलं ददाति इति सर्वं सुस्थम्. अतएव पुष्टिमार्गे अङ्गीकृतस्य ज्ञानादिनैरपेक्ष्यम्, मर्यादायाम् अङ्गीकृतस्य तदपेक्षित्वं च युक्तमेव इति भावः. अत्र साधकत्वेन विपक्षे बाधकम् आह अन्यथा हि विरोधः इति. अन्यथा मर्यादा-पुष्टिभेदेन व्यवस्ताया अकथने विरोधाद् हेतोः तथा इति अर्थः. ...मर्यादा-पुष्टिभेदेन अङ्गीकारे वैलक्षण्याद् आद्यायाम् अङ्गीकृतानां मुमुक्षयैव श्रवणादौ प्रवृत्तिः, तद्दातृत्वेनैव भगवति प्रेमापि, नतु निरुपधिः. ...पुष्टिमार्गे अङ्गीकृतेस्तु अनुग्रहसाध्यत्वात् तत्र च पापादेः अप्रतिबन्धकत्वात् श्रवणादिरूपा प्रेमरूपा च युगपत्, पौर्वापर्येण वा वैपरीत्येन वा भवत्येव. अत्र श्रवणादिकमपि फलरूपमेव, स्नेहेनैव क्रियमाणत्वात् न विधिविषयः. ...एतादृशस्यापि यदि विकर्म भवेत् तदा तन्निवृत्त्यर्थं न तेन अन्यत् कर्तव्यम्. भगवानेव हृदि निविष्टः तद्धुनोति यतः इति”.

२०. “अथ शुद्धपुष्टिमार्गे अङ्गीकृतस्य व्यवस्थाम् आह. “सोऽश्नुते” (तैत्ति.उप.२।१) इत्यादिना. अत्र अयम् अभिसन्धिः. यथा स्वयं प्रकटीभूय लोके लीलां करोति तथा अत्यनुग्रहवशात् स्वान्तःस्थितमपि भक्तं प्रकटीकृत्य तत्स्नेहातिशयेन तद्वशः सन् स्वलीलारसानुभवं कारयतीति स भक्तो ब्रह्मणा परब्रह्मणा पुरुषोत्तमेन सह सर्वान् कामान् अश्नुते इति. ‘च’काराद् उक्ता श्रुतिः स्मृतयश्च संगृह्यन्ते. एवं सति ज्ञानमार्गीयाणाम् अक्षरप्राप्तिरेव, भक्तानामेव पुरुषोत्तमप्राप्तिः इति सिद्धम्” (भाष्य ४।३।१७).

२१. “आप्रायणेत्यधिकरणे भगवत्प्राप्तिरूप-परमफलपर्यन्तं तस्य सैव अवस्था तिष्ठति. परमफलं च तस्य साक्षाद्भगवत्सेवनरूपं सिध्यतीति अनुप्रसङ्गेन पुष्टिमार्गीयस्य उक्तम्. ...तेन पुष्टिमार्गीयस्य

जीवतः इदमेव अवान्तरफलम् इति बोधितम्” (वेदा.धि.माला.४।१।५).

२२. “यत्र नान्यत् पश्यति नान्यत् शृणोति नान्यद् विज्ञानाति स भूमा... स कस्मिन् प्रतिष्ठितः इति. स्वे महिम्नि...(२४). सएव अधस्तात् स उपरिष्ठात् स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः सएव इदं सर्वम् इति. अथातो अहङ्कारादेशएव अहमेव अधस्ताद् अहमेव उपरिष्ठाद् अहं पश्चाद् अहं पुरस्ताद् अहं दक्षिणतो अहम् उत्तरतो अहमेव तदं सर्वम् इति(२५/१). अथात आत्मादेशएव आत्मैवाधस्ताद् आत्मोपरिष्ठाद् आत्मा पश्चाद् आत्मा पुरस्ताद् आत्मा दक्षिणत आत्मा उत्तरत आत्मैवेदं सर्वम् इति. स वा एष एवं पश्यन् एवं मन्वान एवं विज्ञान् आत्मरति-आत्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति. तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति(२५/२).” (छान्दो.उप.७।२४,२५।१)

२३. प्रदानवदेव तदुक्तम् (३।३।४३)

अथेदं विचार्यते. सर्वात्मभावो विहितकर्मज्ञानभक्तिसाध्य न वा इति. ... प्रदानवत्. प्रकृष्टं दानं वरदानम् इति यावत्. तद्वदेव इति अर्थः. वरेण हि स्वकृत्यसाध्यमपि सिध्यति इति. ...सर्वात्मभावे स्वरूपमाप्तिविलम्बासहिष्णुत्वेन अत्यार्त्या स्वरूपातिरिक्तास्फूर्त्या तद्भावस्वाभाव्येन गुणगानादिसाधनेषु कृतेष्वपि अप्राप्तौ स्वाशक्यत्वं ज्ञात्वा प्रभुमेव शरणं गच्छत्येतच्च न स्वकृतिसाध्यमिति सुष्ठूक्तं प्रदानवद् इति (भाष्य).

२४. “उपपूर्वमपि त्वेकं भावमशनवत् तदुक्तम्” (३।४।४१) भक्तिमार्गेण साक्षात्सद्भावोऽपि तदीयभावमात्रमपि अशनवत् साक्षाद्भगवत्स्वरूपभोगवदेव मन्यते. तदुक्तं भागवते “अथ ह वाव...” (भाग.पुरा. ६।१।३९) इत्यादिना.

२५. “व्यतिरेकस्तद्भावाभावित्वात् न तु उपलब्धिवत्” (३।३।५४) “ज्ञानिनां गुहासु परमव्योम्नो व्यतिरेकएव, तत्र हेतुः तद्भावाभावित्वाद् इति. “यमेवैष वृणुते” इति श्रुतेः वरणाभावे भगवद्भावस्य असम्भवात्. ज्ञानिनां तथावरणाभावात् भगवद्विषयको भावो न भवति इति तथा इति अर्थः”. ... यस्मै भक्ताय यल्लीलाविशिष्टं स्वस्वरूपम् अनुभावयिता प्रभुः भवति तदगुहायां तल्लीलाश्रयभूतम् अक्षरस्वरूपं वैकुण्ठलोकवद् आविर्भावयतीति न उक्तशङ्कालेशोऽपि”. २६. “पुरुषार्थोऽतःशब्दाद् इति बादरायणः” (३।४।१) “अतः सर्वात्मभावादेव केवलात् पुरुषार्थः सिध्यति. कुतः? शब्दात्. श्रुतेः इति अर्थः. श्रुतिस्तु “नायमात्मा...” इत्यादिका, “ब्रह्मविदाप्नोति परम्” इत्यादिका, “तमेवं विद्वानमृत इह भवति” इति. “यत्र नान्यत् पश्यति” ...एतदादिश्रुतिषु पूर्वोक्तरीत्या केवलस्यैव भगवद्भावस्य फलसाधकत्वं श्रूयते इति तथा. अत्र ... ‘शब्द’पदं यद् उक्तवान् तेन श्रुति-स्मृत्यात्मिकः सर्वोपि प्रमाणशब्दो हेतुत्वेन व्यासाभिमतः इति ज्ञायते. तेन “केवलेन हि भावेन...” इत्यादिरूपा स्मृतिरपि संगृह्यते. ...अपरं च, वैदिकसिद्धान्ते भगवत्स्वरूपस्यैव स्वतन्त्रपुरुषार्थत्वात् प्राप्ततत्स्वरूपाणां मुक्त्यनिच्छाकथनात् मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात् च मुक्तेः अपरमपुरुषार्थत्वात् सा भवतु नाम अन्यैः साधनैः. वस्तुतः परमपुरुषार्थो यः उक्तरूपः स तु सर्वात्मभावेनैव इति ज्ञापनाय ‘फल’पदम् अनुक्त्वा ‘पुरुषार्थ’पदम् उक्तम्”. (भाष्य)

२७. “नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः” (मुण्ड.उप.३।२।३) इति. अत्र भगवद्दरणानन्तरमपि जीवबलं कतमद् यपेक्षो भगवत्लाभः इति जिज्ञासायां सर्वात्मभावएव बलम् इति निर्णयते. तस्यैव मर्यादाबलोपमर्दकत्वाद् भगवद्वशीकारहेतुत्वात् च. ब्रजसीमन्तिनीनां प्रभुवचनातिक्रममपि कृत्वा



स्वरूपपरिग्रहः तद्बलेनैव यतः इति आत्रेय आचार्यो मनुते” (भाष्य)

२८. “यो दुस्त्यजान् क्षिति-सुत-स्वजनार्थ-दारान्, प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सद्यावलोकम्, नैच्छन् नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विद्, सेवानुरक्तमनसाम् अभवोपि फल्गुः” (भाग.पुरा.५/१४/४४)

२९. “कृत्स्नभावात्तु गृहिणोपसंहार” केचन भक्ताः स्वगृहेष्वेव स्नेहेन भगवदाकारे विविधोपचारैः सेवां कुर्वन्तः तथैव निर्वृत्या मुक्तिमपि तुच्छां मन्यन्ते” “त्यागे वाङ्मनसोरेव भगवति विनियोगो न सर्वेन्द्रियाणाम्, गृहिणस्तु सर्वैः प्रकारैः भजनं भवतीति परिजनश्च कृतार्थो भवतीति च भजने कृत्स्नता भवतीति तेन उपसंहारः कृतः” (३।४।४७)

“कामादितरत्र तत्र चायतनादिभ्यः” (३।३।३९) शास्त्रे सर्वथा हेयत्वेन उक्ता गृहाः. सर्वनिवेदनपूर्वकं गृहेषु भगवत्सेवां कुर्वतां तदुपयोगित्वेन तेभ्यएव मुक्तिः भवति इति अर्थः. एतादृशनां गृहा भगवद्गृहाएव इति ज्ञापनाय ‘आयतन’पदम्. तेषु तथा प्रयोगप्राचुर्यात्. ‘आदि’पदेन स्त्री-पुत्र-पश्वायदः संगृह्यन्ते” )

३०. “भगवता सह संल्लापो दर्शनं मिलितस्य च ... तदन्तिकगतिः नित्यम् एवं तद्भावनं सदा, इदमेवेन्द्रियवतां फलम्” (भाग.पुरा.सुबो.कारि.१०।१८।७)

३१. “ब्रह्मविदाप्नोति परम् ... सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म. यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्. सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति”. (तैत्ति.उप.२।१).



## चर्चा

ब्रह्मसूत्राणुभाष्यमें पुष्टिफल

श्रीशरद् गोस्वामी

**गो. योगेश :** आलेखमें सर्वात्मभावके निरूपण होवेके बाद अचानक प्रारब्धभोगकी बात कैसे आई? ये ऑर्डर कौनसे सन्दर्भमें है?

**गो. शरद् :** सर्वात्मभाव तो या भूतलपे होनेवाली अनुभूति है. यासु वाकु अपन पुष्टिभक्तकी जीवन्मुक्तितुल्य अवस्था कह सके हैं. विदेहमुक्ति याके पीछेकी फलावस्था है. विदेहमुक्तिको जब प्रसङ्ग आयेगो तब ये प्रश्न होयगो के पुष्टिभक्तके कर्मनको नाश कैसे होयगो. या कारणसु सर्वात्मभावको निरूपण पहले कियो है और वाके पीछे प्रारब्धकी चर्चा है. ये क्रमसङ्गति है.

**असित शाह :** भोगके स्वरूपके निरूपणके सन्दर्भमें प्रश्न है. श्रीमहाप्रभुजी सेवाफलविवरणमें लिखे हैं के भोग दो तरहके होवे हैं : लौकिक और अलौकिक. वामें अलौकिक भोग एज़-गुड्-एज़ अलौकिकसामर्थ्य है. और यहां आपने जो क्रम बताया है के फलमें भोग, मोक्ष और भगवत्प्राप्ति या तरहको तारतम्य है. माने भोग निकृष्ट है, मोक्ष वासु ऊपर है और भगवत्प्राप्ति उत्कृष्ट है.

**गो. शरद् :** भोग, मोक्ष और भगवत्प्राप्ति मैं प्रवाही, मर्यादा और पुष्टि जीवके सन्दर्भमें कह रह्यो हूं. प्रवाही जीव “लौकिके लौकिकं फलम्” न्यायसु लौकिककु ही अपनो फल माने है. मोक्ष मर्यादाजीवकु अभिलषित फल है. और भगवत्प्राप्ति पुष्टिजीवकु अभीष्ट फल है.

**असित शाह :** ये तो आपने अधिकार विवेचनाके आधारपे उत्तर दियो. पर भोग, मोक्ष और भगवत्प्राप्ति इन तीन फलनको आपसी कोरिलेशन ऐसो जरूरी है के भोग ऑल्वेज़ निकृष्ट होयगो.

**गो. शरद् :** ऐसो कोई आशय नहीं है.

**असित शाह :** जैसे प्रवाही जीवकु अपन लेवें तो वाकु भी कोई तरहसु तो भोग, मोक्ष औ भगवत्प्राप्ति हो ही सके है. जैसे प्रलयमें “कण्णस्यात्मरतौत्वस्य लयः सर्वसुखावहः”. और कुछ लौकिक भोग वाकु सृष्टिमें भी मिल रहे हैं. कोई

तरहको मोक्ष भी उनकु मिलतो होयगो. जैसे कोई सांसारिक आपत्तिसु छुटकारा. तो भोग, मोक्ष और भगवत्प्राप्ति ये तीन केटेगरिमें आपसमें ऐसो कोरिलेशन् आप सजेस्ट करनो चाह रहे हो के इनमें उत्तरोत्तर उत्कृष्टता है.

**गो. शरद् :** मैने पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदके सन्दर्भमें निरूपण कियो है. वामें क्या अनुपपत्ति है?

**असित शाह :** सेवाफलविवरणमें जो श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा कर रहे हैं वामें व्युत्क्रम नहीं लगे है? पर्सनलि मोकु ऐसो लगे है के यामें ऑर्डर जैसो कुछ नहीं है. फलकी वेराय्टी तीन हैं : भोग, मोक्ष और भगवत्प्राप्ति. जीवको सन्दर्भ यदि छोड़ देवें और केवल भोग, मोक्ष और भगवत्प्राप्ति को विचार करें तो उनमें ये जरूरी नहीं है के भगवत्प्राप्तिवालो उत्कृष्ट होयगो, मोक्षवालो मध्यम और भोग अधम होयगो.

**गो. शरद् :** ठीक बात है. प्रवाही जीव संसारसुख भोग रह्यो है तो वाकु आनन्द वाही रूपमें उपलब्ध है, वोही वाकेलिये सर्वस्व है.

**असित शाह :** दूसरो प्रश्न है. आपके निरूपणसुं ऐसो लगे है के विविध प्रकारके फल हैं : निकृष्ट, मध्यम और उत्कृष्ट. जीवात्मा जैसो साधन करेगो वाकु वा प्रकारको फल मिलतो जायेगो. पर यदि अपन पुष्टिजीवके सम्बन्धमें सोचें तो लौकिकभोगके लिये अपन ये कहेंगे के वामें कुछ प्रतिबन्धकता है. ऐसे ही यागादिक कर्मको कोई सत्फल पुष्टिजीवकु मिलो तो वो भी भक्तिमें प्रतिबन्धक होवे है. या विषयको खुलासा ब्रह्मसूत्रमें कहीं मिले है ?

**गो. शरद् :** सूत्रमें तो स्पष्टतया याको निरूपण नहीं है पर भाष्यमें कई ठिकाने ऐसो निरूपण मिले है के भगवान् पुष्टिजीवकी अन्यथा गति नहीं करें हैं. अर्थात् लोकमें जिनकु सत्फल कह्यो जाये है पर पुष्टिभक्तिमें वो प्रतिबन्धक यदि बने है तो पुष्टिजीवकु प्रभु वैसे फलकी प्राप्ति सु बचावे हैं. जैसे “ब्रह्मानन्दात् समुद्भूत्य भजनानन्दयोजने” में और “न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्” में कह्यो है ऐसे.

**असित शाह :** जैसे कह्यो है के “अथाऽपि वेदनिन्दायाम् अधर्मकरणात् तथा, नरके न भवेत् पातः किन्तु हीनेषु जायते”. कोई पुष्टिजीवसु कभी अधर्माचरण हो जावे वाके कारण जैसे वाकु हीन योनि मिल सके है ऐसे पुष्टिजीवके धर्माचरणसु वाकु कभी स्वर्गादिक भी प्राप्त हो सके है.

**गो. शरद् :** सही है. परन्तु भगवान् जब कोई पुष्टिजीवकु पुष्टिफल प्रदान करवेके लिये

कृतसङ्कल्प होवे हैं तब वाकु मार्गसुं विचलित होवे नहीं देवे हैं.

**असित शाह :** आपने लिख्यो है के नित्यलीलास्थ भोग-सामग्रीमें प्राकृतताकी गन्ध भी नहीं होवे है. वो तो ठीक ही है पर अपने यहां भूतलपे अपने घरमें ठाकुरजीकु जो भोग-सामग्रीको समर्पण करे हैं उनकु अपन क्या कहेंगे? अप्राकृत तो नहीं कहेंगे, आप क्या सजेस्ट करोगे?

**गो. शरद् :** तृतीयाध्यायमें सर्वात्मभावकी अनुभूतिको जहां वर्णन है वामेंसु थोड़ो संकेत मिले है. पर स्पष्ट शब्दनमें निरूपण या विषयको नहीं है. पर शास्त्रमें कह्यो है: “मन्निष्ठ निर्गुणं स्मृतम्” “मन्निकेतन्तु निर्गुणम्”. श्रीमहाप्रभुजी भी आज्ञा करे हैं : “सर्वेषां ब्रह्मता ततः”. प्रभुको समर्पित पदार्थ, प्रभुसु जुड़ी भई वस्तु लोकविलक्षण बन जावे है. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के समर्पित पदार्थकी ‘ब्रह्मता’ हो जावे है. यद्यपि साधारण मनुष्यकी दृष्टिमें ऐसी सामर्थ्य नहीं होवे है के वो इन पदार्थनकी सच्चिदानन्दात्मकता या ब्रह्मता को अनुभव कर सके पर प्रभु जब उन पदार्थनको भोग करे हैं तब वो लोकविलक्षण हो जावे हैं. इन पदार्थनकी प्रतीतिको प्रकार लौकिक विषयनकी प्रतीतिसु अलग होवे है वाको निरूपण श्रीलालूभट्टजीने प्रमेयरत्नार्णव ग्रन्थके प्रपञ्चविवेकमें कियो है. अपने यहां ऐसे पदार्थनकेलिये भगवदीय, दिव्य, अलौकिक, स्वरूपात्मक, भावात्मक आदि शब्दनको प्रयोग होवे है. अभी श्रीश्यामदादाने कह्यो ‘अधिप्राकृत’. ये शब्द भी प्रयुक्त हो सके है.

**असित शाह :** मेरे हिसाबसु “उच्छिष्ट भोजिनो दासास्तव माया जयेमही” कह्यो है. याके आधारपे ‘अमायिक’ कह सकें.

**हितेन्द्र शाह :** आपने लिख्यो है के “पुष्टिमार्गिके प्रारब्धभोगका नाश भगवत्कृपाबलसे ही हो जाता है”. यहां ये प्रश्न होवे है के पुष्टिमार्गिकी साधनावस्थामें प्रारब्धभोगकी क्या व्यवस्था है?

**गो. शरद् :** वा स्थितिमें जो व्यवस्था अन्य जीवनके लिये है वाके अनुसार ही पुष्टिजीवकु भी प्रारब्धको भोग प्राप्त होयगो. भगवत्कृपाबलसु प्रारब्धको नाश खास करके वा बखत बतायो गयो है के जब वाकु भगवान् पुष्टिमार्गीय आत्यन्तिक फल देने जा रहे हैं.

**हितेन्द्र शाह :** ये प्रश्न या लिये खड़ो भयो के ब्रह्मसम्बन्ध होनेके बाद दोष तो रहे ही हैं, पर वो दोष भगवद्भक्तिमें बाधक नहीं होवे हैं. प्रारब्धभोगके नाशके

साथ याको कोरिलेशन् कुछ हो सके है ?

**गो. शरद् :** भगवान् अपनी विशेष इच्छासुं कोई पुष्टिजीवके दोषन्को स्वरूपतः नाश करने चाहें तो ऐसो कर सके हैं. वो तो ब्रह्मसम्बन्धके बिना भी प्रभुकी कृपासु सम्भव है. पर अपन सबनकी अनुभूतिसु ये निर्विवाद है के, सामान्यतया, ब्रह्मसम्बन्धसु दोषन्की निवृत्तिको अर्थ दोषनको भक्तिमें प्रतिबन्धक नहीं बननो ऐसो है, दोषनको स्वरूपतः नाश नहीं है. श्रीपुरुषोत्तमजीने ये बात सिद्धान्तरहस्यकी विवृतिमें स्पष्ट करी है. जहां तक प्रारब्धके नाशको प्रश्न है तो उनके नाशकी आवश्यकता खास करके तब होवे है के जब कोई जीवात्माकु अन्तिम फल प्रदान करने है. यदि जन्मपरम्परा चालू रखनी है तो प्रारब्धके नाशकी आवश्यकता ही नहीं है.

**अंशु शाह :** आपने लिख्यो है के “भगवान् पुष्टिजीवोंके प्रारब्धका भोग उनके शत्रु-पुत्र-मित्र आदिसे करवा लेते हैं”.

**गो. शरद् :** अपनेलिये ये बड़ी आश्चर्यजनक बात है. पर भगवान् सर्वसमर्थ हैं, जो चाहें सो कर सके हैं. कोईके कर्मफलको भोग कोई दूसरेसु भी करवा सके हैं. ऐसो भगवान् तब करे हैं के जब भगवान् प्रारब्धको नाश भोगसु ही होवे या नियमकु तोड़नो भी नहीं चाहे हैं और पुष्टिजीवकु प्रारब्धफलके भोगसु बचानो भी चाहे हैं.

**गो. श्या. म. :** उपनिषद्को ही वचन है : “तस्य पुत्रा दायमुपयान्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम्”. ब्रह्मज्ञानी और भक्त के अभुक्त पाप-पुण्यके फल यदि भोगनेमें नहीं आवें तो कर्मसिद्धान्त खण्डित होवे है. यासु जो उनको द्वेष करनेवालो होवे उनके प्रति भक्त और ज्ञानी के पापकृत्य डायवर्द् हो जावे हैं, द्वेषके फलके रूपमें. और भक्त और ज्ञानी सु जो स्नेह करे है वाके प्रति उनके पुण्यफल डायवर्द् हो जावे हैं, स्नेह करनेरूपी पुण्यके फलके रूपमें. यासु श्रुतिमें ‘दायम्’ शब्द है. मतलब जो ब्रह्मज्ञानी और भक्त सु राग-द्वेष कनेवालेनुकु भगवान् उनके प्रारब्धके वरिस बना देवे हैं.

**भावेश परमार :** भागवतजीमें तो लिख्यो है के भगवान्को स्मरण अशेष अशुभनुकु हर लेवे है. तब फिर प्रारब्धभोगको प्रश्न ही कहां है?

**गो. शरद् :** भगवान् विशेष कृपावश कोईके प्रारब्धके नाशको निमित्त भगवत्स्मरणकु बना लेवें, अजामिलकी तरह, तो वामें भगवान् स्वतन्त्र हैं. पुष्टिफलके प्रसङ्गमें प्रारब्धनाशको निरूपण या सन्दर्भमें है के जब कोई पुष्टिजीवको

अन्तिम जन्म है और भगवान् वाकु पुष्टिफल देने जा रहे हैं तब वाके बचे-खुचे प्रारब्धको नाश कैसे होयगो? उनके फलभोगसु होयगो या फिर अन्य प्रणालीसु? मर्यादाभक्त और ज्ञानमार्गी, जो सद्योमुक्तिके अधिकारी हैं उनके सम्बन्धमें ऐसी व्यवस्था है के उनके प्रारब्धको नाश भोगसु ही होयगो, बिना भोगके नहीं होयगो. पुष्टिजीवके सम्बन्धमें ये व्यवस्था नहीं है. उनके प्रारब्ध प्रभुकी कृपाके बलसुं नष्ट होवे हैं, उनकुं भोगने नहीं पड़े हैं. अन्तर्गृहगता व्रजभक्तनके प्रसङ्गमें याको निरूपण भयो है.

**देवेन्द्र शाह :** धारो के कोई अेक पुष्टिजव बीजा पुष्टिजव प्रत्ये सद्भाव धारावे छे. बीजा पुष्टिजवने ढाकोरज्ज् अे आ जन्ममां इण आपवानुं विचार्युं छे. अेवाभां जेने पुष्टिइण भणवानुं छे अे पुष्टिजवना पुण्य जे अेना मित्र पुष्टिजवने ढाकोरज्ज् आपीटि तो बियार अेने विना कारणे प्रतिबन्ध न थाय?

**गो. शरद् :** मने अेवुं लागे छे के जे प्रभु कोई पुष्टिजवने इण आपवामां विवम्भ ज करवा मागता होय तो अेम करी पाण शके छे. पाण जे अेवी कोई ईच्छा प्रभुनी न होय तो पुष्टिजव प्रत्ये अेवी इरता प्रभु नर्ली करता होय.

**गो. मनोज :** भूतलपे होती फलानुभूतिमें आपने लिख्यो है के भूतलपे अलौकिक भोगकी सामर्थ्य जीवात्मामें “प्रदीपवदावेश”न्यायसु आवे है. परन्तु यमुनाष्टककी टीकामें तनुनवत्वके लिये श्रीगोकुलनाथजी आज्ञा करे हैं के “एतेन पूर्वदेहनिवृत्तिः सूचिता”. तो इन दो बातनकु कैसे समझनो?

**गो. शरद् :** अपने यहां ‘तनुनवत्व’ और ‘नूतन तनु’ ऐसी दो प्रणाली है. ऐसे प्रभेद क्यों सोचे गये हैं वापे विचार करनो चाहिये. सिद्धान्त ये है के भगवान्, भगवल्लोक, भगवल्लीला आदिको साक्षात्कार प्राकृत देहेन्द्रियादिसु हो नहीं सके है. अब जो जीवात्मा भगवल्लोकमें जावे है वाके तो प्राकृत देहादि यहीं निवृत्त हो जावे हैं और वाको सूक्ष्मशरीर प्रभुके स्वरूपमें लीन हो जावे है. भगवल्लोकमें भगवान् वाकु अलौकिक-दिव्य देह प्रदान करें हैं. वा दहेसु वो अलौकिक भोगको अनुभव करे है. परन्तु भगवान् कई जीवन्कु भूतलपे भी अपनो साक्षात्कार आदि करावे हैं, अवतारकालमें तो साक्षात्कार सार्वजनीनतया होवे है. प्राकृत देहादिसुं भगवत्साक्षात्कार यदि सम्भव नहीं है तो ये कौनसी प्रणालीसुं सम्भव बने है वाकी व्यवस्था “प्रदीपवदावेशः”सु समझायी है. भगवान्के आवेशके कारण भूतलस्थ जीवके देहेन्द्रियादिमें भोगसामर्थ्य आ जावे है.

**कुंजबाला :** पुष्टिजीवको फल या लोकमें होती भगवदनुभूति है या वर्तमान देहके छूटनेके बाद जो मिले है वो फल है? आपने अन्तमें “न स पुनरावर्तते” लिख्यो है. पर अपन तो ऐसो चाहे हैं के पुनः-पुनः जन्म मिले और अपन भगवत्सेवा करते रहें. और आपने लिख्यो है के अवान्तरफलको मतलब गौण फल नहीं है फिर भी मुख्य या चरम फल तो आप भगवत्प्राप्ति ही बता रहे हो यासुं भी ऐसे लगे है के या भूतलपे होती फलानुभूति चरम फलानुभूति नहीं है.

**गो. शरद् :** चरम तो नहीं ही है

**कुंजबाला :** तो ब्रजभक्तनकु जो फलानुभूति भई वाकु अपन चरम नहीं मानेंगे?

**गो. शरद् :** ‘चरम’को मतलब अन्तिम. यदि वाके पीछे कुछ ओर फल मिल रह्यो है तो फिर पहलेवालो ‘चरम’ नहीं कहलायेगो.

**कुंजबाला :** परम नहीं मानेंगे

**गो. शरद् :** परम हो सके है. परम और चरम के बीच कन्फ्युजन नहीं होवे वाकेही लिये मैने अवान्तरफल तथा मुख्यफल, और चरम तथा मध्यपाति फल ऐसे विभाग बताये हैं. भूतलपे जो भगवदनुभूति होवे है वो भी परम फलकी ही अनुभूति है परन्तु वाकु अपन चरम फल नहीं कहेंगे. क्योंकि देहपातके बाद सेवोपयोगीदेहकी प्राप्ति या सायुज्य फल मिलने बाकी हैं. ये फल ‘चरम’ कहलायेंगे.

**कुंजबाला :** तो अपन पुनरावृत्ति क्यों मांगें हैं?

**गो. शरद् :** पुनरावृत्ति वो मांगे है के जाकु देहपातके बाद भगवान् नहीं मिलेंगे ऐसो डर है. पर जाकु देहान्त होनेपे भगवल्लोककी प्राप्ति हो रही है वो पुनरावृत्ति क्यों मांगेगो

**कुंजबाला :** अपन दो फलमें भेद कर रहे हैं न के नित्यलीलामें मिल रह्यो है वो यहांके करते उत्तम है

**गो. शरद् :** उत्तम-अधमकी बात नहीं है. जो यहां मिल रह्यो है वो ही यदि भगवल्लोकमें प्राप्त हो रह्यो है तो फिर पुनः भूतलपे आनेकी क्या आवश्यकता है

**असित शाह :** पुष्टिजीवके सूक्ष्म शरीरके विलयकी प्रक्रियामें आप लिख रहे हो के पुष्टिजीवके सूक्ष्म शरीरको लय भगवान्में होवे है. आवश्यकताको विचार करें तो आवश्यकता स्थूल-सूक्ष्म शरीरकी निवृत्तिकी है. यामें पुष्टिजीवके सूक्ष्म

शरीरको विलय भगवान्‌में नहीं होके दूसरे ठिकाने होवे तो वासु क्या अन्तर पड़े है? दूसरो ये भी है की कई भगवदीयनकु सदेह लीलाप्राप्ति भयी ऐसो उल्लेख वार्तामें आवे है.

**गो. शरद् :** सूक्ष्मदेहके विलयकी प्रक्रियामें ऐसो भेद पुष्टिजीवकी ज्ञानमार्गीसु उत्तमताको ज्ञापक है.

**असित शाह :** उत्कृष्टता कैसे भई? जो सूक्ष्म देह छूट ही गयो वो भगवान्‌में लीन होवे वासु पुष्टिजीवकु क्या फरक पड़े?

**गो. शरद् :** उत्कृष्टता ऐसे भई के भगवानने पुष्टिजीवके सूक्ष्मदेहको भी अङ्गीकार कियो. जो देह मुक्तिमें प्रतिबन्ध है, त्याज्य है, हेय है, जाके त्यागके बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सके है ऐसो देह भी क्योंके पुष्टिजीवको है इतने मात्रसुं वाको अङ्गीकार कर रहे हैं तो ये तो बहोत बड़ी बात हो गई

**कुंजबाला :** जिनकु भगवत्प्राप्ति भई है उनकु फरक पड़े के नहीं पर उनके पीछे जो हैं उनकु ऐसो बोध होवे के प्रभु पुष्टिजीवकु इतनो चाहे हैं के वाके सूक्ष्मदेहको लय भी अपने अंदर करे हैं. तो अपने जैसेनकु तो फरक पड़ेगो.

**असित शाह :** सन्तदासजीकी वार्तामें आवे है के जब उनकी अन्तिम अवस्था हती तब लोगनने कही के इनकु ब्रज ले चलें. तब सन्तदासजीने कही के देहसु यदि ब्रजकी सेवा हो सकती होवे तब तो वहां जानो ठीक है पर ऐसी वृद्ध-असक्त देहकु ब्रजमें ले जानेसु क्या लाभ तो ये अवस्था ऐसी होवे है के वामें इन बातनको विचार नहीं रह जावे है के मृत्युके बाद मेरे प्राणको क्या होयगो, इन्द्रियनको क्या होयगो.

**गो. शरद् :** फलको विचार जैसे जीवात्माके पक्षसु होवे है ऐसे प्रभुके पक्षसु भी कियो जा सके है. सूक्ष्मदेहको विलय कहां होवे वाके सम्बन्धमें कोई पुष्टिजीवको विशेष आग्रह नहीं भी होवे परन्तु प्रभुको आग्रह ऐसो होवे के सूक्ष्मदेह भले त्याज्य गिन्यो जातो होवे पर यदि वो पुष्टिजीवको सूक्ष्मदेह है तो मैं वाको लय भूतनमें नहीं होवे दउंगो, उनको लय मैं अपनेमें करूंगो तो ऐसो प्रभुको आग्रह पुष्टिजीवकी अन्यसुं उत्कृष्टता सिद्ध करे है. अपन भी कई फेंक देने जैसी वस्तुनको संग्रह करते होवे हैं. वस्तुकी कीमत नगण्य होवे पर वाके प्रति भावनात्मक सम्बन्धके कारण अपन वाकु फेंकनो नहीं चाहे हैं.

**गो. श्या. म. :** ये काफी रोचक समस्या है. यामें अपनकु ऐसे सोचनो चाहिये. पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद ग्रन्थके हिसाबसु सोचें तो “प्रवाहेण फलेन च”के



अनुरोधसुं प्रवाह तीनों प्रकारके जीवनमें होवे है. हरेक मार्गी जीवकी एक प्रावाहिकी स्टेज होवे है. ऐसे ही हरेक मार्गी जीवकी एक फलात्मिका स्टेज भी होवे है. प्रावाहिकी स्टेजमें जीवके देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणमें रह्यो भयो अध्यास आविद्यक होवे है. पर ब्रह्मज्ञानीको अध्यास आविद्यक नहीं होके विद्यात्मक होयगो. ऐसे ही भक्तिमार्गी जीवकु फलावस्थामें वाके देहेन्द्रियप्राणान्तःकरण ही केवल नहीं परन्तु सांसारिक दारागारपुत्राप्तमें भी भक्त्यात्मक अध्यास होवे है. भक्त्यात्मक अध्यासके कारण वो उनकुं छोडनो नहीं चाहे है. अध्यासके कारण अपन कोई चीजकु पकडते होवे हैं. अध्यासमें कोई तरहको मोह रह्यो भयो होवे है. अध्यास जब तक है तब तक अपन वस्तुकु छोडें नहीं हैं. जैसे अपने पेटमें रह्यो भयो एपेंडिक्स कोई कामको नहीं है. पर फिर भी वाकु व्यर्थमें निकालनेकी इच्छा अपनकु नहीं होवे है. ये अध्यासके कारण होवे है. ऐसे ही भक्तिमार्गीकु भी अपने देहेन्द्रियादिमें अध्यास है. अन्तर इतनो ही है के वाको अध्यास आविद्यक नहीं होके भक्त्यात्मक है. भक्तके वा भक्त्यात्मक अध्यासकु रिस्पोन्स देवेकेलिये भगवान् ऐसे सोचे हैं के भक्तकी ऐसी इच्छा है के वाकी सकल इन्द्रियनको विनियोग भगवान्में होवे तो भगवान् उनको विलय अपने भीतर करे हैं. या अर्थमें भक्तके अध्यासकी पेंपरिगुं भगवान् करे हैं. कई लोग जिनकु अपने वर्णको अध्यास प्रबल होवे है वो ऐसो सोचे हैं के मृत्युके बाद उनके अखंड देहको अन्तिम संस्कार ही होनो चाहिये वो लोग अपने अंगनको दान करनेमें पाप मानते होवे हैं. पर जिनकु थोडो भी लौकिक अध्यास है वो ऐसो सोचे हैं के मरवेके बाद मेरी आंखनसुं कोई दूसरो देख पातो होवे तो व्यर्थमें मेरी आंखनकुं क्यों जलाऊं! ऐसे लोग अपने अंगनको दान करते होवे हैं. तो प्रभु पुष्टिभक्तके अध्यासकी पेंपरिगुं करे हैं ये बहोत बडो बेनिफिट है. दूसरी बात, भोग, मोक्ष और भगवत्प्राप्ति की हती. शरद्बावाने आनन्दकी जो केटेगरीयें बतार्यीं उनमें एक बात रिमार्केबल है के कोई भी आनन्दको अपन इन्द्रियसु अनुभव करे हैं तब वो 'सुख' या 'दुःख' है. ख = इन्द्रिय. सु + ख = खकु जहां सु होवे, मजा आ रही है, तो वो 'सुख'. ख जहां परेशान है वो दुःख है. ये अनुभूति भी है तो आनन्दकी ही पर इन्द्रियसु कर रहे हैं तो सुख-दुःख होयगो. इन्द्रियसु नहीं करके अन्तःकरणसु कर रहे हैं तो कोई दूसरो रूप ले लेगो.

आनन्दकु सुखरूपसु अनुभव करना, एक प्रक्रिया ये है. और सुखको आनन्दके रूपमें अनुभव करना, ये रिवर्स प्रक्रिया है. ऐसे ही दुःखमें भी समझो. विप्रयोग परमफलवादीनकी समस्या ये है के वो दुःखको आनन्दके रूपमें अनुभव करे हैं. ये एक प्रक्रिया है. याके कारण अपने देहेन्द्रियादिमें आनन्दकी अनुभूतिकी एक पूरी हेयूरार्किकल् रोल है. यासुं जो दैहिक सुख है वो ऐन्द्रिक सुख नहीं है. जो ऐन्द्रिक सुख है वो अन्तःकरणको सुख नहीं है. अन्तःकरणमें भी जो मानसिक सुख है वो बौद्धिक सुख नहीं है. चित्तको सुख बौद्धिक या आहंकारिक नहीं है. अहंकारको सुख चौत्य सुख नहीं है. ऐसे ही दुःख भी केटेगरी वाईस् डिवाईड होवे है. अन्तमें आत्मिक सुख आवे है : **“यन्न दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्, अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं ‘स्व’पदास्पदम्”**. या सुखमें पाछो ब्रह्मानुभूति संवलित ... जैसे सर्वनिर्णयमें कह्यो है के निष्काम कर्म यदि ब्रह्मज्ञान सहित कियो जाय है तो वो वीर्यवत्तर हो जाय है. आत्मसुखमें जैसे ब्रह्मानन्दानुभूति हो सके है ऐसे ही विषयसुखमें भी ब्रह्मानन्दानुभूति हो सके है, विषयदुःखमें भी ब्रह्मानन्दानुभूति हो सके है. बड़े-बड़े तपस्वी लोग कष्ट उठाते हते पर वामें उनकु ब्रह्मानन्द अनुभूत होतो हतो. तो सुख-दुःखमें ब्रह्मानन्दको अनुभव होनो और ब्रह्मानन्दको सुख-दुःखमें अनुभूत होनो ये दोनों अलग बात हैं.

यासु भी ऊपरकी एक कक्षा, अपने हिसाबसु आयेगी, भजनानन्दकी. भजनसुख एक अलग वस्तु है. ऐसे ही भजनदुःख एक अलग वस्तु है. और भजनानन्द एक अलग बात है ये ध्यानमें रखनो चाहिये. जैसे श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के आत्मक्लिष्ट लोकक्लिष्ट चित्तक्लिष्ट सुं सेवा मत करो. देखो, भजन करते भये भी कुछ आत्मक्लिष्ट है, कुछ लोकक्लिष्ट है, कुछ चित्तक्लिष्ट है! ये भजनसु रिलेटेड सुख-दुःख हैं. इन सुख-दुःखमें देखें तो दूसरेनकी दृष्टिमें शोथ पुरुषोत्तमदासजी दुःखी हते पर पुरुषोत्तमदासजीकु तो प्रभुसेवामें सुख ही सुख हतो! सेवा विषयक सुख-दुःखमें आनन्द खोजनो **“आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्”**. और भजनानन्दमें सुख-दुःख देखनो चार्वाकी दृष्टि हो जायेगी. अब भोग, मोक्ष और भगवत्प्राप्ति कु देखो तो उनमें भी ये ही बात काम कर रही है. सोचनेकी बात ये है के क्या अपन भगवत्प्राप्तिमें भोग-मोक्ष खोज रहे हैं या भोग-

मोक्षमें भगवत्प्राप्ति खोज रहे हैं? भोगमें मोक्ष खोज रहे हैं के मोक्षमें भोग खोज रहे हैं? जैसे सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य की कामना मोक्षमें भोग खोजनेकी वृत्ति है. याके विपरीत भोगमें मोक्ष भी आदमी खोज सके है. ऐसे ही भोग-मोक्ष दोनोंनकु अपन भगवत्प्राप्तिमें भी खोज सके हैं और भगवत्प्राप्तिकु इन दोनोंमें भी खोज सके हैं. इनमें कंट्रोलिंग् या डिवाइडिंग् फेक्टर, आनन्दकी फ्रेमके अन्तर्गत सुख-दुःखकी शृंखलामें अपनो एप्टिट्युड् क्या है.

**गो. मनोज :** भोगमें मोक्ष कैसे?

**गो. शरद् :** “त्वयोपभुक्त स्रगन्धो वासोऽलंकारचर्चितः, उच्छिष्टभोजिनो दासाः तव मायां जयेमही”.

**गो. श्या. म. :** बिलकुल. ये भोगमें ही तो मोक्ष खोजनो है! दुनिया परेशान हो जायेगी ये सुनके. पुष्टिमार्गपि लिखनेवाले सब क्रिश्चियन् लोग पुष्टिमार्गकु थीईस्टिक् हेडोनिज़म् (धार्मिक भोगवाद) कहे हैं. भगवान्कु मानके खाओ-पीओ-मौज मारो! ये तो, खैर, उनकी मान्यता है. अपनो धर्म थीईस्टिक् हेडोनिज़म होवे के नही पर एक बात निश्चित है के अपन भोगके पीछे द्वेश भावसु डंडा लेके पड़े नहीं हैं. क्योंकि, अन्ततः, चाहे भोग होवे, मोक्ष होवे या भगवत्प्राप्ति होवे है सब ब्राह्मिक नाम-रूपके विविध प्रकार. यासुं, जब तुमकु ब्रह्मानुभूति है, ब्रह्म ओरिएन्टेड् तुम्हारी वृत्ति हैं तब भोगमें भी ब्रह्म हो सके है. “सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता” ये ब्रह्ममें भोग खोजनो है, विषयमें नहीं.

**असित शाह :** तरतमभाव क्या वाकी चर्चा चल रही हती.

**गो. श्या. म. :** भोगके बजाये नोर्मली मोक्ष अच्छो मान्यो जाय है. भक्तिमार्गीय दृष्टिमें मोक्षके बजाये भगवत्प्राप्तिकु अच्छो माने हैं. पर बात आखिर स्वभावपे आके टिके है. जाको प्रवाही स्वभाव होयगो वाकु कितनो भी समझाओगे तब भी वो भोगकु ही श्रेष्ठतम मानेगो. “स्वभावस्यान्यथा भावो न वै शक्यः कथंचन, अतः त्रिविधजीवेषु त्रिविधा भगवत्कृतिः”.



# શ્રીસુબોધિનીજીમાં પુષ્ટિભક્તિના પરમ-ફલનું નિરૂપણ

ગોપાલદાસ શાહ

પરબ્રહ્મ પરમાત્મા ભગવાન શ્રીકૃષ્ણ જ આદિપુરૂષ તથા ફલરૂપ છે. પ્રભુનો ફલાત્મક અનુભવ ભક્તિવડે જ થાય છે. ભક્તિના સ્વરૂપનો વિચાર કરીએ તો ગાયત્રી બીજ છે, વેદ વૃક્ષ છે અને શ્રીમદ્ભાગવત ફલ છે. વેદમાં નિષ્ણાત હોય તો પણ શ્રીભાગવતજીના જ્ઞાન વગર ફલાનુભવ સંભવિત નથી. તેથી જ શ્રીમદ્આચાર્યચરણ શ્રીવલ્લભાધીશજીએ શ્રીભાગવતજીનો આશય શ્રીસુબોધિનીજીની ટીકામાં પ્રગટ કર્યો છે. શ્રીઆચાર્યશ્રી વાકપતિ છે તથા પ્રેમસહિત પ્રભુની આજ્ઞા છે, તેથી શ્રીઆચાર્યશ્રીએ ‘ભગવાન’ શબ્દથી વાચ્ય અલૌકિક ષડ્ગુણયુક્ત લીલા કરવાવાળા પ્રભુનું તથા તેવી લીલાઓના ફલાનુભવનો વિસ્તાર શ્રીસુબોધિનીજી ટીકાદ્વારા કર્યો છે.

શ્રીમદ્આચાર્યશ્રીદ્વારા પ્રવર્તિત શુદ્ધપુષ્ટિભક્તિમાર્ગમાં પરમફલરૂપે વર્ણિત એવા વચાનામૃતોનો સંગ્રહ નીચે પ્રમાણે છે.

- |                               |                               |
|-------------------------------|-------------------------------|
| ૧. ભગવાન શ્રીકૃષ્ણ            | ૨. કૃષ્ણલીલા                  |
| ૩. પ્રભુનીનિત્યલીલા           | ૪. નિરોધ                      |
| ૫. સર્વાત્મભાવ                | ૬. પ્રભુનીભક્તિ               |
| ૭. આનન્દનીધિ રસરૂપતા          | ૮. ભગવતકૃપા                   |
| ૯. ફલાત્મક નિઃસાધનતા          | ૧૦. પ્રભુનું ગુણગાન           |
| ૧૧. પ્રેમલક્ષણા તથા નવધાભક્તિ | ૧૨. પ્રેમ, આસક્તિ અને વ્યસન   |
| ૧૩. ભજનાનંદ                   | ૧૪. પુષ્ટિભક્તિના પુરુષાર્થો  |
| ૧૫. અલૌકિક સામર્થ્ય           | ૧૬. સાયુજ્ય                   |
| ૧૭. સેવોપયોગીદેહની પ્રાપ્તિ   | ૧૮. સેવા                      |
| ૧૯. માનસીસેવા                 | ૨૦. શરણાગતિ                   |
| ૨૧. ભગવદ્સુધા                 | ૨૨. નિરુપાધિક રતિ અને પ્રીતિ. |

આ બધાં વચનો પુષ્ટિના પરમફલના નિરૂપક છે અને જે લીલા અને જેવા અધિકારી જે પ્રકારનો ફલાનુભવ તેનું નિરૂપણ કરવા તેવી ભગવદ્લીલાને અનુસરીને શ્રીમદ્પ્રભુજીએ યોજેલા છે. તે બાબતમાં અત્યંત સારાંશરૂપે તે અર્થનું સ્વરૂપ નીચે પ્રમાણે થશે.

૧. ભગવાન શ્રીકૃષ્ણ : પરતત્ત્વ એવું પરબ્રહ્મ સ્વરૂપ તથા અલૌકિક એવા અનન્ત

ગુણયુક્ત પ્રભુનું સ્વરૂપ. પ્રભુ તથા તેમના પ્રત્યેક ગુણો અત્યન્ત રસયુક્ત, આનન્દયુક્ત અને ફલસ્વરૂપ હોય છે.

૨. **શ્રીકૃષ્ણલીલા :** એક પદમાં આ શબ્દ મુકવાને કારણે શ્રીકૃષ્ણની લીલાને નિત્ય તથા આનન્દાત્મક જાણવી. તેથી ત્યાં બિરાજમાન પ્રભુ, ભક્ત, લીલાસામગ્રી અને તે સમયે પ્રગટ થયેલી ક્રિયા અને ભાવ, બધું જ આનન્દાત્મક છે, તેથી પરમફલયુક્ત છે.

૩. **પ્રભુની નિત્યલીલા :** પ્રથમ શ્રુતિરૂપાઓને પ્રભુના રાસ સહિત ગોલોકમાં દર્શન થયા, ત્યાં શ્રીગિરીરાજજી, શ્રીયમુનાજી, નિત્યસિદ્ધા યુથ અને સકલ લીલાપરિકર પ્રભુની જેમજ નિત્ય અને આનન્દયુક્ત છે. તેમાં પુષ્ટિજીવોનું પ્રાગટ્ય, લોકરીતિથી સદંશ હોય या ચિદંશ, પ્રગટ આનન્દાંશ સ્વરૂપ છે અને તે પ્રાપ્તિ પ્રભુના વરણ (અંગીકૃતીના) અનુસાર પુષ્ટિભક્તોને પ્રભુ કૃપાથી પ્રાપ્ત કરાવે તેને નિત્યલીલા પ્રાપ્તિ કહેવાશે.

૪. **નિરોધ :** ભક્તોની પ્રભુ સાથે સ્નેહબંધન વડે પરમ આસક્તિ, તેમાં કારણ નિરોધ, સાધન નિરોધ, વ્યાપાર નિરોધ અને ફલ નિરોધ એ રીતે ફલાનુભવમાટે વિવરણ પ્રાપ્ત થાય છે. “નિરોધ એવ મહાફલમ્” એ શ્રીઆચાર્યજીશ્રીની ઉક્તિ છે. આ લીલા મુખ્યત્વે દશમસ્કંધમાં વર્ણિત છે, તેથી કરણવ્યુત્પત્તિ અને ભાવવ્યુત્પત્તિ વડે નિરોધના બન્ને અર્થનો આશય ફલરૂપે જાણવો. મુક્તિ અને આશ્રય સ્કંધનું ફલ પ્રત્યાસતિ રૂપે નિરૂપવામાં આવેલ છે.

૫. **સર્વાત્મભાવ :** આ ફલનો વિસ્તાર બ્રહ્મસૂત્ર તથા શ્રીવ્રજભક્તો સાથેની લીલામાં કહેવામાં આવ્યો છે. શ્રીકૃષ્ણની પ્રાપ્તિમાં આ ભાવ ફલરૂપ છે તથા ફલાન્તઃપાતિ સાધનરૂપ પણ છે. ભગવત્કૃપાલબ્ધ એવા સંયોગરસમાં પ્રગટ થતા સર્વાત્મભાવનું વર્ણન વેણુગીતનાં સુબોધિનીજીમાં છે તથા વિપ્રયોગાત્મક સર્વાત્મભાવનું વર્ણન રાસવખતે પ્રભુ અંતર્ધ્યાન થયાં, તે સમયે પ્રગટ થયેલા આત્માદેશાદિ ચાર છાંદોગ્ય ઉપનિષદ્માં કહેલા ભક્તોમાં પ્રગટ થયેલા ભાવો છે. દેહેન્દ્રિય, પ્રાણ, અન્તઃકરણ અને આત્મા એ સર્વને પ્રભુમાં અલૌકિક આનન્દની અનુભૂતિ એટલે સર્વાત્મભાવ.

૬. **પ્રભુની ભક્તિ :** પુષ્ટિભક્તિ પરમ સ્નેહાત્મક હોય છે. પ્રભુના કૃપામાત્રથીજ એ પ્રાપ્ત થઈ શકે છે. ભક્તની સાધનદશામાં તે પ્રભુની પ્રાપ્તિમાટે કારણ બને છે અને ફલદશામાં શ્રીકૃષ્ણનો સર્વરીતે અનુભવ કરાવનારી છે.

૭. **આનન્દનિધિ રસરૂપતા :** શ્રીકૃષ્ણ “રસો વૈ સઃ” છે, અગણિતાનન્દયુક્ત છે, સંયોગ અને વિપ્રયોગ એવા દ્વિત્વાત્મક રસરૂપે ભક્તોને ફલદાન કરે છે.

૮. **ભગવત્કૃપા :** પુષ્ટિમાર્ગમાં અંગીકૃતજીવને દરેક ફલ શ્રીકૃષ્ણની કૃપાવડે જ પ્રાપ્ત થાય છે. તે કૃપા, જેવું પરમફલ તેવી વિશેષતાવાળી હોય છે. પ્રભુ સ્વતંત્ર અને સર્વજ્ઞ છે. અને ભક્તને આપશ્રીની કૃપા ફલાનુભવ જેવું વરણ કરવામાં આવ્યું હોય તે રીતે પ્રભુ પ્રગટ કરીને ફલાનુભવ કરાવે છે. તેથી કૃપા જીવના સાધનથી સાધ્ય નથી પરન્તુ જેના ઉપર પ્રભુની કૃપા વર્ષે છે તે ભક્ત પુષ્ટિમર્યાદા હોય તો ભક્તિરૂપી સાધન જે પોતે

આનન્દાત્મક છે, તે કરાવીને તે ભક્તને ફલનું દાન કરે છે. શુદ્ધપુષ્ટિભક્તને ફલ માત્ર કૃપાસાધ્ય જ રહે છે.

૯. ફલાત્મક નિઃસાધનતા : ધર્મી સ્વરૂપમાં પરમ નિષ્ઠા પ્રભુસંબંધ માટે અત્યન્ત તાલાવેલી એ પુષ્ટિજીવમાં પરમ નિઃસાધનતાનો ભાવ પ્રગટ કરે છે, જે પોતે ફલાત્મક પણ છે અને ફલાનુભાવક પણ છે.

૧૦. પ્રભુનું ગુણગાન : પ્રભુના વિરલમાં નિજભક્તોના હૃદયમાં પ્રભુ પધારે છે એ વડે જે પ્રભુના ગાન ભક્તો દ્વારા થાય છે, તે મુખ્ય ગુણગાન આનન્દરૂપ પણ છે અને તેવું સૌભાગ્ય, મિશ્રપુષ્ટિમાં અંગીકૃત જીવોને, તે ગુણગાનનું કીર્તન કરવાથી ફલિત થાય છે.

૧૧. પ્રેમલક્ષણા તથા નવધાભક્તિ : માહાત્મ્યજ્ઞાન પૂર્વક પ્રભુમાં સ્નેહ તે વડે કરીને નવ પ્રકારનું ભજન તે નવધાભક્તિ. તે પ્રેમસંલિત કરવામાં આવે તે નિરુપાધિક પ્રેમલક્ષણા ભક્તિ. સાધનદશામાં પરમફલરૂપે પ્રથમ ભક્તિ પ્રગટે છે અને પરમફલદશામાં તે ભક્તિરસ પૂર્ણ પ્રેમસંલિત હોય છે. આવી ભક્તિનું દાન પ્રભુની કૃપાદ્વારા જ થાય છે.

૧૨. પ્રેમ, આસક્તિ અને વ્યસન : પ્રભુમાં આ ત્રણેય ભાવો માત્ર પ્રભુકૃપાલભ્ય જ છે. ભગવત્સ્નેહની પરાકાષ્ઠાને પ્રગટ કરનાર એવા ભક્તોના ભાવનું આમાં વર્ણન થયેલું છે.

૧૩. ભજનાનન્દ : રસાત્મક ફલાત્મક શ્રીકૃષ્ણના ભજનનો આનન્દ.

૧૪. પુષ્ટિભક્તિના પુરુષાર્થો : શ્રીહરિનું દાસ્ય તે ધર્મ, હરિ પોતે જ અર્થરૂપ, શ્રીકૃષ્ણ દર્શનની તાલાવેલી તે કામ અને શ્રીકૃષ્ણનું સ્મરણ અને ભજન અહર્નિશ ચાલતું રહે તે મોક્ષ. આ ફલરૂપ પુષ્ટિમાર્ગીય પુરુષાર્થ કહેવાય છે.

૧૫. અલૌકિક સામર્થ્ય : સેવાફલગ્રન્થ પ્રમાણે સેવામાં પ્રગટ થતું ફલ.

૧૬. સાયુજ્ય : પ્રભુસાથેની સંયોગાનુભૂતિનું ફલ.

૧૭. સેવોપયોગી દેહની પ્રાપ્તિ : નિત્યલીલામાં પ્રભુસ્વરૂપના આસ્વાદનમાં અધિકારસમર્પક અને ફલરૂપ છે.

૧૮. સેવા : પુષ્ટિભક્તિમાં ભગવદ્રસાનુભાવક તથા ભક્તના તનુવિત્તના સર્વસમર્પણનો આનન્દાત્મક વિનિયોગ તથા ભૂતલ ઉપર નિત્યલીલા પુષ્ટિજીવોનું શ્રીકૃષ્ણ સેવા એ જ પરમ સૌભાગ્ય છે. સેવા એટલે પ્રભુરસનું આસ્વાદન અને સ્વામીને સંતોષાત્મક કૃતિ, રતિ અને ભાવ.

૧૯. માનસી સેવા : પરમ આનન્દ તથા સ્નેહ વિષેશથી સતત પ્રભુનું આસ્વાદન “યથા વ્રજસીમન્તિનીનામ્”. સેવામાં પણ સેવાનું પરમફલ.

૨૦. શરણાગતિ : શ્રીકૃષ્ણને જ રક્ષક, પોષક અને સુખદ એવો સ્વામીભાવ ધારણ કરીને પ્રભુને શરણે રહેવું તે.

૨૧. ભગવત્સુધા : આનન્દસ્વરૂપ અને આનન્દના સારરૂપ. તેનાં ત્રણ પ્રકારો : ૧. સર્વાભોગ્યાસુધા ૨. ભગવદ્ભોગ્યા સુધા ૩. દેવભોગ્યાસુધા. માત્ર પ્રભુની જ કૃપાલભ્યતા, પ્રભુને અભીષ્ટ, આનન્દાત્મક, અલૌકિક લીલાનું દાન કરવાના આશયથી

પ્રભુ ભક્તોને દાન કરે છે.

**૨૨.નિરુપાધિક રતિ અને પ્રીતિ :** આત્મરતિ નિરુપાધિક છે, તેવી શ્રીકૃષ્ણમાં રતિનો પ્રવાલ તે જ પરમ પ્રીતિ એવા દુર્લભ ફલની પ્રાપ્તિ થાય છે.

પુષ્ટિભક્તિના પરમફલનો વિચાર કરતી વખતે, પ્રથમ એ વિચારીએ કે ફલ કોને કહેવાય?

અલૌકિકરીતે જે પરમ આનન્દાત્મક છે અને આનન્દરૂપ પુરૂષાર્થના સાધક છે તેને પરમફલ કહેવામાં આવે છે. શ્રીકૃષ્ણનું સ્વરૂપ “૨સો વે સઃ” તરીકે વેદ-શાસ્ત્રોમાં વર્ણવી, તે પ્રમાણે પ્રભુ પોતે પરમરસરૂપ છે, તેનો અર્થ પરમ આનન્દરૂપ છે; આ અસાધારણ ધર્મના કારણે પ્રભુ શ્રીકૃષ્ણજ પરમફલ ગણાય. ફલને અનુભવ કરનાર અધિકારીને જે અનુભવની અપેક્ષા હોય, તે પદાર્થ તેના માટે ફલરૂપ ગણાય છે.

પ્રભુએ પુષ્ટિ, પ્રવાલ અને મર્યાદા પ્રકારથી ત્રિવિધ જીવોનું વરણ કરેલું છે. જેનો આશય વિસ્તારથી ‘પુષ્ટિપ્રવાલમર્યાદા’ ગ્રન્થમાં, ષોડશ ગ્રન્થોમાં આપેલો છે. આ ત્રિવિધ ભેદવડે તેમનો અધિકાર, તેમનું સ્વરૂપ, તેમની સાધનાની પ્રણાલી અને તેમના માટે યોગ્ય એવા ફલનિરૂપણમાં પણ અનેક પ્રકારની ભિન્નતા જોવામાં આવશે. સામાન્ય રીતે, જીવને જે પદાર્થ યા વિષય માટે પ્રીતિ થાય છે તેને તે ફલરૂપ ગણે છે. જે સમયે જીવ અવિદ્યાગ્રસ્ત હોય તો તેનો ફલ-સમ્બન્ધી નિર્ણય ભ્રાન્ત હોવાનો સંભવ તો છે જ! કેમકે, જે વિષયમાં શુદ્ધ આનન્દ નથી તો પણ તે જીવને પોતાના પ્રીતિના સ્વભાવને કારણે પ્રીતિ ઉત્પન્ન થાય છે; તેથી તે પ્રીતિને ફરીથી અન્તઃકરણથી અનુભવ કરીને તે પદાર્થને ભ્રમથી ફલ માને છે. તે કારણે આવા ફલ તો મિથ્યા ફલ જ કહેવાય. આ નિબન્ધમાં તો જે ખરેખર ફલ જ છે, જેનો નિર્ણય શાસ્ત્રદૃષ્ટિથી કરવામાં આવ્યો છે અને તે ફલ પરમ અથવા ઉત્કૃષ્ટ હોવાથી શાસ્ત્ર તેને પરમફલ કહે છે. તેથી જ, તેવા ફલરૂપ એટલે સદાનન્દરૂપ એવા શ્રીકૃષ્ણ, શ્રીકૃષ્ણના નામ ગુણ રૂપ લીલા વિગેરે ધર્મો પણ પરમફલરૂપે પુષ્ટિભક્તિમાર્ગમાં કહેવામાં આવ્યા છે. તેવા વિવિધ ફલોના સ્વરૂપસૂચક નામો તથા તેમની અસાધારણતા જણાવનારા ચિહ્નો આપણે ઉપર જણાવેલી પ્રસ્તાવનામાં સારી રીતે વિગતવાર છે તે ધ્યાનથી અધ્યયન કરવાથી પરમફલના વિષયો સ્પષ્ટ થઈ જશે.

**પરમફલરૂપ <sup>૧</sup>ભગવાશ્રીકૃષ્ણ <sup>૧૨</sup>પ્રેમ, આસક્તિ અને વ્યસન <sup>૨૨</sup>નિરુપાધિક રતિ અને પ્રીતિ નો પરિચય :**

પ્રભુમાં રતિ એ જ પરમપ્રીતિનું સાધક (બ્રહ્માજીને શ્રીકૃષ્ણનો ઉપદેશ ભા. ૩।૮।૪૨). શુદ્ધપુષ્ટિમાર્ગમાં પરમફલરૂપે વર્ણિત એવા વચનામૃતોનો સંગ્રહ તથા તેનો અર્થઘટન પ્રગટ કર્યા પછી તેવા પરમફલોને પ્રાપ્ત કરવા માટે તેના અસાધારણ કારણરૂપે

શ્રીભાગવતજી તૃતીય સ્કન્ધના નવમા અધ્યાયના ૪૨મા શ્લોકમાં શ્રીકૃષ્ણે શ્રીબ્રહ્માજીને કહ્યો છે તે શ્લોક : “અહમાત્માઽઽત્મનાં ધાતઃ...”.

સર્વપ્રાણીમાત્રને સર્વ રીતે ફલરૂપ જણાય તેવા ફલનો નિર્ધાર કરીને કહ્યું કે પ્રભુમાં પ્રીતિ એ જ પરમફલનું દાન કરનાર છે. તે પ્રીતિ કેવી રીતે ઉત્પન્ન થાય તે પ્રકાર આ શ્લોકમાં જણાવ્યો છે. ફલ એટલે શું? તેનો વિચાર કરતાં; ફલ એને જ કહેવાય કે જે ફલ જ હોય સાધન નહિ. અફલ પણ ન હોય. તેથી આવા ફલ માટે તો બધાને આકાંક્ષા રહેશે જ. તેનું જ પ્રતિપાદન એટલે “આત્માના આત્મા, પરમાત્મા શ્રીકૃષ્ણ જ છે, તેથી તેમનામાં રતિ કરવી અને તેથી જ પ્રીતિ ઉત્પન્ન થશે; તેને ફલ જાણો”. તેના સુબોધિનીજીના ભાવાનુવાદનો પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે :

હું બધાના આત્માઓનો આત્મા છું. જેમ સર્વ ગંગાજળનું મૂળ ગંગા હોય છે, સર્વ મૃત્તિકાઓનું મૂળ પૃથ્વી હોય છે, સર્વ પત્ર-શાખાદિનું મૂળ વૃક્ષ હોય છે તેવી જ રીતે હું (શ્રીકૃષ્ણ) બધા આત્માઓનો આત્મા છું. વળી, “પ્રેષ્ઠઃ સન્ પ્રેયસામપિ” તેથી જ મૂળ પ્રીતિના વિષય પ્રભુ હોવાથી મારામાં રતિ કરવી, દેહે વિગેરેમાં રતિ ન કરવી. દેહાદિ તો આત્મસમ્બન્ધના કારણે પ્રિય લાગે છે. પ્રભુ પ્રેષ્ઠ હોવા છતાં આવી પ્રીતિ સ્થાયીરૂપે જીવાત્મા કેમ ધારણ નથી કરતાં? તો પ્રભુ આજ્ઞા કરે છે કે “હું બધાનું હિત જ કરું છું, પરન્તુ જીવને મારામાં સ્નેહનો અભાવ હોવાને કારણે જીવાત્માઓ પ્રભુદ્વારા સ્નેહપૂર્વક અપાયેલું સુખ ગ્રહણ કરતા નથી. તેથી જે જીવ મારામાં રતિ કરશે, તે નિરુપાધિક સ્નેહવડે, મેં (પ્રભુ) જે વિચાર્યું છે, તે ભાવ હિત માટે જ છે, એવો ભાવ સ્નેહથી ગ્રહણ કરશે, તત્પશ્યાત્ જીવ કૃતાર્થ થશે જ. પ્રભુસમ્બન્ધી જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવું, તેનો આશય પણ પ્રભુમાં જે નિરુપાધિક પ્રીતિ કરવી તે જણવવાને માટે છે.

જીવવિચારિતથી જે જીવને ફલરૂપ જણાય या ઈષ્ટરૂપ ગણાય, તો પણ તે ખરેખર ફલરૂપ તો જે પ્રભુએ વિચારિત હશે તેને જાણવું. પ્રભુસમ્બન્ધી જ્ઞાન કરતાં પણ પ્રભુની પ્રીતિ પ્રભુદત્ત ફલને શીઘ્રતાથી ગ્રહણ કરે છે, તેથી અહિં પ્રીતિનો જ ઉપદેશ આપવામાં આવ્યો. સેવા પ્રીતિ પાત્રને પ્રભુ સ્વકીયને સર્વનું દાન કરે છે. આવા ભક્તને પ્રભુએ પ્રીતિભાવ કરવાનું સ્વાતંત્ર્ય પણ આપેલ છે તે જણાવવા “રતિં કુર્યાત્” એમ કહ્યું. પ્રીતિ વિગેરે ભાવ પણ પ્રયોજનને માટે જ કહ્યો, વસ્તુતઃ મારામાં જીવે રતિ જ કરવી જોઈએ જેથી પ્રભુદ્વારા થતી કૃપા या કૃપાફલ ગ્રહણ કરી શકે. હું સ્વાભાવિક રીતે તો સર્વદા પ્રિય જ છું, પરન્તુ એ સ્નેહને જીવ ગ્રહણ કરતો નથી માટે અપ્રિય જેવો પ્રતીત થાઈ છે. આ રીતે નિત્યપ્રીતિપરતા જીવને સદા રહે તે માટે પ્રભુમાં સદા રતિયુક્ત રહવાનો પ્રબોધ પ્રભુએ કર્યો છે. આ ભગવત્કૃત જ ચરિત્ર છે, તેથી આવા વડે જીવ ભગવત્પરાયાણ થશે. આવા ભક્તિભાવનો શુદ્ધપુષ્ટિ અને મિશ્રપુષ્ટિ ભક્તો માટે ઉપદેશ કરવામાં આવ્યો છે. આ



જ પ્રીતિ ભક્તિવર્ધિના ક્રમાનુસાર પ્રેમ, આસક્તિ, વ્યસન, નિરોધ યા સર્વાત્મભાવ રૂપે તથા બીજા અનેક પરમફલના અનુભવો કરાવે છે. તેના નિયામક જેવી શ્રીકૃષ્ણની લીલા કરવાની ઈચ્છા.

પરમફલ નિરૂપક <sup>૨</sup>શ્રીકૃષ્ણલીલા <sup>૩</sup>પ્રભુની ભક્તિ <sup>૪</sup>ભગવદ્કૃપા <sup>૫</sup>પ્રભુનું ગુણગાન <sup>૬</sup>પ્રેમલક્ષણા તથા નવધાભક્તિ તેમજ <sup>૭</sup>સાયુજ્ય વિગેરેનો વિસ્તાર :

પ્રભુશ્રીકૃષ્ણના ફલાનુભવ તથા પ્રભુની શ્રીબ્રહ્માજીએ કૃપાસહિત સ્તુતિ કરી તે શ્રીસુબોધિનીજી ૩-૮-૧૧ શ્લોક “ત્વં ભાવયોગપરિભાવિત...”નો ભાવાનુવાદ :

બ્રહ્મભાવ પ્રાપ્ત થયેલ તેવો અધિકારી જીવ ગુરુકૃપા સહિત હોય તો પણ જો તે પ્રભુકૃપાથી વિમુખ છે એટલે જે ફલ પ્રભુકૃપાપૂર્વક આપવા ચાહે છે, તે સ્નેહપૂર્વક ગ્રહણ કરવો નથી તેનો સંસાર નિવૃત્ત નહિં થાય. મુખ્ય ભક્તિમાર્ગમાં શીઘ્રતાથી પરમફલની પ્રાપ્તિ ભક્ત અનુભવે છે તેનું કારણ આ ૩-૮-૧૧ શ્લોકમાં કહેલ છે.

હે નાથ! જે પુરૂષ શ્રવણદ્વારા ભગવદ્લીલાસને પ્રાપ્ત કરવા માર્ગાનુગામી થાય છે તેવા ભક્તને તેવી પ્રીતિના કારણે, પ્રેમલક્ષણાયુક્ત ભક્તિથી પરિભાવિત હૃદયકમલમાં આપ (શ્રીકૃષ્ણ) બિરાજો છો. હે ઉરુગાય પ્રભુ! આપ કૃપાથી અલૌકિક બુદ્ધિનું દાન કરો છો, તેથી તે ભક્ત આપના રસાત્મક સ્વરૂપને અનુભવ કરવામાં સંલગ્ન થઈ જાય છે અને તે ભક્તને આ આનન્દ આપનાર તેવો અલૌકિક શ્રીવિગ્રહ પ્રગટ કરો છો. (૩-૮-૧૧)

ભાવ એટલે પ્રેમલક્ષણા ભક્તિ અને “રતિ: દેવાદિવિષયા પ્રીતિ:” પ્રીતિ માહાત્મ્યજ્ઞાન વડે જ થાય છે. આવો રતિ અને ભાવ સહિતનો પ્રભુમાં સમ્બન્ધ પ્રભુની અનુભૂતિ કરાવે છે. પ્રભુ પ્રાપ્તિના અન્ય કામાદિ ઉપાય તો પ્રમેયબલથી ફલાનુભવ કરાવી શકે પરંતુ પ્રમાણબલમાં તો ઉપર મુજબની વ્યવસ્થા જાણવી. પ્રભુવિષયક માહાત્મ્યજ્ઞાન પૂર્વક સ્નેહ હૃદયનો જો સહજ ધર્મ થઈ જાય ત્યારે હૃદય ‘સરોજ’ યા કમલ થાય છે. પ્રેમજલમાં તે સરોજ પ્રગટ થતાં ભગવદ્ આસન ઉપયોગી કમલભાવને ધારણ કરે છે. કોઈ પણ વિષય સમ્બન્ધિના ભાવો જે હૃદયમાં સ્ફૂરાયમાન થતાં નથી, એવું જ હૃદય પ્રભુને બિરાજવાનું ફલરૂપ આસન બની શકે. એ સ્થાન યા આસન પણ પ્રેમથી વારંવાર પ્રેમલક્ષણા ભક્તિવડે વારંવાર સિંચન કરવામાં આવશે ત્યારે ત્યાં ભગવાન્ બિરાજશે. પ્રભુ ભક્તદ્વારા થયેલ ગુણગાનવડે અથવા પ્રભુલીલા શ્રવણ સહિત સંસ્કારિત ઈન્દ્રિયમાર્ગવડે ભક્તના હૃદયમાં પધારી તે હૃદયકમલમાં બિરાજશે. જો ભગવદ્લીલા શ્રવણ યા ગુણગાનથી ભક્ત બલિર્મુખ થશે તો પ્રભુ ત્યાંથી અન્યત્ર પધારી જશે. માટે સતત શ્રવણ તથા ગુણગાન આવશ્યક છે. પ્રભુને ‘નાથ’ કહ્યું તેથી પ્રભુ તેમના પતિ છે તો પ્રભુ તો ભાર્યાના ઘરે બિરાજેજ! વળી પ્રભુ તો સર્વના પતિ છે. ભક્ત હૃદયમાં બિરાજમાન ભક્તોને જેવા

ભક્તોને સ્નેહપ્રચુર ભાવો જાગે છે તેવું વપુ બ્રહ્મરૂપ વૈકુણ્ઠરૂપ અવતારરૂપ તે જ વખતે પ્રગટ કરે છે. જ્ઞાની ઉપર તો પ્રભુનો અનુગ્રહ માત્ર હોય છે જ્યારે આવા ભક્તો ઉપર પ્રભુનો અબાધિત અનુગ્રહ હોય છે. તેથી ભક્તની ઈચ્છાનુસારે પ્રભુ સમ્બન્ધનું સાયુજ્યાદિ સર્વફલ ભક્તને જ પ્રાપ્ત થશે. તે વાત સર્વરીતે ઉપપન્ન જ છે.

આ શ્લોકના આશય મુજબ પ્રસ્તાવનામાં જણાવેલા અનન્ત પરમ ફલનો અધિકારી પ્રભુની લીલાનુસારે ફલાનુભવ કરશે તે વાતનું વિવરણ થયું.

**પરમફલ :** ‘પ્રભુની નિત્યલીલા’<sup>૧</sup> નિરોધ ‘સર્વાત્મભાવ’<sup>૨</sup> આનન્દનિધિ રસરૂપતા ‘ફલાત્મક નિઃસાધનતા’<sup>૩</sup> ભજનાનન્દ<sup>૪</sup> ‘અલૌકિક સામર્થ્ય’<sup>૫</sup> ‘સેવોપયોગીદેહ’<sup>૬</sup> ‘માનસીસેવા’ :

ભગવાન્ જ પરમફલ છે તે નિરૂપવા પ્રભુના આનન્દસ્વરૂપનું નિરૂપણ અને શ્રીવ્રજભક્તોનું શ્રીગોકુલમાં ફલાનુભૂતિનો પ્રકાર : “યસ્યાનુરાગઃ...કૃત્યશેષાઃ” (ભાગ.પુરા.૩૧.૧૪)

### શ્રીસુબોધિનીજનો ભાવાનુવાદ

સ્ત્રીઓ આનન્દપ્રધાન જ હોય છે તેમની દષ્ટિ આનન્દમાં જ હોય છે. શ્રીવ્રજભક્તોના સમ્બન્ધમાં (ઈતર આનન્દ સાધનોનો અભાવ હોવાથી) તેમની દષ્ટિ નિરૂપાધિક છે. તેના વિષય અને તે ભક્તો પ્રભુને જ વિષય તરીકે ગ્રહણ કરે છે તેથી પ્રભુ આનન્દરૂપ છે. પ્રભુની વ્રજભક્તો સાથેની લીલાનું વર્ણન કરતાં શ્રીઉદ્ધવજી કહે છે કે ભગવાનના અનુરાગથી પ્લુત થયેલ જે હાસ્ય તે સહિત પ્રગટ થયેલ રાસ(સમૂહાત્મક બહુ નર્તકીયુક્ત નૃત્યવિશેષ) ત્યાં પ્રભુનું જે લીલાવલોકન તે વડે ભક્તોને માનની પ્રાપ્તિ થઈ છે. પહેલા અભિમાન છોડીને ભક્તિમાર્ગાનુસારે ભગવાનને શરણે ગયા, ત્યાં સખ્યપર્યન્ત ભગવદ્ભજનવડે અનુરાગ પ્રવૃદ્ધ થયો. હાસસહિત રાસ ભાવોદ્ગારી થઈને ભગવદૈક્ય પ્રાપ્ત કરાવે છે. તે અનુરાગવડે પરમપ્રેમાત્મક થયો. રાસલીલાના કારણે તેવા વશીભૂત ભગવાનદ્વારા ભગવાનના લીલાવલોકનને કારણે વ્રજભક્તોએ પહેલા માન ત્યજી દીધેલું તો પણ ભગવાને દષ્ટિદ્વારા તે સ્થાપિત કર્યું તેથી ‘પ્રતિલબ્ધમાના’ થયા. આ રીતે દીનભાવવડે આરંભી અહીં સુધી પ્રકટ થયેલી લીલા તે જ ભક્તિરસ. આ લીલાના પ્રતાપથી વ્રજભક્તો સ્વતન્ત્ર થઈને ભગવદાનન્દ અનુભવવામાટે સમર્થ થયા. સ્તબ્ધતાપૂર્વક શ્રીવ્રજભક્તો રસાસ્વાદન કરે છે તેથી ભગવાન્ આનન્દમય છે તેથી સ્વભાવવિજયી છે તે જણાવ્યું. આ આનન્દમાં (કામસાધકત્વનો અભાવ જણાવવા કહ્યું) “દગ્ભિઃ અનુપ્રવૃત્તઃ ધિયઃ...” દષ્ટિની સાથે તેમની બુદ્ધિ પ્રભુમાં અનુપ્રવૃત્ત થઈ. ચેતના પણ તેની સાથે જ ગઈ. તેથી સ્વશરીરથી વ્રજભક્તો કામભોગની અપેક્ષા નથી. કારણકે ભગવત્સ્વરૂપમાં જ નિરૂપધિ રીતે

આનન્દનો અનુભવ કરી રહ્યા છે. ન તો કામથી આનન્દ છે, તેમજ પોતે અનુભવેલા આનન્દની અનુભૂતિ ત્યારે નથી કારણ કે અન્તઃકરણ વગેરે પણ પ્રભુમાં વ્યાપી ગયેલા છે. વળી શ્રીવ્રજભક્તોમાં સ્વતઃ આનન્દ પ્રકટ કરવાનું સામર્થ્ય પણ નથી. કેવલ આનન્દાનુભવમાં મગ્ન છે. આ અર્થમાં સન્દેહ ન કરવો. તેથી કહ્યું “કિલ ઈતિ”. વળી ‘કૃત્યશેષાઃ’ કૃત્યમાં શેષપણું છે. ગૃહકૃત્ય કરવામાટે તો કૃત્ય શેષજ છે. તેથી એ જણાવ્યું કે કોઈ પણ ગૃહકાર્ય કરતાં નથી. પ્રતિક્ષણ ભગવદાત્મકતા જ અનુભવી રહ્યા છે. દેહસ્મરણનો અનુભવ ન હોવાથી એથી ઈતર આનન્દની ઉત્પત્તિ પોતાનામાં નથી. દૂર બિરાજતા પદાર્થને જેમ દષ્ટિ વિષય કરે છે તેમ દૂર બિરાજતા આનન્દરૂપ ભગવાન તેમની દષ્ટિના વિષય થાય છે. આવી સ્થિતિ ન હોય તો “આનન્દપ્રેમ્ય” આનન્દની અભિલાષિ (સ્ત્રીઓની) આવી સ્થિતિ ન થાય. (આ રીતે શ્રીકૃષ્ણ સદાનન્દ છે, પૂર્ણ આનન્દરૂપ છે અને તેવા આનન્દસ્વરૂપમાં વ્રજભક્તો પૂર્ણતયા એકાત્મકતાનાં ભાવને પ્રાપ્ત થયાં છે. તે વ્રજભક્તોના નિરોધાત્મક પરમફલની સ્થિતિનું સ્વરૂપ સમજાવવામાં આવ્યું).

**શ્રીગોકુલમાં શ્રીકૃષ્ણની પ્રકટ અવતારલીલામાં શ્રીવ્રજભક્તોની ફલદશાનું સ્વરૂપ:**

ભાગ.પુરા. ૩૧.૧૪ શ્લોકમાં જણાવેલ પ્રકારે લીલાનું વિવરણ શ્રીઉદ્ધવજીએ શ્રીવિદુરજીને કહ્યું તેથી એ જણાય છે કે શ્રીગોકુલ લીલામાં શ્રીવ્રજભક્તોને મહારાસનો તથા યુગલગીતનો એટલેજ અલૌકિક શૃંગારરસાત્મક તથા ભક્તિરસાત્મક સંયોગ અને વિપ્રયોગરસનું ફલદાન કરીને શ્રીકૃષ્ણ મથુરા પધાર્યા પછી શ્રીગોકુલમાં બિરાજતા વ્રજભક્તોની પરમ ફલરૂપ અવસ્થાનું વર્ણન છે. તે વડે નિરોધ શબ્દ વાચ્ય તથા પૂર્ણ સર્વાત્મભાવનો અનુભવ એટલે જ સંયોગાત્મક સર્વાત્મભાવ જે વેણુગીત સુબોધિનીજમાં વિવરિત છે તે તથા વિપ્રયોગાત્મક સર્વાત્મભાવ જે છાંદોગ્ય ઉપનિષદ્માં આત્માદેશ વિગેરે ભાવોથી સંબોધિત કરવામાં આવ્યો છે, તેવા સર્વાત્મભાવનો તથા તેની ફલાવસ્થા રાજસ પ્રમેય પ્રકરણ શ્રીભ્રમરગીત પ્રસંગમાં વર્ણવેલ છે, તેનું પ્રતિપાદન આ (ભા. ૩-૨-૧૪)ના શ્રીસુબોધિનીજમાં સંગ્રહિત કરેલ છે. આ રીતે એમ જણાવવામાં આવ્યું કે શ્રીવ્રજભક્તો પ્રતિક્ષણ ભગવદાત્મકતાનો જ અનુભવ કરી રહ્યા હતા. આનન્દસ્વરૂપ શ્રીકૃષ્ણનો પ્રતિક્ષણ નિરુપધિ અને નિરવધિ પરમફલાત્મક એવો સ્વરૂપાનુભવ શ્રીગોકુલમાં બિરાજ શ્રીવ્રજભક્તો અલર્નિશ કરે છે. આ જ વાત જણાવનાર શ્રુતિગીતાની કારિકા “કૃષ્ણાનન્દઃ પરાનન્દો નાન્યાનન્દસ્તથાવિધઃ, વેદા અપિ ન તચ્છકતા પ્રતિપાદયિતું સ્વતઃ” (સુબો.કા.૧૦।૮૭).

આનું જ વિવરણ “સોશ્નુતે સર્વાન્ કામાન્ સહ બ્રહ્મણા વિપશ્ચિતાઃ” એ શ્રુતિમાં નિરૂપિત છે અને “અન્તર્નિષ્ઠા વિરહો વા” એ વચનામૃત શ્રીમહાપ્રભુજીના છે. આ સુબોધિનીજ તાત્પર્ય વડે પરમફલરૂપ એવા ‘અલૌકિક સામર્થ્ય’, ‘સાયુજ્ય’ વિગેરે શબ્દોદ્ધારા જણાવેલ પ્રસ્તાવનામાં આપેલા વિષયોના સ્વરૂપનું વર્ણન જાણવું. તે બધા

પરમફલને સાક્ષાત્ યા પરમ્પરાથી સમજવામાં અહિં આપેલા તૃતીયસ્કન્ધના સુબોધિનીજી સહાયક થશે તેવા આશયથી લખેલ છે.

પુષ્ટિભક્તિમાર્ગમાં અંગીકૃત ભક્તોના ફલાનુભૂતિનાં વિશેષ પ્રકારોના વર્ણનમાં મુખ્યત્વા ૨૨ પ્રકારો વર્ણન કરવામાં આવ્યા તેમાં અવર્ણિત ફલાનુભૂતિ <sup>૧૪</sup>પુષ્ટિભક્તિના પુરૂષાર્થો <sup>૧૫</sup>સેવા <sup>૧૬</sup>શરણાગતિ <sup>૧૭</sup>ભગવદ્સુધાનું વર્ણન તથા પ્રથમ કહેલાં અઢારે પ્રકારોના ફલોનું વિલંગ્નાવલોકન (ભા. ૧૦-૨૬) ફલપ્રકરણમાં પ્રગટ થયેલા શ્રીવ્રજભક્તોનાં વચનામૃતો વિસ્તાર કરીને જણાવેલ છે. તેમાં મુખ્યત્વા સંયોગ અને વિપ્રયોગ રસનું તારતમ્ય અને સર્વવિષય ત્યાગની આવશ્યકતા સર્વે આધુનિક મિશ્રપુષ્ટિભક્તોએ પણ મનન કરવા વિનંતી છે.

**શ્રીવ્રજભક્તોદ્ધારા પુષ્ટિભક્તિને જણાવનારા વચનામૃતો**

“મૈવં વિભોડર્હતિ ભવાન્ ગદ્ધિતું નૃશંસં...” શ્રીભા. ૧૦-૨૬-૩૧ થી આરંભીને શ્રીવ્રજભક્તોએ પ્રગટ કરેલ શુદ્ધભક્તિમાર્ગનું સ્વરૂપ તેથી જ ધર્મમાર્ગનું નિરૂપણ તથા પરમફલની બાબતમાં સાક્ષાત્ તથા પરમ્પરાથી મિશ્રપુષ્ટિને ઉપયોગી થાય તેવા કર્તવ્યબોધક વચનામૃતોના સંગ્રહરૂપ શ્રીસુબોધિનીજીનો ભાવાર્થ નીચે મુજબ છે :

પ્રભુનો વેણુનાદ સાંભળીને વ્રજભક્તો વનમાં પધાર્યા ત્યારે ભક્તોને વ્રજમાં ગૃહ પ્રતિ ગમન કરવામાટે પ્રભુના જે શ્લોકો હતા તેનો આશય તો જે માત્ર મર્યાદાભક્ત હોય તેમણે કઈ રીતે ભગવદ્દસના ફલાનુભવમાં રહેવું જોઈએ તે પ્રકાર મુખ્યત્વે પ્રભુ જણાવી રહ્યા છે, એવું પ્રતિપાદન શ્રીમદ્વ્રજભક્તો (શ્રીસ્વામિનીજીના) પ્રતિવાદે કરીને, વનમાં રહીને જે ભગવદ્ભજનનો આગ્રહ બતાવ્યો છે તે ૧૧ શ્લોકમાં છે. તે ધર્મપરાયાણ માર્ગને પ્રદર્શિત કરનારો તથા શુદ્ધપુષ્ટિમાં જેનું વરણ છે અને ફલદશામાં સર્વાત્મભાવપૂર્વક જે ભાવ સ્ફુરાયમાન થઈ રહ્યો છે, તેમાં પ્રથમ શ્લોક ૩૧ના સુબોધિનીજીના આશયથી પરમફલસ્વરૂપ નીચે મુજબ જણાય છે. પુષ્ટિભક્તિમાર્ગમાં પરમફલ શ્રીકૃષ્ણનું ભજન એ જ છે, જેનું વર્ણન અહિંયા ‘આદિપુરુષ દેવ’ તરીકે કરવામાં આવ્યું છે. આદિપુરુષ તો સેવ્ય થાય જ છે અને ‘દેવ’ પણ સેવનીય જ હોય છે, નહિં તો દેવભજન વ્યભિચારજનક કહેવાત. વળી, ભજન કરનાર ભક્તોનું સ્વરૂપ દિગ્દર્શન ‘મુમુક્ષુ’ તરીકે કરવામાં આવ્યું, તેથી ભક્ત પણ ભજનાનંદ ફલને ચાહનારો છે અને સર્વવિષયોના ત્યાગપૂર્વક ભજનમાં પ્રવૃત્તિ એવો ભાવ શ્રીવ્રજભક્તોનો છે. પ્રભુ પાસેથી અન્ય કોઈ પણ લૌકિક-વૈદિક ફલની આકાંક્ષા નથી, માત્ર પ્રભુની જ આકાંક્ષા છે. તેથી આવું ભજન એટલે ધર્મપરાયાણ ભજન. પ્રભુ સેવકનું પ્રતિભજન કરે છે તે મુમુક્ષુને ફલદાન કરે તે પ્રકારે. તે પ્રભુના ફલદાનનો પ્રકાર જણાવ્યો કે “આત્મીયત્વેન પરિગૃહ્ણતિ” (તામસ ફલ પ્રકરણ અ.૨૬મો) ત્યાર પછી “આત્મતયા સ્ફુરતિ” અધ્યાય-૨૭ અને ૨૮ની લીલા તેથી લઘુરાસ પછી પ્રભુ

અન્તર્ધ્યાન થતાં પ્રભુનું વિચયન (શોધ)તથા ગોપીગીતનું ગાન, અન્તર્ધ્યાનના કારણે ભક્તોમાં પ્રાણ અને વાણી નું સામર્થ્ય જતું રહ્યું હોવાં છતાં પ્રભુ સ્વરૂપાત્મક રીતે શ્રીવ્રજભક્તોમાં બિરાજે છે તે “આત્મતયા સ્ફુરતિ”નો અર્થ બતાવ્યો. ત્યાર પછીના ફલદાનમાં અધ્યાય ૨૮ અને ૩૦ માં દેહ અને ઈન્દ્રિયસહિત અલૌકિક ફલદાનનું વર્ણન છે તે ભાવને જણાવવા “સ્વાનન્દં તેભ્યઃ પ્રયચ્છતિ” એ ફલદાનનો આશય જણાવ્યો. “એષ હિ એવ આનન્દયાતિ” એ આનન્દના ફલદાનના પ્રકારનો અર્થ અહિં શ્રીરાસપંચાદ્યાધીમાં (અ. ૨૬-૨૭-૨૮-૨૯)માં જણાવવામાં આવ્યો છે. આ જ પરમફલને ‘ભજનાનન્દ’ શબ્દથી જાણીએ છીએ. આ બધી લીલા મૂલ-પુરુષ શ્રીકૃષ્ણદ્વારા પ્રગટ થયેલ હોવાથી પરમફલરૂપ છે એવું પ્રતિપાદન કરવામાં આવેલ છે. (તેથી જ તામસ ફલ-પ્રકરણ એવું પ્રતિપાદન કરવામાં આવેલ છે.) ફલદાન પ્રભુ ‘સ્વાખ્ય’ (સુષુપ્તિ) અને ‘સંપત્તિ’ (સાયુજ્ય) ફલરૂપે યથાયોગ્ય અધિકારીને કરાવે છે. આવો ફલાનુભવ કરાવવો તેવી વિનંતી એટલે જ “મુમુક્ષુ ભજેત્” એ આશય છે. આ પ્રમાણે, આ પ્રકારે પંચધા પ્રભુ ફલદાન ન કરે તો મુમુક્ષુ જ ભગવાનને ભજે છે, ભગવાન પ્રતિભજન નથી કરતા એ શંકા થઈ શકે, તેથી ફલદાનદ્વારા ભગવાને મુમુક્ષુનું ભજન કર્યું છે તે વિસ્તારથી સમજાવવામાં આવ્યું.

### ફલદાન :

ફલદાનનો આશય થયો કે પ્રભુ વ્રજભક્તોને પૂર્વાવસ્થા ફરી સંપાદન નથી કરાવતા અને સતત પોતાનામાં સ્થાપન કરે છે. તેથી જ વ્રજભક્તોએ કહ્યું કે અમારા માટે પ્રગટ થઈને સ્વ(ધર્મી) આનન્દવડે અમને ફલદાન કરો એ આપનું કર્તવ્ય છે. આ પરમફલ એટલે જ ભજનાનન્દરૂપી પરમફલ.

### સેવા :

આ શુદ્ધપુષ્ટિભક્તોની પરમફલદશા (વ્યસન પછીના સર્વાત્મભાવના પ્રાગદ્ય સમયે) ફલદાનનું સ્વરૂપ. આ વાત ઉપરથી એ પણ સૂચિત થઈ રહ્યું છે કે જે આધુનિક મિશ્રપુષ્ટિ ભક્ત છે એમણે પણ ભગવદ્ભજન-સેવા શ્રીકૃષ્ણની પુરુષોત્તમ આદિપુરુષની કરીએ છીએ તેવો ભાવ રાખવો જોઈએ. પ્રભુ પણ એ મિશ્રપુષ્ટિનું વરણ જે અધિકાર મુજબ છે તેદનુસાર પ્રતિભજનમાં સ્વરૂપાત્મક આનન્દનું દાન યથાયોગ્ય રીતે કરશે જ (પ્રભુની ભક્તિ રસાત્મક તો છે જ.)

વળી, “સંત્યજ્ય સર્વવિષયાન્...” તેથી સર્વવિષયોનો ત્યાગ એજ પ્રભુના ચરણારવિંદને પ્રાપ્ત કરવાના અધિકારસૂચક છે એ વાત પણ આ શ્લોકમાં શ્રીવ્રજભક્તોએ સ્પષ્ટરીતે જણાવી છે. તેથી મિશ્રપુષ્ટિસૃષ્ટિમાં અંગીકૃત ભક્તોએ પણ તે ધર્મને અનુસરણ કરવા પ્રયત્નશીલ રહેવાનો ઉપદેશ પ્રાપ્ત થાય છે. (આધુનિકને કર્તવ્યબોધ પણ સૂચવવામાં

આવ્યો કે સામાન્ય લૌકિક કર્તવ્યોની આડ લઈને ભગવત્કલાનુભૂતિ કરાવનાર ભગવદ્ભજન પ્રત્યે દુર્લભ રાખવું તે પુષ્ટિભક્તોને ઉચિત નથી.)

શ્રીઆચાર્યચરણોના વચનામૃત પણ છે કે “જીવસ્ય હિ પરિમીતો પ્રયત્નઃ. સ ભગવદર્થે સ્થાપિતશ્યેદ્ નાન્યત્ર વિનિયોગમ્ અર્હતિઃ” તેથી તે પણ સ્પષ્ટ થઈ રહ્યું છે કે ગૃહસ્થિતિ વગેરે લોકરીતિ પુષ્ટિભક્તોને ભગવદ્દરસાનુભવ કરવામાટે જ કહી છે. આડમ્બરથી સાંસારિકતા નિભાવવાના કર્તવ્ય તરીકે નહીં! આથી એ જણાવ્યું કે નિરુપધિ પ્રપત્તિ પૂર્વક ભક્તિદ્વારા ભગવદ્ભજન એ જ પુષ્ટિભક્તિનું સ્વરૂપ છે. તે કારણે પ્રભુ પ્રતિભજનની કૃપા કરે છે તેથી મિશ્રપુષ્ટિજીવ સેવા કરવામાં સમર્થ બને છે. તે વાત શ્રીપુરુષોત્તમજીએ આ શ્લોકમાં જણાવી કે પ્રભુદ્વારા ફલદાનમાં સેવા કારણરૂપ બને છે તેથીજ “સેવારીત પ્રીત વ્રજજનકી જનહીત જગ પ્રકટાઈ” એ પ્રકાર સ્પષ્ટ થયો. વળી પ્રભુ “રસો વૈ સઃ” છે અને તેવા પ્રભુનું નિરુપાધિક સુદૃઢ સ્નેહથી સર્વવિષયના ત્યાગ પૂર્વક સેવન કરવું તે જ પુષ્ટિમાર્ગીય ફલપ્રદાન કરશે. શ્રુતિ પણ તે ફલને કહે છે કે “સોશનુતે સર્વાન્ કામાન્ સહ બ્રહ્મણ વિપશ્યિતાઃ” આ રીતે સંમ્પૂર્ણ પુષ્ટિભક્તિમાર્ગનું સ્વરૂપ, તેમાં સેવ્ય શ્રીકૃષ્ણ તથા શુદ્ધપુષ્ટિભક્તિમાર્ગમાં અંગીકૃત શ્રીવ્રજભક્તોનું સ્વરૂપ તથા ભક્તિસ્વરૂપ ના નિરૂપણમાં સર્વવિષયત્યાગની આવશ્યકતા અને ફલપ્રાપ્તિમાં માત્ર ધર્મપરાયાણતા અને શ્રીકૃષ્ણને જ પરમ ફલરૂપ માનવા એવા અનેક પુષ્ટિમાર્ગીય પરમફલના સ્વરૂપનું નિરૂપણ આ શ્લોકના સુબોધિનીજીના આધારે સ્પષ્ટતાથી જણાવવામાં આવ્યું છે.

શ્લોક ૩૨માં પ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત શ્લોક ૨૦માં કહેલ મર્યાદાધર્મ તેના પ્રત્યુત્તરરૂપે ધર્મમાર્ગનું પ્રતિપાદન કરેલ છે. સ્વધર્મ અનેકવિધ હોય છે. સ્વઅપેક્ષાથી ઉત્કૃષ્ટ વિષયનું, સમાન વિષયનું, તથા હીનવિષય સમ્બન્ધી. તેમાં પૂર્વપૂર્વનું પ્રાબલ્ય જાણવું. કોઈને પ્રિય દેલ હોય છે, કોઈને આત્મા, કોઈને પરમાત્મા તો કોઈને નિર્વાલક. તે બધામાં પ્રભુ સર્વરીતે પ્રિયસ્વરૂપ છે અને પ્રેષ્ટ અને આનન્દસ્વરૂપ છે. આ વાત સર્વ દેલધારીઓમાટે પણ ઉચિત છે તેથી દેલાદિનો ઉપયોગ માત્ર પ્રભુને સમર્પિત થવામાં જ છે. તેવા નિવેદન પછી પ્રભુમાં દેલ અનુપયોગી હોય ત્યારે અન્ય કર્તવ્યો કરવા જોઈએ અને તે પણ પરમ્પરાથી પ્રભુના ઉપયોગમાં આવે તે રીતે આવો ભાવ એ જ પુષ્ટિમાર્ગીય ફલ છે. પ્રભુ પોતે સર્વરૂપ આત્મા, પરમાત્મા સર્વરૂપ હોવાથી પરમ પ્રિય અને પરમ ફલરૂપ છે તેથી આપની સેવા એજ પરમ ફલ છે. જે ફલનો કાલ વગેરેથી બાધ થાય અથવા ફલાનુભવ અશક્ય થાય જેમકે (લૌકિક ધર્મ) તે ખરેખર તો ધર્મ શબ્દ લાયકજ નથી. તેથીજ પુષ્ટિભક્ત ભગવદ્ભજનને ઈતર કર્તવ્યોની જેમ સમજે છે. તે માત્ર અન્ધપરમ્પરાથી વ્યવહારને ‘ધર્મ’ સંજ્ઞા આપી રહ્યો છે. કેવલ લૌકિકધર્મપરાયાણતા તો સન્નિપાતરૂપ છે. પતિ વગેરેની સેવાનું વિધાન કરનાર શાસ્ત્ર ખરેખર તો ભગવત્સેવાનું વિધાન કરે છે. તેથી

અનુવાદ પક્ષે યા સ્વતન્ત્ર વિધાન પક્ષે, ભગવત્સેવા એજ ઉચિત છે. તેથી આ પ્રકાર પ્રભુભક્તિને પરમફલતયા સાધક થશે.

શ્લોક ૩૩માં “કુર્વન્તિ...રતિ...” તેના આશય પ્રમાણે પણ ભગવાનનું સેવન કરવામાં આવે ત્યારે જ તે આનન્દ જીવગામી થશે આ વાત “ત્વયી આત્મને પ્રતિમુખસ્ય”માં પણ સમજાવી છે. પુત્રાદિસેવા પણ જો ધર્મ હોત અથવા તે ધર્મના નિમિત્ત હોય, તે દુઃખદાન કરનારા થતા નથી. લૌકિકધર્મ અને પુત્રાદિની સેવા તો સંસાર ઉત્પન્ન કરાવે છે માટે ફલ તો ભગવત્સેવા માત્ર જ છે. (પતિપુત્રાદિ ભગવદીય ન હોય તો તે આર્તિ આપનાર જ જણાય તેથી “આર્તિદૈઃ કિમ્” આવો ભાવ પણ પ્રભુ કૃપા કરે ત્યારે જ આવી શકે માટે પ્રભુને ‘વરદેશ્વર’ ફલદાતા કલ્યા. આ જ વાતનું નિરૂપણ શ્રુતિગીતા કારિકામાં પણ મળે છે. “પુત્રાદિન્ સમ્પરિત્યજ્ય કૃષ્ણઃ સેવ્યો ન તૈઃ સહ, તત્ સુખં ભગવાન્ દાતા તે તુ ક્લિષ્ટેડતિ દુઃખદાઃ” (શ્રુતિગીતા-૨૨)

સેવા પ્રેક્ષની જ કરવાની હોય છે અને કાલ પરિછેદ ન હોય તે તો કૃષ્ણ જ છે. માટે શ્રીકૃષ્ણસેવાને પરમફલાત્મક જાણવી. શ્રીકૃષ્ણસેવા પ્રેમસહિત થાય ત્યારે તે સેવા આર્થિકવિકી સ્વરૂપ ધારણ કરે છે. શ્રુતિગીતામાં પણ આજ્ઞા છે કે “કૃષ્ણ એવ સદા સેવ્યો નિર્ણીતઃ પગ્ન્યધા બુધૈઃ, શરીરદઃ પ્રેરકશ્ચ સુખદઃ શેષસત્પદઃ” (શ્રુતિગીતા-કા-૪).

**ભગવચ્ચરણારવિન્દનો આશ્રય એજ પરમફલ :**

શ્લોક-૩૪ “ચિત્તં સુખેન ભવતાપહતં ગૃહેડપિ...” પ્રેમલક્ષણા ભક્તિપૂર્વક જે પ્રભુના ચરણારવિન્દનો આશ્રય કરે છે તે પ્રભુના ચરણારવિન્દથી અન્યત્ર ક્યાંય જતો નથી. નહીં તો મૂલભાવાપન્ન વૃક્ષોની પણ ગતિ થાત. તે જણાવવા “તવ પાદમૂલં પ્રાપ્તાઃ કથં યામઃ” એમ કહેલું છે. વળી ગતિ કૃતિ કે ભાવ કે મતિ લોકમાં તો લૌકિક સાધન સાપેક્ષ હોય છે, પરન્તુ ભગવત્સમ્બન્ધમાં તો તેવા ભાવહૃદયથી ભગવદ્ભાવન કે ચરણથી ભગવદ્ગતિ નિકટ જવાની ગતિ કે હસ્તથી ભગવત્સમ્બન્ધની ક્રિયા ભગવત્કૃપાલભ્ય ભગવદ્ભાવને કારણે જ સિદ્ધ થઈ શકે છે. ભગવત્સમ્બન્ધથી રહિત થતાં તે ગતિ કે ભાવ કુંઠિત થઈ જાય છે. શ્રીકૃષ્ણમાં આવો આશ્રય અને ભક્તિભાવ તે પરમફલરૂપ છે. મિશ્રપુષ્ટિમાટે પણ તેના અધિકારાનુસાર પ્રકટ થયેલ પ્રેમ, આસક્તિ કે વ્યસન તેવા ભગવદ્ભાવ અને ક્રિયા ને પ્રકટ કરશે, જે પરમફલરૂપ છે.

**શ્રીસ્વામિનીજીના પરમફલરૂપ સંયોગ અને વિપ્રયોગ ના સ્વરૂપનું વર્ણન : શ્લોક-૩૫ “સિગ્ધ્યાઙ્ગ નસ્ત્વદધરામૃતપૂરકેણ...” :**

શૃંગારરસાત્મક સંયોગરસ : (શ્રીસુબોધિનીજીના ભાવાનુવાદ) શ્રીસ્વામિનીજી

પ્રભુને વિનંતિ કરે છે કે પોતાનામાં (સ્વામિનીજીમાં) બિરાજમાન કામાગ્નિને અધરામૃતના પૂરવડે સિંચન કરો. આવી ભગવત્સુધા તે પરમફલરૂપ છે. વળી, વિરહાગ્નિને પણ શાન્ત કરવાની વિનંતિ કરી. લોકરીતીએ વિરહનો અર્થ છે સ્વામિનીજી સાથે એકાન્તનો અભાવ. તે દુઃખ આપનાર પણ કહેવાય છે. વળી વિરહનો બીજો અર્થ પણ શ્રીમહાપ્રભુજી સૂચિત કરે છે કે પ્રભુ શૃંગારરસાત્મક હોવાને કારણે અને રસ દ્વિદલાત્મક છે તેથી તે રસ સંયોગરસાત્મક અને વિપ્રયોગરસાત્મક પણ છે તેથી વિરહ એટલે ભગવત્સ્વરૂપવાચ્ય એવો વિરહ એટલે ભગવાનની સાથે વિશિષ્ટ પ્રકારનો રહ. પ્રભુ સાથે એકાન્તનો ભાવ. તેથી આવો વિરહ પ્રભુ સ્વરૂપાત્મક હોય તે યુક્ત જ છે. (ટીપ્પણી)

પરમફલાત્મક વિરહ : આ રીતે વિરહના બે અર્થ જોયા. ‘વિરહ એટલે સંયોગરસને ઉદ્દીપન કરતાં તેથી આન્તર અનુભૂતિમાં કારણભૂત તેથી ફલાત્મક અને રસાત્મક હોય છે પરન્તુ વિરહ અનુભૂતિનું કારણ ધારણ કરે ત્યારે તે કારણની અનુભૂતિ દુઃખદ અથવા વિકળતાજન્ય હોય છે. વિરહનો બીજો પણ પારિભાષિક અર્થ શ્રીમહાપ્રભુજીદ્વારા એવો કરવામાં આવ્યો કે એવો ભાવ કે જેને વિશિષ્ટ પ્રકારનો રહ જાણવો. પ્રભુની અનુભૂતિમાં શ્રીસ્વામિનીજીએ જે એકાન્તનો ભાવ (પ્રભુનું હૃદયમાં નિત્ય બિરાજવું તેવો ભાવ એટલે વિરહ) ભગવદ્ભાવનું સ્વરૂપનું વર્ણન કરતી વખતે ભગવદ્રાચ્યતાને પ્રાપ્ત થતું શૃંગારરસના દ્વિતીયદલવાચક વિરહ તે પણ ભગવદ્રૂપ છે, તે વાતની સ્પષ્ટતા શ્રીમહાપ્રભુજી-શ્રીગુસાંઈજી દ્વારા તેના વિવરણમાં કરવામાં આવી એવું જણાય છે.

આ જ વિષયની સ્પષ્ટતા ભાગ.પુરા. ૧૦૧૨૭૩૮માં શ્રીમહાપ્રભુજી તથા શ્રીગુસાંઈજી એ કરી છે તેનો સારાંશ નીચે પ્રમાણે છે :

“એવમુક્તઃ...તપ્યત” (૧૦૧૨૭૩૮) તથા શ્લોક ૧૦૧૨૭૩૭ “તતો ગત્વા...યત્ર તે મનઃ” લઘુરાસ પછી પ્રભુનું મન અલૌકિક રસાભિનયમાં હતું. (વિરહરસનું પ્રાગદ્ય) તે (નટન) ભૂમિ ઉપર પદસ્થાપનથી ન થઈ શકે. શ્રીસ્વામિનીજી પણ ભગવદ્દરસ પ્રાપ્ત કરીને ભગવન્નિષ્ઠ ભાવવાળા થયા છે. તેથી સર્વથી આધિક્યપણું તેમને પોતાનામાં સ્ફુરાયમાન થયું, તે “હિત્વા ગોપી” માં કલ્પ્યું.

**વિપ્રયોગ રસાત્મકલીલાનું વર્ણન :**

દ્વિતીયદલાત્મક રસ(વિપ્રયોગ)ની લીલાચિકીર્ષા જ્યારે થઈ ત્યારે તે લીલા તો અવિષ્ણ (સહન કરી ન શકાય તેવી; દુઃખ આપનારી) છે એમ સ્વામિનીજીએ માન્યું. છતાં પણ તે વિદ્વજ ન થયા અને લઘુરાસ સમયની રસાનુભૂતિની ગરિમાને કારણે દૃઢ થઈને પ્રિયને દ્વિતીયદલની રસાનુભૂતિ કરાવવા વિનંતિ કરી. આ જ વાત ‘દપ્તા’ પદથી કહી છે.



પ્રભુને ‘કેશવ’ સંબોધન આપ્યું તે એ જણાવે છે કે પ્રભુ તો આનન્દનું જ દાન કરનાર છે. વળી શ્રીસ્વામિનીજી સર્વ રીતે નિર્દોષ છે. તેથી આ દ્વિતીયાનુભૂતિમાં (વિરલ) પણ અવશ્ય સુખાનુભૂતિ પ્રગટ થશે. (કેશવ એવા શ્રીકૃષ્ણદ્વારા આ રસદાન છે તેથી) તે જ કર્તવ્યબોધક વચન (વિરલરસલીલા પ્રગટ કરવી) શ્રીસ્વામિનીજીએ કહ્યું કે “નય યત્ર તે મનઃ” અને આ રીતે પ્રભુની ઈચ્છાને સંમતિસૂચક વચન કહ્યાં. શ્રીસ્વામિનીજીનો આશય એવો હતો કે મને અન્તર્ધ્યાન કરી દ્વીતિયદલ વિપ્રયોગરસ પ્રગટ કરો. પરન્તુ પ્રભુ પોતે જ અન્તર્ધ્યાન થઈ ગયા અને વિરલરસાનુભૂતિ કરાવી. કારણકે પ્રભુ સર્વજ્ઞ છે, વિરુદ્ધધર્માશ્રય હોવા છતાં શ્રીસ્વામિનીજી પ્રિયા હોવાથી તેમનું(સ્વામિનીજી) તિરોધાન કરીને સ્વામિનીજીની આકાંક્ષાની પૂર્તિ કરવી ઉચિત ન લાગી. તે વાત “સ્વસ્કન્ધ આરોહણતુલ્ય અસંભવિત છે” તે શબ્દથી આ શ્લોકમાં સમજાવ્યું છે. “એવં ઉક્તઃ પ્રિયામાહ...” (૧૦૧૨૭૩૮) આનો આશય એ થયો કે પ્રભુ કૃષ્ણ સદાનન્દ છે તેથી આ (વિરલ) દશામાં પણ હૃદયમાં પ્રગટ થઈને આનન્દાત્મકતાનું દાન કરનાર છે (અને રસના પોષક છે).

**પૂર્ણભગવદ્પ્રેમના આવેશ સમયે સર્વત્યાગ :**

“યત્યમ્બુજાજ્ઞ તવ પાદતલં રમાયા...” (૧૦૧૨૬૧૩૬) આ શ્લોકમાં મિશ્ર પુષ્ટિભક્તોને પ્રભુમાં પ્રગટ થયેલા સ્નેહનું સ્વરૂપ અને શ્રીવ્રજભક્તો (શુદ્ધપુષ્ટિ)ને સુદૃઢ સ્નેહનો તારતમ્ય સમજાવેલ છે. તેથી સુદૃઢ સ્નેહથી ધર્મસ્વરૂપની રસાનુભૂતિના સમયે સર્વસંગત્યાગપૂર્વક અને સર્વથા સંપૂર્ણતયા ચાંચલ્યના પરિહારપૂર્વક ભગવન્નિષ્ઠ થઈને રહેવું જોઈએ. ફલદશા વખતે “વિરહાનુભવાર્થં તુ પરિત્યાગો પ્રશસ્યતે” તેવું શ્રીઆચાર્યજીનું વચન છે. બીજી એક વાત અહીં કહી કે જે ભગવદીય છે તે ભગવદ્વ્યતિરિક્ત બીજા કોઈની સન્મુખ પોતાના ભાવનું પોષણ કરી શકે નહીં. તેથી વ્રજભક્તોએ ધર્મસ્વરૂપ શ્રીકૃષ્ણની જ આકાંક્ષા પ્રગટ કરી છે. મિશ્રપુષ્ટિએ પણ યથાશક્તિ અવસ્થા મુજબ આ ભાવનું અનુસરણ કરવાનો પ્રયત્ન કરવો તે તેના માટે ફલસમર્પક છે.

**ફલયોગ્યતા સમર્પક વિરહ :**

“તતો ગત્વા...” (૧૦૧૨૬૧૩૭) આમાં ભગવદ્રસપ્રાપ્તિને કારણે ભગવદીય પરમ ફલરસાનુભવ કરે છે. તે રસપ્રાપ્તિમાં સંયોગ રસાનુભૂતિ ફલરૂપે પ્રગટ થાય છે તેમજ પૂર્ણ રસાનુભવમાટે વિરલ રસની આવશ્યકતા જણાવી. પ્રભુ ભક્તિરસાત્મક પણ છે જ તેથી મિશ્ર પુષ્ટિભક્તોમાટે પણ સેવારસ તથા કથારસ લીલા પૂર્ણરસને દાન કરનારી પ્રક્રિયા જાણવી.

**વિરલરસલીલાનો અભિનય :**

“એવમુક્તઃ...” (૧૦૧૨૬૧૩૮) આ શ્લોકમાં અતિતીવ્ર તાપાત્મક પરન્તુ પરમ આનન્દ રસરૂપ વિરલરસનું દાન કરવાની પ્રભુને અભિલાષા હતી. તદનુસાર ભગવદ્

સમાન શ્રીસ્વામિનીજીએ પણ તેનું અનુમોદન આપ્યું અને તે વિરહરસલીલાનો અનુભવ પ્રભુએ રસાત્મક રીતે કરાવ્યો. પ્રભુ પાસેથી ભગવદીયને પશુપુત્રાદિના પ્રાપ્તિરૂપ પ્રસાદની અપેક્ષા હોતી જ નથી. પ્રભુના ચરણતલની પ્રાપ્તિ એ જ અભિલાષા ફલરૂપે હોય છે. આ રીતે ચરણારવિન્દની યા ભક્તિની પ્રાપ્તિ એ પરમ ફલ છે તે જણાવ્યું.

**શ્રીકૃષ્ણનું મુખારવિન્દ એ જ પરમફલરૂપ છે :**

“વીશ્યાલકાવૃતમુખં તવ કુણ્ડલશ્રિ...” (૧૦૧૨૬૧૩૮) આમાં જણાવ્યું કે પુષ્ટિભક્તિમાર્ગમાં મુક્તિરૂપ સાલોક્ય સામીપ્ય સારૂપ્ય અને સાયુજ્ય એવી મુક્તિની અભિલાષા હોતી નથી. તેમનું ફલ તો માત્ર મુખારવિન્દરૂપ ભક્તિ એ જ છે. તેથી પ્રભુનું દાસ્ય એ જ પરમફલ છે.

આ રીતે શ્રીસુબોધિનીજીમાં પુષ્ટિભક્તિના પરમફલનું નિરૂપણ કરવામાટે તેના પરમફલના વિવિધ ૨૨ પ્રકારો પ્રગટ કર્યા છે. તેજ પ્રમાણે બીજા પણ અનેક પ્રકારો હોઈ શકે છે. તે બધાનું સ્વરૂપ તૃતીયસ્કન્ધના સુબોધિનીજીના આધારે પણ સારાંશમાં જણાવ્યું છે. ત્યાર પછી આ બધાની ઉપપત્તિ શ્રીગુરુજનસ્વરૂપ શ્રીગોપીજનોના ભાવને પ્રદર્શિત કરનારા ૧૦૧૨૬૧૩૯ થી ૧૦૧૨૬૧૩૮ સુધીના શ્લોકોનું ભાવાનુવાદ આપીને વિસ્તાર કરવા યથામતિ પ્રયત્ન કર્યો છે.



## चर्चा

श्रीसुबोधिनीजिभां पुष्टिभक्तिना परम-इवमुं निरूपय

श्रीगोपालदास शाह

**गो. शरद् :** प्रभुकी लीला और स्वरूप की विवेचनाके प्रसंगमें प्रायः रसशास्त्रको उल्लेख आवे है. प्रभु रसात्मक हैं... श्रुतिमें भी “रसो वै सः” ऐसो कह्यो गयो है. रसशास्त्रकी रचना तो बहोत बादमें भई होयगी. पर जा तरहसु लीलाकी विवेचना होवे है वापेसु ऐसो लगे है के प्रभुने रसशास्त्रकी पुस्तकें पढ़के लीला करी होवे! मेरी जिज्ञासा ये है के प्रभु रसशास्त्रको अनुकरण करे हैं के लीलाके विवेचक लीलाकी विवेचना रसशास्त्रीय ढबसुं करे हैं क्योंकि लोग रसशास्त्र और वाकी टर्मिनोलोजिसुं परिचित हैं?

**गोपालदास :** ठाकुरजी रसशास्त्रको अनुसरण नहीं करें हैं. लीलाको अनुवाद भले शास्त्र वैसो करे. और भरतजी होवें, चाहें अंजनेय होवें या फिर वात्स्यायन ही क्यों न होवें. ये सब ऋषि हते. इनको आशय संसारमें तो हतो ही नहीं. ब्रह्मप्राप्ति होवे उतनी उच्च दशा उनकी हती. उनकु कुछ लौकिक बातें कहनेकी इच्छा नहीं हती. लोक क्योंके बहोत बुद्धिमान् हो गये यासु उनने वाकु वा तरहसुं निरूपित कियो. वो कोई रस नहीं है. वो तो मनोविकृति मात्र है. और अपन जो “रसो वै सः” कहे हैं तो वाको मतलब ये है के जो प्रभुने कियो है वो ही शास्त्ररूपसुं प्रकट होके बाहर आवे ऐसी इच्छा है. यासुं लीला प्रथम भई है, शास्त्र पीछेसुं प्रकट भयो है. रसशास्त्रने लिख दियो वा तरहसुं आपने लीला करी होवे ऐसो नहीं लगे है.

**गो. शरद् :** लीलाकी बात नहीं कर रह्यो हूं. लीला तो स्वतन्त्रतया प्रभु करे हैं. परन्तु लीलाके विवेचनमें रसशास्त्रकु वा तरहसु उद्धृत कियो जाय है जैसे कि वो साक्षात् वेद होवे. और उन विवेचननकुं पढ़ें तो ऐसी प्रतीति होवे है के प्रभुने रसशास्त्रकी पुस्तकें पढ़-पढ़के लीला करी होवे. कभी-कभी तो ऐसो भी निरूपण कियो जाय है के ऐसो नहीं करके यदि प्रभु वैसो करते तो रसाभास हो जातो यासु प्रभुने ऐसे लीला करी.

रसकी संख्याके विषयमें भी ऐसो ही है. कोई मुनिने शृंगार, रौद्र

आदि नव रस होवे हैं ऐसे लिख दियो. दूसरेने कह्यो के नहीं, रस दस होवे हैं. कोईने कही के ग्यारह होवे हैं. भक्तिमार्गीन्ने भी दावा कियो के भक्तिकु भी एक रस माननो चाहिये. पर प्रश्न ये है के भक्तिकु रस माननेकी क्या अनिवार्यता है. भक्ति यदि रस है तो क्या लाभ है और भक्ति यदि रस नहीं सिद्ध होवे है तो क्या हानि है.

अभी अपन पुष्टिफलकी विवेचना कर रहे हैं वामें भी संयोग परम फल है या विप्रयोग परम पल है ये विषय भी रसमीमांसाके कारण ही पैदा भयो है. रसशास्त्रमें क्योंकि ऐसो लिख्यो है के रस द्विदलात्मक होवे है : संयोग और विप्रयोग तो अपन सब सोच रहे हैं के प्रभु क्योंकि रसात्मक हैं, संयोग-विप्रयोगात्मक हैं तो प्रभुको संयोग परम फल है या विप्रयोग परम फल है. बाकी श्रीमहाप्रभुजी तो इतनीसी बात आज्ञा कर रहे हैं के “**भगवानेव हि फलम्**” भगवान् फल हैं. ब्रह्मसूत्रमें भी फलके सन्दर्भमें संयोग परम फल है अथवा वियोग परम फल है ऐसो निरूपण देखनेमें नहीं मिले है. हां, इतनो अपन जरूर कह सके हैं के भगवत्प्रेमको पारा सर्वाधिक ऊंचो विप्रयोगकी अवस्थामें चढ़तो होयगो. परन्तु वो ही परम फल है ऐसो निरूपण तो भाष्यमें भी देखने नहीं मिल्यो है.

**गोपालदास :** एकाद सूत्र है : “**ऊष्माएव**”...

**गो. शरद् :** हां, पर भगवान् फल हैं ...

**गोपालदास :** वामें तो दोमत है ही नहीं.

**गो. शरद् :** कछुकी भी फलरूपता भगवत्सम्बन्धके कारण ही बने है.

**गोपालदास :** वो तो सही है. उष्णतामें भी वापिस अलौकिक उष्णता ऐसो कहनो पड़ रह्यो है. बाकी कोई भी उष्णता या ठंडक में ऐसी कोई बात नहीं है के वो फलरूप बने. ठाकुर है तो कुछ बात है. ये बात तो सच है. पर वा ठाकुरकी अनुभूतिको कौनसो प्रकार अच्छो-बड़ो है तो वो विप्रयोग है.

**गो. शरद् :** आपने विषय बदल दियो.

**गोपालदास :** मैं या आशयसु बोल्यो के “रसो वै सः” ये तो श्रुति है. रस ही आनन्द है. और “**क्रिया सर्वापि सैवात्र**”में ‘सैव’को मतलब श्रीमहाप्रभुजी “रसशास्त्रोक्ता” बतला रहे हैं.

**गो. शरद् :** ये ठीक बात है. पर श्रीमहाप्रभुजीको आशय ऐसो है के ठाकुरजीने रसशास्त्र बांच-बांचके वाके अनुसार लीला करी है?

**गोपालदास :** नहीं. ठाकुरजीने जो लीला करी है वाकु या तरहसु समझके वाकी अनुभूति कर सको हो.

**असित शाह :** “स्वभावस्यान्यथाभावो न वै शक्यः कथञ्चन, अतस्त्रिविधजीवेषु त्रिविधा भगवत्कृतिः” यापे श्रीगुसांईजी समझावे हैं के यदि प्रभु भक्तनके स्वभावको अनुसरण करके लीला नहीं करें तो दो बात होवे : या तो वो लीला रसाल नहीं होवे और दूसरो, जीवकु क्लेश होवे. यद्यपि प्रभु तो आनन्द दे रहे हैं पर जीव आनन्द ले नहीं पावेगो अगर प्रभु वाके स्वभावको व्युत्क्रम करके आनन्दको दान करेंगे. प्रभु तो रसशास्त्रीय प्रक्रियासु अननुरूप भी फलदान कर सके हैं पर वामें जीव मजा ले नहीं पावे है. ऐसी स्थितिमें प्रभुके ऊपर दोष आवे है. प्रभुके लिये रिपीटेडली कह्यो जावे है के प्रभु अक्लिष्टकर्मा हैं...

**गोपालदास :** भाई, पहले लीला भई है पीछे शास्त्र बन्यो है. शास्त्रके अनुसार प्रभु क्या खेलेंगे! ठाकुरजीकी लीलाकु अनुवाद कैसे कह रहे हो! आप उलटी बात कर रहे हो.

**असित शाह :** मैं जीवके स्वभावकी बात कर रह्यो हूं. जैसे व्याकरण है. तो व्याकरण शास्त्र बादमें बन्यो है. अपन बोलनो व्याकरणसु नहीं सीखें हैं.

**गोपालदास :** आचार्यचरण जो आज्ञा कर रहे हैं वामें विवाद नहीं है. आप जो कह रहे हो के प्रभु भक्तनके स्वभावानुसार लीला नहीं करते तो उनकु अच्छो नहीं लगतो. यामें मोकु विरोध है.

**असित शाह :** क्लेशवाली कोई प्रक्रिया होयगी तो...

**गोपालदास :** कायकु क्लेश, कैसो क्लेश? ठाकुर कभी क्लेश दे सके जो आनन्द दे रह्यो है!

**असित शाह :** जैसे पूतनावध या कालीयदमन की लीला है. कोई भक्त यदि व्यासजीके जैसो है तो वाकु तो आनन्द आ सके. पर ब्रजभक्तनको भाव ऐसो है के उनकु वामें क्लेश भयो.

**परेश शाह :** शरद्बावाश्रीके प्रश्नपे भई चर्चा स्पष्ट समझमें नहीं आयी.

**गो. श्या.म.:** चर्चामें कोटिक्रम चलते ही रहे हैं. पर चर्चाके पीछे कौनसी प्राग्धारणाएं काम कर रही हैं उनकु समझ लेनो चाहिये. भगवान् अप्राकृत होते भये भी “बभूवः प्राकृतः शिशु” प्रकृत्यनुकारी भये ये लीलामें अपन देख सके हैं. दूसरी ओर वेदान्तको सिद्धान्त ये है के जितने भी प्राकृत तत्त्व हैं वो

भगवदनुकारी हैं, कोई-न-कोई तरहसु भगवान्‌कु इमिटेड कर रह्यो है। उदाहरणतया 'काम'कु लेवें। असल काम अपनेमें नहीं है, प्रभुमें है। अपनो काम प्रभुके कामको अनुकारी है। क्यों? क्योंकि अपन कोई वस्तुकी कामना करें और वो अपनकु प्राप्त हो जावे तो अपने भीतर विरसता नहीं आनी चाहिये। पर अपने भीतर विरसता आवे है। यासु अपनको काम भगवत्कामको एक क्षुद्र इमिटेशन् है। ये ही बात अपने ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य सबके ऊपर लगू होवे है। अपने भीतर ये सब भगवान्‌के ऐश्वर्यादिके क्षुद्र इमिटेशन् हैं। ऐसे ही अपनो आनन्द भी भगवान्‌के आनन्दके अंशको क्षुद्र इमिटेशन् है। इमिटेशन् होनेके कारण एक वर्च्युअल् रियालिटी पैदा होवे है पर वो एक्च्युअल नहीं है। ऐसे ही रसशास्त्रकी प्रक्रिया, सारे शास्त्रन्की प्रक्रियाकी और प्रत्येक वस्तु क्रिया-कलाप भगवान्‌के कोई क्रिया-कलापको फोल्स इमिटेशन् है। 'फोल्स' या अर्थमें नहीं के वो है नहीं, अद्वैतीन्के अर्थमें मिथ्या नहीं, जूठो या अर्थमें के अपन वाकु ओरिजिनल् मान रहे हैं, पर वो ओरिजिनल् नहीं है, आर्टिफिशियल् है। प्रभुको अहंकार जैसे सच्चो अहंकार है, आपनो अहंकार जूठो है। जैसे **“भूमिरापोनलोवायु खं-मनोबुद्धिरेव च, अहंकार”** ऐसे भगवान् जब अपने अहंकारकी बात करे हैं तब वो जूठो अहंकार नहीं है, रियल् है। अपने भीतर अपनकु ऐसो लगे है के अहंकार रियल् है, पर है वो आर्टिफिशियल्। ऐसे अपनी रसात्मिका चेष्टाएं सब आर्टिफिशियल् हैं, रियल् नहीं हैं। याकु अपन ऐसे समझ सके हैं के रामचन्द्रजी और सीताजी की प्रणयलीलाकु आज कोई एनेक्ट करे। स्टेजपे शां चल रह्यो है के राम सीताजीके विरहमें रो रहे हैं, वृक्ष-वृक्षसु पूछ रहे हैं। पर अवतारकालमें जो विरह रामने सीताको अनुभव कियो हतो ऐसी विरहानुभूति स्टेजपे मंचन करनेवाले अभिनेताकु हो नहीं सके है। क्योंकि ये तो नाटक है। या नाटनकु यदि अपन सच्चो मानें तो वो खोटो है, पर यदि वाकु नाटन मानें तो वो सच्चो है। ऐसे अपनी जितनी भी नव, दस या ग्यारह रसकी लीलाएं हैं उनमेंके सारे रस आर्टिफिशियल् हैं। प्रभुमें वो रियल् है। प्रभुकी वो लीलाएं तो अपनने साक्षात् देखी नहीं हैं यासु अपन प्रभुकु अपनो रोल्-मॉडल् तो कह नहीं सके हैं पर ऋषिन्ने शास्त्रमें अपनकु ये समझायो है के **“एतस्यैव आनन्दस्य सर्वाणि भूतानि मात्राम् उपजीवन्ति”** वा न्यायसु प्रभुमें जो ऐश्वर्यादि हैं वाके इमिटेटेड आर्टिफिशियल् ऐश्वर्यादि अपने भीतर

भी हैं। सृष्टिलीलासु एक स्थिति ये है। परन्तु प्रभुकी अवतारलीलामें दूसरी स्थिति है। लोकमें जो आर्टिफिशियलि प्रकट भयो है वाकु प्रभु रियली एनेक्ट करे हैं, लोकानुसरण करके। जैसे प्रभु कारागृहमें प्रकटे तो चतुर्भुज प्रकट होके प्राकृत शिशु बने। क्योंकि वसुदेव-देवकीजीकु पुत्ररूपमें प्रभुके जैसे पुत्रकी कामना हती। वो तो लोकमें मिलनेसु रह्यो। यासु प्रभु स्वयं प्रकटे। उनकु विश्वास होवे के जो प्रकट्यो है वो प्रभु है वाके लिये चतुर्भुज रूपसु प्रकटे। और वात्सल्यसुख देनेकेलिये प्राकृत शिशु बने। ये प्रभुने लौकिक बालकको अनुकरण कियो। ऐसे रासलीला भी प्रभुने लोकमें जो आर्टिफिशियल् रस प्रकट भयो वाको अनुकरण करके ही करी। वो आर्टिफिशियल् वहांकी कॉपि है। ऐसे एक सर्कल् कम्प्लीट हो जा रह्यो है जाकु श्रीमहाप्रभुजीने काष्ठ-अग्निके दृष्टान्तसु बताया है। अग्नि काष्ठमें स्थित है वो अपने आप प्रकट नहीं होवे है। पर जब वाकु बाहरसु टूट करो तो एक सायकल् कम्प्लीट हो जावे है। वासु काष्ठमें अग्नि प्रकट हो जावे है। ऐसे अन्तःस्थित गूढ रस बाह्यानुकरणमें प्रकट नहीं हो रह्यो है वाकु बाह्यानुकरणकी दियासलाईसु इन्स्टिगेट करो। वो फिर प्रकट हो जावे है। वो जब प्रकट होवे है तब एक सायकल् पूरी होवे है। ऐसे प्रभुने जो रासलीला करी है वो लोकानुकरण करते भये भी वा लीलाको अनुकरण है के जो लीला प्रभुकी लीलाको अनुकरण हती। ऐसे एक सायकल् कम्प्लीट हो रह्यो है। या ही लिये अपने काम-क्रोध-लोभादिको भी कोरिलेशन एश्वर्य-वीर्यादिसु देख सके हैं। इनको पाछो प्रभु अनुकरण करे हैं। कभी क्रोध दिखावे हैं, कभी लोभ-मोह दिखावें। जैसे वसुदेवजीकु मृत घोषित किये तो प्रभुने मोह दिखायो। वस्तुतः लोकमें मोह ऐश्वर्यादिको अनुकरण है अपने भीतर। पर जब प्रभु लोकमें प्रकट होवे हैं तब अपनो अनुकरण करे हैं “लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्”।

यामें एक बात समझने की है। मैं संयोग-विप्रयोग परम फलके विषयपे आ रह्यो हूं। ध्यानसु समझो। “स वै नैव रेमे. स द्वितीयमैच्छत्” द्वितीयेन सह संयोगमैच्छत्। द्वितीय तो कोई हतो ही नहीं जाके साथ प्रभु संयोग लीला कर सकें। क्योंकि प्रभुको लीलात्मक स्वभाव है यासु एकाकी रमण नहीं भयो। वाने दूसरेकी चाहना करी। द्वितीयकी चाहना कायकेलिये करी? संयोगके लिये या विप्रयोगके लिये? संयोगके लिये। संयोगके लिये

करी करके “स आत्मानं द्वेधापातयत्”. जैसे ही वाने अपनो द्वेधा पातन कियो “पतिश्च पत्नीचाभवताम्” पति-पत्नीके रूपमें वैसे ही पत्नी छुप गयी. विप्रयोग हो गयो, संयोगके बजाये. उपनिषद् लिखे है के जब पत्नीवालो रूप छुप गयो तब पतिवाले रूपने वाकु खोजवेकेलिये दूसरो रूप जैसो रूप पसन्द करे ऐसो रूप वाने धारण कियो. वाको उदाहरण ऐसे दियो है के द्वितीय रूप बकरी बनके छुप गयो तो ये बकरा बन गयो. वो गाय बनके छुप गयी तो ये बैल बन्यो. वो शेरनी बनके छुप्यो तो ये शेर बन्यो. मैं वाकु कोई भी तरहसु पाउंगो. तो विप्रयोगको अनुभव दूसरो रूप करवा रह्यो है. संयोगको अनुभव ये करनो चाह रह्यो है. याके कारण संयोग-विप्रयोगके सायकल्की लीला प्रकट भई है. वो लीला मूलमें वहां प्रकट भयी है वाको अनुकरण आज भी अपन कर रहे हैं. अवतारकालमें प्रभुने वाको अनुकरण कियो. अपन कहे हैं के प्रभु लीलाविशिष्ट प्रकट होवे हैं. कौनसे अर्थमें? जो मूल लीला हती वाकु आर्टिफिशियल् लीलामें प्रकट करे हैं. याकु समझनेमें कठिनाई हो सके है पर ध्यानसुं समझो के जैसे अपनने एक मूर्ति बनाई जो आर्टिफिशियल् है. वो मूर्ति जाकी है वाकी बहोतसी वर्च्युअल् रियालिटी मूर्तिमें है. पर एक्च्युअल् क्यों नहीं है? क्योंकि वाको कुछ स्वरूप वामें नहीं है. पर समझो के वो स्वरूप वामें प्रकट कर दियो जाये जैसे बिजलीकी डिवाइससुं गणपतिकी मूर्तिकी सूँढ हिलती करदी जाये वगैरह. ऐसे सब कार्य और गुण गणपतिकी मूर्तिमें प्रकट कर दिये जायें तो क्या वा मूर्तिकु गणपति माननो के गणपतिकी मूर्ति माननो? एक्च्युअल वो प्रोब्लेम् है. जैसे अपन स्वरूपकी सेवा पधरा रहे हैं. वामें अपन पुरुषोत्तमप्रतिष्ठा करे हैं. वासु प्रभुकी कृपाशक्तिकु अपन इन्वोक् करे हैं जाके कारण प्रभुको मूल रूप या प्रकट रूपमें, रामानुजकी शब्दावलीमें अर्चावतारमें; अपने यहांके शब्दमें कहो तो स्वरूपमें और श्रीमहाप्रभुजीके शब्दनमें कहो तो मूर्तिमें प्रभुको प्रकट होनो. प्रभुको प्रकट होनो अपन कैसे जान पायेंगे? वैसे तो सब कुछ भगवान् ही है. यासु मूर्तिमें एडिशनल् भगवान् कहांसु प्रकट होयगो? पर भगन्मूर्तिमें, जो भगवदात्मक है, वामें भगवान् अपनी भगवत्ताको अनुभाव यदि प्रकट करते हो जायें तो अपनो वाके साथ रेसिप्रोकेशन उतनो ही रियल् हो जायेगो जितनो रियल् मूल स्वरूपके साथ हो सकतो हतो. ऐसे प्रत्येक अवतारलीलामें प्रभुने वो अनुभाव प्रकट कियो है जो उनको मूल हतो. जाकु



“तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वं तस्या भासाः सर्वमिदं विभाति” कह्यो है. सब कछु प्रभुको अनुकारी है ये जो श्रीमहाप्रभुजीको सिद्धान्त है वो मूलमें सृष्टिमें सब कछु प्रभुको अनुकारी है पर सृष्टिमें प्रकट होको प्रभु सृष्ट्यनुकारी बने हैं वा साय्कलकु कम्प्लीट करनेकेलिये. “तदैव सकलो बन्धो नाशमेति न चान्यथा” ये श्रीमहाप्रभुजीने सिद्धान्त बताया है. तो याकु साय्कलकलि देखोगे तो “एकाकी न रमते” यासु वाकु संयोगकी इच्छा भयी. संयोग प्रकट भयो तो वियोग प्रकट होयगो ही. वियोग प्रकट भयो वो जब अविषह्य होयगो तब वाके कारण फिर पाछी संयोगकी एक साय्कल प्रकट होयगी. वाके कारण फिर पाछो एक विप्रयोग होयगो. **“गोपानां च तथा स्त्रीणां रात्रिं च दिवसं तथा, ज्ञानं भक्तिश्च सततं चक्रवत् परिवर्तते”** ये संयोग और विप्रयोगको एक चक्र है. प्रत्येक चक्र पूरो होनेके बाद मोर एंड मोर टुवर्डस् कम्प्लिशन् जावे है... आनन्दकी अनुभूतिमें आनन्दसु आनन्दमय प्रकट भयो के आनन्दमयसु आनन्द प्रकट हो रह्यो है? श्रीहरिरायजी कह रहे हैं के आनन्द आत्मा है. वासु आनन्दमय विग्रह प्रकट हो रह्यो है. श्रीगुसांईजी कह रहे हैं के **“आनन्दमयोऽभ्यासात्”**. आनन्दमय परमात्मा है वो अपनेमें भावात्मक आनन्दके रूपमें प्रकट हो रह्यो है. ये प्रश्न तब ही सुलझेगो जब याकु चक्र मानेंगे. या चक्रकु पूरो होने दो. आनन्द यदि तुम्हारे हाथमें आ गयो तो वाकु आनन्दमय तक ले जाओ. आनन्दमय यदि प्रकट हो गयो है तो चिन्ताकी बात नहीं है, अब आनन्दकेलिये यत्न करो. या तरहसु चक्रकी तरह चलेगो तो वाकी पूर्णानुभूति हो पायेगी. क्योंके मूलमें वा ही तरहसु भयो है. **“स एकाकी न रमते. स द्वितीयमैच्छत्. स आत्मानं द्वेधाऽपातयत्. पतिश्च पत्नीचाभवताम्”**. करके संयोग-विप्रयोगको चक्र है. यामें चक्रकु तोड़नो अपराध है, चक्रके कोई एक भागकी प्रशंसा करनो अपराध नहीं है. क्योंके ये चक्र ब्राह्मिक साय्कलको पार्ट है. जैसे दिन-रातको एक चक्र है. या चक्रमें कुछ प्राणी दिनमें उत्साहको अनुभव करते होवे हैं तो कुछ प्राणी रात्रिके समय उत्साहित होते होवे हैं अपने-अपने स्वभावके अनुसार. पर क्या दिनमें उत्साहित होनेवाले प्राणी रात्रिको निषेध कर सके? नहीं. क्योंके ये तो एक चक्र है. जैसे शरद्बावाने नियत फल और अभिलषित फल की बात कही तो वामें भी ये ही समझवेको है. आपने यदि कोई अभिलषित फल पायो तो कोई नियत फल भी होयगो ही. जैसे विवाह

करे तो पतिकु तो बोस् माननो ही पड़ेगो, पति बोस् होय के न होय. क्योंकि 'पति'शब्दको अर्थ ही बोस् होवे है. ये नियत फल है. तो कुछ अभिलषित फल होवे हैं तो कुछ नियत फल भी होवे हैं. अपन बच्चाकु थोड़ोसो प्यार करें सो ही बच्चा अपनेपे बोसिंग् करवे लगे है. ये नियत फल है **“स्वाधीना पुष्टिरुच्यते”**. वो कृष्णाधीना नहीं रह जावे है. ऐसे फलको चक्र चलतो रहे है. हर सम्बन्धमें ये चक्र है. गुरु-शिष्यमें है, दुकानदार-ग्राहकमें है. कोई ग्राहककु प्रिविलेज् दियो सो ही वो बोसिंग् शुरु करेगो. ऐसो सब चगह है. क्योंकि अन्तमें एक ही ईश्वर ईश्वर भी बन्यो है और दास भी बन्यो है. एक ऑर्गेनिक् बॉडी है. वामें एक माथा है और पैर भी है. माथा उत्तमांग हो गयो तो पैर अधमांग हो गये. रसशास्त्रकी प्रक्रियामें भी ये बात है. एक चक्र चल रह्यो है. वाकु चलवे दो.

**परेश शाह :** शरद्बावाने जो प्रश्न उठायो वापे असितभाईने कह्यो के प्रभु लोकानुकरण करे हैं. आपने भी ये बात कही. गोपालभाई कह रहे हैं के प्रभु शास्त्रको अनुकरण नहीं करे हैं. पर कोई बातकु समझावेके लिये यदि रसशास्त्रकु ला रहे हैं तो वासु बात स्पष्ट हो रही है. शायद असितभाईको भी ऐसो आशय नहीं हतो के रसशास्त्र ही सच्चो है. पर वाके अनुरूप भगवान् लीला करे हैं.

**गो. श्या.म.:** रसशास्त्र खोटे हो ही नहीं सके हैं. क्योंकि अपने यहां श्रीमहाप्रभुजीने ही खुलासा कर दियो है के रसशास्त्रतो ब्रह्मकी लीलाको डिस्क्रिप्शन है. अपन वाको आर्टिफिशियल् इमिटेशन कर रहे हैं. ये बात रसशास्त्रकी ही नहीं है, धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र कामशास्त्र मोक्षशास्त्र सबमें ये ही बात है. अपनेलिये जो भी शास्त्र प्रकट भये हैं उनमें वाकी फैकल्टिको इमिटेशन है. वो इमिटेशन होनेके अर्थमें रियल् नहीं है. पर वो फोल्स् एपीयरेंस् नहीं हैं वा अर्थमें वो रियल् हैं. प्रभु जब प्रकट होवे हैं **“परित्राणाय साधूनाम्”** तो साधुपरित्राण क्या है? लोकानुसरण है. **“विनाशाय च दुष्कृताम्”** दुष्टन्को विनाश क्या है? लोकानुकरण है. यदि दुष्टन्को विनाश ही करनो हतो तो फिर उनकु पैदा क्यों किये? और पैदा करके विनाश करनो तो बेवकूफी है! पर लोकमें जब प्रभु प्रकट होवे हैं तो लोकमें अच्छो व्यक्ति जो काम करे है वाकी काँपि प्रभु भी करे हैं. यासु साधुपरित्राण भी करे हैं, दुष्टन्को नाश भी करे हैं. पर देख्यो जाय तो असली कल्प्रिट् कौन है? प्रभु ही तो हैं! **“एष उ एव साधुकर्म कारयति तं उन्निनीषति, एष उ एव असाधु कर्म कारयति तमथो**

निनीषति’’. साधुकर्म वो करवा रह्यो है जाकु ऊपर उठानो है, असाधुकर्म भी वो करवा रह्यो है जाकु वो नीचे गिरानो चाह रह्यो है. पर लोकानुकरणमें प्रभु वो मूल स्वरूप प्रकट नहीं करे हैं. लोकानुकरणमें प्रभु “विनाशाय च दुष्कृताम्, धर्मसंस्थापनार्थाय” ऐसो स्वरूप प्रकट करे हैं. जहां जो रूप प्रकट करना चाहिये ऐसो रूप प्रभु प्रकट करें हैं. भक्तके सामने प्रभु वैसो रूप प्रकट करे हैं. कौनसी हद तक “मेहनादीनि वास्तौ”. बदमाश बच्चा रसोईघरमें सुसु कर देवें. प्रभुने उनको भी अनुकरण कियो है. वैसे देखें तो “मेहनादीनि वास्तौ” अपन उनको कर रहे हैं. उपनिषद्में वर्णन है के ब्रह्म कैसे मेहन करे है. तो अपन वाको अनुकरण करे हैं. पर जब लोकमें प्रभु प्रकटे हैं तब लोकमें बच्चा जैसे मेहनादि करें हैं ऐसे भी प्रभु करे हैं. चक्र पूरो होनो चाहिये. निरोध भी या अर्थमें है. याको कारण श्रीमहाप्रभुजीने समझायो है के डूबतेकु बचानेकेलिये रस्सी फेंकी जाय है. पर अपनो कोई डूबतो होवे तो अपन रस्सी नहीं फेंकें हैं, अपन खुद कूद पड़ें हैं. ऐसे संसारासक्तिमें डूबते जीवन्के उद्धारके लिये मर्यादामार्गके एंगल्सु प्रभुने अनेक रस्सियें फेंकी हैं. पर जिनको प्रभुने पुष्टिजीवके रूपमें अङ्गीकार कियो है उनके सामने साधननकी रस्सी फेंकनेके बजाये उनके संसारके कूपमें प्रभु खुद कूद पड़के उनकु बतावे हैं के यामें मेरे साथ ऐसे तैरो तो तुमकु मजा आ जायेगी.

**हितेन्द्र शाह :** आपने जिनकु आर्टिफिशियल कह्यो वाके बजाये अपन उनकु भगवान्के ऐश्वर्यादिको पार्ट है ऐसो नहीं कह सकें?

**गो.श्या.म. :** आर्टिफिशियल कहनेमें डरनेकी क्या बात है? वो सोचो के आर्टिस्ट कौन है.

**हितेन्द्र शाह :** वाको पार्ट है या लिये आर्टिफिशियल हो रह्यो है. मेरो कहनो ये है.

**गो.श्या.म. :** मेरो कहनो ये है के वाको पार्ट होवे के नहीं होवे, आर्टिफिशियल होवे के कुछ भी होवे, पर आर्टिस्ट कौन है? या आर्टिफिशियल फिनोमिनाकु बानेवालो कौन है? एक बखत या बातपे ध्यान दो. ऋग्वेदने ये सवाल किये हैं : “किं स्विद् वनं, क उ स वृक्ष आसीद् यतो द्यावा पृथिवी निष्ठतक्षु?”. वो जंगल कौनसो हतो? वो पेड़ कौनसो हतो? जासु या पृथ्वी और आकाश को आखो सीन् क्रिएट कियो गयो है. “किमध्यदिष्ठत्?” वो खड़ो कहां हतो जब वाने ये सारो स्ट्रक्चर् बनायो. वापे यजुर्वेदने जवाब दियो है के “ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आसीत्, ब्रह्माद्यतिष्ठत्”. वन भी ब्रह्म

हतो, पेड़ भी ब्रह्म हतो और सुतार भी ब्रह्म हतो. ब्रह्मने ब्रह्मके वनमें ब्रह्मके लकड़ाकु काटके ब्रह्मकी करवतसु या आखे भवनकु बनायो है. भवन आर्टिफिशियल् है. पर याको अभिन्ननिमित्तोपादन वो है. आर्टिफिशियल्कु गलत सेन्समें लो तो निन्दा है, राईट् सेन्समें लो तो प्रशंसा है. एक शास्त्रीजी कहते हते “मेरा बच्चा! छे बखत जेल जाके आया है!!” बापकु बड़ी आशा हती के बेटा पढ़के शास्त्री बनेगो. पर ऐसो भयो नहीं. अब बाप बेटाकी प्रशंसा करे तो करे कैसे? यासु वो कहते “मेरा बेटा बहोत गज़बका है. छे बखत जेल जाके आया. चाहे जिससे मारा-मारी कर लेता है”. मेरो मानोगे तो गुण दीखेंगे. ऐसे पहले ये सोचो के “मेरो ब्रह्म”. कौनने बनायो है? मेरे कृष्णने बनायो है. अपने कृष्णकी शेखी बघार सके हैं : यः क्रीडति, यो जगद्भूत्वा क्रीडति और यतो जगत्क्रीडति! मेरा बेटा! ऐसे एक बार ये सोचो के मेरे कृष्णने बनायो है.



## द्वितीयदिवसीय उपक्रम

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी

कल अपनने श्रीगुसांईजीके ग्रन्थ ‘मुक्तितारतम्यनिर्णय’कु आधारपत्र बनाके वाकी पृष्ठभूमिपे फलमें तारतम्य कैसे होवे है वो देख्यो. फलकी विविधता तारतम्यमूलक भी हो सके है और तारतम्यके बिना भी हो सके है. खास करके गोपालके पेपरमें ये दोनों प्रकारसु विविधता वाले फल निरूपित भये हते. शरदबावाके पेपरमें अपनने ये देख्यो के फलकी कितनी विविधताएं हो सके हैं. इनके पत्रमें फलके तारतम्यकी पूरी हियरार्कि सिस्टमेटिकलि बताई हती.

श्रीपुरुषोत्तमजी आज्ञा करे हैं “आचार्यवाचं प्रणमामि भाष्य-निबन्ध-सुबोधिनीस्था इतराश्च यास्ता, मत्स्वान्त आगत्य कृपाप्लुतास्ता मदीयवाचि रचयित्वलंकृतिम्”. आचार्यचरणके ग्रन्थको क्रम श्रीपुरुषोत्तमजी या तरहसु ले रहे हैं. ‘इतर’सु श्रीपुरुषोत्तमजी प्रकरणग्रन्थ कहनो चाह रहे हैं.

चर्चामें भाष्य अपनने कल पहले या लिये लियो के श्रीमहाप्रभुजीके हिसाबसु “वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि, समाधिभाषाव्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्” ये प्रमाणव्यवस्था जिज्ञासु अवस्थाकेलिये है. यदि व्यक्ति सकलशास्त्रको ज्ञात है तो या प्रमाण चतुष्टयको नियम नहीं है. तब “अर्थोयमेव निखिलैरपि वेदावाक्यैः रामयणैः सहित भातर-पञ्चरात्रैः, अन्यैश्च शास्त्रवचनैः सह तत्त्वसूत्रैः निर्णयिते सहृदयं हरिणा सदैव” या न्यायसु सभी मान्य शास्त्र प्रमाण हैं. ये तो शास्त्राभिप्रेत बोधकी बात है पर जहां ब्रह्मज्ञानकी बात है वहां तो श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के “‘अग्निनुष्णः’ इत्यपि प्रमाणम्, अर्थस्य भगवद्रूपत्वात्”. कोई भी वाक्य अप्रमाण नहीं है क्योंकि श्रीमहाप्रभुजीकी दृढतर मान्यता है के “वाक्यानां सरस्वतीरूपत्वात्”. वाक्यमात्र सरस्वतीरूप हैं. वो कभी भी मिथ्यार्थक हो ही नहीं सके हैं. “अस्तु वा वादिनां हृदयं यथातथा” तुम मनमें मिथ्या भाव रखके कुछ बोल रहे हो तो तुम्हारे मनमें खोट है पर वाक्यार्थ गलत नहीं हो सके है. या हद तक श्रीमहाप्रभुजीके ब्रह्मवादको स्कोप् है ये अपनकु भूलनो नहीं चाहिये. दुर्भाग्यवश अपन तो अभी तक या भ्रान्तिमेंसु भी बाहर नहीं आये हैं के

प्रमाणचतुष्टय है के चार प्रमाण हैं. अधिकतर पुष्टिमार्गीय पुस्तकनमें ऐसे लिख्यो होयगो के पुष्टिमार्गमें चार प्रमाण हैं. परन्तु श्रीमहाप्रभुजीको अभिप्राय ऐसो नहीं है! प्रथम तो प्रमाण चार हैं ये ही गलत बात है. श्रीमहाप्रभुजी तो प्रमाण 'चतुष्टय' आज्ञा करे हैं. और वो भी जब तक सकल शास्त्रके अभिप्रायकु जिज्ञासु अवस्थाके कारण समझ नहीं सकें तब तक ही प्रमाणचतुष्टयकी व्यवस्था है. वाके बाद तो सकल शास्त्र प्रमाण हैं.

यामें श्रीमहाप्रभुजीने एक और उल्लेखनीय बात करी है के श्रुतिको व्याख्यान सूत्रमें है; और गीताको व्याख्यान भागवतमें है. दो व्याख्येय प्रमाण हैं और दो व्याख्यात्मक प्रमाण हैं. ऐसे प्रमाणचतुष्टयी उपदेशकालमें ली है. या बातमें श्रीमहामहाप्रभुजीको दृढतर आग्रह है **“व्यासोऽस्माकं गुरुः”** व्यास हमारो गुरु है. व्यासजीने जा तरहसु श्रुत्यर्थको निर्णय कियो है वासु विरुद्ध अर्थ हम स्वीकारवे तैयार नहीं हैं चाहे कितनी ही युक्ति-प्रयुक्तिनुसु तुम हो-हल्ला मचाओ. श्रुतिवाक्य और सूत्र की सङ्गति बताओ, एक बाजु. दूसरी बाजु गीताके विषयमें भी श्रीमहाप्रभुजीको ये अभिप्राय है के गीताको कोई वचन लेके वाको कोई भी अर्थ करदो ऐसे नहीं. **“तद्विस्तारो भागवतम्”** गीताको विस्तार भागवत है. गीताको अर्थ कर रहे हो तो वाकी भागवतके वचनसु संगति होनी चाहिये. ऐसे श्रीमहाप्रभुजीने शास्त्रके साकारब्रह्मवादी सिद्धान्तकु समझनेकेलिये दो मॉडल् प्रस्तुत किये हैं. साथ-साथ एक ऑल्टर्नेटिव् मॉडल् श्रीमहाप्रभुजीने **“उत्तरं पूर्वसन्देहवारकं परिकीर्तिम्”** को ओर प्रस्तुत कियो है. तदनुसार, सर्वप्रथम प्रमाण श्रुति है. द्वितीय प्रमाण गीताको है. तृतीय प्रमाण ब्रह्मसूत्रको है और चौथो प्रमाण भागवत है. वा अर्थमें भागवत सर्वसन्देहवारक है. या ऑर्डकु देखें तो ब्रह्मसूत्रमें उठते सन्देहनुको निराकरण भागवतद्वारा कैसे करना वाकेलिये श्रीमध्वाचार्यजीने बहोत सारे वचन उद्धृत किये है. श्रीमध्वाचार्यजी शा'रुन्की तरह प्रस्थान नहीं माने हैं फिर भी उनने ये बात जोर-शोरसु हल्ला मचाके कही है के भागवत ब्रह्मसूत्रको प्रथम भाष्य है. ये बात उनने पुराणवचननके आधारपे कही है. ...या बातकु नोर्मल् सेन्समें देखें तो एक समस्या वामें ये आवे है के जैसे श्रीमहाप्रभुजी **“शास्त्रार्थो गीतार्थः”** आज्ञा करे हैं. पर शास्त्रार्थप्रकरणकु देखें तो मूलमें गीताकी कारिकाएं तो श्रीमहाप्रभुजीने उद्धृत करी नहीं हैं. व्याख्यामें करी हैं वो अलग बात है. ऐसे ही गीताकी जो सिनोप्सिस मानी जाय है : तीन षट्क कर्म-ज्ञान-भक्तिके मानो या इतरेतर सम्मिश्रित मानो चाहे तो शरणागतिको चरमोपदेश और शेषकु वाकी भूमिका मानो. ऐसी कोई गीताकी सिनोप्सिसकु भी श्रीमहाप्रभुजीने अनुसरी नहीं है. ऐसे में

“शास्त्रार्थो गीतार्थः” समझनो कैसे ये एक जबरदस्त समस्या अपने सामने खड़ी होवे है। वहां ये समझनो चाहिये के श्रीमहाप्रभुजी गीताकी व्याख्या लिखने नहीं बिराजे हैं पर आप ये आज्ञा कर रहे हैं के गीतार्थ मोकु जा तरहसु समझमें आयो वा समझकु मैं शास्त्रार्थप्रकरणमें लिख रह्यो हूं, और ब्रह्मसूत्रमें गीता व्याख्येय वचनतया “स्मृतेश्च” “स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् इति चेत् न अन्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात्” वगैरह सूत्रन्में गीताकी व्याख्येयता ब्रह्मसूत्रकार स्वीकारे हैं वामें सारे भाष्यकार निर्विवाद सम्मत हैं। तो “उत्तरं पूर्वसन्देहवारकम्” के एंगल्सु देखें तो श्रुति और गीता एक कोटि हैं और ब्रह्मसूत्र और भागवत दूसरी कोटि हैं। यामें एक और मॉडल् काम कर रह्यो है वो ये है के श्रुति भगवन्निःश्वासरूप है पर गीता निःश्वासरूप न होके भगदुपदिष्ट साक्षात् वाक्यरूप है। या अर्थमें श्रुति और गीता कु आर्ष नहीं कहके भागवत कह्यो जाय है। भागवत मतलब भगवतः इदं भागवतम्। श्रुतिकु भागवत नहीं कहके ब्रह्म कह्यो गयो है। क्योंके ऋग्वेदसु लेके उपनिषद् तकमें एक तरहकी युनिफोर्मिटी पायी जाय है के ब्रह्म अब्रह्मसु ज्ञेय नहीं होवे है, ब्रह्म ब्रह्मसु ही ज्ञेय होवे है। श्रुतिको ज्ञेय भी ब्रह्म है और श्रुतिको ज्ञापक भी ब्रह्म है। यासु गीतामें भी कह्यो है “कर्म ब्रह्मोद्भवम् विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्”। यासु श्रुतिको वचन भी ब्रह्म है और श्रुतिको वाच्य भी ब्रह्म है। या एंगल्सु श्रुतिके वचननकु ब्राह्मिक कहे जाय हैं और गीताके वचन भागवत कहे जाय हैं। श्रीमहाप्रभुजी “भगवद्वचसामपि” आज्ञा करे हैं। यद्यपि वेदव्यास भगवज्ज्ञानावतार हैं फिर भी वो ऋषिके रूपसु प्रकटे हैं। यासु व्यासजीके वचननको प्रामाण्य आर्ष है। आर्षप्रामाण्य या लिये कि ऋषिन्में उनको कुछ वैशिष्ट्य है। वैशिष्ट्य ये के अन्य ऋषिन्ने तपस्या-साधना-भगवदनुग्रहसु दिव्य ज्ञान प्राप्त कियो है और व्यासजीने दिव्य ज्ञान प्राप्त नहीं कियो है पर दिव्यज्ञान खुद व्यासजीके रूपमें प्रकट भयो है। ये भेद है। याके कारण अपनने ब्रह्मसूत्रको आलेख पत्र शरद्बावाको पहले चर्चामें लियो। वो व्याजीको सूत्रात्मक वचन है। और भागवत व्यासजीको भाष्यात्मक वचन है, स्वोपज्ञ भाष्य है। ये अपनो सिद्धान्त है। आधुनिक लोग कहते रहे हैं के बादरायण व्यास अलग है और पाराशर व्यास अलग है। उनकी पंचायत अलग है। वाकी चिन्ता अपन नहीं करें। अपने यहांको सिद्धान्त स्पष्टतया ये है के वेदान्तसूत्र व्याजीके सूत्रात्मक वचन है और भागवत व्यासजीको भाष्यात्मक वचन है। लिहाजा अपनने आधारपत्रके बाद तुरन्त ब्रह्मसूत्रके परिप्रेक्ष्यमें फलतारतम्य देखलें और वाके बाद सुबोधिनीसु भागवतके आधारपे फलतारतम्यकु देखनेको प्रयास कियो।

श्रीमहाप्रभुजीने षोडशग्रन्थमें ओल्मोस्ट वो ही नीति अपनाई है जो आपने “शास्त्रार्थो गीतार्थः” कहके अपनाई है. गीताके अर्थकी समझकु आपने जैसे शास्त्रार्थ प्रकरणमें निरूपित करी है ऐसे भागवतके अर्थकी समझकु आपने षोडशग्रन्थतया निबद्ध करी है. अपनने कल ब्रह्मसूत्र और भागवत देखलिये तो अब क्रमप्राप्त षोडशग्रन्थ हैं.

यमुनाष्टक षोडशग्रन्थनमें प्रथम ग्रन्थ है. सहज सम्भव है के षोडशग्रन्थनके क्रम शायद श्रीमहाप्रभुजीने निर्धारित नहीं किये होवें. बादमें श्रीगुसांईजीने या उनके बाद भी कोईने क्रम निर्धारित किये होवें. यामें निश्चिततया कह पानो मुश्किल है के ये क्रम क्या-कैसे हतो. पर तीन क्रम अपनकु मिले है. उनमेंसु श्रीपुरुषोत्तमजीवालो क्रम अत्यधिक सुसंगत लगे है. दूसरे असंगत हैं ऐसो नहीं है पर अधिक संगति मोकु श्रीपुरुषोत्तमजीके क्रममें लगे है. यासु अपन वा क्रमसु षोडशग्रन्थमें फलविचार करें.

श्रीयमुनाजीको जो स्वरूप श्रीमहाप्रभुजी श्रीयमुनाष्टकमें समझा रहे हैं वो स्वरूप भागवतमें सहजतया मिलनो मुश्किल है. सुबोधिनीमें तो श्रीमहाप्रभुजी ‘क्रूरा’ भी कह रहे हैं. पर भागवतने श्रीयमुनाजीके बारेमें जैसे भी कह्यो होवे वा सारी भागवतको तात्पर्य श्रीमहाप्रभुजीकु श्रीयमुनाष्टकके रूपमें समझमें आयो है. वो प्रतिज्ञा श्रीमहाप्रभुजीने शास्त्रार्थप्रकरणमें ही करदी है “निर्गुणामुत्क्रिस्माद्धि सगुणा साऽन्यसेवया, ज्ञानेऽपि सात्त्विकी मुक्तिः जीवन्मुक्तिरथापि वा”. निर्गुणामुक्ति-निर्गुणाभक्तिको कन्सेप्ट श्रीयमुनाजीको साक्षात् स्वरूप है. वाके कारण निर्गुणा भक्ति यदि अपनकु समझमें आवे तो श्रीमहाप्रभुजीके आगे आनेवाले सब पंद्रह ग्रन्थ समझमें आ जायेंगे. और यदि पंद्रह ग्रन्थ समझ लिये पर निर्गुणा भक्ति समझमें नहीं आयी तो सब श्रम बेकार है.





# श्रीयमुनाष्टकम्में पुष्टिफल

मनोज गोस्वामी

विश्वोद्धारार्थमेवाविर्भूतवृन्दावनप्रियः॥  
कृपयन्त सदाचार्यचरणाः मयि सेवके॥  
नत्वा श्रीवल्लभाचार्यान् करुणारस पूरितान्॥  
श्रीविदूढलेशांश्च निजेभ्यो बुद्धिदायकान्॥  
श्रीमदाचार्यचरणाः स्वीयानां भक्तिसिद्धये॥  
अकार्षुः षोडशग्रन्थान् स्वसिद्धान्तार्थबोधकान्॥  
नमोदेवी यमुने नमो देवी कुमारिकामपूरके कुरु भक्तिरायम्॥  
यमुने हर कृष्णमिलनान्तरायम् निजनाथमार्गदायिनि॥

## पुष्टिभक्तिमार्गका सूक्ष्म परिचय :

लेखगत विषयको आरंभ करनेके पूर्व सर्वप्रथम श्रीवल्लभाचार्यजी द्वारा प्रवर्तित शुद्ध पुष्टिभक्तिमार्गका सूक्ष्म परिचय प्राप्त कर लेना न केवल आवश्यक होगा अपितु विषयावबोधनमें भी सहायभूत होगा.

श्रीआचार्यचरणका मार्ग ‘पुष्टिभक्तिमार्ग’के नाम से पहचाना जाता है. ‘पुष्टि’का अर्थ हैं कृपा. जहां तक कृपाका प्रश्न है तो वह भगवान् किसी पर भी करनेके लिए स्वतन्त्र हैं. उस कृपाका जिसे भाजन बनाते हैं वह पुष्टिमार्गीय अवश्य है किन्तु उस कृपाका वृत्त बहोत विस्तृत होनेके कारण उस ‘पुष्टिमार्ग’के हम अनुगामी नहीं हैं क्योंकि प्रभुकी मनुष्यों, देवों और दैत्यों पर होती प्रकट कृपाके अनेक उदाहरण पुराणादिमें मिलते ही हैं (द्रष्टव्य-तत्त्वा.निबन्ध भाग.प्र.६।३)<sup>१</sup>. पुष्टिका एक अन्य स्वरूप भी है. वह है ‘पुष्टिभक्ति’का स्वरूप, जिसका अर्थ है कृपासे जन्य भक्ति, जो केवल दानैक लभ्य है. इस भक्तिका प्रकट उदाहरण श्रीव्रज भक्त और समस्त व्रज मण्डल है. किन्तु वे सब पुष्टिभक्तिमार्गीय हों यह आवश्यक नहीं है. जिसके उदाहरण श्रीमद्भागवतोक्त “सत्संगलब्धया भक्तया...” (श्रीमद्भा.११।११।२५), “आज्ञायैवं गुणान् दोषान्...” “ज्ञात्वाज्ञात्वाथ ये वै मां...”, (११।१२।३२, ३३), “केवलेन हि भावेन...” (११।१२।१४), “तस्मात् त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदना...”, “न रोधयति मां योगो”, “ते नाधीत-श्रुतिगणा... सत्संगात् मामुपागता” आदि (११।१२।१-७)) अनेक श्लोक हैं जिनसे यह निर्धारण होता है

कि उन्होंने किसी सम्प्रदायके अन्तर्गत पुष्टिभक्तिका साक्षात्कार नहीं किया था. अतः हमारा मार्गानुगामित्व निर्धारण करनेमें जिस कृपाका संदर्भ उपादेय है वह कृपा श्रीआचार्यचरण द्वारा प्रवर्तित 'पुष्टिसम्प्रदाय'के अन्तर्गत आती हुई 'कृपा' है. सम्प्रदायका अर्थ होता है 'वारसा'. इस मार्गमें श्रीमहाप्रभु हमें भक्ति या प्रपत्तिका वारसा प्रदान करना चाहते हैं. इस सम्प्रदायमें अनुगामीको अधिकारी भेदसे अनेक नियम भी गले पतित हैं जो हमें दीक्षादानके द्वारा प्राप्त होते हैं. उन नियमोंका पालन न केवल अभीष्ट है अपितु आवश्यक भी है, जिसके अनिर्वाहकी छूट कदापि नहीं दी जा सकती है. यहां जाकर पुष्टिभक्ति और पुष्टिभक्तिमार्ग का भेद स्पष्ट हो जाता है.

श्रीआचार्यचरणोंने पुष्टिसम्प्रदायके अन्तर्गत पुष्टिभक्तिको एक नवीन रूप प्रदान किया है, जिसके द्वारा जीव सर्वप्रथम पुष्टिभक्ति और उसके पश्चात् भगवानकी साक्षात् पुष्टि प्राप्त करनेका अधिकारी बनता है. यह पुष्टिभक्ति अधिकारी भेदसे अनेक प्रकारकी हो सकती है. उदाहरणार्थ कोई जीव भगवत्सेवा-कथा करनेका अभिलाषी होता है तो कोई केवल कथापक्षावलंबी; अथवा कोई तीर्थ यात्रा करनेका अभिलाषी होता है तो कोई केवल नाम मात्र लेनेका. श्रीआचार्यचरणने भिन्न-भिन्न प्रकारके अधिकारियोंके लिए भिन्न-भिन्न प्रकारके उपदेश दिये हैं. संक्षेपमें, भक्ति हमें 'पुष्टिसम्प्रदाय'के अनुसार करनी अपेक्षित है न कि स्वमनोभिलषित प्रकारसे. और पुष्टिसम्प्रदायका सर्वोच्च अधिकृतत्व श्रीआचार्यचरणोंमें ही निहित है, अन्यत्र नहीं. इसी प्रकार पुष्टिभक्तिका सर्वोच्च अधिकृतत्व श्रीयमुनाजीमें निहित है, अन्यत्र नहीं. कुल मिलाकर हमें पुष्टिसम्प्रदायके द्वारासे पुष्टिभक्तिके भवनमें प्रवेश करना है और तत्पश्चात् पुष्टिके भवनमें.

लेखगत विषयके सम्यक् अवबोधनार्थ लेखको हम चार भागोंमें विभाजित करेंगे जिनके नाम अधोलिखित हैं :

१. श्रीयमुनाष्टकंका षोडश ग्रन्थोंमें स्थान
२. श्रीयमुनाष्टकमें फल विचार
३. विभिन्न टीकाकारोंके मतोंका विचार
४. उपसंहार

### १. श्रीयमुनाष्टकं का षोडश ग्रन्थोंमें स्थान :

सर्वप्रथम यहां यह अवधेय है कि पुष्टिसम्प्रदायानुसार पुष्टिभक्तिकी नींव ब्रह्मवादके भवन पर टिकी है (द्रष्टव्यःसिद्धा.मु.१२). अर्थात् जीवको ब्रह्मभावापन्न

होने पर भी कृष्णभक्तिसे निवृत्तिकी छूट नहीं दी जा सकती है। इसी तथ्यका साक्षात् उदाहरण यमुनाजी हैं जो स्वयं श्रीकृष्णस्वरूपा होते हुए भी श्रीकृष्ण भजनमें तत्पर हैं।

षोडशग्रन्थ 'श्रीवल्लभगीता' नामसे प्रसिद्ध है। श्रीआचार्यचरणोंने स्वीयजनोंकी भक्तिकी सिद्धिकेलिए षोडश ग्रन्थोंके रूपमें स्वाभिप्रेत स्वसिद्धान्तोंका अवबोधन किया है और 'श्रीयमुनाष्टक'में पुष्टिभक्तिका मंगलाचरण किया है। ऐसा कहा जाता है कि श्रीआचार्यचरण अपनी ब्रजयात्राके दरम्यान महावनमें यमुना तटपर गोकुल ग्रामकी खोजमें परिभ्रमण कर रहे थे तब स्वयं श्रीयमुनाजीने प्रकट होकर वर्तमान गोकुलका स्थल दिखलाया था तत्पश्चात् श्रीमहाप्रभु वहां बिराजे और तब श्रीयमुनाजीके पुष्टिमार्गीय माहात्म्यका गान उनके मुखसे स्वतः निकलने लगा। वही स्तोत्र षोडशग्रन्थोंमें मंगलाचरणके रूपमें योजित हुआ है। जैसा कि हम कह चुके हैं, श्रीयमुनाजीकी कृपाका दान हमें श्रीआचार्यचरणकी कृपासे ही प्राप्त हो सकता है। इस स्तोत्रमें श्रीयमुनाके आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक स्वरूपोंका वर्णन हुआ है। जहां तक इस स्तोत्रमें फलके विचारका प्रश्न है तो यहां यह अवधेय है कि यह ग्रन्थ उपदेशात्मक न होकर स्तुत्यात्मक है, अतः सम्पूर्ण ग्रन्थमें फलातिरिक्त कुछ है ही नहीं। उस फल विचारको हम ग्रन्थके दूसरे भागमें समझनेका प्रयास करेंगे।

## २. श्रीयमुनाष्टकमें फल विचार :

श्रीयमुनाष्टकमें प्रथम श्लोकसे प्रारंभ करके अन्तिम श्लोक तक फल ही का विचार किया गया है। तद्वथा यदि हम ग्रन्थको पूर्वमीमांसाके अन्तर्गत तात्पर्य हेतुभूत लिंगोंकी कसौटी पर कसके देखेंगे तो बात स्पष्ट हो जाएगी। तात्पर्य लिंग इस प्रकार हैं: “उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्, अर्थवादोपपत्तीश्च हेतुस्तात्पर्यनिर्णये”.

१. उपक्रमः	२. उपसंहारः	३. अभ्यास
४. अपूर्वता	५. फलम्	६. अर्थवाद और ७. उपपत्तिः.

मेरी समझके अनुसार मुझे उपरोक्त सात हेतुओंका क्रम श्रीयमुनाष्टकमें इस प्रकार प्रतीत होता है, जिसे हम पहले वर्गतालिका द्वारा समझनेका प्रयास करते हैं तत्पश्चात् तत्तद् श्लोकोंमें उन तात्पर्य निर्णायक लिंगोंको योजित करनेके हेतु पर भी विचार करेंगे। वह तालिका इस प्रकार है।

तात्पर्य निर्णायक लिंग      वचन      श्लोक संख्या

१. उपक्रम	नमामि यमुनामहं सकलसिद्धि हेतुं मुदा...	१
२. उपसंहार	तवाष्टकमिदं मुदा पठति सुरसूते सदा॥ समस्त दुरितक्षयो <sup>क</sup> भवति वै मुकुन्दे रतिः <sup>ख</sup> तथा सकलसिद्धयो <sup>ग</sup> मुररिपुश्च सन्तुष्यति <sup>घ</sup> स्वभाव विजयो <sup>ङ</sup> भवेद् वदति वल्लभः श्रीहरेः	९
३. अभ्यास	कलिन्दगिरि मस्तके पतदमन्दपूरोज्ज्वला..... मुकुन्दरतिवर्धिनी जयति पद्मबन्धोः सूता भुवं भुवनपावनीमधिगतामनेकस्वनैः प्रियाभिरिव सेवितां शुक्रमयूरहंसादिभिः तरंगभुजकङ्कणप्रकटमुक्तिकावालुका नितम्बतटसुंदरी नमतकृष्णतुर्यप्रियाम्	२ ३
४. अपूर्वता	अनन्तगुणभूषिते <sup>१</sup> शिवविरञ्चिदेवस्तुते <sup>२</sup> घनाघन्निभे सदा <sup>३</sup> ध्रुवपरशराभीष्टदे <sup>४</sup> विशुद्धमथुरातटे <sup>५</sup> सकलगोपगोपीवृते <sup>६</sup> कृपाजलधिसंश्रिते <sup>७</sup> मम मनस्सुखं भावय	४
५. फलम्	यया चरण-पद्मजा मुररिपोः प्रियम्भावुकाः समागमनतोऽभवत् सकल-सिद्धिदा सेविताम् तयासदृशतामियात् कमलजा सपत्नीव यत् हरि-प्रिय-कलिन्दया मनसि मे सदा स्थीयताम् नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतम् न जातु यमयातना भवति ते पयः पानतः यमोऽपि भगिनीसुतान् कथमुहन्ति दुष्टानपि प्रियो भवति सेवनात् तव हरेः यथा गोपिकाः	५ ६
६. अर्थवाद	ममास्तु तव सन्निधौ तनुनवत्वमेतावता न दुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ मुकुन्दप्रिये अतोऽस्तु तव लालना सुरधुनी परं संगमात् तवैव भुवि कीर्तिता न तु कदापि पुष्टिस्थितैः	७
७. उपपत्ति	स्तुतिं तव करोति कः....सौख्यमामोक्षतः इयं तव कथाऽधिका...गात्रजैः संगमः	८

अब हम इन लिंगोंके उपरोक्त श्लोकोंमें योजित करनेके हेतुओं पर विचार

करते हैं.

१. उपक्रम :

उपक्रमका कोशोक्त अर्थ है आरंभ, उपाय ज्ञान पूर्वक आरंभ अथवा तात्पर्य निर्णायक हेतुविशेष.

श्रीआचार्यचरणजीने स्तोत्रका उपक्रम ही फलके निरूपण से किया है. श्रीमत्प्रभुचरणने विवृत्तिमें इस बातका खुलासा किया है कि श्रीयमुनाजीके विविध लीलाओंमें उपयोगी होनेके कारण उन्हें नमनके अतिरिक्त कुछ भी करना शक्य नहीं है इसलिए उन्हें प्रारंभमें नमन किया गया है. साथ ही साथ आप यह भी आज्ञा करते हैं कि भगवानने श्रीयमुनाजीको जो अष्टविध ऐश्वर्य प्रदान किये हैं उन ऐश्वर्योंका एक-एक श्लोक द्वारा वर्णन किया गया है. इन ऐश्वर्योंके स्वभावोंका ध्यानसे अवलोकन करने पर यह तथ्य बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि वे ऐश्वर्य वास्तवमें भगवानकी कृपा शक्तिके द्वारा श्रीयमुनाजीमें जीवहितार्थ ही स्थापित किये गये हैं और फल प्रदानमें पर्यवसित होते हैं. इन अष्ट-विध ऐश्वर्योंका स्वरूप हम लेखके तृतीय भागमें विस्तारसे समझेंगे.

वहां प्रथम श्लोकमें श्रीमहाप्रभु यह समझाते हैं कि श्रीयमुनाजी सकलसिद्धियोंको देनेवाली और श्रीमुरारीके चरणकमलमें स्फुरायमान सेवोपयोगी देहादिसम्पादनोन्मुख ब्रजसुन्दरीयोंके वृन्द सहित अमन्द रेणुसाहित्यवाली हैं. वह जहां जलकी अपेक्षा अधिक है ऐसी श्रीयमुनाको मैं आनन्दपूर्वक नमन करता हूं. यहां वह अवधेय है कि श्रीमहाप्रभुजी यहां ब्रह्मवादाश्रित भक्तिका उदाहरण हमें दे रहे हैं. वह ऐसे कि श्रीयमुनाजीके 'सकलसिद्धिहेतुत्व' इस ऐश्वर्यात्मक विशेषणसे उनका ब्रह्मात्मक स्वरूप और "मुरारि-पद-पंकज....रेणूकाटम्" इस विशेषण द्वारा भक्त्यात्मक स्वरूप दर्शित किया गया है. श्रीयमुनाजी इस भक्तिका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, अतः 'उपक्रम' युक्त है.

## २. उपसंहार :

'उपसंहार'का कोशोक्त अर्थ है, निश्चय अथवा विस्तार पूर्वक जिस पदार्थका निरूपण किया गया हो; उसका सारांश कथनके द्वारा समापन करना.

श्रीआचार्यचरणने स्तोत्रका उपसंहार भी फलके निरूपण द्वारा ही किया है यह तो फलश्रुतिसे ही स्पष्टतया ध्वनित होता है. श्रीमहाप्रभु कहते हैं कि "हे सूर्यपुत्री श्रीयमुनाजी! आपके इस अष्टकका जो भी आनन्दपूर्वक पाठ करता है उसके समस्त

पापोंका क्षय हो जाता है<sup>६</sup>, मोक्ष दाता भगवानमें निश्चय प्रीति हो जाती है<sup>७</sup>, पूर्वोक्त सकल सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है<sup>८</sup>, मुररिपु भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं<sup>९</sup> और जीवके दुष्ट स्वभावका विजय होता हो जाता है<sup>१०</sup>. इससे यह सिद्ध होता है कि समापनमें भी फलका निरूपण होनेसे तात्पर्य निर्णायक लिंग उपसंहारकी भी यहां पुष्टि होती है.

### ३. अभ्यास :

‘अभ्यास’का कोशोक्त अर्थ है : पुनः-पुनः संशीलनम् अर्थात् बार-बार अभ्यास करना अथवा स्वपक्षस्थितिके लिए यत्न करना.

यहां यह विचारणीय है कि श्रीआचार्यचरणने दूसरे और तीसरे श्लोकमें क्रमशः अभ्यासके रूपमें फलका ही विचार प्रकारान्तरसे किया है. दूसरे और तीसरे श्लोकमें क्रमशः अष्टविधैश्वर्यान्तर्गत भगवद्रति या भगवद्भाव रूपी ऐश्वर्य और भगवत्सम्बन्धमें आते प्रतिबन्धोंका निराकरण करके तदनुभवयोग्यता हेतु शुद्धि सम्पादकत्वरूप ऐश्वर्यका विचार किया गया है. यह शुद्ध और शुद्ध रूप से केवल फलकी ही बात है. क्योंकि ‘भगवद्रतिवर्धनत्व’में ‘रति’का अर्थ है देवादि विषयक भाव. भगवद्विषयक भाव कहो या रति कहो एक ही बात है और उस भाव/रतिका वर्धन हर जीवको फलतया अपेक्षित है ही. जहां तक श्रीयमुनाके ‘भुवनपावनीत्व’का प्रश्न है तो भगवत्सम्बन्धमें आते हर प्रतिबन्धके दूर हो जानेकी कामना रखना और भगवत्सम्बन्धके अनुभव हेतु शुद्धि सम्पादन करवाना भी सभीको फलतया अभिलषित है ही इसमें संदेहका कोई स्थान ही नहीं. इसलिए इन दो श्लोकोंमें भी फलका निरूपण होनेसे तात्पर्यनिर्णायक लिंगतया क्रमप्राप्त ‘अभ्यास’की यहां प्रतीति होती है.

### ४. अपूर्वता :

‘अपूर्वता’का कोशोक्त अर्थ है : जो अभूतपूर्व हो; अज्ञात हो या जैसा पहले न हुआ हो.

इस श्लोक द्वारा श्रीयमुनाजीके “भगवत्समानधर्मत्वाद् अनायासेन तत्सम्बन्ध सम्पादकत्व” इस ऐश्वर्यका वर्णन किया गया है. तदनुसार श्रीयमुनाजीमें विराजमान समस्त धर्मोंका प्रभुसे साम्य है और वे अनायास ही जीवका प्रभुसम्बन्ध सम्पादित करा देती हैं.

चतुर्थ श्लोकमें प्रभुमें विराजमान षड्विध धर्मोंकी श्रीयमुनाजीसे संगति और

भगवत्सम्बन्ध सम्पादकता द्वारा इस स्तोत्रमें मीमांसा शास्त्रान्तर्गत प्रस्तुत विषयके तात्पर्यनिर्णायक लिंग 'अपूर्वता' की सिद्धि होती है। इसकी पुष्टि श्रीप्रभुचरणके “एतेन त्वत्सङ्गतो भगवत्सङ्गतो भवतीति भावः सूचितः” इस वचन द्वारा होती है। जिन षड्विध धर्मोंका उल्लेख यहां किया गया वे इस प्रकार हैं :

अनन्तगुणभूषिते - असंख्य गुणोंसे भूषित<sup>ऐश्वर्य</sup>  
 शिवविरञ्चिदेवस्तुते - शिव ब्रह्मा आदि देव भी जिनकी स्तुति करें ऐसी<sup>वीर्य</sup>  
 घनाघनिभे सदा - घुमडते हुए बादलके समान श्यामल ऐसी<sup>श्री</sup>  
 ध्रुवपरशराभीष्टदे - ध्रुव पराशर आदिको अभिष्ट फल देनेवाली ऐसी<sup>गण</sup>  
 विशुद्धमथुरातटे - विशुद्ध मथुरा नगरी जिनके तट पे है ऐसी<sup>ज्ञान</sup>  
 सकलगोपगोपीवृते - सकल गोप और गोपीयों से घिरी हुई ऐसी<sup>वैराग्य</sup>  
 कृपाजलधिसंश्रिते - कृपा सागर श्रीकृष्ण से मिलनेवाली<sup>धर्म</sup>

—इस प्रकार यहां पर 'अपूर्वता' लिंगकी सिद्धि होती है।

#### ५. फलम् :

‘फल’की कोशोक्त परिभाषा है “प्रवृत्तिदोषजनितोर्थः फलम्”, “सुखदुःखसंवेदनम् फलम्”, “फलसामान्यलक्षणं तु जन्यत्वम्, क्वचित् प्रवृत्युद्देश्यत्वम् क्वचित् स्वकर्तव्यता प्रयोजकेच्छाविषयत्वम्”.

वैसे देखा जाए तो सम्पूर्ण ‘यमुनाष्टकं’में फल वर्णनके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं, फिर भी तात्पर्य निर्णायक लिंगके क्रमानुसार मुझे ‘फल’का वर्णन यहां पांचवें और छठे श्लोकोंमें प्रतीत होता है।

इतनी परिभाषाओंको समझनेके पश्चात् यह ध्यातव्य है कि उपरोक्त सभी परिभाषाओंका पर्यवसान यहां पांचवें और छठे श्लोकमें एकदम फिट बैठता है। इनमें पांचवें श्लोकमें ‘प्रवृत्तिउद्देश्य’के द्वारा और छठे श्लोकमें ‘स्वकर्तव्यता प्रयोजकेच्छाविषय’के द्वारा फलका निरूपण हुआ है।

पांचवें श्लोकमें श्रीआचार्यचरणोंने “भगवत्प्रियकलिं निवारकत्व” इस ऐश्वर्यका वर्णन किया है। इस ऐश्वर्यको समझाते हुए श्रीमहाप्रभुजी कहते हैं कि श्रीयमुनाजी स्वयंका सेवन करनेवाले भगवद्भक्तोंके दोषोंको दूर करती हैं और उन्हें

सकल सिद्धियां प्रदान करती हैं. दोषोंको दूर करना और भक्तोंको सकल सिद्धियोंमें मण्डित करना फलका ही वर्णन है.

छठे श्लोकमें श्रीआचार्यचरणोंने ‘भगवदीयोत्कर्षाधायकत्व’ इस ऐश्वर्यका वर्णन किया है. इस ऐश्वर्यको समझाते हुए वे कहते हैं कि श्रीयमुनाजीका चरित्र अति अद्भुत है, वह ऐसे कि आपके जलका पान करने पर कदापि यमयातना सम्बन्धि पीडा नहीं भोगनी पड़ती. और तो और श्रीयमुनाके पुत्र यदि दुष्ट भी हों तब भी यम अपनी बहनके पुत्रको दण्डित कैसे कर सकते हैं? जो आपका सेवन करता है वह भी श्रीगोपिजनोंकी ही तरह भगवानका प्रिय बन जाता है. बस, यही है आपका अतिअद्भुतत्व!

यहां एक बात अवधेय है कि भगवान् अद्भुतकर्मा हैं और श्रीयमुनाजीका चरित्र अतिअद्भुत, ऐसा क्यों? वह इसलिए कि भगवान् असाधनोंके साधन हैं जिसका प्रमाण श्रीमद्भागवतका “गौप्यः कामात्...” (७।१।३०) यह श्लोक है. वहां कामादि असाधन हैं. उनको भगवानने स्वप्राप्तिका साधन माना है. परन्तु यहां तो केवल और केवल पयःपान मात्रसे यमयातनाका अभाव बताया गया है. ऐसी स्थितिमें श्रीयमुनाजीका अतिअद्भुतत्व कैमुतिक न्यायसे अनुक्त सिद्ध है.

पयःपानके द्वारा जीवमें गोपीजनोंके समान भगवानके प्रियत्वका सम्पादन कहो या भगवदीयोंमें उत्कर्षका आधान कहो या भगवानके प्रिय भक्तोंके दोषोंका निराकरण, कुल मिलाकर बात तो फलकी ही है. अतः यहां इन श्लोकोंमें श्रीयमुनाजीमें तात्पर्य निर्णायक लिंगके अन्तर्गत फलका योजन उचित जान पड़ता है, फलका ही निरूपण होनेसे श्रीप्रभुचरण भी यहां केवल इतनी ही आज्ञा करते हैं “एतादृश्यां त्वयि नमनातिरिक्तं न वक्तुं शक्यम्...त्वयि नमनमपि दुर्लभम्...”.

## ६. अर्थवाद :

‘अर्थवाद’की परिभाषा है “स्तुत्यादि द्वारा विध्यर्थ शीघ्रं प्रवृत्तये प्रशंसति, निषिद्धान् शीघ्रं निवृत्तये निन्दति च”. अर्थात् जिस कर्मकी प्रवृत्ति अभिलषित हो उसकी स्तुतिकी जाती है और जिस कर्मकी नवृत्ति अपेक्षित हो उसकी निन्दाकी जाए, इसी प्रक्रियाका नाम ‘अर्थवाद’ है.

श्रीयमुनाष्टकमें ‘अर्थवाद’का योजन ७वें श्लोकमें प्रतीत होता है. इसका हेतु यह है कि इस श्लोकमें श्रीआचार्यचरणोंने ‘भगवत्प्रियत्वसम्पादकत्व’ अथवा



‘तनुनवत्वसम्पादकत्व’ इस ऐश्वर्यका निरूपण किया है। जैसा कि पूर्व श्लोकमें कहा गया कि जीवको श्रीयमुनाका सेवन करने पर श्रीगोपीकाओंके समान प्रियत्वकी प्राप्ति होती है तब पुनः अग्रिम श्लोकमें नवीन विषय पर ध्यान केन्द्रित करना और तदर्थ गंगाजीसे तुलना करके निषिद्धार्थ (गंगाजीका गुणगान आदि) से निवृत्ति करवाकर जीवको श्रीयमुनाजी द्वारा लीलोपयोगी नूतन देह सम्पत्ति रूप फलके लिए विचारबद्ध कर देना इस श्लोकमें ‘अर्थवाद’के योजित होनेकी पुष्टि करता है।

तदनुसार श्रीमहाप्रभुजी कहते हैं कि हे मुकुन्दप्रिया श्रीयमुने, तेरे तट पर मुझे तनु-नवत्वकी प्राप्ति हो जिससे कि मुररिपु भगवानमें रति दुर्लभतम न रह जाये। परन्तु श्रीयमुनाजीके इस अलौकिक तथ्यको केवल पुष्टिस्थित भक्तोंने ही जाना है। क्योंकि वे जानते हैं कि श्रीगंगाजीको सकलसिद्धित्वकी प्राप्ति श्रीयमुनाजीसे समागम होनेके बाद ही प्राप्त हुई है, अतः पुष्टिस्थ भक्तोंने केवल श्रीगंगाजीकी स्तुति कभी नहीं की। अतः यहां तात्पर्य निर्णायक लिंगके अन्तर्गत ‘अर्थवाद’की यहां पुष्टि हुई।

### ७. उपपत्ति :

‘उपपत्ति’का परिभाषिक अर्थ है संगति, हेतु, उपाय, प्राप्ति, सिद्धि इत्यादि।

‘उपपत्ति’का योजन ८वें श्लोकमें प्रतीत होता है। इसका हेतु यह है कि समुचे ‘यमुनाष्टक’में फलका वर्णन होनेसे जिस फलका निरूपण ‘अर्थवाद’के द्वारा किया गया है उसी फलकी प्राप्तिके हेतुको यहां इस श्लोकमें उपपन्न किया गया है अथवा ‘संगति’ बताई गई है।

श्रीआचार्यचरणोंने इस श्लोकमें ‘तनुनवत्वसाधकत्व’ अथवा “लीलासामायिक प्रभुश्रमजलकण सम्बन्ध सम्पादकत्व” रूप ऐश्वर्यका निरूपण किया है। तदनुसार श्रीमहाप्रभु कहते हैं कि जहां श्रीयमुनाजीसे सम्बन्ध स्थापित होनेके पश्चात् गंगाजी सर्ववन्द्य हुई ऐसी श्रीयमुनाजीकी स्तुति करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? अर्थात् यहां श्रीआचार्यजीने एक महत्वपूर्ण खुलासा किया है कि सर्वत्र स्तुतिकी योग्यता भगवत्सम्बन्धके कारण आती है और वह सर्वत्र लक्ष्मीजीकी अपेक्षा न्यून ही है। परन्तु श्रीयमुनाजी भगवानके समान धर्मवाली होनेके कारण समान सौभाग्यवती हैं और सपत्नी हैं। इतना होने पर भी यह पृष्टव्य रह जाता है कि केवल ‘लक्ष्मीजी’की स्तुति तो नजर आती है पर श्रीयमुनाजीकी नहीं ऐसा क्यों? वहां श्रीआचार्यचरण यह

आज्ञा करते हैं कि ऐसा इसलिए कि आपश्री तो भगवानकी प्रिया हैं और समान सौभाग्यवती हैं, यदि समान होती तो स्तुतिकी शक्यता योग्य भी होती इसलिए स्तुति करना अशक्य बताया है। क्योंकि यमुनाजीमें लक्ष्मीजी से अधिक भगवत्प्रियत्व धर्म है।

अतः यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीयमुनाजीमें अलौकिक फल प्रदानका अद्भुत सामर्थ्य है। श्रीयमुनाजी तो लक्ष्मीजीसे प्राप्त मोक्ष सुखसे कहीं अधिक लीला सामयिक श्रमजलकणसे सम्बन्ध सम्पादित करानेवाली हैं। इसलिए श्रीगोकुलनाथजी यह आज्ञा करते हैं कि

“एभिर्विशेषणैः परमकाष्ठापन्नपुष्टिपुष्टिमार्गान्तरङ्ग- भक्तत्वं सर्वदा एतद्रसपूर्णत्वम् अन्तरङ्गभक्तानुगुणत्वम् एतल्लीला मध्य- पातित्वादिकं सूचितम्। स्वस्य एतद्रस पूर्णत्वेन केवलैतद्भजनकर्तुरपि एतद्रसं ददाति इति स्पष्टमेव वैलक्षण्यम्”

अर्थात् श्रीयमुनाजीमें पुष्टिपुष्टि मार्गका अन्तरंग भक्तत्व धर्म, सब कालमें लीलारसकी परिपूर्णता, अन्तरंग भक्तोंकी अनुकूलता, प्रिया प्रियतमकी रसिक लीलाके मध्यपातित्व आदि धर्म बिराजते हैं जो कि ‘उपपत्ति’पूर्वक तात्पर्य निर्णायक लिंगान्तर्गत ‘उपपत्ति’का स्पष्ट संकेत करते हैं। ये फल वर्णन नहीं है तो ओर क्या है?

इस प्रकार हमने लेखके इस भागमें फल विचार किया। अब तीसरे भागमें ‘श्रीयमुनाष्टकम्’ ग्रन्थ पर प्रकट टीकाओं पर विचार करेंगे।

**विभिन्न टीकाकारोंके मतोंका विचार :**

‘श्रीयमुनाष्टकम्’ पर कुल मिलाकर ४ टीकाएं उपलब्ध हैं : १. श्रीप्रभुचरण, २. श्रीहरिरायजी, ३. श्रीपुरुषोत्तमजी और ४. श्रीद्वारकेशजी लिखित।

यहां प्रत्येक टीकाओंको श्लोकानुसार क्रमवार समझेंगे।

**श्लोक १ (फल = सकल सिद्धियोंकी प्राप्ति) :**

१. श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरण :

यहां यह ध्यानमें रखना चाहिये कि श्रीयमुनाष्टकमें वर्णित ऐश्वर्य एवं अधोलिखित समस्त अष्ट सिद्धियां लीलामृष्टिस्थ जीवोंके लिये हैं। क्योंकि वहां उनका ही अधिकार है। और आधुनिक सेवकोंको तो श्रीयमुनाजी इस यमुनाष्टकके अन्तिम श्लोकमें कहे गये पाठका फल भगवदिच्छानुसार प्रदान करती हैं व एक या दो

ऐश्वर्योको भी प्रदान करती हैं.

श्रीगुसांईजी कहते हैं कि श्रीयमुनाजीमें अष्टविध ऐश्वर्य और अष्ट-सिद्धियां विराजती हैं, जिनमें से एक-एक श्लोक द्वारा एक-एक ऐश्वर्यका निरूपण हुआ है और प्रथम श्लोकमें जिन अष्टसिद्धियोंका निरूपण किया गया है वे इस प्रकार हैं :

१. साक्षात् भगवानकी सेवामें उपयोगी देहकी प्राप्ति.
२. साक्षात् भगवानकी लीलाओंका अवलोकन कर पाना.
३. साक्षात् भगवानकी लीलाओंमें रसानुभव कर पाना.
४. सभी प्रकारसे आत्मा यानि स्वयं जीवके भाव=मनोवृत्तिओंका भगवानमें स्थिर हो जाना.

—ये ४ संयोगकी सिद्धियां हैं और ये ही ४ विप्रयोगकी सिद्धियां हैं.

२. श्रीहरिरायजी :

श्रीहरिरायजीके अनुसार ऊपर कही गई सिद्धियोंका अर्थ है :

१. भगवानकी परम्परा सेवामें अलौकिक देहापेक्षा नहीं है क्योंकि वहां तो निवेदन नामके संस्कारसे संस्कृत लौकिक देहापेक्षा है.
२. भगवानकी परम्परा सेवामें प्रभु निरावरण नहीं हैं, किन्तु सावरण हैं. यहां सेवा करनेवाले जीवोंको भगवानका साक्षात् स्पर्श नहीं होता परन्तु लीला प्रवेशोत्तर अलौकिक देहापेक्षा है.
३. जिस प्रकार योगियोंको योगज धर्मके द्वारा इन्द्रियोंके अविषय पदार्थका दर्शन करनेकी सिद्धि होती है, उसी प्रकार श्रीकृष्णकी लीलाका दर्शन करनेकी सिद्धि प्राप्त होती है.
४. सर्वात्मभाव भी भगवत्स्वरूप होनेसे भगवानकी तरह भक्तके हृदय ग्रहण करनेसे वशीकरण द्वारा होती है. सर्वात्मभाव भी भक्तके हृदयको भी स्वाधीन बनाकर कृष्ण मय बना देता हैं.

उसी प्रकार विप्रयोगमें

५. वियोगावस्थामें भक्तोंके अंदर भगवानके प्रकट होनेसे कोषप्रतिमान्याय द्वारा विरह संतृप्त भक्तके हृदयमें भगवानका आविर्भाव होना.
६. भक्तके आन्तर नेत्रों द्वारा स्व-हृदयमें प्रकट लीलाका दर्शन कर पाना.
७. भावात्मक स्वरूपकी भावात्मिका अनुभूति कर पाना.

८. विरह सामयिक सर्वात्मभावकी प्राप्ति अर्थात् जब आन्तर संयोग होता है तब बाह्य संयोगकी अपेक्षा नहीं रहती है.

श्रीपुरुषोत्तमजी और श्रीद्वारकेशजी भी श्रीहरिरायजी अनुसार ही अर्थ निर्धारण करते हैं.

**श्लोक २ (फल = भगवद्रतिका वर्धन) :**

१. श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरण :

श्रीयमुनाजी भूमि पर आकर मुकुन्दकी रतिको बढ़ानेवाली हुई क्योंकि आप कमलके सखाकी पुत्री हैं. उन्हें रस प्रदान करनेका स्वभाव परम्परासे प्राप्त हुआ है इसलिए आप स्वयं भी रसात्मिका हैं.

२. श्रीहरिरायजी :

श्रीयमुनाजी मुकुन्द भगवानकी स्वामिनीयोंमें रतिको बढ़ानेवाली हैं.

३. श्रीपुरुषोत्तमजी :

श्रीयमुनाजीमें 'कलिन्दगिरिमस्तके' से आरम्भ करके 'पद्मबन्धोः सुता' यहां तक ५ विशेषणों द्वारा 'भगवद्रतिवर्धकत्व'को सिद्ध किया गया है.

४. श्रीद्वारकेशजी : आप श्रीपुरुषोत्तमजीका ही अर्थ मान्य करते हैं.

**श्लोक ३ (फल = भुवन पावन अर्थात् लोक पावन/भगवत्सम्बन्धमें आते प्रतिबन्धोंका निराकरण):**

१. श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरण :

श्रीगुसांईजी आज्ञा करते हैं कि श्रीयमुनाजीके भूमिपर पधारनेका प्रयोजन है भूमिको पावन करना. वह पावनत्व भक्तका भगवानसे सम्बन्ध करवानेमें आते हुवे प्रतिबन्धोंको दूर करके भगवदनुभवार्थ शुद्धि प्रदान करनेसे सिद्ध हो पाएगा. ऐसा तभी हो सकता है जब भगवानसे उनका स्नेहातिशय हो.

२. श्रीहरिरायजी :

भुवनका अर्थ होता है लोक (पुष्टिमार्गीय) और उस लोकको भगवद्भावसे अतिरिक्त भावसे रहित करना और भगवत्सेवार्थ अपेक्षित शुद्धिका सम्पादन करना.

३. श्रीपुरुषोत्तमजी :

श्रीपुरुषोत्तमजी भी कर्मभूमिगत पापात्मक प्रतिबन्धकी निवृत्तिको ही यहां फल मान रहे हैं।

४. श्रीद्वारकेशजी : पूर्व टीकाकारोंके मतोंको ही मान्य किया है।

**श्लोक ३ (फल = अनायास ही आपसे सम्बन्ध होने पर भगवानसे सम्बन्ध स्थापित हो जाना) :**

१. श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरण :

श्रीयमुनाजी पर आश्रित भक्त श्रीकृष्णाश्रित हो जाता है।

२. श्रीहरिरायजी :

श्रीहरिरायजी कहते हैं कि आपश्री लीलाविशिष्ट प्रभुसे सदा संयुक्त रहती हैं, अतः जिस किसी भी भावसे आपसे सम्बन्ध स्थापित होने पर पूर्वोक्त भगवानसे संगति हो जाती है, यह आशय है।

३-४. श्रीपुरुषोत्तमजी :

श्रीपुरुषोत्तमजी और श्रीद्वारकेशजी भी इसी पक्षको मान्य करते हैं।

**श्लोक ५ (फल = भगवानके प्रिय भक्तोंके दोषोंको दूर करना) :**

१. श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरण :

श्रीप्रभुचरण कहते हैं कि श्रीयमुनाजी भगवदियोंके भी उत्कर्षको बढ़ानेवाली हैं। और वही आपका भक्तानुगुण रूप धर्म 'हरिप्रियकलिन्दया' इस पदसे कहा गया है कि वे हरिके प्रिय (भक्तों)के कलिल अर्थात् दोषोंको दूर करनेवाली हैं।

२. श्रीहरिरायजी :

श्रीयमुनाजीमें इस प्रकारका सामर्थ्य है कि जो भी आपसे सम्बन्ध स्थापित करता है उसमें आप स्वसमान गुणोंका आधान कर देती हैं क्योंकि आप भगवानकी पत्नी हैं। इसलिए लक्ष्मीजी श्रीयमुनाजीकी सपत्नी हैं न कि अन्य गुणों से क्योंकि पुष्टिमार्गीय लीला सम्बन्धित्व, भक्तानुगुणत्व आदि धर्म लक्ष्मीजीमें नहीं बिराजते हैं। वह धर्म यह है कि वे भक्तोंके दोषोंका निवर्तन करती हैं और मूल बात यह है कि

आपका मुख्यगुण 'हरिप्रिय' पदसे अनुक्त सिद्ध है।

३-४. श्रीपुरुषोत्तमजी :

पूर्व श्लोकवत् यहां भी दोनों (श्रीपुरुषोत्तमजी और श्रीद्वारकेशजी) टीकाकार एक ही मतका आश्रय लेते हैं।

**श्लोक ६ (फल = भगवदीयोंमें उत्कर्षका आधान करना या स्वयंके सेवनसे गोपिकावत् प्रियत्व सम्पादन करना)**

१. श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरण :

श्रीप्रभुचरण तो इतना ही निर्देश करते हैं कि आपका अतिअद्भुतत्व तो यही है कि आपके पयःपानके द्वारा यमयातनाका अभाव हो जाता है और जीव ब्रजगोपिकाओंके समान भगवानका प्रिय बन जाता है।

२. श्रीहरिरायजी :

श्रीहरिरायजी सर्वप्रथम श्रीकृष्णका अद्भुतत्व “कृष्णायाऽद्भुतकर्मण” (शा.प्र.नि.१) और “असाधनं साधनं करोति” इन वचनों द्वारा उपपादित करते हैं और श्रीयमुनाजीका अतिअद्भुतत्व उपपन्न करनेकेलिए वे इस तथ्य पर ध्यान आकर्षित करते हुए कहते हैं कि कदाचित् नामापराध होने पर भी गुरुविमुखता और दुःसंगवर्जन रूप इन दो अंगोंका अभाव होने पर ही नामोच्चारण फलित होता है परन्तु यहां (श्रीयमुनाजीके विषयमें) तो ऐसा नहीं है। प्यास बुझाने हेतु नाम ग्रहणवत् किसी अंगकी अपेक्षा नहीं है। यही श्रीयमुनाजीमें महान विलक्षणता है।

३. श्रीपुरुषोत्तमजी :

श्रीपुरुषोत्तमजी तो यह प्रतिबन्ध निवृत्ति स्वाभाविकतया ही मानते हैं।

४. श्रीद्वारकेशजी : आप भी लगभग यही अर्थ स्वीकारते हैं।

**श्लोक ७ (फल = भगवत्प्रियता सम्पादित करना / तनुनवत्व सम्पादित करना)**

१. श्रीगोकुलनाथजी - श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरण :

सातवें श्लोकसे प्रारंभ कर अन्तिम श्लोक तक श्रीप्रभुचरणके स्थान पर श्रीगोकुलनाथजीकी विवृति है। श्रीगोकुलनाथजीके अनुसार यहां दो फलकी बात है जो इस प्रकार हैं : १.तनुनवत्व और २.श्रीकृष्णमें रति।

आप कहते हैं कि आपके सन्निधान मात्रसे शरीरकी नवीनता हो जाती है अर्थात् लौकिक शरीर अलौकिक बन जाता है. इतना होने पर मुरारि भगवान् श्रीकृष्णमें रति दुर्लभतम नहीं रह जाती.

२. श्रीहरिरायजी :

श्रीहरिरायजी यहां कैमुतिक न्याय समझाते हुए कहते हैं कि जहां श्रीयमुनाका सम्बन्ध स्थापित होने पर भक्तको भगवानकी भक्ति प्राप्त होती है वहां जीवको यमयातनाका अभाव हो इसमें क्या शंका? और श्रीगोकुलनाथजी द्वारा वर्णित “पूर्व देह निवृत्ति” इस वाक्यका अर्थ निर्धारण ऐसे करते हैं कि जीवको वर्तमान देहके अपगमके पश्चात् ही लीलोपयोगी नवीन देहकी प्राप्ति होती है. और दूसरे फलके विषयमें वे कहते हैं कि श्रीयमुना तो मुकुन्द भगवानकी प्रिया हैं और मुकुन्द भगवानके सभी धर्म आपमें विराजमान हैं. इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वे जीवको भगवानका प्रिय बना देती हैं, कृष्णमें रति उत्पन्न करवाती हैं, यह आपमें स्वतन्त्र भक्तिदायिकत्व धर्म है.

३. श्रीपुरुषोत्तमजी :

श्रीपुरुषोत्तमजी यहां “पूर्व देहनिवृत्ति” और “नवीन देहकी प्राप्ति” इस प्रकार दो फल स्वीकारते हैं. “पूर्व देह निवृत्ति”रूपी फलको पूर्व कक्षा (भूतल पर विद्यमानता)का फल मानते हैं जिससे कि श्रीकृष्णमें रति दुर्लभतम नहीं रह जाती जो बात श्रीआचार्यचरणोंने “न दुर्लभतमा रतिः” इन शब्दों से कही है. और “नवीन देहकी प्राप्ति”रूप फलको उत्तर कक्षा (वर्तमान देह निवृत्त्यनन्तर)का फल मानते हैं और यह भी कहते हैं कि उनका श्रीहरिरायजीसे कोई विरोध नहीं है क्योंकि वे (श्रीहरिरायजी) पूर्व कक्षाकी बात कर रहे हैं और ये स्वयं उत्तर कक्षाकी.

४. श्रीद्वारकेशजी :

श्रीद्वारकेशजी भी श्रीपुरुषोत्तमजी द्वारा विचारित अर्थको ही मान्य करते हैं अर्थात् पूर्व कक्षा और उत्तर कक्षाकी ही बात कर रहे हैं.

**श्लोक ८**

(फल = तनुनवत्व सिद्ध करना अथवा लीला सामयिक प्रभु श्रम-जलकण सम्बन्ध स्थापित करना) :

१. श्रीगोकुलनाथजी - श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरण :

श्रीगोकुलनाथजी कहते हैं कि सर्वत्र स्तुतियोग्यता भगवत्सम्बन्धसे ही आती है. और वह सम्बन्ध सर्वत्र लक्ष्मीजीकी अपेक्षा न्यून ही है. परन्तु श्रीलक्ष्मीजीकी स्तुति दृश्यमान होती है और श्रीयमुनाजीकी नहीं, ऐसी आशंका होने पर समाधानत्वेन यह ध्यातव्य है कि श्रीयमुनाजीमें लक्ष्मीजीसे अधिक भगवत्प्रियत्व धर्म है. और भगवत्सेवा रहित केवल लक्ष्मीजीकी सेवा मोक्ष विधातक है. और श्रीयमुनाजी तो मुक्त्यधिक भजनानन्दकी प्राप्ति करनेवाली हैं. श्रीयमुनाजी प्रिया-प्रियतमके संगमजनित रससे परिपूर्ण हैं, अतः स्वसेवन करनेवाले भक्तोंको आप इस रसका दान करनेवाली हैं, यह स्पष्ट वैलक्षण्य है.

## २. श्रीहरिरायजी :

श्रीहरिरायजी यहां उपरोक्त श्रीगोकुलनाथजीके ही मतका समर्थन करते हैं परन्तु एक उल्लेखनीय बात यह कहते हैं कि श्रीयमुनाजीमें परमकाष्ठापन जो पुष्टिपुष्टिमार्गीय अन्तरंगभक्तोंके जो धर्म कहे गये हैं उन सभी धर्मोंका यहां समन्वय समझना चाहिये.

## ३. श्रीपुरुषोत्तमजी :

श्रीपुरुषोत्तमजी भी यहां इस सम्बन्धमें एक विचारणीय तथ्यकी ओर संकेत करते हैं कि भगवान् जब श्रीव्रजगोपिकाओंके साथ यमुना जलमें क्रीडा करते हैं तब उस जलप्रवाहमें श्रीयमुनाजी भगवानके मुखगत ब्रह्मविद्यारूप मुखसुधाका वहन करनेवाली बन जाती हैं.

## ४. श्रीद्वारकेशजी :

श्रीद्वारकेशजी भी अशेष भावोंको मान्य रखते हुए इतना उल्लेख करते हैं कि जिस रसात्मकताका संयोग श्रीयमुनाजीको हुआ है, वह सुख श्रीलक्ष्मीजीको प्राप्त नहीं हुआ है.

## श्लोक ९ (फल ५) :

१. समस्त पापोंका नाश,
२. निश्चय ही भगवान् मुकुन्द भगवानमें रति,
३. समस्त अलौकिक सिद्धियोंकी प्राप्ति,
४. मुरारिपु भगवानकी प्रसन्नता,
५. स्वभाव पर विजय.



१. श्रीगोकुलनाथजी - श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरण :

**मूल फल**

**विचारित अर्थ**

१. समस्त पापोंका नाश-

समस्त पापोंका नाश

२. मुकुन्द भगवानमें रति-

मोक्षदाता भगवानमें रति(श्रीगोकुलनाथजी

श्रीयमुनाजीमें भगवत्स्वभावका परावर्तकत्व मानते हैं)

३. सर्व अलौकिकसिद्धियोंकी प्राप्ति-

पूर्वोक्त सकल सिद्धियां ही,

४. मुरारिपु भगवानकी प्रसन्नता-

प्रतिबंध निवारणके पश्चात् अंगीकृति,

५. स्वभाव पर विजय-

दुष्ट स्वभावका उत्तम स्वभाव बन जाना,

२. श्रीहरिरायजी :

**मूल फल**

**विचारित अर्थ**

१.समस्त पापोंका नाश-

समस्त पापोंका नाश.

(प्रथमफलके हेतुतया पापोंके अनन्त होनेके

कारण भक्त्युत्पत्त्यवसर पराहत है, अतः

पापक्षय आवश्यक हैं)

२.मुकुन्द भगवानमें रति-

मोक्षदाता भगवानमें रति

(‘वै’ शब्द निश्चय भक्तिदानका द्योतक हैं)

३.सर्व अलौकिक सिद्धियोंकी प्राप्ति-

पूर्वोक्त सकल सिद्धियां ही

४.मुरारिपु भगवानकी प्रसन्नता-

प्रतिबंध निवारणके पश्चात् अंगीकृति

५.स्वभाव पर विजय-

कामभाव पर स्वभावकी निवृत्ति अथवा

सात्विकादि स्वभावका स्वाधीन हो जाना,

३. श्रीपुरुषोत्तमजी :

श्रीपुरुषोत्तमजीने इस श्लोक पर कोई विशेष व्याख्या प्रकट नहीं की हैं.

४. श्रीद्वारकेशजी :

श्रीद्वारकेशजीका भी सभी फलोंके विषयमें मतैक्य ही है परन्तु अन्तिम फलके विषयमें वे कुछ उल्लेखनीय खुलासा करते हुए कहते हैं कि ‘स्वभाव’पदसे यहां मन कहा गया है और ‘विजय’पदसे स्वतन्त्रता पूर्वक प्रवर्तन कहा गया है. अथवा ब्रह्मांश होनेके कारण जीवका सहज स्वभाव है श्रीगोकुलके प्राणप्रियका सेवन और उस स्वभावका उत्कर्ष या सम्पूर्ण सेवाके अधिकारकी सिद्धि होना ही स्वभावविजय है. अथवा ‘स्वभाव’का अर्थ है जीवमें रहनेवाला जीवत्व. सृष्टिके आरंभमें जो जीवके ब्रह्मसे व्युच्चरण होनेके बाद अविद्याका सम्बन्ध होनेके पश्चात् जो भगवद्बाहिर्मुख्य

उसमें आया है, उस धर्मका भी निर्वर्तन इसके पाठके द्वारा होता है, इसी बातका सूचन 'स्वभावविजय' पद से किया गया है.

यहां पर समस्त टीकाओंका विचार पूर्ण होता हैं.

#### ४. उपसंहार :

इस प्रकार हमने सम्पूर्ण ग्रन्थमें प्रतिपादित फलका विचार किया. वैसे तो स्थलाभावके कारण ओर भी विवेच्य सामग्री पर विचार नहीं किया जा सका है परन्तु आवश्यक और प्रस्तुत लेखोपयोगी अंशोंको समाविष्ट करनेका प्रयत्न अवश्य किया गया है.

अत्र किञ्चिदयुक्तं यन्मयोक्तं स्वल्पबुद्धिना ।  
क्षमन्तु तन्निजाचार्याः किङ्करे निजवंशजे ॥



## चर्चा

### यमुनाष्टकमें फलविचार

#### श्रीमनोज गोस्वामी

**गो. शरद् :** ...षोडशग्रन्थ भागवतके ही सिद्धान्तके प्रतिपादनार्थ प्रकट भये साम्प्रदायिक प्रकरणग्रन्थ हैं. या दृष्टिसु श्रीयमुनाष्टककु भी भागवतसुं प्रसूत माननो चाहिये. परन्तु भागवतमें श्रीयमुनाजीके आधिदैविक स्वरूप और चरित्र को निरूपण स्फुटतया प्राप्त नहीं होवे है जैसे श्रीस्वामिनीजीको भी प्राप्त नहीं होवे है. पर क्या कारण है के श्रीयमुनाजीकी स्तुति श्रीयमुनाष्टकके रूपमें आधुनिक पुष्टिजीवनकेलिये निर्गुण पुष्टिभक्तिमार्गके रोल मॉडलके रूपमें करी है परन्तु श्रीस्वामिनीजीके सम्बन्धमें श्रीमहाप्रभुजी बिलकुल मौन हैं. क्या श्रीयमुनाजी और श्रीस्वामिनीजी के बीच कोई तरहको तारतम्य है ? क्यों श्रीमहाप्रभुजी श्रीस्वामिनीजीकु छुपा रहे हैं और श्रीयमुनाजीकु हाईलाईट कर रहे हैं ? श्रीगुसांईजीने अपनो झुकाव दोनों तरफ प्रकट कियो है, दोनोंनकी स्तुति करी है. परन्तु दोनों ही भागवतमें गुप्त हैं फिर भी श्रीमहाप्रभुजीने श्रीयमुनाजीको माहात्म्य प्रकट कियो है और श्रीस्वामिनीजीकु गुप्त रखे हैं.

दूसरी बात ये है के पद्मपुराणादिमें तो श्रीयमुनाजीके प्राकट्य और माहात्म्य को निरूपण उपलब्ध होवे है परन्तु यमुनाष्टककु जब अपन भागवतसुं प्रसूत मान रहे हैं तब भागवतमें ऐसे कौनसे सूत्र हैं कि जिनके आधारपे अपन श्रीयमुनाजीको श्रीयमुनाष्टकमें वर्णित माहात्म्य खोज सकें ?

**गो. मनोज :** ये बात काकाजीके वचनामृतकु सुनके मेरे मनमें भी आयी हती के भागवतमेंसु ही श्रीयमुनाष्टक कैसे निकाल्यो गयो है. ये मेरी भी जिज्ञासा है.

**गो. शरद् :** तीसरी बात, आप आलेखके अन्तमें ये कह रहे हो के श्रीयमुनाष्टकके अन्तिम श्लोकमें कही गयी कुछ बातें ही आधुनिक पुष्टिमार्गीनकु लभ्य है बाकीकी सब बात तो नित्यलीलास्थ जीवनके अधिकारकी है.

**गो. मनोज :** मैं क्या करूं, व्याख्याकार ही या ढंगसु कह रहे हैं...

**गो. शरद् :** ...वो तो ठीक है. कौनसे आशयसु व्याख्याकार ऐसी आज्ञा कर रहे हैं ये जिज्ञास्य है.

**गो. मनोज :** ...मैं तो या विषयमें लाइलाज हूं. श्रीहरिरायजीने तो आधुनिक भक्तनकु साव उड़ा ही दिये हैं. आधुनिक भक्तनकु यहांपे कुछ भी करनो नहीं है. उनकु तो “तवाष्टकम् इदं मुदा” में जो कह्यो है वो श्रीयमुनाजीकी कृपासु मिल जाये तो मिल जाये. वाके लिये तो मैं भी बहोत दुःखी हूं.

**कुंजबाला :** ‘पुष्टिविधानम्’में आपने जो सिनोप्सिस् बताई है वामें आप आज्ञा करो हो के वो कृष्णप्रिया होते भये भी भक्तनकेलिये डबल् रॉल् प्ले करे हैं. ऐसो रॉल् श्रीस्वामिनीजीको श्रीमहाप्रभुजी नहीं बतावें हैं. या कारणसुं आपने श्रीयमुनाजीकी स्तुति करी होवे. क्योंके षोडशग्रन्थको उपदेश भक्तनकुं है, सेवकनकुं है. श्रीयमुनाजी या तरफ सेवकनकुं “दौर कर शोर कर” लेजा रहे हैं और वा तरफ कृष्णप्रिया भी हैं.

**असित शाह :** मोकु ऐसो लगे है के षोडशग्रन्थसुं श्रीमहाप्रभुजी अपनकु जो बात समझानो चाह रहे हैं वामें अधिक उपादेय यमुनाजीको निरूपण है या विचारसुं आपने यमुनाजीको निरूपण कियो है, श्रीस्वामिनीजीको नहीं कियो है. जैसे सिद्धान्तमुक्तावलीमें भी अपनकु ऐसो लग सके है के वहां गंगाजीको दृष्टान्त क्यों लियो, यमुनाजीको क्यों नहीं लियो. जब कि यमुनाजी पुष्टिसु करीब हैं और गंगाजी मर्यादासु करीब हैं. पर वो प्रसंग ऐसो है के जामें गंगाजीको दृष्टान्त सबनकु कॉमन् पड़ रह्यो है. ऐसे श्रीस्वामिनीजीमें न्यूनता है और श्रीयमुनाजीमें अधिकता है ऐसी कोई बात नहीं है. स्वामिनीजीको भाव अपने यहां सगुण मान्यो गयो है. उनके भावनकी भावना अपनकु करवेकी है पर अपनी भक्तिको मॉडल् श्रीयमुनाजीके भावके साथ अधिक मेल खावे है. यासु श्रीयमुनाजी आधुनिक पुष्टिजीवनकु करीब पड़े हैं. यासु षोडशग्रन्थमें समझानेकेलिये श्रीयमुनाजीको माहात्म्य वर्णित भयो है. वामें खास बात माहात्म्यज्ञान पूर्वक स्नेहकी है. माहात्म्यको फेक्टर् श्रीयमुनाजीमें काफी उभरके आवे है. उनको माहात्म्य पुराणादिमें भी वर्णित है, देव और असुरन् कुं भी मान्य है. और स्वामिनीजीको माहात्म्य वा प्रकारको नहीं है. उनके प्रभुके प्रति भावमें माहात्म्य नहीं झलके है जो माहात्म्य यमुनाजीके भावमें झलके है. यासु माहात्म्यज्ञान पूर्वक स्नेहके मॉडेलमें श्रीयमुनाजी अधिक उपादेय लगे हैं.

**गो. शरद् :** रोल् मॉडल् की जहां तक बात है तो वामें ये विचारणीय है के संन्यासनिर्णयमें श्रीमहाप्रभुजी पुष्टिभक्तिमार्गीय त्यागके आदर्शके रूपमें

“कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः” गोपीजननकुं और कौण्डिन्य ऋषिकु बता रहे हैं। इन दोनोंके थोड़े-बहुत चरित्र शास्त्रमें उपलब्ध हैं जासु भक्तिमार्गी उनको अवगाहन कर सके। याके विपरीत जा तरहको महात्म्यशाली आधिदैविक स्वरूप श्रीयमुनाजीको श्रीमहाप्रभुजीने यमुनाष्टकमें बताया है, जैसे तुर्यप्रिया होनेको, तो ऐसो चरित्र यमुनाष्टकके अलावा शास्त्रमें कहां उपलब्ध होवे है, जिज्ञासा ये है। अवतारकालीन यशोदाजी, नन्दरायजी, गोपीजन आदिने प्रकट रूपसुं लीलामें भाग लियो है वाको निरूपण भागवतादिमें स्फुटतया प्राप्त होवे है यासु अपन उनके चरित्रको अवगाहन कर सके हैं। ऐसो अवगाहन अपन श्रीयमुनाजीको कैसे कर सकें ? क्योंकि पुराणनमें श्रीयमुनाजीको तीर्थ रूपसु निरूपण तो है, आपके प्राकट्यको भी निरूपण मिले है पर कृष्णलीलामें आधिदैविक स्वरूपसु पार्टिसिपेशन स्फुटतया उपलब्ध नहीं होवे है। ऐसी स्थितिमें श्रीयमुनाजी आधुनिकनके आदर्श कैसे बन पायेंगे ?

**असित शाह :** आप जो कह रहे हो वो निरोधस्कन्धपे अपन फोकस् करें तो बरोबर है। पर ईशानुकथा है, भक्तिको अपन सन्दर्भ लेवें तो बहोत बातें ऐसी हैं के जो श्रीयमुनाजीसु जुड़ी भई हैं। जैसे श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं “**ध्रुव-पराशराभीष्टदे**”。 ईशानुकथामें ऐसी बाते हैं के जामें श्रीयमुनाजीकी भक्तिमें उपादेयता समझी जा सके है।

**गो. शरद् :** मेरी जिज्ञासाके पीछे आशय ये है के जाके बारेमें पुराणादि शास्त्रनमें पर्याप्त वर्णन उपलब्ध होवे, जासु जनसाधारण सुपरिचित होवें वाके माहात्म्यको वर्णन यदि कियो जाय तो वामें मन लगानो सरल होवे है। क्योंकि अपने पास वाकु समझने-सोचनेकेलिये रेफरंस् मटीरियल् है। पर जिन श्रीयमुनाजीकु आचार्यजीने प्रभुके समक्ष ऐश्वर्यवाले बताये हैं उनको अवगाहन करनेकेलिये, श्रीमहाप्रभुजीकी व्यक्तिगत अनुभूतिकु एक ओर रखें तो, पुराणनमें गिने-चुने थोड़ेसे ही सूत्र हैं।

**असित शाह :** ये स्थिति तो “कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ता”में भी है। कौण्डिन्यके बारेमें अपने यहां टोटल् ब्लेक् आउट है। श्रीपुरुषोत्तमजीने पुराणमेंसु कुछ उनको आख्यान बताया है के उनके साथ क्या भयो हतो। पर प्रेक्टिकल अपन उनकु बिलकुल फोलो कर नहीं रहे हैं। पर ये सही है के उनके चरित्रमें कुछ तो ऐसो है के जाके कारण श्रीमहाप्रभुजी उनकु गुरु माननेकी कह रहे हैं।

**गोपालदास :** “परोक्षप्रिया हि देवाः” “परोक्षञ्च मम प्रियम्”. परोक्ष होनेके कारण तकलीफ ज्यादा होवे है.

**गो. शरद् :** याको सामाधान ही तो पूछ रह्यो हूं.

**गोपालदास :** समस्या तो है. पर वो तो रहनेवाली है और रहनी चाहिये. क्योंकि देवन्कु तो वो ही प्रिय है. और आपने जो प्रश्न उठाया है वामें ऐसो है के जिनको परकीयत्व प्रसिद्ध होते भये भी स्वकीयत्व जिनको है उनको नाम श्रीस्वामिनीजी है. श्रीस्वामिनीजीको रसात्मकतया स्वरूप निरूपण करवेको आशय दीखे है. ये एक बात है. दूसरी बात, नित्यसिद्धा यूथमें श्रीस्वामिनीजी और श्रीयमुनाजी दोनोंनकु अपन माने हैं परन्तु श्रीयमुनाजीको प्राकट्य कैसो है वाके विषयमें श्रीगुसांईजी आज्ञा करे हैं के विप्रयोगान्निस्वरूप तापात्मक सूर्यमेंसु श्रीयमुनाजी “कलिन्दगिरिमस्तके” प्रकट भये हैं. तापात्मक विरहाग्निके कारण इनको इतनो बड़ो माहात्म्य लेके निर्गुण भक्तिको प्राकट्य और माहात्म्यज्ञान और स्नेहको स्वरूप प्रकटाके भक्तिमार्गीय स्वरूपकी प्रावाहिकता करनी. मुख्य स्वरूप तापसुं प्रकट होवे है. सेवा भी तापकु प्रकट करे है. और तापसु सेवा होवे है. अन्योन्याश्रित प्रकार है. ऐसे ही श्रीयमुनाजी पुष्टिभक्तिको पाया प्रकट कर रहे हैं. अब आप आज्ञा कर रहे हो के ये सब बातें इतनी जोरसु प्रकट नहीं दीख रही है. स्वामिनीजीके विषयमें तो बहोतसी जगह बातें मिल रही है. तो प्रभुको रसात्मकतया निरूपण जब है ...और श्रीयमुनाजी स्वामिनी तो है हीं. परन्तु उनको निर्गुण भक्ततया निरूपण करनो...रासपञ्चाध्यायीके बात फिर क्या बाकी रह गयो हतो फिर भी फिर भी वा प्रकार तक प्रसिद्ध करनो के आपके चरणारविन्दमें हमकु भाव रहे, श्रीयशादाजी कह रहे हैं, ब्रजभक्त कह रहे हैं! न कोई माखन खाने घर बुला रह्यो है! ये सब निर्गुण भक्तिको प्रकार है जो आचार्यश्रीने प्रकट कियो है. वा प्रकारको प्राकट्य तापात्मक स्वरूपसुं श्रीयमुनाजीको प्राकट्य है. या कारणसु भागवतजीमें और दूसरे कहीं ये बात प्रकट नहीं आयी है. “परोक्षप्रिया”सु मेरो ये कहनो हतो. और अपन भी ये कहते आये हैं के श्रीयमुनाजीके दूसरे कितने ही स्तोत्र प्रकट भये होंगे परन्तु श्रीमहाप्रभुजीने जो यमुनाष्टक ग्रन्थ प्रकट कियो है वासु श्रीठाकुरजीकी जैसी प्रियता प्राप्त होयगी वैसी प्रियता दूसरे स्तोत्रनूके पाठसु नहीं होयगी. यासु अपनो यमुनाष्टक लोक-वेदातीत है. अपन तो कहे ही हैं के अपनो मार्ग लोक-वेदातीत है. अपनी प्रक्रिया भी

लोक-वेदातीत है। यासु लोक-वेदको अनुसरण करके नहीं कहें तो क्या भयो! “**भक्तिमार्गीयप्रक्रिया हि लोकवेदातीताः**” आदि श्रीगुसांईजी न्यासादेशादिमें आज्ञा करे हैं। वाही तरहसु श्रीयमुनाजीको स्वरूप भी वा ढंगसु छिप्यो भयो है। वामेंसु आधे प्रकार तो यहां प्रकट बताये हैं। जैसे श्रीयमुनाजीमें स्नान करना, दुरितक्षय आदि। परन्तु तनुनवत्व आदि बातें नई हैं के नित्यलीलास्थ भक्तनकुं क्या-क्या मिले है। या तरहसु फलदानके प्रसङ्गमें सब बात बतानी और ठाकुरके साथ खेलते ही रहनो ये प्रकार मुख्य स्वामिनीजीमें बतायो। क्योंकि प्रभु तो सदा युगल स्वरूपसुं ही बिराजे हैं, ठाकुर तो कभी अकेले है ही नहीं, याकु उपपत्तिवाद कहें तो। उत्पत्तिमें भले ही जो भी प्रकार आतो होवे। ‘कृष्ण’ कहवेसु ‘श्री’कृष्ण ही आवे है। या हिसाबसु श्रीस्वामिनीजीको अद्वितीयपनो तो सिद्ध है ही। और शास्त्रानुसार उत्पत्तिवादमें “**ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्**” आतो होयगो। परन्तु भक्तिवाद प्रकट करवेमें श्रीयमुनाजीकी बहोत सहायता दीख रही है। श्रीमहाप्रभुजीने पुष्टिभक्ति प्रकट करी वामें श्रीकृष्णके चरणारविन्दके आश्रयसु सब होवे है वो बात तो ठीक है। पर वाको क्रम कृपासु है। वो कृपाशक्ति क्या है, वाके प्राकट्यको प्रकार क्या है वामें ...श्रीयमुनाजीमें क्रीडा भी कर रहे हैं यासु श्रीस्वामिनीजीके संगके बिना भक्तनकु भगवत्सम्बन्ध प्राप्त नहीं हो सके है ये बतलानेको आशय तो प्रकट रूपसुं हतो भी। ये होते हुवे भी कुमारिकानकु ठाकुरजीकी प्राप्ति स्नानसु, किनारेपे जानेसु, उनको स्मरण करनेसु मिले है। मुख्य स्वामिनीजी तो केवल लीला कर रहे हैं, ठाकुरके जैसी ठकुरानी हैं। और ये ठकुरानी हैं और पाछी भक्तपे कृपाशाली है, भावोद्बोधकता ब्रजभक्तनकु प्रदान करे हैं। कुल मिलाके ऐसो दीखे है के ये बात बहोत गूढ है। आपकी लीला तो आपकु प्रकट करनी हती यासु ही रासपञ्चाध्यायी प्रकट भयी। परन्तु ऐसो भक्तिमार्ग के जो अवतारकालको फल अनवतारकालमें भी देवे वाको सामान्यतः पुरस्कार जासु उद्दीपनभाव होवे वो तो श्रीयमुनाजीसुं है, शास्त्रमें आतो होवे के नहीं आतो होवे। श्रीठाकुरजीकु खाली “**रसो वै सः**” कह दियो। बाकी तो कितने प्रकार हैं उनकेलिये “**नेति नेति**” कहके वेद चुप हो गये। वो सब प्रकार भागवतजीमें प्रकट भयो। वो भी रासपञ्चाध्यायी प्रकट भई। परन्तु हिंडोरा, खेल, दान, नौकाविहार आदि भागवतजीमें कहां प्रकट भये हैं? रासपञ्चाध्यायीके

आशयसु प्रकट करके अपन लेवे हैं परम्परासु. अपने यहांकी सेवाप्रणालीमें इन सबको कितनी भारी विनियोग है!

**गो. शरद् :** आप कह रहे हो के ये परोक्षवाद है, अति गूढ़ है, रहस्यरूप है. सही बात है. पर समस्या ये ही तो है! शास्त्रकारनने जाकु अति गूढ़ रख्यो हतो, रहस्यरूप रख्यो हतो वाकु श्रीयमुनाष्टकके रूपमें प्रकट क्यों कियो?

**गोपालदास :** पाछो श्रीगुसांईजीने श्रीयमुनाष्टपदीमें अधिक स्फुट कियो है.

**गो. शरद् :** प्रभुकी लीलाके चिन्तनकेलिये श्रीमहाप्रभुजीने जो श्रीपुरुषोत्तमनामसहस्रम्, त्रिविधलीलानामावली आदि प्रकट किये हैं उन ग्रन्थनमें प्रभुकी लीला आदिको जो सूत्रात्मक निरूपण भयो है वाको विस्तार अपनकु भागवतादि शास्त्रमें देखवे मिले है. वाके कारण अपन उनकु आधार बनाके लीलाचिन्तन कर सके हैं. भगवल्लीलाके सन्दर्भमें सोचें तो साईन् बोर्ड भी है और वाके आधारपे अपन शास्त्रग्रन्थनको अवलोकन करें तो तत्तत् स्थानकी यात्रा भी अपन कर सके हैं. श्रीयमुनाजीके सम्बन्धमें ये नहीं हो रह्यो है. ये समस्या है.

**गोपालदास :** घनीभूत रसात्मा जैसे श्रीठाकुरजी हैं ऐसे द्रवीभूत रसात्मा श्रीयमुनाजी हैं ऐसे श्रीगुसांईजी शायद बतला रहे हैं. वाहीपे अपनकु आधार रखनो पड़ रह्यो है. उनके पास क्या आधार हतो वो तो परोक्षप्रिया हि देवाः.

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं “प्रियो भवति सेवनात् तव हरेर्यथा गोपिकाः” वहां कृपाशक्तिरूपा श्रीयमुनाजीकु मान्यो है. जैसे कात्यायनी व्रतके प्रसंगमें मान्यो है. दूसरी बात ये है के ब्रजभक्तनकी भक्ति स्वतन्त्र है. स्वरूप प्रकटवेके कारण भक्ति प्रकट भयी है. श्रीमहाप्रभुजीके केसमें सिच्युएशन कोम्प्लेक्स हो रही है. क्योंकि यहां आचार्यद्वारक उद्धार है. नवधाभक्तिमें स्वतन्त्र भक्ति लेनी है. किशनगढ़में आपने समझायो हतो के स्वतन्त्र भक्तिकु प्राणके रूपमें रखके स्ट्रक्चर् स्वतन्त्रभक्तिको नहीं लेनो है. तो वाको रॉल् मोडैल् गोपिकाएं कैसे हो सकेंगी! साधनसुं लेके फल तक मार्गायित करनो है यासु उनकी जो प्राणरूप सेंट्रल् बात याके स्ट्रक्चर्के लिये, कोम्बिनेशनकेलिये श्रीयमुनाजीको होवे ऐसो लगे है.

**गो. शरद् :** ये बात तो समझमें आवे ऐसी है. सोचनेकी बात ये है के प्रभुकी लीलाएं अनेक हैं. कुछ गूढ़ हैं कुछ प्रकट भी हैं. श्रीमहाप्रभुजी भी आज्ञा करे हैं “उक्ता भागवते गूढा प्रकटा अपि कुत्रचित्”. व्याख्याकार ऐसो प्रयत्न करते होवे हैं के सम्भव होवे वहां तक आचार्यचरणके निरूपणकी



प्रमाणोपपत्ति खोजी जाये. जैसे अभी आपने उपक्रममें उपनिषदादिके वचनसुं कुछ बातें बताई. या ही तरहसुं अपनो ये कर्तव्य बने है के श्रीमहाप्रभुजी श्रीयमुनाजीके सम्बन्धमें जो निरूपण कर रहे हैं उनकु शास्त्रसुं समर्थित करें. अपनी बात अलग है. अपन पुष्टिमार्गी हैं, श्रीमहाप्रभुजीके प्रति श्रद्धाशील हैं. श्रीमहाप्रभुजीकी कोई भी बात अपने लिये वेदवत् प्रमाण है. पर यदि कोई बाहरी व्यक्ति यमुनाष्टककु पढ़े तो वाके मनमें ये प्रश्न होनो सहज है के श्रीमहाप्रभुजी यमुनाजीके विषयमें ये कथन कौनसे आधारपे कर रहे हैं.

**असित शाह :** अपूर्वता एक गुण है. जब श्रीमहाप्रभुजी यमुनाष्टकमें अपूर्व बातको निरूपण कर रहे हैं तब टीकाकारन्को एप्रोच् ऐसो दीखे है के श्रीमहाप्रभुजीकी बात कर रहे हैं के जो पहले कहीं उपलब्ध नहीं हती. जब ऐसी बात है तब टीकाकार ऐसे नहीं लिखेंगे के ये बात या पुराणमें ऐसी तरहसुं वर्णित है या इन-इन वचनसुं ये सिद्ध होवे है.

और श्रीयमुनाजीके आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक ऐसे तीन रूप सोचें तो जैसे यमुनाजी यमानुजा हैं, ये बात ऐसी नहीं है के जो पुराणमें नहीं आयी होवे. ऐसे ही “कलिन्दगिरिमस्तके पतदमन्दपूरोज्ज्वाला” “तरङ्गभुजकंकणप्रकटमुक्तिकावालुका” आदि वर्णन ऐसे हैं के यदि अपन आज श्रीयमुनाजीके जलप्रवाहके दर्शन करें तो ऐसी भावना अपने मनमें भी हो सके है. यासु अपनकु ऐसे नहीं सोचनो चाहिये के पुराणमें नहीं है ऐसी बात श्रीमहाप्रभुजीने कही है तो वाकु अपन कैसे जस्टिफाय् करेंगे. टीकाकार एटलीस्ट ऐसे एप्रोचसुं नहीं चल रहे हैं.

**गो. शरद् :** श्रीपुरुषोत्तमजी आदि विवेचकन्ने आचार्यचरणके निरूपणनकु शास्त्रप्रमाणसुं पुष्ट किये हैं. ऐसे यदि श्रीयमुनाष्टककु पुष्ट करनो होवे तो कैसे करनो ये सोचनो चाहिये.

**गो. श्या.म. :** मैं अपनी फीलिंग्स आप लोगन्के साथ शेर् करनो चाहूंगो. पहली बात ये है के श्रुति, गीता, ब्रह्मसूत्र और भागवत में भगवान्के अनुग्रह अथवा वरण की फलसाधकता वर्णित है. “नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः” “मत्प्रसादादवाप्स्यसि” ऐसे अनेक वचन मिले हैं. ब्रह्मसूत्रमें भी “सम्प्रसादो” ऐसो वर्णन आवे है “प्रदानवदेव” अधिकरणमें. भागवतमें भी भगवान्के अनुग्रहको अनेकविध रूपनमें निरूपण भयो है. यासु सबसुं पहलो मुद्दा ये ध्यानमें रखनेको है के भगवान्के अनुग्रहको रोल् साधनानुरूप और

साधनातीत दोनों तरहसुं है फलकी प्राप्तिमें. दूसरी बात ये है के वा अनुग्रहके भाजन बननेवालेनको मार्ग या सर्ग अलग है ऐसो कहीं उल्लेख नहीं है. सिवा “अन्यैव काचित् सा सृष्टिर्विधातुर्व्यतिरेकिणी” के. पर वो अन्य सृष्टि तो कोई भी हो सके है, वो अनुग्रहभाजनकी ही होवे ये जरूरी नहीं है. तो अनुग्रहको एक मार्ग आखो अलग है याको कहीं उल्लेख नहीं है. और यदि उल्लेख होतो तो श्रीमहाप्रभुजी ऐसे क्यों कहते के “**भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः**”. एक विशेष प्रकारको भक्तिमार्ग शास्त्रन्में निरूपित मिले है यासु वहां कोई पुष्टि काम करती होनी चाहिये. क्योंकि पुष्टिकु गूढभाव कह्यो है. गूढभाव होनेके कारण वाकी गूढता या ही अर्थमें के न तो वो विहित है और न वो निरूपित है. यदि विहित होती अथवा निरूपित होती तो वाकी गूढता निवृत्त हो जाती, प्रकटता आ जाती. पुष्टिभक्तिके बीजभावको भी जहां प्रश्न आयो हतो वहां भी श्रीमहाप्रभुजी यों आज्ञा कर रहे हैं के वो तो कार्यसुं ही अनुमेय है. पुष्टिको बीज कोईके भीतर है के नहीं वो अपनकु पता नहीं चल सके है. यासु वाकी गूढभावात्मकता बताई है. इन अ वे अपन सोचें तो वा पुष्टिपे चलनेवालो मार्ग भी गूढ मार्ग है. और वाकी गूढता लोकसिद्ध-वेदसिद्ध होती तो गूढता नहीं होती. या लिये भागवतमें जहां द्वादश शक्तिकी गणना करी वहां ‘पुष्टि’नामकी शक्ति ‘श्री’नामकी शक्तिसु पृथक् है उतनो बतायो है. और प्रायः प्रभुकी शक्तिएं प्रभुकी स्वामिनिरूपा हैं. ये तो अपने वैष्णवको ही नहीं पर सारे पौराणिक साहित्यको ये सिद्धान्त है. देवी शिवकी शक्ति है, रिद्धि-सिद्धि गणपतिकी शक्ति है, सरस्वती ब्रह्माजीकी शक्ति है, लक्ष्मी विष्णुकी शक्ति है वगैरह. तो शक्ति अपने आधिदैविक रूपमें देवी हैं. “वेदा यथा मूर्तिधरा त्रिपृष्ठा”न्यायसु. तो पुष्टिसृष्टिको यदि कोई आधिदैविक रूप है, जो वर्णित तो नहीं है पर “**भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः**” ये श्रीमहाप्रभुजीने जैसे एक अनुमान कियो है ऐसे यमुनाजीके तटपे प्रभुकी पुष्टिलीला भयी है वासु यमुनाजीको कोई अतिरिक्त आधिदैविक स्वरूप है ये शास्त्रकी श्रुतार्थापत्तिसु अनुमेय होवे है. ये दूसरो पाइन्ट है. अब जैसे पुष्टि गूढ है ऐसे यमुनाजीको ये स्वरूप गूढ नहीं रह्यो तो पुष्टि नहीं रह जायेगो. और पुष्टि रहनो है तो याकु गूढ रहनो पड़ेगो. अब सवाल ये है के गूढ हतो तो वाकु प्रकट क्यों कियो. शास्त्रने प्रकट नहीं कियो तो ये लिबर्टि

श्रीमहाप्रभुजीने क्यों ली. श्रीमहाप्रभुजीकु भी नहीं लेनी हती जब स्वयं प्रभुने वाकु प्रकट नहीं कियो है तो. जैसे व्यासजीने वो बात प्रकट नहीं करी के जिनकु श्रीमहाप्रभुजी गुरु मान रहे हैं तो श्रीमहाप्रभुजी ऐसो साहस अपने आचार्य होनेके एंगलसु क्यों कर रहे हैं. ये बात विचारणीय है. यामें एक बात ये है के श्रुत भले नहीं है पर श्रुतार्थापत्ति है. तो आचार्यको ये कर्तव्य है के अभिहितको चिन्तन करे इतनो ही नहीं, तात्पर्यको भी चिन्तन करे. और तात्पर्यको चिन्तन करे इतनो ही नहीं, वाकी अर्थापत्तिनको भी चिन्तन करे. क्योंके **“आचिनोति हि शास्त्राणि स्वाचारे स्थापयत्यपि, यस्मादुपदिशदन्यान् तस्माद् आचार्य उच्यते”**. तो जब श्रीमहाप्रभुजी आचार्यतया प्रकट भये हैं तब आपने अपनी रिस्पोन्सिबिलिटी समझके पुष्टिभक्तिमार्ग प्रकट कियो है. याकेलिये आपकु कितनो टेंशन हतो वो अपन सिद्धान्तरहस्यकी वार्तासु समझ सके हैं. जीव तो दोषनुसं भरे हैं, उनको सम्बन्ध प्रभुके साथ कैसे हो सके? वगैरह. दरसल् वा टेन्शनकु श्रीमहाप्रभुजी रिलीझ कर रहे हैं श्रीयमुनाजीकी स्तुति करके! जैसे वा बखत कृष्ण यमुनाके तटपे प्रकटे और खेले ऐसे पुष्टिजीवकु और पुष्टिप्रभुकु यमुनाके तटपे, यमुनाके भावपे मिलानो चाहते होवें तो, पुष्टि भले गूढ होवे पर पुष्टिसुं जन्य भक्ति प्रकट हो जायेगी.

और यामें एक खास बात ध्यान देवेकी ये है के समझोके श्रीयमुनाजीको आधिदैविक रूप...वैसे कालिन्दीके रूपमें प्रकट हैं, वो भी इन्हीको एक स्वरूप है, ये ही नहीं है पर इनको ही कोई एक स्वरूप है **“कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले”** वा तरहको इनको प्रतिनिधि स्वरूप कोई वहां है पर वा स्वरूपकु अपन पुष्टिभक्तिके गूढभावतया प्रियाके रूपमें नहीं ले रहे हैं, भार्याके रूपमें ले रहे हैं. तो मैं समझुं हूं के इन बातनपे अपन ध्यान दें तो श्रीयमुनाजीके गूढ स्वरूपको शास्त्रमें नहीं होनो...अद्वैतीनके यहां एक मजेदार उक्ति है **“अनुपपत्तिर्हि मायाम् उपोद्वलयति, अनुपपद्यमानार्थत्वात् मायायाः”**. आप जितनी अनुपपत्ति मायाके विरुद्ध दे रहे हो, शंकराचार्य कहे हैं के वासु तो आप मायाको समर्थन कर रहे हो! माया क्योंके अनुपपद्यमान अर्थ है वासु मायाकी अनुपपत्ति अनुपपत्ति नहीं है, उपपत्ति है. ऐसे ही गूढ वस्तुमें प्रमाणकी अनुपलब्धि अनुपपत्ति नहीं होके उपपत्ति है. ये तीसरो पॉइंट ध्यानमें रखनो

चहिये. क्योंकि यदि प्रमाणकी उपलब्धि है तो वो गूढ़ नहीं रहे है. गूढ़ता निभानी है तो प्रमाणकी अनुपलब्धि होनी जरूरी है. अब अनुपलब्ध प्रमाणकु अपने श्रुतार्थापत्तिके लेवलपे प्रकट कियो है वो अपने नहीं कियो है. आचार्यचरणकु अपनी कोई रिस्पॉन्सिबिलिटी लग रही है यासु आपने प्रकट कियो है.

और लीलामें श्रीयमुनाजीने प्रकट रूपसुं भाग नहीं लियो है वा सम्बन्धमें अपनेकु ऐसे सोचनो चहिये के “कभी तो सोच कि वह शख्स किस कदर था बुलन्द जो झुक गया तेरे कदमोंपे आसमांकी तरह!”. आसमां अपनेसु कितनो ऊंचो है पर अपने पैरन तक झुक जावे है. ऐसे श्रीयमुनाजीकी कितनी कृपालुता है के उनकु भक्तनकु लीलाको सौविध्य प्रदान करनेमें ही सुखानुभूति होवे है. या अर्थमें उनको भाव निर्गुण है. भक्त अनेक तरहके हैं, कुछ सुरभाववाले हैं तो कुछ असुरभाववाले हैं. भक्त कैसे भी भाववाले होवें पर उनकु भगवानसु मिलानेमें श्रीयमुनाजीको रोल असाधारण है.

अभी श्रीयमुनाजीके आधिदैविक और आध्यात्मिक स्वरूपनकु थोड़ी देरकेलिये भूल जाओ. यमुनाजीके आधिभौतिक स्वरूपको रोल सब तरहके भक्तनकु मिलानेमें कितनो रह्यो है! तो या आधिभौतिक स्वरूपके निरूपणसु श्रीयमुनाजीको गूढ़ आधिदैविक स्वरूप और आध्यात्मिक स्वरूप अनुमेय है. आधिदैविक स्वरूपके प्रमाणकी अनुपलब्धि अनुपपत्ति नहीं है पर यमुनाजीकी गूढ़ताकी उपपत्ति है. यदि वो प्रमाणसु उपलब्ध हो जाये तो वो गूढ़ ही नहीं रह जायेगो.

अब यदि बाहरवालेकु प्रमाणकी जिज्ञासा है तो शास्त्रमें ब्रह्मके ही स्वरूपके वर्णनमें ऐसी कई गूढ़ कथाएं हैं. वो श्रुतार्थापत्तिसु ही समझमें आ सके हैं, कहनेसु समझमें नहीं आ सके है.

मैं समझूं हूं के श्रीराधाजीको कृष्णलीमें स्वामीनीतया प्रकट हो जानो आत्मरतिको प्रकट होनो है. वो आत्मरति इन्सिडेंटली प्रकट हो गयी और वाने प्रभुके साथ रासादि लीला करी वो सारी लीलायें ...जैसे कल अपनी चर्चा चली हती, वो शृङ्गाररसकी अनुकारी लीलायें हतीं. वो जैसे यमुनातटपे भयी हैं ऐसे वात्सल्यरसकी लीलायें भी यमुनातटपे भयी हैं. ऐसे ही भक्तिरसकी, सख्यरसकी, असुरमारणकी लीलायें भी यमुनातटपे भयी हैं. उन सारी बातनकु अपनेमें जो ब्रह्मकी तरह समा सके, आसमांकी तरह समा

सके ऐसो यदि कोई फिनोमिना है ...और खुद प्रकट नहीं होवे “जो झुक गया तेरे कदमोंपे आसमांकी तरह” तो सोचो के वो किस कदर था बुलंद! माने, दान आपकु देवे पर अपनो हाथ बाहर निकलने नहीं देवे! आपकु दान मिले पर आप जान नहीं पाओ के दान कहांसु मिल रह्यो है वा तरहकी गूढता श्रीयमुनाजीने प्रकट करी है. दरअसल् वा गूढताकु प्रकट करनेमें सबसु बड़ो अभिप्राय श्रीयमुनाजीको ये ही है के अपन यमुनाजीके चुनरी मनोरथ नहीं करें पर कृष्णकी सेवामें परायण हो जायें. चुनरी मनोरथ करवेके चक्करमें अपनने यमुनाजीको प्रयोजन बदल दियो है. यमुनाजीके कुनवारा कर रहे हैं, छप्पनभोग कर रहे हैं...ये सब अपने पुष्टिमार्गको फारस् है. पर सच्च्ची आवश्यकता ये है के श्रीयमुनाजीके निर्गुणभाव, मतलब वैसो ओपन् भाव, क्योंके वात्सल्यभाव ऐसो होवे है के जो माधुर्यभावकु सहन नहीं कर सकेगो, माधुर्यभाव दास्यभावकु सह नहीं सकेगो, दास्यभाव यदि माधुर्यभावकी तरह बतरेगो तो कहीं-न-कहीं कुछ रसाभास होनेकी सम्भावना रहेगी. पर निर्गुणभाव ऐसो भाव है के जामें कहीं कोई रसाभास नहीं होवे है. वहां सारे भावन्को पोषण होतो रहे हैं. ये जो श्रीयमुनाजीकी सर्वाभावात्मिका या सर्वात्मभावात्मिका ओपननेस् है वो श्रीमहाप्रभुजीकु प्रेरित करे है षोडशग्रन्थमें राधाजीकी स्तुति नहीं करके श्रीयमुनाजीकी स्तुति करवेकु. यमुनाके तटपे हर तरहको भक्त अपने प्रभुकु खोज सके है. वो निर्गुणभावके तटपे अपन हर भावकु, कृष्णलीलाकु रेलिश् कर सकेंगे. मूल या बातने श्रीमहाप्रभुजीकु प्रेरित कियो है राधाजीके बजाये श्रीयमुनाजीरूपी पुष्टिशक्तिकु इन्वोक् करवेकेलिये. यद्यपि अपन मेटाफिज़िकलि सोचें तो एक बात साफ समझनी पड़ेगी के यदि श्रीयमुनाजीमें भी कृष्णके प्रति कोई तरहको भक्तिभाव है तो श्रीमहाप्रभुजीने स्पष्ट खुलासा कर दियो है के कृष्णकु जो भी चाह रह्यो है वामें राधाको आवेश है. राधाको आवेश जामें नहीं है वो कभी कृष्णकु चाह नहीं सके है फिर वो सख्यभाववालो होवे, चाहे दास्यभाववालो होवे, चाहे माधुर्यभाववालो होवे, चाहे भक्तिभाववालो होवे या फिर आसुरभाववालो ही क्यों न होवे! आसुरभाववालो होवे तो भी यदि वो कृष्णकु चाह रह्यो है तो वामें राधाकी शक्ति काम कर रही है, कर रही है, कर रही है. एसे यमुनाजी भी कृष्णकु चाह रही हैं तो राधाके आवेशके कारण ही चाह रही हैं, “अनया राधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः”

या न्यायसुं. पर सीधी समझवेकी बात ये है के ...वो आत्मरति ही तो आसुरी जीवनमें विषयरति बन रही है, वो ही तो आत्मरति मर्यादा जीवनमें मोक्षरति बन रही है! वा आत्मरतिकु निर्गुणाभक्तिमें केनलाइज़ करनेवाली यदि कोई केनाल है तो वो श्रीयमुनाजीके दो तटबन्ध हैं के जामें वो आत्मरति केनलाइज़ होके पुष्टिजीव तक आ रही है, निर्गुणभाव तक. या अर्थमें अपन सोचें तो पता चले के राधाजीको वर्णन ...जहां श्रीमहाप्रभुजी अपनो पुष्टिसम्प्रदाय जो गूढ़ सम्प्रदाय है, लोकवेदातीत सम्प्रदाय है, जामें लोकवेदातीत स्वरूपको उपासन है, लोकवेदातीत प्रकारसुं उपासन है, लोकवेदातीत भक्तिभावसु उपासन है, आराधना है वाकेलिये तो यमुनाजीकी केनाल मस्ट है. क्योंकि आत्मरति मिसगाईड कर सके है, पर यमुनाजीको निर्गुणभाव अपनकु एप्रोच करवेमें कभी भी मिसगाईड नहीं कर सके है. एक आत्मा जैसे अनेकरूप हो गयो ऐसे एक आत्मरति अनेक रूप धारण कर सके है. पर जो निर्गुणभाव है वो अनेक रूप धारण नहीं कर सके है पर अनेक रूपनकुं प्रमोट कर सके है. वामें एक प्रमोटिंग् फेक्टर है. वो सबसु ज्यादा श्रीमहाप्रभुजीकु षोडशग्रन्थमें आवश्यक लग रह्यो है. जैसे आपने फलके दो प्रकार बताये : एक तो नियत फल और दूसरो अभिलषित फल. तो प्रभु कोई नियत फल देनो नहीं चाहे हैं, अपनी इच्छासु देनो चाहे है तो वा फलकु फलतया एक्सेप्ट करवेकी अपनी मनोवृत्ति केवल आत्मरतिके भरोसे हो नहीं सकेगी, यमुनाजीके ही कारण होयगी. ये रहस्य है. या कारणसुं श्रीमहाप्रभुजी यमुनाष्टकसुं प्रारम्भ करनो चाहे हैं. वैसे श्रीगुसांईजीने कबूल कर ही रख्यो है के “**कृपयति यदि राधा बाधिताऽशेषबाधा**”. पर वामें ‘यदि’ इतनो बड़ो है. बहोत खतरनाक ‘यदि’ है. यहां ‘यदि’को सवाल नहीं है. यमुनातटपे “**न दुर्लभतमा रतिः**” दुर्लभ रहे ही नहीं है. एक बखत निर्गुण भाव पकड्यो तो कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगो. और निर्गुणभाव नहीं पकड्यो तो तफलीफ होयगी. याके एक नहीं वार्तामें अनेक उदाहरण अपन देख सके हैं : मूसा-बिलाईकी वार्तामें, रघुनाथदासकी वार्तामें, गोविन्ददास भल्लाकी वार्तामें, तांतीकी वार्तामें. ये सब प्रोब्लेम् है के भगवान्कु चाह रहे हैं और वासु कोओर्डिनेट हो नहीं पा रहे हैं, इन्टरैक्ट कर नहीं पा रहे हैं प्रोप्ली अपने कुछ बायस्के कारण. ये सब अपनी प्रोब्लेम् आत्मरति सोल्व नहीं कर सके है. इन सब भक्तनमें आत्मरतिकी कोई न्यूनता नहीं है,

आत्मरति मतलब भगवद्रति. इनमें यदि कोई न्यूनता है तो वो ओपनूनेस्की है. जैसे प्रभु जो कुछ करनो चाहें “यदि रुष्टोसि तुष्टोसि त्वमेव शरणं मम, मारणे वारणे वापि दासीनां नः प्रभुर्गतिः”. “कृष्णएव गतिर्मम”. ये ओपनूनेस् के तु जैसे रखे वा तरहसु तोकु भजुं. जो पुष्टिमार्गकु इमोशनलि लेवे हैं, निर्गुणभावसुं नहीं सोचे हैं वो ऐसो सोचे हैं के कल ब्रह्मसम्बन्ध लियो और आज मानसी सिद्ध हो जानी चाहिये. आज सानुभाव होने लगनो चाहिये. पर भाई, जा दिन वाको अवसर आयेगो वा दिन सब हो जायेगो. तुमने शर्त रखके तो ब्रह्मसम्बन्ध लियो नहीं है! तो निर्गुणभावकी ओपनूनेस् अपनेमें श्रीयमुनाजी ही ला सके हैं, आत्मरति नहीं ला सके है. आत्मरति शायद सगुणभावकु ओर इन्टेन्सीफाय् कर देगी के इतने दिन सेवा करते हो गये, अभी तक ठाकुरजी सानुभाव तो जता नहीं रहे हैं, ऐसे भगवान् क्या कामके! ये बात निर्गुणभावमें नहीं होयगी. एक बात समझो के अपन् निःसाधनताके बहोत शंख-नगाड़ा बजाते रहे हैं. पर निःसाधनता या निःसाधनभाव निर्गुणभावके अलावा कुछ नहीं है. निःसाधनभावको पहलो बीजभाव निर्गुणभाव है. निर्गुणभाव है तो निःसाधनता ऑटोमेटिकलि आ जायेगी.

**गो. शरद् :** एक बात अभी स्फुरित भई है. बलदेवजीद्वारा यमुनाकर्षणको प्रसङ्ग भागवतमें आवे है. समग्र भागवतमें ओर कहीं भी नहीं, ठाकुरजीकी लालामें भी नहीं पर बलदेवजीके सम्मुख यमुनाजी आधिदैविक रूपसुं प्रकट भये हैं! और वहां भी पाछी यमुनाजीकु गालियें पड़ी हैं. याको क्या कारण हो सके है?

**गो. श्या.म.:** याकु राइट् पर्सपेक्टिवमें समझो. दाउजीने यमुनाजीकु खींचे हैं वहां श्रीमहाप्रभुजीने स्पष्ट समझायो है के दाउजीको स्वरूप प्रमाणको है. निर्गुणभावमें क्लोज़नेस् नहीं होवे है. वो प्रमेयके साथ भी रास करेगो और प्रमाणके साथ भी रास करेगो. प्रमेयकु भूलके प्रमाणके साथ रास करनेमें शंखचूड़ आवे है. पर प्रमेयके तरफ ले जानेवाले प्रमाणके साथ रास करनेमें कोई बाधा आ नहीं सके है. क्योंकि यदि बाधा आती होती तो श्रुतिरूपा गोपिकाएं स्वयं प्रमाणरूपा हतीं. कृष्णलीलामें दो ठिकाने प्रमाणता आवे है. एक बाजु गोपिकाएं श्रुतिरूपा होनेके कारण प्रमाण हैं और दूसरी बाजु बलदेवजी प्रमाणरूप हैं. इन दो ब्रेकेटके बीचमें कृष्ण प्रमेय है. आज अपनने

प्रमाणके प्रति जैसो दुर्भाव पनपायो है वैसो दुर्भाव भागवत सिद्धान्त नहीं है। वो दुर्भाव होते ही दाउजीने जो गालियें दी हैं वो सब गालिये अपनकु देवेकी हिम्मत रखनी चाहिये। प्रमाणके प्रति इतनो दुर्भाव क्यों!

**गोपालदास :** वा बखत बलदेवजीमें भगवदावेश प्रकट हतो। पर श्रीयमुनाजीकु बलदेवजी खाली बलदेवजी ही दीखे। तो “**वक्त्रं ब्रजेशसुतयोः**”में जो बता रहे हैं वो आविष्ट बलदेवजी पाछे ठाकुरजी ही हैं।

**गो. श्या.म. :** वामें भी पाछी ये बात है न के प्रमाण जा बखत प्रमेयसुं आविष्ट है वा बखत वो प्रमेय ही है। और जब प्रमेयाविष्ट नहीं है मतलब क्या? ध्यानसु समझ, अपन आंखकु सजावें, कानके कचरा साफ करें, सूंघवेकी शक्ति बढ़ावें, जीभमेंसु लार टपका रहे हैं। पर रूप गायब है, शब्द गायब है, गन्ध गायब है...तो ऐसे प्रमाणनूको मतलब क्या होयगो? प्रमाणको मतलब है के वो प्रमेयसुं आविष्ट होनो चाहिये। व्यर्थको प्रमाण घातक होवे है। यासु वा कथाके द्वारा जो बात भागवतकार कहनो चाह रहे हैं वापे अपनकु ध्यान देनो चाहिये। श्रीमहाप्रभुजीने सुबोधिनीमें जा वाक्यको जो अर्थ हो रह्यो है वोही अर्थ कियो है। श्रीमहाप्रभुजी सौगन्ध खाके कह रहे हैं के “**लक्षणां नैव वक्ष्यामि न न्यून्याद् अन्यपूरणम्, आर्थिकन्तु प्रवक्ष्यामि परोक्षवचनादृते**”। ‘आर्थिक’को मतलब अर्थापत्तिलब्ध। वो सब अर्थ मैं तुमकु बताने जा रह्यो हूं। वामें श्रीमहाप्रभुजीने डायलोग् नहीं लेके थीमकु पकड़ी है। यासु ही भागवतार्थमें श्रीमहाप्रभुजीने थीम समझाई है। डायलोग् तो वोके वो दूसरी थीममें या तीसरी थीममें भी आ सके हैं। उनपे यदि ज्यादा ध्यान देंगे तो बात उलझ सके है। यासु श्रीमहाप्रभुजीने खुलासा कियो है “**एकार्थं सप्तधा जानन् अवरोधेन**”। जब थीम और डायलोग्में विरोध है तो आपकु सारी बात समझमें नहीं आयेगी। थीमसु विरुद्ध स्टोरी नहीं हो सके है, स्टोरीसु विरुद्ध डायलोग् नहीं हो सके है। व्याख्या लिखनेकी सिफत श्रीमहाप्रभुजी यामें माने हैं के लक्षणा किये बिना थीम और स्टोरी सु विरोधनूको परिहार करवेकी इनसाईट् होनी चाहिये। यदि ये इनसाईट् है तो मुच्यते। नहीं तो बध्यते। यहां भागवतकी थीम “**दशलीलायुतं सदा**” है। भगवान् सर्वदा दशलीलायुत हैं। वाकी स्टोरियें दशविधलीलायुतकी स्टोरियें हैं। उनमें अलग-अलग डायलोग् हैं। एक साधारण बात बताउं हूं। कृष्णावतार तो बहोत बादमें भयो है। प्रह्लादजी नृसिंहावतारके कालमें स्तुति



कर रहे हैं के कृष्णमें मन लगनो चाहिये. पर भाई, कृष्ण अभी जनम्यो कहाँ है! आजके कोई कोढ़िया कहेंगे के ये भागवतकी डिस्क्रिपेन्सी है, द्वापरयुगके कृष्ण प्रह्लादजीके बखत कहाँसु आ गये! अधिकार और साधन स्कन्धमें कृष्णलीला आ रही है. ये एंटिक्लाइमेक्स है! पर क्यों एंटिक्लाइमेक्स नहीं है वाको कारण श्रीमहाप्रभुजी समझावे हैं के श्रीकृष्ण सदा दशलीलायुत है. या थीमकु लेके भागवत चली है वाकु वो कई स्टोरीनुसु समझा रही है. उन स्टोरीनुमें कई तरहके डायलोग् हैं. वामें कहीं गाली भी आयेगी तो कहीं स्तुति भी आयेगी. वो गाली और स्तुति को अविरोध अपनकु स्टोरीनु करनो पड़ेगो और स्टोरीको अविरोध थीमसु करनो पड़ेगो. जब थीम, स्टोरी और डायलोग् इन तीनोंके बीच अविरोध हो जायेगो तब अपनकु सच्चो अर्थ समझमें आयेगो. केवल डायलोग्के लेवलपे सच्चो अर्थ समझमें नहीं आ सके है.



## પુષ્ટિક્ષણ :

### પુષ્ટિપ્રવાહમાર્યદાગ્રન્થના સંદર્ભમાં

નિકિતા-જગદીશ શેઠ

#### પુષ્ટિક્ષણની વ્યાખ્યા :

‘પુષ્ટિ’ એટલે ભગવાનનો અનુગ્રહ જેનાથી ભક્ત ભગવાનની ભક્તિ કરી શકે છે. આ કોઈક એવા પ્રકારનું અલૌકિક તત્ત્વ છે જેનાથી ભગવાનમાં સહજ સ્નેહ સ્ફુરિત થાય છે. જે સ્નેહ પાછળનું કારણ કશું જ નથી હોતું. જેવો શ્રીવ્રજભક્તોનો પ્રભુ પ્રત્યે હોતો. પુષ્ટિભક્ત માટે તો આવી પુષ્ટિ જ ફળ છે. “પુષ્ટિરેવ ફલં પુષ્ટિક્ષલ”.

શ્રીકલ્યાણરાયજી પુષ્ટિપ્રવાહમાર્યદાભેદના ગ્રન્થની ટીકામાં ‘પુષ્ટિ’નો અર્થ સમજાવતાં કહે છે કે પુષ્ટિ એ પુષ્ટિપ્રભુનો નિઃસાધન અનુગ્રહ છે. આવી પુષ્ટિ જ પુષ્ટિભક્તિરૂપે ખીલી ઉઠે છે ! તેથી જ આને નિઃસાધન અનુગ્રહ કહેવાય છે. આવો નિઃસાધન અનુગ્રહ અવતારકાલમાં પ્રભુ જ્યારે શ્રીગોકુલમાં અવતર્યા અને વ્રજભક્તોને પ્રભુ પ્રત્યેનો સહજ આકર્ષણ દ્વારા ખ્યાલમાં આવે છે જે શ્રીઆચાર્યચરણ “નિઃસાધનફલાત્માયં પ્રાદુર્ભૂતો અસ્તિ ગોકુલે” દ્વારા કહે છે. આવી પુષ્ટિનું નિરૂપણ “નાયમાત્મા પ્રવચનેન લભ્ય”ની ઉક્તિથી ખ્યાલમાં આવે છે.

પશુની પાછળ ચાલતા વ્રજેશના પુત્રનું મુખ જેણે સર્વ ઈન્દ્રિયો વડે સેવ્યું છે અથવા અનુરક્તિવાળા કટાક્ષો જેમાંથી છૂટે છે તેવા શ્રીમુખને જેણે નેત્ર દ્વારા હૃદયમાં ઉતાર્યું છે તેણે જ ઈન્દ્રિયોને સફળ કરી છે અથવા નેત્રનું ફળ પ્રાપ્ત કર્યું છે, કેમકે ઈન્દ્રિયોવાળાને એ સ્વરૂપની સેવા સિવાય બીજું ફળ નથી. તેમજ નેત્રવાળાને એના દર્શન સિવાય બીજું ફળ હોય એમ શ્રુતિઓ માનતા નથી. એ જ ફળ મુખ્ય છે. (ભાગવત્.૧૦।૨૧।૭)

મૂળમાં સચ્ચિદાનંદ ભગવાને પોતાની લીલા માટે સૃષ્ટિની રચના કરી છે. આ લીલામાં ભગવાન પોતે છૂપાઈ ગયા છે અને છુપાછૂપીના ખેલમાં જીવ પર દાવ આપ્યો છે ગોતવાનો. જીવ જ્યારે ભગવાનને ગોતી લે છે, સચ્ચિદાનંદાત્મક થઈ જાય છે ત્યારે એના માટે એ જ પુષ્ટિક્ષણ છે. જેનાથી તે ભગવન્મગ્ન થઈ ગાન, નૃત્ય કરવા લાગે છે “ઉદ્ગાયતે નૃત્યતિ”.

## પુષ્ટિક્ષણના પ્રકારો :

પુષ્ટિક્ષણનો આધાર મુખ્યત્વે પુષ્ટિજીવના વરણ પર નિર્ભર કરતો હોય છે. પુષ્ટિજીવનું વરણ પુષ્ટિ - પુષ્ટિ, પુષ્ટિ - મર્યાદા, પુષ્ટિ - પ્રવાહ એમ અલગ-અલગ તરીકે હોય છે. વળી પુષ્ટિજીવો સાત્ત્વિક, રાજસ અને તામસ એમ ત્રણ પ્રકારના હોય છે. જીવોના સ્વભાવ પ્રમાણે પ્રભુ એમના નિરોધ માટે લીલા પણ એ પ્રકારની કરે છે. એ પ્રકારની લીલા કરીને એમને પ્રમાણ, પ્રમેય, સાધન અને ફળ પ્રાપ્ત કરાવે છે.

## પુષ્ટિક્ષણનો વિચાર :

શ્રીઆચાર્યચરણના શુદ્ધાદ્વૈતના દષ્ટિકોણથી જેમ ઉપનિષદ્માં કહેવાયું છે કે બ્રહ્મ એકલો રમણ કરી નથી શકતો તેથી રમણ માટે તે વિભક્ત થયો અને ક્રીડાર્થ સૃષ્ટિની રચના કરી. તેવી જ રીતે ઉપનિષદ્માં કહેવાયું છે કે બ્રહ્મ પોતે જ જેને સારી ગતિ આપવા માંગે છે એની પાસે સારા કાર્યો કરાવે છે અને જેને અધમ ગતિ આપવા માંગે છે એની પાસે ખરાબ કાર્યો કરાવે છે. તેથી બ્રહ્મ પોતાની સાથે પોતે જ ક્રીડાર્થ જગતના રૂપમાં આવિર્ભૂત થઈને ક્રીડા કરે છે. એના સિવાય બીજું કોઈ છે જ નહીં. એટલે પુષ્ટિક્ષણનો વિચાર કરતાં સ્વરૂપથી ભગવાન પોતાની જોડે જ આત્મરમણ કરે છે તેથી કોઈ તારતમ્ય નથી. પરંતુ લીલાર્થ વિવિધતા માટે પ્રભુ એવા કાર્યો કરાવી એ પ્રકારનું ફળ પ્રાપ્ત કરાવે છે.

## પ્રસ્તુત ગ્રન્થનું ષોડશગ્રન્થમાં સ્થાન :

<sup>૧</sup>પૂર્ણપુરુષોત્તમ શ્રીકૃષ્ણ, <sup>૨</sup>શ્રીમહાપ્રભુજી શ્રીગુસાંઈજી અને એમના વિરચિત <sup>૩</sup>પુષ્ટિપદ્ધતિ એમ ત્રણેય હશે તો જ આપણાં હૃદયમાં પુષ્ટિભક્તિરૂપી કમળ ખીલી શકશે! આ પુષ્ટિપદ્ધતિ આપણને શ્રીમહાપ્રભુજીએ ષોડશગ્રન્થમાં આપી છે. ષોડશગ્રન્થ રૂપે સાક્ષાત્ શ્રીઆચાર્યજી જ બિરાજમાન છે. એમાં દર્શાવેલ કર્તવ્યોપદેશનું નિષ્ઠાપૂર્વક આચરણ કરવાથી આ સંસારરૂપી કાદવમાં પુષ્ટિભક્તિનું દિવ્ય કમળ ખીલી શકે છે.

ષોડશગ્રન્થો પૈકી ‘પુષ્ટિપ્રવાહમર્યાદાભેદ’ગ્રન્થ ષોડશગ્રન્થના પાયા રૂપે છે. કેમકે પુષ્ટિભક્તિમાર્ગની જે પ્રક્રિયા છે તે શ્રીમહાપ્રભુજીએ આ ગ્રન્થમાં નિરૂપિત કરી છે. આ ગ્રન્થને સમજવાથી અન્ય ગ્રન્થો પણ સારી રીતે સમજી શકાય છે. આ ગ્રન્થનું સ્થાન ષોડશગ્રન્થમાં ‘સિદ્ધાંતમુક્તાવલી’ પછી અને ‘સિદ્ધાંતરહસ્ય’ પહેલાં આવે છે. ‘સિદ્ધાંતમુક્તાવલી’ ગ્રન્થમાં આપશ્રીએ સ્વસિદ્ધાંતને કૃષ્ણસેવા રૂપે દર્શાવ્યો છે તેમજ ‘સિદ્ધાંતરહસ્ય’માં આપશ્રીએ સમર્પણનો સિદ્ધાંત સમજાવ્યો છે. આ બન્ને વચ્ચે આ ગ્રન્થનું સ્થાન છે. જો કે સિદ્ધાંતમુક્તાવલીના ઉપસંહારમાં બધા સંશયોની નિવૃત્તિનું

શ્રીમહાપ્રભુજી કહે છે કે “એતદ્ બુદ્ધવા વિમુચ્યેત્ પુરુષઃ સર્વસંશયાત્” તેમ છતાં પ્રસ્તુત ગ્રન્થના ઉપક્રમમાં આ ગ્રન્થનું પ્રયોજન કહે છે કે “યચ્છ્રુતેઃ સર્વસંદેહા ન ભવિષ્યન્તિ”. તો આમ તો સિદ્ધાંતમુક્તાવલી ગ્રન્થ પછી કોઈ પણ સંદેહો ન રહેવા જોઈએ તો પણ કોઈ વિશેષ સંદેહો પુષ્ટિજીવને રહી શકે છે જેનું નિરાકરણ આ ગ્રન્થમાં શ્રીમહાપ્રભુજી કરી રહ્યા છે. જે સ્વસિદ્ધાંતનો વિનિશ્ચય કૃષ્ણસેવારૂપે શ્રીમહાપ્રભુજીએ બતાવ્યો એ કૃષ્ણસેવા માટે અપેક્ષિત જે શુદ્ધ પુષ્ટિભક્તિમાર્ગ છે એ ભક્તિમાર્ગ યદ્યપિ વિહિતતયા શાસ્ત્રમાં નિરૂપિત નથી તો પણ અવિહિત કઈ રીતે છે? શાસ્ત્રમાં એ ક્યાં છુપાયેલો છે? એના લક્ષણો ક્યા છે? એ માર્ગ પર ચાલનારાઓના જીવ, દેહ અને ક્રિયાઓ કેવા હોય છે? વગેરે પ્રશ્નોનું સમાધાન વિસ્તારથી કરવામાં આવ્યું છે. જેના સાંભળવાથી કોઈ પણ પ્રકારના સંદેહો નથી રહી જતાં અને પુષ્ટિપથિક દૃઢતયા આ માર્ગ પર ચાલી શકે છે અને આ ગ્રન્થ પછી સમર્પણનો સિદ્ધાંત નિશ્ચિતરૂપથી પાળી શકે છે.

### પ્રસ્તુત ગ્રન્થનો વિષય :

પ્રસ્તુત ગ્રન્થમાં આપશ્રી પુષ્ટિ-પ્રવાહ-મર્યાદાના માર્ગ, સર્ગ ( જીવ, દેહ અને ક્રિયાના ભેદથી ) અને ફલ વિશેષ રૂપે અલગ-અલગ કરીને કહી રહ્યાં છે કે જેથી તે બાબતમાં કોઈ પણ પ્રકારના સંદેહો રહી ન જાય.

ત્યાર બાદ લક્ષણ બતાવતાં ત્રણેય માર્ગોનું પ્રમાણ આપી રહ્યા છે કે શાસ્ત્રમાં ભક્તિમાર્ગ કહેવાયેલો છે તેથી તેના કારણભૂત પુષ્ટિનું અસ્તિત્વ સાબિત થાય છે. ગીતાજીમાં ભગવાને બે પ્રકારની જીવિસૃષ્ટિ કહી છે : “દ્વૌ ભૂતસર્ગૌ લોકેસ્મિન્ દૈવ આસુરએવ ચ”. દૈવી અને આસુરી. ત્યાં આસુરી-પ્રવાહીજીવોનું નિરૂપણ હોવાથી પ્રવાહમાર્ગનું અસ્તિત્વ સાબિત થાય છે. વેદ પણ વિદ્યમાન હોવાના કારણે મર્યાદામાર્ગ પણ વ્યવસ્થિત છે એવું સાબિત થાય છે.

ત્યાર બાદ પ્રમાણોથી માર્ગભેદની સાબિતિ આપી રહ્યાં છે કે પ્રભુના ભક્ત કોઈક જ હોય છે, બધા નથી હોતા કે જે લોક-વેદને ન ચાલીને ફક્ત પ્રભુને જ ચાલતા હોય. આવા અનન્ય ભક્તના પ્રભુ ગુણગાન કરે છે અને એમને દુર્લભ પણ ગણાવીને એમનો ઉત્કર્ષ પણ બતાવવામાં આવ્યો છે. તેથી પુષ્ટિજીવ લોક-વેદમાં આસક્ત ન હોવાના કારણે પ્રવાહ-મર્યાદાથી જુદા પ્રકારના છે. ભગવાન્ જ્યારે કોઈક જીવ પર પુષ્ટિ વરસાવે છે ત્યારે જ એ ભક્ત લોક-વેદમાંથી આસક્તિ છોડી શકે છે. વળી ભાગવતમાં લખ્યું છે કે “તપ, દાન વગેરે સાધનોથી ભગવાનના દર્શન નથી કરી શકાતા પણ અનન્ય ભક્તિથી જ ભગવાનના દર્શન કરી શકે છે”. આ વચનથી પણ પુષ્ટિમાર્ગ જુદો છે એમ સાબિત થાય છે.

જો કોઈ એવી શંકા કરે કે માર્ગ તો એક જ છે અને ભક્તિ અને આગમ (મર્યાદા) તેના અંગ છે એમ માનવું જોઈએ, તો તે બ્રહ્મસૂત્રથી (બ્રહ્મ જીજ્ઞાસાની બાબતમાં જ્ઞાનમાર્ગમાં જીવ અને બ્રહ્મ નો અભેદ હોય છે અને ભક્તિમાર્ગમાં ભેદ અપેક્ષિત હોય છે) અને યુક્તિથી (બન્ને માર્ગોના ફલના તારતમ્યથી) બન્ને માર્ગો અલગ જ છે. શ્રુતિથી જેમ મર્યાદા અને પ્રવાહમાર્ગના જીવ, દેહ અને ક્રિયાઓ નિત્ય અને ભિન્ન છે તેમ પુષ્ટિમાર્ગમાં પણ જીવ, દેહ અને ક્રિયાઓના આ બે માર્ગથી એક્યનો નિષેધ છે. તેથી પુષ્ટિમાર્ગનું પ્રમાણભેદથી ભિન્ન હોવાનું સિદ્ધ થાય છે.

### સર્ગભેદ :

હવે પછી સર્ગભેદનું નિરૂપણ સર્ગનું સ્વરૂપ, તેના અંગ અને તેની ક્રિયા ના ભેદથી કરવામાં આવે છે. ત્યાં ઈચ્છામાત્રથી મનથી પ્રભુ પ્રવાહસર્ગનું નિયમન કરે છે. પ્રભુની વાણીથી એટલે કે વેદોથી મર્યાદાસર્ગનું નિયમન થાય છે અને પ્રભુની કાયાથી (સ્વરૂપાસક્તિથી) પુષ્ટિસર્ગનું નિયમન થાય છે.

### ફળભેદ :

ફળભેદનું નિરૂપણ કરતા પ્રવાહમાર્ગમાં ફળ જે પ્રકારનાં કર્મો કર્યા હોય તે પ્રકારે મળે છે. મર્યાદામાર્ગમાં વેદોમાં બતાવેલા ફળો દ્વારા અને પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રભુના સ્વરૂપથી ફળ મળે છે. ફળ આપવાની બાબતમાં પ્રભુની જુદી-જુદી ઈચ્છા છે, એક નહીં તેથી પણ પુષ્ટિ, પ્રવાહ અને મર્યાદામાર્ગો અલગ-અલગ છે.

ત્યાર બાદ શ્રીમહાપ્રભુજી બતાવે છે કે પ્રવાહીજીવોને ભગવાન્ આસુરી યોનિમાં ભટકાવતાં રહે છે, એમને મુક્તિ ક્યારે પણ મળતી નથી. તેથી જો પ્રવાહી જીવો અલગ હોય તો પ્રવાહી જીવોથી મર્યાદા અને પુષ્ટિ જીવો આપોઆપ અલગ થઈ જશે. મર્યાદા અને પુષ્ટિજીવો અંતવાળા અને મોક્ષ મેળવવા લાયક હોય છે.

ત્યાર બાદ પુષ્ટિસૂષ્ટિનું વિશેષથી નિરૂપણ કરતાં કહે છે કે પુષ્ટિમાર્ગના જીવો ખરેખર ભિન્ન છે. તેમની સૂષ્ટિનું પ્રયોજન ભગવદ્રૂપસેવા જ છે. તેઓ સ્વરૂપથી, અવતારથી, લિંગથી અને ગુણથી, પુષ્ટિજીવોના સ્વરૂપમાં, દેહમાં અને ક્રિયાઓમાં ભેદ નથી. તો પણ જે પ્રમાણે તારતમ્યથી કાર્ય કરાવવું હોય છે તે પ્રમાણે તારતમ્ય પ્રભુ લીલાર્થ પ્રકટ કરે છે, સ્વરૂપથી કોઈ ભેદ નથી. આ પુષ્ટિસર્ગના મુખ્ય બે પ્રભેદ હોય છે: શુદ્ધપુષ્ટિ અને મિશ્રપુષ્ટિ. મિશ્રપુષ્ટિના પાછા ત્રણ પ્રકાર હોય છે: પુષ્ટિપુષ્ટિ, મર્યાદાપુષ્ટિ અને પ્રવાહપુષ્ટિ. પ્રભુનું કાર્ય સિદ્ધ કરવા માટે પુષ્ટિભાવથી મિશ્રિત પુષ્ટિજીવો સર્વજ્ઞ હોય છે એટલે કાયિક, વાયિક અને માનસિક એમ ત્રણેય રીતે

ભગવત્પરાયાણ હોય છે. પ્રભુનું કાર્ય સિદ્ધ કરવા માટે મર્યાદાભાવથી મિશ્રિત પુષ્ટિજીવો ગુણગાન પરાયાણ હોય છે એટલે કે વાચિક અને માનસિક રીતે ભગવત્પરાયાણ હોય છે. પ્રભુનું કાર્ય સિદ્ધ કરવા માટે પ્રવાહભાવથી મિશ્રિત પુષ્ટિજીવો ક્રિયા પરાયાણ હોય છે એટલે ફક્ત કાયિક રીતે ભગવત્પરાયાણ હોય છે. અને જેઓ સહજ સ્વાભાવિકરૂપે ભગવત્પરાયાણ રહે છે તેઓ શુદ્ધ પુષ્ટિજીવો છે જેઓ દુર્લભ છે.

હવે પુષ્ટિજીવના ફળનું નિરૂપણ કરતા શ્રીમહાપ્રભુજી જણાવે છે કે ગુણ-સ્વરૂપના ભેદથી જે પ્રકારે ભગવાન્ ભૂતલ પર પ્રકટ થાય છે તે ભગવાન્ જ પુષ્ટિજીવો માટે ફળ છે.

### શ્રીગોકુલનાથજી :

ઈક્ષણ-ભાષણાદિગુણરૂપે અને સાક્ષાત્ પુરુષોત્તમ આનંદમાત્રકરૂપાદ-મુખોદરાદિવાળા સ્વરૂપથી ભગવાન જ પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તની જ્યાં સ્થિતિ છે ત્યાં પ્રકટ થાય છે તે જ ફળ છે.

### શ્રીરઘુનાથજી :

ઐશ્વર્યાદિ ષડ્ગુણો સંલિત જે ભક્તના અન્તઃકરણમાં જે ભાવથી ભગવાન્ પ્રકટ થાય છે તે ભક્તના ભાવને પ્રિય થતું તે સ્વરૂપ જ તેના માટે ફળ છે.

### શ્રીકલ્યાણરાયજી :

માત્ર સ્વરૂપમાં નિષ્ઠાવાળા ભક્તોને સ્વરૂપથી અને ધર્મજ્ઞાનાદિમાં નિષ્ઠાવાળાને ધર્માદિરૂપ ગુણથી જે પ્રકારનું ફળ આપવા માંગે છે તે પ્રકારે ધર્મ-ધર્મીના અભેદથી બધા ધર્મ અને ધર્મી રૂપથી ભગવાન જ ભક્તોના ગૃહ વગેરેમાં અથવા હૃદયમાં જે રીતે પ્રકટ થાય છે તે રીતે ફલ પ્રદાન કરે છે.

### પુરુષોત્તમજી :

ભગવાન્ ભક્તની હૃદયભૂમિમાં અથવા લીલાસ્થાન વૃદાંવન વગેરેમાં ગુણરૂપથી (નૃસિંહ, રામ, વામનાદિ રૂપથી અથવા બાલ, પૌગણ્ડ, કિશોરાદિ રૂપથી) આવિર્ભૂત થાય છે તેઓની મુક્તિ પણ તે પ્રકારની હોય છે અને ફળ પણ તે પ્રકારે ફલિત થાય છે.

અન્યમાં આસક્તિ થયે, અલંકાર થયે અથવા લોકમાં ભગવન્માર્ગની સ્થાપના માટે ભગવાન જ નિત્યલીલાસ્થ જીવોને શાપ અપાવે છે. આવા જીવો કોઈ દિવસે પાખાણી નથી થઈ શકતા, ભગવત્સેવા કરવા માટે એમને કોઈ રોગ વગેરે આડે નથી આવી શકતા. એમનો અનુભવ એટલે કે ભગવાનને કઈ રીતે એપ્રોચ કરવા તે ઉત્તમ જ

હોય છે. શાપાદિક તો એમની શુદ્ધિ માટે આપવામાં આવ્યા હોય છે. ભગવાન જે રીતે એમની સામે પ્રકટ થયા હોય છે તે રીતે તેઓના ભજનમાં તારતમ્ય આવે છે. તેઓમાં લૌકિક અને વૈદિકપણું કાપટ્યથી હોય છે સ્વાભાવિક રીતે નહીં. પરંતુ વૈષ્ણવત્વ એમનામાં સદૃશ રીતે હોય છે.

હવે ચર્ચણી જીવો : દૈવીજીવોના સમ્બન્ધને કારણે આ જીવો બધા જ માર્ગમાં ફરતા હોય છે. એક ક્ષણમાં જ તેમને કોઈ પણ માર્ગનો રંગ લાગી જાય છે તેઓને રુચિ ક્યાંય પણ નથી હોતી. તેઓ જે ક્રિયા કરે તે મુજબ કાંઈકને કાંઈક ફળ મળી જતું હોય છે.

ત્યાર બાદ પ્રવાલીજીવોનું નિરૂપણ તેઓના સ્વરૂપ, દેહ અને ક્રિયા ના ભેદોથી કહેવામાં આવે છે. આ બધા જીવો આસુરી હોય છે અને તેમને પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિ નો વિવેક નથી હોતો. આવા આસુરી જીવો પાછા બે પ્રકારના હોય છે : અજ્ઞ અને દુર્જ્ઞ. અજ્ઞ જીવો એ કે જેમનું ગીતામાં વર્ણન કર્યું છે અને દુર્જ્ઞ જીવો પાછળ ચાલનારા હોય છે. આવા પ્રવાલી જીવોની વચ્ચે જો કોઈ પુષ્ટિ જીવ આવી જાય તો તેઓ ત્યાં લાંબા સમય સુધી ટકી નથી શકતા અને તેવી જ રીતે પુષ્ટિમાં પણ જો કોઈ પ્રવાલીજીવ આવી જાય તો તે ત્યાં ટકી નથી શકતો કેમકે કર્મના વશ તે, તે કુળમાં જન્મે છે. તેથી ભગવાને જે જીવનું જ્યાં વરણ કર્યું છે તે જીવ તે માર્ગમાં જોડાતો હોય છે.

### પ્રસ્તુત ગ્રન્થના સંદર્ભમાં પુષ્ટિકલનો વિચાર :

ક. ઉપનિષદમાં કહેવાયું છે કે એકમેવ અખણ્ડ સચ્ચિદાનંદ બ્રહ્મ લીલાર્થ વિભક્ત થયો. તે પોતાનો આનંદ પોતાની એકલતામાં માણી નહોતો રહ્યો. તેથી તેણે પોતાની જાતને બે રીતે વિભક્ત કરી. એમાં એક રૂપે તે પતિ અને બીજા રૂપે પત્ની થયો. લીલાર્થ સૃષ્ટિમાં તેણે બે પ્રકારની સૃષ્ટિ : દૈવી અને આસુરી રચી. જેમ ઉપર જણાવેલ તેમ એમાં જેઓને સારી ગતિ આપવા માંગે છે એમની પાસે સારા કાર્યો કરાવે છે અને બીજા પાસે ખરાબ કાર્યો કરાવે છે. તે પૈકી દૈવી જીવોના ઉદ્ધાર માટે કર્મમાર્ગ, જ્ઞાનમાર્ગ અને ભક્તિમાર્ગની પ્રભુ એ સ્થાપના કરી છે. સચ્ચિદાનંદ બ્રહ્મમાં જે અસ્તિ, ભાતિ અને પ્રિયતા ના ધર્મો છે તે અંશભૂત જીવાત્મામાં ક્રિયાસામર્થ્ય, જ્ઞાનસામર્થ્ય અને સુખાનુભૂતિના સામર્થ્ય તરીકે વ્યાપારિત થાય છે. આ સામર્થ્ય જ્યારે અંશી પરમાત્મા પ્રત્યે વ્યાપારિત થાય છે તો એને કર્મયોગ, જ્ઞાનયોગ અને ભક્તિયોગ કહેવાય છે. આ માર્ગો પ્રભુ દ્વારા દૈવી જીવોના ઉદ્ધાર માટે તો છે જ. તેમાં પણ ભક્તિમાર્ગમાં પણ મર્યાદા આદિ ભેદોથી ઘણાં બધા પ્રકારના ભક્તિમાર્ગો છે. તેમ છતાં આ બધા ભક્તિમાર્ગમાં શ્રીમહાપ્રભુજીને શુદ્ધપુષ્ટિના લક્ષણોનો અભાવ લાગ્યો. ભક્તિની

વ્યાખ્યામાં “માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વસ્તુ સુદઢઃ સર્વતોષિકઃ સ્નેહઃ” પહેલાં માહાત્મ્યજ્ઞાનની મહત્તા આપી છે જેથી પ્રભુમાં આદર રહે અને સેવાદિ કરવામાં કોઈ અપરાધ ન પડે. પછી જ્યારે સ્નેહ ઉત્કૃષ્ટ અવસ્થા પર પહોંચે છે તો માહાત્મ્યજ્ઞાન સ્વતઃ નિવૃત્ત થઈ જાય છે અને પ્રભુ સાથેના વ્યવહારમાં આ સ્નેહનું જ સર્વાત્મના પ્રાબલ્ય હોય છે. આ પ્રકારનો શુદ્ધ સ્નેહ શ્રીવ્રજભક્તોને પ્રભુ પ્રત્યે હોય છે જે શ્રીગોવર્ધનોદ્ધરણ પ્રસંગમાં અને શ્રીયશોદાજનો શ્રીઠાકોરજ પ્રત્યે મૃત્સ્નાભક્ષણ પ્રસંગમાં ખ્યાલમાં આવે છે. આવી શુદ્ધપુષ્ટિ જે મહાપ્રભુજીને અપેક્ષિત છે તેવી કોઈ પણ ભક્તિમાર્ગમાં ન હતી. તેથી શ્રીમહાપ્રભુજીએ શાસ્ત્રમાં આવી ભક્તિ જ્યાં નિરૂપિત થઈ હતી તે પ્રમાણના આધારે શુદ્ધપુષ્ટિભક્તિમાર્ગની સ્થાપના કરી.

ખ. જેમ ઉપર કહ્યું તે મુજબ બ્રહ્મે પોતાની જાતને બે રીતે વહેંચી એક રીતે તે દશ્ય બન્યો અને બીજી રીતે દ્રષ્ટા બન્યો. તે પોતે કર્તા - કાર્ય અને ભોક્તા - ભોગ્ય બન્યો. ત્યારે શ્રીમહાપ્રભુજી એક ગજબની વાત કરે છે કે આ પ્રક્રિયામાં અવળું - સવળું જ થયું છે. બ્રહ્મના આનંદમાં ચૈતન્ય છે અને એના ચૈતન્યમાં એની સત્તા ભરાયેલી છે જે આપણામાં એકદમ રિવર્સ રીતે આવે છે. આપણામાં સૌથી બહાર સત્તા છે એની ભીતર ચૈતન્ય છે અને એમાં અંદર આનંદ ભરેલો છે. જેમ અરીસામાં રહેલ પ્રતિબિંબમાં જમણો હાથ ડાબો દેખાય છે તેમ સૃષ્ટિપ્રક્રિયામાં પણ આવું અવળું - સવળું થઈ ગયું છે. તેથી આ પ્રક્રિયામાં જે કર્તા છે એમાં કાર્ય છુપાઈને રહે છે અને દરેક કાર્યમાં કોઈ કર્તા પણ છુપાઈને રહે છે. તેવી જ રીતે દ્રષ્ટામાં દશ્ય અને દશ્યમાં દ્રષ્ટા અને ભોક્તામાં ભોગ્ય અને ભોગ્યમાં ભોક્તા. આમાં વારાફરતી રોલ બદલતાં રહે છે. તો એક સચ્ચિદાનંદમાંથી સત્, ચિત્ અને આનંદ એમ ત્રણ અને એ ત્રણમાંથી છ ભેદ થાય છે :

૧. ગૂઢ કર્તા - પ્રકટ કાર્ય
૨. પ્રકટ કર્તા - ગૂઢ કાર્ય
૩. ગૂઢ દ્રષ્ટા - પ્રકટ દશ્ય
૪. પ્રકટ દ્રષ્ટા - ગૂઢ દ્રષ્ટા
૫. ગૂઢ ભોક્તા - પ્રકટ ભોગ્ય
૬. પ્રકટ ભોક્તા - ગૂઢ ભોગ્ય

આમ ગૂઢ - પ્રકટ ભાવોના છ રૂપો થયાં. આ છ રૂપો આપણી સામે પ્રકટ થતાં તે જાણે ઐશ્વર્ય, વીર્ય, યશ, શ્રી, જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય એમ છ ગુણવાળા ભગવાન પ્રકટ થઈ ગયાં. તે જ શ્રીમહાપ્રભુજી પ્રસ્તુત ગ્રન્થમાં “ભગવાનેવ હિ ફલમ્” દ્વારા કહ્યું છે.

**નિષ્કર્ષ :**

ક. આમ શ્રીમહાપ્રભુજીએ દૈવીસૃષ્ટિ એમના ફલથી વંચિત ન રહી જાય એવા



શુદ્ધપુષ્ટિભક્તિમાર્ગની સ્થાપના કરી છે. શ્રીપ્રભુચરણ શ્રીવલ્લભાષ્ટકમાં કહે છે કે “નાર્વિભૂયાદ્ ભવાંશ્યેદ્ અધિધરણિતલં”. જો શ્રીમહાપ્રભુજીનું પ્રાકટ્ય ન થાત તો પુષ્ટિજીવો પુષ્ટિપ્રભુની સેવાથી વંચિત રહી જાત અને તેમનું પ્રયોજન નિષ્ફળ જાત.

ખ. સૃષ્ટિમાં જે સચ્ચિદાનંદનું રિવર્સલ થઈ ગયું છે જેથી જે ગૂઢભાવો તિરોહિત રહેતાં જીવ ઈન્દ્રિયોથી મળતાં વિષયસુખોમાં આનંદ માની બેસે છે. પરંતુ કોઈક એવો ધીર પુરુષ એના પર સંયમ મેળવીને એ અન્તરાત્માને ગૂઢભાવોને જોઈ શકે છે, તે ભગવાનને પકડી શકે છે.

અંતમાં, પ્રસ્તુત ગ્રન્થમાં શ્રીઆચાર્યચરણ સૃષ્ટિના મૂળ ભોક્તા, સૃષ્ટિનું પ્રયોજન, વર્ગશઃ કેટલા માર્ગો, તેમાં કેવા જીવો, તેમની સૃષ્ટિ, તેમના જીવ, દેહ અને ક્રિયાના ભેદો અને એમને મળતાં ફળોનું પ્રમાણ પૂર્વક અને વિસ્તૃત નિરૂપણ કરે છે. દુર્ભાગ્યવશ આ ગ્રન્થ સંપૂર્ણતયા ન મળતાં કયા ભગવદીય માટે લખાયો છે અને એનાથી શું ફળ સિદ્ધિ થઈ એનો સચોટ ખ્યાલ નથી આવતો. જેમ સિદ્ધાન્તમુક્તાવલી ગ્રન્થથી શ્રીઅચ્યુદતદાસજીના નેત્રો ભગવલ્લીલાના દર્શન કરી શકે તેવા થઈ ગયા અને માનસીસેવા મગ્ન થઈ ગયા તેવું નિરૂપણ અહીં નથી મળતું તો પણ શ્રીમહાપ્રભુજી અહીં પુષ્ટિજીવને દર્પણ બતાવતા હોય કે એનું સૃજન શા માટે છે અને એના કર્તવ્યો શું છે, એ પ્રકારનું પુષ્ટિક્ષણ મળતું હોય એવું લાગે છે.



## चर्चा

पुष्टिः : 'पुष्टिप्रवाहमर्यादा'ग्रन्थना संदर्भमां

### श्रीमती निकिता-जगदीश शेठ

**गो. योगेश :** पेपरमें गूढ कर्ता प्रकट कार्य, गूढ कार्य प्रकट कर्ता, प्रकट द्रष्टा गूढ दृश्य, प्रकट दृश्य गूढ द्रष्टा, प्रकट आनन्द गूढ आनन्दभोक्ता और प्रकट आनन्दभोक्ता और गूढ आनन्द ऐसे छे प्रकार बताये हैं. इनको फलके साथ क्या सम्बन्ध है?

**गो. श्या.म. :** ये बात मैने हालोलमें 'पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद'कु पढ़ाते बखत बताई हती. इनने वाकी पुस्तकमेंसे ये बात पेपरमें लिखी है. या बातके पीछे मेरो तात्पर्य ये हतो के कृति, दृष्टि या भोग की फेसवेल्युपे जो स्थिति है वाकु अपन मर्यादा मानके चलें. पर वो जब इन्टेन्सीफाई होवे हैं तब कोई तरहकी पुष्टि प्रकट होवे है. वाका परिणाम ये होवे है के फेस वाल्युके चित्रमें जो गूढ स्वरूप है वो प्रकट हो जावे है. जैसे कर्ता गूढ है पर वाको कार्य प्रकट है. भक्तिको बीज गूढ है. अपन पच्चीस साल नहीं, पिचत्तर साल भी ठाकुरजीकी सेवा करें पर क्या अपन शत प्रतिशत ये कह सकें के अपने भीतर पुष्टिभक्तिको बीजभाव है! कार्य प्रकट है, कर्ता बीज गूढ है.

ऐसे ही प्रकट कर्ता और गूढ कार्यकु लो. उदाहरणके तौरपे अपन प्रकट भजनकर्ता हैं. पर वो भजन अपन अपने अहंकारसु कर रहे हैं के भगवान्द्वारा रोपित बीजभावको कार्य है? वस्तुतः अपने द्वारा कियो जातो भजन भगवान्को गूढ कार्य है. फेस वेल्युपे अपन भजन कर रहे हैं. पर जब अपनकु ये बोध होवे के मैं भजन कर रह्यो हूं वो अभी तक मैं ये समझतो हतो के ये भजन मैं सिद्धान्तबोधके कारण कर रह्यो हूं या श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञाकु अनुसरनेके भावसु कर रह्यो हूं या मेरो ठाकुर मोकु पसंद है वा लिये मैं कर रह्यो हूं...ये सब प्रकट कर्ताकी बातें हैं. पर तू कर क्यों रह्यो है? क्योंकि तेरे भीतर वाने ऐसो बीज स्थापित कियो है. तब तो ये गूढ कार्य हो गयो! कर्ता प्रकट है पर कर्ताको कार्य होनेको नेचर तो गूढ हो गयो! जब ये गूढ नेचर प्रकट होवे है तो वो कृति होवे तो वामें भी उदात्तीकरण होवे है,

दृष्टि होवे तो वामें भी उदात्तीकरण आवे है. जैसे अपनकु सब कछु दीख रह्यो है पर जब अपन देखनो शुरु करें और अपनकु कोई चीज ऐसी दीखने लगे के जो पहले अपनकु वैसी दीख नहीं रही हती तो गूढ दृश्य प्रकट हो गयो. जैसे हीरा परखनेवाले हीराकु परखे हैं. हीरा तो अपने सामने भी है पर अपनकु कहां पता चले है के वो सच्चो है के खोटो. हीराकी परखवालेकु वा पथथरमें गूढ हीरापनो दीखे है. याको रिवर्स भी होवे है : दृश्य प्रकट होवे और द्रष्टा गूढ होवे. प्रत्येक धर्मने भगवान्‌कु गूढ द्रष्टा कहाँ है. अपन यों समझे हैं के अपन जो पाप-पुण्य कर रहे हैं वो चुपचाप करें तो कोईकु खबर नहीं पड़ेगी. पर भगवान्‌ वाकु देख रह्यो है के नहीं? अपने यहां भगवान्‌ अन्तर्यामी तरीके देखे है. दूसरेके यहां “बड़ा ही सी.आई.डी. है नीली छतरीवाला, हर तालेकी चाबी रखे हर चाबीका ताला” वा तरहसु देखे है. पर हर धर्मने भगवान्‌कु गूढ द्रष्टा मान्यो है. आजकल ऑफिसनमें सी.सी.केमेरा लगे भये होवे हैं. काम करनेवालेनकु पता नहीं होवे है पर मेनेजर कमरामें गूढ बेठ्यो भयो सब कछु देखतो होवे है. तो द्रष्टा गूढ और दृश्य प्रकट भी होवे है. जब द्रष्टा प्रकट होवे है तब दर्शनमें एक तरहकी इन्टेंसिटि आवे है. ऐसे ही भोगमें भी होवे है. द्रष्टा-भोक्ता-कर्ता इन तीनोंकी प्रक्रिया मैने कल जो श्रुति बताई वामें बताई है. वो एकाकी रममाण नहीं हो पायो. वाकु द्वितीयकी इच्छा भई. तब वाने दूसरेकु प्रकट कियो. वाने अपनेकु दो भागमें बांट्यो. जो प्रकट कियो वाने छुपनो चाह्यो, गूढ होनो चाह्यो. वाने गूढ होनो चाह्यो करके याने वाकु खोजनो चाह्यो. वहीं ये बात भी आयी है के जाने प्रकट कियो वाने वाकु खानो चाह्यो! तो वो रोयो के मोकु पैदा करके क्यों खा रह्यो है! ऐसो क्यों भयो? क्योंकि जो कर्ता हतो वो भोक्ता भी बननो चाहतो हतो. यों सोचें तो वेदको वो पेसेज् बड़ो क्रूर लगे. पर वाकी थीमपे ध्यान दो तो वो अलग ही है. थीम ये है के वाने जो कार्य पैदा कियो है वाकु वो भोग्य बनानो चाह रह्यो है. भोग्य रेजिस्ट कर रह्यो है. क्योंकि भोग्य खुद भोक्ता बननो चाह रह्यो है. “न पारयेयं चलितुं नय मां यत्र ते मनःम्”में वो ही थीम पाछी डेवलप् करी गयी है. मैं भोग्य बननो नहीं चाह रही हूं, मैं भोक्ता बननो चाह रही हूं. प्रकट भोग्यमें गूढ भोक्ता होनेकी और प्रकट भोक्तामें गूढ भोग्य होनेकी जो कोन्फ्लिक्ट है वाको रेज़ोल्युशन् तब आवे के जब दोनों एक-दूसरेसु कोओर्डिनेटेड हो जावें. याकु अपने यहां फलात्मक मान्यो है. याकु अपने

यहां बहुत सरल शब्दों में प्रत्येक वार्ता में ऐसे कहो गयो है “और पाछे वो सेवा करन लागे. पाछें ठाकुरजी उनकुं सानुभाव जतावन लागे”. बोलने पे अपराध लगे पर फेसवलयु पे ठाकुरजी अपने भोग्य लगे हैं और अपन भोक्ता हैं ऐसो लगे है. क्योंकि ठाकुरजीकु अपनने घरमें पधराये हैं. पाछे श्रीमहाप्रभुजीने क्या कही है के “यथा देहे तथा देवे” सेवा करो. सारे टचूस्टोन् अपनेसु रिलेटेड् दिये है. पर वा तरहसु अपन वासु इंटेरेक्ट कर रहे होवें और अचानक एक दिन वो अपनकु कहदे के मोकु ये चीज पसंद नहीं आ रही है, वो पसंद आ रही है, वो लाओ. तो वाके भीतर रह्यो भयो गूढ भोक्ता प्रकट हो गयो. समराईकु ठाकुरजीने कहदी के अब तोकु टेरा लगावेकी क्या जरूरत है. पहले तो ठाकुरजी वाके सामने भोक्ता बन नहीं रहे हते. वो अपनी कर्तव्यबुद्धिसुं भोग धर रही हती. एज़ इफ् ठाकुरजी वाके भोग्य हते. मोकु भोग धरने हैं वाकेलिये ठाकुरजी हैं. ठाकुरजीकु अरोगानो है वाकेलिये भोग नहीं धर रही हूं. एक दिन ठाकुरजीने जता दियो के मोकु तो तेरो कियो ही भावे है. ये प्रकट भोक्तापनो है. जा दिन ऐसो होवे वा दिन अपने भीतर छुप्यो भयो भोग्यभाव प्रकट हो जायेगो. या लेवलपे अपनो सम्बन्ध ठाकुरजीके साथ भक्तिमार्गीय दृष्टिसु हेल्दी हो जावें हैं. और यदि एक तरफ एडामेंट् तरहको केरेक्टर है के मैं तो भोक्ता हूं, भोक्ता ही रहूंगो. तब तो वो मर्यादा हो गयी. जाकु जैसो बनायो है वो वैसे बिहेव करे वो तो मर्यादा है. जाकु श्रीमहाप्रभुजी **“पुष्टिस्वार्था परार्था तु भक्ति साऽनवमे मता”**. कितनी बड़ी बात कही है! भोक्ता-भोग्यके इंटरैक्चकी बात बताई है. गूढ प्रकट हो रह्यो है और प्रकट गूढ हो रह्यो है. पुष्टि स्वार्था-जीवकेलिये है और परार्थ-भगवदर्थ भक्ति है. अपन भक्ति नहीं करें तो भगवान्को क्या घिस जायेगो! अपने जैसे भगवान्के अगणित भक्त हैं! पर फिर भी भगवान् पुष्टि करे हैं. तो पुष्टि जीवकेलिये है. पर भक्ति अपन परार्थ करे हैं. वो भाव स्फुरेगो कब? मैं भक्ति या लिये नहीं कर रह्यो हूं के वो मेरी आवश्यकता है, परकेलिये भक्ति कर रह्यो हूं. पर जब प्रभु अपनो स्वार्थ प्रकट करे के तू भक्ति कर, तेरी भक्ति मोकु पसंद आ रही है, तू भक्ति नहीं करे है तो मोकु कमी लगे है. ऐसो परार्थत्व जब भक्तिमें प्रकट हो जावे तो वो **“अनवमे मता”** हो जावे है. या अर्थमें फलता है. हर प्रकटमें कोई गूढ भाव है वो प्रकट हो जावे तो फलात्मकताकी स्टेज आ जावे है. वाकु चाहे ‘फल’ कहो

चाहे 'पुष्टि' कहो. या एंगलसु मैने ये बात हालोलमें समझायी हती. द्रष्टा-दृश्य, कर्ता-कार्य और भोक्ता-भोग्य तीनोंमें ये सायकल होवे है करके छे होवे हैं. पर मैने वा अर्थमें नहीं कही हती के इनमें कोई ऐश्वर्य-वीर्य-यश-श्री-ज्ञान-वैराग्य है.

**परेश शाह :** अपन 'शुद्धपुष्टिभक्तिमार्ग' ऐसो शब्द वापरे हैं. यहां 'शुद्ध' शब्द कौनसु जुड़ेगो?

**गो.श्या.म. :** चर्चकिलिये मैं कुछ बातें रख रह्यो हूं. शुद्धपुष्टि + भक्ति + मार्ग एक विभाजन है. शुद्धपुष्टिभक्ति + मार्ग ये दूसरो विभाजन है. शुद्ध + पुष्टिभक्तिमार्ग ये तीसरो विभाजन है. अब प्रथम विभाजनकु लो. 'शुद्ध' भक्तिके साथ नहीं जुड़ रह्यो है और मार्गके साथ भी नहीं जुड़े है पर पुष्टिके साथ जुड़े है. पुष्टिके कई प्रकार सम्भव हैं. वामें एक प्रकार शुद्धपुष्टिको है. एसी शुद्धपुष्टिवालो भक्तिमार्ग. अब दूसरो विभाजन लो. वामें 'शुद्ध'पद पुष्टिभक्तिके संग जुड़ रह्यो है. तो पुष्टिभक्ति कैसी के जो शुद्ध है. जा भक्तिमें दूसरी कोई भक्ति मिश्रित नहीं हो रही है ऐसी पुष्टिभक्तिको मार्ग. याके बाद तीसरो लो. ऐसो पुष्टिभक्तिको मार्ग के जो शुद्ध है. याको रिवर्स क्या होयगो? पुष्टिभक्तिमार्गके भी दो-तीन रूप हो सके हैं : अशुद्ध और मिश्र. अब आप लोग यापे विचार करो के अपन 'शुद्धपुष्टिभक्तिमार्ग'सुं क्या कहनो चाह रहे हैं. 'शुद्ध' पद भक्तिको विशेषण है, पुष्टिको विशेषण है के मार्गको विशेषण है ये विचारनो है.

ये विचार क्यों करनो चाहिये वाको कारण बताऊं. 'पुष्टि'को मतलब अपन कृपा लेवें. कृपाकेलिये श्रीगुसांईजी ऐसे आज्ञा करे हैं के कृपा साधन है और हर साधनको कोई अवान्तर व्यापार होवे है. जैसे पंखा हवा मिलनेको साधन है. पर वाको फिरनो अवान्तर व्यापार है. साधन पंखा ही है पर अवान्तर व्यापारसुं वामें साधनता आवे है. अवान्तर व्यापारके बिना साधनमें फलमुखयोग्यता नहीं आवे है. या तरहसुं पुष्टिभक्तिमार्गकु लो. पुष्टिभक्तिको एक मार्ग है. मार्ग वाको व्यापार है. वाने भक्तिरूपी व्यापार कियो है. पुष्टि साधन है, भक्ति व्यापार है. पुष्टिरूपी साधन जब भक्तिको व्यापार करे, वा व्यापारसुं जब भगवान्कु खोज्यो जाये वो पुष्टिभक्तिमार्ग. वामें शुद्धता. माने शुद्धता पुष्टिभक्तिमें होनी चाहिये. अर्थात् भक्ति मर्यादा या प्रवाह सु मिश्रित नहीं होनी चाहिये, शुद्ध होनी चाहिये. यहां 'शुद्ध' भक्तिके

साथ जुड़ेगो.

हां पुष्टिरूपी साधन शुद्ध है, कोई व्यापारकी अपेक्षा नहीं कर रह्यो है, ऐसी शुद्धपुष्टिके कारण अपने भीतर अचानक यदि भक्तिको व्यापार प्रकट हो गयो. शुद्धपुष्टि तो वो भी नहीं कर रह्यो है पर अपने भीतर भक्तिको व्यापार प्रकट हो गयो. वा व्यापारसुं अपन खोजने लग गये. शुद्धपुष्टिके कारण अपने भीतर भक्तिको व्यापार होनेके बजाये सहज सम्भव है के ध्यानको व्यापार प्रकट हो गयो. ऐसी पुष्टि भई के भक्ति नहीं प्रकट होके भगवान्के ध्यानमें तल्लीन हो गये. है शुद्धपुष्टि पर वाको व्यापार कुछ भी कर सक रही है. पुष्टिकु ऐसी फ्रीडम है के नहीं ये ईश्वर वामें आयेगो. तो जब 'शुद्ध' विशेषण पुष्टिके साथ जुड़ेगो तब वाको पूरो स्वरूप बदल जायेगो. और मार्गके साथ जुड़ेगो तब वाको स्वरूप दूसरो होयगो. पुष्टिभक्तिमार्ग ऐसो के जो शुद्ध है. माने जा भक्तिमार्गमें अपनने लोकार्थिता नहीं जोड़ी है, अर्थार्थिता नहीं जोड़ी है, धर्मार्थिता नहीं जोड़ी है, कामार्थिता नहीं जोड़ी है ऐसो पुष्टिभक्तिको मार्ग शुद्धपुष्टिभक्तिमार्ग कहेवायेगो. और जा भक्तिमार्गमें अपनने अर्थार्थिता, धर्मार्थिता, कामार्थिता या मोक्षार्थिता जोड़दी वो भक्ति तो कर रहे हैं पर अर्थिता बदल गई है. जैसे हरिरायजी(जामनगर) कहे हैं के उत्तमाधिकारी तो भक्ति भक्तिकेलिये करे हैं पर जघन्य अधिकारी तो पैसा मिले वाकेलिये भी सेवा कर ही सके है. आज अधिकांश वैष्णव पुष्टिभक्तिकु धर्म समझके कर रह्यो है, पञ्चम पुरुषार्थ समझके नहीं कर रह्यो है. मेजोरिटी गोस्वामी अर्थार्थितासु सेवा कर रहे हैं. हवेलीको ऐसो धंधा है के जामें कोई लोनकी जरूरत नहीं है, कोई पर्सनल् इन्वेस्टमेंट नहीं है, कोई लायाबिलिटी नहीं है, सब कुछ वैष्णवन्के पैसासु होवे है फिर भी कस्टमरकी केर लेवेकी भी जरूरत नहीं है. और प्रोस्परीटी एक इंडस्ट्रियलिस्ट्सुं कम नहीं है. दीखे तो भक्ति है पर अर्थार्थितासु करी जा रही है. ऐसे ही कामार्थितासु भी भक्ति करते होवे हैं लोग. और मोक्षार्थि तो आजके जमानामें दुर्लभ हैं. मोक्षकेलिये हिमालय गये भये लोग भी हिमालय छोड़के मोहमयी बम्बईमें लौट आवे हैं. सो ये क्लास तो एम्प्टी रहेगो. तो देखो, कितनी विविधता भक्तिमें है. अपन छूटसु 'शुद्धपुष्टिभक्ति' बोले हैं पर यदि वाके ब्रेकअपको विचार करें तो अपने बोलवेमें कितनो कन्फ्यूज़न् है वो दीख जायेगो.

**भावेश परमार :** લાલૂભટ્ટએ પુષ્ટિવિવેકમાં આજ વાત કરી છે ને કે જે ધર્મર્થકામ સાધિકા પુષ્ટિ છે તે સાધારણ પુષ્ટિ છે જ્યારે સ્વરૂપાનન્દની સાધિકા પુષ્ટિ છે એ શુદ્ધપુષ્ટિ છે.

**ધર્મેન્દ્રસિંહ જ્ઞાલા :** પુષ્ટિમેં શુદ્ધતા લા રહે હૈં.

**ગો. શ્યા.મ. :** રાજસભાવકે નિવારણકેલિયે વિરજા હોમ હૈ. વામેં “દેહો મે શુદ્ધ્યતામ્, ચક્ષુર્ મે શુદ્ધ્યતામ્...” એસે કરતે કરતે ઇતનો જોશ આ ગયો હૈ કે “આત્મા મે શુદ્ધ્યતામ્” ઓર “પરમાત્મા મે શુદ્ધ્યતામ્” મી કહ દિયો હૈ. એક ટેક્નિકલ્ બાત સમજો કે અપન ઠાકુરજીકી સેવાકેલિયે સ્નાન કરે હૈં તબ “સેવાયૈઃ સ્નાતુમિચ્છામિ જલેઽસ્મિન્ સન્નિધિં કુરુ” એસે શ્રીયમુનાજીકો સ્મરણ કરકે નિર્ગુણભાવમેં સ્નાન કરકે સેવામેં જાવે હૈં એસે ઠાકુરજીકુ મી પુષ્ટ કરતે બચત શુદ્ધ કિયો જાય હૈ. અશુદ્ધ ઠાકુરજીકી સેવા નહીં કરી જા સકે હૈ. યે તો અપને યહાં એસો ઘોટાલા ચલે હૈ કે ગુરુ સંડાસ જાકે આયે હોવેં તો મી વૈષ્ણવ લોગ ચરણસ્પર્શ કરે હૈં, સૂતકમેં મી ચરણસ્પર્શ કરે હૈં. બાકી વૈદિક પરમ્પરા તો એસી હૈ કે કર્મકર્તા જૈસે માર્જન કરકે શુદ્ધ હોવે હૈ એસે યજ્ઞપાત્ર યજ્ઞવેદિ આદિકી મી શુદ્ધિ કરી જાય હૈ. “અદિતે નુ મન્યસ્વ, અનુમતે નુ મન્યસ્વ” જૈસે મન્ત્ર બોલે જાય હૈં. શ્રાદ્ધકર્મમેં મી “અપસર્પન્તુ યે ભૂતાઃ પવિત્રં કુરુ ચાસનમ્” આદિ બોલકે સબકી શુદ્ધિ કરી જાય હૈ. એસે સબ કછુ શુદ્ધ હો જાયે પીછે સેવા હોવે હૈ. અપની અપરસ નિર્ગુણભાવકી અપરસ હૈ. નિર્ગુણભાવકી અપરસમેં આવેકેલિયે શુદ્ધપુષ્ટિકી જરૂરત હૈ. શુદ્ધિ જૈસે અપની હોવે હૈ એસે ઠાકુરજીકી મી હોવે હૈ. બજારમેં કોઈ મી મૂર્તિ ઠાકુરજીકી રચી હોવે વાપે કોઈકો ભાવ આ જાવે ઓર વાકી સેવા કરવે લગે તો વો નહીં હો સકે હૈ. વો મૂર્તિ શુદ્ધ કહાં હૈ! પહલે શુદ્ધ કરો! નિર્ગુણભાવસુ વાકુ મી પુષ્ટ કરની પડે હૈ. તબ વો શુદ્ધ હોવે હૈ. શુદ્ધ હોવે તબ વો સેવ્ય બને હૈ. “શુદ્ધાશ્ચ સુખિનશ્ચૈવ બ્રહ્મવિદ્યાવિશારદાઃ, ભગવત્સેવને યોગ્યા નાન્યે” યે જૈસે જીવપે લાગૂ હોવે હૈ એસે ઠાકુરજીપે મી લાગૂ હોવે હૈ.

**અસિત શાહ :** શ્રીગોકુલનાથજી ‘શુદ્ધ’પદ પુષ્ટિકે વિશેષણતયા લેતે હોવેં એસો લગે હૈ. માહાત્મ્યજ્ઞાન નહીં હૈ ફિર મી પ્રભુ અપની પુષ્ટિસું ગોવર્ધન ધારણ કર રહે હૈં.

**ગો. શ્યા.મ. :** “પુષ્ટિઃ સ્વાર્થા”કે અર્થમેં શ્રીગોકુલનાથજી કહ રહે હૈં. “ઁનકી મરજી ન હો તો ક્યા દેં તૂલ દાસ્તાં ખત્મ એક આહમેં હૈ”. જ્યાદા બોલનેકી જરૂરત

नहीं है। श्रीमहाप्रभुजीको ये वचन “पुष्टिः स्वार्था परार्था तु भक्ति” पर्याप्त है। अपनने स्वार्था भक्ति और परार्था पुष्टि को खेल चालू कर दियो है। पर श्रीमहाप्रभुजी तो साफ-साफ कहके पधारे हैं के “पुष्टिः स्वार्था परार्था तु भक्ति”। भगवान् जब अनुग्रह करे है तब तुम कैसे हो, कौन हो ये सब देखे नहीं है। “दुष्टतमोऽपि दयारहितोऽपि विधर्मविशेषकृतिप्रथितोऽपि दुर्जनसंगरतोऽप्यवरोपि च कृष्ण! तवास्मीति न चाऽस्मि परस्य”। पुष्टि तो स्वार्था है। “सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वतः पापपीनस्य दीनस्य”। पुष्टि तो वो तुम्हारेलिये कर रह्यो है। वाकु पुष्टि करनेसु कोई लाभ नहीं है। और भक्ति, वस्तुतः, अपनकु अपनेलिये नहीं करनी है, वाकेलिये करनी है। श्रीमहाप्रभुजीने तो बिलकुल साफ कर दियो है के भक्ति कौनकेलिये है और पुष्टि कौनकेलिये है। कन्फ्युज़न् अपनकु भयो है। करना तो ये चाहिये के हर श्रीमहाप्रभुजीको ये वाक्य हर पुष्टिमार्गीय घर और संस्था में लगानो चाहिये। ये इतनी साफ बात है के जाकेलिये कोई एक्स्प्लेनेशन, जस्टिफिकेशन या क्वेरी की जरूरत नहीं है। भगवान् पुष्टि जीवकेलिये करे है पर भक्ति जीवकेलिये नहीं है, वो तो भगवान्केलिये है, सेव्यकेलिये है।

**असित शाह :** “गुणस्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत्” या श्लोककु प्रायः सभी क्वोट करे हैं पर “तथा तेषां फलं भवेत्” पे चहीये उतनो ध्यान नहीं देवे हैं। ये मेरे हिसाबसु विचारणीय है। जैसे अर्जुनके सामने जब प्रभुने विराट स्वरूप प्रकट कियो या यशोदाजीकु मुखमें ब्रह्माण्डको दर्शन करायो। जाकु जो सद्य नहीं है वाकु वैसो प्राकट्य फलरूप नहीं लगे है। यासुं “तथा तेषां फलं भवेत्” कु समझनो जरूरी है के सामने जैसो अधिकारी है वो जाकी मजा ले सके वा तरहसु यदि आविर्भाव होयगो वो ही फलरूप होयगो। यासुं दोनों बात टेली होनी चाहिये : जीवकु जो अभिलाषा होवे और प्रभुकी भी वैसी इच्छा होवे। दोनों बात जब मिले तब फलत्व सिद्ध होवे है।

**गो.श्या.म.:** अच्छी बातपे ध्यान दिवायो। यामें मेरो ये कहनो है के भगवान् “कूठस्थमचलं ध्रुवम्” हैं। पर “तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके” ऐसो विरुद्धधर्माश्रयताको भी भगवान्को केरेक्टर् है। यासुं सामान्यतया अपनेमें प्रभुके बारेमें जो हायपरबोलिक् कन्सेप्ट है के प्रभुमें कोई तरहको फ्लक्च्युएशन नहीं है वो सच्ची बात है। वाको कारण ये है के अपने भीतरके फ्लक्च्युएशन अज्ञानवश हैं। अपन कोई चीजकी अभिलाषा रखे हैं वो जब



पूर्ण होवे है तब अपनो दिमाग बदल जावे है के मैने ये अभिलाषा करी तो हती पर मेरी सच्ची अभिलाषा तो कुछ ओर ही है. ऐसे ही अजुनके प्रसंगमें भयो. अर्जुनने खुदने “दृष्टुमिच्छामि ते रूपम्” दर्शनकी अभिलाषा करी है. पर जब दर्शन करायो तब वाकु लग्यो के कुछ गड़बड़ हो गयी है “तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते”. अभिलाषा पूर्ण होते भये भी अपूर्ण ज्ञानपे आश्रित अभिलाषा होनेके कारण वाके अंदर फलक्व्युएशन् आ गयो. भगवान्में फलक्व्युएशन् अपूर्ण ज्ञानके कारण नहीं आवे है पर पूर्ण होते भये भी लीलात्मक दृष्टिसे भगवान् अपूर्ण जैसे बने हैं वाके कारण फलक्व्युएशन् आवे है. अपन भागवतादिमें ऐसे अनेक प्रसङ्ग देख सकेंगे के जहां लीलामें भगवान्में फलक्व्युएशन् प्रकट भयो होवे. तो “तथा तेषां फलं भवेत्”में कुछ फलक्व्युएशन् अपने कारण आवे हैं. जैसे “स्वभावस्यान्यथाभावो न वै शक्यः कथञ्चन, अतस्त्रिविधजीवेषु त्रिविधा भगवत्कृतिः” न्यायसु भगवान् जीवको अनुसरण करने जावें और जीवमें ही कोई तरहको फलक्व्युएशन् आ गयो तो भगवान् वाकु भी रिस्पोन्स देंगे. ऐसे भी भगवान्कु भी फलक्व्युएशन् होनो पड़े है. जैसे ठाकुरजी सानुभाव जताते भये बिल्लीसुं डर गये. डोकरीने कही के तुमने असुरन्कु मारे तब तो नहीं डरे और बिल्लीसुं कैसे डर गये! तो देखो, भगवान्में भी फलक्व्युएशन् आयो के अच्छा, तो नहीं बोलूंगो. ये फलक्व्युएशन् अपूर्ण ज्ञानके कारण नहीं है. “तथा तेषां फलं भवेत्”में अपनकु ये आस्पेक्ट भूलनो नहीं चाहिये. हर बखत भगवान्की दादागिरी रहेगी ऐसो नहीं है. और न “तत्तद्रूपः प्रणयसे” अपन भगवान्को वपु प्रणयन कर सकें ऐसो भी हर बखत सम्भव नहीं है.

**असित शाह :** श्रीहरिरयाजी भी आज्ञा करे हैं के भाव रूढ हो जावे तो स्वरूप स्मारक बन जावे है. जैसे अर्जुनकु विराट्के दर्शन भये तब भी वो स्वरूप प्रभुके ब्रजलीलाके स्वरूपको स्मारक ही बन्यो के ब्रजमें प्रभु कैसे हते.

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** असित जो कह रह्यो है वो तो तब होतो के जब “यथा तेषां फलं भवेत् तथा आविर्भवेद् भुवि” होतो. यहां तो “यथा आविर्भवेद् भुवि तथा तेषां फलं भवेत्” है. यहां तो भार यापे है के भगवान् भूतलपे जा प्रकारसुं आविर्भूत भये हैं वा प्रकारसुं उनकुं फलरूप होवे हैं. “स्वभावस्यान्यथाभावो”में भक्तके स्वभावके अनुकारी भगवान् होवे हैं

वापे भार है पर यहां तो श्रीमहाप्रभुजीको भार “यथा भुवि आविर्भवेत् तथा फलम्” पे है. यासुं असित जो कह रह्यो है के भगवान् भक्तको अनुसरण करे हैं वो या पंक्तिसुं तो नहीं आ रही है.

**असित शाह :** उनकेलिये फलरूप कब बनेंगे के जब भक्त रेलिश कर पावे वा तरहसुं भगवान् प्रकट होवें.

**गो.श्या.म.:** तुम दोनोंकी बातको समन्वय करनेको प्रयास करूं हूं. ‘थाल्’ प्रत्यय जैसे प्रकारवाची है. तो यत्प्रकारको आविर्भावः तत्प्रकारिका फलानुभूतिः भवति ऐसो अर्थ निकले है. व्याकरणमें थाल् प्रत्यय प्रकारवाची है पर प्रयोगमें “यथा स आगच्छति तथा अहमपि गच्छामि” हर बखत प्रकारवाची नहीं होवे है. या वाक्यमें यथा-तथा कन्डीशनके रूपमें प्रयुक्त भये हैं. जैसे वो आ रह्यो है वैसे मैं जा रह्यो हूं. तो या एंगलसु भी विचार करनो चाहिये.

**गो. शरद् :** व्याख्याकारनने जितने स्वरूपसुं और जिन गुणनुं भगवान् भूतलपे प्रकट हो रहे हैं ऐसे भूतलपे प्रकट भगवान् फलरूप होवे हैं ऐसो अर्थ कियो है. वामें उनने विविध गुण और स्वरूपमें बाल-पौगण्ड-किशोर आदि अवस्थानकु गिनायो है, कहीं नृसिंह-वामनादि अवतारनुकु भी गिनायो है.

**गो.श्या.म. :** आविर्भावके प्रकारके अनुसार फलानुभूतिको प्रकार होयगो. एक अर्थ जैसे ये निकले है ऐसे ही ये अर्थ भी क्यों नहीं निकल सके के जैसे वो आविर्भूत होंगे ऐसे अपनकु फल होयगो. यथा “जैसे वो आयेगो वैसे मैं जाउंगो”. अपनो फल तब तक नहीं होयगो के जब तक वो गुण या स्वरूप के भेदसुं आविर्भूत नहीं होवे. आविर्भूत हो गयो तो फल हो गयो. तो यथा आविर्भवेत् तथा फलं भवेत्. प्रकारके अर्थमें नहीं होके एन्टेसिडेंट और कोन्सिक्वेंट के अर्थमें.

**गो. शरद् :** ‘गुण-स्वरूपभेदेन’ बीचमें डाल रख्यो है यासुं “यत्प्रकारेण, गुण-स्वरूपभेदेन, भगवान् भुवि आविर्भवेत् तत्प्रकारेण, गुणस्वरूपभेदेन, भगवान् तेषां फलं भवेत्” ऐसो अर्थ प्रायः सब व्याख्याकारनने कियो है. प्रकारपे सबको भार अधिक है.

**गो.श्या.म.:** आविर्भावको प्रकार गुणस्वरूपभेद है और गुणस्वरूपभेदको प्रकार अनिर्दिष्ट है. एक सम्भावना ऐसी है. पर ये सम्भावना जैसे है ऐसे ये सम्भावना भी सहज मानी जा सके है ... जैसे उपनिषत्में “तस्य तावदेव चिरं यावन्नविमोक्षयेत् अथ सम्पश्येत्”. वो प्रकट नहीं भयो है उतनी देर ही

फल नहीं है, प्रकट हो गयो तो फल हो गयो. या तरहके प्रयोग भी होवे हैं.

**परेश शाह :** सिद्धान्तमुक्तावलीकी टीकामें श्रीगुसांईजी लिख रहे हैं के “तेषां मध्ये यं जीवं येन प्रकारेण प्रभुः उद्दिधीर्षुः भवति तत्प्रकारक-गुरुपदेशादिभिः...”.

**गो.श्या.म.:** तेरी बात सच है. श्रीगुसांईजी जहां ये आज्ञा कर रहे हैं वहां प्रकारकी ही बात है. वा ठिकाने यदि मैं दूसरो अर्थ करूं तो वो उचित नहीं है. पर मैं वा बातपे ध्यान दिलानो चाह रह्यो हूं के ‘यथा’सु गुणस्वरूपके भेदसु फल होवे है ऐसे प्रकारभेद ही एक अर्थ हर बखत नहीं होवे है. यदि पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदके श्लोककी श्रीगुसांईजीने वा तरहसुं व्याख्या करी होती तो अपन बंध जाते. पर जब श्रीगुसांईजीने व्याख्या नहीं करी है तो श्रीमहाप्रभुजीके वचनके शब्दमर्यादासु दोनों अर्थ निकल सके है. दूसरो अर्थ निकल सके है वाके कारण पहेलो अर्थ केंसल नहीं होवे है.

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** पर असित जो अर्थ कह रह्यो है वो अर्थ या पंक्तिको निकल नहीं रह्यो है.

**असित शाह :** “तथा तेषां फलं भवेत्”को अर्थ क्या होयगो ये बताओ.

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** “यथा आविर्भवेद् भुवि”.

**असित शाह :** फल इस्लेवन्द है तो “तेषां फलम्” नहीं कहते. “भगवानेव हि फलम्” एब्सोल्युट स्टेटमेंट हो जातो.

**जगदीश शेठ :** मैं तो याको अन्वय या तरहसुं समझ्यो हूं : “गुणस्वरूपभेदेन यथा भुवि आविर्भवेत् तथा स भगवानेव हि तेषां फलं भवेत्”.

**गो.श्या.म. :** ये भी एक सम्भावना है.

**गो. योगेश :** भक्तके भावानुसार ठाकुरजीमें फलकच्युएशन् आवे है ऐसे कही. या सन्दर्भमें प्रश्न होवे है के ठाकुरजीकु अपन निर्गुणभावसुं पुष्ट करें हैं. पर जब सेवा करवेवालो साधनावस्थामें है तब वाके भावमें धर्मार्थिता, अर्थार्थिता जैसे उतार-चढ़ाव आ सके हैं. ऐसी स्थितिमें निर्गुणभावसुं पुष्ट भये ठाकुरजी कैसे रिस्पोन्स् देंगे ?

**गो.श्या.म. :** फलकच्युएशन् कई तरहके होवे हैं. हर बार ऐसो नहीं होवे है के अपन फलकच्युएट्र भये मतलब गिर ही पड़े. थोड़े लड़खड़ाये, फिर संभल गये.

**गो. योगेश :** वार्तामें आवे है के ठाकुरजीकु पंचामृत स्नान कराये!

**गो.श्या.म. :** उनको फलकच्युएशन् इतनो जबरदस्त होयगो के पंचामृत कराने पड़े.



# પુષ્ટિમાર્ગીય ફળ વિચાર :

## ‘સિદ્ધાન્તરહસ્ય’ ગ્રન્થના સન્દર્ભમાં

પરેશ શાહ

ફલાત્મા ફલસંપ્રાપ્ત્યૈ પ્રાદૂર્ભૂય સ્વસેવિનામ્ ।  
સાધનં સ્વયમેવાસિત્ સ કૃષ્ણોસ્તુ મમ પ્રભુઃ ॥

ઉપક્રમ :

“ક્રીડાર્થમ્ આત્મનઃ ઇદં ત્રિજગત્ કૃતમ્” આત્મરમણશીલ સચ્ચિદાનન્દ બ્રહ્મની અદ્વૈતસત્તા તથા ચેતનાથી જ પોતાની ક્રીડાર્થ અનન્તવિધ નામ-રૂપોનાં દ્વૈતમાં સૃષ્ટિમાં અભિવ્યક્ત થઈ છે. આ સૃષ્ટિલીલામાં અંશતયા વ્યુચ્ચરિત જીવાત્મા અવિદ્યાજન્ય કુધી પ્રયુક્ત “તે સ્વામ્યન્તુ તત્ર કુષિયો અપરે ઈશ કુર્યુઃ” હોવાથી આત્મક્રીડાથી વિપરીત ઈન્દ્રિયવિષયોની સાથે રમણ કરે છે. બ્રહ્મદ્રષ્ટિથી જોડે પ્રાણીમાત્રની ક્રીડા કે રતિ આત્મક્રીડા કે આત્મરતિ જ છે છતાં જીવદ્રષ્ટિથી જીવનાં કુધીપણાથી એટલે સ્વત્વ-સ્વામિત્વ બુદ્ધિથી વિષયવ્યામોહ આત્મરતિભાવ મૂલક ભક્તિથી વિપરીત વિષયરતિ જ છે.

પુષ્ટિજીવોનું મુખ્ય કર્તવ્ય ‘ભગવદ્રૂપસેવા’ અને ફળ ‘ભગવાન્ એવ’ છે તેથી પંચપર્વા અવિદ્યાને કારણે વિષયાસક્તિથી ગ્રસ્ત એવા પુષ્ટિજીવોને આચાર્યચરણે શરણાગતિ, સમર્પણ, ભગવત્સેવા કે કથા જેવા સાધ્યોપાયોના અવલમ્બન દ્વારા વિષયરતિથી મુક્ત કરાવી ભગવદ્દરતિ કે ભગવદભિમુખતા પ્રકટ કરાવે છે.

તાત્ત્વિક દ્રષ્ટિએ કે સિદ્ધોપાયની દ્રષ્ટિએ જીવ-જગત પરમાત્મામાં સમર્પિત જ છે. જેમ ઉપનિષદ્માં કહેવાયું છે “આ આત્મા સર્વે પ્રાણીઓના અધિપતિ છે. બધા પ્રાણીઓના રાજા છે. જેવી રીતે રથના ચક્રના મધ્યભાગમાં અને રથના ચક્રનાં ઘેરાવામાં સર્વે આરાઓ સમર્પિત થયેલા છે તેવીજ રીતે સર્વ જીવો સર્વ દેવો સર્વ લોક અને ભૂતમાત્ર આ પરમાત્માને સમર્પિત છે.” (બૃહ.ઉપ.૨.૫.૧૫). કર્તવ્ય કે સાધ્યોપાયની દ્રષ્ટિથી ગીતાજી અને શ્રીભાગવતજી માં નિર્દેશ છે પરન્તુ શ્રીઆચાર્યચરણ ઉપદિષ્ટ અને તેથી પુષ્ટિજીવના સ્વત્વ-સ્વામિત્વનો ભગવત્સમ્બન્ધ થવાથી ફલાત્મક અને ફલસાધક છે. “એવં ધર્મેઃ મનુષ્યાણામ્ ઉધ્ધવ ! આત્મનિવેદિનાં મયિ સજ્જાયતે

ભક્તિઃ કો અન્યો અર્થો અસ્ય અવશિષ્યતે” (ભાગ.પુરા.૧૧૧૯૮૨૪).

દ્રવ્યાદ્વૈત, ક્રિયાદ્વૈત અને ભાવાદ્વૈત ની દ્રષ્ટિથી પણ દ્રવ્યના દ્વૈતને કારણે સંસાર પેદા થાય છે. આ સંસારને શ્રીઆચાર્યચરણ મિથ્યા કહે છે, કારણ અહંતા - મમતાથી નિયમકૃત છે. નિબન્ધના મંગલાચરણમાં “યતો જગત્ કીડતિ” તે ક્રિયાનો દ્વૈત છે કારણ કર્તૃકર્મબુદ્ધિ છે પરન્તુ સમર્પણની ક્રિયાથી “સ્વકર્મણા તમભ્યર્થ્ય સિદ્ધિં વિન્દતિ માનવ” (ભગ.ગીતા.૧૮૧૪૬) “યદ્ બ્રહ્મણિ પરે સાક્ષાત્ સર્વકર્મસમર્પણમ્ મનોવાક્તનુભિઃ પાર્થ ક્રિયાદ્વૈતં તદુચ્યતે” (ભાગ.પુરા. ૭૧૫૬૪) દ્રવ્યાદ્વૈત અને ક્રિયાદ્વૈત ની સિદ્ધિ થાય છે તે સમર્પણની સફલતા છે અને ભાવાદ્વૈતની સિદ્ધિ “ઉપાધિનાશે વિજ્ઞાને બ્રહ્માત્મત્વાવબોધને” (સિ.મુ.૧૩)એ અનુભૂતિની સફલતા છે.

**ગ્રન્થનું સ્થાન અધિકારી અને પૂર્વાપર સંગતિ :**

કોઈ પણ ગ્રન્થના અધિકારીના વિચાર પૂર્વે ગ્રન્થનો સ્વભાવ જેમકે તત્ત્વ, લીલા, વાદ કે કર્તવ્યોપદેશ માંથી કયા પ્રકારનો ગ્રન્થ છે તે સમજી તે ગ્રન્થનો અધિકારી નક્કી થાય.

ષોડશગ્રન્થનું મુખ્ય પ્રયોજન પુષ્ટિજીવને પુષ્ટિમાર્ગ પર ચાલવામાટે કર્તવ્યોપદેશનું નિરૂપણ છે જેથી તેને શરણાગતિ સેવાત્મિકાભક્તિ કે કથાત્મિકાભક્તિ ની પ્રાપ્તિ થાય. તે કર્તવ્યોપદેશ પૈકી પણ શરણાગતિ સમર્પણ સેવા અને ભક્તિ એ રીતે ઉપદેશો નિરૂપાયેલા છે. તે ઉપદેશોને અનુરૂપ વર્ગીકરણ નીચે મુજબ લઈ શકાય.

**શરણાગતિ** — બાલબોધ, વિવેકધૈર્યાશ્રય, કૃષ્ણાશ્રય, પઞ્ચપદ્યાનિ

**સમર્પણ** — સિદ્ધાન્તરહસ્ય, નવરત્ન, અન્તઃકરણપ્રબોધ, નિરોધલક્ષણ

**સેવા** — સિદ્ધાન્તમુક્તાવલી, પુષ્ટિપ્રવાહમર્યાદા, સંન્યાસનિર્ણય, સેવાફલ

**ભક્તિ** — યમુનાષ્ટક, ચતુશ્લોકી, ભક્તિવર્ધિની, જલભેદ

આ સામાન્યરીતે વર્ગીકરણ કર્યું છે. અન્ય ગ્રન્થોમાં તેનો ઉપદેશ ન હોય તેવું નથી. જેમ શરણાગતિનો ઉપદેશ નવરત્નમાં પણ અપાયેલો છે. ‘પૂર્વોત્તરગ્રન્થ સંગતિ’ની દ્રષ્ટિએ યમુનાષ્ટક એ શ્રીયમુનાજીની સ્તુતિ છે તદુપરાન્ત મુખ્ય ઉપદેશ નિર્ગુણભાવનો છે. નિર્ગુણભાવ રહિત સેવા ફલાત્મિકા થઈ શકતી નથી. બાલબોધમાં જોકે મુખ્યત્વે મોક્ષપુરુષાર્થનું નિરૂપણ કર્યું છે છતાં “સમર્પણેનાત્મનો હિ તદીયત્વં

ભવેદ્ ધ્રુવમ્ ...કેવલશયેત્ સમાશ્રિતઃ” એ વચનથી સમર્પણથી તદીયપણું અને શરણાગતિ નો ઉપદેશ આપ્યો. અને ભક્તિ મોક્ષપુરુષાર્થાન્તર્ગત નથી એમ પણ સિદ્ધ કર્યું. બાલબોધમાં સૂચિત સમર્પણ અને શરણાગતિ ને સિદ્ધાન્તમુક્તાવલીમાં પુષ્ટિજીવે કૃષ્ણની શરણાગતિપૂર્વક સમર્પણાત્મિકા સેવા દર્શાવીને ભક્તિને પંચમપુરુષાર્થ બતાવ્યો. પુષ્ટિપ્રવાહમર્યાદામાં માર્ગ-સર્ગ-ફળ ભેદ બતાવી પુષ્ટિજીવોનું સાધન ભગવાનની પુષ્ટિ છે, કર્તવ્ય ભગવાનની સેવા છે અને ફળ પણ ભગવાનજ છે એમ કહી સેવાની ફળરૂપતા બતાવી. સિદ્ધાન્તમુક્તાવલીમાં “કૃષ્ણસેવા સદા કાર્યા” સ્વસિદ્ધાન્ત છે એને તે સેવા કેવી રીતે કરવી તેનો ઉપદેશ આપ્યો. સિદ્ધાન્તરહસ્યમાં ‘સમર્પણાત્મિકા સેવા’ અને તેથી “સર્વેષાં બ્રહ્મતા” કહીને સમર્પણની ફળરૂપતા બતાવી. નવરત્ન ગ્રંથમાં સમર્પણના સિદ્ધાન્તના નિર્વાહમાં આવતી તકલીફોના નિવારણનું નિરૂપણ કર્યું.

### સિદ્ધાન્તરહસ્ય અને અન્યગ્રંથની પરસ્પર સંગતિ :

સિદ્ધાન્તરહસ્યમાં મુખ્યત્વે સમર્પણનો સિદ્ધાન્ત કહેવાયેલો છે. તેની સાથે બીજા પાંચ ગ્રંથો સીધી રીતે સંકળાયેલા છે : યમુનાષ્ટક, સિદ્ધાન્તમુક્તાવલી, ચતુશ્લોકી, ભક્તિવર્ધિની અને નિરોધલક્ષણ. આમાં સિદ્ધાન્તમુક્તાવલી અને સિદ્ધાન્તરહસ્ય અન્યોન્યાશ્રિત છે. અન્ય ગ્રંથોની સંગતિ ઉદાહરણથી સમજ શકાશે. નામ-રૂપ-કર્મના (દેહ અન્તઃકરણ...આલોક પરલોક) સમર્પણરૂપ સાગરને તરવામાટે (સિદ્ધાન્તરહસ્ય) સેવાસિદ્ધાન્તરૂપ નૌકાથી (સિદ્ધાન્તમુક્તાવલીથી) અને નિર્ગુણભાવના હલેસાથી (યમુનાષ્ટક) નૌકા ચલાવવી છે. પરંતુ તે નૌકા કોઈ ધર્માર્થકામમોક્ષના કિનારા પર બંધાઈ ન જાય નહીં તો તે સેવાનું ધર્મ, અર્થ, કામ કે મોક્ષ ના શેષપણું થઈ જવાથી પુષ્ટિભક્તિમાર્ગીય સેવા નહીં કહેવાય. તેથી સેવા સેવાને માટેજ અથવા ભક્તિ ભક્તિને માટેજ (ચતુશ્લોકી) છે એમ સમજાવે છે. ભક્તિવર્ધિની એ નિરોધની દિશામાં લઈ જનાર દિશાસૂચક છે અને કૃષ્ણમાં સેવાત્મિકા નિરુદ્ધતા (નિરોધલક્ષણ) એ નૌકાનું ગન્તવ્ય છે.

### ગ્રંથનો વિષય અને ગ્રંથનો સારાંશ :

ગ્રંથની રચના ગોકુલમાં શ્રાવણસુદ એકાદશીની અર્ધરાત્રિએ થઈ હતી. માર્ગનું રહસ્ય સાક્ષાત્ ભગવાને પ્રકટ થઈને શ્રીમહાપ્રભુજીને સંભળાવ્યું છે. ગ્રંથનું નામ શ્રીમહાપ્રભુજીએ ‘સિદ્ધાન્તરહસ્ય’ આપ્યું છે. અહીં રહસ્ય શું છે ? નિવેદનના સમયે પોતાની સાથે સમ્બન્ધિત વસ્તુઓનો સમ્બન્ધ પ્રભુની સાથે બ્રહ્મની સાથે થઈ જાય છે. “જેઓએ પોતાના પ્રાણ પૂર્ણપણે શ્રીકૃષ્ણાધીન કરી દીધા છે તેઓને કઈ વાતની ચિન્તા હોય ?” નવરત્નના આ વચનથી તથા સિદ્ધાન્તરહસ્યના “બ્રહ્મસમ્બન્ધ કરવાથી બધાના દેહ અને જીવના સર્વ પ્રકારના દોષો નિવૃત્ત થઈ જાય છે.” આ વચનને પરસ્પર

સમ્બન્ધ જોડવાથી પગ્યાક્ષરમન્ત્ર દ્વારા આત્મનિવેદન અને ગદ્યમન્ત્ર દ્વારા વિયોગ રૂપી અગ્નિના સ્મરણપૂર્વક આત્મીય સઘળા પદાર્થોનું સમર્પણ એ બન્નેનું જોડાણ ‘બ્રહ્મસમ્બન્ધ’ કહેવાય છે. આ સિદ્ધાન્તનું રહસ્ય આપણને આ ગ્રન્થમાં મળે છે. પગ્યાક્ષર અને ગદ્યમન્ત્ર ના અંશને ગોપ્ય હોવાને કારણે છોડી દઈને સમર્પણના સિદ્ધાન્તના ભગવાને કહેલા આ રહસ્યને અહીં અક્ષરશઃ શ્રીમહાપ્રભુજીએ પુનઃ કહેલ છે.

જીવ તો અનેક પ્રકારના દોષોથી ભરેલા છે પરંતુ બ્રહ્મસમ્બન્ધ થવાથી તે દોષોનિવૃત્ત થાય છે. એટલે કે પુષ્ટિજીવદ્વારા કરવામાં આવેલ ભગવતત્ત્વેવામાં એ દોષો બાધક થઈ શકતા નથી. બ્રહ્મસમ્બન્ધ સિવાય અન્ય કોઈ પણ પ્રકારે એ દોષોની નિવૃત્તિ શક્ય નથી. બ્રહ્મસમ્બન્ધનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ અસમર્પિત વસ્તુત્યાગ કરવાથીજ સિદ્ધ થાય છે. જેણે આત્મનિવેદન કર્યું છે તેણે પોતાના બધાજ કામ-કાજ સમર્પણ પૂર્વક ચલાવવા જોઈએ. પ્રભુને અર્ધભુક્ત વસ્તુનું સમર્પણ ન કરવું. તેથી આપણા ઉપભોગ પહેલાજ સમર્પણ કરવું આવશ્યક છે. પુષ્ટિભક્તિમાર્ગીય સાધનાપ્રણાલીમાં દાનનો સિદ્ધાન્ત ન હોઈ સમર્પણનો સિદ્ધાન્ત હોવાથી ભગવાનની આજ્ઞાનો ભંગ થતો નથી. જે રીતે લોકમાં સેવકનો વ્યવહાર હોય છે કે સ્વામીએ ઉપભોગ કરેલ વસ્તુઓનોજ ઉપયોગ કરે છે તે રીતે પ્રભુને બધું સમર્પીનેજ કરવું જોઈએ. તેથી બધા દોષોની નિવૃત્તિ અને બ્રહ્મભાવની પ્રાપ્તિ થાય છે જે ગંગાજીના દષ્ટાન્તથી સમજી શકાય છે. (ગો.શ્રીશ્યામમનોહરજીની ષોડશગ્રન્થ ભૂમિકા)

### ગ્રન્થમાં ફળનો વિચાર વિવિધ ટીકાકરોનાં મતે :

ટીકાકારોના મત જોતાં એવું જણાય છે કે પ્રથમ શ્લોક “શ્રાવણસ્યામલે પક્ષે....તદક્ષરશઃ ઉચ્યતે” તેની ઉત્થાનિકામાં ભગવદભિપ્રેત હોવાથી ‘ફળાત્મક’ છે અને “સેવકાનાં યથા લોકે...સર્વેષાં બ્રહ્મતા તતઃ” તે ફળરૂપતાનું નિરૂપણ છે. જેમ કોંક્રીટના પુલમાં સીમેન્ટ પથ્થર સળીયા પાણી તે તેના આત્મક છે અને કોંક્રીટને સંસ્કાર કરવાથી પુલરૂપે તૈયાર થાય છે તે તેની ફળરૂપતા છે તેમ અહીં જાણવું.

શ્રીગોકુલનાથજી : શ્રીગોકુલસ્વામીએ સ્વમનોભિલષિત પ્રકારક શુદ્ધ પુષ્ટિભક્તિમાર્ગને પ્રકટ કરવાની ઈચ્છા કરી. આપશ્રીના સ્વમુખારવિન્દરૂપ આચાર્યમાંજ માર્ગના પ્રાકટ્યનું સામર્થ્ય જાણીને ભુવિ ઉપર તે માર્ગ પ્રકટ કરવાની આજ્ઞા આપી. ત્યારે શ્રીઆચાર્યજીએ પ્રભુનો અભિપ્રાય જાણીને શ્રીગોકુલસ્વામીની આજ્ઞાના પ્રકારથીજ ભૂતલ પર પ્રકટીને ભગવદભિમતપ્રકારક ભક્તિમાર્ગને પ્રકટ કર્યો.

શ્રીપુરુષોત્તમજી : શ્રીમદ્ધ્યાર્યચરણોએ ભગવાનની આજ્ઞાથી પ્રભુને અભિપ્રેત ભક્તિમાર્ગ

પ્રકટ કર્યો.

શ્રીહરિરાયજી : ભગવાન્ હરિએ તે કાલમાં આવિર્ભૂત થઈને પુષ્ટિભક્તિમાર્ગનું પ્રકાશન કર્યું. આચાર્યના સમ્બન્ધથી ( પુષ્ટિજીવનું ) કૃણ છે. શ્રીઆચાર્યચરણ અદેયદાન-દક્ષ છે.

શ્રીગિરધરજી : શ્રીમદ્વૃન્દાવનચન્દ પોતાનું રાસાદિકીડાડપ અતિ અલૌકિક અનુભાવને પ્રકટ કરવાની ઈચ્છાથી પોતાના મુખારવિન્દ રૂપ શ્રીમહાપ્રભુજી રૂપે પ્રકટીને પોતાને ( પ્રભુને ) અભિવશિત પુષ્ટિમાર્ગ પ્રકટ કરવાની આજ્ઞા આપી.

ચારે ટીકાકારોના તાત્પર્યનો વિચાર કરતાં એવું લાગે છે કે પ્રભુની ઉત્કંઠા/અભિલાષા છે માર્ગ પ્રકટ કરવાની. સમર્પણનું રહસ્ય તો ગીતાજીમાં પણ કલ્પું હતું “મારામાં મન રાખનાર થા, મારો ભક્ત થા, મને નમસ્કાર કર.” ( ભગ.ગીતા ૧૮.૬૫ ) ભાગવતજીમાં પણ “દારા ગૃહ પુત્ર પ્રાણ આલોક અને પરલોક નો ત્યાગ કરીને જે મારે શરણે આવ્યા હોય તેમનો હું ત્યાગ કેવીરીતે કરું ?” ( ભાગ.પુરા.૧૧.૩ ) પરન્તુ સમર્પણના પ્રકારનું રહસ્ય આવૃત્ત હતું તે અહીં પ્રભુએ અનાવૃત્ત કર્યું. તે ગુપ્તતમ્ રહસ્ય પ્રકટ કર્યું તેથી શ્રીઆચાર્યચરણને પણ તેવી ઉત્કંઠા છે. તેથી સિદ્ધાન્તરહસ્ય ‘કૃણાત્મક’ છે જેને શ્રીહરિરાયજી કહે છે “ફલં પ્રથમતઃ દેયમ્ ઉત્તરે સાધને ફલમ્”.

**“સેવકાનાં યથાલોકે...સર્વેષાં બ્રહ્મતા તતઃ”.**

શ્રીગોકુલનાથજી : ‘તતઃ’ એટલે તાદૃકપ્રકારક વ્યવહાર કરવાથીજ સર્વેષાં ભગવદીઓને બ્રહ્મતા થાય છે. બ્રહ્મતા એટલે “નિર્દોષં હિ સમં બ્રહ્મ” એ વચનથી ભક્તિમાર્ગમાં નિવેદન પછી બધાનું નિર્દોષપણું અને સમત્વપણું જણાય છે. બધાનું સજાતીયપણું એટલે ભગવદીયપણું થાય છે એમ અર્થ કર્યો.

શ્રીરઘુનાથજી : જે પ્રકારથી સેવકોના પણ નિવેદન વ્યવહાર સારી રીતે સિદ્ધ થાય તેને માટે પોતેજ સમર્પીને બધું કરવું. આમ કરવામાં બધાનું ‘બ્રહ્મતા’ એટલે નિર્દોષપણું થશે એમ અર્થ કર્યો. ‘તતઃ’ એટલે બ્રહ્મતા પછી સ્થિત દોષોનું પણ ગંગાડપ થઈ જવાથી ગંગાતુલ્ય થશે એમ અર્થ કર્યો.

શ્રીકલ્યાણરાયજી : સેવકોએ પદાર્થનો ભગવદ્વપયોગ કરીનેજ બધા કાર્ય કરવા. આ પ્રકારે કરવામાં સ્વધર્મવડે સ્થિત હોવાથી ‘તતઃ’ તે વ્યવહારથીજ, સેવકધર્મના વ્યવહારથીજ ‘બ્રહ્મતા’ એટલે “નિર્દોષં હિ સમં બ્રહ્મ” એ વચનથી બ્રહ્મતુલ્યથી નિર્દોષપણું અને વૈષ્ણવપણાથી સમત્વપણું થાય છે. ત્યાં અનુભૂય દોષ હોવા છતાં ગંગાજીના સમ્બન્ધથી જેમ ગંગાડપ વ્યવહાર કરીએ છીએ તેમ બ્રહ્મસમ્બન્ધ સમ્પન્ન થવામાં તેઓનાં ધર્મોનું ભગવદીયપણું અને નિર્દોષપણાથી વ્યવહાર થાય છે.



શ્રીવ્રજોત્સવજી : જેનો જે પ્રકારે ઉપયોગ સમ્પન્ન થાય તેમ સ્વપ્રભુમાં ઉપયુક્ત કરીને તેના ઉપયોગનાં અનવસરમાં પ્રભુદત્ત હોવાથી પૂર્વોક્ત ધર્મરૂપથી ( સેવકધર્મ ) પ્રભુભુક્ત પદાર્થથીજ તે વસ્તુમાત્રનો ઉપયોગ કરી દેહનિર્વાહાદિક અન્યદ્ ઐહિક કાર્ય કરવું. નહીં કે ભોગાદિભાવ વડે. એમ સ્વમાર્ગ પ્રકાર કહ્યો. આ સ્થિતિમાં બધું નિર્દુષ્ટપાણાને થશે. ‘સર્વેષાં’ પહેલા કહેલા ( આત્મનિવેદીઓના ) દેહપ્રાણેન્દ્રિયાદીઓનાં ‘તતઃ’ તેનાથી એટલેકે તાદૃકપ્રકારક સ્થિતિ અનન્તરં ‘બ્રહ્મતા’ થશે. બધામાં તદીયત્વની સ્ફૂર્તિથી પ્રભુને માટેજ ઉપયોગ કરવાથી પ્રાકૃત અધ્યાસ નિવૃત્તિથી સચ્ચિદાનન્દરૂપતા એટલે તિરોહિતાનન્દની પ્રકટત્રિતયાત્મકતા થાય છે. એજ વાત સિદ્ધાન્તમુક્તાવલીમાં “તતઃ સંસાર દુઃખસ્ય” એમ કહીને “વસ્તુ સ્વભાવાત્ ભવતઃ” એમ કહ્યું.

શ્રીગોકુલોત્સવજી : બ્રહ્મસમ્બન્ધ કયાં પછી ભગવાનમાં બધી વસ્તુઓનો વિનિયોગ કરીને સેવા કરવાથી દેહાદિમાં ભગવદીયપાણાની ભાવનાથી બધે ભગવદાવેશ થવાથી ‘બ્રહ્મતા’ થશે. કામાદયો દોષરૂપા છે ત્યાં પણ ભગવદીયોને ભગવાનમાં કામ થશે તેના વિરોધમાં ક્રોધ આવશે. આ પ્રકારે ક્રમે-ક્રમે ભગવત્સમ્બન્ધમાં બ્રહ્મતાજ થશે. દોષનિવૃત્તિની પ્રતીક્ષા વ્યર્થજ છે.

શ્રીહરિરાયજી : લોકમાં જેવી રીતે સેવકનો સ્વામીની આજ્ઞાથી લૌકિક-વૈદિક વ્યવહાર સિદ્ધિ કરે છે તે પ્રકારે નિવેદિત પદાર્થોનું ફરીથી સમર્પણ કરીનેજ બધું કાર્ય કરવું. તે ભગવત્સમ્બન્ધથી દ્રઢભાવ( સેવકભાવ ) સિદ્ધ થશે. તતઃ ભગવત્સમ્બન્ધથી નિર્દોષ અને સમતાની સિદ્ધિ થશે. સેવામાં બધી વસ્તુ અને આત્મીયોનાં ઉપયોગવડે ફળની ( બ્રહ્મતા ) સિદ્ધિ થશે એમાં સંશય ન કરવો. જેને સર્વાંશકૃત સમ્બન્ધ છે તેને આ ફળ કહી રહ્યા છે.

શ્રીવિદ્ઢલેશ્વરજી : શ્રીઆચાર્યચરણે શ્રીમદ્ગિરિધારીજીને પૂછ્યું “સેવકનો વ્યવહાર કેવો હોવો જોઈએ ?” ત્યારે પ્રભુએ કહ્યું “તથા કાર્ય...તતઃ” જેવી રીતે લોકમાં સેવકનો વ્યવહાર હોય છે તેવી રીતે બધાં કાર્યો સમર્પીને કરવાં. આ પ્રકારે મારામાં આશ્રય રાખીને કાર્ય કરવાથી બ્રહ્મસ્વરૂપ થશે એટલે કે શુદ્ધ થશે. મારામાં ભજનથી મત્સદૃશ થશે. જેવી રીતે ગંગામાં અપવિત્ર જલનું ગંગામાં અન્તઃપાતિ થવાથી ગંગાપણું થાય છે અને પહેલાના દોષો ગણાતાં નથી તેવી રીતે અહીંયા પણ ભગવત્સમ્બન્ધ થવામાં પંચવિધ દોષો હોવા છતાં દોષપણું મનાતું નથી.

શ્રીપુરુષોત્તમજી : સેવા જે કરે તે સેવક. જેવી રીતે લોકમાં સેવકોનો વ્યવહાર પ્રસિદ્ધ હોય છે તેમ સમર્પીને કરવું. આ પ્રકારે સર્વદોષ નિવૃત્તિનું સ્વરૂપ કહ્યું પછી દોષની ફરીથી ઉત્પત્તિ ન થાય તે માટે પછી સમર્પણની ક્રિયા દોષ વગરના પ્રકારથી કહી વિરુદ્ધવાક્યવ્યવસ્થાના આજ્ઞાનિર્વાહ પ્રકારને અને સ્વધર્મનું પાલન દોષરહિત

થાય તેમ ઉપદેશીને તેના કૃળને કહી રહ્યા છે. “સર્વેષાં બ્રહ્મતા તતઃ” ‘તત્’ શબ્દથી પૂર્વોક્ત સાધનસમૂહનો પરામર્શ કર્યો. તે પ્રકારે કહેવાયેલી રીતથી બ્રહ્મસમ્બન્ધ આરંભ કરીને એ સાધન કરવાથી બધા આત્મનિવેદીઓને ‘બ્રહ્મતા’ એટલે સર્વત્ર દોષરાહિત્ય અને સામ્ય થશે. જો પૂર્વોક્ત આજ્ઞાઓમાં અપ્રમાદ હોય તો “નિર્દોષં હિ સમં બ્રહ્મ” એમ બ્રહ્મની જેમ તેવા થઈ જવાય. તેથી કવિ વિગેરે દોષો તેઓમાં ન હોવાથી તેમનાથી કરાયેલી સેવા પ્રભુદ્વારા સુખેથી અંગીકાર થવાથી કૃળવાળી થશે.

શ્રીપુરુષોત્તમજી ‘ગંગાજી’ના દૃષ્ટાન્તથી એક બીજો અર્થ કરી રહ્યા છે. દૃષ્ટાન્તથી કૃળબોધકતા અભિપ્રેત છે. ભાવિદોષોના અસંસર્ગને માટે જે સમર્પણ કહેવાયું છે તે બે પ્રકારે છે : ભગવદ્ધર્માનુરોધિ અને લૌકિકવ્યવહારાનુરોધિ. તેમાં ભગવદ્ધર્માનુરોધિ સમર્પણ કરવામાં બ્રહ્મતારૂપ ફલની પ્રાપ્તિ છે. લૌકિકવ્યવહારાનુરોધિ કરવામાં તો ગંગાજીમાં એકીકૃત અપવિત્ર જલની જેમ તે દોષોની નિવૃત્તિ માત્ર થશે. તેથી સેવાફલગ્રન્થોક્ત મધ્યમ-જઘન્ય ફલોપયોગી સેવોપકારપણાની ક્રમથી સિદ્ધિ થશે. તેથી બીજા માર્ગમાં દોષની નિવૃત્તિમાટે બીજા સાધનની અપેક્ષા હોય છે તેમ અહીં સેવાધિકાર સંપાદક સંસ્કારનું આનુષંગિક ફલ છે આથી આને ‘સિદ્ધાન્તરહસ્ય’ પણ કહ્યું.

શ્રીગિરિધરજી : ‘તતઃ’ તેના પછી પહેલા સ્થિત ગુણો અને દોષો નું બ્રહ્મતા એટલે ભગવદીયપણાથી ભગવદ્ગૂપતાજ થાય છે. ભગવદીયોની ભગવદ્ગૂપતા તો ભગવાનદ્વારાજ કહેવાયેલી છે. “યે ભજન્તિ તુ માં ભક્ત્યા મયિ તે તેષુ ચાપ્યહમ્” ભગવદીયપણું થવાથી તેમાં પુનર્દોષપણું નથી.

શ્રીલાલુભટ્ટજી : આમ પૂર્વોક્ત પ્રકારથી ભગવાનને ભજવાવાળાના ફલને કહી રહ્યા છે. “સર્વેષાં બ્રહ્મતા તતઃ” આત્મા સાથે સમર્પિતોના દેહાદિ દારાગારપુત્રાદિઓની બ્રહ્મતા થાય છે. આત્મનિવેદીઓમાં સચ્ચિદાનન્દત્વરૂપ અક્ષરબ્રહ્મના ધર્મો આવિર્ભૂત થાય છે. ગંગાજીના ઉદાહરણથી બધાનું બ્રહ્મતુલ્ય હોવાથી વાર્ણશ્રિમાદિના ગુણ-દોષનો વિચાર નથી.

શ્રીશાચાર્યજી : સમર્પણ કરવાથી બધાની ‘બ્રહ્મતા’ નિર્દોષાત્મકતા કહી.

પૂર્વોક્ત બધાટીકાકારોના મતો વિચારતાં એવો અર્થ લાગે છે કે પૂર્વોક્ત સાધનસમૂહવડે સમર્પણ કરવાથી ‘બ્રહ્મતા’ એટલે નિર્દોષપણું અને સમતા સિદ્ધ થશે. તેથી તેમના દ્વારા કરાયેલી સેવા પ્રભુ અંગીકાર કરશે. અન્ય બે ટીકાકારોના મતે ‘બ્રહ્મતા’થી સચ્ચિદાનન્દાત્મક અક્ષરબ્રહ્મના ધર્મો આવિર્ભૂત થાય છે. ‘સિદ્ધાન્તમુક્તાવલી’માં કહ્યું છે તે પ્રકારે “તતઃ સંસાર દુઃખસ્ય નિવૃત્તિઃ બ્રહ્મબોધનમ્”.

વાતાસિંગતિનો વિચાર ભગવદ્ધર્માનુરોધિ અને લૌકિકવ્યવહારાનુરોધિ સમર્પણના (શ્રીપુરુષોત્તમજી અનુસાર) પરિપ્રેક્ષ્યથી :

### ભગવદ્ધર્માનુરોધિ સમર્પણ :

સહજ ભગવત્પ્રેમવશાત્ અથવા ભગવત્સુખના વિચારથી કરવામાં આવતું સમર્પણ ભગવદ્ધર્માનુરોધિ કહેવાશે.

‘એસે કરત રાત્રિ પ્રહર ડેઢ ગઈ સોઈ રહે પરન્તુ છાતીમેં આગિસી લાગી જો આજુ મેરે ઠાકુર ભૂખે રહે... જબ જજમાનને દક્ષિણા દિયો તબ વેગિ હી કછુ ધરિયે...ક્યોં હૃદયમેં બહોત વિરહ હતો જો પ્રભુ ભૂખે હૈ યા ભાવસોં એક રુપૈયા લે સામગ્રી લેનેકો બજારમેં ગયે...’ (વાર્તા - ૮૧૮૪ ગદાધરદાસજી)

‘સો વૈષ્ણવને હજાર રુપૈયાકી થેલી મેવા ફરોસકો નિકરી દિયો...પાછે શેઠને ઉત્થાપન સમૈ કિવાડ મંદિરકે ખોલે તો શ્રીઠાકુરજી સિંઘાસન ઉપર હાથમેં ખરબૂજા લિયે બિરાજે હૈ. સો શેઠ મનમેં બહોત પ્રસન્ન ભયે. ઔર વૈષ્ણવસો કત્થો વૈષ્ણવજી ! તુમ આજુ ખરબૂજા એસે સ્નેહસો લાયે જો શ્રીઠાકોરજી અપને શ્રીહસ્તકમલમેં લિયે બિરાજે હૈ.’ (વાર્તા - ૧૨૫૧૨૨૫ એક શેઠ ખરબૂજાવારો)

### લૌકિકવ્યવહારાનુરોધિ :

જેવી રીતે લોકમાં સેવકની કર્તવ્યપરાયાણમાં સહજતા હોય તે રીતે કર્તવ્યબુદ્ધિથી કરવામાં આવતું સમર્પણ ‘લૌકિકવ્યવહારાનુરોધિ’ કહેવાય. (સેવકાનાં યથા લોકે વ્યવહાર પ્રસિધ્ધતિ).

ન્યારે શ્રીઅક્કાજીએ બીજીવાર સામગ્રી પધરાવી ત્યારે બીજે દિવસે વહેલી સવારે રાજભોગ પહોંચી પછી પચ્ચનાભદાસજીએ પ્રભુને પૂછ્યું ‘જો મહારાજ આપકો શ્રીઆચાર્યજીકે ઘર પધારિવેકી ઈચ્છા હોઈ તો ઉહાં નાના પ્રકારકી સામગ્રી હૈ. મેરે ઈહાં તો જો સમય જૈસો પ્રાપ્ત હોય તૈસો ધરુંગો’. (વાર્તા - ૪૧૮૪ પચ્ચનાભદાસજી)

સેવામાં કર્તવ્યતાની બુદ્ધિથી એટલી સેવા કરતાં કે પ્રભુએ કહેવું પડ્યું કે ‘તિહારો સેવક મોકો બહોત ખિજાવત હૈ’ (વાર્તા - ૧૧૧૮૪ ગોવિન્દદાસભલ્લાજી)

### ઉપસંહાર :

સચ્ચિદાનન્દબ્રહ્મની લીલાર્થ સૃષ્ટિમાં પ્રત્યેક નામ - રૂપ - કર્મમાં બ્રહ્મસમ્બન્ધતો અતૂટજ છો પરન્તુ પ્રભુની અવિદ્યાશકિતથી સ્વરૂપવિસ્મૃતિને કારણે

અને અહંતા-મમતાત્મક સંસારની ઉપાધિથી પોતાનામાં ક્ષુદ્રધર્મોની (અબ્રાહ્મિક ધર્મો) પ્રતીતિ થાય છે. જીવના આ અબ્રાહ્મિકધર્મોની પ્રતીતિ લીલાબોધને બાધ કરે છે.

બ્રહ્મસમ્બન્ધ એ એવો મન્ત્ર છે જે ભગવદ્લીલાબોધને સ્ફૂરિત કરે છે અને લીલાના સ્ફૂરણથી દોષનિવૃત્તિ થાય છે. આત્મનિવેદનની દીક્ષા એ બ્રહ્મથી અસમ્બન્ધ હોવાના ભાવને દૂર કરે છે. તે ત્યારેજ થશે જ્યારે તેને બુદ્ધિથી સમજીએ ક્રિયાન્વિત કરીએ અને હૃદયમાં ભાવથી અનુભૂત કરીએ. તે જ વાત શ્રીઆચાર્યચરણ સમજાવી રહ્યા છે. “**બ્રહ્મસમ્બન્ધકરણાત્...**” બ્રહ્મસમ્બન્ધની દીક્ષા એ ‘આભિમાનિક સમર્પણ’ છે. આત્મા અને આત્મીયોનો વિનિયોગ જેને “**અસમર્પિત વસ્તૂનાં ... ભિન્નમાર્ગ પરં મતમ્**” એમ જે સમજાવ્યું છે તે વ્યાવહારિક સમર્પણ છે જેને શ્રીમહાપ્રભુજી અન્તઃકરણપ્રબોધમાં આજ્ઞા કરે છે “**પ્રૌઢાપિ દુહિતા યદ્વત્ સ્નેહાત્ ન પ્રેષ્યતે વરે**”. અને જે વાત “**સેવકાનાં યથા લોકે વ્યવહાર પ્રસિધ્યતિ તથા કાર્ય સમર્પ્યેવ**” થી આચાર્યચરણ જે સમજાવવા માંગે છે જેને ભાગવતમાં “**ત્વયોપભુક્તસ્ત્રક્ષ્મંધવાસોઽલંકારચરિતા ઉચ્છિષ્ટભોજિનો દાસાઃ**” એ ભાવાત્મક સમર્પણ છે. તે પછી “**સર્વેષાં બ્રહ્મતા તતઃ**” જેને ભાગવતમાં “**તવ માયાં જયેમહિ**” અને સેવાફલમાં “**તથા ભોગે પરં નિષ્પ્રત્યૂહં સાધનમ્ અપિ મતં મહાન ભોગઃ પ્રથમે સદા વિશતે**” એ ફળાત્મક સમર્પણ કે સમર્પણાત્મક ફળ છે.

મમ નાથ યદસ્તિ યોસ્મ્યહં સકલં તદ્ધિ તવૈવ માધવઃ ।  
નિયતસ્વમતિપ્રબુદ્ધિઃ અથવા કિન્નુ સમર્પયામિ તે ॥



## ચર્ચા

પુષ્ટિમાર્ગીય ફળ વિચાર : ‘સિદ્ધાન્તરહસ્ય’ ગ્રન્થના સન્દર્ભમાં

શ્રીપરેશ શાહ

**ભાવેશ પરમાર :** તમે લૌકિકવ્યવહારાનુરોધિ સમર્પણની જે વ્યાખ્યા આપી રહ્યા છો એ વિચારણીય લાગે છે. વાર્તામાં એક ક્ષત્રાણીનો પ્રસંગ આવે છે. એમાં આનો ખુલાસો મળી શકે એવું મને લાગે છે. એણે સામગ્રી સિદ્ધ કરીને શીકામાં લટકાવી રાખી હતી. ઠાકોરજીએ શીકામાંથી લઈને સમગ્રી આરોગી. એના ભાવપ્રકાશમાં શ્રીહરિરાયજી લખે છે કે “યહ વાર્તામિં યહ જતાયો જો, જો સામગ્રી ઠાકુરજીકો બિચાર કરીકે કરીએ તો શ્રીઠાકુરજી પ્રીતિસોં અરોગેં”. આ ભગવદ્ધર્માનુરોધી સમર્પણ. આની વ્યાખ્યા તમે બરોબર લખી છે. લાલૂભટ્ટજી પણ ફલવિવેકમાં લખે છે કે સામગ્રી લઈએ ત્યારથી જ કૃષ્ણમાત્રૈકમાનસ હોઈએ કે પ્રભુમાટે જ પધરાવી છે, અને પ્રભુને સમર્પિત કરીએ ત્યાં સુધી પ્રભુમાટે જ છે એવી એકધારી બુદ્ધિ રહે તો એ સમર્પણ ભગવદ્ધર્માનુરોધી કહેવાય. અને લૌકિકવ્યવહારાનુરોધી સમર્પણ અહીં કહી રહ્યા છો કે “ઓર મનોરથ કિયે જો લોગનકો સમાધાન કરનો હૈ, હમકોં યહ બહુત ભાવત હૈ ઈત્યાદિ ભાવ હોય તો પ્રભુ કેવલ દ્રષ્ટિસોં અંગીકાર કરેં, પરન્તુ પ્રસન્ન હોઈકે ન આરોગેં. તારેં શ્રીઠાકુરજીકે ભાવસોં સામગ્રી કરની”. અને શ્રીનૃસિંહલાલજીએ પણ સિદ્ધાન્તરહસ્યની ટીકામાં છેલ્લે લખ્યું છે કે ભગવદ્ધર્માનુરોધી સમર્પણથી બ્રહ્મતા ફળ થાય છે અને લૌકિકવ્યવહારાનુરોધી સમર્પણથી માત્ર દોષ નિવૃત્ત થાય છે.

**પરેશ શાહ :** ગદાધરદાસજીની વાર્તામાં આવે છે કે પ્રભુ ભૂખ્યા છે એ વિચારથી એમણે સમર્પણ કર્યું. એમાં ફક્ત પ્રભુનો જ વિચાર હતો. તેથી એ સમર્પણ ભગવદ્ધર્માનુરોધી થયું. પદ્મનાભદાસજીની વાર્તામાં એમ આવે છે કે જ્યારે અકકાજીની મોકલેલ સામગ્રી એમણે પાછી મોકલાવી અને પ્રભુને કહ્યું કે મારી પાસે જે છે તે હું આપને સમર્પી શકીશ. એનાથી વિશેષ ઈચ્છા હોય તો આપ ત્યાં પણ બિરાજી શકો છો. તો “સેવકાનાં યથા લોકે વ્યવહારઃ પ્રસિદ્ધયતિ”નો જે એમનો ભાવ છે એ શ્રીપુરુષોત્તમજી એવી રીતે કહી રહ્યા છે એવો અર્થ મને સ્ફુરે છે.

**ગો. શરદ્ :** આ તો ઉલટું થઈ ગયું. શ્રીપુરુષોત્તમજીનો મત આવો નથી. શ્રીપુરુષોત્તમજી

“सेवादानां यथा लोके”वाणा समर्पणने तो उत्तम गण्णी रह्या छे अने  
 “जंग्मात्वं सर्वदोषाणां”वाणा समर्पणने कनिष्ठ कली रह्या छे. तेथी  
 श्रीपुरुषोत्तमञ्जनी दृष्टिमां “सेवकानां यथा लोके व्यवहारः  
 प्रसिद्ध्यति”वाणुं समर्पण लौकिकव्यवहारानुरोधी समर्पण नलीं कलेवाय.

गो.श्या.म.: ऐसे ढंगसुं भी विचारो के भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणकी भी उत्तम, मध्यम  
 और जघन्य कक्षाएं हो सके हैं और लौकिकव्यवहारानुरोधी समर्पणकी भी ये  
 कक्षाएं हो सके हैं. अपने सामने पेरामीटर “निर्दोषं हि समं ब्रह्म” है.  
 ब्रह्मको एक पहलू निर्दोषता है और दूसरो पहलू समता है. “सर्वेषां ब्रह्मता  
 ततः”में समतावालो पहलू है. यामें दोष आ सके है. श्रुतिमें कह्यो है  
 “ब्रह्मदाशा ...कितवा”. ब्रह्म इन सबके सम है तो वामें दोष तो आयेगो  
 न परन्तु ब्रह्म कोई तरहसुं अपनेकु मेइन्टेईन् करे है, एक बाजु सबके समान  
 होके, वहां तक के दोषके भी समान होके. दूसरी बाजु विरुद्धधर्माश्रयता या  
 कोई ओर प्रक्रियासु, अभी अपन वाकी चर्चामें न जायें पर सबके समान होते  
 भये भी ब्रह्म खुदकी निर्दोषता भी मेइन्टेईन् करे है. वाकेलिये गीताकार और  
 दूसरे भी जगह कई उदाहरण दिये हैं “यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः  
 सर्वत्रगो महान्”. वायु सब जगह फिरती होवे है फिर भी वो निर्दोष भी हो  
 सके है. ऐसे ब्रह्म भी सर्वसम होते भये भी निर्दोष भी हो सके है. निर्दोष होते  
 भये भी सर्वसम हो सके है. याही तरह समर्पण भी निर्दोष भी होनो चाहिये  
 और सर्वसम भी होनो चाहिये, माने ब्रह्मात्मक भी होनो चाहिये. जैसे  
 दुःखाभाव पूर्वक सुखावाप्ति मोक्ष है. अपने यहां उतनो भार यापे नहीं है पर  
 दूसरेनू भार दियो है. पर दो पुरुषार्थ हैं : दुःखाभाव और सुखप्राप्ति. वो  
 दोनों एलिमेंट्र यहां अभिप्रेत हैं. अब दुःखकी निवृत्ति आत्यन्तिकी,  
 तात्कालिकी और आभासिकी ऐसे तीन तरहकी हो सके है. आभासिकी  
 मतलब एनेस्थेसिया देके दुःखकी प्रतीति बंद कर देवें हैं ऐसे. ऐसे ही  
 सुखप्राप्तिकी भी तीन रेंज हो सके है : आत्यन्तिक, तात्कालिकी और  
 आभासिकी. या पेटर्नमें निर्दोषता और ब्रह्मता भी आत्यन्तिकी, तात्कालिकी  
 और आभासिकी होवे है. याकु यदि अपन समझ लें तो अभी चल रही  
 चर्चाको समाधान मिल जायेगो.

कोई ठिकाने अपनकु आभासिकी ब्रह्मता चाहिये है, कोई ठिकाने  
 तात्कालिकी ब्रह्मता चाहिये तो कोई ठिकाने अपनकु आत्यन्तिकी ब्रह्मता

चहिये है. याकु सोचें तो यमुनापूजनके दृष्टान्तसु समझ सके हैं. यमुनापूजनकेलिये तटपे जो शिला रखी भई होवे है वाकु यमुनाजलसुं स्नान कराते ही तात्कालिक पूजनार्थ यमुनात्व वामें आवे है. वा शिलाके पूजनके बाद वाकु अपन यमुनाजलकी लोटी ओर भोग धरे हैं. वहां केवल आभासिकी यमुनाजलता है. क्योंके यमुनाजीकु यमुनाजल भोग धरनो आवश्यक नहीं है, केवल जल भोग धरनो है. आत्यन्तिक यमुनात्व साक्षात् श्रीयमुनाजीमें है. ऐसे ठाकुरजीके स्वरूपमें आत्यन्तिक ब्रह्मता है, सेवोपयोगी सामग्रीमें सेवोपयोगकालमें तो ब्रह्मता है पर वाके बाद यदि अपन वामें ब्रह्मता मानें तो अपन प्रसाद भी नहीं खा सकेंगे, प्रसादी वस्त्र भी पहन नहीं सकेंगे. और कभी अपन प्रसादी वस्त्रकी सेवा भी करे हैं. या स्थितिमें अपन वस्त्रकी आत्यन्तिकी ब्रह्मता प्रिझ्युम कर रहे हैं और जव प्रसादी वस्त्र अपन पहननो चाह रहे हैं तब उनमें सेवाकालमें ही तात्कालिकी ब्रह्मता है. बाकी सबमें अपनी आवश्यकता आभासिकी ब्रह्मताकी है. ऐसे ही दोषनिवृत्तिकी भी तीन लेयर् बनेंगी. इनके कारण अपनकु ऐसे नहीं सोचनो चहिये के लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण जघन्य ही है. वाकी भी कोई उत्तम कक्षा हो सके है. क्योंके वो समर्पण आत्यन्तिक दोषनिवृत्ति, तात्कालिकी दोषनिवृत्ति और आभासिकी दोषनिवृत्ति कर सकेंगे. जैसे ठाकुरजीकु पधरानेसु पहले अपन सोहिनी-मंदिरवस्त्र करके जगह शुद्ध करे हैं. ये शुद्धि कौनकी करे हैं? ब्रह्मात्मक स्थलकी के भूतलकी? यदि ब्रज मानते होवें तो शुद्धिकी जरूरत ही नहीं है. ब्रज नहीं मान रहे हैं तो ब्रजको भाव लानेकेलिये वहां कुछ संस्कार करनेकी जरूरत है. यासु सोहिनी करके अपन अपने राजसभावकु निवृत्त करके तात्कालिक ब्रजभूमिताको भाव प्रकट करे हैं. ये आत्यन्तिक नहीं है. यदि आत्यन्तिक मानेंगे तो अपन अपनो घर बेच ही नहीं सकेंगे और यदि बेचेंगे तो ब्रजभूमिकु बेचनेको पाप लगोगे. यासु अपन सेवास्थलमें आत्यन्तिकी ब्रजभूमिता प्रकट नहीं करें हैं, सेवाकालोचित ब्रजभूमिता माने हैं. पर यदि गिरिराजजी या यमुनाजी कु घरमें पधरा रहे हैं तो उनमें अपन तात्कालिकी या आभासिकी ब्रह्मता नहीं माने हैं, आत्यन्तिकी ब्रह्मता माने हैं. यासु लौकिकव्यवहारानुरोधी समर्पण हमेंशा निम्न कक्षाको होवे है वो मोकु जचे नहीं है. ऐसे ही भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण हमेंशा उच्च कक्षाको ही होवे है ये जरूरी नहीं है. जैसे, वर्तमान पुष्टिमार्गको उदाहरण लो. आज

कितने ही लोगनकु ऐसो भ्रम है के इतनो नेग यदि ठाकुरजीकु नहीं धरेंगे तो ठाकुरजी भूखे रह जायेंगे. ये समर्पण भगवद्धर्मानुरोधी है. अब उतनो नेग धरनेकी सामर्थ्य अपनी नहीं है तो गामसुं भीख मांगके धरो. फेसवेल्थुपे तो ये भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण है पर वस्तुतः तो अत्यन्त जघन्य कक्षासु भी नीचे निषिद्ध कक्षाको समर्पण है. और लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण भी उत्तम कक्षाको हो सके है के जो पद्मनाभदासजीने कियो. उनके समर्पणकु मैं हीन कक्षाको नहीं मान रह्यो हूं. वाको कारण ये है के उनने मथुराधीशजीसुं कन्फर्मेशन् लियो है के आपकु अरोगनो होवे तो आप यहां बिराजो, मेरे पास छोलाके अलावा कुछ नहीं है. ठाकुरजीने खुदने कही के मोकु अक्काजीके यहां नहीं अरोगनो है, मोकु तेरे छोला भावे हैं. तो उनने कही के मेरे पास तो छोला ही हैं. तो उनने लोकव्यवहारानुरोधी “सेवकानां यथा लोके”...सेवकके पास जो होयगो वो ही तो समर्पित करेगो न!

**गो. शरद् :** ये तो सही है. लौकिकव्यवहारानुरोधी समर्पण और भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण के प्रकारभेद हो सके हैं. पर मूल बात दृष्टान्तवैशम्यकी है.

**गो.श्या.म.:** दृष्टान्तवैशम्य नहीं है. एक बात बताऊं. होलीके दिन अभी हैं. “अरुन अबीर डारो जिन लालन दूखत अंखिया हमारी”. भगवान् होरी खेल रहे हैं वामें वो अपने अनुरोधी निषेध कर रही है. ये लोकव्यवहारानुरोधी निषेध है. हमारी आंख दूख रही हैं, गुलाल मत डालो. अब भगवद्धर्मानुरोधी निषेध देखो. “खेलो मिल होरी घोरो केसर कमोरी लाज जियमें बिचारो ना नैन हैं चकोर मुखचन्दपे पड़ेगी ओट, याते इन आंखनमें लाल गुलाल तुम डारो ना”. ये भगवद्धर्मानुरोधी निषेध है. दोनों गोपी ठाकुरजीके संग होली खेलने तैयार हैं पर कौनसी गोपीको अधिकार उत्तम है ये अपन डिसाईड् नहीं कर सके हैं. दोनों आंखमें गुलाल डालवेकी मना कर रही है.

**गो. शरद् :** ये बात कोई अलग परिभाषासुं आ रही है.

**गो.श्या.म. :** नहीं. परिभाषा बदली नहीं है. क्योंकि लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण मतलब लोकमें जैसो व्यवहार होवे वाको फल पुरुषोत्तमजी निर्दोषता बत रहे हैं के नहीं? निर्दोष कोई अलग फल है?

**गो. शरद् :** ऐसे नहीं. अभी भावेशने वार्ताप्रसंगके आधारपे लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणकी परिभाषा बताई वा परिभाषाकु पकड़के चल रहे हैं तो पद्मनाभदासजीको समर्पण कथमपि वा नेचरको नहीं है.



**गो.श्या.म. :** देखो, वो लोकव्यवहारानुरोधी जघन्य कक्षाको समर्पण है और पद्मनाभदासजीको लोकव्यवहारानुरोधी उत्तम कक्षाको समर्पण है.

**गो. शरद् :** या तो टर्म बदली है या फिर परिभाषा बदली है.

**गो.श्या.म. :** न टर्म बदली है न व्याख्या बदली है. वामें तीन कक्षाएं हो सके हैं, वाकु एक ही कक्षाको मत मानो. लोकव्यवहारानुरोधी जघन्यकक्षाको ही है यों मत मानो वो भी उत्तम कक्षाको हो सके है. और भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण उत्तम कक्षाको ही होवे है ऐसे मत मानो, वो भी जघन्य कक्षासु भी आगे बढ़के निषिद्ध कक्षा तकको हो सके है जामें अपन सब गुसाईं एक्स्पर्ट हैं. कितने सारे वैष्णव बिचारे सुबहसु शाम धंधा-नौकरीमें घिसते-पिटते रहे हैं पर जो खुदको है वो ही अपने ठाकुरजीकु समर्पित करे हैं. वो लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण कर रहे हैं. और गुसाईं बालकनकु “हाथ-पांव नहीं हिलना, दस-बीस कोस नहीं चलना, घरमें बैठे रहना, भीख मांगके भोग धरना और मुखिया सेवा करना” वामें भी पाछो भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणको झंडा फरकानो ये तो निषिद्धकक्षाको समर्पण है यासु भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण हर वक्त उत्तम कक्षाको ही होवे ये जरूरी नहीं है. वामें अपनी कोई भ्रान्त धारणाएं काम करती हो सके है. और लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण हर वक्त मध्यम या जघन्य कक्षाको होवे ये भी जरूरी नहीं है. उत्तम कक्षाको भी हो सके है. जैसे पद्मनाभदासजी जैसो उत्तम भगवदीय लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण क्यों नहीं कर सकें? मेरे पास चना है, ओर कुछ नहीं है ठाकुरजी राजी हैं. किशोरीबाईकी वार्तामें भी तो आवे है के मैं तेरी सत्ताको अङ्गीकार करवे तेरे घर पधार्यो हूं, तेने दूसरेसु सामग्री क्यों ली? लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण नहीं कियो करके ठाकुरजी रूठ गये हैं. किशोरीबाई भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण करने जा रही है और ठाकुरजीकु मिरची लग रही है ठाकुरजीके सुखकेलिये ही तो समर्पण कर रही हती पर ठाकुरजी ऐसे सोच रहे हैं के गामकी सत्ताको समर्पण स्वीकारनो हतो तो गामके माथे नहीं बिराजतो तेरे घर क्यों बिराज्यो तेरे माथे मैं बिराज्यो हूं तेरी सत्ताको समर्पण स्वीकारने. तो देखो, भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण भी जघन्यकक्षाको हो सके है और लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण भी उत्तम कक्षाको हो सके है. समर्पणमें या तरहको विभाजन मत करो ये मैं कह रह्यो हूं. पद्मनाभदासजीको उदाहरण जघन्यकक्षाको उदाहरण नहीं है पर है लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण

ही. जो मेरे पास है वाको आपकु समर्पण करुंगो.

**गो. शरद् :** पुरुषोत्तमजीने भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणको फल ब्रह्मता बतायो है और लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणको फल निर्दोषता मात्र है, ब्रह्मता नहीं है. या स्थितिमें यदि अपन पद्मनाभदासजीके समर्पणकु भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण नहीं मानके लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण मान रहे हैं तो पद्मनाभदासजीके समर्पणको फल निर्दोषता मात्र मिलनो चहितो हतो, ब्रह्मतारूप फल नहीं मिलनो चहितो हतो.

**गो.श्या.म. :** पर वो उत्तम कक्षाको है वो तो बात कहो

**गो. शरद् :** लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण भी यदि उत्तमकक्षाको है तब भी, यदि वो लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण है तो वाको फल निर्दोषता ही है, ब्रह्मता नहीं है ये तो अपनकु माननो ही पड़ेगो.

**गो.श्या.म.:** यामें क्या बुरी बात है

**गो. शरद् :** ऐसो माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है. पद्मनाभदासजीने...

**गो.श्या.म. :** उनने अपनी निर्दोषताकु भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणमें कल्मिनेट् कैसे करी वापे ध्यान दो. उनने लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणकी प्रभुसु सम्मति ली.

**गो. शरद् :** हां. तो वो भगवद्धर्मानुरोधी हो गयोन!

**गो.श्या.म.:** सम्मतिके कारण वो भगवद्धर्मानुरोधी भयो है. इनको समर्पण लोकव्यवहारानुरोधी है.

**गो. शरद् :** लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणकी परिभाषा बदली जा रही है या लिये समस्या आ रही है.

**गो.श्या.म.:** परिभाषा नहीं बदली जा रही है. वाके इम्प्लिकेशनको विचार करो.

**भावेश परमार :** लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणनी व्याख्या शुं छे?

**गो.श्या.म. :** जो लौकिकव्यवहारानुरोधी समर्पणमां कोई न्यूनता होय तो निर्दोषता होई न शके. उमेडे लोकमां अधुंन दोषयुक्त छे. श्रीमहाप्रभुछ पोते न आशा करे छे जो दोषयुक्त छे, ब्रह्म निर्दोष छे. ब्रह्मेतर सब कुछ दोषयुक्त है. तो निर्दोषता ब्रह्मको स्वरूप है के नहीं गंगाके मॉडलकु पकड़के चलें तो जो गटर गंगामें मिल गयी वामें जैसे गंगात्व आ रह्यो है वैसे निर्दोषता आ रही है के नहीं? निर्दोषता आ रही है ऐसे गङ्गात्व आ रह्यो है के नहीं? “एकमप्यास्थितः सम्यग् उभयोर्विन्दते फलम्” न्याय यहां समझो. पुरुषोत्तमजीने जो विभाजन कियो है वो या लिये नहीं के लोकव्यवहारानुरोधी

समर्पणको फल निर्दोषता मात्र है. वो या बातकु समझा रहे हैं के ब्रह्म निर्दोष भी है और सम भी है. और निर्दोषताको आस्पेक्ट हांसिल होयगो लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणसु और ब्रह्मताको आस्पेक्ट हांसिल होयगो भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणसु.

गो. शरद् : भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणसु दोनों फल सिद्ध होंगे.

गो. श्या.म. : नहीं, नहीं. भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण सदोष भी तो हो सके है वो ही तो आपको बता रह्यो हूं

गो. शरद् : आप जाकु निषिद्ध कक्षाको बता रहे हो वहां 'समर्पण' शब्द औपचारिक है. वस्तुतः वो समर्पण है ही नहीं. जहां मार्गीय सिद्धान्त मर्यादाके अनुसार समर्पण नहीं हो रह्यो है वहां 'समर्पण' शब्दको प्रयोग मिथ्या है.

गो. श्या.म. : लोकव्यवहारानुरोधी यदि भगवद्धर्मानुरोधी नहीं होयगो तो वो केवल निर्दोषता सिद्ध करेगो, ब्रह्मता नहीं होयगी. भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण यदि लोकव्यवहारानुरोधी नहीं भयो तो वो निर्दोष नहीं रह जायेगो.

गो. शरद् : ये बात स्वीकार्य हो सके ऐसी नहीं है. जा तरहसु पुरुषोत्तमजी निरूपण कर रहे हैं वासु तो स्पष्ट है के भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण श्रेष्ठ है और लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण वासु कनिष्ठ है. भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणको फल ब्रह्मता है. वामें निर्दोषता और समता दोनों सिद्ध होंगे. और लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणसु केवल निर्दोषता सिद्ध होयगी.

गो. श्या.म. : भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणकु दोषराहित्यके अर्थमें श्रेष्ठ बता रहे हैं. पर या बातकु मत भूलो के "निर्दोषं हि समं ब्रह्म". ब्रह्मके दोनों ही गुण ईकवल् हैं, निर्दोषता भी और समता भी. तो जा बखत समता प्रकट होयगी तब दोष आयेगो ही.

गो. शरद् : नहीं, नहीं. ब्रह्मात्मकता जब है तब अपन लोकदृष्टिसु जो दोष सोच रहे हैं वो दोष वहां नहीं आयेंगे. जैसे लीलामें भगवानने...

गो. श्या.म. : तो आप ये बताओ के "सएव असाधुकर्म कारयति". तो वाके द्वारा करायो गयो कर्म असाधु हो ही नहीं सकेगो.

गो. शरद् : हां. वाकी दृष्टिसु तो कुछ भी असाधु है ही नहीं असाधुता तो लीलामें तारतम्यवश प्रकट करी है, तत्त्वतः नहीं है.

गो. श्या.म. : वो ही बात यहां भी लागू करलो आपत्ति क्या है?

गो. शरद् : वो या वचनकी मर्यादासु प्राप्त नहीं हो रह्यो है जो पुरुषोत्तमजी कह रहे हैं.

**गो.श्या.म. :** पुरुषोत्तमजी ये कह रहे हैं के लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणसु निर्दोषता मात्र आयेगी, ब्रह्मता नहीं आयेगी. ब्रह्मता भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणसु. समर्पण दो करने हैं के एक करनो है?

**भावेश परमार :** एक.

**गो.श्या.म. :** दो समर्पण तो नहीं करने है के एक लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण करें और बादमें भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण करें. जब एक समर्पण कर रहे हैं और जब एक ही ब्रह्म निर्दोष भी है और सम भी है, गटरको गंगामें मर्ज होनो निर्दोषता भी ला रह्यो है और गंगात्व भी ला रह्यो है तो समर्पणके भाग करोगे कैसे? दो समर्पणकु आप छुट्टे कैसे पाड़ोगे?

**गो. शरद् :** अपने तरफसु समर्पण छट्टे नहीं पड़ेंगे, भगवान्की ओरसु छुट्टे पड़ेंगे.

**गो.श्या.म.:** भगवान् भी वाकु छुट्टो नहीं पाड़ सकेगो. छुट्टो पाड़नेकेलिये सदोष होनो पड़ोगे तो “निर्दोषं हि समं ब्रह्म” नहीं रह जायेगो.

**गो. शरद् :** वार्तामें याको दृष्टान्त मिले है. वैष्णवके पास रोटीमें चुपड़नेकेलिये पर्याप्त घी नहीं हतो. जितनो घी हतो उतनेसु रोटी चुपड़ी. बाकी रोटी बिना चुपड़ी रही. जब ठाकुरजीकु भोग धरी तब ठाकुरजीके सुखके विचारसु चुपड़ी रोटी ऊपर धरी और बिना चुपड़ी रोटी थप्पीके नीचे रखी. बिना चुपड़ी रोटी धरनो लोकदृष्टिसु भी निन्दित है. उनकु वाकी ग्लानी भी भई. पर धरी या लिये के समर्पितसु ही सब व्यवहार चलानेको व्रत है. ता एक ही समर्पणमें चुपड़ी रोटी भगवत्सुखके विचारसु भोग धरी और बिनचुपड़ी रोटी खुदके प्रसाद लेनेके विचारसु भोग धरी...परेशभाईके पेपरकी चर्चा है और वो तो बोल नहीं रहे हैं

**परेश शाह :** मेरे मनमें भी ये कन्फ्युजन् पुरुषोत्तमजीकी टीका पढ़के भयो है. क्योंके समर्पण तो एक ही है. और “आद्यकरणे ब्रह्मतारूपं फलं, द्वितीयकरणेतु गङ्गासम्पृक्तदोषाणामिव एतद्दोषाणां निवृत्तिमात्रम्” ऐसे दो-दो प्रकार समर्पणके बता रहे हैं तो याकु कैसे समझनो ये मेरे मनमें भी संशय है.

**गो.श्या.म.:** मैं एक बात बताऊं. सिद्धान्तमुक्तावलीकी टीकामें द्वारकेशजीने या पुरुषोत्तमजीकी पंक्तिके जैसी ही पंक्ति लिखी है. वहां लिखे हैं के तनुवित्तजासेवाको फल मानसी है, तनुजा सेवा करवेसु ब्रह्मबोध फल होवे है और वित्तजा सेवा करवेसु संसारदुःख निवृत्त होवे है. तो क्या सेवा दो तरहकी है? ये न्याय फिर वहां भी लागू करो

गो. शरद् : एककर्तृका होनी चाहिये ये द्वारकेशजी प्रिड्युम करके चल रहे हैं.

गो.श्या.म.: वो यहां भी लागू करो.

गो. योगेश : आपने भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण और लोग.समर्पण के उत्तम, मध्यम और अधम भेद बताये वाके बारेमें कुछ पूछनो चाह रह्यो हूं. गोकुलनाथजीके वचनामृतमें कह्यो है के अपन ठाकुरजीकु कोई उत्सव-प्रसंगे सामग्री अरोगावें वो उत्सव दूसरे वर्ष जब फिरसु आवे तब अपनकु ठाकुरजीकु फिरसु यथाशक्ति सामग्री भोग धरनी चाहिये. क्योंकि ठाकुरजी वाकी अपेक्षा रखे हैं. तो ठाकुरजीको विचार करके अपनकु समर्पण करना चाहिये. वो नहीं करके यदि अपन रूटीनमें जो धर रहे हैं वो धरें तो फिर वो लोकव्यवहार हो जायेगो. और यदि प्रभुकी रुचि-स्वभावकु ध्यानमें रखके अपन समर्पण करेंगे तो वो समर्पण लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणके करते उत्तम होयगो. दूसरी बात वचनामृतमें ये भी बताई है के ठाकुरजीके भोगको कोई एक नेग अपनने बांध्यो होवे तो अननेसेससरी वामें कमी नहीं करनी चाहिये. जैसे आज अपन बीमार पड़ गये, भोजनकी रुचि नहीं है और ठाकुरजीकु थोड़ो-बहोत कुछ भी भोग धर दियो. ये ठीक नहीं है. नेग बांध्यो है तो वाकु निभाके चलनो चाहिये. ये भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण है. और अपने पेटको ही विचार करके यदि भोग धरें तो वामें भगवद्धर्मानुरोधिता नहीं आवे है. तो मैं कहनो ये चाह रह्यो हूं के ब्रह्मसम्बन्धसु निर्दोषता तो आ रही है पर वहां तक सीमित नहीं रहनो है. वो बात भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण तक आगे बढ़नी चाहिये. यासु आपने भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण और लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण में तीन-तीन भाग किये हैं वो या वचनामृतकु देखते भये सम्भव नहीं लगे है.

गो.श्या.म. : या ही के पेरैलल् भक्तिकी उत्तम-मध्यम-अधम कक्षा हो सके है के नहीं? क्रियात्मिका भक्ति, ज्ञानात्मिका भक्ति ऐसे. “एवं सर्वं ततः सर्वं स इति ज्ञानयोगतः, यः सेवते हरिं प्रेम्णा श्रवणादिभिरुत्तमः, प्रेमाभावे मध्यमः स्यात् ज्ञानाभावे तथादिम, उभयोरप्यभावे तु पापनाशस्ततो भवेत्” में श्रीमहाप्रभुजी भक्तिकी उत्तम, मध्यम और अधम कक्षा बता रहे हैं के नहीं तो समर्पणसु साध्य सेवामें जब उत्तम-मध्यम-जघन्यता होवे है तो समर्पणमें क्यों नहीं हो सके

गो. योगेश : समर्पणमें हो सके है लेकिन पुरुषोत्तमजीने जो निरूपण कियो है वाकु वचनामृतमें गोकुलनाथजीने जो आज्ञा करी है वा एंगल्सु क्यों नहीं समझ

सके हैं?

**गो.श्या.म. :** या ही एंगल्सुं समझवेको है. आप जहां भी देखोगे श्रीमहाप्रभुजीने ऐसी ही तरहसु निरूपण कियो है. पापनाश और सिद्धि, दुःखाभाव और सुख, समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः...कन्टीन्युअस्ली या तरहसुं दो पैरनपे भक्ति चली जा रही है. अपनी भक्ति एक पैरकी लंगड़ी नहीं है. केवल ब्रह्मताकी सम्पादिका नहीं है. लोकव्यवहारानुरोध भी उतनो ही इम्पोर्ट है. यदि वो इम्पोर्ट नहीं होतो तो “सेवायां क्लिष्टं न समर्पयेत्. लोकक्लिष्टम् आत्मक्लिष्टं चित्तक्लिष्टं” में एक भगवान्को क्लेश विचार्यो है और दो क्लेश अपने विचारे हैं. और वामें भी पाछे अपने शास्त्रीय और लौकिक पहलू विचारे हैं. “सन्मार्गोपार्जितं नान्येषां भागरूपम्” ये विचार्यो है. और “येन चित्ते निर्वृति स्यात्”. वाकु आप कैसे ना पाड़ोगे? ये तो लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण है. आप अपनो थर्मोमीटर वापरोगे के नहीं? यदि समर्पण लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण नहीं होयगो तो क्लेशात्मक समर्पण होयगो.

**गो. योगेश :** वाकी मना थोड़ी है

**गो.श्या.म.:** तो बात पाछी वहीं आ गयीन

**गो. योगेश :** वाको उत्कर्ष वहां तक जानो चाहिये.

**गो.श्या.म. :** उत्कर्षकी कौन ना पाड़ रह्यो है बात इतनीसी है के लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणकी भी उत्तम-मध्यम-जघन्य तीन कक्षा हो सके है और भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणकी भी उत्तम-मध्यम-जघन्य यों तीन कक्षा हो ही सके हैं. नहीं होते तो श्रीमहाप्रभुजी ये आज्ञा क्यों करते?

**गो. शरद् :** तब फिर उन कक्षानके अनुसार फलमें भी तीन भेद आयेंगेन! लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणकी तीन कक्षाके अनुसार निर्दोषता भी तीन प्रकारकी माननी पड़ेगी.

**गो.श्या.म.:** आयेंगे. निर्दोषता भी तीन तरहकी होंगी ही. याही लिये मैने आपकु बतायो के आत्यन्तिकी, तात्कालिकी और आभासिकी ब्रह्मता ऐसे ही आत्यन्तिकी निर्दोषता, तात्कालिकी निर्दोषता और आभासिकी निर्दोषता होवे है. जैसे राजा मर जाये तो राजकुमारकु तब तक सूतक नहीं लगे है जब तक वाकु राजतिलक नहीं हो जावे. ये तात्कालिकी सूतकनिवृत्ति है.

**असित शाह :** सोनाकी कटोरी गिरवी धरके भोग धर्यो वो भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण

हतो पर लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण नहीं हतो.

**गो. मनोज :** योगेशबावाने नेग बांधवेकी बात करी...

**गो.श्या.म. :** वो तब तक ही उचित है के जब तक चित्तमें क्लेश पैदा नहीं करतो होवे. नहिंतो तो श्रीगुसांईजी आजके गुसांईन्की तरह गामके पास भीख मांगके पलना नहीं ला सकते हते? नवनीतप्रियजीकु उपरणामें क्यों पलना झुलायो? भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणमें लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणकी मर्यादा निभानी पड़ेगी. ऐसे ही लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणमें भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणको भाव निभानो पड़ेगो. दोनोंके 'तनुवित्तजा'सु समर्पण होनो चाहिये. लोकव्यवहार-भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण होनो चाहिये. “**द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकम् अभिसम्बध्यते**”न्यायसुं. वामें लोकव्यवहार दोषनिवर्तक होयगो और भगद्धर्म ब्रह्मताको सम्पादक होयगो, अंशतः. पर इनकु छुट्टो पाड़ोगे तो दोनोंमेंसु एक भी फल नहीं मिलेगो. तनुवित्तजाको विभाग तनुजा और वित्तजा करनेपे जैसे सेवा नहीं रह जावे है ऐसे समर्पणमें भी लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण रहित भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण और भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण रहित लोकव्यवहारानुरोधी समर्पण अपसिद्धान्त ही है. कोई भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणमें उतनो सामर्थ्य नहीं है के जो आपकु सच्चो समर्पण जीनेको उपाय बता सके यदि लोकव्यवहारानुरोध नहीं होवे तो....यासु हर भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणमें एक गूढ भाव लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणको होनो चाहिये और हर लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणमें गूढ भाव भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणको होनो चाहिये. ये दोनों मिलके निर्दोषता और समता सिद्ध करेंगे. यदि इनको विभाजन कियो तो वो वानरचेष्टा होयगी.

आपने(श्रीयोगेश कुमारजी) गोकुलनाथजीके वचनामृतकी बात करी हती. वा सन्दर्भमें गोकुलनाथजीको ही दूसरो वचनामृत है के ठाकुरजीकी सेवा अपने-स्ववित्तके अनुसार करे. क्यो कोई ये गेरंटी दे सके है के वाको वित्त सदा एक ही स्टेटस्को रहेगो नहीं. तो फ्लक्च्युएशन् तो करनो ही पड़ेगो न!

**गो. योगेश :** सामर्थ्य होते भये भी परिवर्तन करें तो वो उत्तम बात नहीं है.

**गो.श्या.म.:** सति सामर्थ्य आप चेंज मत करो; असति सामर्थ्य आपकु चेंजकी छूट है. तो बात पाछी वो ही हो गईन तीनों कक्षाएं आ जायेंगी पाछी.

**गो. योगेश :** समर्थ है फिर भी अपन चेंज कर रहे हैं तो...

**गो.श्या.म. :** तो जघन्य कक्षा हो गयी. वो ही तो शरद्बावा ना पाड़ रहे हैं के आप जघन्य कक्षा बाहरसुं ला रहे हो, पंक्तिमें नहीं है.

**गो. शरद् :** कहनेको आशय ये है, अपन दूसरो कोंक्रीट उदाहरण लेवें. उत्सवपे तिनकूड़ा भोग आवे है. मानो के भोग धरवेवालेकु भिगवद्धर्मानुरोधी तिनकूड़ा ठाकुरजी पीछे रुचिकर नहीं लगे है. फिर भी लोकव्यवहारानुरोधी ये विचारके तिनकूड़ा ठाकुरजीकु भोग धरे है के ठाकुरजीकु उत्सवपे इतनी सब सामग्री भोग आयी है तो तिनकूड़ा अरोगनेसु ठाकुरजीकु पाचनमें अच्छो रहेगो. भोग सरवेके पीछे वो तिनकूड़ाको प्रसाद नहीं लेनेवालो है ये बात तय है यासु वो ठाकुरजी लायक मात्रामें तिनकूड़ा समर्पे है. तिनकूड़ाके अलावा जो भोग-सामग्री ठाकुरजीकु समर्पित करी है वाको प्रसाद वो अपने देहनिर्वाहकेलिये लेगो. यासु वा प्रमाणमें उन सामग्रीको समर्पण वाने ठाकुरजीकु कियो है. या स्थितिमें एक ही भोगमें दो अलग-अलग भावसुं अलग-अलग सामग्रीको समर्पण भयो है. आपने जैसे कही वैसे एक सामग्रीको भोग प्रकट भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणके भाव और गूढ लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणके भावसुं धर्यो गयो है. और दूसरी सामग्रीको भोग प्रकट लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणके भाव और गूढ भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणके भावसुं धर्यो गयो है. जब एक ही समयमें दो भिन्न-भिन्न भावसुं सामग्री भोग धरी गयी है तब ठाकुरजी जब भोग अरोगेंगे तब समर्पण करनेवालेके भावके भेदके अनुसार ठाकुरजीकी अङ्गीकृतिमें भी अंतर आयेगो. जैसे...

**गो.श्या.म.:** ...ऐसे क्यों सोचनो के ठाकुरजीकी अङ्गीकृतिमें अन्तर आयेगो. ठाकुरजी वो दोनों बातें आपसु एक्स्पेक्ट कर रहे हैं. “तेरी सत्ताको अङ्गीकार करवे मैं तेरे घरमें बिराज्यो हूं”.

**गो. शरद् :** वो तो बरोबर है. पर अधिक प्रसन्नतासु ठाकुरजी वा समग्रीकु अरोगेंगे के जाको समर्पण मैने केवल प्रभुके सुखको विचार करके कियो है.

**गो.श्या.म. :** ठाकुरजीकु वामें भी अधिक प्रसन्नता होयगी के तेरी सत्ताको है वो मोकु रुचे है.

**गो. शरद् :** वो तो बायू रूल करनो ही है...

**भावेश परमार :** वचनामृतमें आवे है “जो सामग्री ठाकुरजीको विचार करीके भोग धरे सो सामग्री ठाकुरजी प्रीतिसों अरोगें. और अतिथि लोगनके समाधानको



विचार करीके भोग धरे...” यहां ठाकुरजीकी प्रसन्नतामें भेद बताया है.

**गो.श्या.म. :** अन्यके विचारसु ठाकुरजीकु समर्पण करना अच्छी बात नहीं है वो तो ठीक ही है. मेरो कहनो ये है के लोकव्यवहारानुरोधी समर्पणकी भी उत्तम-मध्यम-जघन्य ऐसी तीन कक्षाएं हो सके हैं. और भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण भी जघन्य कक्षाको हो ही सके है. जो समर्पण अपन ये सोचके करे हैं के याके बिना ठाकुरजीकु नहीं चलेगो तो वो भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण होते भये भी जघन्य कक्षाको है. रजोकी वार्तामें रजोने श्रीमहाप्रभुजीकु साफ कह दियो है के जब आपने कहवायी के घीके बिना नहीं चलेगो तो मैं समझ गयी के ये पुष्टिमार्गकी आज्ञा नहीं हो सके है. पुष्टिमें तो अपनकु वो फलक्वयुएशन् माननो ही पड़ेगो के भगवान् भक्तके अनुरूप होवे है और भक्त भगवान्के अनुरूप होवे है. जब दोनों एक-दूसरेके अनुरूप नहीं होके एक-दूसरेकेलिये टोर्चरिंग् हो जायें, एक्स्टोर्शनिस्ट हो जायें के इतनो तो करना ही पड़ेगो तो फिर वो पुष्टिमार्ग नहीं है, नहीं है, नहीं है.

**गो. मनोज :** मथुराधीशजी पद्मनाभदासजीके अनुरूप भये ही हैं न प्रसन्नतासु अनुरूप भये हैं.

**असित शाह :** परिश्रमभोगको प्रसाद अपन नहीं लेवे हैं. है वो भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण पर वामें लोकव्यवहारानुरोध है. परिश्रम जानवेको क्राइटेरिया अपनो है.

**गो.श्या.म. :** परिश्रम भोगमें कभी सीरा धर्यो जाय है, कभी झारी भरी जाय, कभी बजारकी जलेबी धरी जाय, कभी पना धर्यो जाय. जैसे ठाकुरजी अपनसुं गिर जायें तो गिरे बच्चाकु रोतो चुप कैसे करना? वाकु मीठो खवाके चुप करें हैं. ऐसे ठाकुरजीकु भी कछु मीठो अरोगायो जाय है. कभी सेवाको क्रम लंबो चले तो भी परिश्रम भोग आवे है. किशनगढ़के दरबार ठाकुरजीके सेवा खुद करते. पर राजकाजमें कभी सेवामें पहुँचनेमें देर हो जाती. ऐसे विलम्ब हो जाये तो क्या करना? कोईसु पूछी तो उनने बताई के कछु सामग्री अरोगानी. राजा ही तो ठहरे जब सेवामें पहुँचनेमें विलम्ब हो जातो तो एक छबड़ी भरके पेड़ा भोग धरनेको नियम बना दियो. कभी-कभी ऐसो होतो के देरीमें देरी होती तो एकके बाद दूसरी यों छबड़ीकी छबड़ी पेड़ाकी भोग आती रहती. एक दिन मुखियाजीने कही के आप तो राजा हो, आपको पेड़ाकी छबड़ियें भोग धरनेमें कोई जोर नहीं पड़े है पर ठाकुरजीको विचार तो करो अपने साथ कोई ऐसो करे तो क्या होवे दरबारकु बात सच लगी. तबसुं उनने

નયો નિયમ બનાયો. વિલમ્બકે કારણ સેવા નહીં રોકની પર ખુદ સેવામાં પહોંચ નહીં સકે વાકે દંડકે રૂપમાં દરબાર ઠાકુરજીકી રસોઈકે લકડા, મુખિયા-ભીતરીયાકે તતહરાકે લકડા બાહરસું ઠાકે અંદર પધરાતે. દેખો, યે બહોત અચ્છી બાત હૈ. પર કોઈ જઘન્ય યાકો એસો સમ્પ્રદાય ચલાવે કે સેવા નહીં કરની, લકડાં ભરતે રહનો ઠાકુરજી ફિરસુ પરેશાન હો જાવેં કે મેરો સેવક કહાં ગયો બોલે લકડા ભર રહ્યો હૈ ભાઈ, તુમ લકડાકે સેવક હો કે ઠાકુરજીકે સેવક હો તો હર બાતમાં ઉત્તમ-મધ્યમ-જઘન્ય હોવે હી હૈ. અચ્છીસુ અચ્છી બાતમાં બી યે હો સકે હૈ.

**ગો. યોગેશ :** એક સ્પષ્ટતા કરની હૈ. પદ્મનાભદાસજીને ઠાકુરજીકુ છોલા ધરે ઔર ઠાકુરજીને પ્રસન્નતાસું અરોગે. યે પદ્મનાભદાસજીકો લોકવ્યવહારાનુરોધી સમર્પણ હતો. પર આજ મથુરાધીશજીકુ અન્ય સામગ્રીનકે સાથ નિત્ય છોલા ધરે જાય હૈં વો ભગવદ્ધર્માનુરોધી સમર્પણ હૈ.

**ગો. શ્યા.મ. :** અબ બોલે!

**જયેન્દ્ર સોની :** શ્રીમહાપ્રભુજી સિદ્ધાન્તરહસ્યમાં “સાક્ષાદ્ ભગવતા પ્રોક્તં તદક્ષરશ ઉચ્યતે” એમ કહી રહ્યા છે. બીજા શ્લોકમાં “બ્રહ્મસમ્બન્ધકરણાત્ સર્વેષાં દેહજીવયોઃ, સર્વદોષનિવૃત્તિર્હિ”. હું સમજું છું કે અહીં સુધી ભગવદ્વાજ્ઞા છે. આગળ વિવરણ છે કે બ્રહ્મસમ્બન્ધ પછી શું કર્તવ્ય છે ઈત્યાદિ. તો “સાક્ષાદ્ ભગવતા પ્રોક્તં તદક્ષરશ ઉચ્યતે”ની સંગતિ કેવી રીતે થશે?

**ગો. શ્યા.મ. :** ટીકાકારો બન્ને રીતે લે છે. કેમકે “સાક્ષાદ્ ભગવતા પ્રોક્તં તદક્ષરશ ઉચ્યતે” આ વચન જ્યાં પૂર્ણ થયું તેના પછીથી “તદક્ષરશ ઉચ્યતે” એમ થશે. એને એમ પણ લઈ શકાય કે “બ્રહ્મસમ્બન્ધકરણાત્ સર્વેષાં દેહજીવયોઃ સર્વદોષનિવૃત્તિર્હિ” એ પણ ભગવદ્રચન હોઈ શકે અને પછી એનું વિવરણ પણ સાક્ષાદ્ ભગવત્પ્રોક્ત હોઈ શકે. એવું પણ ટીકાકારોએ સ્વીકાર્યું છે.

**જયેન્દ્ર સોની :** વાર્તામાં આવે છે કે બ્રહ્મસમ્બન્ધનો મન્ત્ર પણ આપ્યો. તો “તદક્ષરશ ઉચ્યતે”...

**ગો. શ્યા.મ. :** એનું કારણ તો પુરુષોત્તમજીએ બતાવ્યું જ છે કે મન્ત્ર ગોપ્ય હોવાને કારણે ગ્રન્થમાં પ્રકટ નથી કર્યું.

**જયેન્દ્ર સોની :** એટલે પૂર્વમાં હતું અને પછી એને તિરોહિત કરી દેવામાં આવ્યું?

**ગો. શ્યા.મ. :** મહાપ્રભુજીએ એને ગ્રન્થમાં પ્રકટ નથી કર્યો. “તદક્ષરશ ઉચ્યતે”ની વાત સમજો. તમે મને કહ્યું કે “આજે તમે મારા ઘરે આવો. મને તમારી સાથે ચર્ચા

કરવી છે”. કોઈ મને પૂછે તો હું કહીશ કે “જયેન્દ્રભાઈએ મને પોતાના ઘરે બોલાવ્યો છે”. કોઈને વિસ્મય થાય કે ખરેખર જયેન્દ્રભાઈ આવું કહી શકે! તો હું એમ ન કહી શકું કે “અક્ષરશઃ જયેન્દ્રભાઈએ એમ જ કહ્યું કે તમે મારા ઘરે આવો”. તમે મને જે કહ્યું હતું કે “મને તમારી સાથે ચર્ચા કરવી છે” એ મેં તેને ન કહ્યું. ફક્ત અડધો સ્ટેટમેન્ટ મેં તેને કહ્યો. એના માટે હું એમ ન કહી શકું કે અક્ષરશઃ જયેન્દ્રભાઈએ એમ જ કહ્યું હતું! ‘અક્ષરશઃ’નો મતલબ જેટલું કહ્યું એ બધું જ હું કહું એવો થવો જરૂરી નથી. પણ મેં જેટલું કહ્યું એટલું તો બધું તમારું જ બોલેલું કહ્યું છે. એમ “બ્રહ્મસમ્બન્ધકરણાત્”થી લઈને સમ્પૂર્ણ ગ્રન્થ ભગવદ્ગાય લઈ જ શકે છે.

આમ હોવાનું કારણ બતાવું. સમર્પણનો સિદ્ધાન્ત ગીતા-ભાગવત અને ઉપનિષદ્ માં પણ છે. સમર્પણનો સિદ્ધાન્ત સાધના તરીકે છે, દીક્ષા તરીકે નથી. એ છૂટ તમને ક્યાંથી મળી?

**જયેન્દ્ર સોની :** કેટલાક વિદ્વાનોનું માનવું છે કે સિદ્ધાન્તરહસ્યમાં સમર્પણ કરવાની ફક્ત આજ્ઞા જ છે, દીક્ષાની વાત નથી.

**ગો. શ્યા.મ. :** “બ્રહ્મસમ્બન્ધકરણાત્” બ્રહ્મસમ્બન્ધ કરવાથી બધા દોષો દુર થાય છે. બ્રહ્મ સાથે સમ્બન્ધ તો બધાનો છે જ તો પછી કરવાનું શું રહ્યું? જો કંઈ રહ્યું તો એ દીક્ષા જ તો રહી! દા.ત. છોકરા-છોકરી કોલેજમાં પરણવાનું નક્કી કરી આવ્યા. હવે માં-બાપે કરવાનું શું રહે?

**જયેન્દ્ર સોની :** આશીર્વાદ આપવાનું.

**ગો. શ્યા.મ. :** હસ્તમિલાપ કરાવીને આશીર્વાદ આપવાનું. એમ બ્રહ્મસમ્બન્ધ બધાનું છે જ. અસમર્પિત છે શું? અને જો ખરેખર બ્રહ્મને કંઈ અસમર્પિત હોય તો તે તરફ એ બ્રહ્મ નથી રહી જતો અને આ તરફ આપણે જીવ નથી રહી જતા. બ્રહ્મનો મતલબ એ છે કે જેને બધું સમર્પિત હોય. સિદ્ધાન્તરહસ્યની ભૂમિકામાં મેં એ શ્રુતિવચન ટાંક્યું છે. તેથી બ્રહ્મસમ્બન્ધ કરાવો એનો મતલબ દીક્ષા કરાવો એટલો જ છે. પેટમાં બચ્ચો હોય તો દાઈ પ્રસૂતિ કરાવી શકે, દાઈ બચ્ચાને પૈદા થોડી કરી શકે! હશે તો બાહર આવશે. એમ કોઈ પણ ગુરુ બ્રહ્મસમ્બન્ધ કરાવી નથી શકતો. હશે તો દીક્ષા આપી શકે છે.

**ગો. યોગેશ :** એસે મી કહ્યો હૈ કે જો જીવ પ્રભુસુ અલગ ભયે હૈં ઉનકું હી બ્રહ્મસમ્બન્ધ દેનો.

**ગો. શ્યા.મ. :** અલગ કૌનસે અર્થમેં? તાપ-ક્લેશકી વિસ્મૃતિકે અર્થમેં.

**ગો. યોગેશ :** મતલબ કે જો પ્રભુસું અલગ ભયે હૈં ઉન દૈવી જીવનકો હી બ્રહ્મસમ્બન્ધ હોવે હૈ, સબકો બ્રહ્મસમ્બન્ધ નહીં હોવે હૈ.

**गो. श्या.म.:** ये ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षाके अर्थमें. वास्तविक अर्थमें तो दैवी होवे चाहे आसुरी होवे सब कछु ब्रह्मसु सम्बद्ध ही है.

**परेश शाह :** पुरुषोत्तमजीने तो वहां तक लिख दियो है के स्वरूपयोग्यता होवे, जीव दैवी होवे तो भी यदि फलमुख्ययोग्यता नहीं होवे तो ब्रह्मसम्बन्ध नहीं देनो.

**असित शाह :** सिद्धान्तरहस्यमें एक फल समर्पणकु बतायो है. वो तो ठीक है. पर वाके अलावा दो फल और हैं. वापे ध्यान देनो चाहिये. एक तो ब्रह्मसम्बन्ध खुद फल है. आज जैसे लोट्टमें ब्रह्मसम्बन्ध ले रहे हैं, दे रहे हैं वाके कारण ब्रह्मसम्बन्धकी फलरूपताको अनुभव लेनेवालेकु नहीं होवे है. पर वस्तुतः ब्रह्मसम्बन्ध स्वयं भी एक फल ही है. जैसे नवरत्नप्रकाशमें श्रीगुसांईजी लिखे हैं के साक्षात् श्रीगोकुलाधीशके भजनको अधिकार वासु प्राप्त होवे है. और दूसरो निवेदन है. वो भी फल है. सिद्धान्तरहस्यसुं दो बातें शुरु होवे हैं : निवेदन और समर्पण. समर्पणको सन्दर्भ चतुःश्लोकीमें आवे है और निवेदनको सन्दर्भ नवरत्न, अन्तःकरणप्रबोध और विवेकधर्योश्रय-कृष्णाश्रय में भी आवे है. “निवेदनन्तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः” के फलतया निश्चिन्तता श्रीमहाप्रभुजी बतावे हैं. ऐसे ही अन्तःकरणप्रबोधमें भी “चाण्डाली चेद् राजपत्नी...कदाचिदपमानेपि मूलतः का क्षतिर्भवेत्” जीवको स्टेटस् चाण्डालीमेंसुं राजपत्नीको हो रह्यो है वो निवेदनके कारण ही हो रह्यो है. निवेदनको उपदेश सिद्धान्तरहस्यमेंसुं ही मिले है.

**गो. श्या.म.:** यामें ऐसो लगे है के जो ‘तनुवित्तजा’को सिद्धान्त है के द्वन्द्वसमासके कारण वामें एकवद्भाव आ रह्यो है ऐसे ही निवेदन, समर्पण और विनियोग में एकवद्भाव होनो चाहिये. जब निवेदनसुं समर्पणको और समर्पणसुं विनियोगको विभाजन करे हैं तो कुछ-न-कुछ लफड़ा होवे है. और इन तीनोंके अवान्तरसु व्यापारनसु एक मुख्य व्यापार बने है तो वाकी हर कक्षापे फलरूपता है और हर कक्षापे साधनरूपता है.

**असित शाह :** हां. पर वाकु सेपरेट्ली भी एड्रेस् कियो जा रह्यो है. जैसे नवरत्न-अन्तःकरणप्रबोध हैं. जैसे समर्पणको एक फल भयो के ब्रह्मता सिद्ध भई ऐसे निवेदनको अनुसन्धान रख्यो तो वाके कारण आन्तर निश्चिन्तता आयेगी.

**गो. श्या.म.:** जैसे तनुजा रहित वित्तजा या वित्तजा रहित तनुजा नहीं हो सके है ऐसे निवेदन रहित समर्पण और निवेद-समर्पण रहित विनियोग पुष्टिमार्गमें हो नहीं सके है.

**असित शाह :** आपत्कालमें हो सके है. कोईकी सेवा छूट गई तो केवल निवेदनको अनुसन्धान वो करेगो.

**गो. श्या.म.:** एक बात समझनेकी है के अनिवेदित व्यक्ति प्रभुको कुछ समर्पित करना चाहे, पुष्टिमार्गके बाहर, तो कर सके है. मर्यादामार्गमें कर सके है. ऐसे ही असमर्पितको विनियोग भी पुष्टिमार्गके बाहर कोई कर सके है. जयदेवजीने राजाके बागके फल चोरके भोग धरे हते. रामानुज सम्प्रदायके बहोत बड़े भक्तके चरित्रमें आवे है के उनको इतना भगवदावेश आयो के वो ठाकुरजीको भोग धरवेकेलिये चोरी करने गये. उनकी बराबरी कोई कर नहीं सके है. वो बहोत उच्च कोटिके भक्त हते. पर पुष्टिमार्गमें श्रीमहाप्रभुजी चोरीकी वस्तु ठाकुरजीको समर्पित करनेकी साफ मना करे हैं **“सन्मार्गोपार्जितं नान्येषां भागरूपम्”**.

**भावेश परमार :** बाधनं वा हरीच्छया!

**गो. श्या.म.:** **“बाधनं वा हरीच्छया”** भी अपने यहां सिद्धान्तकल्प थोड़ी है! वो तो अपवादकल्प है! अपवाद तो कुछ भी हो सके है. पर अपने यहां निवेदन, समर्पण और विनियोग को बाय्फर्केशन नहीं करना है, तीनोंको एकवद्भाव तनुवित्तजाकी तरह लेना है.

**असित शाह :** सूतक आदि आपत्कालमें समर्पण सम्भव नहीं है तो निवेदनको अनुसन्धान टेम्पररी कियो जा सके है.

**गो. श्या.म.:** जिन वैष्णवनसु ठाकुरजीकी सेवा निभ नहीं रही है और अपने ठाकुरजी गुरुके यहां पधरावे हैं वो अल्टिमेटली ठाकुरजीको क्या बिनती करे हैं? अब हमारो समर्पण नहीं होयगो, गुरुको समर्पण होयगो. वाको निवेदन कैसल् नहीं हो रह्यो है. कैसल् हो रहे हैं समर्पण और विनियोग. **“अङ्गीकृतिश्च नित्या”** न्यायसुं निवेदन तो लास्टिंग् है. यासु ही **“निवेदनन्तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः”** कही है. समर्पण-विनियोग नहीं कर पा रहे हो तो चिन्ता मत करो, निवेदनको स्मरण रखो. वो भी फलात्मक है. पर यदि समर्पण-विनियोग कैसल् नहीं भये हैं तो निवेदनको पर्यवसान समर्पणमें होना ही चाहिये और निवेदन-समर्पणको पर्यवसान विनियोगमें होना ही चाहिये. या तरहसु इन तीनोंको एकवद्भाव है.



## तृतीय दिवसीय उपक्रम

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी

कल अपनने यमुनाष्टक, पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद और सिद्धान्तरहस्य इन तीन ग्रन्थनपे लिखे गये पत्रपे विचार कियो. यमुनाष्टकके पत्रपे एक चर्चा या विषयपे भई हती के श्रीयमुनाजीके तुर्यप्रिया या स्वामिनी स्वरूपकी लीलाको निरूपण उपलब्ध नहीं होवे है. वामें ये बात तो सच्ची है के भागवतमें तो वा विषयको निरूपण नहीं मिले है. पर सर्वथा निरूपण नहीं है ऐसी बात भी नहीं है. दाउजीकी रासक्रीडाके प्रसङ्गमें यमुनाजीके आधिदैविक स्वरूपके प्राकट्यको निरूपण भागवतमें भयो है वापे शरद्बावाने ध्यान दिवायो हतो. पर फिर भी प्रियाके स्वरूपको वर्णन तो भागवतमें नहीं है.

या चर्चामें अपनने ये देख्यो के यमुनाजी प्रभुकी पुष्टिशक्तिको प्राकट्य है और राधाजी आत्मरतिको प्राकट्य है. आत्मरति भक्तनकु कृष्णके तरफ अग्रसर होनेकेलिये डायनेमिक् फोर्स प्रोवाईड करे है. पर जो डायनेमिक् फोर्स प्रोवाईड करतो होवे वो ऑल्मोस्ट अन्तर्यामीके जैसो होवे है. अन्तर्यामी भी अपने भीतर डायनेमिक् फोर्स है. अपनी यदि दुर्वासना है तो अन्तर्यामी दुर्वृत्तकेलिये गाईडलाईन देगो और अपनी यदि सद्वासना है तो वो सद्वृत्तकेलिये गाईडलाईन देगो. यासुं श्रीमहाप्रभुजीने कही है के अन्तर्यामीकु भक्तिपूत करनो चाहिये. भक्तिपूत माने भक्तिसुं अन्तर्यामीकु शुद्ध करनो. भक्तिके जलमें अन्तर्यामीकु स्नान करवाके एक बखत अपरसमें ले आओ तो अन्तर्यामी कभी मिसगाईड नहीं करेगो. भक्ति कहो के पुष्टिभक्ति कहो. यदि पुष्टिभक्ति कहें तो यमुनाजीसु अन्तर्यामीकी शुद्धि अपन सजेस्ट कर सकें. यमुनाजीसु यदि अन्तर्यामी शुद्ध हो जावे तो फिर वो अपनकु कभी मिसगाईड नहीं कर सके है. तो अन्तर्यामी डायनेमिक् फोर्स होते भये भी भक्तिपूत नहीं होनेपे अपनकु जैसे मिसगाईड कर सके है ऐसे आत्मरति भी भक्तिपूत नहीं होनेपे कृष्णमार्गमें अपनकु मिसगाईड कर सके है. पर वो अपनकु तब मिसगाईड नहीं करे है के जब श्रीशक्ति अपनकु डायनेमिक् मोटिवेशन देती होवे और पुष्टिशक्ति अपनकु भगवान्के तरफ ले जाती होवे “न दुर्लभतमारतिर्भूररिपौ मुकुन्दप्रिये” न्यायसु. पुष्टिशक्ति क्योंके गूढ है वासु यमुनाजीको वो स्वरूप भी गूढ होवे तो कोई चिन्ताकी बात नहीं है. या विषयमें एक बात ध्यानमें

लेनी चाहिये जो कल मैं नहीं कह पायो हतो के ये बात सच है के यमुनाजी आधिदैविक स्वरूपसुं कृष्णलीलामें सम्मिलित भये हों ऐसो वर्णन नहीं मिले है पर भागवतके अलावा भी ब्रह्मवैवर्त आदि अनेक पुराण हैं। उन सबको अच्छी तरहसुं अवलोकन किये बिना सहसा ऐसे निर्णयपे पहुँचनो जल्दबाजी कहलायेगी यमुनाजीको चतुर्थप्रियाको स्वरूप कहीं मिले नहीं है।

दूसरी बात श्रीयमुनाजीके स्वरूपके बारेमें खास ध्यानमें रखनेकी ये है के यमुनाजी यमानुजा हैं, सूर्यपुत्री हैं वाको वर्णन ऋग्वेदमें भी मिले है। पर वहाँ 'यमुना' नामसु नहीं होके 'यमी' नामसुं वर्णन आवे है। यम-यमी संवाद प्रसिद्ध है। वामें यमुनाजीको केरेक्टर् वेम्पायर् टाईपको बतायो है। अच्छो केरेक्टर् नहीं बतायो है। वो यमी और यमुना एक ही है के अलग हैं ये भी विचराणीय है। यदि एक है तो यमुनाजीको आधिदैविक स्वरूप ऋग्वेदमें भी प्राप्त होवे है ये अपन कह सके हैं। और यमी और यमुना भिन्न हैं तो फिर अपनकु पुराणान्तरमें खोजनो रह्यो।

यमीके अलावा यमुनाको वर्णन नदीके रूपमें वेदमें भी मिले है “इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुण्या, असिक्क्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया”। और यास्क मुनिने स्पष्ट कह्यो है के वेद जाकी स्तुति करे है उन सब तत्त्वनको आधिदैविक स्वरूप होवे ही है। अग्नि, वायु, जल, पृथ्वि आदि की स्तुति वेदमें आवे है। इन सबके कोरोस्पोन्डिंग् देव हैं। और स्तुति भौतिक तत्त्वन्की नहीं करी जावे है, आधिदैविक स्वरूपकी ही स्तुति करी जावे है ये वेदको स्पष्ट सिद्धान्त है। तो पुराण यदि वर्णन नहीं भी करतो होवे तब भी “इमं मे गङ्गे यमुने” श्रुतिमें ‘शृणुह्या’ “मेरी बात सुनो” कह्यो है तो वो बहती भौतिक नदिकु तो कह्यो नहीं जा सके है! तो वेद प्रिज़्यूम करके चलयो है के यमुना ही नहीं गङ्गा, सरस्वति, शुतुद्रि आदि सबको कोई एक ऐसो स्वरूप है के जो अपने द्वारा करी जाती स्तुतिकु सुने है। और वो सब देव एक हैं के अलग-अलग, वाके बारेमें तो यास्कने बहोत सुन्दर कही है के महाभाग्य जाको होवे वाकु एक देवता स्फुरित होवे है। दुर्भाग्यशाली लोगनकु अनेक देवता स्फुरित होवे हैं। “महाभाग्याद् एका देवता सर्वत्र स्तूयते”। एक ब्रह्मके ये अनेक आधिदैविक रूप हैं ये वेदकी दृष्टिसु समझनेमें कोई समस्या नहीं होनी चाहिये। नेपालकी यात्रामें हम गये हते तब नेपालमें भी हजार साल पुरानी यमुनाजीकी मूर्ति हमने देखी हती। और वासु भी ढेड हजार साल पुरानी

यमुनाजीकी मूर्ति एलोरामें है. काठमंडुसु महाराष्ट्रके ओरंगाबाद तक और वासु भी आगे दक्षिणमें भी उत्खननमें आर्कियोलोजिस्ट्सकु यमुनाजीकी मूर्तियें प्राप्त भयी हैं. तो यमुनाजीको देवी स्वरूप अपने यहां हजारन सालसु पूजित है. इतनी बात जरूर है के अपनने जा तरहसु यमुनाजीको स्वरूप कृष्णको शृंगार धर्यो भयो खोज्यो है वो लोकप्रसिद्ध नहीं है. ये स्वरूप शुद्ध पुष्टिमार्गीय है. क्योंकि मुकुट-काछनीको ठाकुरजीको शृंगार भारतमें कहीं प्रसिद्ध नहीं हतो. वो तो श्रीमहाप्रभुजी-श्रीगुसांईजीने अपने भावसु शृंगार धराये हैं. वैसे प्राचीन कालसु यमुनाजीके दोनों तरहके चित्र मिले हैं : साडी धरे भये और ठाकुरजीके जैसे मुकुट-काछनी धरे भये.

दूसरी चर्चा कल गूढताके विषयपे भई हती. 'गूहन'को भूतकृदन्त 'गूढ' होवे है. जैसे गत, कृत आदि. 'गूढ'को मतलब है : छिप्यो भयो. गूढको विरोधी प्रकट है. 'कटे'वर्षावरणयोः. 'कट'को मतलब आवरण होवे है. जापेसु आवरण हट गयो है वो 'प्रकट' कह्यो जाय है. और जो आवृत्त है वो गूढ है. यामें ध्यान देनेकी बात ये है के ये दोनों रिलेटिव होवे हैं. कोई भी प्राकट्य या गूहन कभी भी एक्सोल्युट हो नहीं सके है, रिलेटिव ही होवे है. कोई रिलेशनमें कोई वस्तु छुपी भई होवे है, कोई रिलेशनमें कोई वस्तु प्रकट होवे है. जैसे जानवरनकु रातके अंधेरेमें बहुत कछु दिखलाई देवे है पर अपने लिये वो गूढ होवे हैं. अपनकु जितने रंग दिखलाई देवे हैं उतने रंग जानवरनकु दिखलाई नहीं देवे हैं. तो जो अपनेलिये प्रकट है वो जानवरनकेलिये गूढ है. या दृष्टिसु सोचें तो ये सहज सम्भव है के अपने या पुराणन के रिलेशनमें कोई बात गूढ होवे तो होनेदो. पर महाप्रभुजीके रिलेशनमें श्रीयमुनाजीको प्रिया स्वरूप एकदम प्रकट है. मन्त्रको साक्षात्कार करनेवालो 'ऋषि' होवे है. ऐसे श्रीयमुनाजीके ऐसे स्वरूपको दर्शन करनेवाले श्रीमहाप्रभुजी ऋषि हैं.

अब रही बात ये के सम्प्रदायेतर लोगनकु ये बात कैसे समझानी. तो सम्प्रदायेतर लोगनकेलिये ये बात गूढ रहे वामें ठाकुरजीकु भी रुचि है और श्रीमहाप्रभुजीकु भी रुचि है. क्योंकि "अधिकारी पांखे अे वाणी नहीं कोने उच्चार". जो जाको अधिकारी नहीं है वाके सामने वो स्वरूप प्रकट ही नहीं करनो चाहिये.

दूसरी चर्चा भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण और लौकिकव्यवहारानुरोधी समर्पण के विषयमें भई हती. या विषयकी चर्चा होनी अत्यन्त जरूरी हती. कुछ बात वा सन्दर्भमें



मैं बतानो चाहूँ हूँ. मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है. क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है यासु वाकु पडौसीकी जरूरत है. याके दो स्वरूप बने हैं : पडौसीकु मेरी जरूरत है और मोकु पडौसीकी जरूरत है. दोनों भिन्न-भिन्न धर्मानुरोधी भाव हैं. अपने यहांकी टर्मिनोलोजीमें सोचें तो पहलो भाव अहंकारधर्मानुरोधी है और दूसरो भाव ममताधर्मानुरोधी है. भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण और लौकिकव्यवहारानुरोधी समर्पण कु याके सन्दर्भमें सोचें. पुरुषोत्तमजीने भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणकु ग्लोरिफाय् कियो है और लौकिक.समर्पणमें कुछ नेगिटिविटी सोची है. ऐसे या दृष्टान्तमें भी अपन सोच सके हैं के तुम इतने महत्वपूर्ण हो के तुम्हारी जरूरत पडौसीकु है और तुम कितने दीन हो के तुमकु पडौसीकी जरूरत है. इन दोनोंकु मिलाके कितनी केटेगरी बने है वो देखो. “मोकु पडौसीकी जरूर है”ये अपनो भाव भी हो सके है, बोध भी हो सके है और व्यवहार भी हो सके है. ऐसे ही “पडौसीकु मेरी जरूर है” ये भी भाव, बोध और व्यवहार हो सके है. दो देखो, एक व्यक्तिके भीतर पडौसीकी आवश्यकताके छे प्रकार हो गये. आवश्यकता समर्पण तक जायेगी ये ध्यानमें रखियो. जाकी आवश्यकता है वाके प्रति अपन समर्पित होंगे. ये अनिषिद्ध छे प्रकार हैं. ऐसे ही निषिद्ध दो प्रकार भी हो सके हैं जब मैं अहंकारातिरेकसु कहूँ के “मेरे बिना तो पडौसीको काम ही नहीं चल सके है”. ऐसे ही स्वार्थातिरेकसु जब मैं पडौसीकी आवश्यकताको अनुभव करतो होउं तो वो भी निषिद्ध प्रकार बनेगो. या सन्दर्भमें एक जोक याद आयो. एक पडौसी दूसरेके पास जाके घास काटवेकी मशीन मांगे है. पडौसी कहे है के तुम तो मेरे पडौसी हो, तुमकु मैं ना कैसे कह सकुं! जरूर दउंगो. पर याद रहे याकु मेरी लोनके बाहर मत ले जईयो! मतलब क्या भयो? मेरी लोनकी घास तुम काटो पर मेरी मशीन तुम्हारी लोनकी घास नहीं काटेगी. अपने यहां भी ऐसी दुर्घना भई है. अभी-अभी शातिर जौधपुरीको विधान आयो है. वो कहे है के “तनुजा-वित्तजा दो सेवाएं हैं. जिनसु घरमें सेवा नहीं निभती होवे उनकु मंदिरमें आनो चहिये, मनोरथ कराने चहिये”. ठीकी बात है. पर यामें गूढ रहस्य ये है के ये सिद्धान्त केवल वैष्णवपे लागू होवे है, महाराजपे लागू नहीं होवे है. मतलब ये के वैष्णव हवेलीनमें पैसा देतो रहे और महाराज लोग लेते रहें. पर यदि सिद्धान्तकी बात है तो जैसे वैष्णवकु महाराजके यहां पैसा देने चहिये ऐसे महाराजकु भी तो वैष्णवके यहां पैसा-भेट लिखवाने चहिये! पर वो नहीं सम्भव है. तो देखो, गड़बड़ हो गई न! ये सब बातें भगवद्धर्मानुरोधी समर्पणके नामपे हो रही हैं. ठाकुरजी दैवी द्रव्यको समर्पण स्वीकारवे बिराजे हैं. तो क्या केवल हवेलीके ही ठाकुरजी दैवी द्रव्यको समर्पण स्वीकारवे बिराजे हैं? वैष्णवनके घर बिराजते ठाकुरजी

दैवी द्रव्यको समर्पण स्वीकारवे नहीं बिराजे हैं? ये स्वार्थातिरेक है. स्वार्थातिरेकके कारण भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण भी निषिद्ध कोटिको हो गयो. तो समर्पण भी भावरूप, बोधरूप, व्यवहाररूप और निषिद्ध ऐसे चारों प्रकारको हो सके है. भगवद्धर्मानुरोधी समर्पण और लौकिकव्यवहारानुरोधी समर्पण के ये चार-चार प्रकार मिलके कुल आठ प्रकार बनेंगे. इन आठ प्रकारनूके पर्म्युटेशन-कोम्बिनेशनसु पाछे अनेक प्रकार बन सके हैं. जैसे बोध सहित व्यवहार, व्यवहार रहित बोध, बोध रहित व्यवहार और भाव(परे जैसे), भाव रहित बोध और व्यवहार... फेस् वेल्युपे पुरुषोत्तमजीकी पंक्ति बहोत सिम्पल लगे है पर ये बात उतनी सिम्पल नहीं है बहोत कोम्पलेक्स है.



# વિવેકધૈર્યાશ્રય ગ્રન્થમાં ફળ

રસિક શાહ

## પ્રાસંગિક :

શ્રીસુબોધિનીજી, આશુભાષ્ય, નિબન્ધ, વિદ્વનમંડન વગેરે ગ્રન્થો આપણા સંપ્રદાયની સમ્પૂર્ણ સમજ તેમજ શાસ્ત્રીય સિદ્ધાન્તના ગૂઢાર્થ વગરના ગમ્ભીર અધ્યયન માટે અત્યન્ત અગત્યના ગ્રન્થો છે. તેમાં ડોકિયું કરવાની મારી હેસિયત નથી, ત્યારે ડુબકી મારવાની તો કલ્પનાતીત કથા છે. કૃપા વરસતી રહે તો કદાચ આવતા જન્મોમાં શક્ય બને. કહેવાનું એ કે આ આલેખમાં મેં તે ગમ્ભીર ગ્રન્થોનો આશરો લીધો નથી. મેં વિચાર્યું કે પ્રાચીન ટીકાકારોએ, આધુનિક આચાર્યોએ વિવેકધૈર્યાશ્રય ગ્રન્થ ઉપર ટીકા-વિવેચન કર્યાં છે તેમાં તે બધા ગ્રન્થોનો નીચોડ આવીજ જાય છે. આથી મેં આ લેખમાં પ્રાચીન આચાર્યોની ટીકાઓ, પૂ.ગો.શ્રીશ્યામમનોહરજીના લેખો તથા પૂ.ગો.શ્રીશરદ્દેવજીના ગ્રન્થો નો આધાર લીધો છે.

## ઉપક્રમ :

કોઈ પણ નવી મોટી ઔદ્યોગિક સંસ્થા જ્યારે પોતાની બનાવટ બજારમાં પહેલી વખત પેશ કરતી હોય ત્યારે જાહેરાત કરતી હોય છે. જાહેર ખબરમાં પહેલાં તે પોતાની છબી (પ્રોફાઈલ) રજુ કરે છે. જાહેરાતમાં તેઓ જણાવતા હોય છે કે અમારા સંચાલકો આટલા અનુભવી છે, શિક્ષિત છે, ધંધાના સારા જાણકાર છે, અમારા તજજ્ઞોએ આ માલ બનાવવાની ખાસ તાલીમ લીધી છે, અમારી મશીનરી અને માલ બનાવવાની પદ્ધતિ આધુનિક છે અને માલ બધા પરીક્ષણમાંથી પાર ઉતરેલ છે.

મને અન્તરથી ઈચ્છા થઈ જાય છે કે આપણા સમ્પ્રદાયની પણ આવી એક છબી પ્રકટ કરવી જોઈએ. આપણી પાસે અનોખા એવા મૂળ આચાર્યો છે, અતિ વિવક્ષણ તત્ત્વજ્ઞાન છે, સ્વતંત્ર નિરુપાધિક ભક્તિ, સર્વાનન્દમયી ઉત્કૃષ્ટ સેવાસાધના, ઉચ્ચતમ ફળની સમૃદ્ધ સામગ્રી છે. જો આવી પ્રોફાઈલ આપણે પ્રસ્તુત કરી શકીએ તો મને વિશ્વાસ છે કે આપણા સમ્પ્રદાયના ઉંબરા ઊપર ઉભેલા હજારો નહિ બલ્કે લાખો પુષ્ટિમાર્ગીય જીવો ભૂસકો મારીને અન્દર આવી પડશે.

મોટી કંપનીઓની જેમ અહિં એક સાવધાની રાખવી પડશે કે જે સમયે જે પ્રજાને જેની જરૂરીયાત હોય તે પ્રમાણે તેને અનુકૂળ અને આકર્ષક રીતે રજુઆત કરવી

આવશ્યક બને. બધું બરોબર હોય, માલ પણ ઉત્કૃષ્ટ બન્યો હોય તો પણ વસ્તુઓ અસ્તવ્યસ્ત પડી હોય, ભાવની પણ કોઈ જાણવાની વ્યવસ્થા ન હોય તો બધું વ્યર્થ થાય છે.

આવી છબી પ્રસ્તુત કરતી વખતે વ્યક્તિએ ષોડશગ્રન્થને સતત બેકગ્રાઉન્ડમાં રાખવા જ પડશે. કોઈ પણ જીજ્ઞાસુ જો ષોડશગ્રન્થનું રહસ્ય, તેનો આશય સારી રીતે સમજી જાય તો માર્ગના સિદ્ધાન્ત અને કર્તવ્ય નું પર્યાપ્ત જ્ઞાન તેને મળી જાય. હકીકતમાં ષોડશગ્રન્થમાં માર્ગની મુખ્ય સાધના પ્રણાલી-સેવા, તેમાં આવતી પ્રતિકૂળતા અને અનુકૂળતા - આધિભૌતિક આધ્યાત્મિક અથવા આધિદૈવિક નું - તે વખતનો વ્યવહાર, તેમાં જરૂરી ભાવના અને ભાવ અને અન્તે તેમાં મળતું ફળ - અલૌકિક સામર્થ્ય અને/અથવા વૈકુણ્ઠાદિમાં સેવોપયોગિ દેહ - વગેરે વિષયો, સિદ્ધાન્ત અને કર્તવ્ય સહિત સમજાવવામાં આવ્યા છે. તદ્ઉપરાંત સેવા ન નભી શકે તેના અનુકલ્પમાં કથા અને તે પણ શક્ય ન હોય તો શરણાગતિ એમ ઉપદેશ મળે છે.

આ આલેખનો વિષય છે “વિવેકધૈર્યઆશ્રય ગ્રન્થમાં ફળ”. અહીં, આશ્રય કે જેને ફળ તરીકે વર્ણવવામાં આવ્યો છે તેનો વધારે વિગતથી વિચાર કરવામાં આવ્યો છે. જ્યારે વિવેક અને ધૈર્ય એના અંગરૂપે હોવાથી હળવાશથી વર્ણવવામાં આવ્યાં છે. શક્ય છે કે વિષય વહેંચનારના આશયથી કદાચ જુદો હશે, તો પણ મારો આશય અહિં માર્ગીય સિદ્ધાન્ત પ્રત્યેક સામાન્ય વૈષ્ણવ સુધી સરળતાથી પહોંચે તે છે. વ્યક્તિની માનસિકતા, તેનામાં રહેલી ગ્રહણશક્તિ અને સંજોગો તેને વિષય સમજવામાં અને આચરણમાં મુકવા સહાયક થતા હોય છે. ગ્રન્થોપદેશ તેને અમુક મુકામ સુધી લઈ જાય છે. પછીની મુસાફરી તેણે પોતાને કરવાની હોય છે. તે વખતે તેનો માર્ગ તેના વ્યક્તિત્વના આધારે નક્કી થશે (સંજોગટીવ બની જશે). તે માટે તેને આત્મપરીક્ષણ કરી પોતાની ક્ષતિઓ અને આવડત તારવી લેવી પડશે. તે વખતે તેણે પોતાની જાતને પોતાના સ્વભાવને પોતામાં રહેલી ખુબીઓને ઓળખવાની હોય છે. પોતાની વાસનાઓને પીછાણવાની હોય છે. એને પોતાને જાણ નથી હોતી કે તેનાથી આમ કેમ વર્તીઈ જાય છે. આટલા સંકલ્પ કર્યા પછી વ્યવહાર અને વ્યસન કેમ બદલાતાં નથી ? તે નિરાશ થઈ જાય છે, જે તેને હાથ ઝાલનારો કોઈ ન મળે તો આ બધું મારા માટે નથી એમ માની બધું છોડી દે છે. ક્યાં રાજા ભોજ અને ક્યાં ગાંગો તેલી ? ક્યાં ટજ વૈષ્ણવ અને ક્યાં હું ? પછી જ્યાં જે પ્રકારથી સંતોષ થતો હોય ત્યાં ગોઠવાઈ જાય છે. અથવા તો મંદીર અને મનોરથ ના ભીડ અને ઝાકળમાળ જોઈ ત્યાં ભળી જાય છે અથવા પીર-ફકીરના ચક્કરમાં પડી જાય છે. આને માટે જવાબદાર કોણ ? આપણે મહાપ્રભુજીને શું જવાબ આપીશું ? આપણો સમ્પ્રદાય એક માંદુ એકમ છે (સિક્ક યુનિટ) છે તેને થાગડ-થીગડથી નહિ ચાલે. ચારેય

બાજુથી પાયાસહિત સમારવું પડશે. મોટું સહાય પેકેજ જોઈશે.

સાચું કેવી રીતે સમજાય ? તત્ર આકાંક્ષા ગુરોર્ભવિત્. સામાન્ય વૈષ્ણવની, વ્યક્તિશઃ અથવા વિભાગશઃ, ઉપદેશોની અમલબજાવણીમાં આવતી અડચણો તથા તેના સચોટ સરળ સૈદ્ધાન્તિક ઉપાય શોધી તેના સુધી પહોંચાડવા એ કદાચ આજની તાતી જરૂરીઆત છે.

### વિવેચન:

આપણે આગળ જોયું કે પુષ્ટિ સમ્પ્રદાયને સમજવા માટે ષોડશગ્રન્થ પાયાના ગ્રન્થો છે. મને લાગે છે કે તેમાં પણ ‘વિવેકઘૈર્યાશ્રય’ ગ્રન્થનું ખાસ મહત્વ છે. ‘સિદ્ધાન્તમુક્તાવલી’માં સેવાનાં બાત્યાંગોની ચર્ચા આવે છે. તે બાત્યાંગો બરાબર નભતા રહે અને સેવા વ્યગ્રતા વિના એકાગ્ર ચિત્તથી ચાલતી રહે તે માટે ‘વિવેકઘૈર્યાશ્રય’ ગ્રન્થ સમજવો ખુબ જરૂરી છે. એમ પણ કહેવાય છે કે નવરત્નમાં કહેલ ભગવદ્દીયોને થતી ચિન્તાના ઉપાયોનો વિસ્તાર આ ગ્રન્થમાં કરવામાં આવ્યો છે. એક બીજી ખાસિયત આ ગ્રન્થની એ છે કે સેવાનાં સમય ઉપરાન્ત માણસના સામાન્ય જીવનમાં આવતી અશક્તિ દૂર કરવામાં પણ સહાયક થાય છે. આવો આ મનોવૈજ્ઞાનિક ગ્રન્થ છે.

અહિં વિવેક-ઘૈર્ય એક અને આશ્રય બીજી એમ બે કોટી ગણવામાં આવી છે. વિવેક-ઘૈર્ય સિદ્ધ થવાથી આશ્રય સિદ્ધ થશે અને જો ભગવત્કૃપાથી આશ્રય સિદ્ધ થઈ જાય તો વિવેક-ઘૈર્ય આપોઆપ સિદ્ધ થઈ જશે.

### વિવેક :

હવે આપણે વિવેક વિષે વિચાર કરશું. શ્રીમહાપ્રભુજીએ વિવેકની પરિભાષા પોતાની આગવી આપી છે. વ્યાખ્યા પ્રમાણે “વિવેકસ્તુ હરિઃ સર્વં નિજેચ્છાતઃ કરિષ્યતિ” હરિ, બધાનું દુઃખ હરનાર, બધું પોતાની ઈચ્છા પ્રમાણે કરે છે. એમ આપશ્રી કહે છે. શ્રીમહાપ્રભુજી પોતાના શુદ્ધાદ્વૈતવાદના સિદ્ધાન્તની સીધી પરિણતિ અહિં સમજાવી રત્યા હોય તેવું લાગે છે. બ્રહ્મ પોતે પોતાનામાંથી પોતાની ક્રીડા માટે, રમણ માટે આ સૃષ્ટિ રચી પોતેજ બધું બનીને રત્યો છે. આથી સ્પષ્ટ થઈ રત્યું છે કે બ્રહ્મ સિવાય બીજાની ઈચ્છાનો પ્રશ્ન જ આવતો નથી અને આવતો હોય તો તેની ઈચ્છાના દાયરામાં રહીને જ આવે છે.

મહાપ્રભુજી જીવને સમજાવી રત્યા છે કે આ હકીકતને તું બરાબર સમજ જા.

આગળ આપ આજ્ઞા કરે છે કે તને આ સમજાયું છે, તેવી સમજ આવી છે તે કેમ સમજાશે ? તો કહે છે કે જ્યારે તારું અને આખા બ્રહ્માણ્ડનું બધુંજ હરિ જ કરી રહ્યા છે એ સિદ્ધાન્ત તારામાં હૃદયાડઢ થશે. જ્યારે તને સમજાશે કે આ સૃષ્ટિમાં સર્વત્ર બધું તેનું જ છે અને તેનામાં સર્વ કર્તુમ્-અકર્તુમ્-અન્યથાકર્તુમ્ સામર્થ્ય છે તો પછી પ્રાર્થના કરવાનું કોઈ કારણ રહેતું નથી. એમ કરવાથી તો ઉલ્ટાનું સ્વામીના સામર્થ્યમાં સર્વજ્ઞાતામાં અવિશ્વાસ ઘોષિત થાય છે. તેથી પ્રાર્થનારહિત થવું તે પહેલો વિવેક છે.

શ્રીમહાપ્રભુજી જીવસ્વભાવ જાણી સાવધાન કરી રહ્યા છે. આખરે તો તું જીવ છે તેથી તારામાં અભિમાન આવવાની સમ્ભાવના છે કે મારા સામર્થ્યથી મારામાં પ્રાર્થનારહિતતા આવી છે. ત્યાં શ્રીમહાપ્રભુજી કહે છે કે તું ભૂલીશ નહિ, બધું સ્વામીને અધીન છે, તું અને તારું કર્તવ્ય પણ, અભિમાનનો ત્યાગ કર. અત્રે એ પણ ફલિત થાય છે કે અભિમાનથી આવેલ પ્રાર્થનારહિતતા બીનઉપયોગી છે તેમ ઈશ્વરને ન માનનારને પ્રાર્થના કરવાનો અવસર જ રહેતો નથી તો તે કારણે આવતી પ્રાર્થનારહિતતા, પ્રાર્થનારહિતતા કહેવાતી નથી. અને ત્રીજું જ્યારે માણસની બુદ્ધિ મરી જાય છે તેને કોઈ કાર્યની સુધી રહેતી નથી તો તે વેળાની તેની પ્રાર્થનારહિતતા સાચી પ્રાર્થનારહિતતા રહેતી નથી. ફક્ત સ્વામીઅધીનતા સાથેની પ્રાર્થનારહિતતા સાચી પ્રાર્થનારહિતતા છે.

હવે વિવેકધૈર્યાશ્રય ગ્રન્થમાં શ્રીમહાપ્રભુજી પોતાનાને એક આપવાદિક સમ્ભાવના દર્શાવી રહ્યા છે. આપશ્રી આજ્ઞા કરે છે કે ઈશ્વરને આધીન રહી તું સેવા/ભક્તિ નીભાવતો-નીભાવતો ઉદાસીનતાથી તારા આવશ્યક લૌકિક-વૈદિક કર્મો કરતો-કરતો, જીવનનો આનંદ લેતો જા. પરંતુ તુ ભક્ત છે અને ભગવાન તારા પર કૃપા કરી તારા અન્તઃકરણને સમજાય તેવી કોઈ કાર્ય કરવાની વિશેષ આજ્ઞા કરે તો તેનું પાલન કરજે, લૌકિક અથવા દેહ સમ્બન્ધિ ન હોય તો જ તું અને ભગવદાજ્ઞા સમજી પાલન કરજે, નહિં તો સમ્ભવ છે કે તે તારી વાસનાનો પડઘો હશે. વળી આગળ શ્રીમહાપ્રભુજી આશ્વાસન આપે છે કે આજ્ઞાપાલનનું તારું અસામર્થ્ય હોય, આપદ્ગતિ હોય તો આજ્ઞા ઉલ્લંઘનના અપરાધની ચિન્તા નહિ કરતો, આજ્ઞાપાલનની હઠ નહિ કરતો. આજ્ઞા આપનાર પણ એ છે અને અસાધારણ સંજોગો પેદા કરનાર પણ એ જ છે તેથી ઉલ્લંઘનનો અપરાધ થતો નથી.

અન્તમાં આપશ્રી જીવના ખભે હાથ મુકી સ્નેહ પૂર્વક સમજાવે છે કે આ બધું સાંભળીને મુંઝાઈ જતો નહિ, અકળાતો નહિ. હવે હું તને ઉપાયોનું પ્રથમ પગથિયું, ક્યાંથી તારે શુરૂઆત કરવાની છે તે કહું છું. કાર્યની શરૂઆત કરતાં પહેલાં ધર્મ શું છે અને અધર્મ શું છે તે જાણી લે. જાણવાનો પ્રયાસ કર અને અર્ધમનો ત્યાગ કરી ધર્મનું પાલન

કરવાનો પ્રયત્ન કર. અહિં પણ દૈવોદ્ધારપ્રયત્નાત્મા અનુમતિ આપે છે કે તારી અશક્તિ હોય અસામર્થ્ય હોય તો ધર્મ પાલનનો આગ્રહ નહીં રાખતો “હરિઃ સર્વં નિજેચ્છાતઃ કરિષ્યતિ” એ વિવેક લક્ષ્યમાં રાખી અનાગ્રહી થઈ યથાશક્તિ પાલન કરતો રહેજે.

**ધૈર્ય :**

શ્રીમહાપ્રભુજી વિવેક પછી ક્રમમાં ધૈર્ય સમજાવી રહ્યા છે. વિવેક ન સમજાય તો ધૈર્ય ધારણ કરવું ઘણું અઘરું પડે તેથી આ ક્રમ લીધો હોય તેવું લાગે છે. વિવેકની જેમજ આપશ્રીએ ધૈર્યની પણ પરિભાષા આપી છે. “ત્રિદુઃખસહનં ધૈર્યમ્” આધિદૈવિક આધ્યાત્મિક અને આધિભૌતિક આ ત્રણે પ્રકારના દુઃખ સહન કરવા તે ધૈર્ય છે.

શુદ્ધાદ્વૈત બ્રહ્મવાદના સિદ્ધાન્તમાંથી આ પણ ફલિત થતું હોય તેવું લાગે છે. જો ભગવાને પોતાના રમણને માટે પોતામાંથીજ પોતે સૃષ્ટિની રચના કરી હોય અને પોતેજ તેના કર્તા કારયિતા હોય અને દૈવી જીવોના ઉદ્ધારની ખાત્રી હોય તો જીવે તેનામાટે જે પાત્ર ભજવવાનું નિશ્ચિત થયું હોય તે સારામાં સારી રીતે નિશ્ચિંત થઈ ભજવવું રહ્યું. ભગવાને જે વ્યવસ્થામાંથી પસાર કરી તેનો ઉદ્ધાર કરવાનું નક્કી કર્યું હોય તેમાંથી તેણે પસાર થવું જ રહ્યું. તેનું હિત જ્યાં જે રીતે સમાયેલું હશે તેમ જ તે કરશે કરાવશે.

તેથીજ મહાપ્રભુજી કહે છે કે તારા જીવનમાં સુખદ અને દુઃખદ ઘટનાઓ આવે તેને સહન કરજે. વિના વિરોધ જે અનુભવ થાય તે થવા દેજે. ચિત્તને વ્યગ્ર થવા દઈશ નહિ. નહિ તો સેવામાં બાધક થશે, સ્વધર્મહાનિ થશે. તે દુઃખ ક્યારે જશે તેનો વિચાર ન કરીશ. તે જ્યારે જે પ્રકારે જવાનાં હોય ભગવદિચ્છા તેને આજીવન આપવાની હોય તો ત્યાં સુધી “આમૃતેઃ સર્વતઃ સદા” સહન કરતો રહેજે. ઠાકારોજની સૃષ્ટિલીલાનો આ એક ભાગજ છે. તેથી આપશ્રી સહન કરવાના ઉપાય બતાવે છે, દુઃખનિવૃત્તિના નહિ. ઉદાહરણ આપે છે :

(૧) તકવત્ - અપહરણ કરનાર રાજાને મારી પતિ પાસે આવે છે તો પતિ મૃત્યુ પામેલો મળે છે. વેશ્યાનું જીવન જીવવાની ફરજ પડે છે તો તેનો જ પુત્ર ઘરાક બને છે. પછી પશ્ચાતાપ કરી બન્ને અગ્નિસ્નાન કરવાનો પ્રયાસ કરે છે ત્યારે પુત્ર મરાણ પામે છે પણ તે બચી જાય છે. બચાવનાર ભરવાડને ત્યાં રહે છે ત્યારે તેની છાશ ઢોળાઈ જાય છે. તે વિચાર કરે છે કે જીવનમાં આટલાં મોટા દુઃખ આવ્યાં અને ગયાં તો આ છાશ માટે શું રડવાનું ? મહાપ્રભુજી જીવને સમજાવી રહ્યા છે તારા જીવનમાં અનેક દુઃખદ ઘટનાઓ આવી હશે અને ગઈ હશે, તેનો વિચાર કરીને આવેલ દુઃખને સહન કર. દુઃખી થવાનો

આગ્રહ રાખીશ નહિ અને આવે તો વિચલિત થઈશ નહિ.

(૨) દેલવત્- આપશ્રી સમજાવે છે કે તું એમ નહિ માનતો કે દેલ સમ્પૂર્ણપણે તારો છે, રાષ્ટ્રની તારા દેલ પર માલિકી છે, આપઘાત કરવો એ ગુનો છે! તારાં મા-બાપનો તારા પર હક્ક છે, સમાજનો તારા પર હક્ક છે, તેમણે પણ તારામાટે કાંઈ કર્યું છે. તારા કુટુંબીઓએ તારામાટે કાંઈ કર્યું છે અને તારી પણ તેમના તરફ કાંઈ જવાબદારી છે. તો તારા દેલના આ બધા હક્કદાર હોય તો તેને પડતા દુઃખમાં તારા ભાગનો અંશ કેટલો? આવ સાર્વજનિક દેલમાટે કેટલું દુઃખી થવાનું?

(૩) જડવત્- જડભરત શાન્તિથી બેઠેલા હતા. રાજાની પાલખી ઉપાડવા એક માણસની જરૂર હતી. તેમને બોલાવવા આવ્યા તો પાલખી ઉપાડવા ગયા. પાલખી ઉપાડતાં બરાબર ન આવડ્યું તો રાજાએ ગુસ્સે થઈ ગાળો આપી તે સાંભળી લીધી. રાજાએ કાંઈ પ્રશ્ન પૂછ્યો તો બુદ્ધિપૂર્વક ઉત્તર આપ્યા, સાંભળી રાજા પગમાં પડ્યો તો જ્ઞાનોપદેશ આપી દીધો. કોઈ પણ જાતનાં માન-અપમાનના સંજોગો આવ્યા પણ પોતે તેનાથી અલિપ્ત રહી જેમ જડ વસ્તુને કાંઈ અસર ન થાય તેમ રહ્યા. સુખદુઃખના પ્રસંગોમાં જડ બની રહેવું તે પણ એક ધૈર્ય ધારણ કરવાનો ઉપાય છે હકીકતમાં દુઃખનો વધારે સમ્બન્ધ મન સાથે છે, દેલ કરતાં. નહિતો મા પોતાના બાળકો માટે અથવા દેશભક્ત દેશમાટે, સમાજસેવક સમાજમાટે હસતે મોઢે કષ્ટ વેઠવા તૈયાર ન થાય.

(૪) ગોપભાર્યવત્- ભગવાન પોતાની ઈચ્છાનુસાર બધું કરતા હોય અને આપણી ઈચ્છા કાંઈક જુદી હોય તો તેમનું સામર્થ્ય અને આપણું અસામર્થ્ય વિચારી ધૈર્ય ધારણ કરવાનું જ રહે છે. જેમ શ્રીકૃષ્ણ વ્રજ છોડી મથુરા પધાર્યા ત્યારે ગોપિકાઓ તથા વ્રજવાસીઓ પોતાનું અસામર્થ્ય સમજી ધૈર્ય ધારણ કરી રહ્યાં તેમ. આવા પ્રસંગોએ તુ પણ ધૈર્ય ધારણ કરજે.

શ્રીમહાપ્રભુજી એમ આજ્ઞા કરતા હોય તેવું લાગે છે કે તને ઉપર દર્શાવેલ કોઈપણ દૃષ્ટાન્તથી દુઃખ સહન કરવાનું સામર્થ્ય પ્રાપ્ત થતું હોય તો તે-તે અવસરે તેનો વિચાર કરી ધૈર્ય ધારણ કરજે. શ્રીમહાપ્રભુજી અહિં પણ પોતાના અનુયાયીને સાવધાન કરે છે. માણસ છે, મુશ્કેલીમાં સ્વાર્થના લીધે કે સંજોગોવશાત્ કાંઈ પણ અર્થ કાઢી ગમે તે ઉપદ્રવ કરી શકે છે. આપશ્રી કહે છે કે ‘ત્રિદુઃખસહન’નો અર્થ એવો નહિ કરતો કે સુખ મળતું હોય તો પણ ન લેવું અને દુઃખી રહેવું, દુઃખ સહજતાથી દૂર થઈ શકતું હોય તો પણ પ્રયાસ ન કરવા. ચાલીમાં એક રૂમમાં રહેનાર પરિવારને ભગવદિચ્છાથી સારી એવી આવક થઈ અને એક બંગલો બનાવ્યો. ત્યાં રહેવા ગયા તે પહેલાજ દિવસે શેઠે બંગલામાં



જે કાંઈ વિશિષ્ટતા શોભા બનાવી હતી તે બતાવી અને છેવટે સરસ મજાના શયનખંડમાં આવી બેઠા. શેઠાણીને કહે આ આપણો બેડરૂમ. શેઠાણી કહે પરન્તુ હું જ્યારે પરણીને આવી ત્યારે તમારી માએ મને જે દુઃખ આપ્યું હતું તે યાદ આવે છે!

ભગવદ્વિચ્છાથી સહજતાથી દુઃખ દૂર થઈ શકતું હોય તો સહન કરવાનો આગ્રહ ન રાખીશ. તારી ભગવદેકતાનતામાં વિક્ષેપ ન થાય માટે ધૈર્યનો ઉપદેશ છે નહિ કે ધૈર્યવાનની છાપ મેળવવા.

પછી બીજો ઉપાય બતાવતાં શ્રીમહાપ્રભુજી જણાવે છે કે જેમ-જેમ તું ભગવદ્કાર્ય ભગવદ્સેવામાં પરાયણ થતો જઈશ તેમ-તેમ સમ્ભવ છે કે પુત્ર પત્નિ સગાસમ્બન્ધિ પ્રત્યેના તારા કાર્યમાં કાંઈક ઉણપ આવશે, તારા કર્તવ્યમાં કાંઈ ક્ષતિ આવશે. બનવાજોગ છે કે તેઓ તારા તરફ તિરસ્કાર ક્રોધ વગેરે કરશે. ત્યારે તું પ્રતિશોધ ન કરતાં સહન કરજે. આ બધું પણ તને અઘરું લાગતું હોય તો તારી ઈન્દ્રિયોને તેના ઉપભોગમાં જાતે કરીને લઈ જતો નહિ. કાયા, વાણી અને મન થી તેને દૂર રાખજે.

આટલું પણ તારા માટે અશક્ય હોય તો અસામર્થ્યની ભાવના કરતો રહેજે. તેના કારણે ઉત્પન્ન થતી ગ્લાનિ ધીરે-ધીરે બધું સમુસૂતરું કરશે.

અન્તમાં શ્રીમહાપ્રભુજી ‘માસ્ટરકી’ આપે છે : હરિના શરણથી ઉપર કહેલ બધું તેના આશ્રયથી સિદ્ધ થશે, અને છેવટે ધૈર્ય પણ. અહિં આપણને આશ્રય ધૈર્યના અન્તઃપાતી-અંગ તરીકે મળે છે. પછી પ્રધાન શરણ/આશ્રય મહાપ્રભુજી ઉપદેશે છે. નોંધ : “આમૃતેઃ સર્વતઃ સદા” માં ઈંગિત થાય કે હરિ બધું દુઃખ આ જન્મમાંજ હરિ લેશે એમ ન માનવું. એનો અર્થ એવો પણ થઈ શકે છે કે જે નામ-દેહ જીવે ધારણ કર્યા છે તેની સાથે તેની ઓળખ આ જન્મ સુધી જ મર્યાદિત છે. તેણે પોતાની મૂળ ઓળખ, વ્યુચ્ચરિત જીવની, સાથે મેળવી વ્યવહાર અને ઉદ્ધારની પ્રક્રિયા સમજવી જોઈએ.

બધું આશ્રયથી સિદ્ધ થશે તેમાં જીવે શું ભાગ ભજવવાનો છે, તેની માનસિકતા શું હોવી જોઈએ તેની સમજ જરૂરી લાગે છે.

**આશ્રય :**

શ્રીમહાપ્રભુજી વ્યાખ્યા આપે છે “ઐહિકે પારલોકે ચ સર્વથા શરણં હરિઃ”.

આશ્રય આ લેખનો મુખ્ય વિષય છે એમ કહીએ તો ખોટું નહિ કહેવાય. આ

લેખનું મથાળું છે ‘વિવેકધૈયાશ્રય ગ્રન્થમાં ફળ’. આપણે જોયું કે વિવેક અને ધૈર્ય સિદ્ધ થાય એટલે એના પરિણામરૂપે આશ્રય સિદ્ધ થશે. ફળરૂપે સિદ્ધ થશે. તો પહેલાં તેનો અર્થ, તેની વ્યાખ્યા વિચારીએ.

વ્યાખ્યાકારો શ્રીરઘુનાથજી શ્રીગોપીશજી શ્રીગોકુલોત્સવજી શ્રીવ્રજરાજજી ની વ્યાખ્યાનો વિચાર કરીએ તો નીચે જણાવેલ સારાંશ નીકળે છે.

આ જન્મમાં અથવા તેને ઉપલક્ષિત કાળમાં એટલે ઐહિક અને તેનાથી અન્ય અન્તરિક્ષલોકથી બ્રહ્મલોક પર્યન્તના કાળમાં એટલે પારલૌકિક કાળમાં કાર્યમાત્રમાટે તથા અભિલષિત સર્વ પ્રાપ્તિમાટે સર્વપ્રકારે હરિજ શ્રીકૃષ્ણજી મારા રક્ષક છે એવી ભાવના એવું અનુસંધાન રાખવું તેને આશ્રય કહેવામાં આવે છે.

શ્રીગોકુલોત્સવજી વિશેષમાં જણાવે છે કે અત્રે રક્ષકનો અર્થ પ્રાણરક્ષણમાત્ર ન લેતાં હિતકારી લેવો.

શ્રીવ્રજરાજજી વધારામાં આશ્રયની અવસ્થાનુ વર્ણન કરતાં કહે છે કે જેનામાં આશ્રયનો ભાવ સદા રહે છે તેને ભગવાન્ દ્વારા આશ્રયનું દાન આપવામાં આવ્યું છે તેમ સમજવું, અને જેને આશ્રયનો ભાવ સદા ન રહેતાં ક્યારેક-ક્યારેક આવતા હોય તો તે સાધનાવસ્થા સમજવી, અને જેને ક્યારેક જ ભાવ રહેતો હોય તો તે આરમ્ભદશા સમજવી, અને જો ફક્ત રક્ષકપણાનું ભાન રહેતું હોય તો ભવિષ્યમાં આશ્રય થશે એમ સમજવું.

સામાન્ય સ્વરૂપલક્ષણ દર્શાવી શ્રીમહાપ્રભુ ઐહિક અને પારલૌકિક નિમિત્ત વિશેષકાર્ય ઉદાહરણરૂપે વિગતથી ગણાવે છે આપણે તેનો ટૂંકમાં પરિચય કરીશું.

**દુઃખહાનો :** દુઃખના નાશમાટે અથવા દુઃખના નાશથી થયેલ હર્ષના આવેશમાં હરિના સ્મરણનું વિસ્મરણ ન થાય તેમાટે હરિનું શરણ કરતાં રહેવું જોઈએ. પાપે : કોઈ પણ જાતના પાપમાં, પ્રમાદથી અથવા અન્ય પ્રકારે થયેલા ભગવદ્વિષયક પાણ પાપમાં પ્રાયશ્ચિતનો આશરો ન કરવો કારણ કે તેથી શરણધર્મનો નાશ થશે તેથી શરણની ભાવનાજ કરવી.

**કામાદિ અપૂરણે :** આધિભૌતિક આધ્યાત્મિક અથવા આર્થિક કામનાઓની પૂરી કરવા માટે તથા ‘આદિ’ શબ્દથી ધર્મ આદિની પણ કામનાઓની પૂર્તિમાટે બધા પ્રકારે

હરિનું શરણ લેવું.

**ભક્તદ્રોહ :** જીવસ્વભાવવશ પ્રમાદથી કોઈ વાર ભક્તનો દ્રોહ થઈ જાય તો તે દોષ અન્ય કશાકથી પણ દૂર થવો સમ્ભવ નથી તેથી હરિનું શરણ જ લેવું.

**ભક્તૈશ્યાતિક્ષમેકૃતે :** હકીકતમાં કારણ વિના ભક્ત કોઈનો તિરસ્કાર કરતા નથી હોતા, પરંતુ આપણો અપરાધ જોઈ આપણા સુધાર માટે તેમ કરતા હોય છે. અપરાધ અને દોષ દૂર થાય તેથી હરિના શરણની ભાવના કરવી.

**અશક્યે વા સુશક્યે વા :** આપણામાટે જે અશક્ય હોય તે શક્ય અથવા પ્રાપ્ય બને તેમાટે હરિના શરણ સિવાય બીજું કાંઈ સાધન છે જ નહિં પણ જ્યારે આપણામાટે સારીરીતે શક્ય હોય ત્યારે પણ હરિના શરણની ભાવના કરવી. કારણ કે (૧)અભિમાન થશે (૨)પ્રભુ વિદ્યાત કરવા ઈચ્છશે તો સુશક્ય પણ અશક્ય બનશે. માટે સર્વાત્મથી હરિનું શરણ લેવું.

**અહંકાર કૃતે ચૈવ :** જીવસ્વભાવવશાત્ કોઈ ઉદાસીન સાથે અથવા ભક્ત સાથે અહંકાર થઈ જાય તો તેથી આસુરાવેશ થાયજ. પછી જ્યારે વિવેક જાગે ત્યારે પશ્યાતાપ થાય કે મેં ખોટું કર્યું ત્યારે દોષ દૂર કરવા અને અહંકાર નિવૃત્તિમાટે શરણની ભાવના કરવી.

**પોષ્યપોષણ રક્ષણો :** તે જ પ્રમાણે પોષ્યનું રક્ષણ કરે તો અહંકાર આવે અને ન કરે તો તેમને ક્લેશ થાય એ બન્ને બાજુના બન્ધની નિવૃત્તિમાટે હરિનું શરણ કરવું. તેમજ જ્યારે પોષ્ય તિરસ્કાર કરે ત્યારે અથવા અન્તેવાસી ભગવદ્માર્ગ જિજ્ઞાસુ શિષ્ય તિરસ્કાર કરે ત્યારે ક્રોધ વગેરે ન કરતાં શરણભાવના કરવી કારણકે નહિંતો આસુરઆવેશ આવવાની સમ્ભાવના છે.

**અલૌકિક મન :** સિદ્ધોઃ વ્રજરાજજી જણાવે છે કે કામ સંકલ્પ વિવર્જિત શુદ્ધ સેવા-આશ્રયાદિના અનુકૂળ મનની સિદ્ધિ પુષ્ટિ આદિ માર્ગીય સકળપુરૂષાર્થ સિદ્ધિ, અતિદીનભાવ સિદ્ધિ માટે (શ્રીગોપીશજી વધારામાં મનને ઉપલક્ષણવિધિ ગણાવી ઉમેરે છે કે ) જેવી રીતે પ્રાકૃતાંશ નિવૃત્તિદ્વારા અલૌકિક સિદ્ધ થાય તે માટે અને અલૌકિક પદાર્થ સિદ્ધ થાય તેમાટે હરિનું શરણ કરવું અન્ય કોઈનું નહિં.

**એવં ચિત્તે સદા ભાવ્યં વાચા ચ પરિકીર્તયેત્ :** આશ્રયનું રક્ષણ કેવી રીતે કરવું, તેને સાચવવો કેમ તે સમજાવતાં આજ્ઞા કરે છે : વિવેક વગેરેનું જે સ્વરૂપ કહ્યું છે, તેનું

ચિત્તમાં સારી રીતે અનુસંધાન કરવું, બીજાના બોધ માટે અને પોતાના માટે પણ પરિકીર્તન કરવું. જ્ઞાનરૂપ ચિત્તમાં, નહિકે જડ ચિત્તમાં, ભાવના કરવાથી ભગવાન આશ્રયનું દાન કરશે. તેમાટે વાણીથી પણ કહેતા રહેવું.

આશ્રયના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરી કોઈ પણ પરિસ્થિતિમાં આશ્રય ઉપકારી છે તેનાં ઉદાહરણ આપ્યા પછી શ્રીમહાપ્રભુજી આશ્રયમાં બાધક કૃતિનું વર્ણન કરી તેનો નિષેધ ફરમાવી રહ્યા છે.

**અન્યસ્ય ભજનમ્ :** કૃષ્ણ અતિરિક્ત અન્ય દેવના સેવન-પૂજનનો નિષેધ છે. અન્યદેવથી મળતું હોય તો આપણાં દેવને શ્રમ શું કામ આપવો એવું બહાનું નહિ ચાલે. તેથી શરણભાવ ખંડિત થાય છે. હકિકત એ છે કે જેનું આપણે શરણ લીધું છે તેનામાં આપણને વિશ્વાસ નથી તેથી તે આપણને સાંભળશે નહિ અને જેની પાસે આપણે માગી રહ્યા છીએ તેનું આપણે શરણ નથી લીધું તેથી તે પણ આપણાં તરફ ધ્યાન નહિ આપે. બાવાનાં બેય બગડશે.

**પ્રાર્થના કાર્યમાત્રેડપિ :** તેથી જ પ્રાર્થનારૂપી કાર્ય માત્ર અલ્પ યા અધિક નો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે.

**તત્ર સ્વતોગમનમેવ ચ :** વાણિયો લાભ ન હોય તો સામે ચાલીને જાયજ નહીં. તેથી સામે ચાલીને કોઈ અન્ય દેવ પાસે જવાનો નિષેધ છે. સાથે-સાથે કહેવામાં આવ્યું છે કે માર્ગમાં જતાં સમીપમાં કોઈ દેવ આવે તો અનાદર પણ ન કરવો.

મૂળમાં અન્યાશ્રયીને ભગવાન આશ્રય આપતા નથી તેના તરફ દયાથી નીહાળતા પણ નથી.

**અવિશ્વાસો ન કર્તવ્ય :** હવે પાયાની વાત આવે છે. જેનો આશ્રય કર્યો હોય તે ઠાકોરજી અને આપણાં ગુરુ શ્રીમહાપ્રભુજી જે આપણને ઉપદેશ આપે છે તેમનામાં, તેમનાં વચનમાં કદાપિ અવિશ્વાસ ન કરવો, નહિ તો બધી કસરત વ્યર્થ થશે. અવિશ્વાસના કારણે બ્રહ્માસ્ત્ર પણ નિષ્ફળ થયું અને વિશ્વાસ રાખનાર ચાતક પક્ષીને સ્વાતિ બિન્દુ મળે જ છે.

**પ્રાપ્તં સેવેત નિર્મમ :** અહિં આપણને સબ રોગકી એક દવા દર્શાવતા હોય તેવું લાગે છે. “એહિકે પારલોકે”થી શરૂ કરી “પ્રાપ્તં સેવેત નિર્મમ” સુધીની સંગતિ સધાઈ જાય છે.

જે કાંઈ જરૂરીયાત હોય જે કાંઈ જોઈતું હોય જે કાંઈ કાર્ય કરવું હોય તે માટે તું સર્વદુઃખહર્તા હરિનું શરણ લે, અન્યનું નહિ.

વાસ્તવિકતા તો એ છે કે કોઈની પણ સમ્પૂર્ણ કામનાપૂર્તિ અથવા સમ્પૂર્ણ દુઃખનિવૃત્તિ થઈ હોય તેવું દેખાતું નથી. વળી દુઃખસહનની બાબતમાં તો મરણપર્યન્ત પણ સહન કરવાનો ઉપદેશ છે. એની સંગતિ એમ બોલે છે કે જીવની જરૂરીયાત અથવા કામનાની કોઈ મર્યાદા હોય નહીં તેની ઉચિતતા કે અનુચિતતાનો કોઈ ખ્યાલ હોય નહિ, જ્યારે ઠાકોરજીએ તો જીવને શરણે લીધો છે તેનો ઉદ્ધાર કરવાનો છે તેથી તેના માટે જે જેટલું ઉચિત હશે તે જ તેને આપશે. એજ ઉપદેશ છે કે તને જે કાંઈ મળ્યું છે તે તારું નથી તેથી મમતારહિત થઈ ભગવદ્દિશ્ઠાથી અનાયાસે જે કાંઈ સ્વલ્પ પ્રાપ્ત થયું છે તે ભગવદ્દીય છે તો પ્રભુસેવામાં પ્રભુમાટે વિનિયોગ કર. વિશેષ યત્ન કરીશ નહિ.

ટૂંકમાં કહેવું હોય તો વિવેક-ધૈર્ય-આશ્રય ભગવદ્પરાયણ થવા માટેના મુખ્ય સાધન છે.

અન્તમાં શ્રીમહાપ્રભુજી સર્વસાધારણ ઉપદેશ આપે છે કે ઉચ્ચ અથવા હલકાં કાર્ય તારે કરવાં પડે તો જેમ શક્ય હોય તેમ કર. પણ ઋણ કરીને અથવા લૌકિકતાથી ન કરતો. ભગવદ્ધર્મની સરખામણીમાં બધાં જ કર્મ હીન છે પણ અહિં લોક અનુસાર ઉત્તમતા-અધમતા ગણવી તેવાં કાર્ય પણ કરવાં. ભગવાન કહે છે “સહજં કર્મ કૌન્તેય સદોષમપિ ન ત્યજેત્?” વળી લૌકિક અને વૈદિક કાર્યનો ત્યાગ કરીશ તો કાંઈ પણ માર્ગમાં પ્રમાણ્યની શંકા પેદા થશે તેથી આવશ્યક લૌકિક-વૈદિક કાર્ય ભગવદ્આજ્ઞા સમજી કરવાં જોઈએ, સ્વધર્મ તરીકે નહિ. તેથી શરણપદાર્થ જશે નહિ. હવે શું વધારે કહેવાની જરૂર છે! હરિના શરણની ભાવના કરો! આ જ ફળ છે. અને અંતિમફળ પ્રાપ્તિનું સાધન પણ છે.

(નોંધ: ગ્રન્થના પ્રારંભમાંજ જણાવ્યું કે પ્રાર્થના કરવી એ અપરાધસમ છે. અત્રે દુઃખહાનો, કામાદિપૂરણે વગેરેમાં એક પ્રકારથી માગણીજ આવી રહી છે તો પ્રાર્થના અને શરણ માં અન્તર શું રહે છે ?)

શ્રીવ્રજરાજજી જણાવે છે કે ‘આ આપો’ એવા અભિસન્ધાનપૂર્વક પાચનાના વ્યવહારનું અસાધારણ કારણ એવો કાયા વગેરેનો વ્યવહાર તેને પ્રાર્થના કહેવાય છે.

પરંતુ માહાત્મ્યજ્ઞાન પછીજ શરણભાવના થાય છે તો અંદરખાને તો ભાવના

રહેજ છે કે હરિ બધું દુઃખ હરશે, સર્વેચ્છિત સમ્પાદન કરી દેશે, તો શરણમાં આન્તરભાવના છે અને પ્રાર્થનામાં સીધી માંગ છે. ફરક શું છે ?

ના, એવું નથી. પ્રાર્થનામાં તો સીધી માંગ છે અને પછી આગળ-પાછળ કોઈ જવાબદારી યા સમ્બન્ધ હોવો જરૂરી નથી. જ્યારે શરણની ભાવનામાં શરણ એ કાયમી સમ્બન્ધ છે. એમાં દુઃખ દૂર થશે અથવા માંગ પૂરી થશે એવો ભરોસો છે. પોતાની તરફથી એણે પગલું ભરી દીધું છે. હવે સામેવાળા જે કાંઈ કરે તે તેને માન્ય છે. “પ્રાપ્તં સેવેત નિર્મમઃ” માં એનું સમર્થન મળે છે. વધારે શ્રીગોકુલોત્સવજીની ટીકામાં સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યું છે.

### વિશેષ નોંધ :

અહિં આપણી યાત્રા સાધનરૂપ વિવેકધૈર્યથી આરમ્ભ કરી ફળરૂપી આશ્રય સુધી પહોંચી છે. આશ્રય ફળ પણ છે અને સ્વતંત્રમાર્ગ પણ છે જેના દ્વારા પુષ્ટિમાર્ગીય ઉચ્ચતમફળ પણ મેળવી શકાય છે. આશ્રય/શરણમાં સેવાસાધનાની જેમ અન્યનો સહકાર, કૌટુંબિક સમ્બન્ધ યા જવાબદારી, સમયની વધતી અથવા ઓછી મર્યાદા વગેરે અનિશ્ચિત અથવા પરાયા આધાર જરૂરી નથી રહેતા. વૈષ્ણવ પોતેજ પોતાના સંકલ્પ અને પ્રયત્ન થી સીધો મુકામ સુધી પહોંચી શકે છે.

આ પરિસ્થિતિ હોવા છતાં એક સત્ય નજરઅંદાજ કરી શકાય તેમ નથી કે આજે બહુમતિ વૈષ્ણવવર્ગને સમ્પ્રદાયની સાચી જાણકારી નથી. શરણનું માહાત્મ્ય તેને ખબર નથી. કોમ્પ્યુટર અને વેબસાઈટ પર સ્પર્ધાત્મક ઘણી માહિતી મળી રહે, ભૌતિકવાદ તરફ આકર્ષવા માટે ઘણાં પ્રલોભનો દેખાઈ રહ્યાં છે. તેને પોતાનું શું અને પારકું શું તે સમજાતું નથી. પ્રેય અને શ્રેય નો ભેદ તેને ખબર નથી. આપણાં માર્ગનું ઉંડાણથી જ્ઞાન લેવાની ધીરજ તેને શરૂઆતમાં નથી હોતી. જ્ઞાન મેળવ્યા પછી સાધનાદ્વારા ફળ પ્રાપ્ત કરવામાં તેને આકર્ષણ નથી. તેની સામે વિપરીત જીવંત ઉદાહરણો છે.

આપણી સામે શ્રીમદ્વિદ્યાચાર્યના વચનો, અર્થ, તેની સમજ, સાધનાની રીત, તેમાં જરૂરી માર્ગદર્શન અને છેલ્લે ફળ એમ એક સીડી છે. અહિં સાધનાની રીત અને ફળ વચ્ચેના પગથિયાનું અન્તર વધારે હોય તેવું લાગે છે. તેને વધારે પહોળું સ્થિર અને મુકામ કરી સિંહાવલોકન કરી શકાય અને પછી આવતા મનોરમ્ય દૃશ્યને નીલાળી અંદાજ મેળવી શકાય તેવું સગવડભર્યું બનાવવું રહ્યું. આગળનું મોટું ફલક જોઈ યાત્રી ગભરાઈ જાય છે. હવેની યાત્રા મારામાટે નથી તેવું તેને લાગે છે. પાછા ફરવાનો અથવા યાત્રા સમાપ્ત

કરવાનો વિચાર કરે છે. અહિં તેને જોમ પુરું પાડી સાથ આપે તેવા માર્ગદર્શનની જરૂર જણાય છે. આપણે ત્યાં તે સગવડ પૂરતી નથી.

બીજા સમ્પ્રદાયો અને વિચારધારાઓ પાસે જીવન ઉદ્ધારના દૃઢ પ્રસ્તાવો નથી, પોતાની તરફ આકર્ષી રાખવા કોઈ પરિબળ નથી. તેથી તેમને ઈષ્ટપૂર્તિ, જનહિત, સાર્વજનિક કાર્યક્રમો, મોટા સમારમ્ભો સતત નવા-નવા કાર્યક્રમો કરવા પડે છે. આપણને એની ગરજ નથી. આપણે પોતેજ બધી રીતે સમૃદ્ધ છીએ, આત્મનિર્ભર (સેલ્ફ-સફીશિયન્ટ) છીએ. આપણે તે સિવાય પણ ઉદ્ધારના કેન્દ્રો બની શકીએ છીએ. આપણે ગામ એકઠું નથી કરવું. વૈષ્ણવોને વસાવવા છે. વિચાર-વિમર્શ જરૂરી છે.

### ઉપસંહાર :

‘સત્સંગમાં એક પ્રશ્ન થયો કે શરણની ભાવના કરવી એટલે શું કરવાનું ? આપણી કાંઈ પણ જરૂરીયાત હોય; કાયિક વાચિક કે માનસિક; આધિભૌતિક આધ્યાત્મિક કે આધિદૈવિક એ બધાંનો આધાર અને રક્ષક ભગવાન કૃષ્ણ છે એવી ભાવના સતત રાખવાની. પરંતુ ભાવના રાખવી એટલે શું ? અષ્ટાક્ષરમન્ત્ર પોપટની જેમ બોલ્યા કરવો ? એવા કેટલાય વડિલોને હું જાણું છું કે સહેજ અવકાશ મળે એટલે એમનું અષ્ટાક્ષરમન્ત્રનું રટણ ચાલુ થઈ જાય પણ એમનું શરણ સિદ્ધ થયેલું નજરે નથી પડતું. નાની-નાની બીનાઓમાં ઉશ્કેરાઈ જાય. જરાક કાંઈક થાય એટલે માથે હાથ દઈ બેસી જાય. થોડોક તાવ આવે એટલે ઢીલાઢસ થઈ જાય. આખા ગામને ઉપર-નીચે કરી દે. અરે ભાઈ, કૃષ્ણ કોણ છે તેનું માહાત્મ્ય શું છે એ બધું સમજવું તો જોઈએને. કૃષ્ણ બોલતાંની સાથે મનમાં કોઈ છબી તો તૈયાર થવી જોઈએ ને !

મારો પ્રશ્નજ એ છે કે શરણની ભાવના ઘડાય તેમાટે ઘણી બધી પૂર્વ તૈયારી કરવી પડે, મારી માગણીઓ જુદી હોય, મારી આકાંક્ષાઓ જુદી હોય, માંડું સામર્થ્ય અલગ હોય, મારા ગુણ-દોષ અલગ હોય તો એક લાકડીએ બધાંને હંકાય તો નહિજ ને ! સમજ સુધી હજુ ચાલે પણ જ્યારે અમલબજામણીની વાત આવે ત્યારે અનુભવીનો સંપર્ક અને પ્રત્યક્ષ માર્ગદર્શન વ્યક્તિગત રીતે આવશ્યક છે એવું લાગે છે.

આ સંવાદ સાંભળતાં સહેજ સમજી શકાય છે કે ઉપદેશની અમલબજામણી એ મુશ્કેલ સમસ્યા છે, અને આચરણમાં ન મૂકી શકાય તો તે વ્યક્તિ માટે તે ઉપદેશ ગ્રેપ્સુ આર્ સાવર્ જેવો થઈ જાય છે.

એક બાજુ પ્રત્યેક શિષ્યને જાણી સમજી તેની જરૂરીયાત મુજબ ઉપદેશને

આચારમાં મૂકવા માર્ગદર્શન કરી શકે, સમયે-સમયે તપાસ કરી શકે એટલા અને એવા ગુરુ હોવા અશક્ય છે. બીજી બાજુ સાધન ગમે તેટલું સારું અને સગવડભર્યું હોય પણ સાથે-સાથે તેના વપરાશની માર્ગદર્શિકા (મેન્યુઅલ) ન હોય તો તે શો-રુમ માં મુકવા યોગ્ય બની રહે છે. પરંતુ પ્રત્યેક પુરુષને અથવા બહુમતિના વપરાશકારોની સમજમાં આવી શકે તેવું, તેની જરૂરીઆતની પૂર્તિ કરી શકે તેવું મેન્યુઅલ બનાવવું કેવી રીતે ? કેટલાં બનાવવાં ?

આજે આપણી સમક્ષ સુશિક્ષિત વર્ગ છે. શક્ય છે કે શાસ્ત્રના અધ્યયનનો, અભ્યાસનો તેના આવર્તનોનો અભિગમ તેમાં અસ્ત થતો દેખાય છે. પરંતુ સારું સાચું સમર્થ સાર્થક જીવન જીવવાની જિજ્ઞાસા તેમાં સમુદ્રના મોજાની જેમ ઉછળી રહી છે, તે વાટ જોઈને બેસી રહી છે. તેમાં ઓટ આવે એ પહેલાં આપણે તેને ઉંચાઈએ પહોંચાડવાની કોશિશ કરીએ.

એક સુઝાવ એવો છે કે આપણી સમક્ષના જિજ્ઞાસુઓના વર્ગીકરણ (૧).સ્વભાવ (૨).સંજોગો (૩).શિક્ષણ (૪).વય વગેરે મુજબ કરીએ અને તેમને સિદ્ધાન્ત સમજવામાં, સાધનાના આચરણમાં જે-જે પ્રકારની આડખીલીઓ આવતી હોય તેનો અંદાજ કાઢીએ અને તેના ઉકેલના ઉપાય પ્રશ્નોત્તરરૂપે અથવા યથોચિત માધ્યમ દ્વારા તેમને પહોંચાડવાનો પ્રયત્ન કરીએ. શક્ય છે કે તેમાં તેઓનો રસ વધશે. સમયાન્તરે બધું સમુસુતરું થશે. ભગવદ્કૃપા થશે.





## ચર્ચા

### વિવેકધૈર્યાશ્રય

#### શ્રીરસિક શાહ

**અસિત શાહ :** રસિકભાઈને પેપરકે અન્તમાં સમ્પ્રદાયકે વિભિન્ન વર્ગકેલિયે મેન્યુઅલ તૈયાર કરવેકી આવશ્યકતા બતાઈ હૈ. યા વિષયમાં સબકે ભિન્ન-ભિન્ન મત હો સકે હૈં. મેરે હિસાબસુ એક સમસ્ય જૈસે રસિકભાઈને બતાઈ હૈ વો હૈ એસે દૂસરી સમસ્યા સમ્પ્રદાયમાં શિષ્યનકી ઓવરસપ્લાયકી બી હૈ. અપન ફેલ સકે વાકે કરતે અધિક અનુયાયી આજ અપને સમ્પ્રદાયમાં ઓલરેડી હૈં ઓર જોર-શોરસુ ઓર અનુયાયી અપન સમ્પ્રદાયમાં ભરતે જા રહે હૈં. એસેમાં એસો પ્રયત્ન કરનો કે “આપણા સમ્પ્રદાયનો વ્યાપ વધશે”...

**રસિક શાહ :** મારો કહેવાનો આશય એવો છે કે જેઓ બોર્ડર્ લાઈન ઉપર બેઠા છે તેઓ અંદર આવશે. બિનપુષ્ટિમાર્ગીઓ કોઈ નહીં આવે. આજે આપણી સામે બધો વર્ગ શિક્ષિત છે. અભાણ બુદ્ધિઓ સમ્પ્રદાયમાં હોય એવી વાત હવે રહી નથી. એમની સમસ્યા એ છે કે અંદર આવવું કેવી રીતે? આ સમ્પ્રદાયમાં શું છે? હું આને અનુસરીને ખરેખર શું મેળવીશ? લોકો કહે છે કે સમ્પ્રદાયમાં આવી જાઓ. પણ મને એનાથી શું મળશે? એનું માર્ગદર્શન કોઈને પણ ક્લીઅર મળી નથી રહ્યું. જો એને ખબર પડે કે સમ્પ્રદાયના આટલા સ્ટેપ્સ છે, આ સમ્પ્રદાય એટલો બધો સમૃદ્ધ છે તો એ જરૂર સમ્પ્રદાયમાં આગળ વધશે. આજે સમાજમાં એવા ઘણા લોકો છે કે જેમનું કુટુંબ પુષ્ટિમાર્ગી છે, ઘરમાં પુષ્ટિમાર્ગના પુસ્તકો છે, એ પુસ્તકો વાંચતો પણ હોય છે પણ એનાથી આગળ વધવું કેવી રીતે અનું માર્ગદર્શન આપનારું કોઈ નથી. એટલે જ્યાં સુધી આપણી આખી પ્રોફાઈલ લોકોના હાથમાં નહીં પહોંચે ત્યાં સુધી એનો આગળ વધવાનો ઓછો રહેશે.

**અસિત શાહ :** અંદર આવવું અને આગળ વધવા માં ફરક છે. અંદર આવવાની બાબતમાં મારું એમ માનવું છે કે આપણે ત્યાં ઓલરેડી ઓવરસપ્લાય છે.

**રસિક શાહ :** ખોટા માણસોનો ઓવરસપ્લાય છે એ શું કામનો? ખોટા માણસો ભલેને નીકળી જાય કે પડ્યા રહે, પણ સાચા માણસો માટે સમ્પ્રદાયના દરવાજા બંધ શા માટે કરવા? સાચા લોકો આવશે તો ખોટા માણસો આપોઆપ નીકળી

જશે.

**ગો. શરદ્ :** મને એમ લાગે છે કે જ્યારે એક સંસ્થાના રૂપમે સમ્પ્રદાય ચાલી રહ્યો છે ત્યારે એની પાસે દરેક પ્રકારનું મટીરિયલ્ લાજર હોવું જોઈએ. એનો લાભ લેનાર કોણ હશે, કેવો હશે એ બધી વાત પછીની છે. શ્રીમહાપ્રભુજીએ ષોડશગ્રન્થો લખ્યા એ આપણી પ્રોફલઈલ્ જ તો તૈયાર કરી છે! શ્રીગોપીનાથજીએ પણ સાધનદીપિકા લખીને એ જ કાર્ય કર્યું છે. તે પછી પણ શ્રીહરિરાયજી, લાલૂભટ્ટજી વગેરે એ સમયની જરૂરીયાત મુજબ ગ્રન્થો લખ્યા જ છે. એટલે આ કોઈ એવી વાત નથી કે જે આપણે પહેલી વખત કરવાની હોય. બહારનો માણસ પ્રોફાઈલ વાચે અને એને રુચિ થશે તો નજીક આવશે. રુચિ નહીં થાય તો છેટો રહેશે. બોર્ડ લાઈન્ ઉપર હશે એ આગળ વધવા પ્રયત્ન કરશે. અને જે અંદર રહેલો છે એ પોતાની સમજને વધુ દઢ કરીને વધુ આગળ વધવા પ્રયત્નશીલ થશે. તેથી રસિકભાઈની વાત આવકારવા ધ્યાન આપવા લાયક છે. એમાં પણ એટલું વધુ ધ્યાનમાં લેવું જોઈએ કે આ કાર્ય બદલતા સમયની સાથે નવા પરિપ્રેક્ષ્યમાં થતું રહેવું જોઈએ. માનીલો કે આપણે આજે ૨૦૦૮માં વિચાર કરી રહ્યા છીએ તો અત્યારના સન્દર્ભમાં આ કાર્ય કરવાનું થશે. પચાસ વર્ષ પછી એ પ્રોફલઈલ્નું રિવાઈઝ્ડ એડિશન્ તૈયાર કરવું પડે, તે સમયની જરૂરીઆતને લક્ષ્યમાં લઈને. વર્તમાન સમય ઉપર નજર નાખીએ તો પાટણથી રમણીકભાઈએ ત્રીસેક નાની-નાની પુસ્તિકાઓ વિવિધ વિષયોનો બહાર પાડી હતી. એ પહેલાં પણ શ્રીગોકુલનાથજી મહારાજની આજ્ઞાથી શ્રીરમાનાથજી વગેરે વિદ્વાનોએ આ દિશામાં ઘણું કામ કર્યું હતું. તે સિવાય કે.કા.શાસ્ત્રી, બલભદ્રલાલજી, મગ્નલાલ શાસ્ત્રી, લલ્લુભાઈ પારેખ, રણછોડદાસ પટવારી, નાનુલાલ ગાંધી વગેરે વિદ્વાનોએ પણ આવું સાહિત્ય તૈયાર કર્યું હતું. ટુંકમાં આ વસ્તુ ઉપયોગી છે અને એના તરફ ધ્યાન આપવું જોઈએ.

**ગો. યોગેશ :** પેપરમે વિવેક-ધૈર્યાશ્રયકો નિરૂપણ તો बहुत अच्छी तरह भयो है पर यामें फल क्या है ये समझमें नहीं आयो.

**રસિક શાહ :** આશ્રય જ ફળ છે. જે મેળવવાનું છે તે આશ્રય જ છે. આશ્રયથી સર્વ સિદ્ધ થઈ શકે છે.

**ગો. શ્યા.મ. :** यामें विचारवेको ये रहे हैं के आश्रय अवान्तर फल है के परम फल है या अवान्तर फल और परम फल दोनों है.

**રસિક શાહ :** ગ્રન્થમાં આશ્રય ફળ તરીકે નિરૂપાયેલું છે. અને આશ્રય સિદ્ધ થશે તો તેનાથી અલૌકિક સામર્થ્ય વગેરે બધું સિદ્ધ થશે.

**ગો. શ્યા.મ.:** મૈં આશ્રયસ્ય ફલમ્ ઓર આશ્રિતાનાં ફલમ્, યા સન્દર્ભમેં કહ રહ્યો હતો. જૈસે “સેવાયાં ફલત્રયમ્” એસે આશ્રયે સતિ કતિપયાનિ ફલાનિ, આશ્રયસ્ય ફલમ્. યે વાકી ટેક્નિકલ્ સટલિટી હૈ. તો જૈસે “સેવાયાં ક્રિયમાણાયાં ફલત્રયમ્, નતુ સેવાયા: ફલત્રયમ્” સેવા છૂટ જાય ઓર ફલ મિલ જાયે તો “સેવાયા: ફલમ્” હોયગો. ઓર સેવા ચાલુ હૈ ઓર ફલ ભી મિલ્યો તો “સેવાયાં ફલમ્” હોયગો. એસે હી સમઝ લો કે આશ્રય છૂટ ગયો ઓર ભક્તિ સિદ્ધ હોગઈ તો આશ્રયસ્ય ફલં ભક્તિ: અથવા અલૌકિકમન:સિદ્ધિ આદિ ફલ જો શ્રીમહાપ્રભુજીને ગિનાયે હૈં આશ્રયકે વો. અથવા આશ્રયકે સાતત્યમેં વો ફલાનુભૂતિ હોયગી તો “આશ્રયે ફલમ્” હોયગો, “આશ્રયસ્ય ફલમ્” નહીં હોયગો. યે એક ન્યાય શ્રીમહાપ્રભુજીને સેવાફલ ગ્રન્થમેં દિયો હૈ વો વિવેકધૈર્યાશ્રયમેં અપનકુ એપ્લાય્ કરનો ચહિયે. ક્યોંકે આશ્રય છોડકે ફલ ભયો તો પ્રભુકી સામર્થ્યસુ કુછ ભી હો સકે હૈ પર વો શ્રીમહાપ્રભુજીકુ અભિપ્રેત હૈ? શ્રીમહાપ્રભુજીકુ શાયદ એસો ફલ અભિપ્રેત નહીં હોયગો કે જો આશ્રયત્યાગાનન્તર, આશ્રયકે ફલતયા મિલે પર એસો આશ્રય સિદ્ધ હોવે કે જાકે સાતત્યમેં કતિપય ઓર ભી ફલ જો આશ્રયકે લેવલ્પે અપનકુ નહીં મિલે વો આગે મિલને લગ જાયેં. પર વાસુ આશ્રય ઓર દૃઢ હોવે. તો રસિકભાઈને પેપરમેં જો લિખ્યો હૈ કે જિનકુ વિવેક-ધૈર્ય સિદ્ધ નહીં ભયે હૈં उनकु आश्रयसु वो सिद्ध हो जायेंगे वो आश्रयको अवान्तरफल हॆ “ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम्”કી तरह. ઓર પરમફલ તો “માનસીસા પરા મતા”કી तरह “અલૌકિકમન:સિદ્ધિ” આદિ હૈં. આશ્રયકો સાતત્ય એસો હો જાયેગો કે “આશ્રિતાનાં ફલં કૃષ્ણ:” એસો ભી વચન મિલે હૈ. યે આશ્રયકી નિવૃત્તિપૂર્વક ફલભાવ નહીં હૈ. શ્રીમહાપ્રભુજીકી યા સોચમેં મુખ્ય હેતુ આશ્રયસ્કન્ધમેં કહી ગયી આશ્રયભાવાપત્તિ જામેં પઞ્ચવિધ આશ્રય બતાયે હૈં उनके तहत आश्रय तो मुक्तिके बाद भी रिटेईन् हो रह्यो हॆ.

**ભાવેશ પરમાર :** ગ્રન્થ સમ્બન્ધી પ્રશ્ન છે. દેહ અને ઈન્દ્રિય અલગ છે પણ તકવદ્ અને દેહવદ્ ને કેમ અલગ પાડ્યા છે?

**ગો. શ્યા.મ.:** મને વિવેક-ધૈર્યાશ્રયની સિનોપ્સિસ એવી લાગી કે શ્રીમહાપ્રભુજીએ આ ગ્રન્થમાં પહેલા વિવેક-ધૈર્ય-આશ્રયની આવશ્યકતાનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. તે પછી અને પરિભાષા આપી છે. તે પછી એ પરિભાષિત અર્થમાં વિવેક-ધૈર્ય-

આશ્રયને જીવવામાં જે કનડગત આવે છે તેને દૂર કરવામાં આવતા એક પછી બીજા આવતા ઉપાયો. એ ઉપાયો પણ પાછા એવી રીતે છે કે જો આપણે પહેલો ઉપાય ન કરીએ તો બીજો લાગૂ નથી પડતો. બીજો ઉપાય ન કરીએ તો ત્રીજો લાગૂ નથી પડતો. મને ગ્રન્થનું માળખું આ રીતે સમજાયું છે. પ્રાચીન ટીકાકારો એ રીતે નિરૂપણ નથી કરતા એ હું કબુલું છું. પણ મને આ માળખું પ્રાચીન ટીકાકારોને વાંચ્યા પછી સ્ફુર્યું છે.

**પરેશ શાહ :** આશ્રયભાવાપત્તિ “સેવાયાં ફલત્રયમ્” સુધી અધિક ફલ લગ રહ્યો છે.

આશ્રયભાવાપત્તિ કૃષ્ણાશ્રયસુધી થઈ રહી છે અને સેવાસુધી હ રહી છે. આ બંનેમાં ફલના સંસ્કારમાં કોઈ તરફનો તારતમ્ય છે?

**ગો. શ્યા.મ. :** તારતમ્ય તો તબ્બોતો કે જબ આશ્રય છૂટ જાતો અને ફલ મિલતો હોતો. આશ્રય છૂટકે કોઈ ફલ નહીં છે. ભક્તિ મિલ રહી છે તો વો આશ્રિતકુ હી મિલ રહી છે. એસે હી ભક્તિકે જો મિલ રહે છે વ્યસન, નિરોધ, માનસી, અલૌકિકસામર્થ્ય આદિ એ સબ ફલ આશ્રિતકુ મિલનેવાલે ફલ છે શ્રીમહાપ્રભુજીની સ્કીમમાં. પ્રભુકે સામર્થ્યમાં અન્યથાકર્તૃકી સમ્ભાવના છે પર અપને યહાંકે પ્રોગ્રામમાં એ ફલ અનાશ્રિતકે ફલ નહીં છે.

**પરેશ શાહ :** વાકે આગેકી કોઈ અવસ્થા છે જૈસે નિરોધકે બાદ...

**ગો. શ્યા.મ. :** વો તો શરદ્બાવાને જૈસે બતાયો કે અનભિલષિત હોતે મયે મિલ નિયત છે. યદિ અપને તદાશ્રય-તદીયતા સમ્પાદિત કરી છે યા અપનેમાં સમ્પાદિત મઈ છે તો ...એક બાત સમજો કે મહાપ્રભુજીકે હિસાબસુ ભક્તિકે ચરણ અનુગ્રહ અને પુરુષાર્થ બંને છે. ભક્તિકુ શ્રીમહાપ્રભુજી જબ પંચમ પુરુષાર્થ કહે રહે છે તો હી મીન્સ સમર્થિંગ. ભક્તિકુ જબ આપ ‘પુષ્ટિભક્તિ’ કહે રહે છે તો કેવલ ગ્લોરિફિકેશનકેલિયે નહીં કહે રહે છે. વાકો કોઈ ગમ્મીર અર્થ છે. મહાપ્રભુજીની ભક્તિ ન અનુગ્રહે લંગડી ચલ રહી છે, ન પુરુષાર્થની એક ટાંગસુ ચલ રહી છે, બંનેકુ ચરણ બનાકે ચલ રહી છે. ભાગવતકે માહાત્મ્યમાં વર્ણિત ભક્તિ જ્ઞાન-વૈરાગ્યની માં હતી. વાસુ અલગ નહીં પર વિશિષ્ટ કોઈ ભક્તિ મહાપ્રભુજી પ્રપોઝ કર રહે છે કે જો પુષ્ટિ અને પુરુષાર્થ કે બે ચરણસુ ચલકે કૃષ્ણ તક જા રહી છે. વાસું શ્રીમહાપ્રભુજી આજ્ઞા કરે છે કે મહાવાન સબ કહુ કરેંગે પર મજનકે બિના નહીં કરેંગે. વાકો ક્યા મતલબ? અનુગ્રહ અને પુરુષાર્થ બંનેં હિયે. વામાં એ સમસ્યા રહેગી કે કોઈ જીવકે કેસમાં પુરુષાર્થ જ્યાદા હોયગો તો કોઈકે કેસમાં અનુગ્રહકો ચરણ જ્યાદા સ્ટ્રોંગ હોયગો. વાકુ મૈં મદનમોહનજીકે ઉદાહરણસું સમજું હું. મદનમોહનજી

स्वामिनीजीके तरफवाले चरणपे ज्यादा भार देके ठाड़े रहते होवे हैं, जो पुष्टिको चरण है. झुकनेके पोज़की ये ब्यूटि होवे है के जा तरफ अपनकु झुकनो होवे वा तरफ ज्यादा जोर देनो पड़े है. क्योंकि वा तरफ गिरनेके चान्स ज्यादा रहते होवे हैं. मदनमोहनजीके चरणमें झुकवेके कारण आतो टेंशन् अपन देख सके हैं. और दूसरो चरण अंगूठाकी नोककु टिकाके अधरसो धर्यो रहे है. वापे कोई टेंशन् नहीं होवे है क्योंकि वा तरफ झुकनो नहीं है. अपनी भक्ति भी ऐसी है. ठाकुरजीकी तरफ अपनकु झुकनो होयगो तो थोड़ो टेढ़ो खड़ो होनो पड़ेगो!



## षोडशग्रन्थमें पुष्टिमार्गीयफल : मोक्षके परिपेक्षमें

अनिल भाटिया

**उपक्रम :**

षोडशग्रन्थमें श्रीमहाप्रभुजीने सभी उपदेश केवल पुष्टिजीवोंके लिए ही दिए हैं, पुष्टिमार्गको समझनेमें पुष्टिजीवको जो कोई भी कठिनाई होती हो उसका निराकरण आपश्रीने इन ग्रन्थों/उपदेशों द्वारा किया है।

सृष्टिरचनामें जिस तरह से ब्रह्मने अनेक नाम, रूप, कर्म के भेदसे विविधता प्रकट की है, उसी तरह कुछ विविधता हर मार्ग अथवा सम्प्रदाय और उसके अनुयायियों में भी दिखलाई देती है। अतः पुष्टिजीवोंके भी स्वभाव, रुचि, अवस्थादिके अनुसार उनमें भिन्नता होनी स्वाभाविक है। पुष्टिजीवोंके भेदोंको ध्यानमें रखकर ही श्रीमहाप्रभुजीके उपदेशोंमें भी उनको करनेके साधन और उनको प्राप्त होनेवाले फलादिकी भिन्नता दिखलाई देती है। हां, एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि पुष्टिजीवोंकी इतनी विभिन्नता होते हुए भी उनमें एक समानता होनी अतिशय अनिवार्य है, और वो है : भक्तिको पञ्चमपुरुषार्थके रूपमें स्वीकारना।

पुष्टिजीवोंमें ऐसी विविधता और उनके अनुरूप उपदेशोंकी भिन्नताके कारण श्रीमहाप्रभुजी द्वारा विरचित षोडशग्रन्थादि ग्रन्थोंमें कोई एक ही फलको इदमित्थन्तया दूढ पाना कठिन है। पुष्टिमार्गमें दीक्षित जीव जब सर्वस्वसमर्पणपूर्वक तनुवित्तजासेवा अपने स्वगृहमें करता है, तब वही सेवा प्रभुकृपा होने पर फलरूपा मानसी होने लग जाती है। पर क्या इस प्रकारकी सेवा जब पुष्टिजीव आरम्भ करता है, तब वही सेवा ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा द्वारा प्राप्त सेवाधिकारकी फलश्रुति नहीं है? जहां साधन ही फलरूप बनता हो, इस अर्थमें ही शायद इस मार्गको निःसाधनताका मार्ग कहते हैं। यथा, किसी विद्यार्थीके लिए नवमी कक्षा, बोर्डके इम्तिहानमें बैठनेके लिए साधनावस्था हो सकती है, पर क्या नवमी कक्षामें सफल होना उसके लिए फल नहीं है? अस्तु।

पुष्टिजीवोंके लिए भक्ति पञ्चमपुरुषार्थ क्यों और कैसे है, इसे समझनेसे पहले, जीवनमें सामान्य पुरुषार्थका क्या महत्व है यह समझनेका प्रयास करेंगे।

## चार पुरुषार्थ :

संस्कृतभाषामें “मे सन्तु इति अर्थः” अर्थात् “मुझे प्राप्त हो” वह ‘अर्थ’ कहलाता है. ‘पुरुषार्थ’का अर्थ होता है पुरुषकी अर्थना या आकांक्षा. व्यक्तिके हृदयमें असंख्य कामनाएं अथवा आकांक्षाएं होती हैं, जिनकी गणना सम्भव नहीं है.

शास्त्रकार जब भी पुरुषार्थकी बात करते हैं, तब उनका ध्यान असंख्य कामनाओंके विषय पर नहीं रहकर, कामनाओंके स्वभाव पर रहता है. इसलिए शास्त्रकारोंने मनुष्यकी अनेकानेक कामनाओंको स्थूल चार वर्गोंमें विभाजित किया है :

१. धर्म अथवा कर्तव्य.
२. अर्थ अथवा सम्पदा.
३. काम अथवा प्रेयस्.
४. मोक्ष अथवा श्रेयस्.

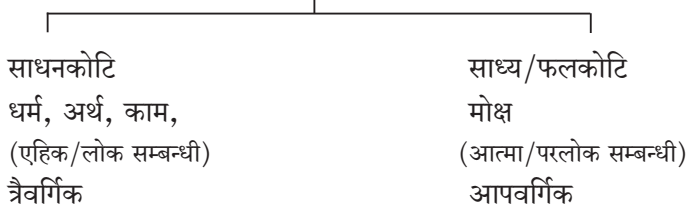
मनुष्यकी सभी कामनाओंका इन चारमें अन्तर्भाव हो जाता है. इन पुरुषार्थोंका वास्तविक, सहज एवं शुभ स्वरूपकी जिज्ञासाका समाधान अलौकिक वेदादि शास्त्रोंमें मिलता है तथा विभिन्न ऋषियों द्वारा लिखित शास्त्रोंमें भी.

## पुरुषार्थका सामान्य वर्गीकरण :

सामान्य रीति से ऐसा जाननेमें आता हैं कि अर्थ और काम पुरुषार्थ ऐहिक अथवा देहसम्बन्धी होते हैं जबकि धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ पारलौकिक/अलौकिक अथवा आत्मासे सम्बन्धित होते हैं.

धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थोंको शास्त्रोंमें ‘त्रैवर्गिक’ बताया है और मोक्ष पुरुषार्थको ‘आपवर्गिक’. इन चारों पुरुषार्थोंमें से धर्म और अर्थ मूलमें साधनकक्षाके पुरुषार्थ हैं जबकि, क्रमशः मोक्ष और काम साध्य अथवा फलकक्षाके पुरुषार्थ हैं.

### पुरुषार्थ



उपरोक्त सारणीमें हम देख सकते हैं कि जीवका वास्तविक श्रेय तो मोक्ष अथवा मुक्ति प्राप्तिमें ही है, क्योंकि संसारके दुःख दूर करनेके रूपमें अथवा कोई पारलौकिक सुखकी प्राप्तिके रूपमें ही मोक्षका प्रतिपादन शास्त्रोंमें किया गया है।

### विभिन्न जीवोंके मुक्तिके प्रकार :

‘पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद’ ग्रन्थमें श्रीमहाप्रभुजीने जीवोंको मूलतः तीन प्रकारसे विभाजित किया है : पुष्टिजीव, प्रवाहजीव और मर्यादाजीव। सहज है कि इन अलग-अलग जीवोंके मोक्ष या फलप्राप्तिके उपाय, साधनादिमें भी तारतम्य तो आएगा ही। इस तारतम्यको कुछ इस तरह से समझा जा सकता है।

हर जीव प्रभुकी कृपारूपी डोरसे ही उससे जुड़ा हुआ है। इस डोरका एक छोर प्रभुके हाथमें है और दुसरी छोर पर जीव बंधा हुआ है।

जिस जीवकी डोरको प्रभुने अपनी तरफसे छोड़ दिया है वो जीव स्वतन्त्र हैं प्रभुने उसे संसारमें छोड़ दिया है। ऐसे जीवको ‘प्रवाहीजीव’ कहा जाता है। “हरिणा ये विनिर्मुक्ताः ते मग्ना भवसागरे” (निरोधलक्षण.११) इन जीवोंकी फलरूप मुक्ति नहीं होती है।

जिस जीवको प्रभु संसारके बंधनसे छुड़ाकर उसका अपनेमें लय, सायुज्यादि मुक्तिके रूपमें फलदान करना चाहते हैं उस जीवको ‘मर्यादाजीव’ कहते हैं। ऐसे जीवको परंतु लीलानुभव या भगवत्सेवाका अवसर प्राप्त नहीं होता है।

जिस जीवको प्रभु, न अपनी तरफ खींचकर अत्यन्त मोक्ष प्रदान करते हैं और न ही उन्हें संसारमें छोड़ देते हैं, ऐसे जीवको अपनी सेवा अथवा भक्तिका सुख अथवा लीलानुभव कराते हैं। ऐसे ‘पुष्टिजीव’के भक्तिमें ही उसका वास्तविक मोक्ष या फल है।

### पञ्चमपुरुषार्थ=भक्ति :

जैसे कि हमने देखा, शास्त्रमें विहित चार पुरुषार्थोंकी गणना है, जिसमें मोक्ष ही श्रेयकारी पुरुषार्थ है। श्रीमहाप्रभुजीने परन्तु, इन चारों पुरुषार्थोंसे अलग, भागवतादि



भक्ति शास्त्रोंके आधार पर, सर्वनिर्णयनिबन्ध, षोडशग्रन्थादि में 'भक्ति'को स्वतन्त्र पुरुषार्थके रूपमें माना है। स्वयं भगवानकी कृपा ही जहां पुष्टिजीवके हृदयमें निष्काम निरूपाधिक भक्तिका रूप धारण कर लेती है, वह पुष्टिभक्तिमार्ग है। अतः श्रीमहाप्रभुजी कहते हैं; “भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिः अस्ति इति निश्चय” (पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद.२)

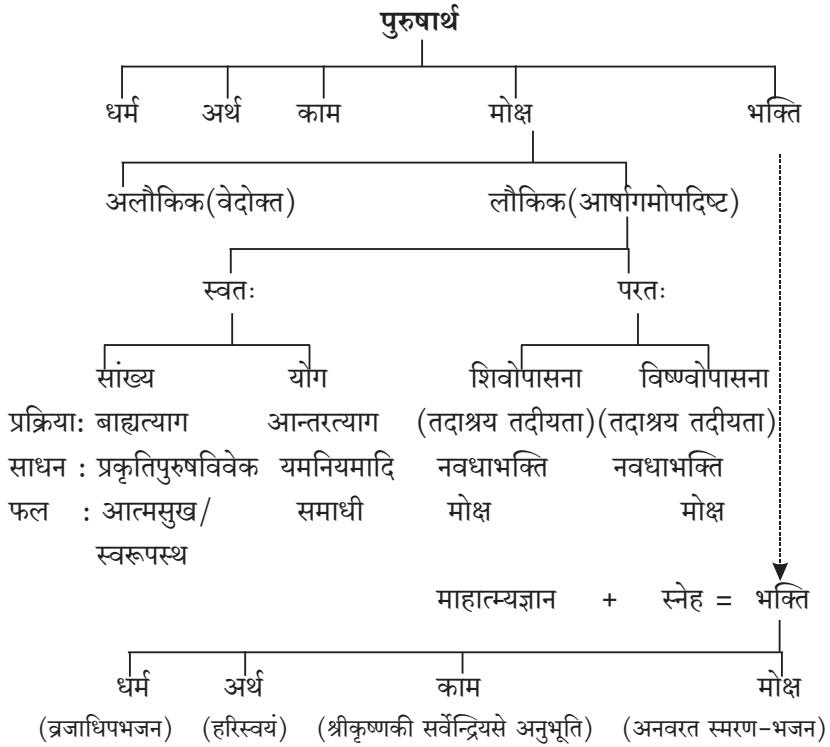
### षोडशग्रन्थमे 'मोक्ष' :

पुष्टिभक्तिमार्गीय जीवके लिए साधन और फल दोनों ही भगवत्कृपैकलभ्य हैं। इस कृपाके पहले न कोई कारणका है और न कृपा होनेके पश्चात् कोई हेतु या प्रयोजन होता है। केवल कृपा ही भक्तके हृदयसे परावृत्त हो कर पुष्टिभक्ति बन जाती है। ऐसेमें षोडशग्रन्थमें मोक्षका निरूपण होना अपने आपमें निरर्थक और निष्प्रयोजन लगता है, फिर भी 'बालबोध' ग्रन्थमें श्रीमहाप्रभुजीने इसका प्रतिपादन सर्वसिद्धान्तके रूपमें तो किया ही है। इसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि भिन्न-भिन्न सिद्धान्तोंके साधन और फल का एक बार ज्ञान हो जाने पर, पुष्टिजीवको अन्यमार्गों पर भटक जानेका भय नहीं रह जाता।

इस संसारमें रहते हुए भी भगवत्सेवा और/अथवा भगवत्कथा द्वारा भजनानंदकी प्राप्ति ही पुष्टिजीवके लिए मोक्ष है। इसीका निरूपण श्रीमहाप्रभुने 'चतुःश्लोकी' ग्रन्थमें किया है। तदन्तर्गत चार पुरुषार्थ अन्यमार्गीय पुरुषार्थोंसे भिन्न हैं, यही विलक्षणता यहां प्रतिपादित की है। 'चतुःश्लोकी'के चारों श्लोक पुष्टिभक्तिमार्गीय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थका क्रमशः निरूपण करते हैं। श्रीमद्भागवतकी 'वृत्रासुर चतुःश्लोकी'के साथ भी इनकी गाढ़ समानता है, जिसका अंतिम श्लोककी विवृत्तिकी शुरुआतमें श्रीमहाप्रभुजीने एक संग्रह श्लोक लिखा है।

“पुष्टिमार्गे हरेर्दास्यं धर्मः अर्थः हरिरेव हि,  
कामः हरिर्दितृक्षैव मोक्षः कृष्णस्य चेद् ध्रुवम्”

निम्नलिखित सारणीमें 'बालबोध'में वर्णित लौकिक मोक्षके प्रकार, उनके साधनादि और 'चतुःश्लोकी'में गिनाए हुए पुष्टिभक्तिमार्गीय चार पुरुषार्थके स्वरूपको दर्शाया है।



प्रक्रिया-सर्वस्वसमर्पण

साधन-तनुवित्तजासेवा

फल-आत्मरति/भगवत्स्वरूपलाभ.

**‘बालबोध’ और ‘चतुःश्लोकी’ का षोडशग्रन्थमें स्थान :**

‘षोडाग्रन्थ’ ग्रन्थमें श्रीयमुनाजीकी स्तुतिको षोडशग्रन्थके मंगलाचरणके रूपमें योजित किया गया हैं। श्रीयमुनाजी प्रभुके समानगुणधर्मवाले होने पर भी प्रभुकी निर्गुण भक्ति करते हैं। पुष्टिभक्तिमार्गीयजीवके लिए ऐसी शुद्धपुष्टिभक्तिका (रोल मोडल) श्रीयमुनाजी हैं। ऐसे (रोल मोडल) की भक्तिका अनुकरण कैसे करना, इसी आशय से ‘सिद्धान्तमुक्तावली’ ग्रन्थमें पञ्चमपुरुषार्थतया भक्त्यात्मिका सेवाको (इन्द्रोड्युस) किया है, जिसमें सेवा, सेव्य और सेवक के स्वरूपोंको समझाया है।

इतर साधनोंसे मिलते मोक्षरूपी फलकी न्यूनता श्रीमहाप्रभुजीने ‘बालबोध’

ग्रन्थमें बताई है.

‘कृष्णाश्रय’ ग्रन्थमें पुष्टिजीवको आधुनिक विफल परिस्थितिमें दृढ़ाश्रय रखनेका निरूपण हैं. ऐसे कृष्णाश्रित जीवको, उसके सारे पुरुषार्थ कृष्णभक्तिके अन्तर्गत ही हैं, यह जतानेके लिए श्रीमहाप्रभुजीने ‘चतुःश्लोकी’की रचना की है. बालबोधमें छोड़े हुए चार पुरुषार्थोंको अब इस ग्रन्थमें रिकोल् कर रहे हैं.

### **भक्तिमें मुक्तिका स्वरूप :**

उपरोक्त बातोंका निचोड़ यही है कि बालबोध ग्रन्थमें कहा गया मोक्ष पुष्टिभक्तिमार्गीको अनभिलषित होता है. भक्त्यन्तर्गत चार पुरुषार्थ ही, जो चतुःश्लोकी ग्रन्थमें बताए हैं, पुष्टिभक्तिमार्गीकेलिए फलप्राप्तिमें सहायक हैं.

पुष्टिजीव जब स्वगृहमें ब्रजाधिपकी सर्वदा सर्वभावेन सेवा, हरिको ही अपना सच्चा अर्थ मानते हुए, केवल हरिकी ही हृदयमें कामना रखते हुवे करता है, तब उसे स्मरण-भजन अथवा संयोग-विप्रयोगके रूपमें पुष्टिभक्तिमार्गीय मोक्ष मिलता है.

जब अनवसरमें भक्तको अपने प्रियतम भगवानके दर्शन बाहर नहीं होते तब उसके हर एक इन्द्रियोंकी स्नेहात्मक वृत्तिओंके एकमात्र आकर्षणका हेतु (कारणरूप) तथा अधीश (नियंता) श्रीगोकुलाधीश भक्तके हृदयमें ही छुपे होते हैं. तब उसे कृष्णदर्शनकी लालसा होती है. चतुःश्लोकीके तीसरे श्लोकमें कहे हुए प्रकारसे प्रभु सर्वात्मना-सर्वप्रकारसे या सर्वात्मभावसे अपने हृदयमें पधरानेवाले भक्तको अन्य कोई भी लौकिक अथवा वैदिक साधन या फलका मोह रहता नहीं है. ऐसी तीव्र दर्शनकी लालसावाले भक्तका मोक्ष तो सर्वात्मना कृष्णका हो जाए उसीमें समाया हुआ है. “मोक्षः कृष्णस्य चेद् ध्रुवम्”.

पुष्टिभक्तको सेव्य श्रीकृष्णकी सेवा इसी लोकमें प्राप्त होनेसे सालोक्य, सेवामें प्रभु सन्मुख होने से सामीप्य, और साथमें रहने पर (सह युनक्ति इति) सायुज्य प्राप्त तो होते ही हैं.

### **भक्तिमें अवान्तर रूप से प्राप्त मुक्ति :**

शुद्धपुष्टिभक्तिका लक्षण नारदपञ्चरात्रमें वर्णित है, जो निबन्धमें

श्रीमहाप्रभुजीने भी उद्धृत किया है। इसी शुद्धपुष्टिभक्तिके अन्तर्गत अवान्तरफलके रूपमें मुक्ति, चाहे उसका जो भी स्वरूप हो, श्रीमहाप्रभुजीको अभिप्रेत ही है। षोडशग्रन्थादिमें भी इस प्रकारके मुक्तिका निरूपण देखा जा सकता है।

“माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिक  
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तः तथा मुक्तिर्नचान्यथा”

(नारदपञ्चरात्र/शास्त्रार्थप्रकरण.४२)

(सिद्धान्तमुक्तावली.२)	“मानसी सा परा मता ततः संसार दुःखस्य निवृत्तिः”
(सिद्धान्तमुक्तावली.१७)	“क्लिष्टोपि चेद् भजेत् लोको नश्यति सर्वथा”
(भक्तिवर्धिनी. ४)	“स्नेहात्... राग विनाशः स्यात्”
(भक्तिवर्धिनी.४)	“आसक्त्या... स्यात् गृहारुचिः”
(पञ्चपद्यानि.१)	“श्रीकृष्णरसविक्षिप्त.. अनिर्वृताः लोकवेदे”
(निरोधलक्षण)	“भगवदासक्ति प्रपञ्च विस्मृति”
(साधनदीपिका.४०)	“यया सर्वात्मभावाख्या सर्ववस्तुषु वैराग्य”
(साधनदीपिका.४२)	“रागः स्यात् नन्दनंदने सर्वत्रैव विरक्तस्य”
(साधनदीपिका.४२)	“तेनासक्तिश्च व्यरान प्रपञ्चास्फुरणं भवेत्”

### उपसंहार :

पुष्टिभक्ति अपने आपमें मार्ग भी है और गन्तव्य भी, साधन भी है और फल भी। इसीलिए संयोग-वियोगोंमें भजन-स्मरणके चढाव-उतारोंमें निरंतर चलते रहना ही पुष्टिभक्तिमार्गमें मुक्ति हैं। इस मार्गपर चलकर अन्यत्र कहीं पहुंचाना नहीं है, केवल निरंतर इस सुहावने मार्ग पर चलते-फिरते रहना है।

श्रीगुसांईजी भी ‘श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र’में पुष्टिभक्तिमार्गका फल मोक्षसे कहीं अधिक है यह जताते हुए कहते हैं : “तदप्राप्तौ वृथा मोक्षः तदाप्तौ तद्गतार्थता” (सर्वोत्तमस्तोत्र.३५) अर्थात् पुष्टिभक्तिका फल प्राप्त नहीं हुवा है तो मोक्ष वृथा है, और उस फलकी प्राप्ति होने पर मोक्षकी गतार्थता है।

श्रीलालूभट्टजी भी जीवविवेकमें मोक्षके प्रकारको गिनाते हुए कहते हैं :

“केचिद् उत्तमाः देवास्तु सत्संगादिप्राप्य मार्गरुचिजन्य-

श्रवणादिसमुद्भूत-भक्तया फलरूपया नित्यलीलायां  
प्रविशन्ति. स तेषां मोक्ष. ते पुष्टिमार्गीया जीवाः”

दैवीजीवोंका सत्संगादि प्राप्त करके, मार्गरुचिजन्य नवधाभक्तिसे उद्भूत  
स्वतन्त्र फलरूपा भक्ति द्वारा नित्यलीलामें प्रवेश होता है, वो उनका मोक्ष है.

और श्रीमहाप्रभुजी निबन्धमें

“साधनं भक्तिः मोक्ष साध्यः तथापि साधनदशैव  
उत्तमा. तत्र हेतुः योहि मुच्यते स संघातं परित्यज्य ब्रह्मणि लीयते  
ब्रह्मभावं वा प्राप्नोति. तस्य स्वरूपानंदः स्वरूपेण आनंदानुभवः  
स्वतन्त्रभक्तानान्तु गोपिकादितुल्यानां सर्वेन्द्रियैः तथा  
अन्तःकरणैः स्वरूपेण च आनंदानुभवः अतो भक्तानां  
जीवन्मुक्त्यपेक्षया भगवत्कृपासहितगृहाश्रमएव विशिष्यते.”

(तत्त्वार्थदीपनिबन्ध प्रकाश. १।५०/५१)

साधन भक्ति है, मोक्ष साध्य है, फिर भी पुष्टिभक्तिकी साधनदशा ही उत्तम  
है. क्योंकि मुक्तजीव तो अपने पाञ्चभौतिक संघातको त्याग करके ब्रह्ममें लीन होता है  
या ब्रह्मभावको प्राप्त करता है. वो जीव क्रमशः स्वरूपानंदको या स्वरूपसे  
आत्मानंदका अनुभव करता है. स्वतन्त्रभक्त तो गोपिकादियोंके जैसे सर्वेन्द्रियोंसे,  
अन्तःकरणसे और स्वरूपसे आनंदका अनुभव करता है. इसलिए भक्तोंको  
जीवनमुक्तिकी अपेक्षा भगवत्कृपासहित गृहाश्रम ही विशेष होता है.

और अंतमें जैसे, भक्तकवि दयारामभाईने गाया है :

“अमे तो राजना खासा खवास रे, मुक्ति मन न आवे रे...



## चर्चा

षोडशग्रन्थमें पुष्टिमार्गीयफल : मोक्षके परिपेक्षमें

श्रीअनिल भाटिया

गो. शरद् : “षोडशग्रन्थादि ग्रन्थोंमें कोई एक ही फलको इदमित्थतया कह पाना कठिन है” अन्तिम पृष्ठपे ये विधान है. या सम्बन्धमें एक जिज्ञासा है. वैसे फलको निरूपण मुख्य-अवान्तर भेदसु अनेक नामनसुं भयो है. परन्तु जहां तक पुष्टिमार्गीय फलको प्रश्न है, श्रीकृष्णमें सभी फलनकी एकवाक्यता, समन्वय या अविरोध सिद्ध होवे ही है. प्रभुसुं अतिरिक्त कोई फल पुष्टिमार्गमें नहीं है. प्रभुकुं छोड़के कोई फल या अवस्था फलरूप नहीं है. श्रीमहाप्रभुजी भी पुष्टिजीवको फल “भगवानेव हि फलम्” आज्ञा करे हैं. ये एक बात है.

दूसरी बात पुरुषार्थके क्रमके विषयमें है. धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष ये पुरुषार्थको प्रचलित क्रम है. परन्तु निबन्धमें श्रीमहाप्रभुजी “दुःखाभावो सुखञ्चैव पुरुषार्थद्वयं मतं, मोक्षःकामस्तयोरङ्गं धर्मो ह्यर्थेन साधितः” ऐसे पुरुषार्थको भिन्न क्रम बता रहे हैं. “अर्थेन साधितः धर्मः” प्रथम अर्थ लियो है. अर्थसु धर्म सिद्ध होयगो. धर्मसु काम और मोक्ष सिद्ध होयेंगे. प्रथमस्कन्धके दूसरे अध्यायमें “धर्मस्य ह्यापवर्गस्य नाऽर्थोऽर्थायोपकल्पते” की सुबोधिनीमें श्रीमहाप्रभुजीने पुरुषार्थके प्रचलित क्रम “धर्माद् अर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते!” के सामने अर्थसु धर्म और वासु काम-मोक्षकी सिद्धिको क्रम बताया है. याके सामने ‘चतुःश्लोकी’में, ‘वृत्रासुरचतुःश्लोकी’में और वाकी संग्रहकारिका “पुष्टिमार्गे हरेर्दास्यं धर्मोऽर्थो हरिरेव हि, कामो हरिदिदृक्षैव मोक्षः कृष्णस्य चेद् ध्रुवम्”. में प्रचलित क्रम बताया है. तो ये दो तरहके क्रमके पीछे क्या रहस्य है ये जिज्ञास्य है.

तीसरी बात, श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के वस्तुतः पुरुषार्थतया अभिलषित तो मनुष्यकु दुःखाभाव और सुख ही होवे है. काम सुखरूप है

और मोक्ष दुःखाभावरूप है। चतुःश्लोकीके सन्दर्भमें जब अपन कृष्णमें सर्वपुरुषार्थरूपता खोज रहे हैं तब दुःखाभाव और सुखप्राप्ति रूप कृष्णकी फलरूपताको यदि अपन विचार करें तो पुष्टिमार्गीय काम = सकलेन्द्रियको प्रभुमें विनियोग अथवा अलौकिक भोग सुखप्राप्तिरूप होयगो और पुष्टिमार्गीय मोक्ष = दुःखाभावरूपता या तरहको कोम्बिनेशन् बनेगो। या सम्बन्धमें कोईके कछु अभिप्राय होवें तो...

**गो. श्या.म.:** श्रीकृष्ण हरि होनेके रूपमें दुःखाभावरूप हैं और कृष्ण होनेके रूपमें सुखरूप हैं। यासुं कृष्णमें तो दुःखाभाव और सुख दोनों फेसेट्स् उपलब्ध हैं।

अब आपने जो पहली बात चर्चाकिलिये रखी हती के “**भगवानेव हि फलम्**” ऐसे अपन क्यों नहीं कह सकें हैं। या सम्बन्धमें एक बात तो ये के या वचनमें अपन ‘भगवान्’की जगह ‘कृष्ण’ पद रखके “**कृष्णएव फलम्**” ऐसो आनन्दसुं कह सके हैं। पर ये स्टेटमेंट् अधूरो है। क्योंकि याको एक सप्लिमेंटरी वचन “**स यथाविर्भवेद् भुवि**” भी है। और तीसरो वचन वाको सबोर्डिनेट् “**गुण-स्वरूपभेदेन**” है। इन तीनों स्तरपे अपनकु सोचनो पड़ेगो। क्योंकि ये वचन एक कन्क्लुज़न्की तरह आयो है, याके पीछे बहोत सरी प्रिमाईसिस् हैं जिनपे यदि अपन ध्यान नहीं देंगे तो ये वचन मिसगाईड् कर सके है। उदाहरणतया दाउजी गुण-स्वरूपभेदसु आविर्भूत भगवान्को ही एक रूप है। पर जिनकु दाउजीने मायों है उनकी गति कछु ओर भई है और ठाकुरजीने जिनकु मारे हैं उन असुरन्की गति कछु ओर भई है। खुदने जिनकु मारे हैं उनकी गति कछु ओर है और जिनकु तारे हैं उनकी गति ओर है। जिनकु तारे हैं उनके प्रति खुदकी अधीनता प्रकट करके तारे हैं और खुदके अधीन करके तारे हैं उनकी गतिमें भी भेद है। ये सब बातें खुलासासु देखनी पड़ेगी जो या वचनमें नहीं मिल रही है। यासु, या वचनकु एक्स्प्लोईट् करनेमें सावधानी बरतनी पड़ेगी। क्योंकि अवतारलीलामें भगवान् भक्तिकु भले महत्त्व नहीं देते होवें पर “**भगवानेव हि फलम्**” वो कीदृशो भगवान्? भक्तिविषयो भगवान् फलम्. भज्यते इति भगवान्. को भजति? भक्तो भजति. तो भक्तानां भगवानेव हि फलम् जो निरोधलक्षणमें बतायो है “**यच्चदुःखं यशोदायाः...भगवान् किं विधास्यति**” वो स्वरूप और केवल विप्रयोगात्मक स्वरूप “**उद्धवागमने जातः उत्सवः...मे मनसि क्वचित्**”. सेवाको फल पहलेवालो है और कथाको फल दूसरोवालो है। ये

सब बातें “भगवानेव हि फलं...फलं भवेत्” वचनकी गहराईमें मौजूद हैं। वा गहराईमेंसु ये पानी नहीं निकल्यो और छीछलो पानी निकल्यो तब तो फिर कंसको उद्धार भी पुष्टिजीवको फल हो जायेगो! कंसकेलिये तो वो निश्चित फल हतो पर पुष्टिजीवकेलिये मारनेवालो भगवान् फल नहीं है।

दशमस्कन्धकु देखें तो भगवानने निरोध केवल आसक्त्यात्मक ही नहीं कियो है निरोध द्वेषात्मक भी है, असूयात्मक भी है और कामात्मक भी है। पर उन सबमेंसुं अपनने पुष्टिमार्गमें कौनसो निरोध फलरूप मान्यो है? पुष्टिभक्तिमार्गमें कंसको निरोध फलरूप नहीं है। यदि वाकु फलरूप बतानो होतो तो श्रीमहाप्रभुजी ऐसो पृथक्करण ही नहीं करते के असुरमारणको कार्य संकर्षण करे है। भागवत ये बात नहीं कह रही है। भागवत तो कह रही है के कृष्णने सबनकु मारे हैं। पर श्रीमहाप्रभुजी वहां दूसरी बात पढ़ रहे हैं जो शब्दसुं प्रकट नहीं हो रही है पर अर्थापत्तिसु आ रही है। कुन्तीजीकी स्तुतिमें आवे है के “**भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम ही स्त्रियः**” “**केचिदाहरजं जातं ...अपरे वसुदेवस्य...भारावतारणायान्ये**” भगवान्के कितने ही तरहके अवतार हैं। उन सारे अवतारनकु व्यूहन्में बांटके अन्तमें भक्तिको विधान भगवान्के अवातारको प्रयोजन है वा लाईट्रमें देखें तो यहां ‘भगवान्’ शब्द ऐश्वर्य-वीर्य-यश आदिसु सम्बद्ध उतनो नहीं है जितनो सम्बद्ध “भज्यते इति भगवान्” या व्युत्पत्तिसु सम्बद्ध है। यहां डेफिनेशनल् नहीं पर इटमोलॉजिकल् भगवान् है। कश्चन भजति। यं भजति स भगवान्। तो भगवान् ही फल नहीं है। पर भगवान् भजनीयतया वा गुण-स्वरूपसुं प्रकट होवे तो फल है। भगवान् फलरूप हो सके है, वाकु अपन ना नहीं पाड़ सके हैं। पर पुष्टिभक्तिमार्गमें वाकु फल नहीं मानेंगे। इतनी सावधानी अपनकु बरतनी पड़ेगी। तो कृष्णकी फलताकु भी अपन अपने अर्थमें मान रहे हैं, असुरनकु फलरूप होते भगवान्की फलरूपताकु अपन अभिलषित नहीं मान रहे हैं। जैसे श्रीगुसांईजीने कह दी है के “**एतासान्तु बहिःप्राकट्यमेव अभिलषितम्। तदैव ईश्वरवादः अन्यदातु शून्यवादः**”। खाली मरनो ही होतो तब तो कृष्णकी क्या जरूरत हती, महादेवजी क्या खोटे हते! सारी सृष्टिको संहार करे हैं तो वो ही आके मार देते! पर मरनो नहीं है, भजन करनो है। जीनो नहीं है। क्योंकि वंशवृद्धि तो कोई भी व्यूह कर देगो! हमकु जीनो नहीं है, हमकु मरनो नहीं है, हमकु तो भजन करनो है। जीके होतो होवे



तो जीके करना है, मरके होतो होवे तो मरके करना है. हमारी आवश्यकता भगवद्भजन है, जीवन-मरण हमारे लिये मुद्दा नहीं है. **“भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः”** ये अपनी आवश्यकता है. ये आवश्यकता ‘भगवान्’की व्युत्पत्ति सु मिलेगी, ऐश्वर्य-वीर्यके भरोसे नहीं मिलेगी. या “उत्पत्तिं च निवृत्तिं च गतिम् आगतिस्तथा, प्रलयं ...भगवान् इति उच्यते”कु सोचने जायेंगे तो भी नहीं मिलेगी. उत्पत्ति-प्रलय करतो होयगो भगवान्, वासु अपने क्या लेनो-देनो! हमारे कु तो तु भजनीय बन रह्यो है तो तु भगवान् है. भजनीय नहीं बन रह्यो है तो तु भगवान् तो है, मर्यादामार्गमें भी भगवान् है, प्रवाहमार्गकी दृष्टिमें भी भगवान् तो भगवान् ही रहेगो. मगर हमारो भगवान् नहीं है. ये बात या सन्दर्भमें खास ध्यानमें रखनी चाहिये.

**असित शाह :** श्रीगुसांईजी भी आज्ञा करे हैं **“श्रीवल्लभाचार्यमते फलं तत्प्राकट्यम्. तत्र अव्यभिचारिहेतुः प्रेमैव”**.

**गो.श्या.म.:** वो लोग बेवकूफ हैं के जो लोग ये कहे हैं के श्रीगुसांईजीकु समझे बिना श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थनुकु पढ़ने मात्र सु पुष्टिमार्ग समझमें आ जायेगो. श्रीमहाप्रभुजीकु समझनो है तो श्रीगुसांईजीके आगे नाक घिसनी पड़ेगी. अपनो मार्ग उभयाचार्य है. श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगोपीनाथजी-श्रीगुसांईजी पिता-पुत्र दोनों अपने आचार्य हैं.

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** पुष्टिको फल मतलब पुष्टिभक्तिमार्गीय फल...

**गो.श्या.म.:** ये प्रकरणानुरोध सु आयेगो. कल जैसे मैंने कही के कोई बात डायलोगमें नहीं है, स्टोरी सु आ रही है, कोई बात थीम सु आवे है ऐसे पुष्टिमार्गमें फल **“भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिः नान्यथा भवेत्”** तादृश्याः सृष्टेः कीदृशो भगवान् फलम्? भजनीयो भगवान् फलम्. ऐसे ये प्रकरण सु आयेगो. जैसे **“दशलीलायुतं सदा”**. श्रीकृष्ण या प्रकरण सु आयेंगे, अन्यथा तो गायब हो जायेंगे कृष्ण. प्रथम-द्वितीयमें हैं और दशम-एकादशमें हैं कृष्ण, बाकी कृष्ण कहां हैं! द्वादशमें तो कृष्ण हैं ही नहीं.

**असित शाह :** वहां तो कल्की आ जायेंगे.

**गो.श्या.म.:** जयपुरके राजाके पास कोई गिलिंडर् पहोंच गयो. वाने कही के कृष्णावतार तो व्यतीत हो गयो. वाके बाद बुद्धावतार भी हो गयो. अब तो कल्की अवतार होयगो. यासुं कल्कीकी सेवा करोगे तो आनेवाले कालमें तुम टिक पाओगे. ये सुनके जयपुरके राजाने कल्कीको मन्दिर बनवा लियो!

आनेवाले मिनिस्टर्की अभीसुं चापलूसी करें तो अपनो काम बने! बाजपायी जैसे रिटायर्डकी चापलूसी क्या कामकी! आनेवालेकु पकड़ो. आज सब राहुल गांधीके पीछे पड़े भये हैं न! आनेवालो प्रधानमन्त्रि है! सब कन्विन्स्ड हैं के राहुल गांधीके अलावा दूसरो कोई भारतमें प्रधानमन्त्री बनने लायक नहीं है! आनेवालो भगवान् है. खैर, एक बात ध्यानसुं समझो के कृष्ण कभी भी व्यतीत भगवान् नहीं है. अपन संकल्पमें भले ‘बुद्धावतारे’ कहें पर अपने यहां कृष्ण शाश्वत हैं. वैसे श्रीकृष्णके स्वधाम पधार जावेके पीछे कलिको प्रवेश मान्यो जाय है. पर प्रभुको धाम क्या है? अक्षर प्रभुको धाम है. और अक्षर “ते हि जीवा अणवः, अक्षरात्मकाः”. तो अपनो हृदय अक्षरात्मक है. प्रभु यहां बिराजे हैं. “यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि, ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि!”. हृदयमें यदि गोकुलाधीशकु धारण कियो है तो सब समस्या हल हो गई समझो. नहिं तो तो गये समझो. कोई भी आके उलटी पट्टी पढ़ा जायेगो के कृष्ण तो व्यतीत अवतार है, आनेवालो तो कल्की है. तब फिर छोड़ो कृष्णकु! एक बार किशनगढके राजाको देहावसान हो गयो. वहांके राजकविने शोकसभामें कद्यो के “राठोड़ारो सूर्य अस्त हो गयो”. दरबारमें उत्तराधिकारी राजा बैठे भये हते. उनने पूछी “तो फिर मैं कोण हां?”. वाने कही के “राठोड़ारो सूर्य अस्त हुयो, वो तो घणो तपातो हो म्हाने. पण थें तो म्हांका चन्द्र हो, शीतल चांदनी देशो!”. ऐसे पाटली बदलनी पड़ेगी. पर अपनकु अवतार दर अवतार पाटली बदलनेकी जरूरत नहीं है. अपनो कृष्ण कभी अस्त नहीं होवे है. वो तो नित्यलीलाविहारी है. सदा ब्रज ही में करत विहार. और ब्रज भक्तको हृदय है. काश्मीरके कृष्णभक्त परमानन्दजी गावें हैं “गुकल म्योंन हृदय ततिचोर्य गुर्यवान् व्याप्तिविमर्शदेवता भगवान्”. गोकुल तो मेरो हृदय है. या गोकुलमें अनेक वृत्तिवाली गैयानको ग्वाला तू है, गोकुलाधीश तू है. तू विमर्श करनेवालो भगवान् है के मेरी गैयाएं यहां-वहां नहीं चली जाय, भटक न जाय. “यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि, ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि”. अपनो कृष्ण वो है. पर साथ-साथ वो कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ है. वो सामर्थ्य यदि अपने भीतर भक्तिमार्गीय कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं सामर्थ्य प्रकट करे तो वो सब सामर्थ्य अपनेलिये फल है. और अभक्तिमार्गीय कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं सामर्थ्य करे तो भगवान् तु है,

कौन ना पाड़ सके! पर फिर गुकल म्योन हृदयको गोकुलाधीश तु नहीं है. तो “भगवानेव हि फलम्”में भगवान् गोकुलाधीशरूपेण फलम् या बातकु भूलनो नहीं चाहिये.

एक बात “कृष्णएव”की हती. दूसरी बात पुरुषार्थके क्रमके प्रभेदकी हती. पुरुषेण अर्थ्यते इति पुरुषार्थः. षोडशकल पुरमें रहनेवालो सत्रहवों फिनोमिना पुरुष है. या पुरुषकी अर्थना बहोत छोटीसी है : दुःखाभाव और सुख. कहां दुःखाभाव है और कहां सुख है वो वाकु थोड़ी पता है. आप धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, भक्ति कह रहे हो वो सब अपेक्षा वाकी नहीं है. वाकी अपेक्षा तो दुःखाभाव और सुख की है. या अर्थमें दुःखाभाव और सुख पुरुषार्थ हैं. अब इनमें मोक्ष कहांसुं आयेगो? काम कहांसुं आयेगो? मोक्ष आयेगो आत्यन्तिक दुःखाभावसुं. काम कहांसुं आयेगो? कौनसो काम? “धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ!” करके तात्कालिक सुखके रूपमें काम आ जायेगो. ये काम और मोक्ष सिद्ध कैसे होंगे? काम सिद्ध होयगो अर्थसु और अर्थ सिद्ध होयगो धर्मसु. “धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्”. धर्मविरुद्ध यदि अर्थ कमायो जैसे हम गुसाई बालक हवेली खोलके धन कमावे हैं, तब तो अनर्थ हो जायेगो, अर्थ नहीं रहेगो. तो या तरहसुं धर्म-अर्थ-काम-मोक्षको एक डोक्ट्रिनल् ऑर्डर है. अपनी अपेक्षाको ऑर्डर ये नहीं है. इमिजियेड अपनकु क्या चाहिये? धर्म कौनकु चाहिये है? “पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः, पापस्य फलं नेच्छन्ति पापं कुर्वन्ति वै सदा”. तो पुरुषार्थके तहत अपनकु धर्म नहीं चाहिये है. अपनकु चाहिये है : दुःखाभाव और सुख ही. पर शास्त्र अपनकु समझावे है के तोकु यदि ये चाहिये है तो फोर सर्टन पीरियड चाहिये है के फोर एवर् चाहिये है? शास्त्रके पास वाके सारे फोर्म्युला हैं. “कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवता” “अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसां, देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि”. यदि कुछ समयके लिये समस्याको समाधान चाहिये है तो कर्ममार्ग है. तुरन्त समाधान चाहिये है तो क्षुद्र देवताएं हैं और वात्स्यायन और अर्थशास्त्र में बताये गये लौकिक उपाय भी हो सके हैं. और यदि आत्यन्तिक सिद्धि चाहिये है तो तोकु स्वस्तिकको ऑर्डर स्वीकारनो पड़ेगो. “‘सु’ ‘अस्ति’ ‘करोति’ इति स्वस्तिक.” स्वस्तिकको हर छेल्लो पाँइद दूसरेपे ले जा रह्यो है. धर्म

अर्थको उच्छेदक नहीं होना चाहिये. अर्थ कामोच्छेदक नहीं होना चाहिये. काम मोक्षोच्छेदक नहीं होना चाहिये. मोक्ष धर्मोच्छेदक नहीं होना चाहिये. स्वस्तिककी समम्-बोनम् स्थिति श्रीमहाप्रभुजीकु भक्तिमें लगी है. करके आपने भक्तिकु परम पुरुषार्थ मान्यो है. भक्तिमें धर्मार्थकाममोक्ष सबको अविरोध सिद्ध हो रह्यो है. भक्तिमें स्वस्तिकके कोई भी हाथकु काटनेकी जरूरत नहीं पड़ रही है. नाज़ीन्को स्वस्तिक मूविंग् हतो. अपनो स्वस्तिक स्टेटिक् है, वाकी स्थिरता बतानेकेलिये. अपनो भाव वामें ये है के अपने धर्मार्थकाममोक्ष स्थिर होने चाहिये. करके श्रीमहाप्रभुजीने बालबोधमें कह्यो है के वेदमें कहे गये पुरुषार्थ अपनेलिये प्रथम अनुसरणीय हैं. अधिकमें आर्ष पुरुषार्थ अनुसरणीय हैं. प्राईमरि तो वैदिक ही अनुसरणीय हैं. वाको समम्-बोनम् स्टेड् भक्तिमें कैसे मिल जायेगो वो बतानेकेलिये ड्रोप् करी भई चारों पुरुषार्थनकी आईटम्कु 'चतुःश्लोकी'में श्रीमहाप्रभुजीने फिरसु इन्कोपॉरेट् करके बताई के तुमकु यदि धर्मकी कामना है तो भजन है. अर्थकी कामना होवे तो हरि सर्वसमर्थ है. भोगकी कामना होवे तो सर्वेन्द्रियनकु सुख देनेवालो कृष्ण गोकुलाधीश अपने पास मौजूद है. तुमकु मोक्षकी कामना होवे तो स्मरण-भजनको चक्र तुम्हारो मोक्ष है. या तरहसु चारों पुरुषार्थनकु श्रीमहाप्रभुजी भक्तिमें समा रहे हैं, भक्तिकु पुरुषार्थमें नहीं समा रहे हैं. ये श्रीमहाप्रभुजीके एप्रोच्को डिफ्रेंस् है.



## ‘निरोधलक्षण’ ग्रन्थमें फल

धर्मेन्द्रसिंह झाला

श्रीमद्वृन्दावनेन्दुप्रकटितरसिकानन्दसन्दोहरूप  
स्फुर्जद्रासादिलीलामृतजलधिभराक्रान्तसर्वोऽपि शशवत् ।  
तस्यैवात्मानुभावप्रकटनहृदयस्याज्ञया प्रादुरासीद्  
भूमौ यः सन्मनुष्याकृतिरतिकरुणस् तं प्रपद्ये हुताशम् ॥  
( वल्लभाष्टकम्. १ )

### निरोधलक्षणग्रन्थको प्राकट्य :

श्रीआचार्यजी (राजा दूबे-माधो दूबेकों) आज्ञा किये “सब ठोरतें मन छुड़ाई निरोध करि भगवत्सेवा करियो”.

तब राजा दूबे-माधो दूबे बिनती करी जो “महाराज ! निरोध को स्वरूप कहा है ?” तब श्रीआचार्यजी कहें “निरोध दोई प्रकारको. एक साधनदशा को, एक सिद्धदशाको. साधनदशाके निरोधके लक्षण यह जो संसार लौकिक वैदिक मनमें सुहाय नहीं. यह मनमें रहे जो कब भगवत्सेवा करूं ? यामें रुचि उपजे. मन कछू लौकिकमें जाय तो, फेरि खेंचि सेवामें लगावे. यह जानें जो एक भगवान ही के आश्रयतें सब कार्य सिद्ध होत है. यह साधनदशाको निरोध. और फलदशाको निरोध यह जो मनको स्वतः ही सिद्ध यह सुभाव परे जो श्रीठाकुरजीके स्वरूपके ध्यान बिना और ठौर जाय नाहीं. लौकिक-वैदिक कार्य हू करे परंतु मन श्रीठाकुरजी बिना और ठौर जाय नाहीं. यह फलदशाको निरोध. तिनकों यह संसारको दुःख-सुख अनेक ताप हैं सो लगे नाहीं. मन श्रीठाकुरजी और उनके लीलारसमें मग्न रहै. यह निरोधको प्रकार है”.

तब राजादूबे-माधोदूबे बिनती किये “निरोधको दान आपु करोगे तो हमकों कछु सिद्ध होइगो, ओर प्रकार हमारो तो सामर्थ नाहीं है”.

दशमस्कंधकों निरोधस्कंध कहे हैं, ताके साररूपेण आपु

‘निरोधलक्षण’ ग्रन्थ करि दोऊ भाईनकों पाठ करायकें कहें “‘तुम दोऊ भाईनकों निरोध सिद्ध होईगो...तुमकों तो निरोध सिद्ध भयो, और, जो तुम्हारे संग मन लगायके करेगो, ताहूकों निरोध सिद्ध होयगो...घरमें आई दोई भाई भगवत्सेवा करन लागे ... भगवद्वार्ता करि दोऊ भाई श्रीठाकुरजीकी लीला रसमें मग्न रहते ( ८४.वै.वा.३५ ).

### श्रीमद्भागवतमें निरोध :

श्रीमद्भागवत भक्तिजनिका संहिता है जामें प्रभुकी दशविधलीलान्कों निरूपण हैं. श्रीआचार्यजी आज्ञा करे है “शुकमुखं प्राप्य अमृतं मोक्षमपि शिथिलं करोतीति भक्तिरसो अमृतद्रवः, तेन संयुतम्. अनेन अन्यरसादपि अधिको रसः उक्तः...अत्र आनन्दस्य हरेः लीला शास्त्रार्थः. भक्तिजनिका हि संहिता. सृष्ट्यादीनां लीलात्वे ज्ञाते भक्तिः भवति न कार्यत्वे” ( सुबो.१।१।३-४ ). भागवतको नवमस्कन्ध ‘ईशानुकथा’=भक्ति है तो दशमस्कन्ध ‘निरोध’ है. भागवतार्थमें आपु आज्ञा करे हैं “‘जो पूर्वत्र निर्दिष्ट भक्तनूकों विमुक्त्यर्थ रोधन कियो गयो है. कृष्णमें निरुद्ध होयवेसूं भक्त मुक्त होवे है. भक्तिकी शुद्धतासिद्धि तो प्रपञ्चसूं विनिवारण करीवेसूं अरु प्रभुमें आसक्तिसूं होवे है. यासूं दशमस्कन्धमें प्रपञ्चविस्मृति अरु कृष्णासक्ति को वर्णन कियो है. ‘शय्यासनाटनालाप’में फलनिरूपण कियो है. जहांलों बाह्य अग्नि भीतर प्रविष्ट न होय तहांलों भीतर रह्यो भयो अग्निहु काष्ठकों जराय न शके, ऐसेही सर्वगत विष्णु जहांलों भक्तकें प्रपञ्चादिकनमें प्रविष्ट नाहीं होत तहांलों सबकछु लीन नाहीं होत, या कारण कृष्णकों प्राकट्य है. नटकी न्याइ रूपान्तर स्वीकार करिकें कृष्णने त्रिविध निजजननों उद्धार कियो यह निश्चय है” ( त.दी.नि.३।१०।१६-१९ ).

निरोधलीलामें प्रभुको भावात्मकस्वरूप आप दशमसुबोधिनी के मंगलाचरण “नमामि हृदये शेषे”में समुझावे है. दशमसुबोधिनीमें आप आज्ञा करे है

“भक्तिमार्गं प्रकटीकुर्वन् सामान्यतो दशविधलीलायुक्तम् आह...‘कृष्णाय’ इति फलं सदानन्दरूपत्वाद् आश्रयश्च...किञ्च न केवलं दशविधामेव लीलां करोति. अवतीर्णस्तु अधिकमपि करोति...दशविधलीलावद् भक्तिः एकैव स्वतन्त्राः...एवं परमार्थतो नमस्कारं कृत्वा मोहकलीलासहितमपि भगवन्तं लौकिकरसार्थं

नमस्यति...‘स्वच्छन्दोपात्तदेहाय’ ‘स्वाः’ = भक्ताः, तेषां छन्दः = इच्छा तेषाम् इच्छापूर्त्यर्थम् उपात्तो देहो येन. तेहि यथा भावयन्ति तथा रूपं करोति नटवदेव” (सुबो.१०।२४।१०-११).

**रसात्मकप्रभुके आगे सब कुछ तुच्छ है :**

“धिग् जन्म नस्त्रिवृद् विद्या धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम् धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे” की सुबोधिनी में आप समझावे है “ज्ञानेऽपि आत्मसाक्षात्कारः, कर्मणि च क्रियारूपे अलौकिके च रूपे ज्ञानवताम्. भक्तौतु न साक्षात्कारः फलं, जायमानमपि अंगताम् आपद्यते. केवलरसभक्षका इक्षुभक्षकेभ्योऽपि सरसा. अतः एतादृशो भक्तिमार्गो भगवता प्रकटितः.” श्रीप्रभुचरण कहै हैं “दृष्टेऽपि भगवति यावत् सर्वेन्द्रियैः साक्षात् न अनुभूयते न तावत् स्वास्थ्यम् इति न साक्षात्कारमात्रं फलम्...यथा इक्षुदण्डस्य रससम्बन्धाद् भक्ष्यत्वम्, तथा भगवदानन्दलेशसम्बन्धेन अन्येषां रूपाणां भजनीयत्वम् इति आशयेन इक्षुदृष्टान्तः. केवलरसात्मकः स्वयम् अधुनैव प्रकटः इति इतः पूर्वमेव ते पक्षाः कर्तव्यत्वेन स्थिताः नतु अतः परम्” (सुबो.टिप्प.१०।२०।३९).

**षोडशग्रन्थमें निरोध :**

श्रीकृष्णास्य श्रीआचार्यजीने अपनो सिद्धान्त जनाईके भक्तिकी सिद्धिके लिए षोडशग्रन्थ प्रकट किये है. सो भक्ति सेवा-कथारूपा हैं. निरोधलक्षणग्रन्थमें मुख्यतया १. व्रजभक्तन् के भाव की भावना २. गुणगान ३. ‘प्रपंचे क्रीडनं हरेः’ स्थानीय भगवत्सेवा कहि है.

यमुनाष्टकमें व्रजक्रीडानिर्देश आपने “तव चरित्रम् अत्यद्भूतं...प्रियो भवति सेवनात् तव हरेर्यथा गोपिकाः, इयं तव कथाधिका सकल-गोपिका-संगमः स्मरश्रम-श्रम-जलाणुभिः सकल-गात्रजैः संगमः” से कियो है.

सिद्धान्तमुक्तावलीमें ‘कृष्णसेवा’ मे ‘कृष्ण’ पद निसाधनफलात्माको द्योतक है. फलरूपा मानसीकों समुझाते भये श्रीप्रभुचरण आज्ञा करे हैं. “यथा

व्रजसीमन्तनीनाम् तदेव तत्प्राणनाथेन गीत 'तानाविदन् मयि अनुसंगबद्धधीयः स्वम् आत्मानम् अदस् तथा इदम्' ”. या ग्रन्थमें संसार-दुःखनिवृत्ति अरु ब्रह्मबोधन रूप अवान्तरफल कहें है निरोधलक्षणमें अवान्तरफल “संसार विरहक्लेशो न स्याताम्” और “सच्चिदानन्दता ततः” रूपसूं आ रहे हैं. “तस्मात् श्रीकृष्णमार्गस्थो विमुक्तः सर्वलोकतः आत्मानन्द समुद्रस्थ कृष्णमेव विचिन्तयेत्” की विवृत्तिमें प्रभुचरण आज्ञा करें हैं, “श्रीकृष्णपदसुं पुष्टिमार्गीयभक्तप्रकटित निरवधिआनन्दमें विहार करिवेवारे यह अर्थ है, वे तो व्रजरत्न ही हैं. वह आनन्द तो भगवत्स्वरूपात्मक अरु भगवद्दत्त ही है. या ग्रन्थमें “ज्ञानाधिको भक्तिमार्ग एवं तस्मात् निरूपितः” कह्यो अरु निरोधलक्षणमें “एवं ज्ञात्वा ज्ञानमार्गात् उत्कर्षो गुणवर्णने” कह्यो है.

पुष्टिप्रवाहमर्यादामें जो पुष्टिसृष्टिको प्रयोजन स्वरूपासक्ति बतायके पृष्टिजीवनको फल “भगवानेव हि फलं स यथा आविर्भवेद् भुवि” कह्यो है सो तो “प्रपञ्चे क्रीडनं हरेः” बिना कैसे सिद्ध होय सके.

सिद्धान्तरहस्यमें व्रजमें जैसे स्वतन्त्रभक्तिमार्ग प्रकट करिवेके काज आपु स्वयं प्रकट भये तेसे अधुनाहु श्रीआचार्यजीके द्वारा पुष्टिसम्प्रदाय प्रकट करिवे आपु प्रकट भये.

चतुश्लोकीमें सर्वदा सर्वभावसुं व्रजाधीपकी सेवा करिवेको कह्यो है. श्रीव्रजराजजी समुझावे हैं जो “प्रभु जैसे कृपा करीकें उनमें अपनी स्वकीयता प्रकट करिके स्वयंमें हु तिनको आधिपत्य प्रकट करिके रमण करें हैं तैसे हि सर्वात्मभावसुं भजन करिवेपर सभीन्कों उद्धार करत है यह ‘व्रजाधिप’पदसुं जतायो.”

भक्तिवधिर्नीमें “यदा स्याद् व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्याद् तदैव हि” और “सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिः दृढा भवेद् यावज्जीवम्” सूं निरोध हि इंगित हो रह्यो है.

संन्यासनिर्णयमें “कौण्डिन्यो गोपिका प्रोक्ता गुरवः साधनं च तद्भावो भावनया सिद्धः साधनम् नान्यद् ईष्यते...भावना साधनं यत्र फलं चापि तथा



भवेत्” कह्यो है. “बहिश्चेत् प्रकट स्वात्मा” कहिके हरिकी प्रपञ्चमें क्रीडा हि बोधित हो रही है.

सेवाफलोक्त अलौकिकसामर्थ्य तो फलनिरोध ही है.

### निरोधस्वरूपविचार :

गो.श्रीश्याममनोहरजीकी भूमिकाके अनुसार निरोधको तीन प्रकारसूं विचार कियो जा सके है.

#### १. कारणलक्षण, स्वरूपलक्षण, कार्यलक्षण एवं प्रयोजनलक्षण :

कारणलक्षण : अपनी दुर्विभाव्य शक्तिनूके संग श्रीकृष्णकों या धरातलपे क्रीडार्थ प्रकट होनों निरोध है. या जगत्में जैसी लीलानूके कारण भक्त प्रपंचकों भूलिके प्रभुमें अनन्यतया आसक्त हो पावे वा लीलानूकों कारणलक्षण मान्यो जाय है. संसारावेश भक्तिकों अशुद्ध बनावे है यासूं भक्तिकी शुद्धताके काज श्रीकृष्णद्वारा भक्तनूकों निरोध आवश्यक है. ब्रजमें तो पशु-पक्षी-वृक्ष-पर्वत-नदी पर्यन्त सभीनूको निरोध सिद्ध भयो. भगवानूके गुण-लीलानूके निरन्तर श्रवण-स्मरण-कीर्तनसूं आधुनिक भक्तहु भगवानूमें निरुद्ध हो पावे है.

स्वरूपलक्षण : भक्तनूकों सर्वथा प्रपञ्चकों भूलिके भगवानूमें ही अनन्यतया आसक्त हो जानो निरोधको स्वरूपलक्षण है. यासूं कह्यो जो “प्रपञ्चविस्मृतिः तस्मात् कृष्णासक्तिश्च वर्ण्यते” (त.दी.नि.३।१०।१८).

कार्यलक्षण : “गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्द दर्शने क्षणं युगशतं यासां येन विना अभवत्” ( भाग.पुरा.१०।१६।१६ ) यासूं कह्यो है “भगवद्विरहसामयिक-परमदुःखकारणत्वे सति भगवत्संयोगसामयिक-परमानन्दसाधकत्वं निरोधत्वम्” ( निर्णयार्णव ).

प्रयोजनलक्षण : “भक्ताः पूर्वत्र निर्दिष्टा ते रोधव्या विमुक्तये कृष्णे निरुद्धकरणात् भक्ता मुक्ताः भवन्ति हि” ( त.दी.नि.३।१०।१५-१६ ) में कहे अनुसार भक्तनूके निरोधको प्रयोजन मुक्ति है.

## २. करणनिरोध, व्यापारनिरोध एवं फलनिरोध :

करणनिरोध : भक्तस्वभावानुरूप भगवद्रूप एवं भगवल्लीला.

व्यापारनिरोध : भक्तन्की प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्ति.

फलनिरोध : करणरूप भगवल्लीलाके व्यापाररूप प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिके फलस्वरूप भक्तन्के प्रापञ्चिक विषयन्के सर्व बन्धन् टूट जाय हैं. भक्तन्के सर्व लौकिकपदार्थ या भावन्में भगवदावेश प्रकट होय जाय है नहिं तो वे तिन पदार्थ या भावन्सूं मुक्त व्हेके सायुज्य या वैकुण्ठादिकन्में सेवोपयोगिदेह प्राप्त करे है. श्रीआचार्यजी आज्ञा करे है “लौकिकेषु तु भावेषु यत्रैव हरिवेशनं निवर्तते तदेवात्र वन्हे: दारुमयो यथा” (सुबो.१०।५।१).

## ३. प्रमाणनिरोध, प्रमेयनिरोध, साधननिरोध एवं फलनिरोध.

प्रमाणनिरोध : भक्त अपने स्वभावानुसारी धारित भगवद्रूप को भगवान्की जिन लीलाके कारण जान पावें तिनकों ‘प्रमाणनिरोध’ कह्यो जाय है.

प्रमेयनिरोध : भक्तस्वभावानुरूप धारित भगवद्रूप भगवान्की जिन लीलाके कारण भक्तन्के हृदयमें आरूढ हो जाय तिनको ‘प्रमेयनिरोध’ कह्यो जाय है.

साधननिरोध : भक्तस्वभावानुरूप धारित भगवद्रूपकी प्राप्तिके साधनन्में भक्त भगवान्की जिन लीलान्के कारण तत्पर हो जाय तिन लीलान्कों ‘साधननिरोध’ कह्यो जाय है.

फलनिरोध : भक्तस्वभावानुरूप धारित भगवद्रूपकी लीलान्में भक्त भगवान्की जिन लीलान्सूं सम्मिलित हो पावे तिन लीलान्को ‘फलनिरोध’ कह्यो जाय है.

श्रीगोपेशजीके अनुसार लोकवेदभागवतप्रसिद्ध पुरुषोत्तमसायुज्य पर्यन्तके जो फल हैं तिनसूं निवृत्ति रोध कही जाय है. रोधपूर्विका आत्मोपाधिकप्रियत्वसूं अप्रयुक्त भगवन्मात्रोपाधिक प्रियत्वप्रयुक्त भगवत्परता निरोध है. रोधमें भजनानन्दातिरिक्त सारे फलन्सूं निरपेक्षता है. निरोधमेंतो स्वात्माकी हु निरपेक्षता है, क्यों जो निरोधमें भगवान्

अपनेलिए प्रिय नाहिं, स्वात्मा हु भगवदर्थ प्रिय हैं.

श्रीविठ्ठलेशात्मजवल्लभजीके अनुसार निरोधलक्षणग्रन्थ लक्षणन्के निरूपण द्वारा निरोधज्ञापक है. दशमस्कन्धमें बहुधा निरोधको स्वरूपलक्षण दियो है, यहां कार्यलक्षण कहे हैं.

श्रीहरिरायजीने विस्तृतटीकामें ग्रन्थोत्थानिकामें १.निरोध क्या है ? २.निरोधको कारण क्या है ? ३.निरोध फलरूप कैसे है ? इन बातन्को विचार कीनो है. निरोध प्रपञ्चविस्मृतिपूर्विका आसक्तिरूप भगवान्को अरु भक्तन्को व्यसन है. आचार्यजी आज्ञा करे हैं “निरोधो यदि भक्तानां स्वस्मिन् स्वस्य च तेषु हि तदोभयसुसम्बन्धात् दृढो भवति नान्यथा” भगवन्निरोध प्रपञ्चमें हरिकी क्रीडारूप है अरु जहां प्रभु निरोध संपादित करनो इच्छे है वहां तदनुकूल आपुनो स्वरूप संपादित करें हैं यह ‘गोपीभिः स्तोभितो अनृत्यद्’ ( भाग.पुरा.१०।११।७)में दर्शायो है. निरोध परमफलरूप है. निरोधके साक्षात्-परंपराभेदसूं या मुख्य-गौणभेदसूं दो साधन भावभावन् अरु गुणगान को निरूपण या ग्रन्थमें है.

श्रीवल्लभजीके अनुसार निरोध “प्रपञ्चे क्रीडनं हरेः” वचनानुसार साक्षात्भगवत्क्रीडा है अरु वा क्रीडाके अनुसार दशमस्कन्धमें भक्तन्की चित्तवृत्तिको निरोध कह्यो है. प्राकट्यदशामें भगवत्स्वरूप भक्तन्के निरोधको कारण होयवेसूं अब यहां साम्प्रतमें स्वमार्गीयसाधनके अभावमें कदाचिद् ज्ञानरीतिके निरोधसाधनन्में स्वकीयन्की प्रवृत्ति न होय ताके अर्थ निरोधलक्षणको प्राकट्य है. स्वमार्गीयन्के निरोधार्थ जो अपेक्षित जो कारण है वे या ग्रन्थके वर्ण्यविषय है.

श्रीपुरुषोत्तमजीके अनुसार श्रीआचार्यजीने संन्यासनिर्णयमें त्यागपूर्वक भावभावनासूं भाव सिद्धि कही है. तहां अपेक्षा होय है जो कोनसी भावभावना करनी ? यह आकांक्षा जगे है. भक्तिवर्धिनीमें दृढबीजभाववारेन्को त्यागपूर्वक श्रवणकीर्तनरूप साधन भक्तिवृद्ध्यर्थ कह्यो है. वामें भक्तिवृद्धिको स्वरूप कोनसो ? यह आकांक्षा होय है. वैसे ही सेवाफलमें सेवाकी आधिदैविकताके अभावमें आद्यफल नहीं होवे है यह कह्यो है तहां आकांक्षा होय है जो कोन प्रकारसूं सेवा आधिदैविकी होय ? इन आकांक्षान् को पूर्ण करिवे आचार्यजीने निरोधलक्षणग्रन्थ प्रकट कियो है. जा प्रकार

अवतारदशामें प्रभुनें भक्तनयनगोचर गुणलीलान्के द्वारा भक्तन्को प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वकभगवदासक्तिरूप निरोध क्रमसूं सिद्ध कियो वैसे अधुना हु श्रवणकीर्तनादिगोचर गुणलीलान्सूं क्रमसूं निरोध सिद्ध करिके प्रभु उद्धार करेंगे यह भावना करनी. या ग्रन्थमें भक्तिवृद्धिके साधन अरु अपनी अवस्थाकी परीक्षा कैसे करनी यह जतायो है. जो त्यागपूर्वक भावनाद्वारा भज रहें है तिनकों आसंशाविशेषद्वारा परीक्षा करनी. त्यागपूर्वक कीर्तनसूं भजन करवेवारेंनों कीर्तनमें प्रकट होते सुखविशेषसूं परीक्षा करनी. गृहमें सेवापरायण जो है तिनकों सेवाकी आधिदैविकताकी सिद्ध करिवे अहर्निश श्रवण-कीर्तन-ध्यानादि करें.

श्रीब्रजराजजीके अनुसार श्रीआचार्यजी स्वीयन्पें कृपा करिके निरोधफलदानकी इच्छासूं निरोधको स्वरूप ग्रन्थमें समुझावे है.

**निरोधलक्षणके अधिकारी अरु प्रयोजन :**

“निरुद्धानां तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते...ये निरुद्धाः तएव अत्र मोदम् आयान्ति अहर्निशम्” या वचनके विचारसूं अधिकारी ‘निरुद्ध’ है अरु प्रयोजन उनमें निरोधकी सिद्धि है. निरुद्ध कहिकें आप जो निरोधमागीय है तिनको ले रहे है उनको ज्ञापक ‘अत्र मोद’ है अरु सिद्धिको ज्ञापक ‘अत्र अहर्निश मोद’ हैं ऐसो लगे है.

### निरोधलक्षणमें फलको निरूपण

श्रीआचार्यजीनें निरोधरूप फलको विचार वेणुगीतसुबोधिनीमें कियो है. “अतएव निरोधो भक्त्यनन्तरं निरूपितः सृष्ट्युत्पन्नानां भोग एतत्पर्यवसायी ...अन्यथा सृष्टिः व्यर्था स्यात्...अतो निरोधो महाफलः” (सुबो.१०।१८।५) अरु “अक्षण्वतां फलम् इदम्...इदम् इति स्वहृदये मनोरथप्रकारेण प्रतिभातं. भगवता सह संलाप...एवं तद्भावनां सदा. इदमेव इन्द्रियवतां फलं मोक्षोपि नान्यथा” (सुबो.१०।१८।७), पुरुषोत्तमजी समुझावे है जो “उदासीनत्वात् न फलतेति तन्निवर्तयितुम् ‘इदम्’पदस्य अर्थम् आहुः”.

श्रीआचार्यजी अपनो मनोरथ निरोधलक्षणग्रन्थमें अरु मुख्यतया प्रथम तीन श्लोकन्में दशावे हैं : “यच्च दुःखं यशोदाया..तद् दुःखं स्यान् मम

क्वचित्...गोकुले गोपिकानां तु...भगवान् किं विधास्यति...उद्धवागमने जात उत्सवः...तथा मे मनसि क्वचित्” (श्लोकः १-३)

**चाचागोपीशजी :** निरोधसाधनीभूतभावविषयकं निरोधावश्यंभावसूचकं मनोरथस्वरूप दुःख = प्रभु विरहानुभवजननार्थं मथुरा पधारे तबको दुःख., सुख = विप्रयोगदशामें आन्तरसुख, अरु उत्सव = उत्कण्ठारूप उत्कलिकाजनक-उत्सव.

**श्रीविठ्ठलेशात्मजवल्लभजी :** निरोधको कार्यलक्षण (श्लोक.१.प्रथमार्ध) दुःख = यशोदा, नन्द, अन्तरंगगोपके भगवच्चिन्तन या गुणगान. च = सुख, तिनकों लीलानुभवरूप सुख, ये दुःख-सुख सभी भक्तन् के लिये आशास्य हैं. दुःख = गोपीकान्को विरहदुःख, सुख = पूर्वदलानुभवरूप संयोगसुख, उत्सव = आत्यन्तिकविरहानुभवरूप, ये सारे स्वरूपसूं ज्ञेयमात्र हैं, आशास्य नाहिं.

**श्रीहरिरायजी :** निरोधरूप परमफलके मुख्यसाधनरूप भावभावनको निरूपण या श्लोकन्में है. दुःख = परमार्तिरूप प्रभुप्राकट्यकारणरूप, सुख = अनुभूयमान लीलासम्पादक उत्सव = विरहरसपोषक दूतागमनोत्सव. अलौकिकसामर्थ्यरूप मुख्यनिरोध श्रीमहाप्रभुजीकोही है यासूं वाके साधनन्को निर्देश स्वविषयतया कियो, अन्यकों जब तक भगवान् महापुरुषकृपासूं सायुज्य या सेवोपयोगिदेह को दान करें तब तक स्थितिको प्रकार आगें के श्लोकन्में कह्यो है.

**श्रीवल्लभजी :** स्वमार्गीय निरोधके लिये सर्वथा जो अपेक्षित है ऐसे मूलकारणको निदर्शन तीन श्लोकन्में हैं. दुःख = अंगीकाररूपबीजस्वभावके कारण रहतो प्रभुप्राकट्यकारक एवं प्रभुप्राकट्यानन्तर प्रभुसम्बन्धि. सुख = अपने अपने मनोरथपूरणकरवेवारो दुर्लभ पर प्रभुसामर्थ्यसूं प्राप्य सुख. उत्सव = संयोगसुखके पाछे होते विप्रयोगदुःखमें विलक्षणसुखोत्पादक. स्वकीयन्कोहु निरोधार्थ अपेक्षित होयवेसुं अपनेमें सम्भावनाद्वारा भावना करनी.

**श्रीपुरुषोत्तमजी :** दुःख = भगवत्प्राकट्यको हेतु. सुख = दर्शनजन्यसुख, उत्सव = विरहमें भगवत्स्मरणोत्सव. त्यागी जो भावनापरायण हैं तिनकों दुःखादिकी अपनेमें आशंशा (आकांक्षा) करनी. यह आशंशोत्पत्ति ही अपनेमें भक्तिवृद्धिज्ञापकलक्षण हैं.

**श्रीब्रजराजजी :** = दुःख = भगवदाविर्भावके पूर्वको दुःख, सुख = भगवदाविर्भावजन्य सुखोल्लास, उत्सव = भगवन्नित्यस्थित्यात्मकानन्दसुख. आधुनिक भक्तन्कों ब्रजभक्तन्के दुःख सुख अरु उत्सवकी मनोरथ करिकें भावना करनी.

**श्रीश्याममनोहरजी :** निरोधावस्थाके परिपाकार्थ भगवत्सेवा तथा भगवत्कथा दोनोंमें परायण पुष्टिभक्तकों सेवानवसरमें वियोगकी भावना करनी. सेवाके समय संयोगकी भावना करनी. सेवा-कथा जिन्सूं एकसाथ नहीं निभ पाती होय तिनकों प्रथम तीव्रविप्रयोगवेदना की भावना तथा कथाकालमें अन्तर्निष्ठाके साथ आन्तरसंयोगकी भावना करनी.

**श्लोक ७-९में फलानुभूतिनिरूपण :**

**श्रीगोपेशजी :** क्लेशयुक्त अपने जनकों देखिके प्रभु जब कृपायुक्त होवे है, तब सदानन्दप्रभु हृदयमें ही प्रकट होयके आन्तरसुखप्रदान करे है. क्लेशबिना कृपानन्द प्राप्त नहीं होवे है, यासूं जैसे बाह्यरमणमें 'जयति तेधिकं' इत्यादि गुणगानसों कृपासूं पूर्ण होयके स्वरूपानन्द दान दियो, तैसेहि यहां आनन्तरमणमें कछु भगवत्स्वरूपको संयोगरसदान करे हैं. श्रीकृष्णमात्रनिष्ठान्तकरणवारे भक्तन्को स्वयंको अनभिलषित ऐसी सच्चिदानन्दता स्फुरे है. (यह अवान्तरफल है). गुणाविष्टचित्तवारेको लौकिकविषयन्को दुःख अरु रोगादिजन्यक्लेश नहीं होवे है. फल तथा तदध्यास अक्षरात्मकता प्राप्त होवे है, जो अवान्तरफल हैं.

**श्रीहरिरायजी :** श्रीमदाचार्यजीने कह्यो है जो साधनसम्पत्तिसुं हरि कबहूं प्रसन्न नांही होत है, भक्तन्को दैन्य ही एकमात्र हरिको प्रसन्न करिवेको साधन हैं. पुष्टिमार्गप्रवेशानुकूल अनुग्रहरूप कृपासूं जो भजनानन्दरूप आनन्द प्राप्त होवे है, वह अतिशय दुर्लभ हैं. वाको यदि कोई साधन है, तो गुणगान है. हृदयमें प्रविष्ट होयके वह स्वरूपात्मक कृपानन्द अपने गुणन्कों श्रवण करिके पूर्ण (प्रतिक्षण प्रवर्धमान) रसपूररूप होयके जननादिधर्मवारेनको हु रससिन्धुमें डुबो देवे हैं. यासूं श्रीमदाचार्यजीने युगलगीतमें कह्यो हैं "अन्तःप्रविष्ट भगवान् मुखाद् उद्धृत्य कर्णयोः पुनः निवेश्यते सम्यक् तदा भवति सुस्थिरः" (७-८). सदानन्दपरायण होयके गुणगान करिवेते अक्षररूप सच्चिदानन्दता पुरुषोत्तममाविर्भावयोग्यता होवे है. (यह अवान्तरफल है.)

**दोनो श्रीवल्लभजी :** के अनुसार प्रचुर आतिरूपक्लेशयुत स्वीय जननों देखिके प्रभु जब कृपायुक्त होवे हैं, तब सर्व सदानन्द साक्षात् अपनो स्वरूप बाहर प्रकट करे हैं. हृदयस्थ प्रभु तापार्तियुक्त गुणानुवादसूं स्वगुणनको सुनिके अन्तःपूर्ण सकलेन्द्रियव्याप्तः होयके बाहर स्वस्वरूप प्रकट करीके स्वीयजनको रसाब्धितरंगनमें प्लावित करें हैं. जैसो जैसो सकलेन्द्रियनको दुःख भयो होय, वैसो वैसो स्वानंद भरी दे हैं.

**श्रीपुरुषोत्तमजी :** के अनुसार कीर्तन करिवेवारेन् में भगवद्दयासूं भावनाप्राबल्य होयके दहरविद्यामें कहें भये प्रभुको बहिःप्राकट्य होयवेसु है. बडेनकोहु प्राकट्य होयवेसूं उनकी कृपासु वह निरोध फलीत होवे है. यह फलोपधायक निरोधकोही लक्षण है. हृदयस्थ भगवान् कीर्तन कराते भये अपने गुणनको सुनीके कृपापूर्ण व्हे के स्वकीयजनन् को अन्तर्बहि भीतर-बाहर रसव्याप्त कर दे है. कृपासूं प्रकटे भये भगवानन्दसूं यह होवे हैं, यासूं यह फलात्मक निरोधको लक्षण है.

गुणगानसूं अतिरिक्त साधन बिना ही सच्चिदानन्द अक्षरब्रह्मता होय है, यह सिद्धान्तमुक्तावलीमें संसारदुःखकी निवृत्ति अरु ब्रह्मबोधन के रूपमें जो अवान्तरफल कह्यो हैं, वह या प्रकारके अधिकारीनकुं ही होवे है.

**श्रीब्रजराजजी :** क्लिश्यमान् अपने जननको देखिके प्रभु जब कृपायुक्त होवे है, तब गुणगान करिवेवारेके भावात्मकस्वरूपको हृदयस्थ बहार प्रकट करे है. सर्वानन्दमय शब्दसूं गुणगानसूं रमण कह्यो हैं अपि शब्दसूं बहिःस्वरूपप्राकट्यात्मक कह्यो हैं, जैसे ब्रजभक्तनको गुणगानान्तर परमफलप्राप्ति भई, तैसे सर्वत्र निरोधाधिकारिनकुं होत है. हृद्गत अपने गुणनको सुनीके युगलगीतकारिकामें कहे अनुसार पूर्ण होइके रससूं आप्लावित करे हैं.

**श्रीश्याममनोहरजी :** भगवद्गुणगानके कारण भक्तके हृदयमें भगवदासक्तिरूप स्थायीभाव, जब भगवद्विरहक्लेशके कारण तापयुक्त हो जाय हैं, तब हृदयमें छिपे हुए भावात्मा भगवान् सदानन्द श्रीकृष्ण कृपायुक्त होकर बाहर प्रकट हो जाय हैं, आलम्बन-विभावके रूपमें.

आनन्दमय परमात्माको सर्वात्मभावके रूपमें प्राकट्य वा परमात्माकी

परमकृपामयी आनन्दानुभूति हैं। यह कृपा सुदुर्लभ हैं। भक्तके हृदयमें भावके रूपमें भयों भयो सेतु, भगवद्गुणगानके श्रवण-कीर्तनके सरित्प्रवाहसे अहर्निश भयों जायवे पर एक दिन छलक जाय हैं ! ऐसे कि भक्तनके देह इन्द्रिय प्राण अन्तःकरण आत्मा तथा अन्य हु आत्मीय वस्तुनकों अपनी अलौकिक रसानुभूतिसे प्लावित कर देत हैं।

श्लोक-१३ : “संसारावेशदुष्टानाम् इन्द्रियाणां हिताय वै कृष्णस्य सर्ववस्तुनि भुम्न ईशस्य योजयेत्” की टीकामें श्रीपुरुषोत्तमजी समुझावे हैं जो अदृढबीजभाववारो पूजादिकनके द्वारा भज रह्यो है वा सेवाकी आधिदैविकतासिद्धिके लिये प्रथम सर्वसमर्पणरूप साधन यहां बताया है। इनकों प्रभुमें समर्पिके भगवत्सम्बन्धसंयुक्त है ऐसो अनुसन्धान करनो। फलात्मकता जतायवे के लिये ‘कृष्णाय’ पद कह्यो है। श्रीव्रजराजजी कहे हैं समर्पितवस्तुनमें लौकिकताकी शंका नाहिं करनी। प्रभु भूमा है यासूं लौकिकतानिवारण करिकें अलौकिकता संपादित करेंगें।

### ग्रन्थोपसंहार :

श्रीगोपेशजीके अनुसार उपसंहार उपदेश है। श्रीहरिरायजीके अनुसार उपसंहारमें इतर साधनसूं निरोधलक्षण निरूपित साधनन् भावभावन-गुणगानकों उत्कर्ष निरूपित करें है। श्रीवल्लभजीके अनुसार निरोधको स्वरूप निरूपित करिकें गुणगानकी सर्वोत्कृष्टता बताई है। श्रीपुरुषोत्तमजीके अनुसार निरोधलक्षणग्रन्थमें निरोधस्वरूप निरूपित करिकें अन्यनिषेधपूर्वक याकों अनुसरण करिवेके लिये सर्वाधिकता बताई है अरु प्रतिबन्धनिवारणके लिये हु यह स्तोत्र सेवनीय है। श्रीश्याममनोहरजीके अनुसार निरोध साधनावस्थाकी अन्तिम अवधि है। या निरोधसूं परतर कुछ है तो सेवाफलोक्त अलौकिकसामर्थ्य रूप फल परन्तु वहीं तो ‘फलनिरोध’ कह्यो जाय है।

### विषयोपसंहार :

निरोध स्वयंमें फलरूप है। साधननिरोध अरु फलनिरोध दोनो या लोकमें घटित होती अलौकिक घटना है। भूतलपर भक्तनके बीच भगवत्कीड़ा साधन निरोध है। अपने उद्धारार्थ प्रकटे प्रभुमें या तिनके गुणगानमें जिनकों फलतया अभिलषितता अनुभूत नहीं हो रही वे पुष्टिभक्त कैसे हो सके है ? अवतारकालमें स्वयं प्रभु स्वरूपसूं शुद्धपुष्टिभक्तनको निरोध सिद्ध करे है। या लीलाविहारमें ‘रसो वै स’ की पूर्णरसानुभूति



प्रकट होवे है. जो दशमस्कन्धमें वर्णित है. वामें विरह दुःख अरु संयोग सुख दोनोंहु रसात्मक है. निरोधको दान बडेन्की कृपासूं ही होवे है या कारण श्रीआचार्यजी को प्राकट्य है. आपने कृपा करिके निरोधफलदानार्थ निरोधलक्षण ग्रन्थ प्रकट कियो है. जामें आपनें ब्रजभक्तसम्बन्धि दुःख, सुख अरु उत्सवकी आकांक्षा अपने लिये करिकें तिनकी फलरूपताको निर्देश दियो है. आधुनिकन्कों भावदृढ करिवे भावभावना साधन है. सेवासमयमें भावना कीर्तनादिद्वारा की जाय है. या भावनान्के कारण सेवा धर्मानुष्ठान मात्र नहिं रहिके भावात्मकपनो प्राप्त करे हैं. कथाकालमें प्रभुके विप्रयोगकी भावना कथाकों अपनेसूं असम्बन्धित पूर्वकालिक कोइ कहानी मात्र नहीं रहिवे दे हैं. इन भावनान्के कारण ब्रजभक्तादि परमभाग्यवान् लगे हैं. तिनके न केवल सुख परन्तु दुःखकी हु आशंशा, सम्भावना यदि जगे तोहु अपने निरोधको लक्षण है.

निरोधको दूसरो साधन गुणगान है. तीसरो साधन सर्वेन्द्रियन्कों कृष्णमें विनियोग है. श्रीश्याममनोहरजीकी भूमिकाके अनुसार लौकिक रूप-रसादिन्में आसक्त अर्थात् संसारावेशसूं दूषित इन्द्रियन्की दर्शन-आस्वादनादिरति एवं अन्यहु कर्मेन्द्रिय एव अंतःकरणके व्यापारन्में रतिको अहित दोय प्रकारसूं होय शके है : यदि तिनकों निग्रह किये बिना लौकिक क्षुद्र सुखन्की खोजमें निरन्तर भटकते रहिवे दे, या तो तिनकों पूर्णतया निग्रह करिकें वा रतिको नाश कियो जाय. विषयन्सूं व्यामुख करिवेकी बाततो ठीक है पर नेत्रन्कों दर्शनरतिसूं वञ्चित करिवेमें नेत्रवान्कों क्या लाभ ? या प्रकारको निरोध तो 'कुयोग' है. अतः इन्द्रियवृत्तिन्कों दुरुपयोग या अनुपयोग करना नाहि परि वाको कछु भगवदुपयोग करनोहि तिनको हित है. याहिको तो 'प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्ति' कह्यो जाय है.

श्रीहरिरायजी आज्ञा करें है :

“श्रीआचार्यजी आपु यह पुष्टिमार्ग प्रकट कियें है. सो पुष्टिमार्ग ब्रजजनको भावरूप मार्ग है. सो भगवदीय गाये हैं जो - “सेवा रीति प्रीति ब्रजजनकी जनहित जग प्रकटाई.” सो ब्रजभक्तनकी कहा रीति है ? जो - श्रीठाकुरजीके सन्निधानमें तो सेवा करे, सो स्वरूपानन्दको अनुभव करि संयोगरसमें मग्न रहैं. और श्रीठाकुरजी गोचारन अर्थ ब्रजमें पधारें तब ब्रजभक्त विरहरसको अनुभव करि गान करें. सो या प्रकार संयोगरस और विप्रयोगरस को

अनुभव जाकों होय सो पूरो वैष्णव होय, और जामें एक न होय सो आधो वैष्णव हैं”.

जा प्रकार भक्तनूके संग कृष्णकी प्राकट्यकालिक लीलानूके अवगाहनसूं अपनो चित्त निरोधमार्गमें अग्रसर होवे है. वाही प्रकार श्रीआचार्यजी-श्रीप्रभुचरणकें भगवदीयनूके चरित्रके श्रवणादिसूं हु होय सके है. क्यों जो आचार्यजीने राजादूबे-माधोदूबे को मात्र निरोधदान नहि परन्तु निरोधदानके सामर्थ्यहु को दान कियो “तुमकों तो निरोध सिद्ध भयो और, जो तुम्हारो संग मन लगायके करेगो, ताहूको निरोध सिद्ध होयगो.

### वैष्णववार्ता सन्दर्भ :

सो पुरुषोत्तमदास सेठके ठाकुरजी मदनमोहजी रुकिमिनीसों कहे “बेग तू उठि कै नहाईके पूरी करि, सेठ साक लेकें आवत है...सेठ गया करि आयो, उनकी गया पूरण भई.”

एक ब्राह्मनी अडेलकी “सो श्रीठाकुरजी या प्रकार सगरी रोटी नित्य हाथमें उठाई लेगे. तब वह ब्राह्मनी कहती. मैं सगरी रोटी करी परन्तु जानी न परी मूसा बिलाई लिये. तब श्रीठाकुरजी आरोगिके वह ब्राह्मनी को सब रोटी देते. सो वह ब्राह्मनी सों नित्य श्रीठाकुरजी ऐसे ख्याल करतें.

गोरजा समराई - ‘तब श्रीठाकुरजी कहें, अबतूं टेरा काहे को लगावत है ? पाछें तोकों विश्वास न होइगो. तातें तेरे आगे आरोगत हों. तब वह पास बैठी, श्रीठाकुरजी भलीभांति सो सगरी सामग्री आरोगे. पाछे श्रीदामोदरजी यह बात सगरी श्रीआचार्यजी सों कहें जो मोकों समराई बहोत सुख देत है...तब श्रीआचार्यजी कहें ऐसे वैष्णवकों आज्ञा क्यों दीजिये ? सदा इनकी वार्ता सुनिये...

सो कुंभनदासजीने पदमें गायो “रस-लुब्ध एक निमिष नहीं छांडत जो अधीन मृग गानें कुंभनदास स्नेह मरम कौ श्रीगोर्वधनधर जाने” सो सुनिके श्रीगोर्वधननाथजी आपु कहे जो - कुंभनदास ! तू धन्य है जो मेरे बिना एक छिन तोकों कल नाहीं है. तासों मोहूकों तो बिना कछू सुहात नाहीं है. सो या प्रकार कुंभनदासजी और श्रीगोर्वधननाथजी की परस्पर प्रीति हती.

साधनप्रकरणके चरमश्लोककी सुबोधिनीमें आचार्यजी समुझावे है जो ब्रजजन

अपने ब्रजाधिप कृष्णकों वैकुण्ठमें देखिके

“किञ्च तत्रापि मध्ये कृष्णः तं च वेदाः स्तुवन्ति अतः  
आह छन्दोभिः स्तुयमानं कृष्णं दृष्ट्वा परमाश्चर्यं प्राप्ताः.  
तस्यापि एतत् फलं वैकुण्ठस्यापि एतत् फलं इति ज्ञात्वा  
इतराभिलाषं परित्यज्य परमाश्चर्यरसे निमग्ना जाताः”

(सुबो. १०।२५।१६)

वैसेहि कछु अपने स्वकीय भक्तनकुं निमग्न करीवे आप आज्ञा करे है -

नातः परतरो मन्त्रः नातः परतरः स्तवः ।

नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात्परम् ॥

यद्वाक्पीयूषभावानां भावनाद् अभवो भवः ।

भावये तान्निजाचार्यपदो भावोपलब्धये ॥



## चर्चा

‘निरोधलक्षण’ ग्रन्थमें फल

श्रीधर्मेन्द्रसिंह झाला

गो. शरद् : सिद्धान्तमुक्तावली और निरोधलक्षण दोनों ग्रन्थनूमें अवान्तरफलको निरूपण मिले है. सिद्धान्तमुक्तावलीमें “ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम्” ऐसे संसारदुःखकी निवृत्ति और ब्रह्मबोध ये दो अवान्तरफल बताये हैं. निरोधलक्षणमें भी “सच्चिदानन्दता ततः” और “संसार-विरहक्लेशौ न स्याताम्” ऐसे दो अवान्तरफलको निरूपण मिले है. निरोधलक्षणमें जो दो अवान्तरफल बताये हैं वो सिद्धान्तमुक्तावलीमें कहे गये फलनके स्थानी हैं, अर्थात् तत्स्थानी हैं या उन फलनको ही शब्दान्तरसुं निरूपण है ?

धर्मेन्द्रसिंह झाला : पेरेलल् जैसे हैं. ये गुणगानकी प्रक्रियासु हैं. बहोतसे टीकाकार वाही तरहसु ले रहे हैं.

गो. शरद् : ब्रह्मबोधमें सच्चिदानन्दात्मकता सदा होवे ही है ?

धर्मेन्द्रसिंह झाला : जरूरी नहीं है. पर यदि सिद्धान्तमुक्तावलीमें ‘विज्ञाने’ जो कह्यो है वा एंगलसु लें तो अनुभवपर्यवसायी होनेपे सच्चिदानन्दता होयेगी.

गो. शरद् : दूसरी जिज्ञासा है. सिद्धान्तमुक्तावलीकी मानसी, भक्तिवर्धिनीको व्यसन और निरोधलक्षणको निरोध करीब-करीब एक कक्षाकी अवस्थाएं हैं. प्रश्न ये है के एकसी ही कक्षा होनेपे इनके नाम भिन्न-भिन्न क्यों हैं ? क्या इनकी अनुभूतिमें कोई तरहको भेद है ?

गो. श्या.म. : सिद्धान्तमुक्तावली अपनी कर्तृत्वशक्तिकु दियो गयो उपदेश है. अपने भीतर रहे भये कर्ताकु जगाके श्रीमहाप्रभुजी उपदेश दे रहे हैं. यासुं “कृष्णसेवा सदा कार्या” सु उपदेशकी शुरुआत भयी है. हर करनेके काममें कुछ होनो छुप्यो भयो होवे है. और हर ‘होने’कु अपन ‘करने’में कल्मिनेट कर सके हैं. तो जो कियो जा रह्यो है वो होने लग जाये तो वो ‘मानसी’ है.

भक्तिवर्धिनीमें भावशक्तिको इन्वोकेशन है। प्रेम-आसक्ति डेवलप् होके व्यसन है। प्रेम अपन करे हैं, आसक्ति अपन करे हैं पर व्यसन अपन करें नहीं हैं, व्यसन होने लग जाये है। उदा. शतरंजकी पहली दस चाल खिलाड़ी चलतो होवे है। पर वाके बाद शतरंज खिलाड़ीकु खिलाती होवे है। दस चालके बाद शतरंजके मोहरा एक-दूसरेके साथ ऐसे एंटेंगल्ड हो जावे हैं के खेलनेवालेके पास उनके अनुसार चाल चलनेके अलावा दूसरो कोई चारा ही नहीं रह जावे है। गेम डिसाईड हो जावे है। ऐसे तनुवित्तजा और प्रेम-आसक्ति शुरुआतकी चाल हैं। जब अपनने इन चालनकु चलदी, फिर वो अपनकु चलायेंगी।

निरोधलक्षणमें क्रियाशक्ति और भावशक्ति की बात नहीं है। अन्याश्रय जैसे शरणागतिमें वर्जित है ऐसे अन्यासक्ति भक्तिमें बाधक मानी गयी है। एक इंटेरेस्टिंग बात है। थोड़ी देरकेलिये ठाकुरजीकी बात भूल जाओ। अपनकु कोई चीजकी मानसी हो रही है। जैसे मैंने आपको गाली दी। आपको गुस्सा आ गयो। अब आपके भीतर मानसी चलने लगी के ठीक बात है, बड़े हते यासु बोल्यो नहीं बाकी तो मैं यों कह देतो। ये आपकी मानसी है। अब बात आपके कंट्रोलमें नहीं है। पर मानसी होने लगनेको ऐसो मतलब नहीं है के अन्य क्रियासु आपको रहित होनो। हो सको हो, नहीं भी हो सको हो, दोनों सम्भावनाएं हैं। ऐसे ही व्यसनमें भी है। कोईकु चायको व्यसन है। चायको व्यसन है करके जल भी नहीं पीयेगो ऐसो थोड़ी होवे है! चायको व्यसन है या लिये चायके बिना चलेगो नहीं, चाय नहीं मिले तो परेशान होयगो उतनो ही व्यसन है। अब चाय वाकु पी रही है। पर मानसी और व्यसन दोनोंमें अन्यासक्तिको वर्जन होनो जरूरी नहीं है। निरोधमें ये जरूरी बन जाये है। निरोध अन्यक्रिया और अन्यभाव के वारणार्थ है। अन्यके वारणपे भार देवेकेलिये श्रीमहाप्रभुजीने निरोधकी परिभाषामें ‘प्रपञ्चविस्मृति’ ‘प्रपञ्चनाश’ आदि शब्द डाले हैं। निरोध अन्यासक्तिके वारणपूर्वक भगवदासक्ति है। निरोध अन्यक्रियाके वारणपूर्वक सेवाक्रिया है। लालूभट्टजीने बड़ी अच्छी बात करी है के अपने यहांको निरोध नेगेटिव नहीं है, पोजिटिव है। मैं याके विरोधमें नहीं हूं, पर भक्तिवर्धिनी और निरोधलक्षण कु आमने-सामने रखके सोचोगे तो असक्तिको पार्ट तो भक्तिवर्धिनीने सप्लाय कियो ही है, मानसीको पार्ट सिद्धान्तमुक्तावलीने

सप्लाय कियो ही है, अन्सप्लायड फिनोमिना अन्यासक्तिको वारण कैसे करनो वो है. निरोध वाकु सप्लाय कर रह्यो है. निरोध एक तरहको प्रदान है. क्योंके अपन सेवा कर सके हैं, प्रभुमें आसक्ति भी कर सके हैं पर अन्यक्रियाएं छोड़के सेवा करनो, अन्यासक्ति छोड़के कृष्णासक्ति करनी ये अपने बसकी बात नहीं है. निरोधलक्षण ग्रन्थ ये आस्पेक्ट सप्लाय करे है. या अर्थमें निरोधमें थोड़ी नेगिटिविटी है. **“यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते, तदा विनिग्रहः तस्य कर्तव्यः”** देखो ये अन्यवारण है. आसक्ति तो सिद्ध है, पर वाको मतलब ऐसो थोड़ी है के अपन दूसरेकु नहीं चाहेंगे! पर निरोधकी कक्षापे जाके अन्यासक्तिको भी वारण है. जाकी अन्यासक्तिको वारण हो गयो वाको अन्याश्रय तो सुतरां वारण हो जायेगो. याके कारण निरोधकी परिभाषामें वो बात नहीं कही गयी है के **“प्रपञ्चाश्रयनिवृत्तिपूर्वक भगवदाश्रय”**. कह्यो नहीं है पर ये वहां इम्प्लायड है. और प्रपञ्चाश्रय रहित भगवदाश्रय पाछो प्रपञ्चमें. ये या कन्सेप्टकी ब्यूटी है. क्यों? क्योंके प्रपञ्चमें यदि हरि क्रीडा करेगो तो अपनो प्रपञ्चाश्रय निवृत्त होके भगवदाश्रय बढेगो. प्रपञ्चमें यदि हरि स्नेहजनक रूपसुं प्रकट भयो तो विषयासक्तिको **“तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिका, तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरु”** न्यायसु अपन भगवान्में अनन्यासक्त हो जायेंगे. याकु ‘अनन्यासक्ति’ कहे हैं, ‘अनन्याश्रय’ कहे हैं. आश्रयमें अनन्याश्रय जरूरी नहीं है. अन्याश्रयको वर्जन अन्यके वर्जनकेलिये नहीं है पर अनन्याश्रयकेलिये है. ये पोजिटिव् आस्पेक्ट ध्यानमें लेनो चाहिये. अक्सर अपन आश्रयकु ‘अन्य’ लगावे हैं. पर आश्रयकु ‘अन्य’ मत लगाओ, अनन्य=कृष्णको आश्रय अनन्याश्रय है. ये अनन्याश्रयको पोजिटिव् पहलू है. अन्याश्रयको वर्जन अनन्याश्रयमें कल्मिनेट् होनो चाहिये. ऐसे ही भगवदासक्ति अनन्यासक्तिमें कल्मिनेट् होनी चाहिये. अनन्यासक्ति मतलब अनन्ये कृष्णे आसक्तिः. ये अनन्यासक्तिको पोजिटिव् आस्पेक्ट है. ये सिद्ध होयगो **“प्रपञ्चे क्रीडनं हरे”** जब प्रपञ्चमें प्रभु क्रीडा करें. किशनगढ़में अपनूने सिद्ध और साध्य की विस्तृत चर्चा करी हती. हर सिद्धको कोई एक साध्य रूप होवे है और हर साध्यको कोई एक सिद्ध रूप होवे है. जैसे तनुवित्तजा सिद्ध है तो मानसी साध्य है. बीजभाव सिद्ध है तो प्रेमासक्तिव्यसन साध्य है. निवेदन सिद्ध है तो समर्पण साध्य है. समर्पण

सिद्ध है तो विनियोग साध्य है. आश्रय सिद्ध है तो अनन्याश्रय साध्य है. ऐसे आसक्ति सिद्ध है तो अनन्यासक्ति साध्य है. यहां साध्य फेसेट् अन्यको वारण है. अन्यसम्बन्धवारण, आसक्तिको शोधन. शोधन क्या? या तरहसु आसक्तिकु शुद्ध करो “**पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः**”. यदि तुमकु पुत्रमें आसक्ति हो रही है तो वो पुत्रहेतुक नहीं होके कृष्णप्रियत्वोपाधिक पुत्रमें आसक्ति होनी चाहिये. यदि ऐसी आसक्ति है तो वाको शोधन हो गयो. और कृष्णमें स्नेह भी यदि पुत्रत्वोपाधिक है तो वो अन्यासक्ति है. तो निरोधलक्षण आसक्तिमें रही भयी अशुद्धिको वारण करे है. लालूभट्टजी जो कह रहे हैं वो बात सच्ची है के ज्ञानमार्गीको निरोध नेगेटिव् है और अपनो निरोध पोज़िटिव् है. पोज़िटिव् क्यों है? क्योंके वाको पोज़िटिव् एलिमेंट् तो सिद्ध है. पर वाको नेगेटिव् एलिमेंट् साध्य है. वाकी साधना “**यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते, तदा विनिग्रहस्तस्य कर्तव्यः इति निश्चयः**” है. ये साधना करी तो निरोध अलौकिकसामर्थ्यमें कल्मिनेट् हो जायेगो. ये सामर्थ्य निरोधकु केंसल् करके नहीं होयगो, निरोध ही अलौकिकसामर्थ्य बन जयेगो, निरोध ही सेवोपयोगिदेहो वैकुण्ठादिषु बन जायेगो और निरोध ही सायुज्य बन जायेगो. याही लिये श्रीमहाप्रभुजी “**निरुद्धानान्तु रोधाय**” सिद्धको साधन बता रहे हैं. “**अहं निरुद्धो रोधेन...**”में भी सिद्धकी साधना करनेकी बात बताई है, साध्यकी साधनाकी बात नहीं है. या अर्थमें अपनो सिद्धान्त निस्साधनताको है. जो आपकु साधना करनी है वो आपकु ऑल्लरेडी सप्लाय्ड है. फल तुमकु पहले तुम्हारे घरमें पधरा दियो जा रह्यो है. अब तुम वाके साथ इंटेरेक्ट करो. तो जब सिद्धको साधन करनो है तो निस्साधन ही तो भये! “**कृत्स्नोऽहं भवतीभिः प्राप्तः कृत्स्नेनैव साधननेन प्राप्तुं योग्यः सा च कृत्स्नता अस्यां दशायाम्**” ये ठाकुरजीने कहीं है. मैं तुमकु अपनी पूर्णतासु मिल गयो हूं. पर तुमने अपनी टोटालिटिसु मेरी टोटालिटिकु रेसिप्रोकेट् कियो? यदि कियो तो दोनों पार्टमें टोटालिटि आ गयी. और यदि नहीं कियो तो मेरी टोटालिटि वेस्ट गयी. वहां इम्प्लाय्ड मीनिंग ये है. रासपञ्चाध्यायीके आरम्भमें भी श्रीमहाप्रभुजीने ये बात कही है के ज्ञान और भक्ति सु ब्रह्मानुभूति होवे है पर ब्रह्म यदि स्वतः प्रकट हो गयो तो ज्ञान-भक्ति करेंगे क्या! कुछ नहीं करेंगे. तो फिर करनो क्या? “**वर्षाकाले जलं सर्वत्र सुलभं तथापि न नदि-कूप-तडागादीनाम् अनुपयोगः**

शंकनीयः’’. क्योंकि बरसात तो बरसके गयी. तुमने कोठी रखके यदि जलकु भर्यो नहीं तो बाकी दिनमें रोते रहोगे! बरसती बरसातकु स्टोर करनेकी साधना तो जरूरी है. ये आखी सिद्धकी साधना है वा अर्थमें निस्साधनता है.





# પુષ્ટિમાર્ગીય ફલવિચાર : 'ભક્તિવર્ધિની' ગ્રન્થના સન્દર્ભમાં

અંશુ ગોપાલદાસ શાહ

વામે કરે ગિરિં સ્ત્રીપુ મુદ્ગમિન્દ્રે ચ સાધ્વસમ્  
ધારયન્તમલં વન્દે ચિત્રં ગોપેષુ ગોપ્રિયમ્ ॥  
યદ્દર્શીકૃતિતો ભક્ત્યા સ્વાનન્દં નન્દનન્દનમ્  
દદાતિ તાન્પ્રભૂન્ વન્દે સર્વકામાર્થ સિદ્ધયે॥

ષોડશગ્રન્થ અન્તર્ગત શ્રીમહાપ્રભુજી પુષ્ટિજીવને પુષ્ટિમાર્ગ પર કઈ રીતે ચાલવું જોઈએ તેનો ઉપદેશ કરે છે જેમકે સિદ્ધાન્તમુક્તાવલીમાં આપશ્રી સેવાનો ઉપદેશ કરે છે, સિદ્ધાન્તરહસ્યમાં સર્વસ્વસમર્પણપૂર્વક માર્ગ પર ચાલવાની પ્રક્રિયા બતાવે છે, નવરત્નમાં સર્વચિન્તાત્યાગપૂર્વક પ્રભુસેવા કરવાનો પ્રકાર બતાવ્યો છે, તો ક્યાંક વિવેક ધૈર્ય તથા આશ્રય પૂર્વક શ્રીકૃષ્ણનો આશ્રય દઢ કરવાનો પ્રકાર બતાવ્યો છે અને ચતુઃશ્લોકીમાં ભક્તિમાર્ગીય ધર્મ અર્થ કામ અને મોક્ષ નું સ્વરૂપ બતાવીને આચાર્યચરણોએ ભક્તિની વૃદ્ધિના ઉપાયો ભક્તિવર્ધિની ગ્રન્થમાં બતાવ્યા છે.

ભક્તિવર્ધિની ગ્રન્થ શ્રીમહાપ્રભુજીએ આપના સેવક પુરુષોત્તમ જોષી સાંચોરા બ્રાહ્મણની ભક્તિ વધારવામાટે લખ્યો છે. પુરુષોત્તમ જોષી આપશ્રીને પૂછે છે ક્યો માર્ગ ઉત્તમ, જ્ઞાનમાર્ગ કે કર્મમાર્ગ? ત્યારે આપશ્રી ઉત્તર આપતાં જણાવે છે કે જેના મનમાં જે માર્ગ દઢ થાય તે માર્ગ તેનામાટે ઉત્તમ. બાકી તો ભક્તિમાર્ગ બધાથી મોટો. કારણ કે જ્ઞાનમાર્ગ તથા કર્મમાર્ગ ની ફલપ્રાપ્તિમાં અત્યન્ત કષ્ટ રહેલા છે તેથી તેનો નિર્વાહ થવો કષ્ટદાયક છે તેથી જીવની કૃતાર્થતા તો ભક્તિમાર્ગમાં છે. શ્રીઆચાર્યચરણોની વાણી સાંભળીને પુરુષોત્તમ જોષીએ આપશ્રીને ભક્તિનું સ્વરૂપ સમજાવવાની વિનંતી કરી તેના પ્રત્યુત્તરરૂપે આપશ્રીએ ભક્તિવર્ધિની ગ્રન્થ તેમને સમજાવ્યો. તેઓ ઉત્તમ અધિકારી હોવાને કારણે તેમને બધો બોધ થઈ ગયો. પોતાની પત્ની સહિત શ્રીમહાપ્રભુજીના સેવક થયા બાદ બન્ને જણ પ્રીતિપૂર્વક ભગવત્સેવા કરવા લાગ્યાં અને ભગવદ્ભાવમાં મગ્ન થઈને અવ્યાવૃત્ત પૂર્વક રહેતા. કોઈની પાસે પોતાના હૃદયનો ભાવ પ્રકટ ન કરતા.

ભક્તિનો અર્થ થાય છે પ્રેમપૂર્વક કરવામાં આવતી સેવા. ભક્તિ=ભજ્ઞ ધાતુ+કિતન્ પ્રત્યય =પ્રેમયુક્ત સેવા. ભક્તિદ્વારા આપણી અહંતા-મમતાની પૂર્ણ ચિકિત્સા (સારવાર) થાય છે. 'હું દાસ છું' એ દ્વારા પુષ્ટિજીવ પોતાની અહંતાને

ભગવાનની સાથે જોડી દે છે. કોઈની સેવા કરવી એનો જ મતલબ છે કે આપણો અહંકાર એની સામે નમી જાય. પુષ્ટિપ્રભુ વ્રજાધિપ શ્રીકૃષ્ણની સન્મુખ આપણા અહંકારને ‘શ્રીકૃષ્ણઃ શરણં મમઃ’ કહીને અથવા “દાસોઽહં કૃષ્ણસ્તવ” કહીને વાળવો. એ જ પુષ્ટિભક્ત અથવા પુષ્ટિભક્તિ ની પ્રકૃતિમાં નિહિત અર્થ છે. તેથી જ સિદ્ધાન્તમુક્તાવલીમાં તનુવિત્તજ સેવા તથા સિદ્ધાન્તરહસ્યમાં સર્વસમર્પણની વાત સમજાવીને ચતુશ્લોકીમાં વ્રજાધિપના ભજનને જ સ્વધર્મ માનવામાં આવ્યું છે.

‘ક્તિન્’ પ્રત્યયનો અર્થ ‘ભાવ’ થાય છે. જેના માટે ભાવ હોય તેના માટે આપણું મન વળે ત્યારે પ્રેમ ઉત્પન્ન થાય છે. સિદ્ધાન્તમુક્તાવલીમાં કહ્યા મુજબ આપણી મમતાને કૃષ્ણ સાથે જોડવાની વાતને ચિત્તની કૃષ્ણ પ્રવાણતાના રૂપમાં સમજાવી છે. અને ચતુશ્લોકીમાં વર્ણિત પુષ્ટિમાર્ગીય કામ પણ શ્રીકૃષ્ણ પ્રતિ આપણી મમતાને કેમ વાળવી એ રૂપમાં વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. આ જ કૃષ્ણદર્શનરૂપી કામના ભક્તિ શબ્દમાં ‘ક્તિન્’ પ્રત્યયનો અર્થ છે.

હવે ભક્તિવર્ધિની ગ્રન્થમાં વર્ણવેલ ભક્તિની વિભિન્ન કક્ષાઓ જેવી કે દઢબીજભાવ, અદઢબીજભાવ, પ્રેમ, આક્રિતિ, વ્યસન, વ્યસનોત્તરકૃતાર્થતા વગેરેનું નિરૂપણ જોઈએ.

### દઢબીજભાવવાન્ :

જેનો બીજભાવ દઢ થઈ જાય છે એટલે કે જેને વ્યસનરૂપી મુખ્યફલ પ્રાપ્ત થઈ જાય છે, જેના કારણે તે અધિકારીની દ્ષ્ટા વિકળ થઈ જાય છે ત્યારે તે ભગવાન વિના એક ક્ષણ પણ નથી રહી શકતો. તે નિરન્તર ભગવદ્ગુણોનું સ્મરણ તથા ભગવલ્લીલાનું ચિન્તન કરતો રહે છે. જેના કારણે પ્રભુનું તેને વ્યસન થઈ જાય છે. ત્યારે એને એમ લાગે છે કે “ગૃહસ્થિતેરુત્કૃષ્ટત્વં ન ભગવદીયત્વમાત્રેણ કિન્તુ ભગવતા સહ સ્થિત્વા ભગવત્કાર્યાર્થં વા અન્યથા ન સ્થાતવ્યમ્” આ ભાવનાને કારણે તે જીવ ગૃહત્યાગ કરી દે છે કારણકે આ ગૃહ પરિત્યાગ કૃષ્ણ વ્યસનના આવેશને કારણે થતો ત્યાગ છે. જગત્ત્રી દોષદષ્ટિને કારણે થતો શુષ્ક ત્યાગ નહીં.

તેને ઘર તથા બહાર નો ભેદ નથી રહી જતો. તેને સર્વત્ર ભગવદ્ભાવ પ્રકટ થઈ જાય છે. તેને સર્વેન્દ્રિયોથી ભગવાનની અનુભૂતિ થાય છે. અને ભગવાનની લીલાઓના શ્રવણ અને કીર્તન ની મસ્તીમાં ભગવદ્વિરહને કારણે તે ક્યારે ગૃહત્યાગી દે છે તે તેને પોતાને પણ ખબર પડતી નથી. ઉ.દા. રાજા આસકરણદાસજી. “વિરહાનુભવાર્થં તુ પરિત્યાગ પ્રશસ્યતે” (સંન્યાસનિર્ણય)

## અદ્વબીજભાવ :

જે ભક્ત પોતાના સ્વધર્મસહિત ભગવાનની સેવા તથા કથા બન્નેને સારી રીતે આચરી શકે છે તેને ગૃહત્યાગની કોઈ પણ આવશ્યકતા નથી કારણકે સેવા-કથાના આવર્તનથી જ તેને પ્રપંચની વિસ્મૃતિ તથા ભગવાનમાં આસક્તિ દઢ થાય છે જે મુખ્યફળ છે. આ જીવ અવ્યાવૃત્તભાવથી (સેવાના પ્રતિકૂલ સાધનોનો ત્યાગ) અને પૂજા “પૂજાં દદ્યુર્વિરચિતાં પ્રણયાવલોકેઃ” (સુબો. ૧૭૭) દ્વારા એટલે પ્રભુના પ્રેમપૂર્વકના દર્શનદ્વારા અને પ્રભુના શ્રવણ વગેરે દ્વારા જ્યારે માર્ગ પર અગ્રસર થાય છે ત્યારે તેનો બીજભાવ દઢ થાય છે.

પરંતુ જે જીવ સમ્પૂર્ણપણે અવ્યાવૃત્ત નથી રહી શકતો તેને ફલપ્રાપ્તિનો ઉપાય બતાવે છે કે તેણે ભગવત્સેવા-પ્રતિકૂલ વ્યાપારનો ત્યાગ કરીને ચિત્ત પ્રભુમાં રાખીને વ્યાવૃત્તિથી મુક્ત થઈને પ્રભુના શ્રવણ વગેરે કરવા જોઈએ. તેનાથી તે જીવ પ્રેમ=સ્નેહ, આસક્તિ (પ્રભુમાં તત્પર રહેવાનો સ્વભાવ) ના સોપાન સર કરી વ્યસનાવસ્થા (પોતાના વિષય વિના રહેવાની અશક્તિ જગાડનારો ભાવ) પ્રાપ્ત થાય છે ત્યારે તે વ્યસન સિદ્ધ થયા પછી તે જીવ ગૃહત્યાગ કરી શકે છે.

પરંતુ જે જીવને વ્યસન સિદ્ધ નથી થયું તે જીવ પોતાના ઘરે ભગવત્સેવા ન કરી શકવાને કારણે બીજા ભગવદ્દીયને ઘરે પરિચારક (સહાયક) બનીને તેની સેવામાં ઉપયોગી થઈ શકે છે. આ રીતે જ્યારે જીવ ભગવદ્દીયની સેવા તથા તે ભગવદ્દીયની સાથે મળીને ભગવત્કથા કરે છે તો એ જીવનો ક્યારે પણ નાશ નથી થતો.

## ય એતત્ સમધીયીત તસ્યાપિ સ્યાત્ દઢરતિ:

આ ઉપરાન્ત ભક્તિવર્ધિની ગ્રન્થાન્તર્ગત અન્ય અધિકારીનું વર્ણન શ્રીઆચાર્યચરણોએ અન્તિમ શ્લોકમાં કર્યું છે. જે ભક્ત શ્રીમહાપ્રભુજીની વાણીમાં વિશ્વાસ રાખશે એટલે કે શ્રીમહાપ્રભુજીએ ભક્તિવર્ધિની ગ્રન્થમાં જે સારભૂત તત્ત્વોનું નિરૂપણ કર્યું છે, જે બધાથી અજ્ઞાત હતું તેને આપશ્રીએ કૃપા કરીને પ્રકટ કર્યું છે, તે તત્ત્વને જે ભક્તિમાર્ગીય જણાસુ સારી રીતે ધારણ કરશે અથવા સમજવાનો પ્રયત્ન કરશે અથવા જે સારી રીતે અર્થાનુસન્ધાનપૂર્વક આ ગ્રન્થનો પાઠ કરશે તેને પણ શ્રીઆચાર્યચરણોની કૃપાથી ભગવાનમાં દઢરતિ (પૂર્ણપ્રેમ) પ્રાપ્ત થશે. અર્થાત્ એને પણ ભક્તિવર્ધિની ગ્રન્થનું ફલ પ્રાપ્ત થશે.

હવે ભક્તિવર્ધિની ગ્રન્થમાં આવેલા ભિન્ન-ભિન્ન ટીકાકારોના મન્તવ્યો ઉપર દષ્ટિપાત કરીએ.

**ત્યાગાત્ :**

શ્રીબાલકૃષ્ણજીના મતે ભગવત્ચરણારવિન્દની પ્રાપ્તિમાટે વાસના સહિત કરાતો ગૃહત્યાગ.

શ્રીવલ્લભજી-શ્રીગોકુલનાથજીના મતે પુષ્ટિમાર્ગ સિવાયના અન્ય સાધનોનો ત્યાગ.

શ્રીરઘુનાથજીના મત મુજબ ભગવાન સિવાય અન્ય વિષયોનો ત્યાગ.

શ્રીકલ્યાણરાયજી- શ્રીગુસાંઈજીના પૌત્રના મત મુજબ ભગવદ્ભજનમાં વિરોધિ એવા સર્વ ભજનોનો ત્યાગ.

શ્રીપુરુષોત્તમજી- વાસના સહિત ઘરનો સારીરીતે કરાતો ત્યાગ.

ચાચા ગોપેશજી, જયગોપાલ ભટ્ટજી, કાકા વલ્લભજી, કેષાઞ્ચિત્ વગેરે ટીકાકારોના મત આ સન્દર્ભમાં અન્ય ટીકાકારોથી મળતા આવે છે.

**પ્રેમ :**

હવે પ્રેમના કારણે પ્રકટ થતું ફળ ટીકાકારોના મત મુજબ જોઈએ.

શ્રીબાલકૃષ્ણજી- પ્રેમનો અર્થ કરે છે સ્નેહ જેનાથી અન્યોમાં રાગનો સારીરીતે નાશ થાય છે.

શ્રીવલ્લભજી-શ્રીગોકુલનાથજી કહે છે પ્રેમ એટલે સ્નેહનો અંકુર પ્રકટવો. જેનાથી ભગવાન સિવાયમાં રાગનોનાશ થાય છે.

શ્રીકલ્યાણરાયજી- પ્રેમ એટલે પોતાને ગમતા વિષયમાં પોતાની મેળે પરીવાઈ જવું જેનાથી બીજામાં રાગનો નાશ થાય છે.

શ્રીપુરુષોત્તમજી- પ્રેમ એટલે ‘ભાવકન્દલરૂપ’ અર્થાત્ વૃક્ષની જેમ ભિન્ન-ભિન્ન અવસ્થાઓ (બીજા અંકુરણ પલ્લવીત વગેરે) હોય છે તેમ પ્રેમની પણ ભિન્ન-ભિન્ન અવસ્થાઓ હોય છે.

કાકાવલ્લભજી- પ્રેમ એટલે ભક્તિ અથવા સ્નેહ. જેના કારણે વિષયમાં વૈરાગ્ય થાય છે.

શ્રીરઘુનાથજી, ચાચા ગોપેશજી, જયગોપાલભટ્ટજી, લાલુભટ્ટજી, કેષાઞ્ચિત વગેરે ટીકાકારોનો મત આ વિષયમાં ઉપર્યુક્ત છે.

**આસક્તિ :**

આસક્તિનું ફલાત્મક વર્ણન ટીકાકારો આ રીતે કરે છે.

શ્રીબાલકૃષ્ણજી- ફલાત્મક આસક્તિ એટલે કોઈના વગર રહેવું અશક્ય બની

જાય જેને કારણે તેને ભગવદ્ભજનમાં સર્વ કાંઈ બાધક લાગવા માંડે છે.

શ્રીવલ્લભજી- આસક્તિનું ફળ છે ચિત્તનું ભગવાનમાં અતિશય ચોંટી જવું. જેનાથી ઘરમાં આસક્તિનો નાશ થાય છે.

શ્રીકલ્યાણરાયજી- જેમાં આસક્તિ થાય છે તેમાં વિવિધ મનોરથ ઉત્પન્ન કરાવનારો ભાવ થાય છે. જેના કારણે ભગવદ્નુપયોગી ઘરમાં અરુચિ ઉત્પન્ન થાય છે.

શ્રીપુરુષોત્તમજી- પ્રેમની ઉત્તરાવસ્થા જેના કારણે પ્રભુમાં રાગ ઉત્પન્ન થાય છે. શ્રીકલ્યાણરાયજીનો મત પણ તેમને માન્ય છે.

કેષાઙ્ગિયત્- આસક્તિનું ફળ છે ભગવાનના સ્વસ્વરૂપમાં ચક્ષુરાગ ઉત્પન્ન થવો. અર્થાત્ પ્રભુનું જ સ્વસ્વરૂપ જોવું ગમે અન્ય કોઈનું નહીં.

આ ઉપરાન્ત શ્રીરઘુનાથજી, ચાચા ગોપેશજી, જયગોપાલભટ્ટજી, લાલુભટ્ટજી, વગેરેએ પણ આસક્તિનું વર્ણન અન્ય ટીકાકારોના મત મુજબ કરેલું છે.

**વ્યસન :**

વ્યસન થવાથી જે ફળ પ્રાપ્ત થાય છે તેનું વર્ણન આ મુજબ છે.

શ્રીબાલકૃષ્ણજી- વ્યસન થતાં જ જીવને અવિરતપણે અન્ય વિસ્મૃતિ થતાં ભગવત્પરતા પ્રાપ્ત થાય છે.

શ્રીવલ્લભજી- આસક્તિની પ્રૌઢાવસ્થા એટલે વ્યસન. તેનું ફળ એ છે કે તે જીવ પ્રભુ વિના રહી જ નથી શકતો.

શ્રીરઘુનાથજી- વ્યસનના કારણે જીવને ભગવદ્વાર્તામાં સ્વાભાવિક રુચિ થાય છે અન્ય કોઈની પ્રેરણાથી નહીં. તેથી દરેક કાલમાં તેને ભગવત્સમ્બન્ધિ કાર્યની જ સ્ફૂરણા થાય છે. આવી ફલાર્થતા પ્રાપ્ત થાય છે.

શ્રીકલ્યાણરાયજી, ચાચાગોપેશજી, શ્રીપુરુષોત્તમજી, જયગોપાલભટ્ટજી, કેષાઙ્ગિયત્ વગેરે ટીકાકારોએ વ્યસનનું ફલ ઉપર્યુક્ત પ્રમાણે બતાવ્યું છે.

કાકાવલ્લભજી- વ્યસનના કારણે ભગવાન સિવાયની અન્ય સ્ફૂરણા નષ્ટ થઈ જાય છે અને બીજું બધું દૂરકેંદ્રાઈ જાય છે.

લાલુભટ્ટજી- વ્યસનના કારણે ભગવાનમાં આત્મભાવ ઉત્પન્ન થાય છે.

**ફલરૂપા એવી સુદૃઢભક્તિ અથવા પરાભક્તિ :**

શ્રીબાલકૃષ્ણજી- પરાભક્તિની પ્રાપ્તિ એટલે અવિનાશી એવી સતત વધતી જતી ઉત્તમ ભક્તિની પ્રાપ્તિ જે મોક્ષથી પણ અધિક છે.

શ્રીગોકુલનાથજી- ચતુર્વિધ મોક્ષથી પણ અધિક એવી સુદૃઢ સર્વાત્મભાવસ્વરૂપા ભક્તિ જે સાક્ષાત્ સ્વસ્વરૂપાનુભવસ્વરૂપા છે તેવી પરાભક્તિની પ્રાપ્તિ થાય છે.

ચાયાગોપેશજી- એવી પરાભક્તિ જે અવ્યક્ત અપરિચિન્ન તથા આનન્દસસ્વરૂપ હોય તેવી ભક્તિ જીવને પ્રાપ્ત થાય છે.

શ્રીપુરુષોત્તમજી- પરાભક્તિની પ્રાપ્તિ એટલે સર્વ કરતાં અધિક એવી ભક્તિની પ્રાપ્તિ કે જેનું વર્ણન નિરોધલક્ષણ ગ્રન્થમાં ઉત્કૃષ્ટ ભક્તિ તરીકે કરવામાં આવ્યું છે જેના દ્વારા પ્રભુની પ્રાપ્તિ થાય છે.

જયગોપાલભટ્ટજી- પરાભક્તિ એટલે પુરુષોત્તમ વિષયી ભક્તિ.

લાલુભટ્ટજી- પ્રેમ આસક્તિ અને વ્યસન કરતાં પણ અધિક એવી સર્વાત્મભાવરૂપા ભક્તિની પ્રાપ્તિ જેને સુદૃઢભક્તિ પણ કહી શકાય છે.

શ્રીરઘુનાથજી, શ્રીકલ્યાણરાયજી, કાકાવલ્લભજી ના મત પણ આ સન્દર્ભમાં ઉપર પ્રમાણે જ છે.

### વાર્તાસન્દર્ભ:

હવે ૮૪/૨૫૨ વૈષ્ણવોની વાર્તામાં ક્યા ક્યા ભગવદ્વિધોને પ્રેમ, આસક્તિ, વ્યસન, સર્વાત્મભાવ (પરાભક્તિ) વગેરે ફલપ્રાપ્તિ થઈ તે જોઈશું.

### પ્રેમ :

૨૦૨/૨૫૨ - વજીરની પુત્રી, શાહુકારનો પુત્ર અને વાણીયા ની વાર્તા. તેમને ભગવદ્વાર્તામાં શુદ્ધ પ્રેમ હતો.

આ ઉપરાન્ત શ્રીમહાપ્રભુજીના સ્વરૂપમાં તથા શ્રીગુસાંઈજીના સ્વરૂપમાં પણ સર્વે ભક્તોને અનન્ય પ્રેમ અથવા તો દર્શનમાત્રથી અથવા તો માહાત્મ્યજ્ઞાનથી થયો જ હતો. તેથી તેમની વાર્તાનો વિસ્તાર અહીંયા નથી કર્યો.

### આસક્તિ :

૧૮/૮૪ દિનકરદાસ શેઠની : તેમને કથા દ્વારા આસક્તિ સિદ્ધ થઈ હતી. તેઓ પર્યટન કરતાં રહેતા હતા.

૮૪/૮૪ કુંભનદાસજી : કુંભનદાસજીને કીર્તન દ્વારા શ્રીગોવર્ધનનાથજીના સ્વરૂપમાં આસક્તિ સિદ્ધ હતી.

૧૮૧/૨૫૨મી વાર્તા માં : શ્રીગુસાંઈજીએ એક વૈષ્ણવને પ્રેમ આસક્તિ તથા વ્યસનના ભેદ કહ્યા. તેમાં આસક્તિ અવસ્થા કુંભનદાસની કહી તથા વ્યસનાવસ્થા શ્રીગજજનધાવનની બતાવી.

૩/૨૫૨ ચાયા હરિવંશજી : ચાયાજીને કથા દ્વારા પ્રભુમાં આસક્તિ સિદ્ધ હતી. તેમણે સ્વતંત્ર ગૃહસેવા નહોતી પધરાવી.

૨૧૫/૨૫૨ દ્વારકાદાસ ગોરવા ક્ષત્રી : તેમને શ્રીનાથજીનાં સ્વરૂપમાં આસક્તિ હતી.

તેઓ હથિયાર બાંધીને વનમાં જતા હતા. તેમણે સ્વતંત્ર સેવા પધરાવી નહોતી પધરાવી.

૨૪૫/૨૫૨ રસખાન પઢાણ : રસખાનજીને શ્રીનાથજીનાં સ્વરૂપમાં આસક્તિ થઈ હતી.

**વ્યસન :**

૪/૮૪ પદ્મનાભદ્રસજી : તેમણે ભક્તિવર્ધિનીમાં કહ્યા પ્રમાણે “અવ્યાવૃત્તો ભજેતુ....શ્રવણાદિભી:”ના ન્યાયથી શ્રીમથુરાનાથજીને છોલા ધરીને નિર્વાહ કર્યો. તેમને માનસી પણ સિદ્ધ હતી.

૮/૮૪ ગદાધરદાસજી કડાના : ગદાધરદાસજીએ અવ્યાવૃત્ત પ્રકારથી માત્ર જલની લોટીથી પ્રભુને રીઝવ્યા. તેમને માનસી સેવા પણ ફલિત થઈ હતી.

૧૩/૮૪ ગજજનધાવનની વાર્તા : ગજજનધાવનને શ્રીનવનીતપ્રિયાજીનું વ્યસન હતું અને શ્રીનવનીતપ્રિયાજીને પણ ગજજનધાવનનું વ્યસન હતું.

૩૦/૮૪ પુરુષોત્તમ જોષી : તેઓ ભક્તિવર્ધિની ગ્રંથના મુખ્ય અધિકારી છે. જેમણે અવ્યાવૃત્ત થઈને ભગવત્સેવા કરી. તેમને વ્યસન પણ સિદ્ધ થયું હતું.

૪૬/૮૪ બુલામિશ્ર : તેમને પ્રમેયબલથી માનસીનું દાન મળ્યું હતું.

૮૧/૮૪ સૂરદાસજી અષ્ટસખા : સૂરદાસજીને કીર્તનદ્વારા માનસી સિદ્ધ હતી.

૮૨/૮૪ પરમાનન્દદાસજી : તેમને પણ કીર્તન દ્વારા માનસી સિદ્ધ હતી.

૮/૨૫૨ માધોદાસ ક્ષત્રી કાબુલમાં રહેતા : શ્રીગુસાંઈજીએ પ્રમેયબલથી માધોદાસને માનસીનું દાન કર્યું હતું જેમને કાબુલમાં શ્રીગોવર્ધનનાથજીના દર્શન થતાં હતાં.

૧૩/૨૫૨ મધુસૂદનદાસ ગોડિયા બ્રાહ્મણ : તેઓ વ્યસનભાવમાં આંખો બન્ધ કરીને પાનની સેવા કરતા હતા.

૧૨૩/૨૫૨ રાજા આશકરણજીની વાર્તા. તેમને માનસી તથા વ્યસન પણ સિદ્ધ હતાં.

૨૨૬/૨૫૨ સરાવગીની (જૈન) બેટી : તેમને અલૌકિક સામર્થ્યનું દાન મળ્યું હતું. તેઓ આગ્રાથી યમુનાજલની ગાગર ભરવા નિત્ય ગોકુલ આવતા અને નિત્ય શ્રીગુસાંઈજીના દર્શન કરીને આગ્રા પાછા આવતા.

૨૩૨/૨૫૨ રૂપમંજરી : તેમને શ્રીગોવર્ધનનાથજીનું વ્યસન હતું. તેઓ શ્રીગોવર્ધનનાથજી વગર નહોતા રહી શકતા. તેમની સાથે પ્રભુ ચોપાટ રમતા.

૨૩૬/૨૫૨ બ્રહ્મદાસ ગોરવા ક્ષત્રી : તેઓ તીર્થાટન કરતાં. તેમણે સેવા નહોતી પધરાવી. સદા માનસીમાં લીલાનુસ્મરણ કરતાં.

૨૪૧/૨૫૨ નન્દદાસજી : તેમને કીર્તન દ્વારા પ્રભુનું વ્યસન સિદ્ધ હતું.

ભક્તિવર્ધિની ગ્રંથમાં વિભિન્ન ટીકાકારોએ ભક્તિની વિવિધ ફળદ્રશાનું સ્વ-

સ્વ અભિપ્રાય મુજબ વર્ણન કર્યું છે. ભક્તિમાં ફળદ્રશાની પ્રથમ અવસ્થા જે પ્રેમ છે તેનો અર્થ ટીકાકારોએ મુખ્યત્વે સ્નેહ કર્યો છે. જેવી રીતે બીજામાંથી અંકુર ફૂટે તેમ સ્નેહમાંથી અંકુર ફૂટવાની અવસ્થાને ભક્તિની ફળદ્રશાની પ્રથમ અવસ્થા બતાવી છે. સ્નેહ પ્રકટ થવાથી ભગવાન્ સિવાય અન્યત્ર રાગનો સારી રીતે નાશ થાય છે. પ્રેમ પ્રાપ્ત થયા પછી જીવને આસક્તિ સિદ્ધ થાય છે. આસક્તિનો અર્થ પ્રાયઃ ટીકાકારોએ કર્યો છે કે ચિત્ત ભગવાનમાં એવું ચોંટી જાય કે ભગવાન્ સિવાય તે રહી જ ન શકે તે કારણે તેને ભગવદ્ભજનમાં બધું જ બાધક લાગવા માંડે છે. આવી આસક્તિ સિદ્ધ થવાથી ભક્તને ભગવદ્નુપયોગી ઘરમાં અરુચિ થવા લાગે છે. ત્યારબાદ ભક્તિની ઉત્તરાવસ્થા વ્યસન પ્રાપ્ત થાય છે. આ અવસ્થામાં સ્વાભાવિકતયા ભક્ત પોતાના પ્રિય પ્રભુવિના રહી જ નથી શકતો તે કારણે બીજા પદાર્થો તેનાથી દૂર ફેંકાઈ જાય છે અને જીવને અન્યવિસ્મૃતિ થતાં ભગવત્પરતા પ્રાપ્ત થાય છે.

વ્યસન સિદ્ધ થતાં જ તે જીવ ભગવદ્દવેશમાં ગૃહત્યાગ કરી દે છે. ત્યારબાદ તે જીવને સુદૃઢ સર્વથી ઉત્તમ એવી ભક્તિ કે જેનું વર્ણન નિરોધવક્ષણ ગ્રન્થમાં કરવામાં આવ્યું છે તેવી ફલોન્મુખા, ફલરૂપાભક્તિ જે ચતુર્વિધ પુરુષાર્થ કરતાં પણ ઉત્તમ છે તેવી અવિનાશી ભક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે ત્યારે તે જીવ કૃતાર્થ થાય છે. આવો ટીકાકારોનો મત છે. ભક્તિની આ ઉત્કૃષ્ટ અવસ્થાને પ્રભુ પણ નકારી નથી શકતા. તેથી પ્રભુ પણ ભક્તને આવા આશીર્વાદ આપવા પ્રેરાઈ જાય છે.

અહં ભક્ત પરાધીનો ત્યસ્વતન્ત્ર ઇવ દ્વિજ,  
સાધુભિર્ગ્રસ્તહૃદયો ભક્તૈર્ભક્તજનપ્રિયઃ.

**સન્દર્ભ સૂચિ :**

- ભક્તિવર્ધિની ગ્રન્થ ઉત્થાનિકા ગો.શ્યામમનોહરજીકૃત.
- નિરોધવક્ષણ ગ્રન્થ ઉત્થાનિકા ગો.શ્યામમનોહરજીકૃત.
- ભક્તિવર્ધિની ગ્રન્થાન્તર્ગત વિભિન્ન ટીકાઓ.
- પુષ્ટિવિધાનમ્-૩ અન્તર્ગત ભક્તિવર્ધિની ભાવાનુવાદ.





## चर्चा

### भक्तिवर्धिनीमें फल

श्रीअंशु शाह

गो.श्या.म.: बरसनसुं महाप्रभुजीके वचननके आधारपे अपनो कर्तव्य निर्धारित करनो या बारेके मेरे सदाग्रह कहो, दुराग्रह कहो या जडाग्रह कहो; तीनों विशेषणमेंसु मोकु एक भी आपत्तिजनक नहीं लगे हैं, वाके कारण बहोतसे लोगनमें ये भ्रान्ति है के मैं परम्पराकु नहीं मानुं हूं, वार्ताको प्रामाण्य नहीं मानुं हूं. हां, श्रीमहाप्रभुजीके वचनसु विरुद्ध जाती परम्परा तो परम्परा ही नहीं है, वो तो भरंभरा है. पर जहां तक वार्ताको प्रश्न है मेरे मनपे वार्ताको प्रभाव मेरे दादाजी(नि.ली.गो.श्रीदीक्षितजी महाराज)के कारण पड़्यो. बचपनमें हमारे घरमें ऐसो नियम हतो के जब तातजी (नि.ली.गो.श्रीगोकुलनाथजी) महाराज पौढ़ते तब उनकु वार्ता बच्चानकु सुनानी पड़ती. पर वा बखत मोकु पढ़नो नहीं आतो हतो यासुं मेरो केवल वहां बैठनो ही कर्तव्य हतो. पर जब मोकु पढ़नो आयो तबसुं मैने वार्ता पढ़नी शुरु करी. सच्ची बात ये है के मैने उपदेशग्रन्थ पहले नहीं पढ़े हते वार्ताएं पहले पढ़ी हतीं. पर क्योंके मैने नास्तिक ग्रन्थ और अन्य दर्शनशास्त्रके ग्रन्थ बहोत पढ़े वाके कारण पहले मेरे मनमें ऐसे विचार आते हते के ये सच्चो के वो सच्चो. उन दिननमें एक घटना घटी. हमारे दादाजीके एक शिष्य हते : शरद् हजारेजी. पहले वो अखंडानन्दजीके शिष्य हते. अखंडानन्दजीने जितने ग्रन्थ छापे उनकी प्रेस् कॉपि उनने तैयार करी हती. वो अखंडानन्दजीके माधवभट्ट काश्मीरी जैसे हते. वो क्यों दादाजीके शिष्य भये ये मोकु पता नहीं है. पर मैने उनकु ब्रह्मसम्बन्ध दियो हतो और बचपनमें मैं जिनकी सेवा करतो हतो वो ठाकुरजी मैने उनके माथे पधराये हते. उनने दादाजीकु एक दिन पूछी के मैं क्या पढ़ुं के जासु मोकु सम्प्रदायको सिद्धान्त समझमें आवे. दादाजीने उनकु चौरासी वैष्णववार्ता पढ़वेकी कही. थोड़े दिन बाद उनने आके दादाजीकु कही के वार्ताएं रोचक तो बहुत हैं पर बिलीवेबल् नहीं लगे हैं. तब दादाजीने बड़ी अच्छी बात कही के बिलीवेबल् नहीं लगे तो कोई बात नहीं, पर फिर

भी इनकु पढ़ते रहो. ये बात मोकु बड़ी स्ट्राइकिंग् लगी. दादाजीकी बातकी पुष्टि मोकु फिरसु तब भई के जब मैने महर्षि अरविंदोकु पढ़्यो. अरविंदोने भी दादाजीके जैसी एक खूबसूरत बात कही है. वो लिखे है के कुछ लोग कृष्णकथाकु कल्पित मानें हैं. अरविंदो कहे है के कोई चिन्ताकी बात नहीं है. कल्पित होने दो. पर जिनने इतनी सुंदर कल्पना करी है उनके चरणपे माथा धरो! दादाजीकी बात भी ऐसी ही हती. अब ये बात महत्त्वहीन है के वार्ताएं सच्ची हैं के झूठी हैं. श्रीगोकुलनाथजीके चरणारविंदमें अपनकु माथा टेकनो चाहिये के जिनने ऐसी सुंदर वार्ताएं लिखीं के जाकु पढ़के अपनकु मार्गको सिद्धान्त समझमें आ जा रह्यो है. मैं ये नहीं कह रह्यो हूं के वार्ता झूठी हैं, पर वार्ता खुद इतनी महान है के इनके सामने सच-झूठको ईश्वर टुच्चो हो जावे है. सच्ची बात कहूं तो वार्तानमें जा तरहसुं पुष्टिमार्गको सिद्धान्त प्रकट भयो है वो अपन पच्चीस साल प्रवचन करें तो भी प्रकट नहीं कर सकें. वार्ताके प्रति मेरो ये भाव है. जब वार्तासुं षोडशग्रन्थ समझायो जाय है तो नशासो आ जाय है, सिहरन होवे लगे है.

**कुंजबाला :** વ્યસનોત્તર એવી વિકળતા આવવી જરૂરી છે કે જેથી ગૃહત્યાગ થઈ જાય?

**અંશુ શાહ :** અધિકારભેદથી શક્ય છે. જે કરી દે છે તે કરી દે છે. પણ એવું વિધાન નથી કે કોણે કરવું જોઈએ અને કોણે ન કરવું જોઈએ. જેમ આસકરણદાસજીએ ત્યાગ કરી દીધો હતો. આ તો ફક્ત દશાનું વર્ણન છે. એનાથી એવો પક્ષ સ્થાપિત નથી થતો.

**ધર્મેન્દ્રસિંહ ઝાલા :** “વ્યસન સિદ્ધ થતાં જ એ જીવ ગૃહત્યાગ કરીદે છે” એટલે ગૃહત્યાગનો જ પક્ષ આવે ને! આ વાક્યથી એવું લાગે છે.

**ગો.શ્યા.મ. :** मैं या विषयमें ये कहनो चाहूंगे के निरोधलक्षणमें जो साध्य है वाकु सिद्ध करवेकेलिये यहां त्यागकी बात है. वहां त्याग प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिसु सिद्ध है. तो प्रपञ्चविस्मृत्युपयोगी त्याग यदि अपन यहांसुं लेके चलें टिफिनबोक्स तो वहां खानो मिलेगो. ये वो त्याग है. क्योंकि “**भक्ताः पूर्वत्रनिर्दिष्टाः ते रोद्धव्या विमुक्तये, ये निरुद्धाः तएवात्र मोदम् आयान्ति**” है. तो भक्तिवर्धिनीमें कहे प्रकारसुं थोड़ी त्यागकी प्रेक्टिस् करोगे तो तुम यात्रामें अपनो टिफिन् बोक्स अपने साथ लेके जा रहे हो. जब वहां पहुँच जाओगे तो अपने आप सिद्धको साधन कर लेनो पड़ेगो.

क्योंके त्यागके लेवलकु तुमने कितनो डेवलप् कियो वाके फेसेट्पे ध्यान दो. **“स्नेहाद् रागविनाशः स्यात्”**. घर प्रपञ्चको प्रतीक है. क्योंकि साय्कोलोजिकलि अपनो प्रपञ्च तो अपने घरसुं शुरु होवे है. वा प्रपञ्चमेंसुं रागको विनाश भगवत्स्नेहकु आसक्तिमें खिलावेगो. और **“आसक्त्या स्याद् गृहारुचिः”** आसक्ति होवे पे अरुचि पैदा कर देगो. राग नहीं है, रुचि नहीं है. अब बच्चो क्या? विस्मृति. जामें तुमकु राग नहीं है, जामें रुचि नहीं है वाकी तुमकु याद आयेगी क्यों? जामें रुचि या राग होवे वाकी ही याद आती होवे है. रुचिके कारण राग होवे पर छूटे पहले राग है. राग जब छूटे है फिर धीरेसु रुचि भी छूट जावे है. रागत्याग सिद्ध हो जावे तो रुचित्यागकी साधना ही तो बाकी रही! जब राग नहीं रह्यो तो रुचि क्यों रहेगी! और जब राग और रुचि दोनों छूट गये फिर तो बाकी विस्मृति ही बची! वो वहां सिद्धसाधन हो जायेगो. भक्तिने तुम्हारी यात्राके सामानमें इतनो बांधके जमा कर रख्यो है. अब आनन्दसुं यात्रा करो निरोधमार्गकी. तो इतनो भक्ति तुमकु सप्लाय करदे है. एक बात ये है.

दूसरी बात पुष्टिभक्तिमें पूजाकी विचारणीय है. श्रीमहाप्रभुजी भक्तिवर्धिनीमें आज्ञा कर रहे हैं **“पूजया श्रवणादिभिः”**. श्रीगोकुलनाथजीने ये कही है के यहां शास्त्रोक्त पूजाकी बात नहीं है पर **“पूजां दधुर्विरचिता प्रणयावलोकैः”** वाली पूजा है. यामें तो कोई आपत्तिकी बात ही नहीं है. पर श्रीबालकृष्णजी अलग ढंगसुं सोच रहे हैं. अपने लिये तो दोनों प्रमाण हैं. या स्थितिमें अपने सामने ये सवाल खड़े हो रहे हैं के पुष्टिभक्तिमें आगमोक्त पूजा ग्राह्य है, अग्राह्य है, त्याज्य है, उपेक्ष्य है, भक्त्यङ्गत्वेन ग्राह्य है अथवा भक्ताङ्गत्वेन ग्राह्य है. इतने विकल्प हैं. अपने यहां सेवामें जितने भी अधिवासनवाले उत्सव हैं वो सब आगमोक्त हैं. अधिवासनको प्रकार आगमोक्त है. ये अपने यहां सेवामें समाविष्ट है. याके सामने श्रीमहाप्रभुजीको वचन ऐसो है के **“मन्त्रमात्रपूजापरो न भवेत्”**. बादमें भक्तिहंसमें श्रीगुसांईजी ये भी आज्ञा कर रहे हैं के **“वैदिक-तान्त्रिक-दीक्षाचर्नादि-विधिभिर्यः अस्पृष्टो रमते निजभक्तेषु स मेऽस्तु सर्वस्वम्”**. ये अपनी बाउंड्री लाईन है. यामें अपनकु खेलनो है. ये सब बातें विचारणीय हैं.

**गो. मनोज :** ग्रन्थके अन्तमें जो लिख्यो है के जो याको पाठ करेगो वाकु भी दृढा रति

होयगो. तो ये पाठको फल है के ये कोई अधिकारी विशेष है.

अंशु शाह : अधिकारी तो होयगो ही न! पाठको फल तो है ही, नो डाउट, पर आचार्यचरणमें ऐसी बुद्धि रख रह्यो है तो जैसे एक उत्तम है दूसरो मध्यम है तो याकु अपन जघन्य अधिकारी कह सकें हैं. जैसे नवरत्नमें भी कह्यो है “**‘तथाभावे अतथाभावे वदनम् आवश्यकम् ‘तस्मात् सर्वात्मना नित्यम्’**”. वहां भी तो अलग अधिकारी बतायो है! वो कौनसो अधिकारी है? जो ऊपर कह्यो कोई भी उपाय नहीं कर पारह्यो है वो क्या करेगो? ऐसे यहां जो आचार्यचरणमें सुदृढ निष्ठा रख रह्यो है वाकु आचार्यचरण खुद ही वरदान दे रहे हैं के वाकु भी दृढा रति होयगी.

गो. योगेश : नोर्मलि कोई भी स्तोत्र-पाठको वाके अन्तमें फल बतायो जाय है. वो कोई अधिकारीकी दृष्टिसुं नहीं बतायो है. अधिकारीको मतलब तो ऐसे होवे के जैसे अनुबन्धचतुष्टयमें अधिकारी नक्की कियो जाय है. ऐसो यहां नहीं लगे है.

अंशु शाह : ये फल कौनकु होयगो?

गो. योगेश : जो भक्तिवर्धिनीको अधिकारी है वाकु. जाकु भक्तिमार्गपे चलनो है...

अंशु शाह : वो तो पूरी भक्तिवर्धिनीमें आयेगो!

गो. योगेश : अदृढ बीजभाव, दृढ बीजभाव और फिर ये अलग ही केटेगरी बताई है.

ये समझमें नहीं आवे है. मैं तो ग्रन्थके पाठको फल ले रह्यो हूं.

अंशु शाह : ग्रन्थके पाठको फल कौनकु होयगो?

गो. योगेश : जो पाठ करेगो वाकु!

अंशु शाह : अव्यावृत्तकु, व्यावृत्तकु...

गो. योगेश : कोई भी हो सके है.

अंशु शाह : अलग अधिकारी मानवेमें क्या हरकत है?

गो. योगेश : जरूरत ही नहीं है.

असित शाह : अंशुके समर्थनमें कह रह्यो हूं. आप जो जनरल् बात कह रहे हो वो तो बरोबर है. पर श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा कर रहे हैं “**‘तस्यापि स्यात् दृढा रतिः’**”. ‘अपि’सुं अलग अधिकारीको समुच्चय कर रहे हैं. यदि कृष्णाश्रय जैसो होतो “**‘इदं स्तोत्रं यः पठेत्’**” तो आप कह रहे हो ऐसी बात होती. पर ‘तस्यापि’ कह रहे हैं वाके कारण कोई नये अधिकारीकी बात आ रही है.

भक्तिवर्धिनीमें जो उपदेश है वाके अनुसार जो आचरण करेगो वाकु तो दृढ रति होयगी ही, पर जो पाठ करेगो वाकु भी दृढ रति होयगी. यासु अंशुकी बात आ रही है.

**गो. शरद :** मोकु लगे है के या पंक्तिकु बहोत लिटरल् सेन्समें या बहोत लूज सेन्समें नहीं लेनी चाहिये. यमुनाष्टकमें भी अनेक फलनकी प्राप्ति यमुनाजीके स्नान-पानसुं बताई है. पर वहां भी ये प्रश्न खड़ो भयो है के यदि इतने मात्रसुं सबनकु सिद्धि प्राप्त हो जाती होवे तो यमुनाजीमें ही जन्मे और यमुनाजीमें ही रहवेवाले कछुआ-मछलीनकु भी क्या वो सब सिद्धि मिलेगी? यदि ऐसी बात होवे तब तो जीवनके प्रभुने जो पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा विभाग किये हैं वो व्यर्थ हो जायेंगे! क्योंकि ऐसो तो जरूरी नहीं है के यमुनाजीमें केवल दैवी जीवनकु ही जन्म मिले अथवा यमुनाजीको स्नान-पान केवल दैवीजीव ही करें. या समस्याको समाधान श्रीमहाप्रभुजीने “तीर्थादावपि या मुक्तिः कदाचित् कस्यचित् भवेत्, कृष्णप्रसादयुक्तस्य नान्यस्येति विनिश्चयः” कहके दियो है. जाके ऊपर प्रभुकी वैसी कृपा होयगी वाकु वा निमित्तसुं फलप्राप्ति होयगी, दूसरेकु नहीं होयगी. यासुं ऐसे फलकथनको कोई विशिष्ट सन्दर्भ होवे है, विशिष्ट तात्पर्य होवे है वाकु खोजनो चाहिये. नहींतो तो श्रीमहाप्रभुजीने सेवा, गुणगान, शरणागति आदि जो साधन बताये हैं उन सबकी व्यर्थता हो जायेगी! उनकु केंसल् करके या उनके विकल्पतया पाठमात्रसुं फल मिल जायेगो ऐसो या फलकथनको तात्पर्य होवे ये समझमें आनेवाली बात नहीं है. हां, प्रमेयबलसुं तो कोईकु भी कछु भी प्राप्त हो सके है. वो तो बात ही आखी अलग है. यासुं याको कोई विशिष्ट सन्दर्भ है जाकु सोचनो चाहिये.

**अंशु शाह :** पाठको विशेष अधिकारी माननो के नहीं या विषयमें आपको क्या अभिप्राय है.

**गो. शरद :** यदि प्रमेयबलसुं फलदानकी बात है तो वाके अधिकारीकी खोज चलानेकी जरूरत नहीं है. क्योंकि वो प्रभुको कार्यक्षेत्र है, जाकु जैसे फलदान करनो होयगो वैसे करेंगे. अपनो कर्तव्य कहे भये प्रकारसुं साधनाचरण करनो है.

**अंशु शाह :** नवरत्नमें भी “तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम”सुं विशेष अधिकारी बताया है! नवरत्नमें शुरुसुं कहे गये उपायनसुं जाकी चिन्ताको निवारण नहीं हो सके वाकु “श्रीकृष्णः शरणं मम”को रटण करनो.

**गो. शरद् :** ये बात सही है. ऐसी बात गीता-भागवत, यमुनाष्टक, सर्वोत्तम, कृष्णाश्रय, निरोधलक्षण, भक्तिवर्धिनी सब जगह कही गयी है. उन फलकथनको तात्पर्य ये नहीं हो सके है के कुछ मत करो, केवल वा ग्रन्थको पाठ कर लो, तुमकु सिद्धि मिल जायेगी.

**अंशु शाह :** यासुं ही मैं कह रह्यो हूं के मुख्याधिकारीको वर्णन कर दियो. याकु जघन्याधिकारी मान लो!

**गो. शरद् :** वासुं उलटो भी अपन कह सके हैं. बिना साधनके अथवा अल्प साधनसुं जिनकुं सिद्धि हो गई वो तो महान कहलायेंगे! अच्युतदासजीकुं बैठे-बिठाये मानसी सिद्ध हो गयी. सूरदासजीकु दशमस्कन्धानुक्रमणिकाके पाठमात्रसुं ब्रजलीलाको साक्षात्कार हो गयो. उनकु अपन जघन्य कैसे कहेंगे! अपन आगे-पीछेकी कक्षाके रूपमें ये बात कह सके हैं के कोई अभी पाठ मात्रकी कक्षापे है, कोई वासुं आगे बढ़के पाठके अर्थ-तात्पर्यके विचार तक पहुँच्यो है. कोई वासुं भी आगे पाठके अर्थ-तात्पर्यकु समझके कर्तव्यको निर्धारण कर रह्यो है. ऐसी अवस्था कोईके भी जीवनमें आ सके है.

**भावेश परमार :** छेछे क्वहुं छे के “**य अतत् समधीयीत तस्यापि स्यात् दृढा रतिः**”.

दरेक इणनी पाछण कोई कर्तव्य छुपायेलुं छे. जेम “**गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णम्**”. अटवे कर्तव्यने जुटुं पाडी नहीं शक्य. जे समर्पित थरने प्रभुसेवा करी रह्यो छे अने पाशु भक्तिवर्धिनीनो पाठ करवानो छे अने जे भक्तिवर्धिनीनो पाठ करी रह्यो छे अने पाशु प्रभुसेवा करवानी छे. पाठ करनारने कर्तव्य पाशु बताववामां आयुं छे. ખાલી पाठ જ કરતા રહેવું એવું નથી. ભક્તિવર્ધિનીમેં જે-જે કરવાનું કીધું છે એ પણ પાઠ કરનારે કરવાનું છે. અટલે ઇળમાં સાધન છુપાયેલું છે અને સાધનમાં કંઈક ઇળ છુપાયેલું છે.

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** मात्र पाठ करवेसु फल मिल जायेगो ऐसो यदि अपन मानें तो पाठ करनेवालेकु श्रीमहाप्रभुजीमें श्रद्धा होनी तो आवश्यक माननी ही पड़ेगी. यासुं श्रद्धा पाठको अङ्ग बनेगी. और षोडशग्रन्थ सारे भक्तिमार्गिकेलिये हैं. यासुं अधिकारीमें भी भक्तिमार्गके बाहरवालो कोई भी मान नहीं सकेंगे. तो जब अधिकारी भक्तिमार्गी है और आचार्यचरणमें आचार्यतया श्रद्धा भी है तो आचार्यचरण जो “यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात् तथोपायो निरूप्यते” कहके भक्तिकी वृद्धिके उपाय बता रहे हैं उन उपायनमें वाकी श्रद्धा क्यों नहीं होयगी! कोई कारणसुं उपाय नहीं कर पावे है तो अलग बात है. ऐसी स्थितिमें पाठमात्रसुं भी वाकी भक्तिकी वृद्धि तो होयगी ये कहनो चाह रहे हैं.

पर वाकु अलग अधिकारी मानेंगे तो ...

अंशु शाह : भक्तिकी वृद्धि व्यसन तक होयगी ?

धर्मेन्द्रसिंह झाला : हां, होयगी. क्योंकि वाकु भक्तिकी वृद्धिके उपाय कर नहीं पानेको ताप होयगो.

गो. योगेश : पाठ करनेवालो अदृढ बीजभाववालो व्यावृत्त अधिकारी ही मान्यो जायगो न ! यासुं अलग वाकी केटेगरी खड़ी करवेकी क्या जरूरत है ?

धर्मेन्द्रसिंह झाला : श्रवणादिपरायण लेलो !

गो. योगेश : हां.

अंशु शाह : श्रीगोकुलनाथजी तो याकु अलग अधिकारितया ले रहे हैं :  
“एतदध्ययनकर्तुरपि एतन्मार्गीयफलं सिद्ध्यति” !

गो. श्या.म. : ये समस्या अपने सेमिनारकी ही नहीं है, ये समस्या अपने आखे भारतकी है. और ये समस्या पाछी २७ फेब्रुआरीकी नहीं है, ये समस्या पिछले ढाई-तीन हजार वर्षसुं चली आ रही है. या समस्याको वर्णन रामानुज सम्प्रदायके विद्वान् और न्यासादेशके रचयिता वेदान्तदेशिकने कियो है “वेदान्तानां कबन्धं कतिचनजगृहुः राहुकल्पं शिरोन्ये, किन्तैरन्तर्विरोधप्रमुषितमतिभिर् बाह्यकल्पैर्भमद्भिः, स्वाध्यायाध्यायकात्स्न्ये स्वविधि-परविधिप्रेरणातावदास्तां कृत्स्नापातःप्रतीतौ किमितिकृतधियः कृत्स्नचिन्तां न कुर्युः”. ये बात उनने कुमारिल भट्ट और शमराचार्यजी केलिये कही है. कुमारिल भट्टकु वो कबन्धमीमांसक कह रहे हैं के वो अखण्ड वेदके माथाकु काटके वाके मात्र धडकी मीमांसा करनेवाले हैं. और शांकरनकु वो राहुवेदान्ती कह रहे हैं के वो अखण्ड वेदके धडकु काटके खाली माथाकु लेके फिर रहे हैं. मीमांसक वेदान्तकु बेकार माने हैं और शांकर लोग पूर्वकाण्डकु बेकार माने हैं. उन दोनोंकी मजाक वेदान्तदेशिक उड़ा रहे हैं. समाधान वो ये दे हैं के वेद तो “साङ्गो वेदो ध्येयो ज्ञेयश्च” आज्ञा करे हैं. अखण्ड वेदको अध्ययन करवेकी आज्ञा है. वामें ऐसे भाग नहीं पाड़े जा सके हैं. वेदान्तदेशिकको इन दोनोंनूपे आक्षेप है के ये लोग जैन-बौद्धनूके प्रभावमें आके ऐसी विचित्र बात कर रहे हैं. अपने सम्प्रदायमें भी ऐसी दुर्घटना भई है. कुछ लोग ग्रन्थवादी हैं और कुछ स्वरूपवादी हैं. “सेवा करो पर ग्रन्थ मत पढ़ो, ग्रन्थ पढ़ोगे तो बहिर्मुख हो जाओगे” कुछ लोग ऐसे कहे हैं. दूसरे वल्लभपन्थी यों कह रहे

हैं के “सर्वोत्तमको पाठ करते रहो, सेवा-बेवा कुछ मत करो”。 तो देखो, राहुवेदान्ती और कबन्धमीमांसक पुनर्जन्म लेके पाछे अपने यहां पैदा हो गये हैं. हकीकत ये है के ग्रन्थ पढ़के अपनकु श्रीमहाप्रभुजीके उपदेशके पालनमें प्रवृत्त होनो है. उपदिष्ट कर्तव्यमें प्रवृत्त होनेसुं पहले श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थ पढ़ने हैं. इन दोनोंनको सम्बन्ध सायक्लिकल् है. उदेशानुसारी कर्तव्यपालन और कर्तव्यपालन करते-करते उपदेशको अनुसन्धान इनकी सायकल् चलती रहनी चाहिये. क्योंकि लम्बे समय तक कोई कार्यकु करे तो आदमी चूक जाय. जैसे कोई पाठके शब्दको गलत उच्चार जबानपे चढ़ गयो होवे तो जानते-समझते भये भी सच्चो उच्चार जबानसुं नहीं निकले. करके ग्रन्थके बिना पाठ नहीं करनो चाहिये, ग्रन्थाश्रित पाठ करनो चाहिये जासु कि अशुद्ध पाठ नहीं होवे. माने “दैवोद्धारप्रयत्नात्मा”के ठिकाने “दीवो धर्यो प्रेतना हाथमां” न हो जाय वाकेलिये पाठ ग्रन्थकु हाथमें लेके करनो चाहिये. ऐसे ही ग्रन्थकु पढ़े बिना, श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा समझे बिना अगड़-बगड़ प्रकारसुं भक्तिकी बढ़ानेके चक्करमें पड़ोगे तो कौन जिम्मेदार होयगो? यासुं सेवा-स्मरण करते-करते उपदेशग्रन्थनकुं भी पढ़ते रहनो चाहिये. अब जो सेवा-स्मरण कुछ भी कर नहीं पा रह्यो है वो भक्तिवर्धिनीसुं अपनी यात्रा शुरु करे. या अंशमें अंशुकी बात सच है. पर यदि याको अर्थ कोई ऐसो ले लेवे के बस, पाठ ही करनो, सेवा नहीं करनी, क्योंकि “तस्यापि स्यात् दृढा रतिः” तो ये बात खोटी है. यदि कोरे पाठसुं दृढ रति हो भी गयी तो रति कायमें भई? भगवत्सेवामें के पाठमें? भगवत्सेवामें भई तब तो वो कृष्णसेवा करेगो ही करेगो. और यदि पाठमात्रमें रति भई तो कौनसो शेर मार्यो? याही लिये मैपे श्लोक लिख्यो हतो “वागर्थाविवसम्पृक्तौ ग्रन्थः कृष्णौ हि यन्मुखे” श्रीमहाप्रभुजीके मुखारविन्दमें वाणीके रूपमें ग्रन्थ सम्पृक्त हैं और अर्थके रूपमें कृष्ण सम्पृक्त है. इन दोनोंकु अखण्ड रखने चाहिये. इनको राहु-केतुमें विभाजन नहीं करनो चाहिये. यदि ये दोनों अखण्ड हैं तो यदि ग्रन्थसुं शुरु करोगे तो कृष्णसेवा तक पहुँच जाओगे और कृष्णसेवासुं शुरु करोगे तो श्रीमहाप्रभुजीकी वाणी तक पहुँच जाओगे. तो श्रीमहाप्रभुजी जो आज्ञा कर रहे हैं “तस्यापि स्यात् दृढा रतिः” वामें अधिकारी अलग है ये तो मैं भी मान रह्यो हूं. पर वो ऐसो अधिकारी नहीं है के जो कृष्णसेवारहित केवल भक्तिवर्धिनीको पाठ करतो होवे. श्रुति है : “आत्मा वाऽरे श्रोतव्यो



**मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः”.** यदि प्रभुको ध्यान नहीं करना है तो श्रवण-मनन व्यर्थ है. ध्यान नहीं धरना है तो क्यों इतना श्रवण-मनन करना! दूसरी ओर कुछ लोग कहे हैं के श्रवण-मनन नहीं करना, ध्यान करनेसु सब सिद्ध हो जायेगो. तो ध्यान कौनको करना? विषयनाकी तरह ध्यान करें के अपनो मुख है, वाके भीतर गला है, वामें टोंसिल्की गांठ है, वाके नीचे अन्ननली है, पीछे होजरी है...बहोत आगे जाओगे तो आंतमेंसुं विष्टाके साथ बाहर निकल जाओगे! तो, बिना श्रवण-मननके कौनको ध्यान धरना ये कैसे पता चलेगी? यासुं ग्रन्थको पाठ करना है अर्थके लिये और अर्थको ध्यान धरना है यथाग्रन्थ, अन्यथा नहीं. या तरहसुं याकु इंटीग्रेटेड सिस्टम् रखनी है. राहुवेदान्तिकी तरह वल्लभपंथी अपनकु नहीं बननो चाहिये के जो ग्रन्थके पाठके नामपे ग्रन्थके अर्थरूप कृष्णसेवासुं अपनो सम्बन्ध तोड़ देवे. और पू.पा.गो.बा.भी अपनकु नहीं बननो चाहिये के जो खुदकी हवेलीकी दुकान चलावेकेलिये अपनकु श्रीमहाप्रभुजीकी सच्ची गृहसेवाकी प्रणलीसुं विमुख करे. नाथद्वाराकी एक बाई मेरे पीछे पड़ गई. पत्रपे पत्र लिखे जाय “सब काम छोड़ो, सर्वोत्तमको पाठ करो”. थोड़े दिन तो मैने धीरज धरी. पर पीछे मैने भी वाकु लगातार १०-१२ पोस्टकार्ड लिख दिये के पत्र लिखनो बंद करो, श्यामबावाकु पत्र लिखनेमें टाईम वेस्ट मत करो, सर्वोत्तमको पाठ करो. पीछे वो बंद भई.

**परेश शाह :** भक्तिवर्धिनीमें सेवा-कथा और कथा में परायण ऐसो दो अधिकारी बताये हैं. “य एतत् समधीयीत”वालेकु कथापरायणतया लेलो. तीसरो अधिकारी मानवेकी आवश्यकता क्या है?

**गो.श्या.म.:** आवश्यकता ये है के समझो के कोईके भीतर भक्तिको बीज है, यदि बीज ही नहीं है तब तो भक्तिवर्धिनीको पाठ भी वो नहीं करेगो. यदि बीज दृढ है तब तो वाकु गुणगान भी सफीशियंद है. अदृढ बीजवालेकु केवल गुणगान पर्याप्त नहीं है, वाकु भगवत्सेवा और गुणगान दोनों करने पड़ेंगे. यदि अदृढ बीजभाववालो व्यावृत्त है तो अभी सेवाकी धांधल मत करो, गुणगान करो. पर वहां ऐसो आशय है के केवल गुणगान ही करके रह जाओ! नहीं. ऐसो गुणगान करो के जो तुमकु सेवा करनेमें प्रेरक बने. अव्यावृत्तकु तो श्रीमहाप्रभुजीने सेवा और कथा दोनों करनेकी आज्ञा दी है. पाठवालो वो है के जो न तो सेवा कर पा रह्यो है और न कथा कर पा रह्यो

है. तो भक्तिवर्धिनीके तो दोनों पक्षसु गयो!

**परेश शाह :** साधनप्रकरणमें श्रीपुरुषोत्तमजी कह रहे हैं के “तस्य सहकारी यमुनाष्टकादिपाठौ ज्ञेयौ”. मतलब जो पाठ कर रह्यो है वो कथापक्षवालो है. प्रपत्तिमार्गमें भी श्रीपुरुषोत्तमजी बता रहे हैं के पहले श्रीमहाप्रभुजीमें श्रद्धा रखेगो...मतलब श्रीमहाप्रभुजीके जितने उपदेश हैं उनमें भाव रखके भगवत्कथा-गुणगानमें प्रवृत्ति होयगी. तो या दृष्टिसुं...

**गो.श्या.म.:** तब तो वो न सेवामें आयो न कथामें आयो! वाकी दृढा रति कायसुं आयेगी? भक्तिवर्धिनीसुं आयेगी. भक्तिवर्धिनीसुं जो दृढा रति आयगी वो पाठमें नहीं, सेवा और कथा में अथवा कथामें. और यदि न सेवामें आयी और न कथामें आयी तो वाकु तीव्र विप्रयोग होयगो भक्तिवर्धिनीके पाठके कारण के वासुं गृहत्याग हो जायेगो. “गृहस्थानां बाधकत्वम्” ये गृहादिकी बाधकताको ज्ञान वाकु कायसुं होयगो? कथासुं नहीं होयगो. भक्तिवर्धिनी वाके माथापे हथौड़ा मारती रहेगी के ये तेरेकु होनो है और ये तु नहीं हो पायो. तब वो गृहत्याग करेगो.

**हंसराज वेद :** बीजभाव दृढ हो जायेगो?

**गो.श्या.म.:** भक्तिवर्धिनीके पाठसुं होयगो न बीजभाव दृढ! “तस्यापि स्याद् दृढा रतिः”में ये ही तो कह्यो है. बिना बीजभावके दृढ भये दृढा रति कैसे होयगी? थड़ दृढ हो गयो है तो जड़ें तो दृढ होंयगी ही न! या एंगल्सुं ८४ वैष्णवकी वार्ताको सर्वे करो. वार्ताने कछु नहीं छोड़्यो है. सुरदासजीकु दशमस्कन्धानुक्रमणिका पढ़नेसुं सब सिद्ध हो गयो. यद्यपि श्रीमहाप्रभुजीके सभी ग्रन्थ एक समान हैं पर सोचो के भक्तिके उद्बोधनमें फोर्स कोनको ज्यादा है, भक्तिवर्धिनीको के अनुक्रमणिकाको? कबूल करनो ही पड़ेगो के भक्तिवर्धिनीको श्रुत ज्यादा है. एक अलग अधिकारी है जो न सेवामें प्रवृत्त हो पा रह्यो है और न कथामें प्रवृत्त हो पा रह्यो है. पर सिन्सियर्लि महाप्रभुजीके उपदेशमें प्रवृत्त है. ऐसेकी दृढा रति अन्ततः कहां होयगी? यदि वो श्रीमहाप्रभुजीके उपदेशमें निष्ठावान् है तो वो कभी दुष्ट वल्लभपंथी नहीं बनेगो. जिनकी श्रीमहाप्रभुजीके उपदेशमें निष्ठा नहीं है वो लोग दुष्ट वल्लभपंथी भये हैं. श्रीमहाप्रभुजी तो कृष्णएव तात्पर्यम् हैं. उनने तीर्थयात्रा तक में कृष्णएव तात्पर्यम् कर दियो है. तीर्थयात्राको कल्प नहीं है क्या? मर्यादाभक्तिको कल्प श्रीमहाप्रभुजीने पुष्टिभक्तकु दियो है. अधिकारभेद नहीं

कियो है, अनुकल्पतया दियो है. “जगन्नाथे विट्ठले च श्रीरङ्गे वेमटे तथा, यत्र पूजाप्रवाहः स्यात् तत्र तिष्ठेच्च तत्परः” ये पुष्टिमार्गीकु कह रहे हैं. ये तो हम बालकनने हमारी हवेलियें चलानेकेलिये ये वचन छुपा लिये हैं. और ये कहने लग गये के वहां जाओगे तो अन्याश्रय होयगो. पर श्रीमहाप्रभुजी तो एकादशस्कन्धमें स्पष्ट आज्ञा कर रहे हैं के सबसुं पहले वैदिक मार्गको अनुसरण करो यदि तुम्हारो वर्णाश्रमधर्म अक्षुण्ण होवे. यदि वो अक्षुण्ण नहीं है तो तन्त्रमार्गको अनुसरण करो. तन्त्रमार्गको अनुसरण नहीं कर सकते हो तो समुच्चय करो. समुच्चयसुं अनुसरण नहीं कर सकते हो तो केवल पुष्टिमार्गमें रहो. केवल पुष्टिमार्गमें नहीं रह सकते हो तो पाछे तन्त्रमार्गपि जाओ. पर कोई भी स्थितिमें कृष्णकु मत छोड़ो. जा मार्गसुं खोजनो होय खोजो पर खोजो कृष्णकु ही. श्रीमहाप्रभुजी तो मर्यादाभक्ति तककी छूट दे रहे हैं. मैं ग्राह्य-अग्राह्यकी बात कर रह्यो हूं, माईन्डिड. श्रीमहाप्रभुजीको सीना इतनो चौड़ा है. एक सामान्य बात समझो के जो संसारकु भक्तिमें इन्कोपेरेट कर सके वा महाप्रभुकु मर्यादाभक्तिकु पुष्टिभक्तिमें इन्कोपेरेट करनेमें क्या जोर पड़ेगो! “यागादौ भक्तिमार्गैकसाधनत्वोपदेशकः” ऐसो स्वरूप श्रीमहाप्रभुजीको श्रीगुसांईजीने देख्यो है. ये तो अभी भी सामान्य बात है, श्रीमहाप्रभुजीकी हिम्मत देखो, “पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः” “पायोर्मलांशत्यागेन शेषभागं तनौ नयेत्”. तुम अपनी पत्नीके साथ सम्भोग कर रहे हो वामें भी श्रीमहाप्रभुजी सोच रहे हैं के कृष्णको कोई उद्देश्य होनो चाहिये. कोईके बापकी है ताकत! पाप, पाप, पाप कहते भये सब भग जायेंगे. अपने श्रीमहाप्रभुजीको सीना इतनो चौड़ा है. पर आंख साफ होनी चाहिये. आंख साफ नहीं है तो श्रीमहाप्रभुजीने सिद्धान्तमुक्तावलीमें कह दियो है के “भक्त्यभावे तु तीरस्थो यथा दुष्टैः स्वकर्मभिः, अन्यथाभावामापन्नः तस्मात् स्थानाच्च नश्यति” भगवत्सेवा ही तुमकु ले डूबेगी यदि सेवा करते बखत हृदयमें भक्तिभाव नहीं है तो. आवश्यकता कृष्णभक्तिकी है. “तस्मात् यया कया च विधया भक्तिं प्राप्नुयात्”. कस्य भक्तिम्? कृष्णस्य. ये बात साफ होनी चाहिये. ...तो “तस्यापि स्यात् दृढा रतिः”. श्रीमहाप्रभुजीको उपदेश सुनो. सुन लोगे उपदेश तो तुमकु कृष्णभक्ति दृढ हो जायेगी. आजकी अपनी समस्या ही ये है के अपनने आज उपदेशकु साधना

बनाली है और साधनाकु उपदेश बना दियो है. लोचा ये है. कथाश्रवण उपदेशात्मक भी हो सके है और साधनात्मक भी हो सके है. उपदेशात्मक कथाश्रवण एक अलग प्रकार है. जैसे कोई रीसर्च स्कोलर् पुराण या बाइबल् पढ़ रह्यो है तो वो आखो अलग प्रकार है. जैसे शरद्बावाने गीताकी भूमिकामें बाइबल् और भागवत की कम्पेरिटिव् स्टडी बताई है वो भागवतकी स्टडीको एक अलग प्रकार है. कोई भागवतकी प्रूफरीडिंग करे तो वो एक अलग प्रकार है. वाकु दक्षिणा लेके भागवतकी कथा करनेवालेके साथ नहीं रख्यो जा सकेगो. दक्षिणा लेके कथा करनेवालो पुष्टिमार्गमें पापी है. पर भागवतको प्रूफ देखनेवालो यदि वाके पैसा ले रह्यो है तो वो पापी नहीं है. तो जो व्यक्ति श्रीमहाप्रभूक्त उपदेशको अनुसरण करनेमें समर्थ नहीं हो रह्यो है वो उपदेशग्रन्थनके पाठसुं अपनी पुष्टिमार्गकी यात्रा शुरु कर सके है. बस इतनो ध्यान रखनो है के ये शुरुआत है. भक्तिवर्धिनीसुं तुमकु शुरुआत करनी है और कृष्ण तक पहोंचनो है.



# चतुर्थदिवसीय उपक्रम

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी

कल अपनने विवेकधैर्याश्रय, बालबोध, चतुःश्लोकी, भक्तिवर्धिनी और निरोधलक्षण इन चार ग्रन्थनपे विचार-विमर्श कियो. विवेकधैर्याश्रय ग्रन्थमें जैसे कि वाको नाम है, विवेक, धैर्य और आश्रय को निरूपण है. बालबोधमें वर्णित स्वतः-परतःकी स्कीमकी दृष्टिसुं विचार करें तो विवेकधैर्याश्रयमें विवेक-धैर्य स्वतः हैं और आश्रय परतः है ये उल्लेखनीय बात है.

विवेकधैर्याश्रयको निरूपण व्याख्याकारनने अलग-अलग ढंगसुं कियो है. पर मैं मेरी वा बारेमें जो समझ है वो प्रस्तुत कर रह्यो हूं. जब श्रीमहाप्रभुजी विवेकको निरूपण कर रहे हैं तो वाके सामने चार तरहके अविवेक आप सोच रहे हैं. जब श्रीमहाप्रभुजी धैर्यकी बात कर रहे हैं तो वाके सामने आप चार तरहके अधैर्य सोच रहे हैं. और जब श्रीमहाप्रभुजी आश्रयकी बात कर रहे हैं तब आप चार तरहके अनाश्रय सोच रहे हैं. इन चार-चार तरहके अविवेक, अधैर्य और अनाश्रय को कैसे निवारण करनो वापे श्रीमहाप्रभुजीको मुख्य श्रस्ट है.

याके तहत एक सब-स्कीम ओर आ रही है. प्रार्थना, अभिमान और हठ कु श्रीमहाप्रभुजीने एक कक्षामें रखे हैं. और चौथी कक्षा अनाग्रहकी श्रीमहाप्रभुजीने रखी है. टीकाकारें अलग ढंगसुं याकु टेकल् कर रहे हैं वो बात साफ समझियो. मैं अपने विचार बता रह्यो हूं. एक तरफ प्रार्थना, अभिमान और हठ अविवेक हैं. पर चौथो अविवेक अनाग्रह बताके आप ये समझानो चाह रहे हैं के अप्रार्थना, अनभिमान और अहठ को भी आग्रह छोड़ो. श्रीमहाप्रभुजी विवेककु वा हद तक स्ट्रेच् करनो चाहे हैं. कल अपनी चर्चा धर्माधर्माग्रदर्शनम् पे बहोत भई हती. यापे ध्यान दो. अपनी भारतीय परम्परामें धर्म व्यक्ति, अवस्था, स्थान, सामर्थ्य सापेक्ष होवे है. एक व्यक्तिको धर्म दूसरेकेलिये अधर्म-परधर्म हो सके है. एक व्यक्तिकेलिये एक अवस्थामें जो धर्म है वो दूसरी अवस्थामें त्याज्य भी हो सके है. ये सिद्धान्त श्रीमहाप्रभुजीके मतमें भी अच्छी तरह उभरके आयो है. याकु अपन “पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा विशेषेण पृथक्-पृथक्” ये श्रीमहाप्रभुजीके वचनसुं समझ सके हैं. आप पुष्टिमार्गके आचार्य हैं याको मतलब ये

नहीं है के मर्यादामार्गकी धोका लके धुलाई करनी. श्रीमहाप्रभुजी वैष्णवमतके आचार्य हैं करके शैवमतकी धोकासुं धुलाई नहीं कर रहे हैं. बालबोधमें श्रीमहाप्रभुजीने स्पष्ट आज्ञा करी है के शिवजीके भजनसुं भी शिवभक्त भोग-मोक्ष प्राप्त कर सके है. श्रीमहाप्रभुजी ऐकान्तिक भक्तिमार्गसुं ऐकान्तिकतया चिपके भये हैं फिर भी अन्य क्षुद्र देवनकी उपासना करनेवाले नरकमें पड़ेंगे ऐसो विधान आप नहीं करे हैं. **“तत्तद्देवोपासकानाम् आजन्मोपासने तत्तद्देवसायुज्यादिफलम्”** आज्ञा करे हैं. ऐकान्तिक होते भये भी या तरहकी चोड़ी सीमा महाप्रभुजीकी है. ईश्वरवादी होते भये भी ईश्वरोपासनाके बिना केवल सांख्य-योगसुं स्वतः मोक्ष मिल सके है ये कहनेमें श्रीमहाप्रभुजीकु जरा भी संकोच नहीं है. याके सामने अपन मुसलमान और क्रिश्चियन लोगनकु ओम्की जगह अल्लाह और गॉड बोलके योग करावें तब भी नाराजगी आ रही है. दूसरेकी बातके अस्वीकारको भाव उनके भीतर कितनो प्रबल है ये अपन समझ सके हैं. और इनके सामने एक ‘सेक्युलरिज़्म’के नामसुं दूसरो सम्प्रदाय चलयो है जो माने है के चोर बनो के मोर यहां सब चलता है. ये लोग यद्यपि अपने आपकु बहोत ब्रोड्माइंडेड् बतावे हैं पर उनकी ब्रोडनेस् कमिट्मेंट बिनाकी है. मैं याकु या ठंगसुं कहूं हूं के यदि कोई वेश्याकु पति नहीं होवे तो वामें आश्चर्यकी क्या बात है! वेश्याको कोईके भी प्रति कमिट्मेंट नहीं होनो वाको गुण है. सेक्युलरिस्ट् सब ऐसे ही होवे हैं. याके सामने अपने श्रीमहाप्रभुजीको गुण क्या है वो देखो. आप शत प्रतिशत कृष्णसुं-भक्तिसुं कमिटेड् होते भये भी दूसरेकु एक्सेप्ट करनेकेलिये श्रीमहाप्रभुजीको सीना चोड़ो है जितनो सेक्युलरिस्ट्को चोड़ो नहीं है. ये श्रीमहाप्रभुजीकी खासीयत है. जो जाकेलिये है वो वाकेलिये उचित है, सब बात सबकेलिये हो नहीं सके है. या लिये श्रीमहाप्रभुजी एक बात सर्वत्र अनाग्रहकी कर रहे हैं के प्रार्थनात्याग, हठत्याग और अभिमानत्याग में भी आग्रही मत बनो. श्रीहरिराय महाप्रभुकी एक विज्ञप्ति है जामें आप लिखे हैं के प्रार्थना करनी नहीं चाहिये या बात सच्ची है पर चित्तमें व्यग्रता बढ़ रही है तो क्या करूं! और मैं नहीं मानुं हूं के श्रीहरिरायजीकी प्रार्थना श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तविरुद्ध है. ऐसे ही अभिमानत्याग है पर पाछे श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के **“स्वल्पस्तु दर्पो मृग्यएव”**. तो धर्माधर्माग्रदर्शनसुं कभी प्रार्थना तो कभी थोड़ो दर्प भी हो सके है. ऐसे ही श्रीनाथजीकु पर्वतपेसुं टोंडके घनेमें पधराते बखत कुंभनदासजीने कहदी हती के **“चलेगो के मूंड कटवायेगो!”** पधरानेकी हठ पकड़के बैठे हैं. कुछ नहीं मिल्यो तो पाड़ापे पधराये. पाड़ापे केवल यमराज ही बैठ सकें. पाड़ाकी सवारी अधर्म है. पर हठसुं पधराये हैं क्योंकि धर्माधर्माग्रदर्शनको मुद्दा हतो. या बातपे ध्यान देनो जरूरी है.

याके पीछे धैर्यको निरूपण है. मरण पर्यन्त त्रिदुःख सहनो धैर्य है. पर भगवान् आज्ञा करे हैं “**कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः, मां चैवान्तः शरीरस्थं तान् विद्व्यासुरनिश्चयान्**”. अपने आपको कष्ट देवे है वो तो आसुरी है! श्रीमहाप्रभुजीकी दृष्टि या वचनपे है यासु आप तुरन्त आज्ञा करे हैं के यदि यदृच्छासु प्रतिकार होतो होवे तो दुःखी होनेको आग्रह मत रखो. दुःख सहनो और दुःखी बने रहनेके आग्रही बननो अलग बात है. यासुं ऐसो धैर्य रखो के जामें दुःख सहन भी होवे और सेल्फ टॉर्चरिंग् भी नहीं होवे. ये श्रीमहाप्रभुजीकी दृष्टिकी खासीयत है.

“**प्रतीकारो यदृच्छातः**” के बाद श्रीमहाप्रभुजीकु ये क्लिक् भयो है के प्रतिकारके नामपे दूसरेकु पीडा देने कहीं न लग जायें. अपने आश्रित लोगसुं थोड़ो कष्ट भयो और ले डंडा लगे उनकु पीटने! धैर्यको ऐसो मतलब नहीं है. दूसरेनके आक्रमण भी सहने. परिवारके होवें चाहे बाहरके लोग होवें उनके द्वारा किये जाते आक्रमणकु सहन करनेको स्टेमिना तुम्हारे अंदर होनो चाहिये. आगे जाके अन्तेवासी=शिष्य द्वारा होते आक्रमणकु भी सहन करवेकी आज्ञा श्रीमहाप्रभुजी कर रहे हैं. आजको अपनो प्रोटोकॉल ऐसो है के गुरुके सामने शिष्य कछु बोले तो भी गुरुकु गुस्सा आ जावे है. पर श्रीमहाप्रभुजी ये प्रोटोकॉल नहीं मान रहे हैं. अन्तेवासीके आक्रमणकु भी गुरुकु सहनो चाहिये यदि धैर्य दृढ करनो है. इतनो धैर्य धारण करनेको मतलब अपनकु ऐसो लग सके है के ये तो जड़ भरत जैसे बन जानेकी बात है. वैसे देखें तो जड़ भरत होनो बहोत बड़ी सिद्धि है. पर श्रीमहाप्रभुजीकी साधना प्रणालीमें जड़ भरत होनो कन्ड्युसिव् नहीं है. यद्यपि आपने “**जडवत् गोपभार्यवत्**” कह्यो है पर कैसे? “**स्वयमिन्द्रियकार्याणि कायवाङ्मनसा त्यजेत्**”. ये बहोत बड़ी बात है. काया-वाणी-मनसु इन्द्रियनके आरम्भको त्याग करो. आरब्धको त्याग और आरम्भको त्याग यामें अन्तर है. अपने यहां कह्यो है के नये आरम्भ नहीं करने पर आरब्धको तो भोग किये ही छूटका है. वो बात श्रीमहाप्रभुजी कर रहे हैं. क्योंकि इन्द्रियकार्य सुख और दुःख के जनक हैं. ‘ख’ = इन्द्रिय. इन्द्रिय जाकु ‘सु’ समझे है वहां सुख है. इन्द्रिय जाकु ‘दु’ समझे है वो दुःख है. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के इन्द्रियकार्यको तुम स्वतः त्याग करो.

धैर्यके तीन प्रकारमें पाछो कोई फिक्सेशन डेवलप् नहीं कर बैठे वाकेलिये चौथे प्रकारमें आप आज्ञा कर रहे हैं के “**अशूरेणापि कर्तव्यं स्वस्यासामर्थ्यभावनात्**”. यदि धैर्यधारणके तीन उपायनमेंसुं कोई भी उपाय करवेमें

तुम समर्थ नहीं हो रहे हो तो श्रीमहाप्रभुजी चौथे उपायतया आज्ञा कर रहे हैं के तो तु इतनो स्वीकार लो के तुम धैर्य धारण करनेमें समर्थ नहीं हो, अपने असामर्थ्यकी भावना करो. एक बखत अपन कोई बात स्वीकार लेवें तो वाके कारण बहोत धैर्य आ जातो होवे है. जैसे घरमें कोईकी मृत्यु होवे वाकु अपन स्वीकार नहीं पावें वाके कारण अधीराई आ जाती होवे है. पर जब अपन स्वीकार लेवें के ये तो होनो ही हतो तो बहोत कंट्रोल अपनेपे आ जावे है. ये धैर्य धारण करनेको पोझिटिव् स्टेप् है.

या तरहसुं श्रीमहाप्रभुजीने विवेक-धैर्यके स्वतः साधनाके उपाय बताये. अब वाही स्वतःसाधनके परतः उपाय श्रीमहाप्रभुजी आश्रयमें बता रहे हैं. जैसे शरद्बावाने कही हती के पुरुषार्थके दुःखाभाव और सुखप्राप्ति यों दो प्रकार होवे हैं. तो विवेक-धैर्य दुःखाभाव सिद्ध करवेकी प्रणाली है. सुखकी प्रणाली परतःकी है. जब तुम समझ रहे होके तुमसुं स्वतः कोई कार्य सिद्ध नहीं हो पा रह्यो है तो वाकु परतः करो. जैसे बालबोधमें मोक्षप्राप्तिके शिव-विष्णुके आश्रय और तदीयतासुं परतः उपाय बताये वा स्कीमकु यहां आश्रयके निरूपणद्वारा प्रस्तुत कर रहे हैं **“एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत्”**. यदि तुम या तरहसुं भावन नहीं कर रहे हो तो तुम्हारो आश्रय खण्डित हो रह्यो है. ये अनाश्रयको प्रकार है, अन्याश्रय नहीं. आश्रयको विरोधी अनाश्रय है. जाकु आश्रयको भावन करवेमें सेल्फकोन्फिडेन्स् नहीं आ रह्यो है वो दूसरे देवताके बारेमें सोचेगो. यहां श्रीमहाप्रभुजी तीन तरहके अनाश्रय बता रहे हैं १. स्वतः अन्यको भजन करना, २. स्वतः अन्यकी प्रार्थना और ३. स्वतः अन्यके पास जानो. इनकु छोड़ो. पुष्टिमार्ग अन्याश्रय छोड़नेकी बात जरूर करे है पर अन्याश्रय तो सिम्टम् है, मूल रोग अनाश्रय है, भगवान्में सम्पूर्ण आश्रय नहीं होनो, भगवदाश्रयकेलिये अपनो कमिटेड् नहीं होनो वस्तुतः अन्याश्रयमें व्यक्तिकु प्रेरित करे है. जो प्रभुके आश्रयमें दृढ है वो क्यों अन्याश्रय करेगो? २०-२५ वर्ष पहले बम्बईमें एक क्रिश्चियन् जाझ सिंगर् महेलिया जेक्सन् आयी हती. वो चर्चके भजन गाती हती. वाको एक गीत मोकु बहोत पसंद आयो. वो गाती हती के मैं ब्राईस्ट्रुके हाथमें हाथ डालके चल रही हूं, व्हाय् आई शुड् अफ्रेड् ऑफ् शेतान्! ऐसे बोलके वो “हे! हे!” कहती हती. ये सुनके मोकु मझा आ गई. याको नाम आश्रय. हम कोईसु क्यों डरें जब हमने अपने आपकु कृष्णकु सोंप दियो है! **“सर्वं समर्पितं भक्त्या कृतार्थोऽसि सुखी भव”**. अन्याश्रयको भाव जगे क्यों? कृष्णाश्रय होवे तो अन्याश्रयको भाव कभी जग नहीं सके है. अपनने श्रीमहाप्रभुजीके पोझिटिव् पोईट्रपे ध्यान कम दियो है और अफ्रेड् ऑफ्



शेतान् अपन ज्यादा हो गये हैं. यासुं “हे! हे!”वाली मजा अपनकु नहीं आ रही है. यासुं या बातपे ध्यान दो के अन्याश्रय दोष जरूर है पर वो रोग नहीं है, रोगके चिह्न है. मूल रोग तो अनाश्रय है. भगवदाश्रय नहीं होनो मूल रोग है. भगवदाश्रय दृढ करनेके उपाय श्रीमहाप्रभुजीने बताये हैं “एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत्”.

तीसरी बात अविश्वासकी है. अन्याश्रय होनेके पीछे मुख्य कारण श्रीमहाप्रभुजीके हिसाबसु कृष्णमें पूरो विश्वास नहीं होनो, आधो-अधूरो विश्वास होनो है. वाको उपाय आपने “अविश्वासो...सेवेत निर्मम”में बताया है. वाकी विवेचना करते भये श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के प्राप्तको निर्मम होके सेवन करो. ममता रहित होके असेवन करनो त्यागवाद है. ममता सहित सेवन करनो भोगवाद है. और निर्ममसेवन न भोगवाद है और न त्यागवाद है पर वो तुमकु एक अलग भूमिकापे लेजानेकेलिये जम्पिंग् पेड् प्रोवाईड् करे है. या तरहको सेवन तुमकु भक्तिकी तरफ लेजानेमें समर्थ बनेगो. निर्मम असेवन और समम सेवन भक्तिमें बाधक हैं. श्रीगुसांईजीकी वार्तामें विरक्त और शौकीन वैष्णवकी बात आवे है. विरक्तकु श्रीगुसांईजीने टरका दियो और शौकीनकु ब्रह्मसम्बन्ध देके सेवा पधराई. तो निर्मम सेवन भक्तिमें उपकारक होयगो. पर समम सेवन प्रतिबन्धक है “सविघ्नोऽल्पो बाधकः स्यात् बलाद् एतौ सदा मतौ”. पी.एच्.डी. तकमें काम आनेवाली बातनके बीज श्रीमहाप्रभुजी किंडर्गार्टनके लेवलपे बोते जा रहे हैं ये श्रीमहाप्रभुजीके उपदेशकी खासीयत है. अभी तू इतनो कर, आगे जाके ये तोकु कैसे काम आयेगो वो मैं आगेके ग्रन्थमें बताऊंगो. तुम “प्राप्तं सेवेत निर्मम” करो, तुम्हारो प्रभुपे विश्वास दृढ हो जायेगो.

याके बाद चौथी बात पाछी तीनके एंटीडोज़तया श्रीमहाप्रभुजी बता रहे हैं. यदि इन तीनमेंसुं कोई भी उपाय आश्रयकु दृढ करनेके हो नहीं पा रहे हैं तो चिन्ता मत कर, आश्रयको भावन कर. जैसे कल भक्तिवर्धिनीके पेपरमें चर्चा भई हती के न सेवा हो पा रही है, न गुणगान हो पा रह्यो है. श्रीमहाप्रभुजी कह रहे हैं के कोई बात नहीं, भक्तिवर्धिनीको पाठ तो कर! ये ही तोकु आगे ले जायेगो. या ही पॉलिसीसुं यहां आज्ञा कर रहे हैं के ऊंचे-नीचे जो काम तोसु जैसे हो सकें वो कर पर शरणकी भावना मत छोड़. सब कार्यमें भगवच्छरणकी भावना करतो रहेगो तो वासु भी आश्रय सिद्ध हो जायेगो. यामें अपन देख सके हैं के आश्रय परतः उपाय है और विवेक-धैर्य स्वतः

उपाय हैं.

विवेक-धैर्याश्रयकी बात श्रीमहाप्रभुजी कर क्यों रहे हैं वापे ध्यान दो. यदि विवेक-धैर्याश्रय रखते भये तुम या जगतमें रहोगे तो या जगतकु तुम भगवान्की लीलाके रूपमें देख पाओगे. तुम कोई नाटक या फिल्म देख रहे हो वामें यदि तुम्हारे भीतर विवेक-धैर्य नहीं है तो तुम नाटक भी देख नहीं पाओगे. यासुं श्रीमहाप्रभुजी यहां एक अच्छे नाटककु देखवेकेलिये ऑडियंसके भीतर जरूरी कल्चरकु कल्टिवेट् करनेको उपाय बता रहे हैं. आखे जगतकु अपन भगवान्को स्टेज समझें. भगवान् डायरेक्टर बनके वापे कोई लीला करा रह्यो है. वा लीलाको आनन्द लेवेकेलिये यदि तुम विवेक-धैर्य और आश्रय रखके बैठोगे तब तो आनन्दको अनुभव कर पाओगे. और यदि अविवेकी-अधीर-अनाश्रयी होके लालाकु देखोगे तो तुम्हारे भीतर भक्ति पनप नहीं पायेगी. श्रीमहाप्रभुजीने कही है के जगतकु भगवान्की कृति माननेसुं भक्ति नहीं होवे है, लीला मानोगे तो तुरंत भक्ति हो जायेगी. क्योंकि लीला चित्तको आकर्षण करके वामें स्नेह प्रकट करे है. वाके कारण भक्ति पनपे है. और जगतकु भगवान्की कृति मनोगे तो तुम भगवान्सुं झगड़ भी सको हो. आपको एक बात बताऊं हूं. इकबाल जैसो शायर के जाने “सारे जहांसे अच्छा हिन्दोस्तां हमारा” लिख्यो हतो वाने अल्लाहकी शिकायतमें ५४-५५ शेर लिखे हैं. एक शेरमें वो लिखे है के “हम(=मुसलमान्) नहीं थे तब लोग आगको पूजते थे, पथ्थरको पूजते थे. तेरे नामपे तलवार उठाई किसने? हम मुसलमानोंने, मरे कौन? हम मुसलमान्. और क्या गज़ब है कि काफिरोंको मिले हूर और पैसे और हमको वादा-ए-जन्नतमें हूर मिलती हैं!”. इकबाल दुःखी है के काफिरनकु यहां ही हूरें-दौलत मिल जा रहे हैं और हमकु खाली वादा मिल रहे हैं के मरके जन्नतमें आओगे तब मिलेगा. देखो, विवेक-धैर्य खूट गये हैं. आगे वो कहे है के “क्या कोई गज़नवी नहीं कारागहे हयातमें कबसे खड़े हैं मुन्तज़िर अहले हरमके सोमनाथ!” इकबाल अल्लाहकु पूछ रह्यो है के तेरे वा कारखानाको क्या भयो के जामें गज़नवी पैदा होते हते. हमने सारे मंदिरें तोड़ दिये हते वो सब पाछे कैसे बन गये! धीरज खो गई है. कुरानके हिसाबसु भी जगतकु अल्लाहने ही बनायो है. कुरान ये कह रही है के तुम काफिरनके कुफ्रकु देख-देखके दुःखी हो रहे हो. पर क्या तुम अल्लाहकु असमर्थ मान रहे हो! अल्लाह चाहे तो एक क्षणमें काफिरनकु और कुफ्रकु खत्म कर सके है. वो खत्म क्यों नहीं करे है क्योंकि तुम खुद कम्पेर् करो के तुम काफिर नहीं हो. तो, देखो, अल्लाह भी लीला कर रह्यो है के

नहीं? पर उनके यहां जगतकु अल्लाहकी लीला देखवेको सेटअप नहीं है करके धीरज खूट जाय है. यदि कुरानकु कोई श्रीमहाप्रभुजी मिल जाते तो कुरानकी लीलात्मिका व्याख्या करी जा सके है. श्रीमहाप्रभुजीकु पढ़के कुरान पढ़ोगे तो कुरानमें कई जगह लीला खोजी जा सके है. तब फिर इकबालके जैसे दुःख अपनकु नहीं होंगे. तो श्रीमहाप्रभुजी अपनकु विवेक-धैर्य-आश्रयके द्वारा या सारे जगतकु लीलात्मक देखनेकेलिये लायक दर्शक बनानो चाह रहे हैं. यामें श्रीमहाप्रभुजीको हेतु क्या है के तुम्हारे भीतर भक्ति होवे. भक्तिमें श्रीमहाप्रभुजीको हेतु क्या है के वा भक्तिकु तुम सेवा-कथा, कथा अथवा वैप्रयोगिक त्याग अथवा पूजा अथवा प्रपत्ति मेंसुं कोई भी विकल्पकु अपनाने के तुम विवेक-धैर्य-आश्रयकु निभा सको. ये श्रीमहाप्रभुजीकी स्कीम है. याही लिये यदि श्रीमहाप्रभुजी कोईकु आशीर्वाद देते होंगे तो ये ही कहते होंगे के “विवेकी धीरो अनन्याश्रितो भव”. दुःखाभाव और सुख दो पुरुषार्थ हैं. सुख पैदा करनेकेलिये श्रीमहाप्रभुजी ये अपेक्षा रखे हैं के विवेकी हो जाओ, धीर हो जाओ, अनन्याश्रित हो जाओ. और “अविवेकी अधीरो अनाश्रितो मा भू” ये दुःखाभाव केलिये श्रीमहाप्रभुजी कहेंगे कि नहीं! यासुं ही अन्तःकरणप्रबोधमें श्रीमहाप्रभुजीने “सर्व समर्पितं भक्त्या कृतार्थोऽसि सुखी भव” ऐसो आशीर्वाद देके ये ही बात इंडिकेट करी है. या लाईटमें अपनकु विवेकधैर्याश्रय देखनो चाहिये.

याके बादको ग्रन्थ बालबोध हतो. बालबोधमें सबसुं पहले श्रीमहाप्रभुजीने वैदिकचतुष्टयी पकड़ी है “अलौकिकास्तु वेदोक्ता”. वेदद्वारा प्रतिपादित धर्मार्थकाममोक्ष अलौकिक हैं. “लौकिका ऋषिभिः प्रोक्ताः तथैवैश्वरशिक्षया” सु श्रीमहाप्रभुजी लौकिक पुरुषार्थपे आये. यहां आपने सवाल उठायो हतो के दुःखाभाव और सुख कु ही पुरुषार्थरूप मान्यो है वामें समझनेकी बात ये है के लौकिक दृष्टिसु एक पुरुष अलग है और जीव अलग है जा बातकु लेके जैन-बौद्धने अपन वैदिकनके साथ बहोत झगड़ा कियो के तुम पुरुषको विचार कर रहे हो, जीवको नहीं कर रहे हो. तुमने पुरुषको मनुष्यके रूपमें विचार कियो है, जीवके रूपमें विचार नहीं कियो है. और तुम ये बात भूल गये के मनुष्य अन्ततः कोई जीव योनिसुं आयो है. ये वैदिकनकुं भी मान्य सिद्धान्त है. तो जीवके सुख-दुःखकु अपन सहानुभूतिसुं देख नहीं रहे हैं, मनुष्य ही प्रधान मानके धर्मको विचार कर रहे हैं ऐसो आक्षेप जैन-बौद्धको वैदिकनके ऊपर है. पर ध्यानसुं समझवेकी बात ये है के दुःखाभाव और सुख कु पुरुषार्थ कहनेकी दृष्टि जीवदृष्टि है, मनुष्यदृष्टि नहीं है. पर जीव जब मनुष्य बने है तब

यदि वाको रिफाइमेंट नहीं भयो तो वो अर्थ-कामकुं ही दुःखाभाव और सुख मानेगो. सारे दुःखको निवारण कायसुं? “जोरु साथे नाणा गांठे” अर्थ और काम! अर्थ-कामकुं ही पुरुषार्थ माननेसुं अपनो सोश्यल् केरेक्टर् ब्रेकडाउन होवे है. क्योंकि हर व्यक्ति अपनी कामनाके हिसाबसुं अर्थ-कामको संग्रह करनो चाहेगो. जैसे मेरी कामना है ऐसे कोई दूसरेकी भी कामनाएं हैं. जैसे इकबालकी कामना है कि इतने सालसुं हम नमाज़ पढ़ रहे हैं हमकु कब हूँ मिलेंगी! सारी हूँ हिन्दुएं ले गये अब हमारो क्या होयगो! बधा लई गया अमे रही गया. इकबालने मुसलमाननूपे गुस्सा होते भये ये भी कही है कि “मस्जिद तो बनाली पल भरमें इमांकी हरातरवालोंने, ये मन तो पुराना पाजी है बरसोंमें नमाज़ी हो न सका”. अल्लाह भी तो ये कहतो होयगो के तुमने मस्जिद तो बनाली पर तुम नमाज़ी कहां हो! तुमकु हूर कहांसुं दऊं? कहांसुं दौलत दऊं? पहले नमाज़ी बनो फिर देखेंगे. ये रहस्य है. यासुं ध्यानसुं समझो के अर्थ-कामकु पुरुषार्थ मानने पर ऐसी खींचा-तानी होनेवाली है. करके मनुने पहली बार ये बात कही के मनुष्य सुख-दुःखके बारेमें अर्थ-कामकु ही पुरुषार्थ मानेगो. ये मनोवृत्ति दूसरेके अर्थ-काममें बाधारूप न बने या लिये धर्मकु बीचमें लानेकी जरूरत है. “अर्थकामेषु असक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते” ये बात मनुने कही है. धर्म अपनी अर्थ-कामकी वृत्तिकु अंकुशमें रखेगो. जैसे भगवान् गीतामें आज्ञा करे हैं के “धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ!”. काम अपनो धर्मसुं अविरुद्ध होनो चाहिये. श्रीमहाप्रभुजी निबन्धमें आज्ञा करे हैं : “अचौराणामपापानाम्”. अर्थोपार्जन भी धर्मसुं अविरुद्ध होवे ऐसे प्रकारसुं करनो. तो कामभोग और अर्थोपार्जन में सुखमें और दुःखमें तुमकु धर्म और मोक्ष कु प्लेस् देनी पड़ेगी. अर्थ-काम अपनकु लोकतः प्राप्त हैं. वामें शास्त्रविधिकी अपेक्षा नहीं है. पर शास्त्र अपने अर्थ-कामकी अपेक्षा अपूर्वविधिके तहत नहीं करके नियमविधिके तहत करे है. प्राप्तकी व्यवस्था करनो नियमविधि कही जाय है और अप्राप्तको प्रापण करनो अपूर्वविधि कही जाय है. अर्थ-कामके बारेमें शास्त्रकी नियमविधि है के तुम जो कर रहे हो वाकु हम रोक नहीं रहे हैं पर तुम वाकु या ढंगसुं करो. और धर्म और मोक्ष के बारेमें शास्त्र अपूर्वविधि बता रह्यो है. क्योंकि इनकु तुम जानो नहीं हो, लोकतः ये तुमकु प्राप्त नहीं है. यहां अर्थ-कामजन्य दुःखके निवारणार्थ धर्म है. और मोक्ष श्रेयरूपी सुखार्थ है. तो सुख-दुःखकी बेसिक डिमांड अपन या तरहसुं सोचे हैं. वो चारों पुरुषार्थनमें ताना-बानाकी तरह बुनी भयी है.

वेदको दृष्टिकोण है के धर्मार्थकाममोक्षको एक इंटीग्रेटेड स्वस्तिक होनो

चहिये के जामें चारों पुरुषार्थ एक-दूसरेको बाध नहीं करते होवें. सु अस्ति, वेल् डन् होते रहनो चहिये. ये मनुष्यरूपी पुरुषके बारेमें अपनो दृष्टिकोण है. पर कई बखत लोगनकुं अपनी विफलता या अधिक भोगके कारण नेगिटिव् एटिट्युड आवे है. वाके कारण आदमी त्रैवर्गिककु छोड़के केवल केवल आपवर्गिक पुरुषार्थके तरफ मुड़नो चाहे है. ऐसे फ्रस्ट्रेटेड, डिप्रेस्ड आदमीकेलिये ऋषिन्ने तीनों पुरुषार्थनकु छोड़के केवल आपवर्गिक पुरुषार्थके शास्त्र प्रकट कियो जिनकु अपने यहां सांख्य-योग और शैव-वैष्णव तन्त्र कह्यो गयो है. ये चतुर्वर्गिक शास्त्र नहीं हैं, आपवर्गिक शास्त्र हैं. इनने चतुर्वर्गकी केर नहीं ली है, केवल अपवर्गकी ली है. यासुं श्रीमहाप्रभुजी बालबोधमें कहे हैं के “**मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि**”.

यामें अपन देख सके हैं के यदि कोई व्यक्तिकु त्रिवर्गकी अपेक्षा नहीं है और केवल अपवर्गकी अपेक्षा है तो वो व्यर्थमें हतोत्साह नहीं हो जावे वाकेलिये केवल आपवर्गिक पुरुषार्थको विधान जरूरी है वो ऋषिन्ने कियो. श्रीमहाप्रभुजी यहां ऋषिद्वारा कहे गये आपवर्गिक शास्त्रकी प्रामाणिकता इन्कार नहीं कर रहे हैं पर इनकी पर्याप्तताकु अस्वीकार रहे हैं. करके बालबोधमें सर्वसिद्धान्त कहके वो वेदकी स्कीम ब्रेक्डाउन हो गयी और ऋषिन्ने वाके अनुकल्प या विकल्प तया जो कुछ देनो चाह्यो वापे “स्वसिद्धान्तविनिश्चयम्”के तहत फिर पाछी एक आखी नयी स्कीम प्रस्तुत कर रहे हैं. और वो है पुष्टिप्रपत्ति और पुष्टिभक्ति. यामें पुरुषार्थनके इंटीग्रेशनको पूरो ध्यान रख्यो है वापे मैं ध्यान दिवानो चाह रह्यो हूं. श्रीमहाप्रभुजी आपवर्गिक शास्त्रनकु दो बातें रिमाइंड कर रहे हैं के तुम शैव हो चाहे वैष्णव हो; चाहे सांख्य हो चाहे योग हो पर स्वधर्मको त्याग मत करो नहीं तो भारद्वाज्य हो जायेगो. और यदि तुम ‘परतः’ हो तो तदाश्रय-तदीयत्व बुद्ध्या नवधाभक्तिको आचरण करो. तुम्हारी मर्यादा भक्ति है यासुं वामें तुम इतनी सावधानी रखो. यासुं ही जो योग और शैव-वैष्णवादि मत के जो स्वधर्मको त्याग करके साधना बता रहे हैं उनकु दुष्टमत माने हैं. क्योंकि ये मत चार पुरुषार्थकी इंटीग्रिटीकु तोड़वेवाले हैं. आज अपन “स्वधर्ममनुतिष्ठन्वै”कु पुष्टिमार्गकेलिये वापरे हैं पर श्रीमहाप्रभुजीने ये बात बेज़िकलि पुष्टिमार्गीकु कही है, पुष्टिमार्गकेलिये नहीं कही है. या बातको विवेक समजो. क्योंकि ये सर्वसिद्धान्तके संग्रहके रूपमें ये बात कही है. ये बात पाछी आपने सुबोधिनीमें कही है के “**यावद् देहाभिमानः तावद् वर्णाश्रमधर्मएव स्वधर्मः, भगवद्धर्मोऽपि परधर्मो विधर्मो वा**”. यदि देहाभिमान प्रबल है तो भगवद्धर्म भी परधर्म या विधर्म हो सके है. और

“यदा पुनः आत्मानं सङ्गतव्यतिरिक्तं मन्यते तदा भगद्धर्मएव स्वधर्मः”। ये फ्लेक्सिबिलिटी और ओपननेस् श्रीमहाप्रभुजीके स्कीमकी वाकु अपन एप्रिशिएट् नहीं कर पावें हैं। अपन या तो ये सोचे हैं के वर्णाश्रमके साथ हमारो स्नान-सूतकको सम्बन्ध नहीं है या अपन ये सोचे हैं के “सैंया भये कुतवाल” अब तो अपन पुष्टिमार्गी हो गये, अब जो करनो होवे सो करो। ये दोनों बात श्रीमहाप्रभुजीकु मान्य नहीं है। ये बात आपने पुष्टिमार्गीकु कही है के याकु तुम भूल मत जईयो।

जब पुष्टिमार्गकी धर्मार्थकाममोक्षकी चतुष्टयी आयी तब...मैं सब बातकु क्लब् करके कह रह्यो हूं...भक्ति जब आयी तब भक्तिवर्धिनीमें श्रीमहाप्रभुजीने पाछी ये बात कही के “बीजदाढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः, अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णम्”। स्वधर्मको त्याग मत करो। यहां स्वधर्मको पुष्टिमार्गकेलिये रोल् बतायो। स्वधर्मको त्याग नहीं करनो पर वाको अनुष्ठान कैसे करनो? श्रीमहाप्रभुजीकी पॉलिसी ये है के भगवद्धर्मके अविरोधसुं स्वधर्माचरण करो अथवा भगवद्धर्मके अङ्गतया स्वधर्माचरण करो। तब वैदिक स्वस्तिकको इंटिग्रेटेड् हॉल् अपन भक्तिमें इन्कोर्पोरेट् कर सकेंगे जो श्रीमहाप्रभुजी शैव-वैष्णवकु कह रहे हैं वाके प्रति खुदकी भी प्रतिबद्धता प्रकट कर रहे हैं।

याही तरहसूं अर्थपुरुषार्थ के जो अपनो स्वार्थ है वो सर्वसमर्थके अविरोधसूं अथवा वाकुं सर्वसमर्थार्थ करो। याको

“आजीविकया व्यापृतं चित्तं पुनः भगवति

योजनार्थम् अनिषिद्धेन उपायेन जीवनं सम्पादयेत्”

ऐसे श्रीमहाप्रभुजीने अर्थपुरुषार्थके बारेमें अपनी पॉलिसी बताई है। अर्थकी चिन्ता आदमीकु ले डूबे है। वर्ल्डवाइड् क्राइसिस् आई, अब मेरो क्या होयगो? “प्रभुः सर्वसमर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत्”। ऐसे श्रीमहाप्रभुजीने सर्वसमर्थके अविरोधितया अथवा अंगतया अर्थपुरुषार्थको अनुष्ठान श्रीमहाप्रभुजीने बतायो है। यहां निश्चिन्ततापे भार है “ततो निश्चिन्ततां व्रजेत्”।

याके बाद कामपुरुषार्थकी बात आई। जाके बारेमें काम होवे वाकु ‘कान्त’ या ‘कान्ता’ कह्यो जावे है। अपने कान्त भगवान्के अविरोधमें तुम अपनो कामपुरुषार्थ सम्पादित करो या वाके अङ्गतया कामपुरुषार्थको सम्पादन करो। ये बात श्रीमहाप्रभुजीने

चतुःश्लोकीके “यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः...” यामें कही है. यदि तुमने गोकुलाधीशकी कामना हृदयमें धारण करी तो कोई भी लौकिक या वैदिक कामना वाकु सुपरसीड कर नहीं पायेगी, वाके सबोर्डिनेट रहके तुम तुम्हारे सारे काम पूरे कर सकोगे. यदि तुमने वाकी कामना करी तो वाके पार्टमें सरी अन्य कामनाएं तुम्हारी पूरी हो जायेंगी. यहां आप बहुत गार्डेड शब्दनोंमें ये बात कह रहे हैं पर निरोधलक्षण और पञ्चपद्यानि में संगकाम, भार्याकाम, धनकाम, गृहकाम, पुत्रकाम सब कामकु भगवत्कामके अङ्ग बनाके वाको अविरोधितया सम्पादन करो. या तरहसु श्रीमहाप्रभुजीने पुष्टिमार्गीय कामपुरुषार्थकु रीडिफाईन कियो है.

याही तरहसुं मोक्षके बारेमें भी श्रीमहाप्रभुजी ये ही आज्ञा कर रहे हैं के तुमकु जा तकलीफसुं मुक्त होनो होवे, तुम मुक्त हो सको हो पर ध्यान रखो के “**स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यम् इति मे मतिः**”. स्मरण-भजन छूटे नहीं वाको ध्यान रखो. मुक्तिकु भगवद्भजन-स्मरणाङ्गतया लेनेको दृष्टिकोण श्रीमहाप्रभुजीने बतायो है.

यहां ये प्रश्न उठ सके है के धर्मार्थकाममोक्षकु भक्तिमें इन्कोर्पोरेट् क्यों किये. वाको करण ये है के श्रीमहाप्रभुजी यहांसु निरोधकी भूमिका बांध रहे हैं. जब तुम भक्तिमें धर्मार्थकाममोक्षकु इन्कोर्पोरेट् कर पाओगे तो तुम्हारी भक्ति शुद्ध हो जायेगी. तब तुम प्रपञ्च विस्मृति पूर्वक भगवदासक्त हो पाओगे. नहिं तो तो तुम्हारी अविशुद्ध भक्ति ही बाधक बन जायेगी. क्योंकि तुम भक्तिकी नाव अलग चला रहे हो और धर्मार्थकाममोक्षकी नाव अलग चला रहे हो. नाव थोड़ी भी दूर छितराई और तुम डूबे. यासु इनकु छुट्टी-छुट्टी मत तैराओ. धर्मार्थकाममोक्षको अनुष्ठान भक्तिके अङ्गतया या अविरोधी बनाके करोगे तो नाव दो नहीं रहेगी, एक ही रहेगी के जो तुमकु निरोध तक ले जानेमें सक्षम होयगी.

या तरहसुं अपन देख सके हैं के भक्ति आपकु सुख देगी और धर्मार्थकाममोक्षको अनुष्ठान दुःखाभावको काम करेगो. पर यदि धर्मार्थकाममोक्षकु भक्तिको पार्ट नहीं बनायो तो वो भक्तिमें दुःख पैदा करेंगे “**लोकार्थी चेत् भजेत् कृष्णं क्लिष्टो भवति सर्वथा**”. पर जैसे ही इनकु भक्तिके पार्ट बनाये ऐसे ही ये भक्तिके अविरोधी या अङ्ग बन जानेके कारण दुःखकु दूर करनेवाले हो जायेंगे और भक्ति सुखोत्पादिका बन जायेगी. ये स्कीम है.

भक्तिवर्धिनीमें श्रीमहाप्रभुजीने पात्रानुसार साधना बताई है. दृढ व्यावृत्तकु त्याग और श्रवण-कीर्तन बताये. दृढ अव्यावृत्तकु सेवा-स्मरण बताये. अदृढ व्यावृत्तकु श्रवण-कीर्तन बताये. और जो त्याग करने समर्थ नहीं है, सेवा करने समर्थ नहीं है और श्रवण-कीर्तन करने भी समर्थ नहीं है वाकु क्या करनो? वाकु हताश नहीं होनो, वाकु भक्तिवर्धिनीको सम्यक्तया अध्ययन करनो चाहिये. अपने आपको भक्तिवर्धिनीके उपदेशनसुं अनुप्राणित करो. यदि ये करोगे तो भी तुम्हारे भीतर भक्तिको भाव बढ सके है. श्रीमहाप्रभुजी या कल्पकु जघन्यकक्षाको नहीं कह रहे हैं. बात समझो के सेवाकर्ताकी सिद्धि : **“मानसी सा परा मता”** कही है और यहां **“तस्यापि स्यात् दृढा रतिः”** कही है. यहां सेवाकथा अथवा केवल कथा या केवल सेवा अथवा भक्तिवर्धिनीके पारायणसु भी दृढा रति प्राप्त हो सकेगी. यहां जघन्यको प्रश्न नहीं है, अधिकारभेद है. हर अधिकारी उत्तम हो जायेगो और हर अधिकारी जघन्य हो जायेगो. ये रिलेटिव् टर्म है. पर जो बिचारो भक्तिके एंगलसु जघन्य नहीं है पर सेवा-कथाके एंगलसु वो जघन्य है. क्योंकि वासु ये दोनों नहीं निभ पा रहे हैं के जो भक्तिवर्धिनीके उपदेशको मुख्य उपदेश है. पर ऐसो व्यक्ति क्या भक्तिमान् नहीं हो सके है? ये ड्रास्टिक् ईशु है. श्रीमहाप्रभुजी याकु अच्छी अवस्था नहीं मान रहे हैं पर जो या स्थितिमें है वाकु भी आशा बंधा रहे हैं के सिद्धान्तकु अच्छी तरहसु समझ के भक्ति कैसे बढे है. या अवस्थामें जो है वाके अंदर भी दृढ-अदृढ बीजभाव और व्यावृत्त-अव्यावृत्त के भेद हो सके हैं. या अधिकारीकु श्रीमहाप्रभुजी त्याग, सेवा और कथा के अतिरिक्त तीसरो उपाय बता रहे हैं जैसे भगवानने गीतामें छेल्ले कही के **“सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज”**. तू चिन्ता मत कर, तोसु त्याग हो नहीं पा रह्यो है, तोसु सेवा-कथा निभ नहीं पा रहे हैं. तू मेरे उपदेशकी शरणमें आ, उनको अच्छी तरहसु अध्ययन कर, चिन्तन कर, मनन कर, सम्यक्तया अध्ययन कर. तेरी भक्ति दृढ हो जायेगी. जा दिन भक्ति दृढ हो जायेगी तब भक्ति अपनी केर खुद लेगी, तोकु वाकी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं पडेगी. अभी तेरे सामने समस्या भक्ति दृढ करनेकी है. वाकेलिये तीसरो उपाय है. विवेकधैर्याश्रयमें भी **“एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा चा परिकीर्तयेत्”** कह्यो वो भी या तरहको ही उपाय है. ऐसी ही बात यहां भी श्रीमहाप्रभुजी कर रहे हैं के तू मेरे उपदेशके ध्यान दे के मैं क्या करनो चाह रह्यो हूं, मैं तोसु क्या अपेक्षा रख रह्यो हूं वाको तू ध्यान धर. अपने आप तेरे भीतर कृष्णकु स्नेह करनेकी इच्छायें पैदा हो जायेंगी **“तस्यापि स्यात् दृढा रतिः”**. याको नेट् रिझल्ट क्या होयगो? जैसे तनुवित्तजासुं स्वतः मानसी सिद्ध होयगी ऐसे यहां परतः दृढा रति



सिद्ध होयगी. बालबोध याद करो. ये परतः उपाय है. “आचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति”वालो ये परतः भक्तिसिद्धिको उपाय है. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा कर रहे हैं के तु यहांसु शुरु कर तोकु दृढा रति सिद्ध होयगी के जो तोकु निरोध तक ले जा सके है. ये भक्तिवर्धिनीके उपदेशको होराइझन है.

वाके बाद निरोधलक्षण ग्रन्थपे चर्चा भई. या सन्दर्भमें प्रिन्सिपल् स्टेटमेंट है : भगवानेव हि फलम्. वाको सबोर्डिनेट् स्टेटमेंट् है : गुण-स्वरूपाविर्भाव-प्रकारानुकारिणी सेवा-कथा. कल “भगवानेव हि फलं स यथाविर्भवेत् भुवि, गुण-स्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत्” की चर्चामें ‘यथा-तथा’पे भारी चर्चा भई. पर याकु या तरहसु सोचो के भगवान् गुण या स्वरूप के भेदसुं तुम्हारे केसमें जैसे प्रकट होंगे वा प्रकारसुं तुमकु यातो सेवाकथा अथवा कथा होने लग जायेगी. वो सेवाकथा अथवा कथा तुम्हारेलिये फलरूप होयगी. माने, भगवान् यदि गुणतः आविर्भूत भये तो तुम्हारी कथा फलात्मिका हो जायेगी और स्वरूपतः यदि आविर्भूत भये तो सेवाकथात्मिका भक्ति फलात्मिका हो जायेगी. “गुणेष्वविष्टचित्तानां सर्वदा मुरवैरिणो, संसारविरहक्लेशौ न स्यातां हरिवत्सुखम्” ये बात या अर्थमें बताई है. ‘यथा-तथा’में श्रीमहाप्रभुजी सेवाकथाकु फलात्मकतया बतानो चाह रहे हैं ये वाको मुख्य रहस्य है. गुणसु यदि भगवान् प्रकटे तो कथा फलात्मिका बन जायेगी और स्वरूपसु प्रकट तो सेवा फलात्मिका बन जायेगी.

निरोध क्या है? प्रपञ्चे क्रीडनं हरेः. या प्रपञ्चमें भगवान् यदि तुम्हारे साथ गुणसु प्रकट होके क्रीडा कर रह्यो है तो कथाके द्वारा तुम्हारे भीतर प्रेम-आसक्ति-व्यसन प्रकट होके तुम कृतार्थ हो जाओगे. और यदि तुम्हारे गृहरूप प्रपञ्चमें ठाकुरजी सेव्य बनके प्रकट भये हैं तो वो तुम्हारे द्वारा करी जाती सेवाकु फलात्मिका बनादेंगे. यामें ध्यान दो, जब तुम्हारे घरमें ठाकुरजी पधारे तब तुम्हारो साधननिरोध तो सिद्ध हो गयो. पर उन ठाकुरजीमें तुम्हारो साध्यनिरोध तब होयगो के जब तुम ठाकुरजीकी सेवा करोगे. यालिये श्रीमहाप्रभुजीने निरोधस्कन्धकी सुबोधिनीमें ये आज्ञा करी के भगवान्को प्रपञ्चमें प्रकट होनो साधननिरोध है और प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्त हो जानो फलनिरोध है. तो जब तुम्हारे घरमें ठाकुरजी पुष्ट होके बिराजे तो वो ठाकुरजीको साधन निरोध हो गयो. तुम्हारे गृहरूपी प्रपञ्चमें ठाकुरजीने क्रीडा शुरु करदी है. अब तुम जब वा ठाकुरजीके संग प्रपञ्चविस्मृति पूर्वक आसक्ति साध लोगे

तब तुम्हारे फलनिरोध हो जायेगो. या स्थितिमें सेवाकथा मानसीको व्यसन भी हो जायेगी अथवा गुणरूप होयगी तो केवल व्यसन होयगी अथवा यदि ये दोनों नहीं भये तो तीसरो विकल्प श्रीमहाप्रभुजी त्यागको एक ओर बता रहे हैं के तब फिर तुमसु घर छूट जायेगो. यहां ये चर्चा भई हती के फलमें त्याग कहांसु आ गयो. त्याग या लिये आयो क्योंके **“धनं सर्वात्मना त्याज्यम्...संगः सर्वात्मना त्याज्यः...गृहं सर्वात्मना त्याज्यम् तच्चेत्यक्तं न शक्यते कृष्णार्थे तन्नियुञ्जीत”**. अब यदि कृष्णार्थ विनियोग नहीं हो रह्यो है तब क्या करनो? श्रीमहाप्रभुजी कह रहे हैं के यदि तुम्हार भक्ति दृढ है तो तुमसुं त्याग हो ही जायेगो. **“पतिसुतादिरार्तिदैः किम्?”** ये भाव तुम्हारे भीतर जग जायेगो. त्यागकी मनोवृत्ति तुम्हारे भीतर स्वतः पनप जायेगी. ये बात निरोधलक्षणमें बताई है.

दूसरी या ग्रन्थकी ध्यान देने लायक बात ये है के या ग्रन्थके चार हिस्सा हैं. एक तो आदर्श निरोध के जो शुरुआतके श्लोकनमें बतायो है. याके बाद श्रीमहाप्रभुजीने निरोधके उपदेशक और उपदेश्य को निरूपण कियो है. वाके बाद आपने प्रेक्टिकल् निरोधको स्वरूप बतायो है के जाको मोडल वो आईडियल् निरोध है. और अन्तिम श्लोक **“नातः परतरो मन्त्रो...”**में श्रीमहाप्रभुजीने कन्क्लूड कर दियो है. निरोधलक्षणकी स्कीममें थोड़ा व्यत्यय भयो है वो या लिये के आईडियल् निरोधकु बोलनेकेलिये श्रीमहाप्रभुजीको हृदय अतीव उत्कंठित है. यासु वाकु आपने पहले बोल दियो और उपक्रम बीचमें कियो है. या बातकु समझनो जरूरी है अन्यथा तो दशरा-मशरा हो सके है. तो ब्रजस्थनिरोधलीलाभावनके उपदेशसुं गृहस्थप्रपञ्चमें क्रीडापर भगवन्मूर्तिकी सेवा-कथापायमें निरोध ये या ग्रन्थको मुख्य श्रस्ट है.

दूसरी बात यहां समझनेकी ये है के **“यच्च दुःखं यशोदाया...”** और **“...तत्सुखं समभूत् तन्मे”** में जो सुख-दुःखकी बात है वो सुख-दुःख इन्द्रिय सम्बन्धि हैं. पर प्रभुसम्बन्धि होनेके कारण वो आनन्दात्मक हैं. श्रीमहाप्रभुजी जाने हैं के अपनी डिमांड क्या है. **“सुखं मे भवतु, दुःखं माऽभूत्”** ये अपनी डिमांड है. पर कौनसे तरहको सुख अपनकु होनो चाहिये? **“गोकुले गोपिकानान्तु सर्वेषां ब्रजवासिनां, यत्सुखं समभूत् तन्मे भगवान् किं विधास्यति”** या तरहको सुख होनो चाहिये. कौनसी तरहको दुःख अपनकु नहीं होनो चाहिये? लौकिक दुःख अपनकु नहीं होनो चाहिये पर **“यच्च दुःखं यशोदायाः...गोपिकानां च यद्दुःखं तद्दुःखं स्यात्**

मम क्वचित्” ये दुःख तो होनो ही चाहिये. ये कैसी बात है. जैसे पुराना जमानेमें जख्मके ऊपर डाम दियो जातो. डाम इतनो दूखतो के जख्मको दर्द भुला जातो. ऐसे यदि अपनकु भगवान्को दुःख होने लग गयो तो संसारदुःख अपने आप मिट जायेगो. बडे दुःखके अंदर छोटे दुःख दुःखरूप नहीं रह जावे हैं. श्रीमहाप्रभुजीने सबसु बडो दुःख ब्रह्मसम्बन्धमें याद दिवायो है के सहस्र परिवत्सरसु तुम प्रभुके साथ अपनो सम्बन्ध भूल गये हो और इन छोटे-छोटे दुःखनकु लेके रो रहे हो के “कढी न खाधी हाय हाय, ढोकळां न खाधां हाय-हाय...!” बडे दुःखकु याद करो, छोटे दुःख अपने आप भुला जायेंगे! या लाईटमें निरोधलक्षण ग्रन्थ समझोगे तो तकलीफ नहीं होयगी.



## પુષ્ટિમાર્ગીય ફલ 'પંચપદ્યાનિ'ના સંદર્ભમાં

કુંજબાળા

ઉપક્રમ :

“સ એકાકી ન રમતે, સ દ્વિતિયમૈચ્છત્. એકોડલં બહુસ્યાં પ્રજાયેય” શ્રુતિ કહે છે કે રમણેચ્છાથી એકમેવ અદ્વિતીય બ્રહ્મ સર્વ રૂપ થયા. સચ્ચિદાનંદના નામરૂપકર્માત્મક વિસ્તાર રૂપે જગત અને જીવ પ્રકટ થયા. એકવિધતા અનેકવિધતામાં પરિણમી. એક શ્વેતરંગ સપ્તરંગોમાં લહેરાવા લાગ્યો. આ રમતને રસાળ બનાવવા જડ સૃષ્ટિમાંથી ચિત્ અને આનંદ તિરોહિત રહ્યાં અને જીવમાં સત્ ચિત્ બન્ને પ્રકટ રહ્યાં અને આનંદાંશ તિરોહિત રહ્યો. “યો યદ્ અંશ સ તં ભજેત્” પ્રમાણે સંતાકૂકડીની રમત શરૂ થઈ. આનંદની શોધ અને એ જીવનું જીવનતાત્પર્ય બની ગયું.

પુષ્ટિજીવનું ફળ :

વરણેચ્છાથી જીવો બે પ્રકારના પ્રકટ થયા ૧. દૈવી અને ૨. આસુરી. તેમના દૈવી જીવો પણ બે પ્રકારનાં થયા. ૧. પુષ્ટિજીવ, ૨. મર્યાદા જીવ. આમાંથી જે જીવ આનંદ પ્રાપ્તિની તૃષ્ણા સહિત આનંદ ધનની શોધમાં લાગ્યા તે પુષ્ટિજીવ કહેવાય. સદાનંદ સાથે રમણ, એટલે કે વિવિધ પ્રકારે પ્રભુના સમ્બન્ધમાં રહેવું. પ્રભુના થઈ રહેવું. એટલે કે સેવા કથારૂપ ભક્તિમાં જે રહી પોતાના જીવનની સાર્થકતા સમજનારા જીવ તે ‘પુષ્ટિજીવ’ કહેવાય. આવા જીવને “ભગવાનેવ હિ ફલ” માં જ જીવનની ફલાનુભૂતિ લાગે છે. આ પુષ્ટિજીવ સ્વતન્ત્રયા અહંતા મમતાથી સ્વમાં કે અન્ય જડ જીવમાં નથી અટવાતા પરંતુ સ્વસ્વરૂપ અને ભગવત્ સ્વરૂપનું જ્ઞાન અને તેમની વચ્ચેના તાદાત્મ્યના ભાનથી તેમનો સુદૃઢ સર્વોત્તોધિક સ્નેહ પ્રભુમાં પ્રકટ થાય છે. પોતે પ્રભુમાં ઓતપ્રોત રહે (અને પ્રભુ પોતાનામાં) આ જ તેને જીવનની ફલાનુભૂતિ લાગે છે. આ ઓતપ્રોતતા સ્વરૂપાસક્તિ રૂપે પ્રકટ થાય કે ગુણાસક્તિ રૂપે, સેવાના કે અને કથાના માધ્યમથી હોય, અવતારકાલ હોય કે અનવતારકાલ, ભગવદ્સમ્બન્ધમાં રહેવું, ભગવદ્નુભૂતિ કરવી એમાં જ તેને જીવનની પરમ ફલરૂપતા લાગે છે.

ફળમાં વૈવિધ્ય :

ભક્તિના માર્ગ પર ચાલીને ભગવાનને જ ફલ રૂપે અનુભવતા જીવની ફલાનુભૂતિના વિવિધ પ્રકારો વિવિધ નામે શ્રીઆચાર્યશ્રી એ વિવિધ ગ્રન્થોમાં સમજાવ્યા છે. ભગવાન્ દ્વારા પ્રદત્ત ભાવો અનુસાર ભગવદ્નુભૂતિના આ અનેક પ્રકારોમાં ભક્તોને

ફલરૂપતાની પ્રતીતિ થાય છે. ભગવદ્નુભૂતિના આ અનેક પ્રકારો ભગવદાશ્રય/પ્રપત્તિ, ભક્તિ, સર્વાત્મભાવ, નિરોધ, ભજનાનંદ, વ્યસન, સંયોગાનુભૂતિ ઈત્યાદિ પ્રકારે સમજાવ્યા છે. આમાંના ઘણાં ફલ પોતે ફલરૂપ હોવા છતાં, બીજી ફલાનુભૂતિના સંદર્ભમાં સાધનતયા પ્રતીતિ થાય છે. દા.ત. પ્રેમ, આસક્તિ, વ્યસન, સર્વાત્મભાવ, અલૌકિક સામર્થ્ય... આમાંની દરેક અવસ્થા તે પછીની અવસ્થાના સંદર્ભમાં સાધન રૂપ છે. અને પોતે ફલ રૂપ તો છે જ, લીલાગત વિવિધતા અનુસાર ફલાનુભૂતિના પ્રકારો તો ભિન્ન હોવાના જ પણ આ સૌ સાચા રસ્તે પોતાના મુકામ તરફ પ્રયાણ કરવા લાગી ગયેલા જીવો છે, રમણેચ્છાના ગાન સાથે તાલ આપવા જઈ રહેલો આ સમુદાય છે.

ષોડશગ્રન્થમાં શ્રીઆચાર્યચરણ આ વિવિધ ફલોનું નિરૂપણ કરી રહ્યાં છે જેમ કે “માનસી સા પરા મતા”, “સર્વદા સર્વભાવેન ભજનીયો વ્રજાધિપ:” “યદા સ્યાદ્ વ્યસનં કૃષ્ણે કૃતાર્થ: સ નિગદ્યતે” આ ફલપર્યંત પહોંચવાના પ્રકારોનું પણ નિરૂપણ કરી રહ્યાં છે. અને આ ફલપર્યંત પહોંચવામાં આવતા સ્ખલન સ્થાનોનો નિર્દેશ પણ કરી રહ્યાં છે. દા.ત. “ચિન્તા કાઠપિ ન કાર્યા” “વિવેક ધૈર્ય સતતં રક્ષણીયે તથાશ્રય:” તે જ પ્રમાણે નિરોધલક્ષણ, સેવાફલમાં ફલાનુભૂતિના ઉન્નત શિખર પર ભગવદ્ રમણનો પ્રકાર પણ બતાવી રહ્યાં છે.

### નિજજનોના અર્થે ષોડશગ્રન્થોનું પ્રાકટ્ય :

શ્રીભાગવતજી પણ આ જ રીતે ખૂબ વિસ્તારથી ભગવત્સ્વરૂપ, ગુણ, લીલા, જીવનું કર્તવ્ય તેમાં પ્રવૃત્ત થવાના ઉપાય અને આવા પ્રવૃત્ત જીવો સાથેના વિવિધ પ્રકારના ભગવદ્ રમણની કથાનું પાન કરાવી રહ્યાં છે. પરંતુ શાસ્ત્રની રીતે ધીર ગંભીર વાણીમાં ! જ્યારે અહીં ષોડશગ્રન્થમાં સ્વકીય સેવકો ઉપર અત્યંત કૃપા વરસાવતા શ્રીઆચાર્યશ્રી પોતાનો સેવક યોગ્ય માર્ગે અને સુગમતાથી માર્ગક્રમણ કરી શકે પોતાના અધિકારાનુસાર ભગવત્સમ્બન્ધનો આનંદ પ્રાપ્ત કરી શકે તે માટે ફક્ત અંગુલિનિર્દેશ નથી કરતાં, પરંતુ આ વત્સલપિતા જીવની અંગુલિ ગ્રહી તેને તેના નિર્ધારિત મુકામે પહોંચાડવા ઉદ્યત છે. નિજજનોને પુષ્ટિપથ પર ચાલવામાં આવતી મુશ્કેલીના ઉપાય રૂપે ષોડશગ્રન્થનું પ્રાકટ્ય થયું છે.

શ્રીમહાપ્રભુજીએ બ્રહ્મસૂત્રની વ્યાખ્યા ‘અણુભાષ્યમાં’ કરી. શ્રીભાગવતજીની વ્યાખ્યા ‘શ્રીસુબોધિનીજી’રૂપે પ્રકટ કરી. ભાટ્ટ અને શાંકર મતો સાથેનો શાસ્ત્રાર્થ ‘પત્રાવલંબન’ રૂપે પ્રકટ કર્યો. ‘તત્ત્વાર્થદીપ નિબંધના’ શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં આપનો ગીતાજીના સંદર્ભનો મત પ્રકટ થયો. આ જ નિબંધના ‘સર્વનિર્ણય પ્રકરણ’માં ગીતાજી સિવાયના ઈતર શાસ્ત્રના સંદર્ભમાં આપનો મત દર્શાવ્યો છે. આ કોઈ ગ્રન્થમાં

શ્રીઆચાર્યચરણનું આ “ઈતિ શ્રી વલ્લભો બ્રવીત્” વાળું સ્વરૂપ પ્રકટ નથી થતું જે ષોડશગ્રન્થમાં થઈ રહ્યું છે. પુષ્ટિમાર્ગીય દીક્ષિતને પુષ્ટિપથ પર ચાલતા આવતી કઠિનાઈ દૂર થાય. માર્ગક્રમણ સુગમતાથી થાય અને પુષ્ટિજીવ પોતાના અધિકારાનુસાર ફલ પ્રાપ્ત કરી શકે તે માટે આપે ષોડશગ્રન્થની રચના કરી.

### ષોડશગ્રન્થની પરસ્પર સંગતિ :

ષોડશગ્રન્થ જુદાં-જુદાં કૃપાપાત્ર વૈષ્ણવોના માર્ગદર્શન માટે જુદાં-જુદાં સમયે શ્રીઆચાર્યજીએ પ્રકટ કર્યા છે. વૈષ્ણવો પણ ભિન્ન-ભિન્ન અધિકારવાળા અને તેમની સમસ્યાઓ પણ જુદી-જુદી. આમ હોવા છતાં આ સર્વપ્રકરણગ્રન્થો એક કર્તૃક હોવાથી અને આપશ્રી માર્ગના આચાર્ય હોવાથી આ માર્ગ પર ચાલવા ઉદ્યત થયેલા પથિકને તે ‘બાલક’ હોય ત્યારથી ‘સેવાફલ’ સુધીનું માર્ગક્રમણ સુગમતાથી થાય તે માટે પ્રકટ કર્યા હોવાથી આ ગ્રન્થોમાં પરસ્પર સંગતિ સમજવી જોઈએ. આ દૃષ્ટિથી જે ક્રમમાં ષોડશગ્રન્થ છે તે ક્રમમાં તેમને કડીબદ્ધ જોવાથી એક ગ્રન્થમાં અનુત્તર રહેવા પ્રશ્નો કે અધૂરા રહેલા સંદર્ભ બીજા ગ્રન્થમાં મળી આવે છે. દરેક ગ્રન્થ પોતાની રીતે સ્વતન્ત્ર અને પૂર્ણ હોવા છતાં પૂર્વાપર સંદર્ભની અપેક્ષાયુક્ત છે. ગ્રન્થને આ રીતે સમજવાથી તેની સંગતિ બરાબર સમજાય છે. અને તેમની પરસ્પર પૂરકતા સમજાય છે. તે જ પ્રમાણે શ્રીમહાપ્રભુજીએ ષોડશગ્રન્થમાંના કેટલાક ગ્રન્થો સેવા કરનાર સેવકના માર્ગદર્શનાર્થે પ્રકટ કર્યા છે. જેમ કે સિદ્ધાન્તમુક્તાવલી, સિદ્ધાન્તરહસ્ય વગેરે. અને કેટલાક ગ્રન્થો મુખ્યત્વે કથા પ્રણાલી દ્વારા ભક્તિમાર્ગ ઉપર અગ્રેસર થવા ઈચ્છુક સાધકોના માર્ગદર્શનાર્થે પ્રકટ કર્યા છે દા.ત. જલભેદ, પંચપદ્યાનિ.

### પંચપદ્યાનિમાં પ્રકટ થતી ફલમુખાધિકારિતા :

પ્રસ્તુત નિબંધનો વિષય ‘પંચપદ્યાનિ’ એ ‘જલભેદ’ અને ‘સંન્યાસનિર્ણય’ની સાથે પૂર્વાપરસમ્બન્ધથી જોડાયેલ ગ્રન્થ છે. ગ્રન્થ આમ તો નાનો ફક્ત પાંચ શ્લોકનો છે. તેના પ્રથમ શ્લોકમાં મુખ્ય ભક્તિમાર્ગીય શ્રોતાનું અને અંતિમ શ્લોકમાં ઉત્તમ પ્રપતિ માર્ગીય શ્રોતાનું વર્ણન છે, અવશિષ્ટ શ્લોકમાં અમુખ્ય વિવિધ અધિકારીનું નિરૂપણ છે. આ રીતે આ ગ્રન્થમાં સ્પષ્ટતયા પુષ્ટિમાર્ગીય ફલની ચર્ચા કરવામાં નથી આવી, પરંતુ આમાં વર્ણિત મુખ્ય/ઉત્તમ શ્રોતામાં કેવી ફલમુખાધિકારિતા પ્રકટ થઈ રહી છે, એટલે કે શ્રવણ ફલાત્મક થાય ત્યારે તેનું સ્વરૂપ કેવું હોય અને તેની ફલાનુભૂતિનો પ્રકાર કેવો હોય તે આ અધિકારીના લક્ષણો પરથી સમજીશું.

### ‘પંચપદ્યાનિ’ની પૂર્વાપર ગ્રન્થો સાથે સંગતિ :

ફક્ત પાંચ શ્લોકના આ નાનકડા ગ્રન્થનું ષોડશગ્રન્થના ફલક ઉપર સ્થાન જોતાં

તેનો સંદર્ભ પૂર્વમાં ભક્તિવર્ધિની અને ઉત્તરમાં નિરોધલક્ષણ સુધી જોવા મળે છે. ભક્તિવર્ધિનીમાં ભક્તિબીજ દાહ્યર્થે અવ્યાવૃત્તે શ્રવણકીર્તન અને પૂજા કરવા જોઈએ. વ્યાવૃત્તે ભગવત્સેવાની સુકરતા ન હોય તો ભગવત્કથા શ્રવણકીર્તનાદિમાં પ્રવૃત્ત રહેવું જોઈએ તેમ કહ્યું. જેનો બીજ ભાવ દઢ છે તેણે સેવાર્થે અનુપયોગી ગૃહના ત્યાગ પૂર્વક શ્રવણકીર્તનાદિમાં પ્રવૃત્ત થવું આ ભક્તિપ્રવૃદ્ધિનો ઉપાય છે, તેમ પણ સૂચવ્યું ગૃહ ત્યાગ ન કરી શકે તેણે ભગવત્સેવાકથાપરાયાણ ભગવદીયની સેવામાં પરિચર્યા કરવી અને ભગવદ્કથામાં શ્રવણાર્થ સંમિલિત થવું એમ પણ કહેવામાં આવ્યું. આ રીતે જુદાં-જુદાં અધિકારી માટે સેવા અને કથાનું અને સેવાનો નિર્વાહ શક્ય ન હોય ત્યાં કેવળ કથાનું વિધાન ભક્તિમાર્ગમાં અગ્રેસર થવા માટે કરવામાં આવ્યું. શ્રવણ અને કીર્તન ભક્તિ પરસ્પર સંવાદથી સિદ્ધ થતી હોવાથી, જો ભાવાનુરૂપ, સમાન, શીલ, ગુણ, વ્યસનવાળો, સંગ ન મળે તો ભક્તિ બીજ વૃદ્ધિગત થવાને બદલે ખણિડત થાય અને વક્તા શ્રોતાના રસપ્રાકટ્ય અને રસપ્રવૃદ્ધ થવાને બદલે કથામાં રસાભાસ થાય. આવું ન થાય અને પુષ્ટિજીવ યોગ્ય વક્તા પાસેથી કથા શ્રવણ કરી શકે અને યોગ્ય શ્રોતાને કથા સંભળાવી શકે અને આ રીતે કીર્તન શ્રવણથી તેમની ભક્તિનો વિકાસ થઈ શકે તે માટે ‘જલભેદ’ જેમાં વક્તાના અધિકારનું નિરૂપણ છે અને ‘પંચપદ્યાની’ જેમાં શ્રોતાના અધિકારનું નિરૂપણ છે, તે બે ગ્રંથો આવી રહ્યાં છે. આ રીતે જલભેદ અને ‘પંચપદ્યાની’માં નિરૂપિત અધિકારી વક્તા શ્રોતાએ કરેલા ગુણગાન શ્રવણાદિથી જેની ભક્તિ પ્રવૃદ્ધ થઈ છે તેને ભગવત્ સેવામાં અનુપયોગી ગૃહ ભક્તિમાં બાધક લાગે છે. જ્યાં સેવા-દર્શન-સ્પર્શનનું સુખ નથી મળી રહ્યું અને જ્યાં રહેવાથી ભગવત્ વિપ્રયોગ જન્ય દુઃખાનુભૂતિમાં પણ ખૂબ વ્યવધાન આવે છે એવા ગૃહનો **“વિરહાનુભવાર્થતુ પરિત્યાગઃ પ્રશસ્યતે”** એ નિર્ણય બતાવ્યો. આમ ગૃહ ત્યાગ માટે સમર્થ અને તત્પર એવા ભક્તે ત્યાગ કઈ અવસ્થામાં, કઈ ભાવના સાથે અને કયા લક્ષ્યની પ્રાપ્તિ માટે કરવો જોઈએ એ ‘સંન્યાસનિર્ણય’ ગ્રંથમાં સમજાવ્યું, તે જ પ્રમાણે ભક્તિવર્ધિની કથિત પ્રવૃદ્ધાભક્તિ જેની થઈ છે તેની ફલાનુભૂતિનો પ્રકાર નિરોધલક્ષણમાં બતાવ્યો. ‘પંચપદ્યાની’માં શ્રોતાની ફલમુખઅધિકારીતાના જે લક્ષણો સમજાવ્યા તે નિરોધલક્ષણમાં નિરોધફલની અનુભૂતિના ક્રમિક વિકાસના સોપાનરૂપે દર્શાવ્યા છે. આ રીતે ભક્તિવર્ધિનીથી નિરોધલક્ષણ સુધીના ગ્રંથની એકસૂત્રતા સમજાય છે.

આ પાંચે ભૂમિકા ઉપર હવે આપણે આપણા નિબંધના વિષય ‘પંચપદ્યાની’ના સંદર્ભમાં પુષ્ટિફલ કેવી રીતે પ્રકટ થાય છે તે ટીકાઓના આધારે સમજવાનો પ્રયત્ન કરીશું.

‘પંચપદ્યાની’ના પ્રથમ શ્લોકમાં મુખ્યાધિકારી શ્રોતાની અધિકારિતા તેની ચાર

પરસ્પર સંગત અને પૂરક ફલાનુભૂતિ રૂપે વર્ણન કરવામાં આવે છે.

**મુખ્યાધિકારી શ્રોતાની ફલાનુભૂતિનો પ્રકાર :**

**“શ્રીકૃષ્ણરસવિક્ષિપ્તમાનસા રતિવર્જિતાઃ/અરતિવર્જિતાઃ ॥**

**અનિર્વૃતાલોકવેદે મુખ્યાઃ તે શ્રવણોત્સુકાઃ” ॥**

૧. જેમનું માનસ શ્રીકૃષ્ણરસથી વિક્ષિપ્ત છે, ૨. જે રતિ/અરતિ વગરના છે, ૩. જેઓ લોક કે વેદમાં આનંદની અનુભૂતિ રહિત છે, ૪. ભગવત્કથાના શ્રવણ માટે તેઓ આતુર/ઉત્કણ્ઠાયુક્ત છે.

આ ગ્રંથને એટલે કે શ્રોતાની ફલમુખઅધિકારિતાને અથવા તેની ફલાનુભૂતિની અવસ્થાને શ્રીહરિરાયજી અને શ્રીપુરુષોત્તમજી આ બન્ને ટીકાકારો સમજાવી રહ્યાં છે.

**શ્રીહરિરાયજી :** શ્રીહરિરાયજી જલભેદ સાથે આ ગ્રંથની સંગતિ બતાવતા કહી રહ્યાં છે કે, શ્રોતા જેવો અધિકારી હશે તે પ્રમાણે વક્તાના વાક્ય દ્વારા તેના ભાવને ગ્રહણ કરે છે. તેથી શ્રવણ કીર્તનાદિ દ્વારા ભક્તિના વિકાસના માર્ગે ચાલનારે ફક્ત વક્તાનું પરીક્ષણ કરીને નહીં ચાલે, સંવાદ સાધનાર શ્રોતાના અધિકારનું પણ વક્તાએ પરીક્ષણ કરવું જરૂરી બનશે.

આ શ્લોકમાં જે શ્રોતા ભક્તની અવસ્થાનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે તે મુખ્ય ‘શ્રવણોત્સુક’ છે. ભગવત્કથા, સ્વરૂપ, ગુણ, લીલાના શ્રવણમાં ઉત્કણ્ઠાયુક્ત છે. આ શ્રોતા કેવળ જિજ્ઞાસુ નથી તેમજ કદાચિત્ નિમિત્ત આવતા કથામાં પ્રવૃત્ત થનારો નૈમિત્તિક શ્રોતા પણ નથી. શ્રવણ માટેની ઉત્સુકતાને તેનો ભાવ એ ‘પાયક પાઠકવત્’ ફક્ત એ સમયની ક્રિયાને દર્શાવતો તાત્પર્યનો ભાવ પણ નથી, પરંતુ વિયોગના સમયે ભગવત્કથા માટેના શ્રવણની ઉત્કણ્ઠા એ તેનો સ્થાયીભાવ છે કારણ કે “શ્રીકૃષ્ણરસ-વિક્ષિપ્તમાનસ” વાળો આ શ્રોતા છે.

**શ્રીકૃષ્ણરસવિક્ષિપ્તમાનસાઃ**

શ્રીકૃષ્ણના રસની અનુભૂતિને કારણે જેનું માનસ સતત આજ રસપાન કરવા ઝંખે છે એવો આ ભક્ત છે. શ્રીકૃષ્ણમાં રતિ યુક્ત આ શ્રોતા છે. તેની શ્રીકૃષ્ણરતિ સંયોગમાં સંયોગ ભજન રસ અને વિયોગમાં વિપ્રયોગાત્મક ભજન રસરૂપે પ્રકટ થઈ રહી છે. બાહ્ય અનુભૂતિના અવસરમાં તે અનેક લીલા સહિત અનુભૂતિ આપતા રસિક



શિરોમણિના ભજનાનંદ રસમાં મગ્ન હોય છે. એજ સ્થાયી ભાવાત્મા વિરહરૂપ બનીને તેના હૃદયમાં બિરાજે છે, ત્યારે તે વિયોગાર્તિયુક્ત બની કથા રસના શ્રવણ કીર્તનમાં મગ્ન હોય છે. આ ઉભય સ્થિતિ અતિરિક્ત જેની કોઈ તૃતીય અવસ્થા નથી તેવો આ ભક્ત છે. ‘વિક્ષિપ્તમાનસ’નો અર્થ ટીકાકાર “સ્થાનાત્ પ્રચલિતં યન્માનસમ્” કરી રહ્યા છે. જેનું માનસ ચંચળ બની ગયું છે તેવો ભક્ત. ચંચળની ( એટમોલોજ ) અનુસાર અર્થ કરતાં શ્રીશ્યામમનોહરજીએ સમજાવ્યું છે. “યં યં ચલતિ ઈતિ ચંચલઃ” આ પ્રકારે તે પ્રકારે, સેવાના પ્રકારે કે કથાના પ્રકારે શ્રીકૃષ્ણના રસનું પાન કરવા જેનું મન સતત ઉડાઉડ કરે છે, ‘ચાલું ચાલું’ કરે છે એવો આ ભક્ત છે, ‘શ્રીકૃષ્ણ’ને શ્રીહરિરાયજી

**“શ્રીકૃષ્ણ શ્રિયા પરમ શોભયા લક્ષમ્યા વા યુતઃ**

**કૃષ્ણઃ સદાનંદો નિર્દોષનિત્ય-ગુણપૂર્ણ રસિકશિરોમણિઃ”**

આ રીતે સમજાવે છે, સ્વામિનીજી સહિત બિરાજતા કૃષ્ણના લીલા સાગરમાં ડૂબકીઓ મારવા જેનું મન ઉત્કણ્ઠાયુક્ત છે, તેવો આ ભક્ત છે; જે વિયોગમાં કેવલ કથા શ્રવણ માટે જ ઉત્સુક છે, તેવો આ શ્રોતા છે. જેવી રીતે પ્રિયના વિયોગમાં કેવળ તેના સંદેશા માટે જ ઉત્સુકતા હોય છે, તેવી રીતે વિયોગાર્તિયુક્ત હોવાથી આ શ્રોતા ‘પ્રિયવાતાશ્રવણમાત્રૈકમતયઃ’ વાળો એટલે કે કથામાં ઉત્કટ રતિવાળો હોય છે. તેની આ કથા રતિ કૃષ્ણરતિ સિવાયના અનેકાનેક પ્રયોજનોથી પ્રભાવિત એવી કથારતિ નથી. ‘કૃષ્ણૈકતાત્પર્યમ્’ થી પ્રકટ થતી, કૃષ્ણાનુભૂતિ વગર ન રહી શકવાની લાચારીને લીધે પ્રકટ થતી કથારતિ છે. “ઉદ્ભવાગમને જાતઃ ઉત્સવઃ સુમહાન્ યથા” સંદેશહારક ઉદ્ભવજીના વચન શ્રવણ માટેની વ્રજભક્તોની ઉત્સુકતા એ વિયોગ સમયની ભગવદ્ રતિ છે. ‘કૃષ્ણાલીલા પ્રગાયુત્પત્તિઃ’ના સુબોધિનીજી પ્રમાણે કૃષ્ણ અને લીલા બન્ને સદાનંદ રૂપ છે. સ્વરૂપ વિયોગમાં ભક્તોનો લીલા ગાન સિવાય બીજો કોઈ જીવન હેતુ નથી બનતો ( સુબો.૧૦૮૩૨૧ ) તેવો આ શ્રીકૃષ્ણરસવિક્ષિપ્તમાનસવાળો, વિયોગાર્તિયુક્ત, કથા શ્રવણૈકરતિવાળો શ્રોતા છે.

**અનિર્વૃતા લોકવેદે :**

આવી ઉત્કટ ભગવદ્ રતિયુક્ત જે છે તેને લૌકિક કે વૈદિકમાં આનંદની અનુભૂતિ કેવી રીતે થાય ? લોકની સુખાનુભૂતિ કે દુઃખાનુભૂતિ ભગવદ્ ભજનમાં બાધક હોય તો તેમને દુઃખકર જ લાગે છે. “પતિસુતાદિભિરાર્તિદૈઃ કિમ્” ( સુબો.૧૦૮૨૬૧૩૩ ) દુઃખ આપનારા પતિ સુતાદિ પાસે જઈને અમે શું કરીએ શ્રીવ્રજભક્તોના આ વચનમાં લોકમાં સ્વતન્ત્રયા આનંદની અનુભૂતિ રહિતતા સમજાય છે. એવી જ રીતે વૈદિક ફલપ્રાપ્તિથી સ્વઉદ્ધારની અપેક્ષારહિતના આ ભક્ત છે તેથી વેદમાં પણ તેમને ફલ રૂપતા નથી લાગતી. ‘મગ્નમુદ્ધરગોવિંદ’માં આ વાત સ્પષ્ટ થાય છે. પ્રમાણ, પ્રમેય, સાધન, ફલ સર્વની એકરૂપતા ભગવાનમાં જ લાગતી હોવાથી આવો

શ્રોતા લોક અને વેદમાં અરતિવાળો હોય છે. આ તેની સ્નેહજન્ય એકાત્મરતિ છે, નહીં કે જ્ઞાની કે વૈરાગી જેવો સર્વત્ર અરતિનો ભાવ. ( શ્રીહરિરાયજી ‘અરતિવર્જિતા:’ અને શ્રીપુરુષોત્તમજી ‘રતિવર્જિતા:’ એવો પાઠ લઈ રહ્યાં છે. )

### અરતિવર્જિતા:

આ શ્રોતાની કથામાંથી અરતિનો ભાવ નિવૃત્ત થઈ ગયો હોય છે. જે શ્રીકૃષ્ણરસવિક્ષિપ્ત માનસ હોય તેનામાં અરતિનો ભાવ નિવૃત્ત થઈ ગયો હોય છે એમ કહેવું આવશ્યક ખરું ? એવી શંકા થતાં તેનો ઉકેલ આ પ્રમાણે લાગે છે. શ્રીહરિરાયજી કહી રહ્યાં છે, કથામાંથી અરતિની નિવૃત્તિ ‘રસસ્વાભાવ્યાદેવ’ રસનો એવો સ્વભાવ જ હોવાથી થાય છે. એટલે કે આ ભક્તનું માનસ જ એવું છે કે તે કથારસના રસપાણને/રસાળતાને અનુભવી શકે છે. રસનો તો સ્વભાવ જ ‘દૃસ્ત્યજ’ છે. આ ભક્ત તેને માણવા એવો લાલાયિત રહે છે, કે તેના માટે “**વિપ્રયોગે ગુણગાનં વિના સ્થાનુમશક્યમ્**” બની જાય છે. રસને રસ તરીકે જે માણી શકે તે રસિક, જે રસિક ન હોય તેને રસાનુભૂતિમાં અપ્રિયતાનો કે ઉપેક્ષાનો ભાવ હોય પરંતુ રસને રસ તરીકે માણી શકે તેવો આ રસિક હોવાથી રસિક શિરોમણિના કથારસના પાનમાં તેને અરતિ કેવી રીતે અનુભવાય ? મર્યાદામાર્ગમાં શ્રદ્ધા પૂર્વક શ્રવણથી અને મહદ્જનોની સેવા વગેરેથી રુચિ પ્રકટ થાય છે. તેના લીધે કથામાંથી અરતિ નિવૃત્ત થાય છે, પરંતુ આ શ્રોતાની અરતિ નિવૃત્ત થવાનો પ્રકાર આ નથી કારણ શ્રવણ તેના માટે ધર્મરૂપ, સાધનરૂપ નથી. સ્વતઃ ફલ રૂપ છે, ફલાનુભૂતિનો પ્રકાર છે. રસને આ રીતે ફલરૂપતાથી માણવાની તેની માનસતા, તેને અરતિનો ‘અભાવ’ કહી રહ્યાં છે.

દશમસ્કંધના સુબોધિનીજીમાં શ્રીમહાપ્રભુજી ભગવદ્કથા શ્રવણના પાંચ પરિણામ સમજાવી રહ્યાં છે. ( સુબો.૧૦।૭૨ ) તેનું પ્રથમ પરિણામ જ ભગવદ્ ચરિત્રમાંથી અરતિની નિવૃત્તિ બતાવી રહ્યાં છે. બીજું પરિણામ ભક્તિનું પ્રાકટ્ય છે જેને આપણે “શ્રીકૃષ્ણ રસ વિક્ષિપ્ત માનસા” ના રૂપમાં સમજી શકીએ. ત્રીજું પરિણામ સાંસારિક તૃષ્ણાની નિવૃત્તિ. ચોથું પરિણામ સત્વ અંતઃકરણની શુદ્ધિ. તે “અનિર્વૃતા લોક વેદે” થી સમજાય છે. પાંચમું પરિણામ ભગવદીયોના સત્સંગરૂપ સખ્યની વૃદ્ધિ તેને શ્રવણોત્સુકતાના રૂપમાં સમજી શકાય. આ રીતે સુબોધિનીજીની કારિકાના સંદર્ભમાં આ શ્લોક સમજવો અનુચિત નહીં ગણાય. જે શ્રોતામાં કથા શ્રવણના આ પાંચે પરિણામ પ્રકટ થઈ રહ્યાં છે તેનું શ્રવણ ફલ રૂપ છે તેમ સમજી શકાય.

**શ્રીપુરુષોત્તમજી :** શ્રીપુરુષોત્તમજી આ શ્રોતાને કેવળ વિયોગાર્તિયુક્ત નથી કહેતા, પરંતુ ‘ત્યાગીના ભાવ’ તરીકે ઓળખાવે છે. ભક્તિવર્ધિનીમાં “**બીજભાવે દેદે તુ સ્યાત્**

ત્યાગાત્ શ્રવણ કીર્તનાત્” માં ભક્તિબીજ જેનું દઢ છે અને જે સ્વગૃહમાં સેવાના નિર્વાહ દ્વારા ભગવદ્ દર્શન સ્પર્શનનું સુખ નથી અનુભવી શકતો, તેને ગૃહસ્થિતિ ભક્તિ પ્રવૃદ્ધ થવામાં બાધક હોવાથી તેનો ત્યાગ કરવાનું અને શ્રવણકીર્તનરત રહી ભક્તિમાર્ગ ઉપર અગ્રેસર થવાનું કહ્યું છે. તે ગૃહત્યાગપૂર્વકના શ્રવણરત શ્રોતાનો ભાવ આ શ્લોકમાં બતાવ્યો છે. “તદ્વિના સ્થાતું અશક્તિઃ” એવી જેની વ્યાખ્યા કરવામાં આવી છે, તે વ્યસન પછીની અવસ્થાની આ વાત છે, જેને સર્વાત્મભાવ પૂર્વકશ્ણાપ્તિ પણ આપ કહી રહ્યાં છે. આ શ્રોતા ત્યાગી હોવાથી વિપ્રયોગાત્મક ભજનનંદ રસમાં તરબોળ છે. ભગવદ્ગુણ લીલા સ્વરૂપના શ્રવણથી તે લીલારસમાં મગ્ન છે અને શ્રવણ માટે સતત ઉત્સુક છે. ભગવદ્ વિયોગમાં ભક્તનો જીવન હેતુ ભગવત્કથા જ હોવાથી શ્રવણ એ જ તેનો ભગવદ્ સેવનનો પ્રકાર છે. શ્રવણ પોતે જ તેના માટે ભગવદ્ રસાત્મક છે.

આવા શ્રોતાનું શ્રવણ નથી ધર્મરૂપ નથી, ઉદ્દેહીપન ભાવરૂપ. સ્વકૃતાર્થતા રૂપી પ્રયોજનથી પ્રેરિત થઈને પણ તે શ્રવણ નથી કરી રહ્યો. કારણ આવા ભક્તરત્નને સ્વ, અર્થ/પ્રયોજન/કૃતાર્થતાનું અનુસંધાન જ નથી હોતું. “શ્રીકૃષ્ણ રસવિક્ષિપ્તમાનસાઃ” થી જ તેમનું સ્વાર્થ અનુસંધાન સૂચિત થાય છે. આવા ભક્તના હૃદયમાં સદા ભગવત્ સ્થિતિ છે, પરંતુ નિરોધલક્ષણમાં વર્ણિત “કિલ્ષ્ટજનોને જોઈ પ્રભુ હૃદયમાંથી બહાર પ્રકટ થાય છે” (નિરોધલક્ષણ.૭) તે સ્થિતિ રહિત જે છે, એટલે કે બાહ્ય પ્રકટ ભગવાન્ સાથે સંવાપાદિથી જે રહિત છે તેવો આ શ્રોતા છે. “ભગવત્કથાના શ્રવણ કે કીર્તનનું ફલ ભગવત્સ્વરૂપ અને ભગવત્લીલાના પહેલા આંતર અને પછી બાહ્ય અનુભવ સ્વીકારવામાં આવ્યું છે” (નિરોધ લક્ષણ પ્રસ્તાવના શ્રીશ્યામમનોહરજી) આ શ્રોતા ફલનિરોધના આ શિખર સુધી પહોંચ્યો નથી, પરંતુ પહોંચવા લાલાયિત અને વ્યગ્ર છે તેની ફલાનુભૂતિનું વર્ણન “શ્રીકૃષ્ણરસ-વિક્ષિપ્તમાનસાઃ” થી થઈ રહ્યું છે.

શ્રીપુરુષોત્તમજી બતાવી રહ્યાં છે કે, એકાદશ સ્કંધમાં “પ્રેમરજ્જુ વડે જેમના ચરણકમળ બંધાઈ ગયા છે એવા ભગવાન્ જેના હૃદયમાંથી દૂર ખસતા નથી, તેવો આ ભાગવત્ પ્રધાન છે” (સુબો.૧૧૨.૧૫૫) આમ જેના હૃદયમાં સર્વદા ભગવત્ સ્થિતિ છે, જેનું મન ભગવત્ કથાના શ્રવણ માટે સદા ઉત્સુક છે. ભગવત્ કથાનું શ્રવણ એ જ જેના માટે ફલાનુભૂતિનો પ્રકાર છે, તેને લૌકિક કે વૈદિક મોક્ષાદિ ફલની લાલસા ક્યાંથી હોય ? જેના મનમાં કામ કે કર્મના બીજ હોય તેનું નિયમન તો લોક કે વેદ કરી શકે, પણ આવી વાસના વગરના ભાગવત્ પ્રધાનને લોક અને વેદમાં નિરાનંદતાનો ઉપેક્ષ્ય ભાવ હોય તેમાં આશ્ચર્ય શું ? (સુબો.૧૧૨.૧૫૦) શ્રીપુરુષોત્તમજી કહી રહ્યાં છે કે લોકવેદમાં આવો નિરાનંદતાનો દઢ ભાવ ત્યાગીનો જ હોય છે.

## તુલનાત્મક અધ્યયન :

પંચપદ્યાનિમાં પ્રકટ થતી ફલાનુભૂતિનું બન્ને ટીકાકાર આ રીતે રસપાન કરાવે છે. ફલાનુભૂતિના પ્રકારના વાર્ણનમાં તો ખાસ મતભેદ જણાતો નથી પરંતુ જે અધિકારીનું વાર્ણન બન્ને ટીકાકાર કરી રહ્યાં છે તેમાં ફરક લાગે છે. શ્રીહરિરાયજી વિયોગાર્તિયુક્ત ભક્તની વાત કરી રહ્યાં છે; આ ભક્ત ત્યાગી જ હોય તે જરૂરી નથી. યુગલગીતમાં જે રીતે દિવસે વિયોગાનુભૂતિ અને રાત્રે સંયોગાનુભૂતિના ચક્રની અવસ્થા અંતર્ગત વિપ્રયોગાવસ્થા છે તેવી અવસ્થાની વાત શ્રીહરિરાયજી કરી રહ્યાં હોય તેમ લાગે છે અવસરમાં સેવામાં રત અનવસરમાં કથામાં રત ભક્તની ફલાનુભૂતિનો આ પ્રકાર હોય અથવા ફલમુખ અધિકારીના આ લક્ષણ હોય તેવું લાગે છે ૮૪/૨૫૨ વૈષ્ણવોની વાર્તામાં અનેક વૈષ્ણવો એવા જોવા મળે છે જેઓ દિવસે આવી રીતે સેવામાં અને રાત્રે કથામાં રત હોય.....૨૫૨ વૈષ્ણવમાંના કૃષ્ણભટ્ટની વાર્તામાં આવે છે કે નાગજીભટ્ટ કૃષ્ણભટ્ટના ઘરે આવ્યા હતા ત્યારે.....“સો વાર્તા કરત ત્રીસરે દિન ઉઠે...ભગવદ્ રસમેં એસે મત ભયે જો કછુ દેહાનુસંધાન ન રહ્યો.....સો ફેરી સ્નાન કરી, શ્રીઠાકુરજીકી સેવા કરી.....ફેરી વાર્તા કરન લાગે”.....

એવી જ રીતે ચાચા હરિવંશજી અને કૃષ્ણભટ્ટ બન્ને મળતા ત્યારે પણ ભગવદ્ વાર્તાના પ્રસંગમાં બે ત્રણ દિવસ વીતી જતા. બંનેમાંથી કોઈને દેહાનુસંધાન પણ ન રહેતું. તેમાંથી ચાચાજી કેવળ કથારત હતા. તેઓ એવા અધિકારી હતા કે શ્રીગુસાંઈજી તેમની સાથે એકાંતમાં ભગવદ્ વાર્તા કરતા અને ચાચાજી તે રસમાં મગ્ન રહેતા, તેથી સેવા પધરાવી નહીં. બીજા કૃષ્ણભટ્ટ આવા જ કથા પરાયાણ હતા. ભગવદ્ વાર્તા કરતા ત્યારે રસમાં મગ્ન થઈ જતા અને દેહાનુસંધાન ન રહેતું. આમ હોવા છતાં સેવામાં પણ એવા પરાયાણ હતા કે એક સમયે તે ગોકુલ જવા નીકળ્યા તો માર્ગમાં પ્રભુ તેમને વારંવાર જણાવવા લાગ્યા, “તો બિના મોકો સુહાત નાહી” જ્યારે શ્રીપુરુષોત્તમજી એવા અધિકારીની વાત કરી રહ્યાં છે જે કેવળ વિયોગાર્તિયુક્ત નથી પરંતુ સેવાનો નિર્વાહ ન થઈ શકવાથી ગૃહત્યાગ કરીને કેવળ કથાના આશ્રયે રહ્યો છે. હૃદયમાં સર્વદા ભગવદ્ સ્થિતિ છે પરંતુ બહિષ્કારકાંડના અભાવને લીધે, કથા શ્રવણની ઉત્કટતા તીવ્ર છે. ભગવદ્ રસાનુભૂતિનું માધ્યમ તેના માટે કેવલ કથા જ હોવાથી તેની તત્પરતા કદાચ વિશેષ હોઈ શકે. ૮૪ વૈષ્ણવોમાંના શેઠ દિનકરદાસની વાર્તામાં આ અવસ્થા વધુ સ્પષ્ટ થાય છે. દિનકરદાસને બાળવયથી જ કથાનું એવું વ્યસન કે જ્યાં કથા થતી હોય ત્યાં જઈને બેસે. સાંજે એક જ સમયનું ભોજન પામતા પણ અન્નને બદલે કથાથી તેમનું પોષણ થતું હોય તેમ જ્યાં ત્યાં કથાની શોધમાં રહેતા. કુટુંબીઓ ‘ચોર’ કહે કે કથાકારો ‘શેઠ’ કહે, એ તો અનિર્વૃતા લોકે હતા. કથા માટેની તેમના મનની ભટકન એવી સ્નેહમયી હતી કે શ્રીમદ્ભગવદ્ના મુખે ભ્રમરગીતના સુબોધિનીજીનું શ્રવણ કરતા રસમાં મગ્ન થઈ ગયા.

કથા શ્રવણની ઉત્કટતા એવી હતી કે શ્રીમહાપ્રભુજી કથા શરૂ કરી દેશે એવી શંકાથી કાચી બાટી જલ સાથે લઈ કથા શ્રવણ કરવા આવી ગયા. તેમની આવી ઉત્કટ કથારતિને લીધે તો શ્રીઆચાર્યજીએ તેમને પોતાની કથાના ‘મુખ્ય શ્રોતા’ કહી નવાજ્યા. ભગવદ્ કથાના આ વ્યસની તેથી જ તો શ્રીઆચાર્યજી આગળ પોતાના લાચાર મનની અવસ્થાનું નિવેદન આ શબ્દોમાં કરે છે, “મહારાજ, આપ તો અતંઃકરણકો જાનત હો. મੈં તો આપકે મુખકી કથા સુનોંગો. યામેં સગરી સેવા હે”.

કદાચ સેવા અને કથા ઉભયનો નિર્વાહ કરી શકનારની અનવસર સમયની વિયોગાર્તિ અને કથા શ્રવણ માટેની વિત્તવળતા આટલી તીવ્ર ન પણ હોય. તે જ પ્રમાણે શ્રવણ સમયે ફલાનુભૂતિની ઉત્કટતા પણ આવા ગૃહત્યાગી ભક્તની કદાચ વધુ હશે; તે અર્થમાં પ્રકરણાનુરોધિ તે ભક્ત ‘મુખ્ય શ્રવણોત્સુક’ પણ કહેવાશે જ પરંતુ... પંચપદ્યાનિની પ્રસ્તાવનામાં શ્રીશ્યામમનોહરજી બતાવે છે તે પ્રમાણે. “સેવાની સાથે – સાથે જે કથાના શ્રવણ સ્મરણ કીર્તનનો પણ નિર્વાહ કરી શકે છે તે ઉત્તમ શ્રોતા છે.” જે સેવાના અનુકલ્પ રૂપે નિરંતર ભગવદ્ કથાનું સમાશ્રયણ કરે છે તે મધ્યમ પ્રકારનો શ્રોતા છે. કારણ “ભગવત્કથાકા શ્રવણ, સ્મરણ, કીર્તન ભગવત્સ્વરૂપ સેવાકે સાથ – સાથ સેવાકે અનવસરમેં ચલતા રહે તો વહ ભગવત્ સ્નેહકો પૂર્વોત્તર દલ (સંયોગ એવમ્ વિપ્રયોગ) દોનોમેં ભક્તિકે પૂર્ણ આવિર્ભાવિકા ઉપાય બનતા હે” (શ્રીશ્યામમનોહરજી પંચપદ્યાનિ પ્રસ્તાવના). આમ સેવાના અવસરમાં સેવામાં અને અનવસરમાં કથામાં રત રહેનાર શ્રોતાને જે ઉભય દલાત્મક સ્વરૂપની અનુભૂતિ થાય છે, તે ત્યાગીને નહીં થાય. બીજું એટલે સેવા કથા ઉભયરત, અત્યાગી પણ અનવસરમાં વિયોગાર્તિયુક્ત, એવા શ્રોતાની ફલાનુભૂતિના આ પ્રકારમાં ત્યાગીનો પણ સમાવેશ થઈ શકશે કારણ ત્યાગી પણ વિયોગાર્તિ યુક્ત જ હોય છે, પરંતુ ફક્ત ત્યાગીનો ફલાનુભૂતિનો પ્રકાર કહેતાં અત્યાગી શ્રોતાની ફલાનુભૂતિનો પ્રકાર છુટી જશે. “ભગવત્કૃપા સહિતગૃહાશ્રમએવ વિશિષ્યતે” (ત.દી.નિ.શાસ્ત્રાર્થ.૫૦/૫૧) ભક્તોની ગૃહસ્થિતિ સહિતની ભગવદ્ અનુભૂતિની ફલરૂપતા જ્યાં આ રીતે નિરૂપિત થાય છે ત્યાં ફલાત્મક શ્રવણ કરનારની ગૃહસ્થિતિ પણ સ્વીકારવી વધુ રુચિકર લાગે છે.

### પ્રપત્તિમાર્ગીય શ્રોતાની ફલમુખાધિકારિતા :

‘પંચપદ્યાનિ’ના પાંચમાં શ્લોકના અધિકારીના સંદર્ભમાં પણ બન્ને ટીકાકારોના મત ભિન્ન છે. શ્રીહરિરાયજી તે શ્લોકમાં મર્યાદામાર્ગીય ઉત્તમ ભક્તનું નિરૂપણ છે તેમ આજ્ઞા કરી રહ્યાં છે, જ્યારે શ્રીપુરુષોત્તમજી તેમાં પ્રપત્તિમાર્ગીય શ્રોતાનું નિરૂપણ છે તેમ આજ્ઞા કરી રહ્યાં છે, મર્યાદામાર્ગીય ભક્તની ફલાનુભૂતિ આ નિબંધની વિષયબાહ્ય હોવાથી અહીં ફક્ત શ્રીપુરુષોત્તમજીની ટીકા જોઈશું. ‘પંચપદ્યાનિ’ના પ્રથમ શ્લોકમાં જેવી

રીતે ભક્તિમાર્ગીય ઉત્તમ શ્રોતાની ફલાનુભૂતિનો પ્રકાર બતાવ્યો છે તેવી રીતે છેલ્લા શ્લોકમાં પ્રપત્તિમાર્ગીય ઉત્તમ શ્રોતાની ફલાનુભૂતિનો પ્રકાર બતાવ્યો છે.

**“અનન્યમનસો મર્ત્યાઃ ઉત્તમાઃ શ્રવણાદિષુ,  
દેશ-કાલ-દ્રવ્ય-કર્તૃ-મન્ત્ર-કર્મ-પ્રકારતઃ”**

દેશ, કાલ, દ્રવ્ય, કર્તા, મન્ત્ર અને કર્મ, ધર્મના આ છ આવશ્યક અંગોમાં સાધનતાનો કોઈ ભાવ રાખ્યા વગર જે અનન્ય ભાવથી કૃષ્ણાશ્રયી છે તે ઉત્તમ શ્રોતા છે.

આ શ્રોતા અનન્યઆશ્રયી છે. આ શ્રોતા અન્યાશ્રયરહિત કૃષ્ણનો અનન્યાશ્રયી છે. આ ‘અનન્યમાનસ’ હોવાથી તે પ્રપત્તિમાર્ગીય શ્રવણાધિકારી છે તે સ્પષ્ટ થાય છે. જેને ભગવાન સિવાય ઈતર કોઈ ફલની કામના નથી અને સાધન રૂપમાં પણ જે કેવળ હરિનો આશ્રય સ્વીકારે છે એવા જીવોને પુષ્ટિજીવ સમજવા જોઈએ એમ ભાગવતાર્થ નિબંધમાં શ્રીમહાપ્રભુજી આજ્ઞા કરી રહ્યાં છે. (ભાગ.૧૨।૫।૬)

સર્વનિર્ણય નિબંધમાં પણ સર્વત્યાગ અને અનન્યભાવથી કેવળ કૃષ્ણમાં જ સ્વામીપણાથી સર્વદા જ જેની મનોનિવેશ છે, તેનું ફલ સાયુજ્ય બતાવ્યું છે. આ કારિકાના પ્રકાશમાં આ ભક્તનો કાયાદિના વિનિયોગનો અભાવ અને મનોમાત્રનિવેશનમ્ બતાવ્યું છે. તેના ઉપરથી એવું સમજાય છે કે પુષ્ટિભક્તને આ ભૂતળ ઉપર મળતા અલૌકિક સામર્થ્ય કે તનુનવત્વ રૂપી ફલ આ ભક્તને પ્રાપ્ત થતું નથી, પરંતુ દેહપાત બાદ તેને સાયુજ્ય - મોક્ષ મળી શકે છે. પંચપદ્યાનિમાં વર્ણિત શ્રોતાને મર્ત્યાઃ એ અર્થમાં કહ્યાં છે કે, વિદ્યમાન દેહથી ભૂતલ પર પરમ ફલની અનુભૂતિ તેમને થતી નથી, પરંતુ શ્રીકૃષ્ણ સાયુજ્યનો લાભ મૃત્યુ બાદ જ થાય છે. પરંતુ અનન્યમાનસ હોવાથી આ પ્રપત્તિમાર્ગીય જીવને ઉત્તમાધિકારી માનવામાં આવ્યો છે.

જ્યારે અનેકવિધ ધાર્મિક સાધનોના અભિમાન ત્યાગપૂર્વક આવા જીવની અનન્ય રુચિ શ્રીકૃષ્ણના સ્વરૂપ, ગુણધર્મ, લીલાના શ્રવણ, સ્મરણ, કીર્તનમાં વિકસિત થઈ હોય તો આવા શ્રોતાને કથા શ્રવણ કરાવવું ઈષ્ટ છે, નહીં કે અન્ય મર્યાદામાર્ગીય કર્મ જ્ઞાન ઉપાસનાના અધિકારીને. કારણ આ પ્રપત્તિમાર્ગીય શ્રોતાના સંગમાં રસાભાસ થવાની શક્યતા તો છે, જેવી રીતે પરીક્ષિતરાજાને કથા સંભળાવતાં શુક્રદેવજીને થયો. કારણકે આવા શ્રોતાનો કૃષ્ણાશ્રય અનન્ય છે, દઢ છે, પણ કૃષ્ણાસક્તિ દઢ નથી. તે અનન્યાશ્રયી છે, પણ અનન્યાસક્ત નથી. પરંતુ તેની શ્રીકૃષ્ણ પ્રપત્તિ અનન્યતાના

રૂપમાં પૂર્ણ રીતે વિકસિત થઈ છે તેથી સમાનશીલ ગુણવાળો આ શ્રોતા ન હોવાથી તેના સંગે વક્તાને કદાચ અપેક્ષિત ભક્તિવૃદ્ધિ નહીં થાય, પરંતુ ભક્તિનો નિર્વાહ તો અવશ્ય થઈ શકશે. તેથી મુખ્ય, ઉત્તમ, મધ્યમ કે કનિષ્ઠ ભક્તિમાર્ગીય શ્રોતા ન મળે તો વક્તા આવા પ્રપત્તિમાર્ગીય શ્રોતાની સાથે સંવાદ સાધીને પણ પોતાની ભક્તિનો નિર્વાહ કરી શકે. આવો શ્રોતા પણ લભ્ય હોય ત્યાં સુધી વક્તાએ કીર્તન ભક્તિથી વંચિત રહેવું ન જોઈએ.

### ઉપસંહાર :

આ રીતે વ્યસનોત્તર અવસ્થાવાળા અને સર્વાત્મભાવ પૂર્વકક્ષાવાળા ભક્તની વિયોગ સમયે ભગવત્કથાના શ્રવણમાં થતી ફલાનુભૂતિનો પ્રકાર પંચપદ્યાનિના સંદર્ભમાં જોયો. સેવા સમયે જેમને સંયોગની સુખાનુભૂતિ નથી અને અનવસરમાં જેમને વિયોગની દુઃખાનુભૂતિ નથી તેવા આપણા સૌ માટે તો તળેટીમાં ઉભા રહી ઉચ્ચત્તમ શિખરના સૌંદર્યને માણવાનો આ પ્રકાર છે. બીજા શબ્દોમાં ‘ઈશાનુકથા’નો પણ આ પ્રકાર છે, જ્યાં ભગવાન ભક્તના હૃદયમાં બિરાજી જાય અને ભક્ત દ્વારા થતા સ્વ - ગુણ લીલાના શ્રવણથી પુષ્ટ થાય ! સાંપ્રત સમયમાં આવા ભક્તોના દર્શન અને સંગની અતિદુર્લભતા લાગી રહી હોય ત્યારે ભક્તો સાથેના આવા ભગવદ્ રમણનું ગુણગાન પણ આપણા માટે ફલાત્મક જ છે. આવો કીર્તન-શ્રવણનો સુઅવસર મળ્યાથી કૃતાર્થતા અને આવો અવસર આપ્યાથી કૃતજ્ઞતા અનુભવું છું.



## चर्चा

पुष्टिमार्गीय ફલ : ‘પંચપદ્યાનિ’ના સંદર્ભમાં

### શ્રીમતી કુંજબાલા

**હિતેન્દ્ર શાહ :** કુંજબાલાબેનને દશમ સુબોધિનીકે આધારપે ઉત્તમ શ્રોતાકે પાંચ ક્રાઇટેરિયામેં અન્તિમમેં કહ રહે હૈં કે “પાંચે પરિણામ જ્યાં પ્રકટ થઈ રહ્યા છે તેનું શ્રવણ જ ફલરૂપ છે”. મેરી જિજ્ઞાસા યે હૈં કે પાંચોંકી જગહ સમજો કે દો યા ત્રીન બી ફેક્ટર્ આ રહે હૈં તો અપન વાકુ મધ્યમ યા કનિષ્ઠ અધિકારી કહ સકેં કે નહીં. દૂસરી બાત યે હૈં કે પઞ્ચપદ્યાનિકે પ્રથમ ઓર અન્તિમ શ્લોકમેં ઉત્તમ શ્રોતાકો નિરૂપણ હૈ. મધ્યમ શ્રોતાકે લક્ષણપે પ્રકાશ ડાલ સકો તો અચ્છી બાત હૈ. પઞ્ચપદ્યાનિકે સન્દર્ભમેં જઘન્ય અધિકારીકો વિચાર લાસ્ટ સેમિનામેં હો ગયો હતો.

**કુંજબાલા :** પહેલા પ્રશ્નના સન્દર્ભમાં એવું લાગે છે કે પુષ્ટિમાર્ગના ફળનું વર્ણન ઉત્તમ શ્રોતામાં પ્રકટ થઈ રહ્યું છે. તમે એના વિશે પૂછી રહ્યા છો કે જે હજી સાધન કક્ષામાં છે. અને આ શ્રોતામાં દરેકે દરેક લક્ષણ ઈન્ટરલિન્કડ છે. શ્રીહરિરાયજી અને શ્રીપુરુષોત્તમજી એમ જ બતાવી રહ્યા છે કે શ્રીકૃષ્ણરસવિક્ષિપ્તમાનસ છે તો એનામાં સ્વાભાવિકપણે આ બધા ચિહ્નો પ્રકટ થઈ જાય છે. જ્યારે રસવિક્ષિપ્ત હોય ત્યારે અનિર્વૃત્તા લોકવેદે કે રતિવર્જિતા થવું એ સ્વાભાવિક રીતે પ્રકટ થતી પ્રક્રિયા છે. હવે જો રસવિક્ષિપ્ત માન છે છતાં ‘અનિર્વૃત્તા લોકવેદે’ નથી તો ઉત્તમ શ્રોતાની ફલાનુભૂતિનો પ્રકાર નહીં ગણાય એવું લાગે છે.

**પરેશ શાહ :** આમાં ફલાત્મકતા અને ફલરૂપતા નો ડિફેન્સ કરવામાં આવે તો કદાચ ક્લીયર થઈ જશે.

**કુંજબાલા :** બીજી વાત તમે પૂછી તેમાં શ્રીહરિરાયજી અન્તિમ શ્લોકમાં નિરૂપિત શ્રોતાને મર્યાદામાર્ગીય કહી રહ્યા છે. એકંદરે પુષ્ટિમર્યાદા જેવું લાગે છે પણ શબ્દ ત્યાં ‘મર્યાદા’ લખ્યો છે. અને શ્રીપુરુષોત્તમજી પુષ્ટિમર્યાદા શ્રોતા તરીકે ગણી રહ્યા છે. એટલે ‘પુષ્ટિમાર્ગીયફળ’ એ હેડિંગનીચે ફક્ત પુષ્ટિમાર્ગીય શ્રોતાની ફલાનુભૂતિનો પ્રકાર લીધો.

**ગો. શરદ્ :** આ પ્રસંગે મને એક પ્રશ્ન થાય છે. પ્રશ્ન જનરલ્ ટાઈપનો છે.



“સર્વત્યાગેડનન્યભાવે કૃષ્ણમાત્રૈકમાનસે, સાયુજ્યં કૃષ્ણદેવેન શીઘ્રમેવ ધ્રુવં ફલમ્”માં શ્રીમહાપ્રભુજી સાયુજ્ય ફળ બતાવી રહ્યા છે. આ પહેલાની ચર્ચામાં આપણે શરણાગત અને કથાપરાયાણ પુષ્ટિમાર્ગીને સાયુજ્ય ફળ મળે છે એવું સામાન્યરીતે વિચાર્યું હતું. અહીં પણ તમે એ જ વચનનો અનુવાદ કરીને નિરૂપણ કર્યું છે. ભક્ત જેમ પુષ્ટિ અને મર્યાદા એમ બન્ને પ્રકારના હોઈ શકે તેમ શરણાગત પણ પુષ્ટિ અને મર્યાદા એમ બે પ્રકારના હોઈ શકે છે. આમાં પ્રશ્ન જે ઊભો થાય છે એ સેવાફલ, પુષ્ટિપ્રવાહમર્યાદાભેદ અને “સર્વત્યાગેડનન્યભાવે...” આ વચન, આ બધાનો જો સંકલિત વિચાર કરીએ તો એક સ્થિતિ એવી બને છે “સાયુજ્યં કૃષ્ણદેવેન શીઘ્રમેવ ધ્રુવં ફલમ્”નો અર્થ એવો થાય કે આવા શરણાગતને ભગવાન આ જન્મ એનો આ અન્તિમ જન્મ છે એમ માનીને એને આત્યન્તિક ફલ પ્રદાન કરી દઈ રહ્યા છે, શરણને જ માર્ગ બનાવીને. પણ જો “ભગવદ્રૂપસેવાર્થ તત્સૃષ્ટિઃ” એ પ્રતિજ્ઞાનો અને “ભગવાનેવ હિ ફલં સ યથાવિભવેદ્ભુવિ” નો વિચાર કરીએ; અને આની સાથે શ્રીગુસાંઈજીએ સિદ્ધાન્તમુક્તાવલીની વિવૃતિમાં જે નિરૂપણ કર્યું છે કે યદિ મર્યાદામાં અંગીકાર હશે તો એને મર્યાદાફળ મળશે અને જો પુષ્ટિમાં અંગીકાર હશે તો પ્રભુ “આદૌ પુષ્ટિમાર્ગ પ્રાપ્ય તન્માર્ગ્યાં ભક્તિં પ્રાપ્નુતે” અને જો “મર્યાદાયામેવ અનીકારઃ તદા ઉભયોઃ મુક્તિરેવ ફલિષ્યતિ” આની સાથે જો સેવાફલને પણ સાંકળી લઈએ તો એવું લાગે છે કે પુષ્ટિભક્ત કદાચ કોઈ જન્મમાં કેવળ પ્રપન્ન હોય અથવા તો માત્ર ગુણગાનપરાયાણ હોય પરન્તુ એને આત્યન્તિક ફળની પ્રાપ્તિ તો સેવાદ્વારાજ થશે. સીધું શરણાગતિથી જ કે સીધું ગુણગાનથી જ જો પુષ્ટિજીવને આત્યન્તિક ફળ મળી રહ્યું છે તો “ભગવદ્રૂપસેવાર્થ તત્સૃષ્ટિઃ” “સૃષ્ટિઃ વ્યર્થા ચ ભૂયાત્ નિજફલરહિતા” વગેરે વચનોની સંગતિનો વિચાર કરવો પડશે. અને જો “સાયુજ્યં કૃષ્ણદેવેન શીઘ્રમેવ ધ્રુવં ફલમ્” એ વચન ઊપર વધુ ભાર આપીએ તો પછી એવું માનવું પડે કે આ વચનમાં શ્રીમહાપ્રભુજી કોઈક આપવાદિકી પ્રક્રિયા બતાવી રહ્યા છે. જેમ “કલૌ ભક્ત્યાદિમાર્ગા હિ દુઃસ્સાધ્યા” કહીને ભક્તિમાર્ગને પણ દુઃસ્સાધ્ય માનીને પ્રપત્તિને માર્ગની પદવી પ્રદાન કરી છે. તે સ્થિતિમાં કેવળ પ્રપત્તિથી પણ, પુષ્ટિજીવ હોવા છતાં, તેને મુખ્યફળની પ્રાપ્તિ થઈ શકે છે એવું માનવું પડે. આ બધું કહેવા પાછળ મારી જિજ્ઞાસે એ છે કે ફલ પ્રદાન કરવાના સમ્બન્ધમાં આપણને કેટલી નિયતિ વિચારવી જોઈએ. અર્થાત્ શું પુષ્ટિજીવને આત્યન્તિક ફળની પ્રાપ્તિ સેવાદ્વારાજ થશે? કેમકે પુષ્ટિસૃષ્ટિ ભગવદ્રૂપસેવાર્થ છે. અને જો આ નિયતિ

નથી અને વિના સેવા કરે પણ જો કોઈ પુષ્ટિજીવ ભૂતળ પરથી ચાલ્યો જઈ રહ્યો છે તો પછી “સૃષ્ટિ: વ્યર્થા” “દેહેન્દ્રિયાણાં વૈકલ્યમ્ અસેવાયાં ભવતિ” આવા વચનોની સંગતિ કેમ થશે? પ્રભુએ તે પુષ્ટિજીવના જીવનને સેવાના અભાવે વ્યર્થ કેમ જવા દીધું? શ્રીપુરુષોત્તમજી પણ એક સ્થળે લખે છે કે મર્યાદામાર્ગમાં કેવલ મન-વાણીનો પ્રભુમાં વિનિયોગ છે, કાયાનો નથી. મર્યાદાજીવને તેની કાયાના ભગવદ્વિનિયોગ વિના જ ભગવાન્ ફળ આપે છે. પણ પુષ્ટિજીવની તો વાણી મન અને કાયા ત્રણેનો પોતાનામાં વિનિયોગ કરાવીને પ્રભુ ફલદાન કરવા ઈચ્છે છે. હવે જો સ્થિતિ આવી હોય તો જે જીવને ભગવાન્ વિના સેવાએ ફલદાન કરી રહ્યા છે એ પુષ્ટિજીવ નથી એવું મનું પડશે. એક વાત તો આ છે.

બીજી વાત સાયુજ્ય ફળના સન્દર્ભમાં છે. સાયુજ્ય બે પ્રકારના માનવામાં આવ્યા છે. એક તો લીન થઈ જવું તેવું સાયુજ્ય અને બીજું એવું કે પ્રભુ લીન થઈ ગયેલાને પોતાનામાંથી ફરી બાહર પ્રકટ કરીને તેમને લીલાનું સુખ આપે. મર્યાદાભક્તને પુરુષોત્તમસાયુજ્ય ફળ થાય છે એમ આપણે કહીએ છીએ. તે સ્થિતિમાં મર્યાદા શરણાગતને પણ સાયુજ્ય ફળ થાય તેમ કહેવામાં આપણને વાંધો હોઈ ન શકે. આવી સ્થિતિમાં આને કયા પ્રકારનું સાયુજ્ય મળશે એ વિચારણીય બને છે.

**કુંજબાલા :** શ્રીમદ્પ્રભુજીએ પૃથક્કશરણમાર્ગ પ્રકટ કર્યો છે તો એવું બની શકે કે એ માર્ગ દ્વારા પણ સાયુજ્ય ફળ મળી શકે. આપે જેમ કહ્યું કે સાયુજ્યને મુખ્ય ફળ નથી માન્યું એ અર્થમાં.

**ગો. શરદ્ :** તો પછી પ્રશ્ન એ થશે કે “ભગવદ્રૂપસેવાર્થ તત્સૃષ્ટિ:” એમાંનો આ જીવ કહેવાશે કે નહીં? કદાચ એમ કહો કે ભૂતલ ઊપર સેવા નહીં પણ ભગવત્લોકમાં સેવા કરશે. તો સેવાર્થ સૃષ્ટિની સંગતિ કેમ બેસશે? કેમકે ભગવાન્ જો તેને પૃથક્કશરણમાર્ગ દ્વારા જ સાયુજ્ય આપી દઈ રહ્યાં છે તો એની સૃષ્ટિ વ્યર્થ થઈ ગણાશે! પછી “સૃષ્ટિર્વ્યર્થા ચ ભૂયાત્ નિજફલરહિતા” કોનામાટે કહેવું?

**હિતેન્દ્ર શાહ :** એવું વિચારી શકાય કે એ જન્મ પુરતો એ પ્રપત્તિમાર્ગમાં પ્રવૃત્ત હોય! પુષ્ટિપ્રપત્તિની રેફિનેશન એવી છે કે જે પુષ્ટિભક્તિમાં કલ્મિનેટ્ થાય છે. બીજા જન્મમાં એનામાં ભક્તિ ખીલી શકે છે.

**ગો. શરદ્ :** ગઈ કાલે આપશ્રીએ આભાસ, તાત્કાલિક અને આત્યન્તિક ની વાત સમજાવી હતી. એ ફલવિભાજનને ધ્યાનપર લઈએ તો શરણાગતિ, ગુણગાન/કથા અને સેવા નું તાત્કાલિક ફળ તો ષોડશગ્રન્થમાં વર્ણિત છે જ.

જેમ કે અનન્યાશ્રય એ પ્રપત્તિમાર્ગનું તાત્કાલિક ફળ છે. કથાનું તાત્કાલિક ફળ વ્યસન છે. સેવાની વાત તો જુદી જ છે. અને બધાનું આત્મન્ટિક ફળ કૃષ્ણ છે. પણ તમે જે કહેવા માંગો છો કે પ્રપત્તિમાર્ગનું તાત્કાલિક ફળ સાયુજ્ય છે એ શક્ય લાગતું નથી. કેમકે “ન સ પુનરાવર્તતે” બ્રહ્મસૂત્ર સામે ઉભું છે. એટલે કે એક વખત સાયુજ્ય ફળ મળી જાય પછી ભગવાન એ જીવને પાછો ભૂતલ ઊપર મોકલે એવું શક્ય નથી. અને જો આપણે એમ કહીએ કે પ્રપન્ન જીવને એક જન્મમાં અનન્યાશ્રય દેઢ થાય, બીજા જન્મમાં એને પ્રેમાસક્તિવ્યસન-નિરોધ થાય કે સેવાદ્વારા માનસી અને અલૌકિકસામર્થ્ય વગેરે ફળ મળે. તો પછી શ્રીમહાપ્રભુજીનું આ વચન...યદપિ પ્રકાશ અને એના ઊપરની ટીકાઓ વિચારણીય રહે છે...કેમકે ત્યાં સ્પષ્ટ લખ્યું છે “કાય-વાગ્વિનિયોગાભાવેડપિ ...એતત્કલમ્”. તો પછી જે જીવને પ્રભુ તેની કાયા-વાણીના વિનિયોગ વિના ફલદાન કરી રહ્યા છે એને આપણે પુષ્ટિજીવ નહીં માની શકીએ, એને મર્યાદાજીવ માનવો પડશે જો પુષ્ટિપ્રવાહમર્યાદાભેદમાંની શ્રીમહાપ્રભુજીની પ્રતિજ્ઞાને અખંડિત રહેવા દેવી હોય તો.

**ભાવેશ પરમાર : ....**

**ગો. શરદ્ :** એમ ઘણા લોકો કહે છે. ટીકાકારો તો પચ્ચપદ્યાનિમાં પણ મર્યાદામાર્ગી શ્રોતા કહી રહ્યા છે. એવો કોઈ મત સ્વીકારવામાં આવે તો અન્ય વચનોની સંગતિ અને અવિરોધ સિદ્ધ કરવો પડશે.

**ગો. યોગેશ :** સેવાફલ ગ્રન્થકે સન્દર્ભમેં સોચેં તો વહાં જૈસે શ્રીમહાપ્રભુજી આજ્ઞા કરે હૈં કે “સેવાયાં ફલત્રયમ્”. સાયુજ્યકુ સેવાકે અન્તર્ગત બતાયો હૈ, સેવાસું બાહર નહીં બતાયો હૈ. તો સેવા તો આ હી રહી હૈ.

**ગો. શરદ્ :** પરન્તુ “ચાદૃશી સેવના પ્રોક્તા” બી તો કહ્યો હૈ. ‘ચાદૃશી’ સેવના સિદ્ધાન્તમુક્તાવલ્યાં પ્રોક્તા વો તો નહીં ભૈં ન! પ્રપત્તિમાર્ગીકો તો સેવામેં પ્રવેશ હી નહીં ભયો હૈ, વાકુ સેવાકો ફલ કૈસે મિલ ગયો?

**ગો. યોગેશ :** યહાં જો સાયુજ્ય ફલ બતાયો હૈ વો સેવાકે અન્તર્ગત હી બતાયો હૈ.

**ગો. શરદ્ :** પર “ચાદૃશી સેવના પ્રોક્તા તત્સિદ્ધૌ ફલમ્” કહ્યો હૈ. પ્રપત્તિમાર્ગમેં ‘તત્સિદ્ધૌ’કી તો અવસ્થા હી કહાં આ રહી હૈ? ઔર યદિ અપન સબનકું સેવાફલોક્ત ફલકે અધિકારી માન રહે હૈં તબ ફિર પ્રપન્ન ઔર કથાપરાયણ કુ પ્રથમ સેવાધિકાર પ્રભુ પ્રદાન કરેંગે ઔર ફિર સેવાદ્વારા ફલ દેંગે એસી વ્યવસ્થા માનની પડેગી. યે યદિ નહીં માનેં તો અન્તતઃ પ્રભુકે

कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं सामर्थ्यसुं सब कछु सिद्ध हो सके है ऐसो तो कह ही सके हैं. श्रीगुसांईजी भी आज्ञा करे हैं के “**भगवदिच्छायाः अनियतत्वात्, इच्छायाश्च ज्ञातुम् अशक्यत्वात्**”.

**असित शाह :** आप साम्प्रदायिकी व्यवस्था और सृष्टिव्यवस्था कु कन्फ्यूज कर रहे हो. याके कारण चक्कर पड रह्यो है. एक तो अपन ये कह रहे हैं के “**भगवानेव हि फलं स यथाविर्भवेद् भुवि, गुणस्वरूपभेदेन**”. हो ऐसे रह्यो है, आप कह रहे हो, के मुर्गी जानसे जाये और मीयाको स्वाद न आये. एक तो भगवान् आविर्भूत हो गये गुणभेदसुं, के कथावालेकु भी आनन्द प्रदान करनो, फिर भी आप कह रहे हो के वो पुष्टिजीव नहीं है क्योंकि सेवा तो नहीं करी! ये गलत जा रह्यो है. अपनकु सृष्टिकी व्यवस्था और साम्प्रदायिकी व्यवस्था कु अलग-अलग सोचनो चहिये.

साम्प्रदायिकी व्यवस्थाके बारेमें सोचें तो सेवाफलमें ही बतायो है के अगर कोई सेवा कर रह्यो है तब भी जरूरी नहीं है के वो पुष्टिजीव होवे. यदि सेवा करनेवालेकु भी प्रभुकुं फल नहीं देनो है तो ये सम्भव है के वाकु उलटो जानो पडे “**तदा ज्ञानमार्गेण स्थातव्यम्**”. तो “**भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिः**” और अपन सेवामें शुरु हो गये तब भी कोई जरूरी नहीं है के अपन पुष्टिजीव हैं, सम्प्रदायके अन्तर्गत भी. तो अपनकु ये सोचनो पडेगो के सम्प्रदायमें पुष्टिजीवको क्या क्राईटेरिया है और सृष्टिमें क्या क्राईटेरिया है. साम्प्रदायिक क्राईटेरिया केलिये जैसे ये एक वचन है “**भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिः नान्यथा भवेत्**” वाकी कोरोलरीमें ये कह्यो है के “**कृपापरिज्ञानञ्च मार्गरुच्या निश्चीयते**”. जाकु सेवा आदिमें रुचि होवे वाकु दीक्षा दी जा सके है. मतलब कि अपन प्रिज्युम् कर सके हैं के यदि भगवद्रूपसेवार्थ पुष्टिसृष्टि है, और याकु सेवा वगैरहमें रुचि है तो ये पुष्टिजीव होयगो. ऐसेकु गुरु दीक्षा दे सके है. तो “**भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिः**” या वचनकु सृष्टिकी व्यवस्थाके सन्दर्भमें नहीं लेनो चहिये के जो सेवा नहीं करे है वो पुष्टिजीव नहीं है, वो मर्यादाजीव है या प्रपत्तिमें है. ऐसो सोचनो या वचनको गलत जगह उपयोग है.

और एक बात ये भी है के साम्प्रदायिकी व्यवस्थामें ऐसो कह्यो जा रह्यो है के कोई सेवा नहीं कर पा रह्यो है, भक्तिमार्ग अशक्य हो गयो या लिये प्रपत्तिमार्ग और वासुं सायुज्य बतायो है. तो ऐसी बात तो नहीं है.

क्योंकि स्वयं प्रभुने प्रकट होके “ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देह-जीवयोः” ये आज्ञा दी, मार्ग प्रवर्तित कियो है। श्रीमहाप्रभुजी या आशयमें तो नहीं कह रहे हैं के या कालमें भक्तिमार्ग अशक्य है। वो भी साम्प्रदायिकी व्यवस्था है कि कौनसे अधिकारीकेलिये भक्तिमार्ग शक्य है, कौनसेकेलिये अशक्य है। वाको स्टार्टिंग् पॉइंट तो मार्गरुचि ही रहेगो। वाके अनुसार वाकु उपदेश दियो जा रह्यो है। अब कोई ऐसो व्यक्ति है के जाकु सेवाफल तककी सब समझ हो गई है पर प्रभु वाकु फल देनो नहीं चाह रहे हैं तो वा स्तरपे श्रीमहाप्रभुजी कह रहे हैं के शायद वो पुष्टिजीव नहीं होवे। “तदा ज्ञानमार्गेण स्थातव्यम्”। पर मार्गरुचि है तो अपन प्रिज्युम् कर सके हैं के वो पुष्टिजीव है। ये साम्प्रदायिकी व्यवस्था भई।

सृष्टिकी व्यवस्थामें ये ब्राईटेरीया पकड़के चल सकें के “भगवानेव हि फलं स यथाविर्भवेद् भुवि, गुण-स्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत्”। भगवदाविर्भावरूपी फल जाकु भूतलपे मिल रह्यो है वो पुष्टिजीव है ऐसो अपन कह सकें। वामें कथापक्षवालेके लिये प्रभुको गुणरूपसुं आविर्भाव हो गयो तो वाके कारण वाकु भजनानन्दकी अनुभूति हो रही है तो वाकु अपन पुष्टिजीव कह सके हैं। ये सृष्टिकी व्यवस्था है। ऐसो नहीं है के सेवा नहीं कर पा रह्यो है, केवल गुणगान कर रह्यो है तो वो पुष्टिजीव ही नहीं है। और जब अपन सृष्टिकी व्यवस्था बिचारेंगे तो सेवा भी अपनकु थोड़ी ब्रोड सेन्समें लेनी पड़ेगी। माने, अपन ऐसो तो नहीं कह सकें के श्रीमहाप्रभुजीने पुष्टिमार्ग प्रकट कियो वाके पहले कोई पुष्टिजीव हतो ही नहीं, क्योंकि जो सेवा श्रीमहाप्रभुजीने बताई है वा तरहकी सेवा वो लोग करते नहीं हते या कारणसुं वो पुष्टिजीव हते ही नहीं। ऐसी अपनी कोई मोनोपोली नहीं है। और श्रीमहाप्रभुजीने पुष्टिमार्ग प्रकट कर भी दियो वाके बाद भी चैतन्य सम्प्रदाय जैसे अन्य सम्प्रदाय भी हैं ही। तो अपन ऐसो मोनोपोलाईज नहीं कर सके हैं कि पुष्टिजीव खाली अपने सम्प्रदायमें ही हैं। क्योंकि अपन अन्य सम्प्रदायमें भी उत्तम भक्त देख सके हैं कि जिनके भावमें सेवापरायणता होवे। यासु अपन याकु मोनोपोलाईज नहीं कर सके हैं।

और “भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टि” कह्यो है वाकु टचस्टोन्के रूपमें ले सके हैं। पर सृष्टिकी व्यवस्थामें “भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिः” थोडे ब्रोड सेन्समें लेनी पड़ेगी कि भजनानन्दके दानकेलिये जो सृष्टि है वो पुष्टिसृष्टि

है. भजनानन्दकु थोडो क्वोलिफाय् करनो पडेगो के या प्रकारको भजनानन्द होवे तो पुष्टिजीव और वा प्रकारको होवे तो मर्यादाजीव. क्योंकि भजनानन्द मर्यादाजीवकु भी मिल सके है और पुष्टिजीवकु भी मिल सके है. यासुं मोकु लगे है के सम्प्रदायकी व्यवस्था और सृष्टिकी व्यवस्थाकु कक्पयुझ करेंगे तो ये समस्या खडी हो सके है.

**गो. शरद् :** मोकु एसो लगे है के तेने मेरे प्रश्नकु अलग ढंगसुं टेकल् कियो है. मेरो कहनो एसो नहीं है के जीवके वरणको निर्धारण व्यक्तिके आचरणसुं करनो चाहिये. मेरो पिन पोईट् प्रश्न केवल इतनो है के पुष्टिजीवकु आत्यन्तिक फलकी प्राप्ति सेवाद्वारक होयगी के बिना सेवाके भी हो सके है.

**असित शाह :** हो सके है.

**गो. शरद् :** तब “**भगवद्रूपसेवार्थ तत्सृष्टिः**” या वचनकी क्या गति ?

**असित शाह :** वा वचनकु थोडे ब्रोड् सेन्सुमें लेनो पडेगो. ‘सेवार्थ’ मतलब स्वमार्गीया सेवा ही एसो जरूरी नहीं है. जैसे ‘सेवा’को एक अर्थ सेवन भी होवे है. ...भजनानन्दके दानकेलिये सृष्टि है.

**गो. शरद् :** सिद्धान्तमुक्तावलीकी टीकामें श्रीगुसांईजीने पुष्टिजीवकु फल कैसे प्राप्त होयगो वाकी जो प्रक्रिया बताई है वाकु अपन ध्यानमें लेवें तो ...

**असित शाह :** गुणभेदेन प्रभुको यदि आविर्भाव भयो और वाकु जो अनुभूति हो रही है वो पुष्टिजीव नहीं है ऐसे अपन कैसे कह सकें ?

**गो. शरद् :** पुष्टिजीव कौन है और कौन नहीं है ये मेरो मुद्दा ही नहीं है. मुद्दा केवल इतनो ही है के पुष्टिजीवकु आत्यन्तिक फलकी प्राप्ति सेवाद्वारक होवे है या सेवाके बिना भी. मेरी समझ या सम्बन्धमें ऐसी है, जो वचन मैने अभी उद्धृत किये वाके प्रकाशमें के यदि कोई जीव पुष्टिको है तो प्रभु वाकु सेवारहित आत्यन्तिक फल प्रदान करनो नहीं चाहेंगे. तात्पर्य ये है के यदि कोईकी स्थिति कथापक्षमें है तो वो तात्कालिकी है. तदनुसार वाकु तात्कालिक फल भी प्रदान करेंगे. पर आत्यन्तिक फल प्रभु जब भी प्रदान करेंगे तब वाकु श्रीगुसांईजीने जो सिद्धान्तमुक्तावलीमें प्रणाली बताई है तदनुसार मुख्यमार्गमें लाके करेंगे.

**असित शाह :** आप वरणपे बन्धन ला रहे हो. प्रभुको वरण ही यदि एसो है के वाकु कथासु ही फल देनो है तो...

**गो. शरद् :** पुष्टिमार्गके फलकी बातकु एक ओर रखें तो सभी मार्गकी स्टैंडर्ड व्यवस्था

ऐसी ही है के जो मार्गको जीव है वाकु फलकी प्राप्ति वा मार्गके मुख्य साधनके द्वारा ही होयगी. अवतारकालकी बात अलग है. पर अनवतारकालमें जब ससाधन अङ्गीकार है तब भी यदि बिना साधनके फलकी प्राप्ति हो रही है तब मार्गप्रवर्तन और वरण की व्यवस्था क्वेश्चनेबल बन जायेगी.

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** दो बातें हैं : “भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिः” और “गुण-स्वरूपभेदेन”. कोईकु भगवान् भूतलपे गुणभेदसुं फल दे रहे हैं. वाको जब सायुज्य होयगो तब फिर भगवान् वाकु पुनः नित्यलीलामें प्रकट करके स्वरूपभेदसुं फलदान करेंगे. ऐसे सोचें तो...

**गो. शरद् :** मैंने पहले ही ये बात कही हती के यदि ऐसो आशय है तब जिन वचनमें ये बात कही जा रही है के पुष्टिजीवकु प्रभुने भूतलपे अपनी स्वरूपसेवार्थ प्रकट किये हैं, पुष्टिजीवकी इन्द्रियनकी विफलता असेवामें है, मर्यादामार्गसुं पुष्टिमार्गकी विशेषता ही ये है के यहां सकल इन्द्रियनको प्रभुसेवामें विनियोग है ...इन सबको क्या होयगो ?

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** हां, उनके देहादि भगवत्सेवामें नहीं लग रहे हैं, उनकी तो निरर्थकता होयगी.

**असित शाह :** आप आत्यन्तिक कह रहे हो. टीकाकार भी अलौकिकसामर्थ्यकु भी आत्यन्तिक नहीं मान रहे हैं. जहां तक भूतलपे भक्तकी स्थिति है वहां तक ही अलौकिकसामर्थ्य है. और वार्तामें देखें तो आसकरणदासजीकु व्यसन सिद्ध हो गयो, अब उनसुं सेवा कन्टीन्यु नहीं हो पा रही है...

**गो. शरद् :** अपन ज्ञानमार्गको उदाहरण लेवें. एक ज्ञानमार्गी ज्ञानसाधना करते-करते जीवन्मुक्तकीसी अवस्थापे पहुँच गयो. स्थितप्रज्ञताकी अवस्थामें कभी वासुं नित्य-नैमित्तिक कर्म हो पा रहे हैं, कभी वो उनकुं नहीं कर पा रह्यो है. यदि ऐसी अवस्था है तो शास्त्रके हिसाबसुं वाकु कोई अपराध नहीं लगे है. ऐसे ही तनुवित्तजासेवा करते-करते कोई पुष्टिमार्गीकु मानसी फलित हो गयी. ऐसेमें भी यदि वो तनुवित्तजा सेवा निभा सके है तो अच्छी बात है. पर यदि गज्जनधावन या आसकरणदासजी की तरह उनसुं सेवा नहीं निभ पा रही है तो कोई अपराध नहीं है. या विषयमें कोई मतभेद नहीं है. मैं जब आत्यन्तिक फल कह रह्यो हूं तब वाको मतलब सायुज्य या वैकुण्ठादिषु सेयोपयोगीदेहाप्ति है. क्योंकि अलौकिकसामर्थ्यको तो ऐसो है के प्रभु चाहें

तो कोई पुष्टिजीवकु अनेक जन्ममें या अनेक जन्म तक अलौकिकसामर्थ्य प्रदान करें. अनेक बखत वाकु वा अवस्थासु पाछो नीचे उतारें. ये सब सम्भव है. प्रभु चाहे सो करें.

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** श्रीपुरुषोत्तमजी भी ऑब्जेक्शन ला रहे हैं के यदि प्रभुकु स्वरूपसेवा नहीं करनी हती तो फिर पुष्टिजीवकी सृष्टि ही क्यों करते ?

**गो. शरद :** स्वयं श्रीमहाप्रभुजी “नान्यथा भवेत्” आज्ञा कर रहे हैं.

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** “कायेन तु फलं पुष्टौ” बात भी तो वहां लानी है!

**गो. शरद :** अपने पास एक रस्ता ये है के ‘सेवा’शब्दके अर्थको दायरा बडो करें, जो असित सजेस्ट करनो चाह रह्यो है. दूसरो रस्ता वरणकी अनियतिको है. जैसे श्रीगुसांईजी सिद्धान्तमुक्तावलीकी टीकामें आज्ञा करे हैं के यदि पुष्टिमें अङ्गीकार होयगो तो ये कार्स पकडेगो और यदि मर्यादामें अङ्गीकार होयगो तो ऐसो होयगो. तीसरो उपाय ये है के सायुज्यकी व्याख्यामेंसु कोई समाधान खोजें. बाकी तो भगवान् कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तु समर्थ हैं ही.

**असित शाह :** चक्कर या लिये पड रह्यो है के आप प्रयोजनलक्षणकु स्वरूपलक्षणतया ट्रीट कर रहे हो. “भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिः” ये प्रयोजनलक्षण है. आप वाकु ऐसे ट्रीट कर रहे हो के जैसे वो स्वरूपलक्षण होवे.

**गो. शरद :** प्रयोजन ही तो फलमें पर्यवसित होयगो! यदि प्रयोजन फोल्सिफाय् हो गयो ....एक दूसरी बातपे ध्यान दो. हर पुष्टिजीव अपने हर जन्ममें सेवापरायण होवे ये जरूरी नहीं है. कोई पुष्टिजीव वाके एक जन्ममें सेवापरायण हो पायो है. आगे स्थिति ऐसी भई के वाकु दूसरे कई जन्म तक प्रभुसेवाको अवसर प्राप्त नहीं भयो. अब प्रभुकी ऐसी इच्छा भई के वा पुष्टिजीवकु ओर अधिक भूतलपे नहीं रखनो है. प्रभु वाके प्राचीन जन्ममें करी भई सेवाके आधारपे वाकु आत्यन्तिक फलदान करेंगे. एक ऐसी स्थिति है. नोर्मलि ऐसो होनो नहीं चाहिये. होनो ये चाहिये के जब अन्तिम फल दियो जाय तब वा फलके अनुसार अवस्था भी वाको होवे तो अधिक सुसंगत लगे. यदि ऐसो नहीं हो रह्यो है तो जाकु फल प्राप्त हो रह्यो है वाकु वाके कौनसे आचरणको फल मिल रह्यो है वाको बोध नहीं हो पायेगो.

**असित शाह :** कोई भी स्थितिमें ये बात तो ओपन रखनी पडेगी के प्रयोजनलक्षणकु स्वरूपलक्षणतया ट्रीट नहीं करनो चाहिये.

**गो. शरद :** लक्षणको यहां कहां प्रश्न है? पुष्टिजीव...



**असित शाह :** “भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिः” ये पुष्टिसृष्टिको प्रयोजनलक्षण है. तो कभी अविनाभावी भी पुष्टिजीव हो सके है. कभी पुष्टिजीव भगवत्सेवार्थ उद्यत नहीं हैम.

**गो. शरद् :** वामें कहां आपत्ति है? समस्या केवल वहीं है के यदि पुष्टिजीवकी सृष्टिको प्रयोजन भगवद्रूपसेवा है और कोई पुष्टिजीव या सृष्टिमेंसुं बिना सेवा किये बाहर हो जा रह्यो है तो वाको मतलब क्या होयगो? क्या भगवानने वाकु गलतीसु सृष्टिमें भेज दियो?

**असित शाह :** याके पहले भी श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के “भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः”. भक्तिमार्गमें तो कितनी बडी रेंज है. खाली सेवा और वो भी श्रीमहाप्रभुजीके द्वारा उपदिष्ट सेवा इतनी मात्र पोसिबिलिटी नहीं है. और आगे साधनाके प्रकार बताये हैं के प्रथम सेवा-कथा, वो नहीं निभे तो कथा, तीर्थाटन, मर्यादाभक्ति... और वहांसु भी वाकु पाछो तो लानो है ही. बेजिकलि ओरियन्टेशन् वाको सेवाकी ओर होनो चाहिये. वाकु ये बात खुदकु समझमें आनी चाहिये के मैं यदि पुष्टिजीव हूं तो मेरी सृष्टिको प्रयोजन सेवा है.

**गो. शरद् :** ये बात ठीक है. पर एक स्ट्रोंग् आर्ग्युमेंट याके सामने ये है के श्रीमहाप्रभुजीने षोडशग्रन्थमें और अन्यत्र भी जा तरहसु सेवाफल कंठोक्त कह्यो है वा तरहसुं कथाफल या शरणफल नहीं कह्यो है. कथा और शरणागति के भी फल अपन सोच नहीं सके हैं ऐसी बात नहीं है. पर जा तरहसु श्रीयमुनाष्टकमसु लेके सेवाफल तकमें पुष्टिमार्गीय सेवासाधनाकी उपक्रमोपसंहारात्मिका सङ्गति प्राप्त होवे है वाके आधारपे ये बात सहज समझमें आ सके है के पुष्टिजीवकु भी फलकी प्राप्ति सेवासुं ही होवे. ऐसेमें कोई जीव बिना सेवाके ही ऊपर चल्यो गयो तो साधन-फलभाव खंडित हो जायेगो. ये ही कारण है के कई टीकाकरनने सेवाफलमें परिगणित फलनमेंसुं कोई फलकु पुष्टिमार्गीय फल कोईकु मर्यादामार्गीय फल माने हैं.

**असित शाह :** कथावालेकु भी निरोधलक्षणमें फलश्रुति तो कही है.

**गो. शरद् :** मैं आत्यन्तिक फलकी बात कर रह्यो हूं.

**असित शाह :** आत्यन्तिकमें आप ही कह रहे हो के अलौकिकसामर्थ्य मुख्य फल है पर आत्यन्तिक नहीं है.

**गो. शरद् :** वो तो नहीं ही है! ‘आत्यन्तिक’सु मेरो स्पष्ट आशय ये है के विदेहमुक्ति

स्थानी जो पुष्टिफल है वो फल.

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** “क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा ...हृदिस्थं निर्गतं बहिः” ये एक जातको सेवन ही है न! तनुवित्तजा प्रकारको सेवन नहीं है पर कोई प्रकारको सेवन तो गुणनिरोधमें भी हो ही रह्यो है न! क्योंकि भीतरसुं स्वरूपानन्दको दान हरेक इन्द्रियकु दे रहे हैं. इन्द्रियकी विफलताकी बात पे मैं कह रह्यो हूं के गुणनिरोधमें भी इन्द्रियनकु प्रभु आनन्द दे रहे हैं. वहां भी प्रभु बाहर भी प्रकट हो रहे हैं, ऐसे नहीं है के भीतर ही बिराजे हैं. तो वाको जो फाइनल् प्रयोजन है वो कथामें भी सिद्ध तो हो रह्यो है.

**गो. शरद् :** वाको इन्कार नहीं है. पर सवाल तब ये उठेगो के “यादृशी सेवाना प्रोक्ता” कह्यो है तो ‘यादृशी’को अर्थ क्या लेनो? सिद्धान्तमुक्तावली वाली सेवा, सिद्धान्तरहस्य वाली सेवा, चतुःश्लोकी वाली सेवा या निरोधलक्षण वाली?

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** सिद्धान्तमुक्तावली वाली ही. मुख्य प्रकार फलकी प्राप्तिको सेवावालो ही होयगो जो आप कह रहे हो. पर कथावालो भी है तो सही.

**गो. शरद् :** मतलब बिना सेवाके भी प्रभु पुष्टिजीवकु आत्यन्तिक फल प्रदान कर देंगे?

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** नहीं तो फिर “गुण-स्वरूपभेदेन” ऐसो गुण और स्वरूप दोनों क्यों कह्यो?

**गो. शरद् :** देखो, फलकी जहां तक बात है, फल तो सेवाफलमें बताये हैं वो तीन ही फल मानने पड़ेंगे, चौथो फल तो लानेसुं रहे. उन फलनमेंसुं ही कथाको फल और शरणागतिको फल भी खोजनो पड़ेगो यदि उनको अलग फल है तो. अब आचार्यचरण “यादृशी सेवाना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलमुच्यते” आज्ञा कर रहे हैं. यासु सेवाफलमें बताये गये तीन फल तो सेवाफल हैं ही. अब यदि कथा और शरणागति के फल भी इन तीनमेंसुं ही हैं तब फिर सेवा और कथा में फलकी दृष्टिसु अन्तर क्या बच्चो?

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** गुण और स्वरूप को.

**असित शाह :** आप याकु ज्यादा स्ट्रिक्टली पकड रहे हो. सेवा उपलक्षण है. खाली सेवा ऐसे नहीं है.

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** तब फिर तनुवित्तजा उड जायेगी.

**गो. शरद् :** ‘सेवाफल’के विग्रहमें सेवाया: नहीं पर सेवायां है इतनी सूक्ष्मता स्वीकार रहे हैं, और तू कह रह्यो है के ‘सेवा’कु उपलक्षण मानो.

**असित शाह :** मेईन बात सम्प्रदाय और सृष्टि के डीमार्केशनकी है. सम्प्रदायकी रेंज वहां जाके खतम हो जावे है के जब जीवकु भूतलपे वाको क्लाय्मेक्स मिल जावे है. तो यदि भगवदाविर्भाव हो गयो या निरोध हो गयो या अलौकिकसामर्थ्य मिल गयो तो पूरी भई बात. पीछे जो मिल रह्यो है वो तो गतिनिर्देश है. वाकेलिये श्रीमहाप्रभुजी कुछ नहीं कहेंगे के तोकु ये करनो है या वो करनो है.

**गो.श्या.म.:** या चर्चाके सन्दर्भमें अपनकु कुछ बातें ध्यानपे लेनी चाहिये. द्वितीय स्कन्धकी सुबोधिनीजीमें श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के **“यो भगवत्कर्तव्यं करोति महता प्रयत्नेन स मुख्यः. यस्तु भगवत्सेवां करोति स मध्यमः. यस्तु स्वार्थं भगवन्तं सेवते सः अधमः”**. भगवान् जो कार्य करनो चाह रहे हैं वा कार्यकु जो करे है वो भगवानकु उत्तम सेवक लगे है. जो भगवान्की सेवा करे है वो मध्यम है और जो अपने स्वार्थकेलिये भगवान्की सेवा करे है वो अधम है. ये लीलासामयिक सेवाकी बात है. या ही बातकु श्रीमहाप्रभुजीने **“गृहस्थितेरुत्कृष्टत्वं न भगवदीयत्वमात्रेण किन्तु भगवता सह स्थित्या भगवत्कार्यार्थं वा अन्यथा न स्थातव्यम्”** कहके फिरसुं रिवोक् करी है. भगवद्रूपसेवाके प्रभेद अपनकु ध्यानमें लेने पड़ेंगे. एक तो भगवन्मूर्तिकी सेवा. ‘मूर्ति’को मतलब भगवानकी मूर्तता. मूर्त भगवानकी सेवा. रूप और मूर्ति पर्यायवाची शब्द हैं. मतलब **“अक्षरोपासका ते न भवन्ति”** मूर्तरूपोपासकाः ते भवन्ति. एक ये बात है.

भगवान् मूर्त कई प्रकारसु हो सके हैं. वामें एक प्रकार लीलामें भगवान्को प्राकट्य है. दशमस्कन्धकी सुबोधिनीमें श्रीमहाप्रभुजीने सर्वत्र व्याप्त भगवान्में मूर्तता कैसे आयी वाके बारेमें खुलासा कियो है. मूर्तता आवरणके अपसारणसु आवे है. जैसे सफेद कागजके बीचमें चौकोर छेद करके कागजकु काली जमीनपे रखें तो बीचमें कालो चोरस दीखेगो. जितनो हिस्सा कागजको सफेद है वो अमूर्त दीखेगो और कट्यो भयो हिस्सा मूर्त दीखेगो. ये मूर्तता आवरणापगमसु आयी है. दूसरी मूर्तता **“यद्यद्विधा त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय”** भावानुरोधी वपुःप्रणयणात्मिका होवे है. तीसरी मूर्तता **“त्वत्सम्बन्धिनं यज्ज्वलनपदार्थम् अनुचरन्ति”** न्यायसु प्रभुसम्बन्धी वस्त्र, अंगराग, वेणु, पाग आदि की सेवाको प्रकार भी है. इन सबमें ठाकुरजीकी मूर्तता वैसी नहीं

होयगी के जैसी मूर्तता बालकृष्णजी, मदनमोहनजी आदिमें होवे है. पर जैसी मूर्तता गिरिराजजी या शालग्रामजी में होवे वा तरहकी कोई स्थूलाकृति होयगी. चौथी मूर्तता अर्चावतारात्मिका भी हो सके है. ये रामानुज सम्प्रदायकी मान्यता है. अपने यहां याकु ‘भावप्रतिष्ठा’ कह्यो गयो है. एक ओर पांचवीं मूर्तता “तदा सर्वं सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतं बहिः” वाली भी हो सके है. ये मूर्तता कैसी है के भक्तने गुणगानके बखत भगवानको जैसो रूप सोच्यो है वो रूप वाकु प्रकट दीखने लगे है. ये मूर्तता वार्ताके शब्दनमें कहें तो ‘भक्तोद्धारक’ स्वरूपवाली मूर्तता है. ये तद्भक्तैकगोचर मूर्तता है, सर्वजनगोचर मूर्तता ये नहीं है. स्थूल मूर्तिरूप भगवानकी सेवा नहीं करनेवाले भक्तनकु भी या तरहके भक्तोद्धारक स्वरूपकी सेवा करनेको लाभ एम्पल मिल्यो है ये वार्ता और पुराण दोनोंमें देख्यो जा सके है. तो भगवान्के रूपात्मना सेव्य होनेके अनेक प्रकार हो सके हैं.

या स्थितिमें गुणगानपरायण भक्तकु यदि सायुज्य मिल रह्यो है तो वाकी अन्यथागति हो रही है ऐसो नहीं कह्यो जायगो. क्योंकि वा भक्तने जा तरहसु गुणगान कियो है या वो भक्त जा तरहसु प्रभुके सामने प्रपन्न भयो है वा प्रपत्तिके गुण जो वो गा रह्यो है, सहज सम्भव है के या तरको प्रपन्न भक्त भगवानके उन गुणनको मजा नहीं ले पायेगो के जो नवरत्नवाले गोविन्द दूबेके साथ समस्या भई हती. ब्रजलीलाको वर्णन हो रह्यो हतो और उनकु याद द्वारकालीला आ गयी. कथामें निरन्तर विघ्न होतो रह्यो. एक बात समझो के कथामें विघ्न भयो तो भयो पर श्रीमहाप्रभुजीकु खुदकु ये बात कबूल करनी पडी के तू श्रीद्वारकाधीशजीसुं बोल रह्यो हतो करके मैं कछु बोल नहीं पा रह्यो हूं, नहीं तो तो मैं तोकु निकाल बाहर करतो! वो द्वारकाधीशसुं बोल रह्यो हतो और द्वारकाधीश वासुं बोल रहे हते. ये मूर्ति कौनसी हती? द्वारकाके मन्दिरवाली मूर्ति नहीं हती. “हृदिस्थं निर्गतं बहिः” वालो रूप हतो. एकच्युअली वाके केसमें सोचने लायक बात है के यदि वाकु द्वारकाधीशको स्वरूप सेवामें पधरायो होतो तो श्रीमहाप्रभुजीने और वा तरहकी सेवाको प्रकार बतायो होतो तो अपनकु नुकसान इतनो ही होतो के ‘नवरत्न’ ग्रन्थ प्रकट नहीं होतो. पर गोविन्द दूबे तो बिचारो सुखी हो जातो. वाकु दुःखी करके श्रीमहाप्रभुजीने ‘नवरत्न’ग्रन्थ प्रकट कियो है. तो एक रूपसेवा या तरहकी भी हो सके है.

एक ओर रूपसेवाको प्रकार प्रपन्नको है जाको निरूपण श्रीगोपीनाथजीने साधनदीपिका ग्रन्थमें कियो है. ये निरूपण श्रीगोपीनाथजीने भक्तिवर्धिनी और सर्वनिर्णयनिबन्धके साधनप्रकरण ग्रन्थनके आधारपे कियो है. रूपसेवा नहीं निभती होवे तो रूपसेवा करनेवालेकी सेवा करो. वो भी रूपसेवा हो जायेगी. ये रूपसेवा परिचर्यात्मिका है. वार्ता साहित्यमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे के एककु ब्रह्मसम्बन्ध दियो होवे और परिवारकु कही के तुम याकी परिचर्या करियो. ये दास्यानुदास्यरूपा सेवा है. पर, यहां सावधानी ये रखनेकी है के भावको विचलन या तरहसु नहीं होनो चाहिये के क्योंकि श्रीमहाप्रभुजीने कह्यो है के “**भार्यादिरनुकूलश्चेत् कारयेत् भगवत्क्रियाम्**” या लिये शादी करनेकेलिये मैं एक ठाकुरजी पधराऊं! ऐसो नहीं होनो चाहिये. ठाकुरजी बिराज रहे हैं या लिये उनकी सेवामें सहयोगी बने ऐसी पत्नी लाऊं. दोनोंमें दोनों चीज मौजूद है पर वाको प्रयोजनात्मक व्युत्क्रम और प्रयोजनात्मक सत्क्रम दोनों हो सके हैं. वो अपनेकु स्पष्ट रखनो पड़ेगो के भगवद्रूपसेवाके प्रयोजनसु दासानुदास बन रहे हैं तब तो ठीक है पर यदि अपन भगवद्रूपसेवासुं बचनेकेलिये कोई प.भ.की सेवा कर रहे हैं तो फिर वो भगवद्रूपसेवा नहीं भई. एक प्रसिद्ध उदाहरण दऊं हू. बहोतसे रामभक्त रामकी सेवा नहीं करके हनुमानजीकी सेवा करनो चाहे हैं. ये प्रोब्लेम् शैवनमें नहीं दीखे है. आज तक मैंने कोई शैवकु नन्दीकी सेवा करते नहीं देख्यो है. शिवालयमें जावें तो नन्दीपे फूल चढ़ा देवें पर शिवजीसुं स्वतन्त्र नन्दीके मन्दिर आज तक नहीं बने हैं. पर हनुमानजी ऐसे दमखमवाले रामके सेवक हैं के कई रामभक्तनकु रामकी सेवाके बजाये हनुमानजी ही सेव्यतया ज्यादा अच्छे लगे हैं. कई शैवनकु शिवके बजाये देवीकी सेवा ज्यादा अच्छी लगे है. अपने यहां भी या तरहकी समस्या है. बहोतसे वैष्णव कृष्णके करते गोस्वामीकु प्रकट पुरुषोत्तम मानके उनकी सेवा करनो अधिक पसंद करें हैं. पाछे यों ओर कहते होवे हैं के वोतो गूंगे ठाकुर हैं और गोस्वामी तो बोलते ठाकुर हैं! ऐसे भावसु जब अपन दासानुदासता जता रहे हैं तो वो सृष्टि व्यर्थ गई समझो. पर जासु साक्षात् सेवा नहीं हो पा रही है वो ये सोचके सेवककी परिचर्या करे के मोसु साक्षात् सेवा कृष्णकी नहीं हो पा रही है तो कमसु कम सेवककी सेवा तो करूं तो वो सेवा कृष्णकी ही सेवा है, सेवककी सेवा नहीं है. ऐसेमें या तरहकी सेवा भी भगवद्रूपसेवा ही होयगी.

या प्रकारकु श्रीगोपीनाथजीने बताया है.

तो जहां तक ये समस्या हती के रूपसेवा भई के नहीं तो रूपसेवा तो भई है. अब 'यादृशी' भई के नहीं? वो तो नहीं भई. पर वाके कारण प्रयोजनमें बाध नहीं आयो है. भक्तिके प्रकारमें बाध आयो है.

**गो. शरद् :** अब श्रीगुसांईजीने सिद्धान्तमुक्तावलीकी टीकामें जो प्रक्रिया बताई है वाको स्पष्टीकरण बाकी बचे है. वहां जो निरूपण श्रीगुसांईजीने कियो है वासुं ऐसो प्रतीत होवे है के फलदानकी प्रक्रियामें भगवान् साधनक्रमकु अखंडित रखनो चाहे हैं.

**गो.श्या.म. :** वामें कोई हरकत नहीं है. क्योंकि वहां प्रश्न सेवाको है. सिद्धान्तमुक्तावली पूरो ग्रन्थ सेवाकेलिये डेडिकेटेड है. भक्तिवर्धिनी ग्रन्थ आखो सेवाकेलिये डेडिकेटेड नहीं है. वामें तीन भाग हैं : त्याग, सेवा-कथा और केवल कथा. और चौथो भी प्रकार है जो अपन देख गये. ये चारों प्रकार प्रभुके रूपसेवनके ही हैं. “व्यङ्गागीमपि सेवेत” की पेराफ्रेजिंग् यदि अपन ऐसे करें के “व्यङ्गाङ्गो अपि सेवेत” सेवक व्यङ्गाङ्ग है तो क्या करे. साक्षात् स्वरूपसेवा नहीं कर पा रह्यो है तो जाकी कर सके वाकी कर रह्यो है. वो भी स्वरूपसेवा ही कहलायेगी.

और रही बात बाह्यरूपकी. तो सेवाकेलिये जितनो उपयोगी बाह्यरूप है उतनो ही एफिशियंट मानसरूप भी है वाको निरूपण “यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात्” सूत्रके भाष्यमें श्रीमहाप्रभुजीने कियो है. यासुं ऐसो जरूरी नहीं है के बाह्यरूपसेवार्थ ही तत्सृष्टि है. भगवद्रूपसेवार्थ सृष्टि है. वो मानस भी हो सके है, अमानसिक भौतिक भी हो सके है.

**गो. शरद् :** “बाह्याभ्यन्तरभेदेन रूपेभेदद्वयं मतम्”.

**गो.श्या.म. :** हां. दोनों रूप हो सके हैं. आभ्यन्तररूप मटीरियल् नहीं होके मेंटल् होयगो. बाह्यरूप इनिशियली मेंटल् नहीं होके मटीरियल् होयगो पर जा बखत अपन वामें अपने भावकी प्रतिष्ठा करे हैं तब वहां मेंटल् (सेंटिमेंटल्) और मटीरियल दोनों रूपनकी सिन्थेसिस् हो जावे है. वो सिन्थेसाईज्ड रूप है. न वो केवल मटीरियल् है, न वो केवल मेंटल् है. क्योंकि अपनने अपनो मनोभाव वहां स्थापित कियो है के ये मेरो ठाकुर है. जामें अपनने अपनो भाव स्थापित कियो है वो फिनोमिना मटीरियल् है. वाकु श्रीहरिरायजी आवरण-निरावरणके भेदसुं समझावें हैं. मेंटल्कु वो निरावरण कहेंगे और

मटीरीयलकु पात्रस्थानी मानके मेंटलकु रसस्थानी मानेंगे. ये हरिरायजीको एप्रोच् है. पर श्रीगुसांईजीने तो पुरुषोत्तमप्रतिष्ठाप्रकारमें एकदम स्पष्ट कर रख्यो है और श्रीमहाप्रभुजीने भी स्पष्ट लिख्यो है “**परं यत्र हस्तः तत्र हस्तः**”. यासु सावरण-निरावरणकी चिन्ताकी कोई बात ही नहीं है. ...यामें एक खूबसूरती देखो के जब आपने भाव स्थापित कियो तब आपकी सेवा-कथा दोनों चलेगी. क्योंकि आप मटीरीयल और मेंटल् दोनों स्वरूपनके साथ डील कर रहे हो. मटीरीयल स्वरूप तो सिद्ध है पर मेंटल् स्वरूपकु तो भक्तिभावसु साधनो पडेगो. सिद्धमें साध्यको आरोपण करके वाकु इंटीग्रेटेड बनानो पडेगो. वा इंटीग्रेशनके आधारपे क्योंकि वो मेंटल् है करके वो कथाकु रेसिप्रोकेट करेगो. और मटीरीयल है वाके कारण वो तनुवित्तजाकु रेसिप्रोकेट करेगो. आपको तनु और आपको वित्त मटीरीयल है. मटीरीयलकु मटीरीयल स्वरूप रेसिप्रोकेट करे है और आपको भाव मेंटल् है ...ठाकुरजीकी ही बात नहीं कोई भी बात लो. जैसे अपन इतिहास पढ़ें हैं. वो पढ़के वाके बारेमें अपनी एक मेंटल् इमेज बन जावे है. वो इमेज कभी-कभी १००% एक्युरेट होवे है. क्रिमिनलकु पकडनेकेलिये वाके वर्णनके आधारपे वाको चित्र पुलिस बनवाती होवे है. कभी वो इमेज १००% टेली होती होवे है. लौकिक मनुष्यमें ये सामर्थ्य नहीं है के वाके बारेमें कोईने जो अपने मनमें इमेज बनाई है वाकु वो रेसिप्रोकेट कर सके. पर “**यद्यद्विधा त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय**”के अनुसार प्रभुमें वो विशेष सामर्थ्य है के प्रभु उनकी इमेजके अनुसार अपना रूप बना लेवें हैं : जाकी रही भावना जैसी प्रभुमूरत तिन करली तैसी. प्रभुकी एक मूरत ऐसी भी है. और जब प्रभुकी मेंटल् इमेज इंटेरेक्ट करवे लग जावे, बाहर प्रकट हो जावे, मटीरीयल इमेज भीतर चली जावे तो भक्तिमार्गमें फल सिद्ध हो गयो. और जब तक मेंटल् और मटीरीयल के बीचमें बायफरकेशन रह्यो तब तक आप मूर्तिकी सेवा कर रहे हो और ब्रजाधिपके गुण गा रहे हो. जा दिन आपकु ये फील हो गयो के मेरे घरमें बिराजतो ठाकुर ही ब्रजाधिप है वा दिन मेंटल् इमेज मटीरीयल हो गई और मटीरीयल इमेज मेंटल् हो गई. ये ब्रजाधिपको गृहस्थीकरण और गृहस्थित स्वरूपको ब्रजाधिपीकरण की प्रक्रियाके कारण बनतो भयो इदं तृतीयं स्वरूप है. या तृतीय रूपको फल सेवाफलोक्त फल है. गुणगानको फल मेंटल् रूपको होयगो. ऐसे ही प्रपत्तिको भी फल जरूरी

नहीं है के ब्रजाधिप टाईपको ही होवे. “मम नाथ! यदस्ति योऽस्म्यहम्, सकलं तदिधि तवैव माधव!, नियत-स्वमति-प्रबुद्धिरथवा किन्नु समर्पयामि!” हे नाथ! मेरो जो कछु है, मैं जो कछु हूं वो सब तो तेरो है. मैं तोकु क्या समर्पण कर सकुं? बस उतनो ही समर्पण कर सकुं के जाकु मैने अपनो मान्यो अब मैं वाकु तेरो मानने तैयार हूं. “अवबोधितवान् इमां यथा मयि नित्या भवदीयतां स्वयं, कृपयैव अनन्य भोग्यतां प्रयच्छ मे” अब तुमने ये तो जता दियो के मैं तेरो हूं, ...ये पुष्टिमार्गको फोलोवर्स नहीं कह रह्यो है, अपुष्टिमार्गी कह रह्यो है. पर जो कह रह्यो है वो पुष्टिमार्गके आदर्शकी पराकाष्ठा है. ...मेरो भोग तेरे सिवा दूसरो कोई नहीं करे ऐसी भक्ति मोकु दान कर. अपन अनन्याश्रय और अनन्यासक्ति की बात करे हैं वाकी पेराफ्रेज़िंगमें रामानुजनने शब्द घड्यो है ‘अनन्यभोग्यता’. मेरो भोग ओर कोई नहीं करे. मेरो भोग केवल तू ही करे. और तोकु लगे है के मैं वाके लायक नहीं हूं तो कह रहे हैं के “तव दास्यसुखैकसङ्गिनां भवनेष्वपि कीटजन्म मे, इतरावसथेषु माऽस्मभूद् अपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना” तेरो दास्य करनेवालेनके घरमें तू मोकु कीडा बनायेगो तो भी मैं आनन्दसुं वहां रहूंगो. पर दूसरे घरनमें जहां तेरी सेवा नहीं होती होवे वहां तू मोकु ब्रह्माजी मत बनाईयो! इतनी बात ध्यान रखियो यदि तू मोकु तेरो मानतो होवे तो. याको जस्टिफिकेशन दे रहे हैं के “सकृत् त्वदाकारविलोकनाशया तृणीकृताम् उत्तममुक्तिभुक्तिभिः”. एक बार तेरो रूप दीखे वाके सामने उत्तम मुक्ति-भुक्तिकु मैने घासके तिनका बराबर मान्यो है. “माहात्म्यभिर् माम् अवलोकयाच्युत क्षणेऽपि यद् विरहोऽति दुःसह”. एक बखत वो माहात्म्य तो दिखा, अब एक क्षण भी तेरो विरह दुःसह है. ये रूपसेवा है के नहीं! इनके घरमें कोई ठाकुरसेवा नहीं हती.

**गो. शरद् :** अब विचारणीय ये रहे है के जब ब्रह्मसूत्रके फलाध्यायमें मर्यादाफल और पुष्टिफल के बीचमें इतनो बडो तारतम्य बतायो जा रह्या है, मर्यादाफलकु तुच्छ कह दियो है. ऐसेमें यदि पुष्टिमार्गीय शरणागत और गुणगानपरायण कु भी वैसो ही पुरुषोत्तमसायुज्य प्राप्त होतो होवे तो...

**गो.श्या.म. :** ...वो बात मेरे मनमें हती पर छूट गई. एक बात समझो. श्रीमहाप्रभुजीने याकी केसलिंग् करके रखी है के जासु ऐसे तोपके गोलाएं उनकी सिस्टमके ऊपर न फूटें. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के जितने भी मुक्त भक्त हैं उनकुं



भगवान् अपने अलमारके रूपमें अपने श्रीअङ्गपे धारण करें हैं. करके प्रभुकी कौस्तुभ मणीकु मुक्त जीवनकी समष्टि मानी है. कुण्डलनकु सांख्य-योगसु मुक्त भये जीवनकी समष्टि मानी है. ऐसे सब मुक्त जीवनको प्रभुकी शृंगारकी सेवामें उपयोग हो जावे है. या अर्थमें मुक्तोपसृप्य मान्यो है. ये रूपसेवा भई के नहीं? जानवरनकु पालनेके शौकीन गुसांई बालकनके फोटो देखोगे तो ऐसे कई फोटो मिलेंगे के जामें कोईके कंधापे तो कोईके हाथपे पोपट-मैना बैठे भये होवें. ऐसे ही ठाकुरजी भी वा तरहके जीवनकु अपने आभरणके रूपमें धारण करें हैं.

गो. शरद् : ऐसी स्थितिमें कथासु प्राप्त होते सायुज्यमें और शरणागतिसु प्राप्त होते सायुज्यमें क्या भेद?

गो.श्या.म. : सुबोधिनीमें श्रीमहाप्रभुजी एक ठिकाने लिखे हैं के कोई भक्तकु ठाकुरजी अपनी अलकादिकके रूपमें स्थान देवें हैं.

गो. शरद् : मर्यादाभक्त और पुष्टिभक्त दोनोंनकु एक तरहको सायुज्य प्राप्त होवे ये क्लिष्टकल्पना लगे है.

गो.श्या.म. : वो या लिये के भगवान् केलिये जो क्लेश है वो अपने लिये अक्लेश है और अपने लिये जो क्लेश है वो भगवान् केलिये अक्लेश है.

गो. शरद् : प्राचीन व्याख्याकारनने याको समाधान अधिकारभेदसु कियो है. कोईकु मर्यादापुष्टि माने हैं, कोईकु पुष्टिमर्यादा माने हैं.

गो.श्या.म. : जैसे भी कियो होवे पर क्लेशकी जो बात है वो अपने लिये क्लेश है. क्योंकि “कृत्वा तावन्तमात्मानम्” अपनेलिये महान् क्लेशकी घटना है. यदि अपनकु “कृत्वा तावन्तमात्मानम्” करवानो होवे तो कोई क्लोनिंग् करनेवालेके पास जानो पडेगो. पर भगवान् बिना क्लेश सेल्फ क्लोनिंग् कर सकें हैं. तो समझनेकी बात ये है के मुक्त जीवनकु भगवान् अपने श्रीअङ्गपे धारण करे हैं ये श्रीमहाप्रभुजीने खुलासा कियो है.

गो. शरद् : वामें मर्यादाभक्त भी हैं.

गो.श्या.म. : वामें चिन्ताकी कोई बात नहीं है.

गो. शरद् : फिर पुष्टिजीवको वैशिष्ट्य क्या?

गो.श्या.म. : वैशिष्ट्य ये ही के कोईकु भगवान् कंठपे धारण करेंगे, कोईकु चरणमें धारण करेंगे. मर्यादाजीवकु चरणमें धारण करेंगे, पुष्टिजीवकु कंठमें धारण करेंगे. सायुज्यके अर्थमें मुक्त जीव एक हैं पर स्थानभेद तो है न! अपने यहां

स्पष्ट कह्यो है के मुखारविन्दकी भक्ति पुष्टिभक्ति है, चरणारविन्दकी भक्ति मर्यादाभक्ति है.

**गो. शरद् :** याही प्रसङ्गमें सुबोधिनीमें ये भी कह्यो है के सांख्य-योगकी प्रणालीसुं मुक्त भये जीव प्रभुके कुंडल बन जावे हैं. पर प्रभुके कपोलादिको स्पर्श नहीं कर सके हैं वाके कारण उनकु अन्य भक्तनकी ईर्ष्या होवे है. मर्यादाजीव होते भये भी प्रभुके उतने निकट पहुँच गये हैं! ये बात ऐसी है के जो सहजतासु दिमागमें उतरे नहीं है.

**गो.श्या.म. :** यामें क्लेशकी कोई बात नहीं है. भगवान् जब श्रुतदेव और विदेह दोनोंके यहां एक ही समय पधारे तब दोनोंनके मनमें हतो के भगवान् मेरे यहां ही पधारे. पर भगवानकु कोई क्लेश नहीं है. भगवान् दोनों जगह एक साथ पधार आये!



# ગ્રંથ સંન્યાસનિર્ણયમાં ફલસંબંધી નિરૂપણ

અસિત શાહ

## ઉપક્રમ :

સાધનાના ફલ બે પ્રકારના હોઈ શકે છે : એક તો અભિલષિત હોય તે અને બીજા પરિણતિરૂપ. પરિણતિ ક્યારેક સારી હોય તો ય અભિલષિત ન પણ હોય. તો ક્યારેક સાધના ઊંધી દિશા પકડી લે તો પરિણતિ પણ ઊર્ધ્વગતિને ઠેકાણે અધઃપાત હોઈ શકે છે. તેને જ બીજા શબ્દોમાં સ્વાર્થભ્રંશ અને પશ્યાત્તાપ કહી શકાય. એક સમર્થ આચાર્યથી અનુયાયીને એવી અપેક્ષા રહે કે તેઓ એવો ગતિનિર્દેશ કરે જેનાથી અવળી પરિણતિરૂપ ફળ પ્રાપ્ત ન થતાં અભિલષિત ફળ પ્રાપ્ત થાય.

જેમ ગૃહસ્થિતિપૂર્વક ભગવદ્ભજનવિષયક સર્વાંગી ઉપદેશ શ્રીઆચાર્યચરણે આપેલ છે તેમ ગૃહત્યાગપૂર્વક સંન્યાસ લઈને ભગવદ્ભજન કરવા બાબત આ સંન્યાસનિર્ણય ગ્રંથમાં નિરૂપણ છે. ગ્રંથનું નામ સૂચવે છે તેમ અહીં નિર્ણય આપેલ છે, ચુકાદો આપેલ છે.

સર્વનિર્ણયનિબંધના સાધનપ્રકરણમાં ઘરમાં ભજન શક્ય ન હોય તો જે તીર્થાટનપૂર્વક ભજનનિર્વાહનો કલ્પ બતાવેલ છે તે અહીં વર્ણિત ભક્ત્યુત્તર સંન્યાસના કલ્પથી નોખો છે. તીર્થાટન તો પ્રપત્તિ કે મર્યાદામાર્ગિય ભજનરીતિનો આરંભદશાનુરૂપ શાસ્ત્રાનુમોદિત કલ્પ છે. વળી ભક્તિવર્ધિનીમાં આરંભદશામાં ગૃહત્યાગ કરી સેવાકથાપરાયાણ ભગવદીયનો યોગ્ય અંતર રાખી સંગ કરવાનો કલ્પ ઉપદેશેલ છે તે ય નોખો છે.

## ગ્રંથશૈલી અને વિષય :

ષોડશગ્રંથો પ્રકરણગ્રંથો છે છતાંય તેમાં શ્રીઆચાર્યચરણની પ્રતિભાની વિવિધ છટા જોવા મળે છે. જો શ્રીયમુનાષ્ટકમાં પુરાણોને અનુસરતા ભક્તની છટા છે તો બાલબોધમાં સાંખ્યશૈલી જોવા મળે છે. તેમ પુષ્ટિપ્રવાહમર્યાદામાં વ્યાસાનુગામી વેદાંતી ભાષ્યકારની છટા છે તો અહીં એક વિલક્ષણ ન્યાયશૈલી દૃષ્ટિગોચર થાય છે. તે એવી રીતે કે વિલિત હોવાની શાસ્ત્રપ્રામાણ્યવાદીની શાસ્ત્રવચનોપન્યાસની પ્રચલિત શૈલી ન અનુસરતા અહીં નિર્ણય લેવામાં ન્યાયપ્રક્રિયાનો ઉપયોગ કરેલ છે. કારણ એ કે કર્મ-જ્ઞાન-ભક્તિના માર્ગોમાં સંન્યાસ વિલિત છે કે નહીં તેનો શાસ્ત્રવચનોને આધારે નિર્ણય

આપવો દુષ્કર છે; બધા માર્ગમાં સંન્યાસ લેવાનું ઉપદેશતા વચનો મળી રહે છે. અહીં તો **“બલવદનિશ્ચાનનુબન્ધિત્વે સતિ ઈષ્ટસાધનત્વે સતિ કૃતિસાધ્યત્વં નામ વિહિતત્વમ્”**નો ન્યાયશાસ્ત્રીય માપદંડ નિર્ણય લેવામાટે અપનાવેલ છે. ત્રણ શરતો પૈકી પહેલી બે શરતોમાં જ કર્માંગ-કર્મોત્તર-જ્ઞાનાંગ-જ્ઞાનોત્તર-ભક્ત્યંગ આટલા સંન્યાસને અહીં ગેરલાયક ઘોષિત કરેલ છે. ભક્ત્યુત્તર સંન્યાસ ત્રીજી શરત કૃતિસાધ્યત્વ માટે ગેરલાયક છે; **“દુર્લભોડયં પરિત્યાગઃ પ્રેમણા સિધ્ધિતિ નાન્યથા”**. પણ તે તેનું દૂષણ ન હોઈને ભૂષણ છે, કેમકે તેથી ભક્ત્યુત્તર સંન્યાસ રાગતંત્ર કે પ્રેમસ્વભાવતંત્ર સિદ્ધ થાય છે, પુરુષતંત્ર નહીં. આમ ત્રીજી શરતની ઉપેક્ષા કરી પહેલી બે શરતોમાં સુપેરે પાર ઉતરતો હોવાથી ભક્ત્યુત્તર સંન્યાસ વિહિત તેમ જ પ્રશસ્ત છે તેવો નિર્ણય આપેલ છે.

આઠ ટીકાકારોના શબ્દોમાં સરળતાથી સમજવું હોય તો કયા માર્ગમાં સંન્યાસ લેવો કે ન લેવો, ક્યારે લેવો, કેવી રીતનો લેવો, કયા પ્રયોજનથી એટલે કે શા માટે લેવો તથા લીધા પછી કેવી દશા / સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય તેનો અહીં નિર્ણય કરેલ છે.

### ગ્રંથ અને સાધનાની સંગતિ :

ષોડશગ્રંથસંગતિમાં ૧૪મો સંન્યાસનિર્ણય પંચપદ્યાનિ અને નિરોધલક્ષણની વચ્ચે આવે છે તે બાબત હવે વિચારીએ. પૂર્વેના ચતુશ્લોકી અને ભક્તિવર્ધિનીમાં સર્વભાવથી સર્વદા સેવા-કથામય ભગવદ્ભજન કરવાનું ઉપદેશલ છે. સેવાવિષયક વિચાર તે પૂર્વેના સિદ્ધાન્તમુક્તાવલી અને સિદ્ધાન્તરહસ્યમાં કરેલ છે તેથી ભક્તિવર્ધિની પછીના જલભેદ અને પંચપદ્યાનિમાં કથાવિષયક વિચાર છે. પંચપદ્યાનિમાં કનિષ્ઠ શ્રોતાના લક્ષણો બતાવતાં શ્રીઆચાર્યચરણ આજ્ઞા કરે છે કે **“નિઃસન્દિગ્ધં કૃષ્ણાતત્ત્વં સર્વભાવેન યે વિદુઃ, તે ત્વાવેશાત્ તુ વિકલા નિરોધાદ્ વા ન ચાન્યથા, પૂર્ણભાવેન પૂર્ણાર્થા કદાચિત્ ન તુ સર્વદા”**. આમાં પૂર્વોક્ત ગ્રંથોમાં વર્ણિત સર્વભાવને અહીં સાધનાની ઉત્તરાવસ્થામાં પૂર્ણભાવ પર ન્યોછાવર કરી પૂર્ણભાવની પ્રાપ્ત્યર્થે આવેશની અને નિરોધની એવી બે પ્રક્રિયાનો નિર્દેશ કર્યો છે. તે પૈકી આવેશની પ્રક્રિયા સંન્યાસનિર્ણયમાં અને નિરોધની પ્રક્રિયા નિરોધલક્ષણમાં વિસ્તારપૂર્વક સમજાવેલ છે.

સર્વભાવ અને પૂર્ણભાવ આમ જોઈએ તો એક નિરુપાધિક ભક્તિભાવની જ પૂર્વાવસ્થા અને ઉત્તરાવસ્થા છે, પણ સર્વ અને પૂર્ણ એ વિશેષણો તેમના વિશિષ્ટ ભાવને નોખા કરી દે છે. સર્વભાવ વ્રજાધિપના સર્વાંગી ભજનને અનુરૂપ છે. વ્રજભક્તોના પ્રભુ પોતાના પુત્ર-સખા-નાથ વગેરે હોવાના ભાવોનું ભાવન સાધનાની પૂર્વાવસ્થામાં અપેક્ષિત છે. ભાવવર્ધન થતાં આહુદ્દશામાં તે પૈકીનો એક ભાવ પૂર્ણ થઈ જતાં એકાંગી

ભજન થવા લાગે છે. આને સમજવા બ્રહ્મજ્ઞાનીની સખંડાદૈત અને અખંડાદૈતની અનુભૂતિઓને સમજવી રહી. બંને શ્રીઆચાર્યચરણના મતે પૂર્ણાનુભૂતિ છે છતાં ય એકમાં બ્રહ્મની સાથે સાથે બ્રહ્મના સર્વ નામ-રૂપોના ખંડ અનુભવાય છે જ્યારે બીજામાં બ્રહ્મને બાદ કરતાં કોઈ નામરૂપોના ખંડ નથી અનુભવાતા ! આવું જ કાંઈક પૂર્ણભાવનું છે; “નાલિન રહ્યો મનમેં ઠૌર”. સર્વભાવના સમર્થન માટે ધીરજથી લડતા શૂરવીર શ્રીઆચાર્યજી પૂર્ણભાવની વાત આવતાં જ કેસરિયા કરી જ્ઞાનવાદી પર તૂટી પડવાના રંગમાં આવી જઈ “હરિરત્ર ન શકનોતિ કર્તુ બાધા” ને “બાધશંકાપિ નાસ્ત્યત્ર” ઉદ્ઘોષ કરે છે ! ભક્તિની આડઢદશાના સમર્થક શૌર્યની આડઢદશાને પ્રાપ્ત કરે છે ! આવો છે આપશ્રીનો પૂર્ણભાવનો પક્ષપાત ! અહીંથી સંન્યાસનિર્ણય અને નિરોધલક્ષણની વાત આરંભાય છે.

આવેશની પ્રક્રિયા રસશાસ્ત્રીય પ્રક્રિયા છે તો નિરોધની પ્રક્રિયા ભગવચ્છાસ્ત્રીય પ્રક્રિયા છે. રસશાસ્ત્રીય પ્રક્રિયામાં અંતઃકરણમાં અનુભવાતો સ્થાયીભાવરૂપ રસ બહિઃકરણોમાં ફેલાઈ સર્વત્ર વ્યાપ્ત થઈ રહે છે. તો ભગવચ્છાસ્ત્રીય પ્રક્રિયામાં બહિઃકરણોથી થતી ભગવદાનુભૂતિ અંતઃકરણને પાણ નિરુદ્ધ કરી દે છે કે “ભગવતા સહ સંલાપઃ દર્શનં... ઈદમેવેન્દ્રિયવતાં ફલમ્.” રસાવિષ્ટ મન પ્રવાહમાં વહેતી નૌકા જેવું સ્વૈરવિહારી હોય છે, તો નિરુદ્ધ મનનું સુકાન ભગવાન સંભાળે છે. રસાનુભૂતિની ક્રમિક અવસ્થાઓ જાગરણ-તનુતા-વિષયદ્રેષ-લજ્જાત્યાગ-ઉન્માદ-મૂર્છા-મરણ છે તો નિરોધની ક્રમિક અવસ્થાઓ “નિરોધો યદિ સર્વસ્માત્, સ્વસ્મિન્, સ્વસ્ય ચ તેષુ હિ” છે. આટલું સમજી હવે ગ્રંથવિષય પર જઈએ.

### ભક્ત્યુત્તર સંન્યાસનું નિરૂપણ :

વિસ્તારભયે અહીં સંન્યાસની બધી શક્યતાઓ બાબતના નિરૂપણને ન આવરતાં કેવળ ભક્ત્યુત્તર સંન્યાસ પર ધ્યાન કેન્દ્રિત કર્યું છે. તેને લગતા શ્લોકો નીચે મુજબ છે :

વિરહાનુભવાર્થં તુ પરિત્યાગઃ પ્રશસ્યતે । સ્વીયબન્ધનિવૃત્ત્યર્થં વેષઃ સોત્ર ન ચાન્યથા ॥  
કૌણ્ડિન્યો ગોપિકાઃ પ્રોકતા ગુરવઃ સાધનં ચ તત્ । ભાવો ભાવનયા સિદ્ધઃ સાધનં નાન્યદિધ્યતે ॥  
વિકલત્વં તથાઽસ્વાસ્થ્યં પ્રકૃતિઃ પ્રાકૃતં ન હિ । જ્ઞાનં ગુણાશ્ચ તસ્યૈવં વર્તમાનસ્ય બાધકાઃ ॥  
બહિશ્ચેત્ પ્રકટઃ સ્વાત્મા વહ્નિવત્ પ્રવિશેદ્ યદિ । તદૈવ સકલો બન્ધો નાશમેતિ ન ચાન્યથા ।  
ગુણાસ્તુ સંગરાહિત્યાત્ જીવનાર્થં ભવન્તિ હિ । ભગવાન્ ફલરૂપત્યાત્ નાત્ર બાધક ઈધ્યતે ।  
સ્વાસ્થ્યવાક્યં ન કર્તવ્યં દયાલુર્ન વિરુદ્ધતે । દુર્લભોઽયં પરિત્યાગઃ પ્રેમગ્ના સિધ્યતિ નાન્યથા ।  
અત્રારમ્ભેનનાશઃ સ્યાદ્દૃષ્ટાન્તસ્યાપ્યભાવતઃ । સ્વાસ્થ્યહેતોઃ પરિત્યાગાદ્બાધઃ કેનાસ્ય સમ્ભવેત્ ? ॥  
હરિરત્ર ન શકનોતિ કર્તુ બાધાં કુતોઽપરે । અન્યથા માત્રો બાલાન્ ન સ્તન્યૈઃ પુપુષુઃ ક્વચિત્ ॥  
જ્ઞાનિનામપિ વાક્યેન ન ભક્તં મોહયિષ્યતિ । આત્મપ્રદઃ પ્રિયશ્યાપિ કિમર્થં મોહયિષ્યતિ ! ॥

પહેલાં આ શ્લોકોને સંક્ષેપમાં ટીકાઓને આધારે સમજીએ. અહીં સંન્યાસ પૂર્ણભગવદ્ભાવની પકવદશા = વ્યસનને પ્રાપ્ત કર્યા બાદ લેવાનો અભિપ્રેત છે. તેનું પ્રયોજન વિરહાનુભવાર્થ અને સ્વીયબન્ધનિવૃત્ત્યર્થ એમ સૂચવ્યું છે. સંન્યાસ લઈ શું કરવું તે માટે (૧) આવશ્યક હોય તો વેષધારણ, (૨) ઉપદેષ્ટા તરીકે નહીં તો માર્ગ પ્રકટ કરનાર અને આચરણમાં લાવનાર તરીકે ગુરુપદે શ્રીગોપીજનો અને કૌણ્ડિન્યનું સ્થાપન તથા (૩) તેમના ભાવોની ભાવના કરવારૂપ સાધનમાં પ્રવૃત્તિ ઉપદેશલ છે. ત્યાર બાદની દશા સમજાવતાં વિકલતા અને અસ્વાસ્થ્યને સ્થાયીરસાનુભૂતિના અનુભાવ તરીકે બિરદાવેલ છે. જેમ દુઃખના આંસુ અને આનન્દાશ્રુ એક નથી હોતા તેમ આ વિકલતા અને અસ્વાસ્થ્ય પ્રાકૃત નથી હોતા. આ દશામાં નિર્બળ અનિષ્ટ = બાધકોની સૂચિ વિલક્ષણ છે દ્વં નિરોધાતુર આલંબનવિભાવરૂપ પ્રાકટયાતુર હરિ સ્વયં, ભગવદ્ગુણો, ભગવદ્જ્ઞાન, ભગવત્કૃત મોહ, જ્ઞાનીવાક્યસંગ, સ્વાસ્થ્ય, બંધનાશ, વ્યામોહિકા માયા. તો ઈષ્ટસાધનતાના સબળ સાધક છે દ્વં સ્થાયીભાવ પ્રેમ, ભક્તવત્સલ દયાળુ આત્મપ્રદ પ્રિય ફલરૂપ હરિ, વૈષ્ણવી યોગમાયા.

### ફલવિચાર :

સંન્યાસનિર્ણય પર આઠ ટીકાઓ છે. બધા ટીકાકાર શ્રીઆચાર્યચરણની વાણીનું અવગાહન કરી ષોડશગ્રંથો પર ટીકા લખવા માટે પ્રસિદ્ધ છે. ઘણે અંશે તેઓમાં એકમતિ પાણ છે. ખાસ કરીને શ્રીભાગવતજી તથા ભવિષ્યોત્તરપુરાણના અનેક સંદર્ભો પરિશ્રમપૂર્વક અહીં તેમણે સંકલિત કરેલ છે. વિસ્તારભયે પ્રત્યેક ટીકાના અંશો અહીં ઉદ્ધૃત નહીં કરું.

ભગવાન જ ફલરૂપ છે એ બાબત કોઈ મતભેદ નથી. રસાત્મક ભગવદનુભૂતિને પરમફલ માનવામાં બધા ટીકાકારો એકમત છે. પૂર્ણરસાનુભૂતિ કે બીજા શબ્દોમાં રસાનુભૂતિની પરાકાષ્ઠા શું એ નક્કી કરવા જો કે તેઓ પ્રાયઃ રસશાસ્ત્રનો આધાર લે છે. રસશાસ્ત્રને અનુસરતાં વિચાર કરનારા શૃંગારરસને સર્વોત્તમ માને છે અને તેના બે દલ સંયોગ અને વિપ્રયોગનો પરિપૂર્ણ અનુભવ થાય તેને પરાકાષ્ઠા માને છે. બધા ટીકાકારો એ વાતે સહમત છે કે ઘરમાં તનુવિત્તજ્ઞ સેવાકર્તાને સંયોગનો પરિપૂર્ણ અનુભવ થઈ વ્યસન થઈ જતાં અનવસરમાં વિરહ થવા મંડે તે પછી તે સંન્યાસનિર્ણયોક્ત ભક્ત્યુત્તર સંન્યાસનો ઉપદેશનો અધિકારી બને છે. આવો સંન્યાસ લઈ તેઓ વિપ્રયોગનો પરિપૂર્ણ અનુભવ લઈ રસશાસ્ત્રોક્ત પરાકાષ્ઠાપત્ર દશમાવસ્થા મરણને વિના વિલંબે પ્રાપ્ત કરી લીલાસૃષ્ટિમાં પ્રવેશ કરે છે. લીલાસૃષ્ટિમાં તો સંયોગ-વિપ્રયોગ ઉભયભાવાત્મક ભગવદાનન્દાનુભવ નિરંતર થતો રહે છે જે ત્યાં પરમફલ છે. ભૂતલ પર પરમફલ દશમાવસ્થાની પ્રાપ્તિ તેઓ માને છે.

શ્રીપુરુષોત્તમજી આ ક્ષલાનુભવની પ્રક્રિયાને સમજાવતાં વિરહના ત્રણ તબક્કાને અનુરૂપ ‘વિરહાનુભવાર્થ’પદના ત્રણ યૌગિકાર્થ સૂચવે છે : વિરહના અનુભવાર્થ, વિરહસામયિક અનુભવાર્થ અને વિરહોત્તરભાવિ અનુભવાર્થ. વિરહસામયિક અનુભવમાં આસક્તિભ્રમન્યાયે ભગવત્સન્નિધિમાં થતી ચેષ્ટાઓ રૂપ વિકલતા તથા અસ્વાસ્થ્યને ગણાવેલ છે. વિરહોત્તરભાવિ અનુભવમાં તેમના મતે બહિઃસાક્ષાત્કાર તો અન્યોના મતે દશમાવસ્થા છે. આ પરાકાષ્ઠાની અનુભૂતિ ચિરકાલીન ન હોઈને થોડી ક્ષણો પૂરતી મર્યાદિત જ હોવાની. પણ તોય ટીકાકારોને મતે તે ક્ષણો પર અનેક જન્મો ન્યોછાવર છે.

આ રસશાસ્ત્રને અનુરૂપ ઈષ્ટસાધક પ્રક્રિયામાં કેટલેક અંશે “**યેન ત્યજસિ તત્ ત્યજ**”નો જ્ઞાનમાર્ગસદૃશ કાર્યક્રમ જણાય છે; સ્વેચ્છયા નહીં તો રસપરવશતાથી. તે એ રીતે કે અગ્રિમાનુભૂતિમાં બાધ કરી શકે તેવી પૂર્વાનુભૂતિ સમયની કારણસામગ્રી અહીં છૂટતી જાય છે. વિભાવાનુભાવસંચારીભાવોથી નિષ્પન્ન થયા બાદ સ્થાયીભાવરૂપ રસની અનુભૂતિમાં વિભાવાદિ પાછા આવે તો સ્વાસ્થ્ય આવે છે, જે વિરહની ઉત્કટતા હરી લે. તેથી શ્રીઆચાર્યચરણ આજ્ઞા કરે છે તેમ “**સ્વાસ્થ્યહેતોઃ પરિત્યાગાત્ બાધઃ કેનાસ્ય સમ્ભવેત્**”. તો જે ભગવત્લીલા ને ભગવદ્ગુણો ય સ્થાયીભાવની નિષ્પત્તિમાં કારણભૂત થયેલ તે “**એવં વર્તમાનસ્ય બાધકાઃ**” થઈ જાય છે ! આમાં વચ્ચે ભગવાન પ્રકટ થઈ જાય તો તેઓ પણ બાધક જ સિદ્ધ થાય !

આ મારા મતે જો કે એક પ્રક્રિયા છે, એકમાત્ર નહીં. કોઈક જીવોનું વરણ જ તે પ્રકારનું પ્રભુ કરે કે વિરહમાં દશમાવસ્થા પ્રાપ્ત કરી સદ્યોમુક્તિ પ્રાપ્ત કરી તેઓનો લીલાપ્રવેશ કરાવે. વળી આ પ્રક્રિયા પર સર્વાત્મભાવવાળાનો ઈજારો ન રહી શકે. એક ટીકાકારના મતે અન્તર્ગૃહગતા ગોપીજનોને ય દશમાવસ્થાનુભૂતિપૂર્વક સદ્યોમુક્તિ પ્રાપ્ત થયેલ.

આ પ્રક્રિયા શ્રીઆચાર્યચરણના ઉપદેશના મુખ્ય પ્રવાહને અનુરૂપ પણ નથી જ. કેમકે તેમાં ભગવન્માહાત્મ્ય ગૌણ બની રસશાસ્ત્રનું માહાત્મ્ય ઉભરે છે. ભગવાન ક્યારેક રસશાસ્ત્રને અનુસરી અનુભવ કરાવે પણ તેનો અર્થ એવો નહીં કે તેમ કરવા તેઓ બંધાયેલ છે. આ માટે સંક્ષેપમાં નિરોધની પ્રક્રિયા સમજવી રહી.

નિરોધની પ્રક્રિયામાં ભગવાન નાયક બની લીલા કરતા રહી ચાહે તે દિશામાં ભક્તને દોરે છે. દશમસ્કન્ધસુબોધિનીજી તથા નિરોધલક્ષણમાં આ પ્રક્રિયા પ્રત્યેનો શ્રીઆચાર્યચરણનો પક્ષપાત સ્પષ્ટ જણાય છે. ક્યાં તો આ સંન્યાસનિર્ણયિના ઉપક્રમોપસંહારમાં સ્વાર્થબ્રંશ અને પશ્યાત્તાપની નિવૃત્તિ માટેના ઉદ્યમનો ઘોષ અને ક્યાં

“નાતઃ પરતરો મન્ત્રો નાતઃ પરતરઃ સ્તવઃ નાતઃ પરતરા વિદ્યા તીર્થ નાતઃ પરાત્પરમ્”નો નિરોધનો જયઘોષ ! શ્રીગોપીગીતસુબોધિનીજીમાં શ્રીઆચાર્યજી આજ્ઞા કરે છે કે પ્રભુ તો મધુરાધિપતિ રસપિંડ છે, રસ કરતાં ચડિયાતા. શ્રીગુસાંઈજી પણ “એતાસાં તુ અધુનૈવ બહિઃપ્રાકટ્યમભિલષિતં, તદૈવ ઈશ્વરવાદો અન્યથા શૂન્યવાદઃ” આજ્ઞા કરી ભગવત્પક્ષપાત પ્રકટ કરે છે. શ્રીમહાપ્રભુજીના દિલોદિમાગ પર ભગવદ્ગીલા એટલી છવાયેલ છે કે ઉપરોક્ત વિરહાનુભૂતિની પ્રક્રિયામાં બાધકોની સૂચિ બનાવતાં સૌપ્રથમ આપશ્રીને તામસ સાધનપ્રકરણના લીલાકર્તા પ્રભુ દેખાય છે. વ્રજભક્તો જે સાધન કરવા જાય તેમાં પ્રભુ વિઘ્ન કરેદ્ર કુમારિકાઓનું કાત્યાયનીવ્રત, વિપ્રોનું યજ્ઞકર્મ, શ્રીનન્દરાયજીની અમ્બિકાવનયાત્રા, ઈન્દ્રયાગાદિ. દરેક સાધનને અસાધન કરે તેવા અદ્ભુતકર્મા નટખટ પ્રભુ ભક્તને શાંતિથી વિરહાનુભૂતિ કરવા દે ખરા ? પણ ટીકાકારોના મતે તેવા ભક્તનું પરોક્ષ ભજનાનંદદાનાર્થ પ્રભુએ વરણ કરેલ હોય તો બાધા ન કરતાં પોતે તેમના ઋણી છે એમ માની ન છંછેડતા ઉત્કટ વિરહ થવા દે છે. આમાં ભક્તવત્સલ પ્રભુની મહાનતા છે, રસશાસ્ત્રની નહીં. એ વચન ચોક્કસ શ્રીઆચાર્યચરણનું જ છે કે “કૃષ્ણાધીના તુ મર્યાદા સ્વાધીના પુષ્ટિરુચ્યતે”, પણ તેમાં ભગવાનને કેટલી મજા આવે ? તેમની દયાલુતા ને વત્સલતા કે ઋણિતા કે મહાનતા પ્રકટ થાય પણ પ્રત્યક્ષ રમણનું શું ? જો ભગવાનને મજા આવતી હોય તો કૃષ્ણાધીન થવાની મર્યાદાને ગ્રહણ કરવામાં શું વાંધાજનક હોઈ શકે ?

તેથી મારા મતે આ વિરહાનુભૂતિને પરમફલ માનવી પર્યાપ્ત છે; તેને એકમાત્ર પરમફલ કહેવી વધારે પડતું છે. દશમાવસ્થાનો જ આગ્રહ રાખવો અતિરેક છે. પૂર્ણાનુભૂતિ=રસના દ્વિદલની અનુભૂતિ એ સમીકરણ લૌકિક રસાનુભૂતિ પૂરતું બંધબેસતું હોઈ શકે પણ ભગવદનુભૂતિ તેને ન ય અનુસરે. ભક્તિ સ્થાયિભાવાપન્ન સુદૃઢ સર્વતોધિક થઈ ગઈ પછી સંયોગ કે વિપ્રયોગ બધું પરાકાષ્ટાપન્ન = પૂર્ણ હોઈ શકે. નિરોધ સિદ્ધ થવો પરાકાષ્ટા છે, વિરહ થકી કે ભગવદ્ગીલા થકી. ભગવાનને જીવનું “યેન ત્યજસિ તત્ ત્યજ” કે “યેન ગૃહીતઃ તં ગ્રહ” પૈકી એકવિધ વરણ કરવાનું સ્વાતન્ત્ર્ય આપવું રહ્યું.

રહી વાત પ્રભુની દયાલુતા ને ભક્તવત્સલતાની. તો સમજવાનું કે વરણના આધારે તેનો નિર્ણય કરવો રહ્યો. આવેશની પ્રક્રિયામાં વરણ કરાયેલ જીવ પ્રતિ પ્રકટ ન થઈ વિરહને ઉત્કટ થવા દેવામાં પ્રભુની દયાલુતા છે તો નિરુદ્ધ જીવ પ્રતિ કલેશ નિવૃત્ત કરે તે ય દયાલુતા જ છે. તેમાં ય બે પ્રક્રિયા છે; ગુણકૃત અને સ્વરૂપકૃત. “ગુણોષ્ઠાવિશ્વચિત્તાનાં સર્વદા મુરવૈરિણઃ સંસારવિરહકલેશૌ ન સ્યાતાં હરિવત્ સુખં તદા ભવેત્ દયાલુત્વં અન્યથા કૂરતા મતા !” તથા “ક્લિશ્યમાનાન્ જનાન્



દ્રષ્ટ્વા કૃપાયુક્તો યદા ભવેત્ તદા સર્વં સદાનન્દં હૃદિસ્થં નિર્ગતં બહિ !” આ નિરોધલક્ષણના શ્લોકો અનુક્રમે તેવી નિરુદ્ધ જીવ પ્રતિની દયાલુતાનો ઘોષ કરે છે. તેને “સર્વાનન્દમયસ્યાપિ કૃપાનન્દઃ સુદુર્લભઃ” કહી શ્રીઆચાર્યજી બિરદાવે છે. તેથી “યદ્ વૈ તત્ સુકૃતમ્” ; ભગવાન ભક્ત સાથે જે કરે તે ઉચિત છે, પરોક્ષભજન પણ પ્રત્યક્ષરક્ષા પણ ને પરીક્ષા પણ. વળી ભક્ત પણ ભગવાન સાથે જે કૃતિ કરે તે ઉચિત છે, પ્રત્યક્ષભજન પણ અને પરોક્ષમાં વિરહ પણ; “મદ્ભક્તિયુક્તો ભુવનં પુનાતિ”.

### ચરિત્રસંગતિ :

શ્રીઆચાર્યચરણે સંન્યાસ લીધો તેને અહીં સાંકળવાનો એકમાત્ર શ્રીપુરુષોત્તમજીએ યત્ન કરેલ છે. જોકે તે ય ભગવદાજ્ઞા થયા પશ્યાત્ ! આના સમર્થનમાં તેઓ અંતઃકરણપ્રબોધના શ્લોકો ઉદ્ધૃત કરે છે. જો કે મને તેના કરતાં નિરોધલક્ષણનો “અહં નિરુદ્ધો રોધેન નિરોધપદવીં ગતઃ” શ્લોક વધારે બંધબેસતો લાગે છે શ્રીઆચાર્યજીની કૃતિ સમજવા. આપશ્રીનું જીવનચરિત્ર ભગવદાજ્ઞાથી દોરાતું જ પ્રતીત થાય છે. ગૃહસ્થાશ્રમનો સ્વીકાર, બ્રહ્મસંબંધદીક્ષાનું પ્રવર્તન, તૃતીયસ્કન્ધ પછી દશમસ્કન્ધ સુબોધિનીજીનું લેખન, એકાદશસ્કન્ધમાં અધવચ્ચે જ લેખનત્યાગ, વગેરે પ્રસંગોમાં નિરોધ સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે. તેથી દેહદેશપરિત્યાગ થકી ભગવદાજ્ઞાનું અનુસરણ અભિપ્રેત લાગે છે; દશમાવસ્થાની અનુભૂતિ લક્ષ્ય નથી લાગતી. તેમાં વચ્ચે સંન્યાસરીતિનું ગ્રહણ કદાચ ભગવદાજ્ઞાનો જ એક ભાગ હોઈ શકે અથવા આસુરવ્યામોહાર્થ વર્ણાશ્રમધર્માનુરૂપ કૃતિ હોઈ શકે.

આ તબક્કે એક વાત એ ય સમજવી રહી કે આવેશની અને નિરોધની બે પ્રક્રિયાઓમાં કોઈ સહાવસ્થાનાસહિષ્ણુતા નથી. જેને પ્રાધ્યાન્યેન વ્યપદેશ ન્યાયે નિરોધની પ્રક્રિયા કહેવાય તેમાં ય વચ્ચે રસાવેશની પ્રક્રિયાને અનુરૂપ ઉત્કટ રસાનુભૂતિ થઈ જ શકે છે. જેમ શ્રીઆચાર્યજી નિરોધપ્રક્રિયાથી દોરાતા હોવા છતાં આપે “હરિ તેરી લીલાકી સુધિ આવે” કીર્તનની એક કડી સાંભળતા જ ત્રણ દિવસ સુધી મૂર્છાવસ્થાને ધારણ કરી. શ્રીઉદ્ધવજી પણ અહર્નિશ ભગવત્સંગી હોવાથી તેમને કોઈ કમી નહોતી અનુભવાતી પોતાની ભક્તિમાં; પણ જ્યારે ભગવાને તેમને વ્રજમાં મોકલ્યા ત્યારે વ્રજભક્તોનો સંગ પામી તેમને રસાવેશનો અલ્પકાલિક અનુભવ થયો. આવી જ રીતે અન્ય પુષ્ટિજીવોને ય સંયોગમાં વચ્ચે વિયોગ કે રસાવેશ થતો રહે તેવું સહજ સંભવ છે. આ રીતે બન્ને પ્રક્રિયાનું સંતુલન જાળવી શકાય છે.

### વાર્તાસંગતિ :

સંન્યાસનિર્ણય જેમને માટે શ્રીઆચાર્યચરણે રચ્યો તે નરહર સંન્યાસીએ તો

સંન્યાસ પહેલેથી જ જ્ઞાનમાર્ગીય પ્રક્રિયાથી લઈ લીધો હતો. તેમને કૃપા કરી ભક્તિમાર્ગમાં દીક્ષિત કરી ભક્તિનું દાન કરી ભક્ત્યુત્તર સંન્યાસનો ઉપદેશ આપી તે માર્ગે અગ્રેસર કર્યા. જીવદાસ સૂરી ક્ષત્રી એક જ દિવસની ગૃહસેવા પહોંચી અનવસરમાં ઉત્કટ વિરહ થતાં સંન્યાસ લેવા રોકાયા વિના જ દશમાવસ્થાને પ્રાપ્ત થયા. તે સિવાય અચ્યુતદાસ ગૌડ, ગુસાંઈદાસ સારસ્વત, બાબા વેનુ-કૃષ્ણદાસ ઘઘરી ક્ષત્રી આદિની વાતમાં તેઓએ સેવામય જીવન વ્યતીત કર્યા બાદ ગૃહત્યાગ કરી વિરહાતુર થઈ ભ્રમણ કરતા દેહત્યાગ કર્યો તેવું ચરિત્ર વર્ણવેલ છે. આવું જ રાજા આશકરણદાસજી, નાગરીદાસજી આદિ ભક્તોના ચરિત્રમાં છે. તેઓ રાજપાટ ઘરબાર છોડી વ્રજમાં ભ્રમણસ્થાપી થયા. નારાયણદાસ કાયસ્થ તેમના ખવાસના ઘડી ઘડીએ પૂછવા પર રસાવિષ્ટ થઈ કામકાજ ભેગા ભેગા જનમભર તદાશ્રય-તદૈયત્વબુદ્ધિપૂર્વક કિંચિત્ ભક્તિનું સમ્પગાયરણ કરી લેતા.

તો સેક પુરુષોત્તમદાસના બેટા ગોપાલદાસ તથા નરોડાના ગોપાલદાસ ક્ષત્રીની વિરહવ્યાકુલતા પ્રભુ હુંકારી ભરી કે પ્રકટ દર્શન આપી અથવા પાસે પધારી ઝારીમાંથી જલપાન કરાવી આવા વિવિધ સાનુભાવ જતાવી દૂર કરતા. આનન્દદાસ વાર્તા કહેતા તેમાં પ્રભુ હુંકારી ભરતા, આ નિરોધની પ્રક્રિયામાં પ્રકટ થતી દયાલુતા ને ભક્તવત્સલતા છે પ્રભુની.

### ઈતિહાસસંગતિ તથા આધુનિક પરિસ્થિતિ :

એક નોંધપાત્ર વાત એ છે કે શ્રીવદ્ધભકુલના કોઈ પરવર્તી બાલકે સંન્યાસ લઈ ગૃહત્યાગ કરી પોતાના સેવકો તેમને અનુસરે તેવો પંથ ચલાવેલ નથી. આ પ્રક્રિયા ચૈતન્યાદિ સંપ્રદાયમાં તથા સૂફીઓમાં દેખાય છે પણ તેનો ચેપ આપણા સંપ્રદાયમાં ફેલાયેલ નથી. એટલું જરૂર છે કે વૈયક્તિક સ્તરે વૃદ્ધાવસ્થામાં પારિવારિક સહયોગના અભાવમાં ઘણા ગૃહસેવાપરાયણ પુષ્ટિપથિકો ગૃહત્યાગ કરી વ્રજ કે શ્રીનાથદ્વારાદિ કે શ્રીમહાપ્રભુજીની બેઠકસ્થલીઓમાં નિવાસ કરી યથાશક્ય ગુણગાનાદિપરાયાણ થઈ ભક્તિમય જીવન જીવે છે. પણ તેવો કોઈ સામૂહિક ફાંટો નથી નિકળી પડ્યો. આનું શ્રેય સંન્યાસનિર્ણયિકાર, આઠ ટીકાકાર તથા પરવર્તી તેમ જ આધુનિક આચાર્યો અને અનુયાયીઓની સૂઝસમજને આપવું રહ્યું.

સંન્યાસની પ્રક્રિયાનું એક સારું પાસું છે સ્વીયબન્ધનિવૃત્તિ અર્થાત્ પારિવારિક જંજાળથી અલિપ્ત રહી સાધના કરી શકાય તેવી સગવડ. જ્ઞાનમાર્ગીય સંન્યાસમાં કુટીચક, બાલુલક, હંસ અને પરમહંસ એમ ચાર વિકલ્પો છે સંન્યાસગ્રહણના. તેમાંના પહેલા કુટીચક સંન્યાસમાં ગૃહત્યાગ કરી ઘરની પાસે જ એક કુટી બનાવી સંન્યાસી તેમાં

જ જીવનભર રહી શક્ય તેટલો અલિપ્ત રહી સાધનાપરાયાણ થઈ શકે છે; ભ્રમણ તેને ફરજિયાત નથી. આને સમાંતર આપણે ત્યાં મરજદ લેવાની પ્રક્રિયા શ્રીમહાપ્રભુજીના સેવકોમાં અલ્પાંશે તો શ્રીગોકુલનાથજીના સમયથી જોરશોરથી અસ્તિત્વમાં આવેલ, જે આજે ય ખાસ કરીને સૌરાષ્ટ્રમાં છૂટીછવાઈ નજરે ચઢે છે. તેમાં પોતાની મરજદની વાડ કે દાયરામાં રહી સાધક પારિવારિક જંજળથી શક્ય તેટલો અલિપ્ત રહી ગૃહસેવાપરાયાણ રહે છે. આવી સેવાપરાયાણ સાધકની પ્રકૃતિમાં અસાવધાનતાવશાત્ ક્રોધ, અહંકાર, સંગદ્રેષ, મરજદનો અત્યાગ્રહ આદિ વિકૃતિઓ દેખાય છે. તેને કારણે પરિવારજનો સેવાવિમુખ થતા અને સંપ્રદાય વગોવાતો પણ જણાય છે. આ વિકૃતિઓ પનપવા ન દેવાય તો મરજદ ભક્તિમાં સહાયક થઈ શકે છે.

તે સિવાય છેલ્લા પંચોતેરેક વર્ષોથી ખાસ કરીને શ્રીહરિરાયજીના વિપ્રયોગપરમફલવાદના આધારે એક પંથ પ્રકટ થવાના આરે છે, જેમાં સેવા ન કરતાં બેઠા બેઠા પલાંઈ મારી સમાનશીલવ્યસનવાળા પથિકો સત્સંગ કરતાં કરતાં રડારોળ કરી વિરહ કરવા મંડે છે ! ગદ્ગદ થઈ પોક મૂકી આંસુ સારે છે કે ભગવાન મથુરા પધારી ગયા ! વધુ વિરહ = વધુ વિકલતાના સમીકરણને બદલે વધુ વિકલતા = વધુ વિરહનું સમીકરણ તેમના મગજમાં ઠસી ગયેલ હોય છે. તેને નિવૃત્ત કરવા સેવા કરવાનું કહીએ તો ભાવ ઠંડો પડી જવાનો ભય તેમને સતાવે છે ! તેથી નિત્યનિયમથી કે છાશવારે ખાસ કરીને રાત્રે આવી ભવાઈ ભજવતા રહે છે. તેમાં પહેલી સિદ્ધિ સદ્બુદ્ધિના વિરહની જ પ્રાપ્ત થાય છે. તો ય કહેવાતા અગ્રગણ્યો પણ ખાસ કરીને પરમ ભગવદીયની પ્રસિદ્ધિ મેળવવાની લાલચે વિરહવમળમાં પોતે ઊડે ઉતરતા જાય છે અને બીજાને ભેગા ભેગા ખેંચતા ચાલ્યા જાય છે. શ્રીહરિરાયજીને આ પ્રક્રિયા અભિપ્રેત હોય તેમ નથી લાગતું છતાં ય આજની તારીખમાં આ પંથ કેટલેક અંશે લોકપ્રિય છે તે હકીકત છે. જો કે કોઈએ તેમાં શીઘ્ર દશમાવસ્થા પ્રાપ્ત કરી હોય તેવું સાંભળ્યું નથી હજુ સુધી ! સ્વાર્થભ્રંશ અનુભવી પશ્ચાત્તાપ કરનારા અનેક દેખાય છે ! ઉપાસનાદિમાર્ગાતિમુગ્ધમોહનિવારક શ્રીઆચાર્યજી તેઓને સદ્બુદ્ધિ આપે !



## चर्चा

ग्रंथ संन्यासनिर्णयिमां इलसंबंधी निरूपण

श्रीअसित शाह

**भावेश परमार :** भारो प्रश्न पेपरमांथी नथी पाण ग्रन्थमांथी छे. “**विकलत्वं तथाऽस्वास्थ्यं...अेवं वर्तमानस्य बाधकाः**” मां अेम कीधुं छे के आ अवस्थामां अेने भगवाननुं ज्ञान अने भगवानना गुणो बाधक थई रह्यां छे. अने पाछण “**गुणास्तु सनराडित्यात् ज्वनार्थं भवन्ति हि**” अेम कह्युं छे. भगवान नथी तो भगवानना गुणो अेनुं ज्वन बनी रह्यां छे. आ बे पातमां सन्देह छे.

**असित शाह :** अेनो ४ भुवासो “**स्वास्थ्यहेतोः परित्यागात् बाधः केनाऽस्य सम्भवेत्**”मां छे. विरलानुभवमां आवेशनी प्रक्रियामां आगण वधवामां उपकारक अे छे के अेने गुणोनो संग न थाय. पाण अेनुं ज्वन केम नभी रह्युं छे तो श्रीमहाप्रभुज कह्ये छे के अेने प्रभुना गुणोनो संग छे अेटवे अेनुं ज्वन टकी रह्युं छे. ज्वन टकवुं अे रसानुभूतिमां अेक जातनी बाधकता छे.

**गो.श्या.म. :** भारतेन्दुबाबुकी एक कविता याद आ रही है “बावरी हवे जात, बार-बार कही वेदनकों, बिलखि-बिलखि जो बिहारथल रोती ना, पीर उठेतें हियरो हमारो टूक-टूक होत, ध्यायी प्राननाथ जो कसक निज खोती ना, ...तन जरि जातो जो न अंसुआ ढरत आली, प्राण कढि जाते जो प्रतीति उर होती ना”. ये संन्यासनिर्णय वाले अस्वास्थ्यको ही निरूपण भारतेन्दुबाबुने कियो है. “हरीचन्द व्यारेके पधारे परदेशहूते, नैन नसि जाते जो सपन संग सोती ना” क्या बात कहदी है. ये आग इतनी बढ गयी है के उनकुं बुझायो है आंसुनसुं. उरमें प्राण ही नहीं हते, वाकी प्रतीति भी हती. उन दोनोंनको संयोग हो रह्यो हतो करके प्राण नहीं निकले, नहीं तो प्राण भी निकल जाते. एक बात समझो के जिजीविषुकेलिये दशमावस्थाको पोस्पोंड होते रहनो फल है. पर मुमुर्षुकेलिये दशमावस्थाको पोस्पोंड होनो निष्फलता है. जितनी दशमावस्था पोस्पोंड होवे उतनी वाकी विकलता बढती चली जावे है. ऐसी स्थितिमें भगवान् वाकु रिस्पोस् थोडो तपाके देवे हैं. स्टेशनके पास पहुंचनेपे गाडी बीचमें रुक जावे तब जितनी त्वरा मनमें होवे वैसी त्वरा दूसरे स्टेशननपे

गाडीके रुकनेपे नहीं होवे है. मुमूर्षुकी स्थिति भी ऐसी ही होवे है.

**धर्मेन्द्रसिंह झाला :** असितने न्यायिक शैलीसुं विहितत्वको लक्षण लियो है पर संन्यासनिर्णयमें तो विहित संन्यास नहीं है. एक जिज्ञासा ये है और दूसरी बात रसशास्त्रीय प्रक्रिया और निरोधकी प्रक्रियाको भेद समझमें नहीं आ रह्यो है. क्योंकि निरोधके अन्तर्गत भी “रसो वै सः” है वो रसशास्त्रीय प्रक्रिया कर रह्यो है! “आवेशद्वा” “निरोधाद्वा” को बेज़ लेके वाने वो प्रक्रिया बताई है वो समझमें नहीं आयी. ...सर्वभाव और पूर्णभाव में सर्वभाव उत्तम है के पूर्णभाव वो भी चर्चा यहां होनी चाहिये. असित शाह : पहली बात विहितत्वकी पूछी हती. वैसे ये न्यायको लक्षण है. पर जो तीन कंडीशन् बताई है वामें श्रीमहाप्रभुजीकु तीसरो कृतिसाध्यत्व अभिप्रेत नहीं है. बलवदनिष्ठाननुबन्धित्व और इष्टसाधनत्व ये दो कंडीशन् भी पूरी हो जा रही हैं तो वाकु विहित कह सके हैं. मैं संन्यासनिर्णयकी जनरल् थीम् बता रह्यो हूं के यामें जो छह संन्यास डिस्कस् किये हैं और ये सिद्ध कियो है के कलियुगमें भक्त्युत्तर संन्यास ही प्रशस्त है बाकी सब लेंगे तो कुछ-न-कुछ अधोगति होयगी. याके पीछे क्या रीज़न् है. शास्त्रवचन एक-एककु डिनाय् करे है ऐसे नहीं है. पर बाकीके पांच संन्यासमें ये दो कंडीशन् नहीं मिल पा रही है. पर भक्त्युत्तर संन्यासमें ये दोनों मिल रही है. और तीसरी कंडीशन् वा संन्यासकेलिये जरूरी नहीं है, ये दो कंडीशन्के आधारपे वाकु विहित और प्रशस्त मान रहे हैं.

**गो.श्या.म. :** या मुद्दापे मैं ये कहनो चाहूंगो के “बलवदनिष्ठाननुबन्धित्वे सति इष्टसाधनत्वे सति कृतिसाध्यत्वम्” ये नव्यन्याय और नव्यमीमांसा कु अभिप्रेत लक्षण है. पर प्राचीनमीमांसा, प्रभाकर और शायद तो प्राचीन न्यायकु और श्रीमहाप्रभुजीकु भी अभिप्रेत लक्षण नहीं है. खण्डदेव, जो श्रीपुरुषोत्तमजीको समकालिक है, वाने या लक्षणकेलिये बहोत फाईट् करी है के ये ही लक्षण होनो चाहिये. यामें लक्ष्यमें रखनेकी बात ये है के यदि कोई विधानके कारण संन्यास ले रह्यो है तो एक कॉमन् प्रिज़म्प्शन् ऐसो है के भाव या ज्ञान को विधान नहीं हो सके है. यासुं विधानके अनुरोधसुं कियो जातो कोई भी काम क्रियात्मक ही होयगो. बादमें बोधात्मक या भावात्मक हो जावे वो वाको डेवलप्मेंट् है पर जा बखत कियो जा रह्या है वा बखत तो वो क्रियात्मक ही होयगो. और श्रीमहाप्रभुजी या संन्यासकु क्रियात्मक नहीं बनने

देनो चाह रहे हैं. क्योंकि नरहरिकेसाथ श्रीमहाप्रभुजीको ये ही झगडा है के क्रियात्मक संन्यास मत लो नहिंतो पाखण्डी बन जाओगे. भक्तिमार्गीकु भगवदावेशमें संन्यास होवे है यासुं वो क्रियात्मक नहीं होके भावात्मक होयगो. और विषयावेशके रहते यदि अपनने विधिके बलसुं संन्यास लियो तो, आज भले लेलो पर कल तुम पाषण्डी हो जाओगे ऐसी धमकी श्रीमहाप्रभुजी दे रहे हैं. क्योंकि विधि है, वाके आधारपे बिना बोध और भावके तुम क्रिया कर रहे हो. श्रीमहाप्रभुजी अपने संन्यासकु क्रियात्मक होनेसुं रोकनेकेलिये फाईट कर रहे हैं. बोधात्मक संन्यासमें श्रीमहाप्रभुजीकु थियोरिटिकल् आपत्ति नहीं है पर या कालमें आपकु ऐसो नहीं लगे है के अपनो बोध इतनो सच्चो होवे के अपन बोधात्मक संन्यास ले सकें. एक बात समझनेकी है के क्रियाशक्ति सदंशसु आ रही है, बोधशक्ति चिदंशसु आ रही है और भावशक्ति आनन्दांशसु आ रही है. श्रीमहाप्रभुजी सदंशसु आती क्रियाशक्तिकु कैसल् करनो चाह रहे हैं, चिदंशसु आती बोधशक्तिकु आप पोस्पोंड करनो चाह रहे हैं. और भावशक्तिसुं आते संन्यासमें आप कुछ कृपा, कुछ आनन्द देख रहे हैं. श्रीमहाप्रभुजीके मनको चोर ऐसो है के कलियुग ज्ञान या क्रिया कु करप्ट कर सके है पर कलियुगके बापकी भी ताकत नहीं है के वो भावकु करप्ट कर सके. क्योंकि कलियुग अपने भावकु एक्स्प्लोईट करके अपने भाव और क्रिया कु करप्ट करदे है. भाव करप्ट होनेपे “इस कटेरेको थोड़े हलुवाकी आवश्यकता है” ऐसे विधान संन्यासी करवे लगे हैं. तो कलियुग भावकु करप्ट नहीं कर सके है. क्योंकि कलियुगकु भी यदि कोईको सहारा लेनो है तो अपनी भावशक्तिको ही लेनो पडेगो. क्योंकि भाव प्राणी मात्रकी सबसु बडी कमजोरी है. “को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेश आकाश आनन्दो न स्यात्”. वो आनन्दसु आती शक्ति है करके आप कह रहे हैं के कोई बात नहीं.

**असित शाह :** दूसरी बात भगवच्छास्त्रीय और रसशास्त्रीय प्रक्रियाके बारेमें पूछ्यो हतो.

या विषयमें मुख्य बात मैं ये कहनो चाह रह्यो हूं के भगवच्छास्त्रीय प्रक्रिया प्राकट्यपूर्विका है. प्रभुको आविर्भाव होवे और पीछे अनुभूति होवे. वाके कारण बहिःकरण पहले आयेंगे और अन्तःकरण पीछे आयेंगे. दोनों प्रक्रियामें ये विलक्षणता है, केस्-टु-केस् ऐसो जरूरी नहीं है के भगवच्छास्त्रीय प्रक्रियामें होती रसानुभूतिमें आँल्वेज बाहरसुं अंदर जावे. गुण रूपसुं

आविर्भाव होवे तो बाहरसु अन्दर भी आ सके है.गो.श्या.म. : मैं यामें कुछ कहनो चाहूंगो. रसशास्त्रकी प्रक्रियामें आलम्बनमें आसक्ति अथवा जैसो आलम्बन तदनुरूप अपनो भाव प्रकट होनो, द्वेष्टा आलम्बन होवे तो द्वेषको प्रकट होनो आदि, वामें ये जरूरी नहीं है के इतरविस्मृतिपूर्वक वैसो भाव प्रकट होवे. रसशास्त्रकु वैसी अपेक्षा नहीं है. आप रामलीला देख रहे हो और रावणकु देखके आपकु वापे क्रोध आ गयो तो बस, रसशास्त्र कृतार्थ हो गयो. रामकु सीताके विप्रयोगमें देखके तुम्हारी आंखें छलछला गयीं तो रसशास्त्र कृतकृत्य हो गयो. रसशास्त्रकु ये अपेक्षा नहीं है के तुम प्रपञ्चकु भूले के नहीं. बल्कि, रसशास्त्र थोड़ीसी प्रपञ्चस्मृति चाहे है. श्रीगुसांईजीके दौहित्र पंडित जगन्नाथजीने या बातको बहोत विचार करके समझायो है के रसशास्त्रकी प्रणालीमें ये आवश्यक है के तुम साधारणीकरण करो. ये ऐसी विचित्र बला है के न तो तुम अपने आपकु १००% राम मानो और न अपने आपकु १००% अराम मानो. ऐसे ही न तो तुम सीताकु रामकी १००% पत्नी मानो और न १००% वो रामकी पत्नी नहीं है ऐसो मानो. सीताके चुरते तुमकु ऐसो होवे के यदि मेरी पत्नी चुर जाती तो मेरे कैसे हाल होते! जब ऐसो होयगो तब तुमकु सीताके हरणपे रामकी तरह रोना आयेगो. सीताहरणकु देखके अपने मनमें ये कन्फ्युजन् हो जावे है के सीता चुर गई के मेरी पत्नी चुर गई! साधारणीकरण कैसी प्रक्रिया है के कोईकु पिटातो देखके अपने मनमें ऐसो विचार आवे के यदि मेरी पिटाई या तरहसु होवे तो मोकु कितनो दुःख होवे! ऐसो होते ही अपनो मन पसीजने लगे है. साधारणीकरणके कारण ऐसो होवे है. पर रसशास्त्रके हिसाबसु यामें विस्मृतिकी जरूरत नहीं है. पर निरोध तो स्पेसिफिकलि इतर विस्मृतिकी डिमांड करे है. भूल जाओ ओर सारी बातें! भगवदासक्ति और प्रपञ्चविस्मृति. मैं या विषयमें असितकी बातकु एप्रिशियेट् करूं हूं के अपने यहांकी प्रक्रिया रसशास्त्र और भगवच्छास्त्र की प्रक्रियाकु क्लब् करके निरूपित भई है, न तो ये शुद्ध रसशास्त्रीय है और न शुद्ध भगवच्छास्त्रीय है. शुद्ध भगवच्छास्त्रीय होती तो गोपीजननकु भगवद्विप्रयोग ही नहीं रह जातो. गोपीजनने उद्धवके या सन्देशकु अस्वीकार क्यों कियो के “भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित्, आत्मत्वाद् भक्तवश्यत्वात् सत्यवाक्त्वात् स्वभावतः”! क्योंके निरोध भी है और रसशास्त्रीय निरोध

है या लिये विरुद्धधर्माश्रय हो गयो, वहां कुछ लफडा हो गयो है रसशास्त्र और भगवच्छास्त्र को. करके गोपीजनें उद्धवकी बातकु स्वीकार नहीं पायीं. कौनसी आत्मा! हम रो रहे हैं और तुम प्रकट नहीं हो रहे हो ये कोई भक्तवश्यता है! करके गुसांईजीकु कहनो पड्यो के “**एतासान्तु अधुनैव बहिःप्राकट्यम् अभिलषितं तदैव ईश्वरवादः!**” नहिं तो तो वो शून्यवाद प्रिफर् करने तैयार हो रही हैं! क्यों? क्योंकि यहां रसशास्त्र और भगवच्छास्त्र क्लब हो गयो है. मूल कारण, के भगवान्को स्वरूप निरोधलीलार्थ प्रकट भयो है और रसकी मर्यादाके अनुरूप लीला करनी है वाके कारण भगवान्ने उन दोनोंनकु क्लब कर दिये हैं तो भक्त भी उनकुं वा ही तरहसु रेसिप्रोकेट कर रहे हैं. या लिये उनने उद्धवजीकु कह दियो के ये सब उपदेश सुनने लायक नहीं हैं. श्रीगुसांईजी लिखे हैं के “**अनाकर्मणीयम् इदं भवति**”. तुमने भिजवाये हैं तो कथञ्चित् सुन लेंगे पर बात सुनने लायक नहीं है. तो दो शास्त्र क्लब हो गये हैं. एक बात समझो के ये तो बहोत उत्तम कक्षाकी बात है पर अपने यहांकी सेवाको सारो प्रकार रसशास्त्र और भगवच्छास्त्र की क्लबिंग्को ही. एक ओर ठाकुरजीकु गंदी-गंदी गालियें देनी के “हरि कारो री हरि कारो, द्वे बापन बिचवारो” और दूसरी ओर ठाकुरजीकु दंडवत् लगाने! चरणस्पर्श करने! आरती करनी! घंटा बजाने! ये सब क्या है? दोनों शास्त्र क्लब हो गये हैं. ये क्लबिंग् उत्तम कक्षापे ही नहीं, स्टार्टिंग्में ही अपने यहां है. और पुष्टिमार्गीय सेवाप्रकारको यदि कोई वैशिष्ट्य है तो ये ही है, फिरसु मैं कहूंगो, के अपनी भक्ति दो पैरपे चलनेवाली है, भगवच्छास्त्र और रसशास्त्र. अपनी भक्ति लंगडी नहीं है. भगवान् उभयात्मक हो गये हैं करके अपन भी उभय प्रकारसुं भगवान्के तरफ जा रहे हैं. वो प्रपञ्चकु भुलानो चाह रह्यो है और प्रपञ्चको मॉडल् एडोप्ट कर रह्यो है : “**पित्रोः सम्पश्यतः सद्यः बभूवः प्राकृतः शिशुः**” “**क्रिया सर्वापि सैवात्र परं कामो न विद्यते**”. कीदृशी क्रिया? रसशास्त्रोक्ता परं कामो न विद्यते. देखो, गरबड हो गई न! एक बात समझो के मैं कोईकी पूरी आव-भगत करूं पर मेरे मनमें वैसो कोई भाव नहीं होवे तो सामनेवालो खुश होयगो के दुःखी! क्रिया सर्वापि सैवात्र परं भावो न विद्यते! अपन क्यों दुःखी नहीं हो रहे हैं? क्योंकि भगवान् खुद दो शास्त्रनकु क्लब कर रहे हैं. अपनकु भी भगवान्को वो ही तरहसु रेसिप्रोकेट करनो है. ये ही तो निर्गुण भाव है.



અસિત શાહ : સર્વભાવ અને પૂર્ણભાવ ના વિષયમાં પ્રશ્ન હતો. પઞ્ચપદ્યાનિમાં કહ્યું છે

“નિઃસન્દિગ્ધં કૃષ્ણાતત્ત્વં સર્વભાવેન યે વિદુઃ...પૂર્ણભાવેન પૂર્ણાર્થા કદાચિત્ ન તુ સર્વદા”. જેને સર્વભાવ સિદ્ધ છે તેને પણ પૂર્ણભાવ ક્યારેક જ પ્રાપ્ત થાય છે. તો એમાં મને એમ લાગે છે કે સર્વભાવ કે જે ચતુઃશ્લોકીમાં બતાવ્યો એમાં આપણને સાધનાના આરમ્ભમાં કોઈ એક ભાવ ઊપર ફિક્સ થવાનું નથી પણ વ્રજભક્તોના વિવિધ ભાવોનું ભાવન કરવાનું છે. જેમ-જેમ ભાવ રૂઢ થતો જશે તેમ પૂર્ણભાવની એક એવી અવસ્થા આવશે કે જ્યારે એમાંનો કોઈ એક ભાવ આપણા હૃદયમાં રૂઢ થયો હશે તેમાં આપણો ભાવ ફિક્સ થઈ જશે. અગળ રસાનુભૂતિ એને અનુરૂપ થશે. એમાં આવેશ અને નિરોધની એમ બે પ્રક્રિયા છે. એ વાતને સમજાવવા માટે મેં સખંડાદ્વૈત અને અખંડાદ્વૈત કે જે જ્ઞાનની અનુભૂતિ છે એને પેરેલલ બતાવી છે. અખંડાદ્વૈતની અનુભૂતિમાં નામ-રૂપોના ખંડ નથી અનુભવાતાં જ્યારે સખંડાદ્વૈતની અનુભૂતિમાં અનુભવાતા હોય છે. એટલે બ્રહ્મની અનુભૂતિ વત્તા નામ-રૂપોની અનુભૂતિ. અખંડાદ્વૈતમાં નામ-રૂપોની અનુભૂતિ નથી હોતી. છતાં બન્નેને પૂર્ણ અનુભૂતિ તરીકે માન્ય કરી છે. એવી રીતે પૂર્ણભાવ એ અખંડાદ્વૈતની પાસેની સ્ટેટસ્ છે. જે એક ભાવ આપણા હૃદયારૂઢ થયો એને અનુરૂપ જ આપણે ભજન કરીએ છીએ. અને મને લાગે છે કે પઞ્ચપદ્યાનિનો શ્લોક એ ઉદ્ધવજીની સ્થિતિના જેવું ડિસ્ક્રિપ્શન્ છે. ઉદ્ધવજીને સર્વભાવ છે, શ્રીકૃષ્ણાતત્ત્વનું નિઃસન્દિગ્ધ જ્ઞાન છે પણ પૂર્ણ ભાવ એમનામાં નથી. જ્યારે વ્રજભક્તોમાં પૂર્ણ ભાવ છે. ઉદ્ધવજીવને કોઈ પણ પ્રકારના સન્દેહ નથી જ્યારે વ્રજભક્તોને સન્દેહો થઈ રહ્યા છે છતાં એમનો ભાવ એ પૂર્ણ ભાવ છે અને ઉત્કૃષ્ટ છે. જ્યારે ઉદ્ધવજીનો સર્વભાવ છે તો પણ વ્રજભક્તોના ભાવ કરતાં ઉત્કૃષ્ટ નથી. નિરોધલક્ષણ, સંન્યાસનિર્ણય, સુબોધિની વગેરેમાં જ્યાં પણ પૂર્ણભાવનું વિવરણ આવે છે ત્યાં શ્રીમહાપ્રભુજીનું ઈન્વોલ્વમેન્ટ વર્ણનમાં વધારે જોવા મળે છે, એમ્ફેસિસ પણ સ્ટ્રોંગ્ હોય છે.

ગો.શ્યા.મ. : રત્નાકરજી બહોત અચ્છો કહે हैं “यह वह सिन्धु नहीं सोखी जो अगस्त्य लियो! ऊधो, यह गोपिनके प्रेमको प्रवाह है”. ये पूर्ण भाव है. धर्मयुग के एडिटर धर्मवीर भारतीने कविता लिखी है वामें पूर्णभावको बहोत अच्छो वर्णन कियो है. महाभारतको युद्ध हो गयो है और यमुनाजीके प्रवाहमें बह-बहके लाशें आ रही हैं. ब्रजवासीनकु विचार होवे है के ये लाशें कहांसुं आ रही हैं. कोईने कही के कृष्णने महाभारत करवाई वामें मारे गयेनके मुंड, हाथ, पांव यमुनाजीमें बहके आ रहे हैं. ये सुनके राधाजी घिसके ना पाड देवे

हैं के मेरो कृष्ण तो इतनो डरपोक हतो के जंगलमें घुसवेमें डरतो हतो तब मैं वाकु पकडके ले जाती हती. वो कृष्ण लडाई कैसे कर सके. राधाजी कृष्णको वो स्वरूप स्वीकारने तैयार नहीं है. ये पूर्णभाव है.



# શિક્ષાશ્લોકી ગ્રન્થના સંદર્ભમાં પુષ્ટિફલ

જયેન્દ્ર સોની

**ઉપક્રમ :**

પુષ્ટિમાર્ગની એ વિશેષતા છે કે ભગવાન્ જ સાધન અને ભગવાન્ જ ફલ. કર્મમાર્ગ જ્ઞાનમાર્ગમાં વેદ પ્રતિપાદિત સાધનોના આધારે મોક્ષ રૂપી ફલ પ્રાપ્તિ થાય છે. પરંતુ પુષ્ટિમાર્ગમાં તો ભગવદ્ અનુગ્રહ જ ફલ પ્રાપ્તિ માટે નિયામક છે. માટે શ્રુતિ કહે છે “યમેવૈષવૃણુતે તેન લભ્ય:”.

શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજીના લઘુગ્રન્થ શિક્ષાશ્લોકીની પૃષ્ઠભૂમિ આપણે જાણીએ છીએ તેમ આપશ્રી જ્યારે સંન્યાસ ગ્રહણ કરી કાશીમાં હનુમાન ઘાટ પર બિરાજતાં હતાં ત્યારે અડેલથી શ્રીગોપીનાથજી, શ્રીગુસાંઈજી, પરિવારજનો તથા નીજ સેવકોએ આપની પાસે આવી પુછ્યું કે “હવે અમારું કર્તવ્ય શું છે ?” ત્યારે પોતે મૌન ધારણ કરેલું હોઈ ગંગાજીની તટભૂમિ પર સાડા ત્રણ શ્લોકો લખી ઉપદેશ આપ્યો તે ‘શિક્ષાશ્લોકી’ નામથી પ્રસિદ્ધ છે. આ લઘુગ્રન્થમાં ઉપદિષ્ટ આજ્ઞાઓ અતિ સારગર્ભિત છે. તે પુષ્ટિમાર્ગીય અનુયાયીઓ માટે ખૂબ જ મહત્વની છે જેને આપશ્રીનું ‘વસીયતનામું’ પણ કહેવાય છે, કારણ કે પોતાની ગેરહાજરીમાં તેમની બિંદુ સૃષ્ટિરૂપ વંશજોએ અને નાદ સૃષ્ટિરૂપ સેવકોએ કેવું આચરણ અને જીવન યાપન કરવું તેનો નિર્દેશ એ ગ્રન્થમાં પ્રાપ્ત થાય છે.

આ ગ્રન્થ કેવલ ૩ ૧/૨ શ્લોકનો છે. પણ કહેવાય છે કે આચાર્યશ્રીની આજ્ઞા પશ્યાદ્ સ્વયં શ્રીઠાકોરજીએ પ્રગટ થઈ શ્રીમહાપ્રભુજીની આજ્ઞા યોગ્ય છે તેવી મહોર મારવા નિમ્ન દોઢ શ્લોક કહ્યો.

**“મયિ ચેદસ્તિ વિશ્વાસઃ શ્રીગોપીજન વલ્લભે ॥**

**તદા કૃતાર્થા યૂયં હિ શોચનીયો ન કલિચિત્ ॥**

**મુક્તિર્લિત્વાન્યથા રૂપં સ્વરૂપેણ વ્યવસ્થિતિઃ ॥”**

અર્થાત્ ગોપીજન વલ્લભ એવા મારામાં જો તમને વિશ્વાસ છે તો તમે કૃતાર્થ છો, તમારે કશો શોક કરવાનો નથી. કેમકે તમારું અન્યથા રૂપ ( બલિર્મુખતા - લોકમાં આસક્તિ ) છોડીને શ્રીકૃષ્ણાભિમુખ રહેવું તેજ તમારી મુક્તિ છે. આ આજ્ઞા જીવન્મુક્તિની સૂચક છે.

આ ભગવદ્વાજ્ઞા પણ ખૂબ સારગર્ભિત છે. જે પુષ્ટિમાર્ગીય ફલનો નિર્દેશ કરે

છે. ભગવદ્ભિમુખતા બની રહેવી એટલે જ ભગવતપ્રાર્તિ જે શ્રીમદ્વાચાર્ય ચરણે બતાવેલ સર્વોચ્ચ ફલ છે, જેનો નિર્દેશ આપશ્રી ‘પુષ્ટિ પ્રવાહ મર્યાદા’ ગ્રન્થમાં “ભગવાનેવ હિ ફલમ્” કહી બતાવે છે.

આ પુષ્ટિમાર્ગીય ફલને પ્રાપ્ત કરવા શિક્ષાશ્લોકી ગ્રન્થમાં શ્રીમહાપ્રભુજીએ કરેલા સાંકેતિક નિર્દેશોનું ચિંતન અતિ આવશ્યક છે.

### શિક્ષાશ્લોકીની ભૂમિકા :

શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી સાક્ષાત્ ભગવાનના મુખારવિંદ સ્વરૂપ છે. શ્રીપ્રભુની આજ્ઞાથી પોતે ત્રણ ભગવત્કાર્યો કરવા ભૂતલ પર પધાર્યા હતાં.

૧. નિત્યલીલામાંથી ભૂતળ ઊપર આવેલા દૈવીજીવો - પુષ્ટિજીવોનો ઉદ્ધાર,
૨. માયાવાદનું નિરસન અને બ્રહ્મવાદનું સ્થાપન અને
૩. શ્રીમદ્ભાગવતના ગૂઢ અર્થનું પ્રકાશન.

પ્રથમ બે કાર્યો આપશ્રીએ ત્રણ વખત સમગ્ર ભારતની પટયાત્રા કરી પરિપૂર્ણ કર્યા તે સમય દરમ્યાન દૈવીજીવોને શરણે લઈ, શ્રીઠાકોરજી સાથે તેમનો બ્રહ્મસમ્બન્ધ કરાવી ભગવત્સેવા દ્વારા તેમને ભગવતપ્રાપ્તિ કરાવી, તેમનો ઉદ્ધાર કર્યો. કન્યાકુમારીથી બદ્રિકેદાર અને દ્વારકાથી જગન્નાથપુરી સુધી ભારતના ખૂણે - ખૂણે વસેલા માયાવાદી આચાર્યો અને વિદ્વાનો સાથે શાસ્ત્ર ચર્ચા કરી આપે માયાવાદનું સંપૂર્ણ ખાણન કર્યું. તદ્દુપરાંત આશુભાષ્ય તત્ત્વાર્થદીપનિબંધ, ષોડશગ્રન્થો ઈત્યાદિ રચીને તે દ્વારા શુદ્ધાદ્વૈત બ્રહ્મવાદ અને તદન્તર્ગત પુષ્ટિમાર્ગનું સુદઢ સ્થાપન પણ કર્યું. શ્રીભાગવતના ગૂઢ અર્થને પ્રકટ કરવા આપે શ્રીભાગવતનો અર્થ સાત પ્રકારે પ્રગટ કર્યો. શ્રીભાગવતાર્થ પ્રકરણમાં આપે શાસ્ત્રાર્થ, સ્કંધાર્થ, પ્રકરણાર્થ અને અધ્યાયાર્થ કર્યા જ્યારે વાક્યાર્થ, પદાર્થ અને અક્ષરાર્થ શ્રીસુબોધિનીજીમાં પ્રગટ કર્યા. સુબોધિનીજીનું લેખન કાર્ય ચાલું જ હતું તે દરમ્યાન આપને બે વખત નિજધામમાં પાછા પધારતા ભગવદ્ આજ્ઞા થઈ. સુબોધિનીજીનું લેખન કાર્ય ચાલુ હોવાના કારણે આપે એ બે આજ્ઞાઓનું પાલન કર્યું નહીં. પરંતુ ત્રીજી ભગવદાજ્ઞા થતાં આપે તે લેખન કાર્ય સમેટી લઈ ભક્તિમાર્ગીય સંન્યાસ ધારણ કરવાનો નિર્ધાર કર્યો. તદ્દનુસાર અહેલમાં વિધિવત સંન્યાસ ગ્રહણ કરી ‘પુણાનંદ’ નામ ધારણ કરી આપ આસુર વ્યામોહલીલા કરવા સંન્યાસી સ્વરૂપે કાશી પધાર્યા અને ગંગાજીના કિનારે હનુમાનઘાટ પર બિરાજ્યા અને તે પછી આઠ દિવસ અનશન સાથે આપે મૌન ધારણ કર્યું.

ઉપર કહ્યું તેમ ત્યારે આપના બન્ને પુત્રો, પરિવાર અને સેવકોએ આપની

પાસે આવી નિજ કર્તવ્ય વિશે પુછતાં આપે ગંગાજીના તટની રેતીમાં સાડા ત્રણ શ્લોક લખી ઉપદેશ આપ્યો જે ‘શિક્ષાશ્લોકી’ના નામથી પ્રસિદ્ધ છે.

### શિક્ષાશ્લોકીના મુખ્ય ઉપદેશ :

૧. પુષ્ટિમાર્ગીય જીવે ક્યારે પણ બહિર્મુખ થવું ન જોઈએ.
૨. પુષ્ટિમાર્ગીય જીવે પોતાના પુષ્ટિપ્રભુની ભક્તિ કે શરણાગતિ લોકાર્થિતાથી ન કરવી કે સ્વીકારવી જોઈએ.
૩. આલોક તેમજ પરલોકમાં પુષ્ટિજીવનું સર્વસ્વ કેવળ પુષ્ટિપ્રભુ શ્રીકૃષ્ણ જ છે.
૪. માટે સર્વથા કેવળ કૃષ્ણાર્થી બનીને જ સર્વભાવથી શ્રીકૃષ્ણની સેવા કરવી જોઈએ અર્થાત્ શ્રીકૃષ્ણને મેળવવા એજ સેવાનું તાત્પર્ય હોવું જોઈએ.
૫. જે પુષ્ટિજીવનું જેમાં પણ હિત હોય તે બધું જ કાર્ય શ્રીગોપીજનવલ્લભ શ્રીકૃષ્ણ જ કરવાવાળા છે. કાલ, કર્મ, સ્વભાવ, અન્ય દેવ અથવા અન્ય કોઈનું પણ તેમના જેટલું સામર્થ્ય નથી એવો અટલ વિશ્વાસ સર્વદા રાખવો.

આ શિક્ષાશ્લોકી ગ્રન્થમાં શ્રીમહાપ્રભુજીએ આપેલા મુખ્ય પાંચ ઉપદેશો છે.

આ ગ્રન્થની વિસ્તૃત ટીકા શ્રીદ્વારકેશજીની પ્રાપ્ત થાય છે જેના આધારે આ ગ્રન્થનો સંક્ષિપ્ત સાર અહીં પ્રસ્તુત કર્યો છે.

**યદા બહિર્મુખા યૂયં ભવિષ્યથ કથંચન ॥**

**તદા કાલ પ્રવાહાસ્થા દેહ ચિત્તાદયોપ્યુત ॥૧॥**

**સર્વથા ભક્ષયિષ્યન્તિ યુષ્માનિતિ મતિમર્મ ॥**

અર્થાત્ જો તમે કોઈપણ કારણથી બહિર્મુખ થશો એટલે કે પ્રભુથી વિમુખ થશો તો કાળના પ્રવાહમાં તમારું શરીર, ચિત્ત વગેરે ખેંચાઈ જશે એટલે કે કાલપ્રવાહ તમારું સર્વ પ્રકારે ભક્ષણ કરી જશે એવો મારો અભિપ્રાય છે.

અહીં શ્રીમદાચાર્યચરણ ‘બહિર્મુખતા’ અને ‘કાલપ્રવાહ’ અર્થાત્ કાલના પ્રભાવ વિશે ભાર મુકી રહ્યા છે.

આ લોકમાં જે કોઈ જડ પદાર્થો અસ્તિત્વ ધરાવે છે તે સર્વનો ક્યારેક તો નાશ અવશ્ય થાય છે. તેજ પ્રમાણે જીવસૃષ્ટિનું પણ મૃત્યુ અવશ્યભાવી છે. આ પંચમહાભૂત તત્ત્વોથી ઘડાયેલ ક્ષર જગતનું ઉપાદાન કારણ અક્ષર બ્રહ્મ છે. માટે કોઈ પ્રવાહી જીવ

કાલ - કર્મ - સ્વભાવ - પ્રકૃતિરૂપમાં જે વ્યક્ત છે તેવા ક્ષર જગતમાં અક્ષરબ્રહ્મનું ચિંતન નથી કરતો તે કાલના પ્રવાહમાં તણાઈ જાય છે. જે જ્ઞાનીજન અક્ષરબ્રહ્મને પ્રાપ્ત કરી લે છે તે વ્યક્ત સ્વરૂપમાંથી છુટી અક્ષરની અવ્યક્તતા પામે છે. કુલોની સુગંધ જેમ સમગ્ર બગીચામાં ફેલાયેલી રહે છે તેમ પુણી પુરુષોત્તમ શ્રીકૃષ્ણ જે ધર્મી સ્વરૂપ છે તેની ધર્મરૂપ અપરિચિન્ન સત્તા, ચેતના અને આનંદ અક્ષરબ્રહ્મના સ્વરૂપે સર્વવ્યાપ્ત રહે છે. આમ અક્ષરબ્રહ્મ એ પરબ્રહ્મ પરમાત્માનું ધામ પણ છે. જ્ઞાનમાર્ગી જીવ પુરુષોત્તમના આ અવ્યક્ત ધામને પ્રાપ્ત કરે છે જ્યારે પુષ્ટિભક્તિમાર્ગીય જીવ તેમાં બિરાજતાં ધામી અર્થાત્ પુરુષોત્તમને પ્રાપ્ત કરે છે. જે અજ્ઞાની પ્રવાહી જીવ છે તે માત્ર કૃત્રિમ તથા શુદ્ધ એવા વિષયસુખમાં રચ્યો - પચ્યો રહે છે. તેને ક્યારેય પરમાનંદની પ્રાપ્તિ થઈ શક્તી નથી. કારણ કે વિષય સુખ તો કાલરૂપી નદીના પ્રવાહમાં પ્રગટ થતાં શોક - મોહ ઈત્યાદિના આવર્તનમાં જીવને ફસાવીને ડુબાડી દે છે. માટે જ શ્રીમહાપ્રભુજી આજ્ઞા કરે છે કે જે સ્વમાર્ગીય જીવ ભક્તિભાવપૂરિત ભગવત્સમર્પિત પ્રસાદ રૂપ વિષયોના અલૌકિક ઉપભોગને છોડીને જ્યારે અસમર્પિત વિષયોના ઉપભોગમાં ફસાઈ જાય છે ત્યારે તે જીવ શાસ્ત્રમર્યાદા પણ ચુકે છે. અને પુષ્ટિભક્તિમાંથી પણ બાકાત થઈ જાય છે. તેથી એવા જીવના દેહેન્દ્રિયાદિક કાલપ્રવાહમાં તણાઈ જતાં શોક - મોહના આવર્તનમાં ફસાઈ જતાં તેનો સર્વનાશ કરી નાખે છે. માટે જ શ્રીમહાપ્રભુજી આજ્ઞા કરે છે કે પુષ્ટિ જીવે ક્યારે પણ બહિર્મુખ જીવની માફક ભક્તિભાવ રહીત થવું ન જોઈએ.

અહીં કોઈને એમ શંકા થાય કે સ્વમાર્ગ તો પ્રમેય બલનો માર્ગ છે. તો શાસ્ત્રમાં કહેલા વિધિ - નિષેધના પ્રમાણબલ કઈ રીતે બાધારૂપ બની શકે ? પુષ્ટિમાર્ગમાં એક વખત જીવ પુષ્ટિપ્રભુથી જોડાય તો કાલનું એવું કેવું સામર્થ્ય કે અંગીકૃત જીવને પુષ્ટિપ્રભુથી છોડાવી તેનો નાશ કરી શકે ? આવી શંકાનું સમાધાન કરતાં ટીકાકાર સમજાવે છે કે શ્રીમહાપ્રભુજીની આજ્ઞાનુસાર ભક્તિમાર્ગ પર ચાલનાર કોઈ જીવથી અજ્ઞાનવશ કે આળસવશ કોઈ શાસ્ત્ર વિરુદ્ધ કૃત્ય જો થઈ જાય તો તેને હીનયોનિ મળે પરંતુ તેનો નરકપાત ન થાય. જેમ સેવાફલ ગ્રંથમાં શ્રીમદ્વાયર્થચરણના વચન મુજબ ફલસ્વરૂપે અલૌકિક સામર્થ્ય, સાયુજ્ય કે સેવાપયોગી દેહની પ્રાપ્તિમાં કાળની કોઈ નિયામકતા નથી પરંતુ ભોગ, ઉદ્વેગ અને પ્રતિબંધને આજ ગ્રંથમાં સેવાફલની પ્રાપ્તિમાં બાધક તો માનવમાં આવ્યા છે. તેથી પ્રમેયબલના ભરોસે જો કોઈ આ માર્ગમાં સ્વચ્છંદતાપૂર્વક વર્તન કરે તો તેને કશું નુકસાન ન થાય તે ખ્યાલ ગલત છે. કારણ કે આત્મસમર્પણથી પાંચ પ્રકારના દોષો સેવામાં બાધક ન બનવા છતાં સામિભુક્ત પદાર્થોનું સમર્પણ અને અસમર્પિતનો ઉપભોગ વર્જિત બતાવવામાં આવ્યો છે, જેનું ઉલ્લંઘન કરવાથી જીવની અંગીકૃતિ જ નથી રહેતી તો તેને કાલ બાધા કેમ ન કરી શકે ?

## બહિર્મુખતાનો દોષ :

આ ગ્રન્થનો મર્મ સમજાવતાં શ્રીદ્વારકેશજી આજ્ઞા કરે છે કે પુષ્ટિમાર્ગમાં મોટામાં મોટો દોષ છે ‘બહિર્મુખતા’. મન, વચન અને કર્મથી પ્રભુની સન્મુખ - નિકટ રહેવું તે ‘અંતર્મુખતા’ અને મન - વચન - કર્મથી પ્રભુથી વિમુખ થવું દૂર થવું તે છે ‘બહિર્મુખતા’.

બહિર્મુખતાના મુખ્ય બે લક્ષણો બતાવ્યા છે

૧. આપણા પોતાન મૂળ સ્વરૂપ અને કર્તવ્યને વિસરી જવું અને

૨. ભગવાનને વિસરી જવા.

બહિર્મુખ થવાના કારણે જીવ ચોર્યાસીલાખ યોનિમાં જન્મ - મરણના કાલપ્રવાહમાં અટવાતો અથડાતો રહ્યો. તે આહાર, નિદ્રા, ભય અને મૈથુનમાં જીંદગી વેડફતો રહ્યો. ક્ષણિક દુન્યવી સુખો ભોગવા માટે ફાંફા મારતો રહ્યો જેથી તેને દુઃખો ભોગવવા પડ્યા. આ છે પ્રવાહી જીવના લક્ષણ જેના મૂળમાં છે જીવની બહિર્મુખતા. બહિર્મુખતા એટલે જીવનો બુદ્ધિનાશ. ગીતાજીમાં ભગવાન કહે છે બુદ્ધિનાશથી સર્વનાશ થાય છે. બહિર્મુખતાના કારણે કાલ પ્રવાહ જીવનું ભક્ષણ કરી જશે તેમ કહેવાનું શ્રીમહાપ્રભુજીનું આજ્ઞા તાત્પર્ય છે. પુષ્ટિજીવ જેને પ્રભુએ પોતાના શ્રીઅંગમાંથી પોતાના સેવાર્થે જ પ્રગટ કરેલ છે તે જો પ્રભુની સેવા રૂપી કર્તવ્ય, પ્રભુની સન્મુખતા છોડીને સંસારના માયાવી સુખો પાછળ ઘેલો બને તો તેની અન્ય શું ગતિ થાય ? માટે જ શ્રીમહાપ્રભુજી ભૂતલત્યાગ કરતાં પહેલાં, છેલ્લીવાર સ્વપરિવાર અને પરિકરને પ્રભુથી બહિર્મુખ ન થવાનો ઉપદેશ આપે છે.

અહીં પુનઃ શંકા ઉદ્ભવે કે બ્રહ્મસમ્બન્ધ લઈ આત્મનિવેદન કરનાર, પોતાનું સર્વસ્વ પ્રભુને સમર્પિત કરી સેવા પરાયણ બનનાર જીવને બહિર્મુખતા ક્યાંથી આવે ? આવો સંશય ઉદ્ભવી શકે માટે જ શ્રીમહાપ્રભુજી ઉપરોક્ત શ્લોકમાં ‘કથંચન’ શબ્દ પ્રયોગ કરે છે. તેઓ કહેવા ઈચ્છે છે કે જીવના બહિર્મુખ થવાના અનેક કારણો છે જેમાંનું કોઈપણ કારણ તમારો વિનાશ નોતરી શકે છે.

## બહિર્મુખતાના કારણો :

શ્રીદ્વારકેશજી ટીકામાં બહિર્મુખતાના ચાર કારણો બતાવે છે ૧. અન્યાશ્રય, ૨. અસર્પિત વસ્તુનો ઉપભોગ, ૩. અસદાલાપ, ૪. અસત્સંગ અર્થાત્ દુઃસંગ.

**૧. અન્યાશ્રય :** અન્યાશ્રયનો સરલ અર્થ એ કે આપણે જેમને આપણું સમર્પણ કર્યું જેમની સાથે બ્રહ્મસમ્બન્ધથી જોડાયા, જેમના શરણાગત બન્યા, જેમને આપણા

સ્વામી - સર્વસ્વ તરીકે સ્વીકાર્યા તેમનામાં તેમની કૃપામાં, તેમની સર્વોચ્ચ શક્તિઓમાં વિશ્વાસ ન રાખતાં અન્યનો આશ્રય કરવો. શરણાગતિ અને ભક્તિ બન્નેમાં અન્યાશ્રય બાધક થાય છે. ભક્તિમાર્ગ એ પ્રેમ માર્ગ છે અને પ્રેમમાં વ્યભિચારથી મોટો કોઈ દોષ નથી. શિક્ષાપાત્રમાં શ્રીહરિરાયજી સમજાવે છે કે ‘અન્યાશ્રયનો મહાનેવ બાધક:’ અન્યાશ્રય મહાબાધક છે. અન્ય દેવોની ઉપાસના - ભક્તિ કરવા હેતુ તેમના મંદિરમાં દર્શન, પૂજન - સેવન, પ્રસાદ ગ્રહણ કરવા સ્વતઃ ચાલીને જવું તેને અન્યાશ્રય ગણાવ્યો છે. જોકે નિત્ય - નૈમિત્તિક શ્રૌત કર્મ, તથા વર્ણાશ્રમ અનુસાર સંસ્કારપ્રાપ્તશ્યિત, શ્રાદ્ધાદિ સ્માર્ત કર્મોના અંગરૂપ દેવતાઓના પૂજન - વંદનમાં અન્યાશ્રય દોષ લાગતો નથી. માર્ગમાં આવતાં કોઈ દેવમંદિરમાં વંદન - વ્યવહાર પણ આદર માત્ર ગણી અન્યાશ્રય દોષ ગણાતો નથી. અન્યાશ્રય વિશેના અનેક ઉદાહરણો આપણને અનેક કથાઓ - વાર્તાસાહિત્યમાં મળી આવે છે જ્યાં તેના દ્વારા ઊત્પન્ન થયેલ બહિર્મુખતા સ્પષ્ટતા દૃષ્ટિગોચર થાય છે.

**૨. અસર્પિત વસ્તુઓનો ઉપભોગ :** અન્યાશ્રયની માફક બહિર્મુખતાનું બીજું કારણ છે અસર્પિત વસ્તુઓનો ઉપભોગ. અસર્પિત એટલે પ્રભુને સમર્પણ કર્યા વિનાના પદાર્થો. આત્મનિવેદન કરવા સમયે આપણે આપણા કહેવાતા સર્વ પદાર્થો શ્રીપ્રભુને સમર્પિત કરી દઈએ છીએ અને આપણે પ્રભુના દાસ હોવાનું કબુલીએ છીએ. ભક્તિના સેવાકલ્પમાં આપણા ઘરમાં આપણા શ્રીઠાકુરજી સ્વામીભાવથી બિરાજે છે. તેથી અસર્પિતના ઉપભોગથી નિજ સ્વરૂપની ભાવાત્મકતા અને સ્વામિત્વ બન્ને તિરોહિત થઈ જાય છે જેથી સામિભુક્ત સમર્પણ તેમજ અસર્પિત ઉપભોગ એ બન્ને બહિર્મુખતાજનક બને છે. સિદ્ધાંત રહસ્ય ગ્રંથમાં શ્રીમહાપ્રભુજી આજ્ઞા કરે છે કે આત્મનિવેદન કર્યા પછી લોકમાં જેમ સ્વામીસેવકનો સમ્બન્ધ હોય તે રીતે વ્યવહાર કરવો આવશ્યક છે. સર્વ કાંઈ ભગવાનને સમર્પિત કરીને બધી વસ્તુઓ ભગવાનના પ્રસાદરૂપે ઉપયોગમાં લાવવી જોઈએ અન્યથા જીવ પ્રભુનો અપરાધી બને છે.

**૩. અસદાલાપ :** શ્રીદ્વારકેશજી બહિર્મુખતાનું ત્રીજું કારણ આપે છે ‘અસદાલાપ’. અસદાલાપ એટલે ‘અસત્ આલાપ’ એટલે કે જેમનું મન પ્રભુમાં અને તેમના ગુણગાનમાં લાગેલું નથી તેવા બહિર્મુખ જીવો સાથે લૌકિક વાતો કરવી. તે સર્વ નિર્ણય ગ્રંથમાં શ્રીમહાપ્રભુજી આજ્ઞા કરે છે કે ત્રણ બાબતોનો ત્યાગ કરવો શ્રીઠાકોરજીને લગતી જે ક્રિયાઓ ન હોય, શ્રીઠાકોરજી સમ્બન્ધી જે વિચારો ન હોય અને શ્રીઠાકોરજી સમ્બન્ધી જે વાણી ન હોય, તે ત્રણેયનો ત્યાગ કરવો જોઈએ.

અસદ્ આલાપોનું મૂળ અસદ્ વિચારોમાં રહેલું છે. સંગદોષથી અસદ્ વિચારો



આપણા મનમાં ઉભરાય છે. તે અસદ્ વિચારો આપણી વાણી દ્વારા પ્રગટ થાય છે. માટે શ્રીમદાચાર્યચરણ, અસદ્ વિચારો અને અસદાલાપથી બચવા માટે મનુષ્યોનો સંગ છોડવા આજ્ઞા કરે છે. જો તે ન છૂટે તો ભગવદીનો સંગ કરવો. ભગવદીયો સાથે મળીને પણ હંમેશાં જે આત્મનિવેદન કર્યું છે તેનું સ્મરણ કરવું. અસદાલાપ ચિત્તની ભગવત્પ્રવાણતામાં વ્યવધાન - બાધા કરે છે, જેથી તે બલિર્મુખ બનવાનું કારણ બને છે. એ શરણાગતિ અને ભક્તિ બન્નેમાં બાધક છે. માટે અસદાલાપનો સર્વથા ત્યાગ કરવો જોઈએ.

**૪. અસત્સંગ અર્થાત્ દુઃસંગ :** બલિર્મુખ થવાનું ચોથું કારણ છે દુઃસંગ, શ્રીહરિરાયજી દુઃસંગની વ્યાખ્યા કરતાં શિક્ષાપત્રમાં કહે છે કે એવા લોકો દુષ્ટ છે જેઓને શ્રીમહાપ્રભુજીના વચનોમાં શ્રદ્ધા નથી અને તેના કારણે જેઓ આપશ્રીના વચનોથી વિરુદ્ધ વાત કહે છે અને આચરે છે. આવા લોકો આપણે માટે દોષ રૂપ છે અને તેથી એવા લોકોનો સંગ એ દુઃસંગ છે. આજના જમાનામાં આપણને અનેક જાતના દુઃસંગો લાગે છે, જેમાં મુખ્યત્વે લૌકિક વિચારવાળા સગા સમ્બન્ધીઓ, સ્નેહીજનો, કુટુંબીજનો અને મિત્રોનો દુઃસંગ હોય છે. ટી.વી. અને ફિલ્મોનો દુઃસંગ પણ ભારે પ્રબળ છે. તેમજ લૌકિક સાહિત્યનું વાંચન પણ દુઃસંગ છે. ટુંકમાં જેના સંગથી આપણું મન શ્રીઠાકોરજીથી અળગું થઈને સંસાર તરફ ખેંચાય તેને દુઃસંગ જાણવો.

શ્રીહરિરાયજીએ બત્રીસમાં શિક્ષાપત્રમાં પહેલા પાંચ શ્લોકમાં એવી બાબતો બતાવી છે કે જેના કારણે જીવ પ્રભુથી બલિર્મુખ બને છે. તે છે કામાવેશ, ક્રોધ, સંસારમાં આસક્તિ, લોભ, સતત ધન મેળવવા પરાયાણ રહેવું, નિર્દયતા, અસંતોષ, શોક, ભય, વિષયોનું જ્ઞાન, અભિમાન, કુરતા, દુષ્ટોને પોષણ આપવું, જ્ઞાન માર્ગમાં રહેવું, બધું જ સરખું છે તેમ માનવું, લૌકિક મનુષ્યોનો સંગ, ભગવદીયોથી વિમુખતા, કૃષ્ણલીલામાં દોષદષ્ટિ, કર્મજડતા, અપસિદ્ધાંતો સ્વીકાર ઈત્યાદિ, આ બધા જ તત્ત્વો બલિર્મુખતા ઉત્પન્ન કરવા કારણ રૂપ બની શકે છે.

આમ ઉપરોક્ત સર્વ કારણોમાંનાં એક અથવા વધુને લઈને બલિર્મુખતા પ્રગટ થાય છે તે નિઃસંદેહ છે. બલિર્મુખતા આવવાથી આસુરાવેશ આવે છે અને આસુરવેશના કારણે કાલપ્રવાહમાં તણાવાથી સર્વનાશ થવાનો સંભવ રહે છે.

**બલિર્મુખતા દૂર કરવાના ઉપાય :**

૧. આપણા દાસધર્મનું બરાબર પાલન કરવું, તેને જરા પણ આંચ આવવા દેવી નહીં.
૨. આપણા બધા દોષોનું દહન કરી શ્રીમહાપ્રભુજીના ચરણકમલોને કાયમ માટે હૃદયમાં

પધરાવી રાખવા.

૩. ભગવદીયોનો જ સંગ કરવો.

૪. અસત્પુરુષોનો સંગ ક્યારેય ન કરવો.

૫. ભગવદીયોની સાથે સર્વદા નિવેદનનું સ્મરણ કરવું.

૬. દશલીલાવિશિષ્ટ પ્રભુના લીલારસનો અનુભવ ભગવદીયોના હૃદયમાં પ્રગટ થયેલી વાણી દ્વારા જ થાય છે. માટે ભગવત્સેવાપરાયણ ભગવદીયોના મુખથી શ્રીભાગવતની કથા શ્રવણ કરવી.

### પદા યૂયં ભવિષ્યથ :

અહીં શ્રીમદાપ્રભુજી ‘પદા’ શબ્દ પ્રયોગ કરે છે. શ્રીદ્વારકેશજીએ આ પદનો અર્થ કર્યો છે કે “શ્રીઠાકોરજીની સન્મુખ રહેવું જોઈએ” એવી શિખામાણ તેમણે અગાઉ કરેલી છે. જે સમયમાં શ્રીઠાકોરજીની સન્મુખ ન રહી શકાય એ સમયમાં એક ક્ષણ બહિર્મુખતા આવે છે. પ્રભુથી વિમુખતાનો સમય બાધક છે એમ આપશ્રી અહીં સમજાવવા માંગે છે.

‘યૂયં’ પદ જે બીજો પુરુષ બહુવચનીય છે તેના દ્વારા શ્રીમદાપ્રભુજી પોતાના સ્વકીય વંશજોને અને નિજજનો એટલે કે સેવકોને - બન્નેને એક જ સમયે એક સમાન ઉપદેશ આપવા ઈચ્છે છે. ‘યૂયં’ શબ્દથી અહીં બિંદુસૃષ્ટિ અને નાદસૃષ્ટિ બન્નેને સંબોધન થયું છે.

### સર્વથા ભક્ષણં :

શ્રીમદાપ્રભુજી કાલપ્રવાલ સર્વથા ભક્ષણ કરી જશે એવું વિધાન કરે છે તો શું તે આત્મવિનાશ છે, પુષ્ટિમાર્ગમાં ભગવાન્ દ્વારા થયેલ વરણની સમાપ્તિ અર્થાત્ બીજભાવનો નાશ છે, અષ્ટાક્ષર કે બ્રહ્મસમ્બન્ધદ દીક્ષાથી પ્રાપ્ત પુષ્ટિસમ્પ્રદાયમાં પ્રાપ્ત થયેલ શરણાગતિ કે ભક્તિના સ્વરૂપના નાશ ત્યો છે, કે પુષ્ટિમાર્ગીય ફલના નાશની વાત કહેવામાં આવી છે તે વિશે શંકા ઉત્પન્ન થઈ શકે છે. ભગવદ્ગીતામાં આત્માને અવિનાશી કહ્યો છે, તદનુસાર માર્ગવરણનાશ કે બીજભાવના નષ્ટ થવાની પણ કોઈ સંભાવના રહેતી નથી, કારણ કે શ્રીગુણાંઈજીના વચન ‘અંગીકૃતિશ્ચનિત્યા’ અનુસાર પુષ્ટિમાર્ગાંગીકૃતિ નિત્ય હોવાથી અલૌકિક છે. માટે વર્તમાનમાં શ્રીમદાપ્રભુજીના સિદ્ધાંત વિરુદ્ધ અન્યાશ્રય, અસમર્પણ, અસદાચાર, દુઃસંગ ઈત્યાદિ અપરાધ કરનાર પણ પોતાને પુષ્ટિમાર્ગીય બતાવે છે કે તેથી શરણાગતિ અને ભક્તિના સ્વરૂપનાશ તેમજ ફળસ્વરૂપથી પ્રાગટ્ય સંભાવનાના નાશને આપશ્રી સર્વથા ભક્ષણના અર્થમાં કહી રહ્યા છે.

પુષ્ટિપ્રભુ જે રૂપમાં પુષ્ટિજીવને માટે ભૂતલ ઉપર પ્રગટ થાય છે, પ્રભુના તે રૂપમાં જીવને પ્રપંચ વિસ્મૃતિપૂર્વક ભગવદાસક્તિ સિદ્ધ થાય છે. તેથી વિવેક - ધૈર્ય સહિત અનન્યાશ્રયને શરણાગતિની કૃણરૂપતા માનવી ઘટે.

શ્રીમહાપ્રભુજી આ ગ્રન્થમાં આગળ કહે છે.

**ન લૌકિકઃ પ્રભુ કૃષ્ણો મનુતે નૈવ લૌકિકમ્ ।**

**ભાવસ્તત્રાપ્યસ્મદીયઃ સર્વસ્વશ્યૈલિકશ્ય સઃ ॥**

અર્થાત્ ભગવાન્ કૃષ્ણ કોઈ લૌકિક પ્રભુ નથી તેથી તેમનું ભજન-સેવન કરવાવાળા તેમને લૌકિક ભાવથી ભજતા નથી. તેમનામાં આપણો ભાવ એવો છે કે આલોકમાં અને પરલોકમાં જો કોઈ સર્વસ્વ હોય તો કેવળ શ્રીકૃષ્ણ જ છે, અન્ય કોઈ નહીં.

શ્રીદ્વારકેશજી સમજાવે છે કે જીવની કોઈ આલોક કે પરલોકની કામનાની પૂર્તિ માટે જો ભગવાનની શરણાગતિ કરે તો શરણાગતિ સાધન બન્યું અને આલોક અથવા પરલોકની કામનાનો વિષય છે તે ફલરૂપ બને. અહીં શરણાગતિમાં ફલબુદ્ધિ ન ઉપજવાથી શરણાગત જીવમાં નિઃસાધનતાનો ભાવ પણ પ્રગટ થતો નથી તો આવી શરણાગતિ તો મર્યાદામાર્ગીય શરણાગતિ હોય. પુષ્ટિમાર્ગીય શરણાગતિમાં તો શ્રીકૃષ્ણ પ્રત્યે અનન્યભાવ હોય. તેમાં ન તો આલોક કે ન પારલૌકિક કોઈ કામનાનો વિષય હોઈ શકે. અહીં શ્રીમહાપ્રભુજીનું ‘કૃષ્ણ’ પદનો પ્રયોગ કરે છે તેનો મર્મ સમજાવતાં શ્રીદ્વારકેશજીએ તેનો અર્થ ‘ફલાત્મા’ એવો કર્યો છે. ફલાત્મા એટલે ‘ફલરૂપ ભગવાન્’. તેઓ સમજાવે છે કે ભગવાન્ સ્વયં ફલરૂપ છે. ઉપનિષદો ‘કૃષ્ણ’ શબ્દનો અર્થ “જે સર્વ સામર્થ્યવાન તેમજ પૂર્ણાનન્દ છે” તેમ કરે છે. માટે કૃષ્ણ શબ્દથી શ્રીમહાપ્રભુજી એમ સુચવે છે કે આવા સર્વ સમર્થ પૂર્ણાનન્દ શ્રીહરિ જ આપણા ફલાત્મા છે, જે સંકલ્પ માત્રથી જ સકલ સૃષ્ટિને પ્રકટ કરે છે તે સર્વ સમર્થ ભગવાન્ પુષ્ટિમાર્ગમાં આશ્રયદાતા અને ભજનીય છે. જ્યારે ભગવાનનો સર્વસામર્થ્યરૂપ ધર્મ માહાત્મજ્ઞાન દ્વારા કેવળ જ્ઞાતવ્ય ( જાણવાલાયક )છે. પરંતુ તે આશ્રયદાતા કે ભજનીય નથી. ભજનીય તો ધર્મી સ્વરૂપ શ્રીકૃષ્ણ જ છે. પ્રભુને આપણા સ્વાર્થનું સાધન ન બનાવવા જોઈએ અર્થાત્ આપણો સ્વાર્થ સિદ્ધ કરવા આપણે પ્રભુનો ઉપયોગ ન કરવો જોઈએ. તે જ પ્રમાણે આપણે પ્રભુને લૌકિક માનીને તેમની સાથે વ્યવહાર ન કરવો જોઈએ. શ્રીમહાપ્રભુજી સિદ્ધાંતમુક્તાવલી ગ્રન્થમાં આ વાતની ટકોર કરતાં કહે છે “લોકાર્થી ચેદ્ ભજેત્ કૃષ્ણં ક્વિષ્ટો ભવતિ સર્વથા” જો કોઈ લૌકિક વિષયની કામના રાખીને કૃષ્ણને ભજે તો તેવું તેનું ભજન વ્યાપારરૂપ લેન-દેનનો પ્રકાર બની જાય જે સર્વથા અનર્થ રૂપ છે. આવા

ભજન સેવાને ભક્તનું નામ ના અપાય. જ્યારે ભજન ભક્તિરૂપ ન હોય ત્યારે તે કલેશરૂપ બની જાય છે. અને એવી ભક્તિ કરનારને કલેશ જ પ્રાપ્ત થાય છે. તેમ પ્રમાણે પુષ્ટિપ્રભુની પોતાના પરિવારની સેવ્યનિધિ તરીકે સ્વાર્થપ્રતિષ્ઠાને કરીને જે પ્રભુની સેવા પૂજા માટે અન્ય પાસે દ્રવ્યની યાચના કરે છે તે ભક્તિમાર્ગીય દારિદ્ર્ય છે.

શ્રીમહાપ્રભુજી છેલ્લે આ ગ્રન્થમાં આજ્ઞા કરે છે કે.

**પરલોકશ્ય તેનાયં સર્વભાવેન સર્વથા ।**

**સેવ્યઃ સ એવ ગોપીશો વિધાસ્યત્યખિલં હિ નઃ ॥**

અર્થાત્ તેથી શ્રીગોપીજનવલ્લભને જ સર્વ ભાવથી સર્વ પ્રકારે ભજવા-સેવવા જોઈએ. તેઓ જ આપણું પરલોક અને આ લોકનું બધું જ કરશે.

શ્રીમહાપ્રભુજી સમજાવે છે કે શ્રીકૃષ્ણ જ આપણું પરલોક છે અને આપણું આલોક પણ છે. તે પ્રભુ સિવાય આલોકથી અને પરલોકમાં અન્ય કોઈ ફળની કામના હોઈ શકે નહીં. તેઓ શ્રીગોપીજનવલ્લભ છે તે વાત ભૂલવી જોઈએ નહીં.

આમ અંતમાં આપશ્રી પુષ્ટિમાર્ગીય ફલનો નિર્દેશ કરતાં કહે છે કે સર્વ ભાવથી સેવ્ય ગોપીજનવલ્લભ શ્રીકૃષ્ણ જ આપણું અખિલ ઐહિક અને પારલૌકિક હિત કરશે તે નિશ્ચિત છે.



## पञ्चम दिवसीय उपक्रम

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी

कल अपनने पञ्चपद्यानि, संन्यासनिर्णय और शिक्षाश्लोकी इन तीन ग्रन्थनपे चिन्तन कियो. वामें एक प्रमुख बात हती पूर्णभाव और सर्वभाव की, दूसरी बात हती बहिर्मुखता और भगवदभिमुखता की और तीसरी बात अपने सम्प्रदायमें आज-कल जो सिद्धान्तविपरीत प्रणालीको टूँड चल रह्यो है वो हती.

पहली बात, सर्वभाव और सर्वात्मभाव के बीच क्या अन्तर है. क्योंकि अपने यहां ये दोनों शब्द कभी तो एक-दूसरेके अर्थमें वापरे जाये हैं तो कभी कोई दूसरे अर्थमें इनको प्रयोग होवे है. कभी-कभी सर्वात्मभाव और सर्वभाव के ठिकाने वाको शोर्ट रूप 'सर्वात्मना' जैसे पदनको भी प्रयोग कियो जावे है. यद्यपि सर्वात्मभावपे मैने विस्तृत विवेचन भ्रमरगीतकी सुबोधिनीकी भूमिकामें कियो है. मूल बातपे आवें तो 'सर्वात्मभाव'को एक विग्रह सर्वस्मिन् आत्मनो भावः = सर्वात्मभाव. 'भाव'को मतलब विद्यमानता है. सर्वत्र आत्माको मौजूद होनो ऐसो 'सर्वात्मभाव'को मतबल हो सके है. पर ये वाको ऑब्जेक्टिव् अर्थ है. सब्जेक्टिव् अर्थ वाको ऐसो है के हर नाम-रूप-कर्ममें परमात्माको भाव/भान होनो. ज्ञानमार्गमें भान हो जावे, भक्तिमार्गमें भाव हो जावे. सर्वोऽपि आत्मनि भावः = सर्वात्मभावः. आत्मामें जो भाव वो आत्मभाव और सारो आत्मामें भाव वो भी सर्वात्मभाव हो सके है. और आत्मनः भावः, आत्माको भाव. सर्वोऽपि आत्मनो भावः. एक सर्वेषाम् आत्मा सर्वात्मा और सर्वात्मनि भावः अथवा सर्वात्मनः भाव सर्वात्मभावः ऐसो भी ब्रेकप हो सके है. जैसे "अहामात्मात्मनां धातः"के अनुसार परमात्मा आत्माकी भी आत्मा है. अतः परमात्माकु सर्वात्मा भी कह्यो जावे है. वाकी परमता सर्वात्मा होनेके अर्थमें है. अपनी आत्मा अपने देहकी आत्मा है पर परमात्मा सबकी आत्मा है. "यः आत्मनि तिष्ठन्...यः पृथिव्यां तिष्ठन्" करके परमात्माकु सर्वात्मा भी परमात्माके अर्थमें कह्यो जातो होवे है. और सर्वात्मनि भावः सर्वात्मभावः. 'भाव'को अर्थ आशय भी हो सके है और स्नेह भी हो सके है. आशयके अर्थमें लेनेसु ज्ञान भी अर्थ निकल सके है और स्नेहके अर्थमें लेनेसु वाही बातको अर्थ भक्ति भी निकल सके है. तो सर्वात्मभावके पर्स्पेक्टिव्की बहोत बड़ी रेंज है.

‘सर्वात्मना’ शब्दकु जैसे श्रीमहाप्रभुजी “अतः सर्वात्मना नित्यं” “धृतः सर्वात्मना हृदि” ने छूटसु वापर्यो है ऐसे ही भागवतने भी छूटसु वापर्यो है. उन सबको मूल वस्तुतः वेद है. चाहे तो चारों वेदकी संहिता देखो, चाहे ब्राह्मण देखो, आरण्यक देखो सर्वत्र सर्वात्मभाव आपकु मिलेगो. उन-उन ग्रन्थनमें स्टोरी अलग-अलग होंगी पर थीम नहीं बदली है. वेदसु लेके श्रीमहाप्रभुजी तक थीम वो ही है : सर्वात्मभाव.

सर्वात्मभावको रोल साधारण नहीं है. अपनकु या शब्द और धारणा को पूरी भारतीय चिन्तन परम्परामें जो असाधारण महात्व है वाके प्रति सभान होनो बहोत जरूरी है. दूसरे कोई सभान होवें के नहीं पर हर पुष्टिमार्गीको तो परम कर्तव्य है क्योंकि श्रीमहाप्रभुजीने याके ऊपर बहोत अधिक भार दियो है. यामें अपन यदि चूके तो श्रीमहाप्रभुजीके कोई भी वचन, सिद्धान्त या निष्कर्षकु समझनेमें बहोत बड़ी गलती हो सके है. सर्वात्मभाव तराजूके कांटाके जैसो है जासु दोनों तरफ कोई भी वस्तुकु तोल्यो जा सके. केवल श्रीमहाप्रभुजीके षोडशग्रन्थको सर्वे करें तो अपन देख सके हैं श्रुआउद् श्रीमहाप्रभुजीने याकु कितनो वापर्यो है. श्रीहरिरायजीके ग्रन्थनकु देखें तो उनन भी ये कह्यो है के जिनकु सर्वात्मभाव सिद्ध भयो है उनको ही रासमें प्रवेश भयो है.

सर्वात्मभाव शांकर, रामानुज, माध्व मतमें नहीं है ऐसी बात नहीं है. वहां भी है. क्योंकि वो भी सब वेद-वेदान्त-गीता-भागवतके व्याख्याकार हैं. उनके अर्थकी छटाएं द्वैत, केवलाद्वैत, विशिष्टाद्वैत की फ्रेमके बदलनेके कारण बदल जावे हैं. पर सर्वात्मभावसु कोई भी वेदान्ती छटक नहीं सके है. या बातसु सर्वात्मभावको महत्व अपनकु समझनो चाहिये.

आत्यन्तिक द्वैतवादमें सर्वात्मभावको अर्थ ऐसो होयगो के सर्वात्मभाव ब्रह्मकी उपासनाकी कोई एक सब्जेक्टिव् स्टेट है. शंकराचार्यजीने एक अच्छो उदाहरण दियो है के शालिग्राम तो शिला है पर उपासनार्थ शालिग्राममें विष्णुबुद्धि करनी अनिवार्य है. पर अपने यहां शालिग्राम विष्णुकी विभूति जैसो है या विष्णुकी नित्याभिव्यक्तिको स्थान है. यासुं ही शालिग्रामजीमें प्राणप्रतिष्ठा नहीं होवे है. ऐसे ही गिरिराजजीमें भी प्राणप्रतिष्ठा नहीं होवे है. वा बाजू कान्तानाथजीमें और नर्मदेश्वर महादेवमें भी प्राणप्रतिष्ठा नहीं होवे है. उनकुं पधराओ और पूजा शुरु कर सको हो. इनकु नित्याभिव्यक्तिके स्थान माने गये हैं. अपने यहां इन सबमें साक्षात् बुद्धि तो है ही

पर साथ-साथ ऑब्जेक्टिव् लेवलपे भी नित्याभिव्यक्तिकी स्टेटस् मानी गयी है। इतनो भेद द्वैतवादी और अद्वैतवादी दृष्टिकोणमें आवे है। द्वैतवादी उपासनामें वा तरहकी बुद्धि या एप्रोच् स्वीकारे हैं। ‘एप्रोच्’ मतलब “आचार्यदेवो भव, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव”। आचार्य-माता-पिता सचमुचमें देव नहीं हैं पर उनके प्रति अपनो एप्रोच् देवके जैसो होनो चाहिये। जाकु वेदान्तदेशिक कहे हैं “देववत् स्याद् उपास्यः”। वो देव नहीं हैं पर शिष्यकेलिये ऑब्लिगेटरी है के वो आचार्यकु देववत् माने। सन्ततिकेलिये ये ऑब्लिगेटरी है के वो माता-पिताकु देववत् माने। ऐसे हर उपासककेलिये ये ऑब्लिगेटरी है के वो शालिग्रामकु साक्षात् विष्णु माने। पर जब द्वैतवादीकु अपन ये पूछें के शालिग्राममें उपास्यबुद्धि भ्रान्त है के यथार्थ तो वो ऐसो कहे हैं के वो न भ्रान्त है और न यथार्थ। नाटकमें जैसे एक्टरमें केरेक्टरकी अभेदबुद्धिसुं रसाभिव्यक्ति होवे है ऐसे उपासनामें भी मूर्तिमें अभेदबुद्धिसुं उपासना होवे है। तात्त्विक यथार्थ-अयथार्थ कुछ ओर वस्तु है, रसशास्त्रीय यथार्थ-अयथार्थ कुछ ओर वस्तु है ऐसे ही औपासनिक यथार्थ-अयथार्थ कुछ ओर वस्तु है ये अपने यहांकी सुचिन्तित बात है। उपासनाशास्त्रमें स्पष्ट लिख्यो है के जहां जो बुद्धि करनी है वासुं पहले जो वाके प्रिरिक्विझिट्र हैं वो यदि कम्प्लीट भये हैं तो वहां वैसी बुद्धि करी जा सके है। जैसे मूर्तिमें प्राणप्रतिष्ठा यदि भयी है तो देवबुद्धि करी जा सके है प्राणप्रतिष्ठा रहित मूर्तिमें देवबुद्धि करनो उपासनाशास्त्रने पाप मान्यो है। अपने यहां अन्याश्रयकु अपराध मान्यो है। ये भक्तिमार्गीय दृष्टि है। भक्तिमें कुछ अपनो है कुछ अन्य भी है। याकु तत्त्वके साथ स्नान-सूतकको सम्बन्ध नहीं है। जो या बातकु नहीं समझें हैं वो हल्ला मचाते रहे हैं के तुम संकुचितता फैलाओ हो, शिवदर्शनकु अन्याश्रय मानो हो... अरे भाई, समझो, हम ये नहीं कह रहे हैं के शिव ब्रह्मको रूप नहीं है। ब्रह्मके अनन्त रूपमेंसुं शिव भी ब्रह्मको ही एक रूप है पर हमारी भक्तिसाधनामें शिवपूजन, शिवमन्दिरमें गमन, शिवप्रसादको भक्षण स्वतः करनो अयथार्थ है। अयथार्थ होनेके कारण अन्याश्रय है। ये बहोत सूक्ष्म बाते हैं। पर क्या होवे है के “या रब वो न समझे हैं न समझेंगे मेरी बात, दें ओर दिल उनको या दे मुझको जबां ओर”। जिनकु समझ नहीं पडे उनकु नहीं ही पडे। बहारवाले नहीं समझें ये तो क्षम्य है, अपने पुष्टिमार्गके लोग या रहस्यकु समझ नहीं पावें हैं के अन्याश्रयको सिद्धान्त ब्राह्मिक स्तरपे नहीं कह्यो जा रह्यो है भक्तिके स्तरपे कह्यो जा रह्यो है। ये बात नहीं समझनेके कारण गोस्वामी लोग समझें हैं के उनके यहां बिराजते ठाकुरजी ही केवल पुरुषोत्तम हैं, शिष्यनके घरमें बिराजते ठाकुरजी टटपुंजिया हैं। बेवकूफीकी, ऐसी बात कौनने कही? मूर्ख लोग सर्वात्मभावके याथार्थ्यकु नहीं समझें हैं। तुमकु जब अपने

प्रभुको भजन करना है तब सर्वात्मभावसुं करना है. ऐसेमें तुम ऐसी बकवाद करो के मेरे ठाकुरजी ही केवल पुरुषोत्तम हैं, दूसरेनके टटपुंजिया हैं तब तो सर्वात्मभाव ही खंडित हो गयो! तुम सर्वात्मभाव समझ नहीं पाये हो. तुम्हारे भजनको एक यथार्थ है, वो यथार्थ मेरे भजनको नहीं है. मेरेलिये वो अयथार्थ है. वो अयथार्थ ब्राह्मिक या कार्ष्णिक अयथार्थ नहीं है. कृष्ण सब है, पर मेरे भजनमें वो अयथार्थ हो जावे है. एक वैष्णव हवेलीमें जातो बंद भयो. गोस्वामीने वाकु बुलाके पूछ्यो के आज-कल हवेलीमें दीखे नहीं है. वाने कही के घरमें ठाकुरजीकी सेवाके कारण समय नहीं रहे है. गोस्वामीने कही के अच्छा तो मैं तेरे घर आऊंगो. वाके घर गये. लंबो-चौड़ो सेवाप्रकार देखके गुस्सा हो गये. बिचारो वैष्णवकु बेंतनसुं पीट्यो के इतनी सेवा करेगो तो मेरी हवेलीमें दर्शन करने कैसे आ पायेगो! बिचारो वैष्णव दुःखी होके रोने लग्यो! तो देखो, सर्वात्मभाव नहीं है वाके कारण या तरहकी रेगिंग् पुष्टिमार्गमें चले है. याके कारण सर्वात्मभावके कुछ सिग्निफिकंट पहलूनूके ऊपर ध्यान देनो बहोत जरूरी है.

### वेदमें सर्वात्मभाव :

वेद सर्वात्मभावकु आधिदैविक, आध्यात्मिक, आधिभौतिक, उपासना, वाणी, विचार ऐसे कई लेवलपे सब्स्टेन्शियेट करे है. वो देखो : “इन्द्रं मित्रं वरुणम् अग्निम् अथो दिव्यः स सपर्णो गरुत्मान्. एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यममं मातरिष्वानमाह”. एक सत् कु कोई इन्द्र, कोई मित्र-सूर्य, कोई वरुण, कोई अग्नि, कोई दिव्य गरुत्मान् सपर्ण अर्थात् विष्णु कहे हैं. कोई अपराग्नि, कोई वायु, कोई यम कहे हैं. पर इन सब रूपनमें तत्त्व एक ही है. देखो, वेद सर्वात्मभावकु सब्स्टेन्शियेट कर रह्यो है. ये आधिदैविक सब्स्टेन्शियेशन है.

### उपासनाको सब्स्टेन्शियेशन :

“पृच्छामि त्वां परमन्तं पृथिव्या. पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः. पृच्छामि अश्वस्य रेतः. पृच्छामि वाचा परमं व्योमन्”. वेद एक प्रोब्लेम् खडी कर रह्यो है के मैं तुमसुं पूछ रह्यो हूं के पृथ्वीकी इनरमोस्ट कोर क्या है? या चौदह भुवनकी नाभी-सेंटर कहां है ये मोकु बताओ. वो अश्व कौन है के जाने याकु रेत प्रोवाईड कियो है. वो मोकु बताओ के जामें या बातकु कहनेवाली वाणी प्रकट भई. अब वेद खुद वो सब बतावे है : “इयं वेदी परो अन्तः पृथिव्या” ये वेदी के जहां मैं यज्ञ कर रह्यो हूं वो या पृथ्वीको इनरमोस्ट कोर है. “अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः” ये यज्ञ जो



मैं कर रह्यो हूं वो सारे ब्रह्माण्डको सेंटर है. “अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य” ये सोम जाकी मैं आहूति दे रह्यो हूं वो सारे ब्रह्माण्डमें जीव प्रदान करनेवालो रेत है. “ब्रह्म...वाचः परमे व्योमन्” जा व्योममें मैं मन्त्र बोल रह्यो हूं वो परम व्योम है. ध्यानसु देखो, “सर्वभावेन भजनीयः” की बात यहां यज्ञमें प्रकट हो रही है के नहीं? उपास्य रूपकु कैसे सर्वात्मभावसु सब्स्टेन्शियेट्र कियो गयो है! अपन भी ये कहे हैं के अष्टसखानकी वाणी लीलादर्शन है. जा वाणीसु अपन अपने ठाकुरजीकु रिझा रहे हैं वो ही वाणी परम व्योममें प्रकट भयी वाणी है. ये सर्वात्मभाव है. औपासनिक दृष्टिसुं वाकु सब्स्टेन्शियेट्र कियो गयो है.

**ऑब्जेक्टिव् एंगल्सु सब्स्टेन्शियेशन :**

“त्वम् अग्नेः द्युभिः. त्वम् आशुशुक्षिण. त्वम् अद्भ्यः. त्वम् अश्मनस्परि. त्वं वनेभ्यः. त्वम् औषधीभ्यः. त्वं नृणां नृपते जायते शुचिः”. हे अग्नि, या अन्तरिक्षमें तेरो ही प्रकाश है. विचार करो, जा अग्निमें मैं आहूति दे रह्यो हूं वो अग्नि कितनी छोटीसी होयगी! वाको प्रकाश पूरे अन्तरिक्षमें कैसे फैल सके है? ऐसी बात या तो कोई दारुडीया कह सके है या फिर सर्वात्मभाव वालो कह सके है. वेद कहे है के जल, वायु, वन, पथ्थर, वन, औषधी, मनुष्य इन सबमेंसुं पैदा होने वालो तू है. कृष्णाश्रय याद करो. देश काल द्रव्य कर्ता मन्त्र कर्म सबको अन्याश्रय छोडके कृष्णएव गतिर्मम. या वेदके मन्त्रमें कृष्णाश्रय बोल रह्यो है के नहीं!

“त्वम् अग्ने होत्रम्. तव पोत्रम्. ऋत्वीयम्. तव नेष्ट्रम्...त्वं पुत्रो भवसि. यस्ते अविधत्. त्वं सखा सुशेव. एकएवाग्नि बहुधा समिद्ध. एकः सूर्यो विश्वमनुप्रभूत. एकैव उषा सर्वमिदं विभाति. एकं वा इदं विदभूत सर्वम्. ” यज्ञके होता, पोता, नेष्ट्रा, ऋत्विग्, अध्वर्यु, ब्रह्मा, यजमान, यजमानकी पत्नी सब कछु तू ही है. जो भी सत् है वाको इन्द्र-कंट्रोलींग् फैक्टर तू है. विष्णु जाकु लोग बहोत तरहसुं गावे हैं वो भी तू है. ब्रह्मा भी तू है के जाकु ये सारी सृष्टिकु पैदा करनेमें कौनसी सम्पदा वापरनी वाको ज्ञान हतो. ...तू पुत्र है, तू ही मेरी केर लेनेवालो मेरो सखा है. एक अग्निको यजन कई तरहसुं होवे है. एक सूर्य सारे विश्वकु प्रकाशित करे है. एक ही उषा हर वस्तुकु आलोकित करे है. एक ही ये है के जो सब कछु बन्यो है. याद रखियो, ये सर्वात्मभावकु सब्स्टेन्शियेट्र कियो जा रह्यो है. धीरजसुं सोचो, वेदमें ब्रह्मदृष्टि है के नहीं! अग्निकी आराधनामें भी दृष्टि ब्राह्मिक है. याको प्रमाण देखो “यो

नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा” जो मेरो पिता है वो विश्वके सारे भुवनकु जाने है. “यो देवानां नामधा एकएव” सारे देवतानके नाम धारण करनेवालो कोई एक तत्त्व है. ये सर्वात्मभावकु सब्स्टेन्शियेट् करनेको तरीका है. कुछ ऋचानके बाद वेद कहे है : “परो दिवा परो यत् पृथिव्या. परो देवेभिः परोऽसुरै यदस्ति, अजस्य नाभावधि एकमर्पितम्” वो दिनसु ऊपर है, पृथ्वीसु ऊपर है, देवतानसु भी पर है. विचारो, सारे देवतानके नाम-रूप जाने धारण किये हैं वो उनसु पर कैसे भयो? पृथ्वी वो ही है तो पृथ्वीसुं पर कैसे हो गयो? ये ही तो सर्वात्मभावकी ब्यूटी है! “यः सर्वत्रैव सन्तिष्ठन् अन्तरः संस्पृषेत् न तत्, शरीरं तं न वेदेत्थ योऽनुविश्य प्रकाशते, सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तत्” श्रीमहाप्रभुजी लिखे हैं. श्रीमहाप्रभुजीने सर्वात्मभावकु यहां फिलोसोफिकलि सब्स्टेन्शियेट् कियो है. सर्ववादानवसर पर है और नानावादानुरोधि अन्तःप्रविष्ट है. हर वाद-थियारीमें वो मौजूद भी है और हर वादसु ऊपर भी है. “अजस्य नाभावधि एकमर्पितम्” वो कैसो है? वाकी नाभीमें सब कछु समर्पित है. “यस्मिन् विश्वा भुवनानि तस्थु” सब कछु वामें आराकी तरह समर्पित होनेके कारण सारो विश्व वामें सन्तिष्ठ है. “न तं विदाथ य इमा जजान. अन्यद् युष्माकम् अन्तरा बभूव” पर चक्कर ये है के जामें सारो विश्व आराकी तरह समर्पित है वो तुमकु दीखे नहीं है. ये वो ही बात है के जो श्रीमहाप्रभुजीने “शरीरं तं न वेदेत्थ योऽनुविश्य प्रकाशते”में कही है. तुमने मान लियो के वो कछु ओर होयगो. पर तुमने जो मान्यो है वो ही तुम्हारे सामने कर्टन् बन रह्यो है. जैसे शैवने मान लियो के विष्णु कोई ओर होंगे, वैष्णवने मान लियो के शिव कोई ओर होंगे, मुसलमानने मान लियो के राम-कृष्ण कोई ओर होंगे, हिन्दुने मान लियो के अल्लाह कोई ओर होयगो...अभी देवबन्द वालेने कही के तुम कहो तो हम ये कबूल करने तैयार हैं के हिन्दु लोग मुसलमानके द्वेषी नहीं है. पर हम ये कबूल करने तैयार नहीं हैं के हिन्दु काफिर नहीं हैं. काफिर तो हैं ही. क्योंके कुफ्र-पाप कर रहे हैं. ठीक बात है. अपन कुरानके हिसाबसुं काफिर हैं. यामें बुरो लगानेवाली कोई बात नहीं है. पर जब अपन उनकु कहे के तुम म्लेच्छ हो, हमारे देशमें आ धमके हो वा बातको बुरो उनकु भी नहीं लगनो चाहिये. तब तो बात बराबरीकी भई. पर ये बात स्वीकारने वो लोग तैयार नहीं है. क्यों? क्योंके उनके पास सर्वात्मभावकी दृष्टि नहीं है. अपनी बात ही अलग है. अपन राम-कृष्णकु भजते भये भी ये मानने तैयार हैं के वो एक अल्लाह भी बन सके है, यहोबा भी बन सके है, शून्य भी बन सके है. पर इन लोगनके पास ये दृष्टि ही नहीं है के जाके तहत वो लोग ये सोच सकें के उनको

अल्लाह राम-कृष्ण भी बन सके है. उनकु सब लोग काफिर ही दीखे हैं. जैसे अपने गो.बा.नकु लगे है के पुरुषोत्तम तो हमारे यहां ही है, वैष्णवनके घरमें तो कोई टटपुंजिया है. ये भी एक देवबंदवालो फतवा ही है. ये फतवाबाजी सर्वात्मभावकु नहीं समझनेके कारण पैदा होवे है. एक बखत सर्वात्मभाव समझ जाओ के जो वेदसुं लेके श्रीमहाप्रभुजी तक अनवच्छिन्न चली आयी धारा है, ये सब समस्याएं अपने आप समाहित हो जायेंगी.

आगे वेद कहे है के वाकु नहीं पहचाननेके कारण तुम्हारे क्या हाल होवे हैं : **“नीहारेण प्रावृता जल्प्या असुत्रपः उक्था स चरन्ति”**. तुमकु पानी नहीं मिले है, फुहारनकी छोटी-छोटी झपकीएं मिले हैं उनकु तुम पानी समझके अपनी प्यास बुझाने यहां-वहां भटक रहे हो. कहीं थोडोसो मोईश्चर होवे वाकु चाटनेवाले तुम बेवकूफ हो. वा एककु तुम जान जाओ तो तुम्हारी सारी प्यास तृप्त हो जायेगी. ये केवल आधिदैविक और आध्यात्मिक लेवलपे ही नहीं कह्यो है गीतामें तो **“भूमिरापोऽनलोवायुः खं-मनो-बुद्धिरेव च, अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा”** ये सब कछु मैं हूं ये कह्यो ही है. पर वेदमें भी ये बात उतनी ही स्पष्ट कही है के **“पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्”**. यहां देवकी बात कहां है! जो भूत, जो खत्म हो गयो है, जो नोन्-एक्सिस्टिंग् है और जो होनेवालो है वो भी वो खुद ही है. ये सर्वात्मभावकु सब्स्टेन्शियेट् करनेकेलिये दिये गये वेदके स्टेटमेंट् हैं. **“उत अमृतत्वस्य ईशानः यदन्नेन अतिरोहति”** वो अमृतत्वको ईश है. वाकी अमरतामें भूतता और भविष्यता पैदा होवे हैं. वो अमृत होते भये भी अपने कोई वस्तु भूततया प्रकट करे है, कोई वस्तुकु भावितया प्रकट करे है. वाको उदाहरण कितनो सुंदर दियो है : **“यद् अन्नेन अतिरोहति”** अन्न जो खानेके बाद खत्म हो जायेगो, विष्ठा बन जायेगो. पर अन्नकु खानेके बाद भी जो खत्म नहीं होवे है वो ‘वो’ है. मतलब, अन्न भी वो है और अन्नाद भी वो है. **“अहमन्नम् अहमन्नम् अहम् अन्नादो अहम् अन्नादो अहम् अन्नादः”** मैं अन्न हूं और मैं अन्नाद हूं. या बातकु उपनिषत् समझानो चाह रह्यो है. या तरहसुं वेदने सर्वात्मभावकु सब्स्टेन्शियेट् कियो वाको रहस्य उपनिषदने अपनकु ये बतायो के तुम भ्रान्त हो के ये ब्रह्म है, वो ब्रह्म नहीं है ऐसे सोच रहे हो. ब्रह्म क्या है? उपनिषत् निर्णय देवे है के **“सच्च त्यच्चाऽभवत्, मूर्तञ्चैवामूर्तञ्च, मर्त्यञ्चामृतञ्च”** सत् और त्यत्, मूर्त और अमूर्त, मर्त्य और अमृत, विज्ञान और अविज्ञान, सत्य और अनृत, पाप और पुण्य सब कछु ब्रह्म है. ये

सर्वात्मभाव है. श्रीमहाप्रभुजीकी अद्भुत दृष्टि है के आपने वेदके इन एलिमेंट्स फ़िरसु पुष्टिभक्तिमें इन्ट्रोड्यूस किये हैं. वेदकी कोई भी आज्ञाको बाध किये बिना वेदके सिद्धान्तकु जी सके हैं के नहीं ये श्रीमहाप्रभुजी अपनसुं पूछ रहे हैं.

याकु फिलोसोफिकलि श्रीमहाप्रभुजी सबस्टेन्शियेड कर रहे हैं के **“एकविज्ञानेन सर्वम् इदं विज्ञातं भवति”** ये एकदम मेटाफिसिकल् स्टेटमेंट है. याकी रिलिजियस पैराफ्रेज़िंग कैसे होवे है वो देखो **“आकाशत् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरं, सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति”**. एक नमस्कारेण सर्वे नमस्कृता भवन्ति. ये ब्रह्मदृष्टि है. ब्रह्मदृष्टिको मतलब ही सर्वात्मभाव है. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के यदि क्षुद्र देवतान्की भी ब्रह्मदृष्टिसु उपासना करोगे तो उनमें भी मुक्ति प्रदान करवेकी सामर्थ्य आयेगी. ये श्रीमहाप्रभुजी क्या बात कर रहे हैं वापे ध्यान दो. ये सर्वात्मभाव ही है जापे श्रीमहाप्रभुजी अपनो ध्यान खींचनो चाह रहे हैं. तुमकु अन्याश्रयकी जरूरत नहीं है. **“अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते, तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्”**. ये सर्वात्मभावके पीछे रह्यो भयो अपनो बेसिक् एप्रोच हतो जाकु न तो अपन समझनेकी कोशिश करे हैं न बोलनेकी और न जीनेकी कोशिश करें हैं. केवल **“सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो ब्रजाधिपः”** के झंडाएं फरकाते रहे हैं.

एक सुंदर वचन है : **“ऐतदात्म्यम् इदं सर्वम् तत् सत्यम् स आत्मा तत् त्वम् असि”** ये सब कुछ ब्रह्मात्मक है. वो सत्य है. वो आत्मा है. वाके बाद वेद कहे है के वो तू है. वो मैं हूं ऐसे क्यों नहीं कह्यो? ज्ञानमार्गमें सर्वात्मक ब्रह्मकी आत्मतया उपासन करवेकी है याके कारण ज्ञानमार्ग ऐसी भाषा बोल रह्यो है. और जब **“तत्त्वमसि”** कह रहे हैं तब श्रीमहाप्रभुजीने क्या वाकु मिथ्या मान्यो है? मिथ्या नहीं मान्यो है. श्रीमहाप्रभुजीको हृदय इतनो विशाल है, ज्ञानमार्गीकु ऐसे ही करनो चाहिये. तो भक्तिमार्गीकु क्या करनो चाहिये? भक्तिमार्गी यदि ज्ञानमार्गकी बातमें आके ऐसे सोचने लगे के मैं ही ब्रह्म हूं फिर मोकु कोईकी उपासना करनेकी क्या आवश्यकता है तो श्रीमहाप्रभुजी कहेंगे के **“अयमेव महामोहो हीदमेव प्रतारणं यत् कृष्णं न भजेत् प्राज्ञः शास्त्राभ्यासपरः कृतिः, तेषां कर्मवसानान्तु भवएव फलिष्यति”**. तो फिर करनो क्या? श्रीमहाप्रभुजी अपनकु समझावे हैं के ज्ञानमार्गमें वो बात १००% सच्ची होते भये भी **“तत्त्वमसि”** तुम अपने ठाकुरजीकु कहो. बस, भक्ति हो गयी! जब

“तत्त्वमसि”को अर्थ तुम अहम् ले रहे हो वा बखत ज्ञान हो गयो और ये ही बात जब तुम अपने ठाकुरजीकु कहोगे तो भक्तिमार्ग प्रकट हो जायेगो। गोपीजनने ये उपदेश कृष्णकु दियो है “प्रेष्ठो भवान् तनुभृतान् किल बन्धुरात्मा”. भक्तिमार्गमें ब्रह्मकु अपनकु समझानो पडेगो के वो तू है, “तत् त्वम् असि”. “प्रेष्ठो भवान् तनुभृतां किल बन्धुरात्मा तत् त्वम् असि”. या तरहसु भक्तिमार्गकी उपासना होवे है। या रहस्यकु अपन नहीं जानें तो फिर वो ही राग अलापते रहेंगे के पूर्ण पुरुषोत्तम तो हमारे यहां ही बिराजे हैं, तुम्हारे घरमें तो कोई अल्ललटप्पु है! सर्वात्मभाव खण्डित हो गयो। “या रब् वो न समझे हैं न समझेंगे मेरी बात, दे ओर दिल उनको या दे मुझको जबां और”. अपन कितनी बखत समझावें सबकु पर कहते भये, बोलते भये भी अपन या रहस्यकु समझ नहीं पावें हैं।

एक सर्वात्मभाव है और एक पूर्णभाव है। सर्वमें एकको भावन ये सर्वात्मभावको पूर्वदल है। उपनिषद् याकु कहे है के “तत्र को मोह, कः शोक एकत्वमनुपश्यत!” तुम्हारे सारे शोक-मोह दूर हो जायेंगे जब सर्वत्र तुम एकको अनुदर्शन करोगे। तो सर्वत्र एकको अनुदर्शन वो सर्वात्मभावको महात्म्यज्ञान वालो अंश है। तो सुदृढ-सर्वतोऽधिक वालो अंश कब आयेगो? वो ऐसे आयेगो के सर्वत्र एकको अनुदर्शन नहीं पर एकमें सब कुछ देखनो। एककु सब तरहसु चाहनो। जाकु श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के “चक्षुष्मतां फलम् इदमेव”. हमारे देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण सबको फल तू है। ये स्नेहको प्रकार है। ये पूर्णभाव है। एकमें सम्पूर्णता माननी पूर्णभाव है। पूर्णभाव अपने सर्वात्मभावकी फलितावस्था है, सर्वात्मभाव पूर्णभावकी माहात्म्यज्ञानावस्था है।

अपनकु ये समस्या आयी हती के “येन त्यजसि तत् त्यज”. ध्यानसु समझो, सर्वकी एकात्मकताके कारण सर्वमें अनुभूत होते द्वैतकु छोडके सर्वकी एकात्मकता समझी। जा एकके कारण अपनने सबकु एकीकृत कियो वा एकीकृतके भावकु छोडके एकमें सर्वकु देखनो, एककु अनेकीकृत करनो जाकु मैने आधारपत्रमें कह्यो है के नाम-रूप-कर्म तीन ब्रह्मात्मक हैं और ब्रह्म एक होते भये भी एतत्त्रयात्मक है। जाकु श्रीमहाप्रभुजी “रूप-नामविभेदेन जगत्क्रीडति यो यतः” कह रहे हैं। ब्रह्म ऑब्जेक्टिवली सारे नाम-रूप-कर्मकु धारण करनेवालो बन्यो है, तुम्हारे सर्वात्मभावकु सब्स्टेंशियेट् करवेकेलिये। ये केवल औपासनिक याथार्थ्य नहीं है, मेटाफिसिकल् ट्रुथ

है. “एकं वा इदं सर्वं विबभूव” ऐसे ही एकस्य स्नेहेन सर्वं स्निग्धं भवति ये सर्वात्मभाव है. ये जो अपनो स्नेहात्मक सर्वात्मभाव है वाकु पूर्ण भाव कह रहे हैं. या मॉडलकु श्रीमहाप्रभुजीने कई तरहसुं वापर्यो है. “सर्वानन्दमयस्यापि कृपानन्दः सुदुर्लभः”. एककी सर्वात्मकताको स्फुरण सर्वानन्दताको स्फुरण है क्योंकि “आनन्दाध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति...तद्ब्रह्म” पर एकमें सर्वता स्फुरित होवे “प्रेष्ठो भवान् तनुभृतां किल बन्धुरात्मा” मेरो तो जो कुछ है वो बस तू है, तू है, तू है. ये भावकी पूर्णता है. “पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते” अंशमें भी पूर्णता ही रहे है. सूर्यसुं छितराई भयी किरणे अपनकुं जला नहीं सके हैं पर आईग्लाससु उनकु फिरसु कोन्सन्ट्रेट् करो तो उनमें फिरसु जलानेकी सामर्थ्य आ जावे है. ऐसे भक्तिरूपी आईग्लाससु वाकु कोन्सन्ट्रेट् करोगे तो “तदैव सकलो बन्धो नाशमेति”. ये सर्वभाव और पूर्णभाव को सिद्धान्त है.

ये सारो स्वरूप श्रीमहाप्रभुजीने समझायो है वाके मूलमें निरोध है. श्रीमहाप्रभुजीने एक सूत्र याकेलिये पकड्यो है “ब्रह्मरूपं जगद् ज्ञातव्यं, ब्रह्म जगतोऽतिरिच्यते इति न तत्र आसक्तिः कर्तव्या”. या सूत्रसु श्रीमहाप्रभुजी या सारी टॉपिक् के इम्प्लिकेशन् और प्रिंसिपोज़िशन् कु हेंडल् करे हैं. जगतकु ब्रह्मरूप जानो परन्तु ब्रह्म जगतसुं अतिरिक्त है. यासुं आसक्ति जगत्में मत करो, आसक्ति ब्रह्ममें करो. “यो देवानां नामधा एकएव, परो देवेभिः” ये जो वेदोपनिषत्को सिद्धान्त हतो के सब कुछ होते भये भी जो सबसु परे है. “स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्” है. जाकु श्रीमहाप्रभुजी “सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तत्” कह रहे हैं. एक बात समझो के ये तो यद्यपि फिलोसोफिकल् कोन्टेक्स्टमें कही गयी बात है पर श्रीमहाप्रभुजीने ये ही बात भक्तिके सन्दर्भमें भी स्वीकारी है के अपनो कृष्ण सर्वभक्त्यवसर भी है और नानाभक्त्यनुरोधि भी है. वार्तामें आवे है के लड्डुगोपाल मदनमोहनजी बन गये. कैसे बने? नानाभक्त्यनुरोधिता है तभी तो बने! और यदि अपनी भक्तिकी सामर्थ्यके विचारसु देखें तो कृष्ण सर्वभक्त्यनवसर है. क्योंकि “कलौ भक्त्यादिमार्गा हि दुःसाध्या”. ये आखो सेटअप् है जो सर्वात्मभावकु सब्स्टेन्शियेट् कर रह्यो है. ...“प्रपञ्चविस्मृति पूर्वक भगवदासक्ति” ये कौनसे सूत्रको भाष्य है? “ब्रह्मरूपं जगद् ज्ञातव्यं...कर्तव्या” या सूत्रको भाष्य निरोधको लक्षण है. या सूत्रकु पकडके श्रीमहाप्रभुजीने अन्याश्रय, भक्ति, निरोध आदि बहोत सारी समस्यानको

समाधान खोज्यो है. सर्वात्मभावकु पूर्णभावमें कल्मिनेट् करनेको जो प्रोग्राम है वाके तहत ये बात या तरहसुं कही गयी है. ये बात पञ्चपद्यानिमें इन्कोपेरिट् भयी है, निरोधलक्षणमें भी भयी है और शिक्षाश्लोकीमें भी इन्कोपेरिट् भयी है.

कृष्णाभिमुख होनो और बहिर्मुख होनो. बहिर्मुख होनो मतलब वा एकमें सब कछु नहीं माननो और कृष्णाभिमुख होनो मतलब वाकु ही सब कछु माननो. “सर्वस्वश्चैहिकश्च सः परलोकश्च तेनाऽयं सर्वभावेन सर्वथा, सेव्यः सएव गोपीशो विधास्यत्यखिलं हि नः”. ये प्रपञ्चविस्मृति पूर्वक भगवदासक्तिको उपदेश नहीं है तो ओर क्या है? और ये उपदेश “ब्रह्मरूपं जगद् ज्ञातव्यं...कर्तव्या” या सूत्रको भाष्य नहीं है तो ओर क्या है? और ये श्रीमहाप्रभुजीको सूत्र “परो देवेभिः. यो देवानां नामधा एकएव”को इम्प्लिमेंटेशन नहीं है तो क्या है? श्रीमहाप्रभुजीने स्पष्ट लिख्यो है के मेरे सिद्धान्तमें वेदसु कहीं भी कोई विरोध नहीं है. “कृष्णवाक्यानुसारेण शास्त्रार्थ ये वदन्ति हि, ते हि भागवता प्रोक्ता शुद्धास्ते ब्रह्मवादिनः” ये श्रीमहाप्रभुजीको ब्रह्म है. ब्रह्मको केरेक्टर के वो सब कछु होते भये भी सर्वातीत है वो इन सब बातनकु ला रह्यो है के सब कछुकु भूलके एकमें निष्ठ हो. सब कछुकु खत्म करनेकी जरूरत नहीं है, सब कछुकु अस्वीकार करनेकी जरूरत नहीं है. सब कछुमें रहते भये भगवान्में आसक्तिकी बात है. सबके साथ इंटरैक्ट करते भये कृष्णमें अनन्याश्रित होनेकी बात है. शरणागतिको मॉडल् भी निरोधवालो ही मॉडल् है. और ये मॉडल् सेवाफल तक जायेगो.



## पुष्टिमार्गीय फल-विवेचन शास्त्रार्थ प्रकरणके सन्दर्भमें

डॉ. गजानन शर्मा

### शास्त्रार्थ प्रकरणका महत्व :

प्रभु स्वतन्त्र और आप्तकाम हैं फिर भी सबके उद्धारके लिए प्रयत्नशील होकर अपने मूलरूपमें, स्वरूपतः श्रीकृष्णके रूपमें प्रादुर्भूत होते हैं। अनवतार कालमें भी सभी जीवोंका उद्धार हो सके इसलिए वे व्यासजीके रूपमें अवतरित होकर सबके लिए अत्यन्त सुखदायक श्रीमद्भागवतका कथन करते हैं। कलियुगमें वैश्वानर अग्निने श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्यजीके रूपमें प्रकट होकर श्रीमद्भागवतके उद्घारात्वको सम्पन्न करनेके लिए दीपकके समान 'तत्त्वार्थदीप' ग्रन्थका प्रणयन किया। इस ग्रन्थके तीन प्रकरण हैं, जो कि स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें भी जाने जाते हैं :

१. शास्त्रार्थप्रकरण,
२. सर्वनिर्णय प्रकरण और
३. भागवतार्थप्रकरण<sup>१</sup>

### शास्त्रार्थ प्रकरणमें गीतार्थका प्रतिपादन है :

तत्त्वार्थदीपनिबन्ध ग्रन्थके शास्त्रार्थ प्रकरणमें गीताके अर्थका प्रतिपादन हुआ है। क्योंकि भगवान्ने स्वयं ही यह निर्णय दिया है कि एक मात्र गीता ही सर्वोपरि शास्त्र है। गीताके अर्थका बोध हो जाने पर वेदार्थ स्वतः सिद्ध हो जाता है। शास्त्रार्थ प्रकरण ग्रन्थमें प्रमाणबलका आश्रय लेकर महाप्रभुजीने गीतार्थका सम्यक् निरूपण किया है। श्रीमदवल्लभाचार्य वेद, भगवान् श्रीकृष्णके वचन गीता, व्यासजीके ब्रह्मसूत्र तथा तदविरोधीतया जैमिनीसूत्र और व्यासजीकी समाधिभाषारूप श्रीभागवत इन चारों शास्त्रोंकी एकवाक्यतासे प्राप्त निष्कर्षको प्रस्तुत ग्रन्थमें निरूपित सिद्धान्तके विषयमें प्रमाणतया मानते हैं। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णके वाक्य होनेसे गीता भी वेद ही है, फिर भी अर्जुनके अधिकारके अनुरूप भगवान्ने उसका स्मृतिके रूपमें उपदेश दिया था। अतः उसका पृथक् रूपसे स्मृतिके रूपमें उल्लेखन किया जाता है। फिर व्यासजीने भी उसीका स्मरण कर कथन किया था। इस दृष्टिसे भी गीताको स्मृति कोटितया स्वीकार किया जाता है। इन प्रमाण ग्रंथोंसे ही अलौकिक अर्थका ज्ञान होना संभव है। गीतामें जिस तत्त्वका प्रतिपादन संक्षेपमें हुआ है, भागवतमें वही विषय विस्तारसे प्रस्तुत किया



गया है अतः शास्त्रार्थ प्रकरण संक्षिप्त हैं और भागवतार्थ प्रकरण विस्तृत है.<sup>२</sup>

### **श्रीकृष्ण ही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् हैं :**

परमकाष्ठापन्नवस्तु अर्थात् परमतत्त्व या भगवत्तत्त्वको वेदान्तमें 'ब्रह्म' कहा गया है, उसीको स्मृतिमें 'परमात्मा' कहा गया है और उसीको भागवतमें 'भगवान्' कहा गया है. वेदोंके पूर्वकाण्डमें क्रियाविशिष्ट श्रीहरिका निरूपण हुआ है, वेदके उत्तरकाण्ड (ज्ञानकाण्ड, वेदान्त, उपनिषद्)में उनका निरूपण साकार हरिरूपमें हुआ है और उन्हींका निरूपण भागवतमें अवतारी श्रीकृष्णके रूपमें हुआ है. वह परमकाष्ठापन्न भगवत्तत्त्व जब कभी जगतमें उद्धारके लिए अखण्ड और पूर्णरूप से प्रादुर्भूत होता है, तब उसे 'कृष्ण' कहा जाता है. श्रीमहाप्रभुजीने तत्त्वार्थदीपनिबन्धके तीनों प्रकरणोंमें क्रमशः उसी परमकाष्ठापन्न वस्तुका उन शब्दोंका प्रयोग करते हुए विवेचन किया है.<sup>३</sup>

### **सात्त्विक, मुक्तिके अधिकारी भक्तोंको कृष्णसेवामें प्रवृत्त करने हेतु ग्रन्थ रचना :**

शास्त्रार्थ प्रकरण ग्रन्थमें जिन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन हुआ है, उसी ब्रह्मवादका प्रतिपादन सारे वेद वाक्यों, रामायणों, महाभारत, पञ्चरात्र, ब्रह्मसूत्रों तथा अन्य सत्शास्त्रोंके वचनोमें हुआ है. स्वयं भगवान् श्रीहरिने गीतामें इसी सिद्धान्तका निरूपण किया है. यह सिद्धान्त सार्वकालिक सत्य है. यह महाप्रभुजीका प्रथम ग्रन्थ माना जाता है किन्तु जैसा कि आपश्रीने स्वयं कहा हैं कि इस ग्रन्थका प्रणयन भगवद् आज्ञासे, भगवत्कृपासे भगवदुक्त एवं भगवत्प्रतिपादक शास्त्रोंको भलीभांति समझकर तथा उनके अर्थ पर पुनः-पुनः विचार या मनन करके तथा सारे दुःखोंका हरणकरनेवाले पुरुषोत्तम श्रीहरिने मोहक शास्त्रोंसे उत्पन्न होनेवाले सन्देहकी निवृत्तिके लिए जो निर्धारण वाक्य “एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्, एको देवो देवकीपुत्र एव, मन्त्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि, कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा” कहा था, उसे भी समझ कर किया गया है. वस्तुतः इस ग्रन्थकी रचना उन भाग्यशाली सात्त्विक भगवद्भक्तोंके लिए की गई है, जो मुक्तिके अधिकारी हैं और भगवदिच्छासे अन्तिम जन्ममें उत्पन्न हुए हैं.<sup>४</sup>

जीवका अधिकार हो या न हो, सदैव कृष्णसेवा ही करनी चाहिए. क्योंकि सबकी मुक्तिके लिए अवतीर्ण भगवानके प्रमेय बलसे अधिकारके अभावमें भी फलकी प्राप्ति हो जाएगी किन्तु कभी-कभी ऐसे सात्त्विक व्यक्ति जिनमें भगवद्भजनकी

स्वाभाविक योग्यता है, फिर भी अन्य शास्त्रोंसे भ्रमित होकर भगवद्भजनकी उपेक्षा करते हैं अतः यह ग्रन्थ उन शास्त्रोंके मतका निराकरण कर भगवद्भजनमें उनकी प्रवृत्ति करता है. इसलिए फल-विवेचनकी दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं.

### **पूर्णफल भगवानके ही अधिकारमें अतः मूलरूप श्रीकृष्णकी ही सेवा करें :**

श्रीमहाप्रभुजीका दृढ निश्चय और अन्तिम निर्णय है कि प्रभु श्रीकृष्ण ही एकमात्र मूलभूत एवं उपास्य देव हैं अतः जीवका कर्तव्य हैं कि सत् शास्त्रोंका अध्ययन करके मन-वाक्-देहसे उन्हींकी सेवा करे. यदि प्रज्ञावान् तथा क्रिया-ज्ञानशक्तिसे सम्पन्न व्यक्ति भी मिथ्या और मोहक शास्त्रोंके अध्ययनमें लगा रहे और भगवान् श्रीकृष्णका भजन न करे तो इसे महामोह तथा वञ्चना-प्रतारणा ही समझना चाहिए. आपश्रीकी सुदृढ मान्यता है कि जैसे भगवानने सृष्टि बनाई है, वैसे ही अपनी प्राप्तिके लिए पृथक् भक्तिमार्ग (पुष्टिमार्ग)की भी सृष्टि की है. भगवानने अपने विभूतिरूपोंकी उपासनाके साधन और उनकी उपासनासे होनेवाले फलोंकी भी व्यवस्थाकी है किन्तु पूर्ण फलदान प्रभुने अपने अधिकारमें ही रखा है अतः जीवको भगवान्के मूलरूप श्रीकृष्णका ही भजन (सेवा) करना चाहिए.<sup>५</sup>

### **सायुज्य या ब्रह्मभावकी प्राप्ति केवल कृष्ण-सेवा से ही :**

सायुज्यकी अथवा ब्रह्मभावकी प्राप्ति केवल आदिमूर्ति श्रीहरिकी सेवा से ही होती है, किसी अन्यकी सेवा से नहीं. और वह प्राप्ति भी केवल भगवदिच्छा से ही संभव है. प्रभुकी इच्छा होने पर ही उनका साक्षात्कार, प्रभुलीलाका सानुभव या देहपातके उपरांत नित्यलीलामें प्रवेश होता है.<sup>६</sup>

यहां सायुज्यका अर्थ मुक्ति है. बालकृष्ण भट्टजीका कथन है कि यहां सायुज्यका अर्थ 'ऐक्य' नहीं लेना चाहिए. सायुज्यका अर्थ 'योग' ही समझना चाहिए. "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा" (तै.३।२।१)के अनुसार मुक्तजीव ब्रह्मके साथ सारे काम्यकर्मोंका उपभोग करता है. यहां भी सायुज्य योगरूप ही माना गया है और 'सायुज्य'का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी योग ही है. "सह युनक्ति इति सयुक् तद्भावः सायुज्यम्". भट्टजीकी मान्यता है कि 'सेवाफलविवरण'में 'अलौकिकसामर्थ्य' शब्द से इसी फलरूप सायुज्यका उल्लेख महाप्रभुजीने किया है. और 'अणुभाष्य'में भी 'नित्यलीलाप्रवेश' शब्दसे इसी सायुज्यका कथन किया गया है. यद्यपि आवरणभङ्गकार अलौकिकसामर्थ्यरूप वरणमात्रको साध्य मुख्य फल न मानकर

मध्यमकोटिका मानते हैं. क्योंकि आगे महाप्रभुजी कहते हैं कि “स्वतन्त्र और शुद्ध भक्तिदुर्लभ” है. किन्तु भट्टजीके मतानुसार सेवोपयोगी फल मर्यादा सेवाका फल है. वे यह स्पष्ट करते हैं कि सायुज्य द्विविध है : मर्यादा सेवाका फलरूप और पुष्टि सेवाका फलरूप. “अलौकिक सामर्थ्यसे पुष्टिसेवाके फलरूप सायुज्यका उल्लेख श्रीमहाप्रभुजीने किया है”.<sup>५</sup>

### **कृष्णसेवासे ही निर्गुण मुक्ति:**

मुक्ति सगुण भी होती है और निर्गुण भी. सगुणसे सायुज्य होने पर सगुण मुक्ति प्राप्त होती है और निर्गुणसे सायुज्य होने पर निर्गुण मुक्ति प्राप्त होती है. भगवान्‌के अतिरिक्त काल तक सभी तत्त्व सगुण हैं. यहां तक कि ज्ञानमार्गसे होनेवाली मुक्ति और जीवन्मुक्ति भी सगुण मुक्ति ही हैं. यद्यपि ज्ञानमार्गका विषय अक्षरब्रह्म निर्गुण है तथापि ज्ञानमार्ग सगुण है. अतः ज्ञानमार्गीय मुक्ति और जीवन्मुक्ति गौण, अनुपादेय और हेय होती है. जिन ज्ञानियोंका पर्यवसान ब्रह्मभावमें ही हो जाता है और जिनमें ब्रह्मभावके बाद भगवद्भक्ति उत्पन्न नहीं होती वे ज्ञानी भी सगुण ही हैं. ब्रह्मभावकी प्राप्तिके बाद भी जो ज्ञानी भगवद्भजन(सेवा) करते हैं वे निर्गुण हैं. श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार भक्ति होनेके कारण उनका निर्गुण और गुणातीत भगवान्‌में प्रवेश या सायुज्य होता है. निर्गुण मुक्तिकी प्राप्ति तो केवल भगवान्‌ कृष्णकी सेवासे ही होती है. कृष्णसे भिन्न अन्य किसी देवताकी सेवा करनेसे सगुण मुक्ति ही प्राप्त होती है. पुरुषोत्तमकी प्राप्ति केवल भक्तिमार्गसे ही होती है. पुष्टिमार्गीय भक्ति(भजन) ज्ञानमार्गके समान प्रभुको हृदयमें स्थापित करके प्रभुको जानना नहीं है. यह तो बहिर्भजन है, यह पुष्टिमार्गीय भजन प्रत्यक्ष भगवत् स्वरूपकी सेवा है.<sup>६</sup>

### **अविद्या और विद्या दोनोंकी निवृत्ति और नित्यमुक्ति केवल कृष्ण सेवासे :**

विद्या और अविद्या दोनों ही भगवान्‌ श्रीहरिकी शक्तियां हैं, जो कि मायाके अधीन हैं. विद्याके द्वारा जीवको स्वरूपलाभ होता है अर्थात्‌ उसकी अपने चित्रप्रधान स्वरूपमें अवस्थिति होती है और अविद्याके द्वारा उसे देहलाभ होता है. वह जीवके संसारकी कारणभूता है, जीवको उसीके कारण स्वरूपविस्मृतिरूप अन्यथारूपत्व या विपरीत ज्ञानकी प्राप्ति होती है. अविद्याकी पूर्णतः निवृत्ति करनेका सामर्थ्य विद्यामें नहीं, भक्तिमें है. अविद्याके निराकरणके लिए जीवको भगवद्भजन करना चाहिए. जीव जब भगवान्‌की शरण लेकर प्रभुकी भक्ति करता है तो भगवत्कृपासे न केवल

उसकी अविद्याकी अपितु विद्याकी भी निवृत्ति हो जाती है और जीव मायाको पार कर लेता है. जब तक इन दोनोंकी निवृत्ति नहीं हो जाती तब तक उसे नित्यमुक्तताकी उपलब्धि नहीं हो पाती. किन्तु श्रीहरिकी सेवासे यह सब हो सकता है, ऐसा भागवतमें भगवानने स्वयं कहा है.<sup>९</sup>

### **ब्रह्मभावसे ब्रह्मात्मकता किन्तु परमानन्दकी प्राप्ति केवल कृष्णभजनसे :**

ब्रह्मभाव क्या है यह भी समझ लेना चाहिए. सच्चिदानन्द ब्रह्मका वह रूप जिसमें सदंश और चिदंश आविर्भूत हों, इनमें भी प्राधान्य चिदंशका हो, किन्तु आनन्दांश तिरोहित हो चुका हो, वह 'जीव' कहलाता है. जीवभावकी प्राप्ति भगवादिच्छासे ही होती है. जीवमें विद्यमान किन्तु अप्रकट आनन्दांशके प्रकाशित या आविर्भूत होने पर जीवका ब्रह्मभाव हो जाता है. इस स्थितिमें जड़ देहमें भी चिद् और आनन्दका आविर्भाव हो जाता है तथा उसके जड़त्वका लय हो जाता है तब देहकी त्रिगुणात्मकताकी निवृत्ति हो जाती है तथा वह ब्रह्मात्मक हो जाता है. जीवका भी भोक्तृभाव निवृत्त होकर, वह भी ब्रह्मात्मक हो जाता है. व्यापकत्वादि धर्मोंका आविर्भाव हो जानेसे जीवका ब्रह्मसाम्य हो जाता है, यही ब्रह्मभाव है. सायुज्यके समान ही ब्रह्मभावको प्राप्ति भी केवल श्रीहरिकी सेवा तथा उनकी इच्छासे ही होती है.<sup>१०</sup>

श्रीबालकृष्ण भट्ट स्पष्ट करते हैं कि ब्रह्मभाव, जिसे जीवन्मुक्ति कह सकते हैं, मर्यादामार्गीय भक्तिका अवान्तर फल है और ब्रह्मानन्दमें प्रवेश उसका परम फल है. इनकी अपेक्षा स्वतन्त्र पुष्टिमार्गीय भक्तिका अवान्तर फल अर्थात् भगवत्कृपा सहित गृहास्थाश्रममें रहना न केवल मर्यादामार्गीय अवान्तर फलरूप ब्रह्मभावसे उत्कृष्ट है अपितु मर्यादामार्गीय फलरूप मोक्षसे भी उत्कृष्ट है फिर उसके (पुष्टिमार्गीय) परमफलका तो कहना ही क्या! मर्यादामार्गीय भक्तोंके लिए भक्ति साधन है और मोक्ष साध्य है. स्वतन्त्रभक्तिकी तो साध्य दशा भी उनसे श्रेष्ठ है. जो मुक्त हो जाता है वह देहादि संघातका परित्याग कर ब्रह्ममें लीन हो जाता है. अतः उसे केवल आत्माके द्वारा ही आनन्दकी-सुखकी अनुभूति होती है किन्तु जो स्वतन्त्रपुष्टिभक्तिसे सम्पन्न भक्त होते हैं, उन्हें सभी बाह्य इन्द्रियों, अन्तःकरणों और आत्माके द्वारा विशेष रूपसे आनन्दकी अनुभूति होती है, जैसे कि गोपियोंको आनन्दानुभूति समस्त इन्द्रियों और आन्तर करणों से तथा स्वरूप से हुई थी. इस प्रकार मर्यादाभक्तिका फल पुष्टिमार्गीय फलकी अपेक्षा हीन कोटिका है. श्रीमहाप्रभुजीका स्पष्ट मत है कि भक्तोंका

भगवत्कृपासहित गृहस्थाश्रम जीवन्मुक्तिकी अपेक्षा उत्तम है।<sup>११</sup>

ब्रह्मके स्वरूपके ज्ञानसे जीवकी अविद्या निवृत्त हो जाती है और उसे कैवल्य अर्थात् संघातसे पृथग्भाव सायुज्यादि या मोक्ष की प्राप्ति होती है किन्तु परमानन्दलक्षण मोक्षकी प्राप्ति, परमानन्दरूप नित्यलीलामें प्रवेशरूप मुक्ति भक्तिसे प्राप्त होती है. अविद्याकी निवृत्ति और ब्रह्मज्ञानके साधनरूप विद्यासे प्राप्य ज्ञान परोक्ष ज्ञान है. भगवानका तत्त्वतः ज्ञान तो भगवद्भक्तिसे ही हो सकता है।<sup>१२</sup>

### **भक्तिसे ही भगवानकी प्रसन्नता :**

भगवानके माहात्म्यज्ञान पूर्वक उनमें जो सुदृढ़ और सर्वाधिक स्नेह होता है, उसे ही भक्ति कहा जाता है. ऐसी भक्तिसे ही मुक्ति होती है, अन्य किसी प्रकारसे या साधनसे मुक्ति संभव नहीं है. भगवानमें सुदृढ़ स्नेह, निरुपाधिक प्रेम या भाव तभी होता है जब भगवानको आत्मत्वेन जान लिया जाता है. अन्ततः ब्रह्मसाक्षात्कार ब्रह्मके अधीन है. भगवानकी प्रसन्नता ही भगवदाविर्भावकी हेतु है. भगवत्स्वरूपके आविर्भाव होने पर ही फलसिद्धि होती है. भगवानके आविर्भावके लिए प्रेमसेवाका निरूपण किया गया है. अवज्ञा आदि दोषोंको दूर करनेके लिए श्रुति माहात्म्यका और सुदृढ़ स्नेहके लिए आत्मत्वका प्रतिपादन करती है. भगवानको आत्मत्वेन जाननेसे उनसे प्रेम होगा, भगवत्प्रेमकी सिद्धि होगी और उनका माहात्म्यज्ञान होने पर भगवत्सेवामें प्रवृत्ति होगी. अतः श्रुतिमें इन दोनों रूपोंमें भगवानका बोध कराया गया है. मनुष्यको भगवानकी प्रसन्नताके लिए सदैव प्रयास करते रहना चाहिए. उसके कर्तव्योंकी पराकाष्ठा भगवत्प्रेम है. सुदृढ़ सर्वतोधिक स्नेहरूप भगवद्भक्ति ही भगवानको प्रसन्न करनेका सर्वोत्कृष्ट प्रकार है. प्रेमके अभावमें रसाभिव्यक्ति नहीं हो सकती अतः प्रेमरहित कभी भी स्वतः पुरुषार्थ रूप नहीं हो पाता है।<sup>१३</sup>

### **पुष्टि भक्ति स्वतन्त्र एवं पुरुषार्थरूप है :**

स्वतन्त्र भक्ति और सायुज्य दोनोंके लिए भगवद्भजन ही करना चाहिए किन्तु सायुज्यके लिए की जानेवाली मर्यादाभक्तिमें प्रेम सोपाधिक होता है, जब कि स्वतन्त्र भक्तिमें निरुपाधिक प्रेम होता है. पुष्टिभक्तोंका प्रेम व्रजांगनाओंके समान निरुपाधिक होता है और इसीलिए उन्हें सालोक्यादि मुक्तिकी अपेक्षा ही नहीं होती. मोक्ष प्राप्तिके लिए की जानेवाली भक्ति भगवत्साक्षात्कारका फल देकर उपक्षीण हो जाती है. पुष्टिभक्तकी भक्ति सायुज्यादि किसी भी फलका साधनरूप नहीं होती अपितु

स्वयं फलरूप होती है. उनकी भक्ति पञ्चमपुरुषार्थरूप या स्वतन्त्र पुरुषार्थरूप होनेसे स्वतन्त्र भक्ति कही जाती है. मर्यादा भक्ति मुक्तिका साधन होनेके कारण परतन्त्र भक्ति कही जाती है.<sup>१४</sup>

### **बाधक तत्त्वोंसे सावधान रहें :**

श्रीमहाप्रभुजी पुष्टिभक्तिको फलरूपा बनने देने तथा उसके फल स्वयं भगवान् ही रहें इस दृष्टिसे इस मार्गके बाधक तत्त्वोंके प्रति पुष्टिभक्तोंको सावधान भी करते हैं. भक्त इन बाधक तत्त्वोंसे सावधान रहें अतः उनका उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है.

भक्ति यदि कृष्ण भगवानको ही लक्ष्य बनाकर न की जावे तो ऐसी भक्तिसे भगवान् कभी भी प्रसन्न नहीं होते. अतः ऐसी भक्ति कभी भी फलरूपा नहीं बन पाती. भक्तिनिष्ठा तभी सार्थक मानी जाती है, जब कृष्ण सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हों. अतः कृष्णसेवा सदा कृष्णके लिए, उनकी प्रसन्नता हेतु, उनके सुखार्थ ही करें. यदि भगवत्सेवा प्रभुके लिए ही की जावे तो कृष्ण अवश्य प्रसन्न होते हैं.

मायावादी भक्तिको भी ज्ञानका अंश और ज्ञानकी प्राप्तिमें भक्तिको साधन मानते हैं. उनके मतानुसार भक्तिका पर्यवसान ज्ञानमें होता है. वे भक्तिके विषयको भी भावनाकल्पित मानते हैं. ऐसी भक्तिसे भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होते क्योंकि उनकी भक्तिके लक्ष्य भगवान् नहीं होते अपितु ज्ञान होता है.

इसी प्रकार मर्यादामार्गीय भक्ति जो कि सायुज्य मुक्तिके लिए की जाती है, उसे भी श्रीमहाप्रभुजी स्वतन्त्र एवं फलरूप नहीं मानते, मुक्तिसाधनरूप होनेके कारण परतन्त्र ही मानते हैं. यह भक्ति चाहे हेय न हो किन्तु वरेण्य नहीं है क्योंकि उस भक्तिके लक्ष्य भगवान् नहीं हैं. श्रीमहाप्रभुजी तो भगवानको ही फलरूप मानते हैं. उनके मतानुसार ऐसी भक्ति साधनरूप न होकर फलरूप होती है.

जब श्रीमहाप्रभुजीकी दृष्टिमें ज्ञान या मोक्ष को लक्ष्य बनाकर की जानेवाली भक्ति भी वरेण्य नहीं है तब लौकिक प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि, कामनापूर्ति, प्रदर्शन, दिखावे धंधे आदिके लिए की जानेवाली सेवा तो पाखण्ड मात्र ही है. प्रभु ऐसे पाखण्डसे कदापि प्रसन्न नहीं होते भक्तिकी सार्थकता तो इसीमें है कि प्रभु प्रसन्न हों.<sup>१५</sup>

श्रीमहाप्रभुजी सर्वेश्वर, सर्वकर्ता, सर्वकारण, सर्वोपास्य भगवानके सम्पूर्ण माहात्म्यका नाश करनेवाले मत-शास्त्रोंकी उपेक्षा करनेका निर्देश देते हैं कि जो मोहक, प्रतारक या द्योखेमें उलझाकर भ्रमित करनेवाले हैं. भगवद्भक्तोंको ऐसे शास्त्रोंके अध्ययनसे बचना चाहिए. इन शास्त्रोंका तो श्रुति-स्मृति से भी विरोध है. ये शास्त्र और उनके उपदेशक सर्वप्रमाणभूत और उसीका सहजरूपमें तथा विस्तारसे समर्थन करनेवाले पुराणोंके मतको अस्वीकार कर लोगोंको मोहित करनेके लिए मधुर और आकर्षक वचनोंसे अपने स्वतन्त्र एवं असत् सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हैं, जिनके द्वारा वे लोगोंको भगवान् कृष्णके भजन या सेवा से विरत करते हैं. आपश्रीको इस बातसे वेदना होती है कि ऐसे मोहक शास्त्रोंके उपदेशोंके कारण महामोहमें फंस कर ऐसे लोग भी, जो कि क्रियाशक्तिसे सम्पन्न हैं तथा ज्ञानवान भी हैं, इन ग्रंथोंके अध्ययन-मननमें ही डूबे रहते हैं तथा भगवानका भजन, कृष्णसेवा नहीं करते. यह तो महामोह एवं भारी प्रवंचना ही है. ऐसे लोग प्रलयपर्यन्त संसारमें, जन्म-मरणके चक्रमें ही पड़े रहते हैं. उनका कभी उद्धार नहीं हो पाता.

### **आजकी स्थिति : अपसिद्धान्तोंसे बचें :**

दुःख तो इस बातका है कि आजकल ऐसे ही शास्त्रों और उपदेशकोंका आदर होता है, जिसके फलस्वरूप लोग मुख्य फलरूप भगवान्से ही विमुख हो जाते हैं, जिनके कारण वे अधंकारमें भटकते रहते हैं, उन्हें जीवनमें सत्य और आनन्द की झलक भी नहीं मिलती. मरनेके बाद भी ऐसे भगवद्विमुख लोग अंधेरे नरकोंमें यातना भोगते रहते हैं. उन लोगोंको भी इससे सावधान हो जाना चाहिए जो कि श्रीमहाप्रभुजीके सत्यसिद्धान्तोंके विरुद्ध अपसिद्धान्तों और प्रणालियों का अवलंबन करते हैं. और श्रीमहाप्रभुजी उन मनीषियोंको भी सावधान करते हैं जो कि ऐसे ग्रंथोंका अध्ययन करके उनका खण्डन करना चाहते हैं. श्रीमहाप्रभुजीकी दृष्टिमें यह भी आवश्यक और उचित नहीं है क्योंकि ऐसे भ्रामक और असत् सिद्धान्तोंके अध्ययन-मनन-भावनसे भी बुद्धिका नाश होता है अतः भगवद्-भक्तोंको ऐसे असत् और भ्रामक ग्रंथों और उनके उपदेशकोंकी सर्वथा उपेक्षा ही करनी चाहिए. भक्तिमार्गविरोधी और भगवन्माहात्म्यनाशक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करनेवाले ग्रंथ सर्वथा उपेक्षणीय हैं.<sup>१६</sup>

### **शास्त्रार्थ प्रकरणके अनुसार मुख्यफल :**

श्रीमहाप्रभुजी शास्त्रार्थप्रकरणमें वह मार्ग दिखाते हैं जिससे विपरीतज्ञान,

भ्रम, अध्यास समाप्त हों, भगवत्साक्षात्कारके मार्गमें बाधक बने हुए प्रमाण-वस्तु-जीव-आवरण ही नहीं, अपितु भगवद्-आवरण भी प्रभुके अनुग्रह और इच्छा से दूर हों, हमारे अहंता-ममतात्मक संसारका नाश हो, हमारी इसी देहमें दिव्यताका समावेश हो तथा हमारी देह भगवत्सेवोपयोगी एवं भगवद्-सानुभवका आनन्द प्राप्त करनेवाली बन जाए. हम माहात्म्यज्ञानपूर्वक, सुदृढ सर्वतोधिक स्नेहसे भगवत्सेवा और प्रभुके नाम-रूप-लीलाके कीर्तनमें तल्लीन हों. हमारी यह सेवा ही परम फलरूपा बन जाए. हमें इसी जीवनमें जीते-जी भगवत्सानुभावता और सेवा का परमानन्द प्राप्त हो तथा देहपातके उपरांत हम तत्काल प्रभुकी लीलामें प्रवेश कर नवतनु धारण कर भगवत्सेवाका शाश्वत आनन्द प्राप्त करते रहें. श्रीमहाप्रभुजीकी स्पष्ट घोषणा एवं निर्णय है कि जो व्यक्ति, 'भगवान्से ही सब कुछ उत्पन्न होता है और सब कुछ भगवान् ही हैं, इस ज्ञानसे युक्त होकर प्रेमपूर्वक श्रवणादि साधनोंसे श्रीहरिकी सेवा करता है, वह ब्रह्मवाद सिद्धान्तके अनुसार उत्तम भक्त है'<sup>१७</sup> उसे ही पुष्टिमार्गीय परम फल प्राप्त होता है.

-----\*

## सन्दर्भसूची :

(१)

- सर्वोद्धारप्रयत्नात्मा कृष्णः प्रादुर्बभूव ह, तथात्वं येन संसिध्येत् तदर्थं व्यास उक्तवान्॥
- श्रीभागवतमत्यन्तं सर्वेषां सुखदायकम्, तस्याऽपि तत्त्वं येनैव सिध्येदिति विचार्य हि॥
- अग्निश्चकार तत्त्वार्थदीपं भागवते महत्, तच्चाऽपि येन संसिध्येद् व्याख्यां तन्निरूप्यते॥

(शास्त्रार्थप्रकरण पीठिका)

- इत्याकलय्य सततं शास्त्रार्थः सर्वनिर्णयः, श्रीभागवतरूपञ्च त्रयं वच्मि यथामतिः॥ (शा.प्र.५)

(२)

- शास्त्रार्थो गीतार्थः.
- शा.प्र.५ प्रकाश : शास्त्रार्थस्य सङ्क्षेपरूपत्वाद् विस्तारार्थं भागवतरूपं तृतीयं प्रकरणम्.  
“प्रमाणबलम् आश्रित्य शास्त्रार्थो विनिरूपितः”. (शा.प्र.उपसंहारः)
- वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि, समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्(शा.प्र.७)
- शब्दएव प्रमाणं, तच्चाऽपि अलौकिकज्ञापकमेव... स्मृतित्वेन कृष्णवाक्यानि वेदत्वेऽपि पृथगुक्तानि. (वहीं-प्रकाशः)
- व्यासैः स्मरणाद् गीतायाः स्मृतित्वम्. (टिप्पणी-कल्याणरायजी)

(३)

- वेदान्ते च स्मृतौ ब्रह्मलिङ्गं भागवते तथा, ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते॥
- त्रितये त्रितयं वाच्यं क्रमेणैव मयाऽत्र हि॥ (शा.प्र.६)



—यज्ञरूपो हरिः पूर्वकाण्डे ब्रह्मतनुः परे, अवतारी हरिः कृष्णः श्रीभागवत ईर्यते॥. (शा.प्र.११)

(४)

—अर्थोऽयमेव निखिलैरपि वेदवाक्यैः, रामायणैः सहितभारत-पञ्चरात्रैः।

अन्यैश्च शास्त्रवचनैः सह तत्त्वसूत्रैः, निर्णीयते सहृदयं हरिणा सदैव॥ (शा.प्र.१०४)

—भगवच्छास्त्रमाज्ञाय विचार्य च पुनः, यदुक्तं हरिणा पश्चात् सन्देहविनिवृत्तये॥ (शा.प्र.३)

—सात्विका भगवद्भक्ताः ये मुक्तावधिकारिणः, भवान्तसम्भवा दैवात् तेषामर्थे निरूप्यते॥ (शा.प्र.२)

—एतन्मतमविज्ञाय सात्विका अपि वै हरिम्, मतान्तरैर्न सेवन्ते तदर्थं ह्येष उद्यमः॥

(शा.प्र.२२.प्रकाश सहित)

(५)

—एको देवो देवकी पुत्रएव...कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा। (शा.प.४)

—“शास्त्रमवगत्य मनोवाग्देहैः कृष्ण सेव्यः”. मूलभूतोऽयम् इति अर्थः. (वर्ही प्रकाश)

—न मनुष्यत्वेन ज्ञातव्यः. (वर्ही प्रकाश)

—अयमेव महामोहो हीदमेव प्रतारणम्, यत्कृष्णं न भजेत प्राज्ञः शास्त्राभ्यासपरः कृती॥ (शा.प्र.१६)

—यथा भगवान् जगत् कृतवान्, तथा स्वार्थं भक्तिमार्गमपि पृथक् कृतवान्. विभूतिरूपेषु साधनानि फलानि च व्यवस्थया कृतानि, पूर्णफलदानं च स्वस्मिन्. अतो भजनमूलरूपएव कर्तव्यम्”.

(शा.प्र.१३.प्रकाश)

(६)

—आदिमूर्तिः कृष्णएव सेव्यः सायुज्य काम्यया. (शा.प्र.१३)

—‘ब्रह्मविदानोति परम्’(तैत्ति.उप.३।२।१) इति अत्र यत्सायुज्यं मुख्यतया निरूपितं, तत्कामनायां सत्यां कृष्णएव सेव्यः. कृष्णपदेन च बहिर्भजनमेव मुख्यः निरूपितम्. “यो वेदनिहितं गुहायाम्”(तैत्ति.उप.२।१) इतितु ज्ञानमार्गः. (शा.प.१३.प्रकाश)

—सायुज्यब्रह्मभावौ हरिसेवयैव नान्यसेवया.(वर्ही३६.प्रकाशः)

—तत्र भगवद्विच्छेद केवला प्रयोजिका. (शा.प्र.३६.प्रकाशः)

—तदनुग्रह-तद्विच्छाभ्यां दृक् परं हरिं स्पृशेत् इति. (शा.प्र.७५.प्रकाश)

(७)

—सायुज्यं मुक्तिः.(शा.प्र. १४।प्रकाश)

—तत्वादी.नि शा.प्र. बालकृष्णभट्टकृत-योजनामें यह प्रकरण द्रष्टव्य है.

—चेद् इति सेवायां दुर्लभत्वम् उक्तम्.(शा.प्र.१८.प्रकाश)

—कृष्णश्चेत् सेव्यते भक्त्या कलिस्तस्य फलाय हि।(शा.प्र.)

—भक्तिः स्वतन्त्रा शुद्धा च दुर्लभेति. (सर्वनिर्णय प्र.१९६)

(८)

—निर्गुणा मुक्तिरस्माद्धि सगुणा साऽन्य सेवया, ज्ञानेऽपि सात्विकी मुक्तिर्जीवन्मुक्तिरथाऽपि वा

(शा.प्र.१४)

—ज्ञानमार्गः सगुणएव ‘सत्त्वात् सञ्जायते ज्ञानम्’(गीता.१४.१७) इति वाक्यात्...वा इति अनादरे.

—ब्रह्मभावानन्तरं भक्तिः भवति इति गुणातीतएव प्रवेशः, ‘ते प्राप्नुवन्ति मामेव’(गीता.१२।४) इति वाक्यात्. (शा.प्र.१४.प्रकाश).

—यद्यपि ज्ञानमार्गेऽपि विषयो निर्गुणः तथाऽपि मार्गः सगुणः इति भक्तिमार्गस्य उत्कर्षः.

(शा.प्र.१४.प्रकाशः).

—कृष्णपदेन च बहिर्भजनमेव मुख्यः इति निरूपितम्.

—‘यो वेद निहितं गुहायाम्’ इतिज्ञानमार्गे.(शा.प्र.१३प्रकाश)

(९)

—विद्याऽविद्ये हरेः शक्ति माययैव विनिर्मिते.(शा.प्र.३१)

—आत्मनः स्वरूपलाभो विद्यया, देहलाभोऽविद्यया इति.(वर्ही प्रकाश) संसारहेतुभूताऽविद्या पञ्चपर्वा, तेन सर्वांशः निराकृतेन निराकृता भविष्यतीति तदर्थं भजनं कर्तव्यम् इति.(शा.प्र.२४.प्रकाश)

—भक्तौ सत्याम् अविद्यादि निवर्तते, विद्यापि.(शा.प्र.३१।प्रकाश)

—अन्यथा नित्यमुक्तता न स्यात्.(वर्ही प्रकाश. ३९)

—हरेः सेवया सर्वम् इति भगवच्छास्त्रम्. (भाग.१०।२०।३२-३३) (शा.प्र.३५।प्रकाश)

—अतो विद्योपमर्दनेनाविद्या पुनराविर्भावविष्यतीति व्यर्थेव प्रयासः. तस्मात् स्वतन्त्रभक्त्यर्थं सायुज्यार्थञ्च सर्वथा भजनं मतम्. (वर्ही.६४।प्रकाश)

(१०)

—बहुस्यां प्रजायेय वीक्षा तस्य ह्यभूत सती, तदिच्छामात्रतस् तस्माद् ब्रह्म भूतांश चेतनाः॥

सृष्ट्यादौ निर्गता सर्वे निराकारस्तदिच्छया, विस्फुलिगा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि॥

(शा.प्र.२६-२८)

—एतत्तिरोधानाज्जीवत्वं भासते, तेन आनन्दांशेनाविर्भूतेन युक्तं यत् तद्वद् ब्रह्मवदवभासते.

(वर्ही-प्रकाश.५७)

—आनन्दांश प्रकाशाद्धि ब्रह्मभावो भविष्यति, सायुज्यं वान्यथा तस्मिन्नुभयं हरिसेवया॥(शा.प्र.३६)

—आनन्दांशः इति. तिरोहितस्याविर्भावे ब्रह्मभावः, तथा जडेऽपि. तत्र भगवदिच्छैव केवला प्रयोजिका. सायुज्यब्रह्मभावौ हरिसेवयैव भवतो नान्य सेवया. (वर्ही प्रकाश)

—द्रष्टव्य : ब्रह्मसूत्र अणुभाष्य(२।३।३१।) तथा(३।३।२५)में क्रमशः श्रीमद्वल्लभाचार्य एवं गो. विट्ठलनाथजीका विवेचन.

—भगवदावेशे भगवद्धर्मा व्यापकत्वादयः तत्र श्रूयन्ते, नतु जीवो व्यापकः.(वर्ही.प्रकाश.५३)

—जीवस्याऽपि आनन्दांशश्चेदभिव्यक्तः तदा तस्मिन् ब्रह्माण्डकोट्यो भवन्ति.(वर्ही.५४।प्रकाश)

(११)

—मर्यादाभक्त्यवान्तरफले जीवन्मुक्तिरूपे त्वत्परमफल-सादृश्य आत्मैकभोग्य-सुखावाप्तिरूपम् अस्ति, एवं पुष्टिभक्त्यवान्तरफले भगवत्कृपासहित-गृहाश्रमे तत्परमफलरूप-सर्वेन्द्रिय सहितात्मभोग्य-सुखावाप्तिरूप-सादृश्यम् अस्ति. अतः पुष्टिभक्त्यवान्तरफलं मर्यादाभक्त्यवान्तरफलात् जीवन्मुक्तिरूपाद् विशिष्यते इति यदुक्तं तदुचितं मे. (योजना पृ.५९)

—इदानीं कैमुतिक-न्यायेन प्रेमभक्तेः फलम् आह “ब्रह्मानन्दे प्रविष्टानाम् आत्मनैव सुखप्रमा, सङ्घातस्य विलीनत्वाद् भक्तानां तु विशेषतः, सर्वेन्द्रियैः तथाचान्तः करणैः आत्मनाऽपि हि, ब्रह्मभावात् भक्तानां गृहएव विशिष्यते”(शा.प्र.५९)

—स्वतन्त्रभक्तानान्तु गोपिकादि-तुल्यानां सर्वेन्द्रियैः तथाऽन्तःकरणैः स्वरूपेण च आनन्दानुभवः. अतो भक्तानां जीवन्मुक्त्यपेक्षया भगवत्कृपासहित-गृहाश्रमएव विशिष्यते.(वर्ही.प्रकाश)

(१२)

—तस्य ज्ञानाद्धि कैवल्यम् अविद्यानिवृत्तितः।(शा.प्र.४५).

—कैवल्यं सङ्घातात् पृथग्भावं मोक्षं वा प्राप्नोति.(वर्ही. प्रकाश)

—पूर्वोक्तज्ञानम् अविद्यां निवर्तयन् मोक्षं साधयति इति अर्थः. तज्ज्ञानं परोक्षरूपम् इति.

-भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः, ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

(गीता.१८।५५)

-एको वशी सर्वगः कृष्ण ईदृयः, एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति।

तं पीठगं येतु भजन्ति नित्यं, तेषां सिद्धिः शास्वती नेतरेषाम्॥(गोपालपूर्वतापि.३।२)

-इस श्रुतिमें कृष्णके भजनसे जिस 'नित्यसिद्धि' प्राप्त होनेका प्रतिपादन किया गया है, वह नित्यलीलामें प्रवेशरूप, परमानन्दलक्षण मुक्ति है। ब्रह्मानन्द उससे हीन कोटिका है।

(१३)

-माहात्म्यज्ञान पूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः, स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तथा मुक्तिर्न चान्यथा॥

(शा.प्र.४२)

-साक्षात्कारस्तु ब्रह्माधीनः. प्रसन्नं तदाविर्भवति इति... श्रुतिश्च पुरुषार्थः पर्यवसानं कथयति. तदाविर्भावेव फलं सिद्ध्यति इति आविर्भावार्थं प्रेमसेवां निरूपयन्ती, अवज्ञानादि-दोषाभावाय माहात्म्यञ्च, सुदृढस्नेहाय आत्मत्वं च आह. (शा.प्र.४२।प्रकाश)

-अतः प्रसादार्थं प्रेमान्तानि. कर्तव्यानि.(शा.प्र.४७)

-तदभावे(प्रेमाभावे) भजनं स्वतः पुरुषार्थरूपं न भवेत् रसाभिव्यक्त्यभावात्(शा.प्र.९५.प्रकाश)

(१४)

-स्वतन्त्रभक्त्यर्थं सायुज्यार्थञ्च सर्वथा भजनं मतम्.(शा.प्र.६४.प्रकाश)

-सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत, दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

(भाग.३।२९।१३)

-भक्तौ स्वतन्त्रत्वं फलरूपत्वम्. साधनानि हि फलपारतन्त्यं भजन्ते. अतो मर्यादाभक्तिः न फलरूपा, किन्तु मुक्तिसाधनत्वात् परतन्त्रैव.(योजना पृ.१७३)

(१५)

-भगवदर्थं भगवान् न सेव्यते इति न कृष्णः तुष्यति यदि सा भक्तिः भवेत् कृष्णः तुष्येत्. 'भक्त्यैव तुष्टिमभ्येति' इतिवाक्यात्.(शा.प्र.१७.प्रकाश.)

-भक्तिनिष्ठा तदाज्ञेया यदा कृष्णः प्रसीदति.(शा.प्र.१७)

-भक्तिमार्गमपि ज्ञानशेषतया उपदिशन्ति, ज्ञानपर्यन्तं च तत्करणम् इति आहुः. अतो भगवदर्थं भगवान् न सेव्यते इति न कृष्णः तुष्यति.(वहीं प्रकाश)

(१६)

-बुद्धावतारे त्वधुना हरौ तद्वशगाः सुराः, नानामतानि विप्रेषु भूत्वा कुर्वन्ति मोहनम्॥

यथाकथञ्चित् कृष्णस्य भजनं वारयन्ति हि, अयमेव महामोहौ हि इदमेव प्रतारणम्॥

यत्कृष्णं न भजेत्प्राज्ञः शास्त्राभ्यासपरः कृती, तेषां कर्मवशानां हि भवएव फलिष्यति॥१६॥

-अतः प्रारब्धावशादेव तत्र प्रवृत्ताः संसारमेव फलमाभूत-सम्प्लवं प्राप्स्यन्ति...भगवदविरोधाचरणेतु नरकेऽपि पातः. भवः संसारो दुःखात्मकः फलिष्यति.(वहीं-प्रकाश)

-एवं प्रतारणाशास्त्रं सर्वमाहात्म्य-नाशकम्, उपेक्ष्यं भगवद्भक्तैः श्रुति-स्मृति-विरोधतः।

कलौ तदादरो मुख्यः फलं वैमुख्यतस्तम्॥(शा.प्र.८०)

-असद्भावनया स्वस्याऽपि बुद्धिनाशः स्यात्, अतः तत्र उपेक्षैव कर्तव्या सुतरां भगवद्भक्तैः, भक्तिमार्गे विरोधात्.

(१७)

-सच्छक्त्याऽविद्यया त्वस्य जीवसंसारः उच्यते.(शा.प्र.२३)

- अस्य भगवतः शक्त्या अविद्यया, जीवस्य संसारः उच्यते, नतु जायते.(वहीं-प्रकाश)
- सच अहन्ता-ममतात्मकोऽविद्यया क्रियते. तत्त्वज्ञाने सति, उक्तरूपत्वज्ञानात् निवर्तते.(वहीं.प्रकाश)
- संसारस्य लयो मुक्तौ, न प्रपञ्चस्य कर्हिचित्.(शा.प.२४)
- जीवसंसारहेतुभूताऽविद्या पञ्चपर्वा, तेन सर्वांश-निराकृतेन निराकृता भविष्यति इति, तदर्थं भगवद्भजनं कर्तव्यम्.(वहीं.प्रकाश.)
- हरेः सेवया सर्वम् इति भगवच्छास्त्रम्.(शा.प्र.३५.प्रकाश)
- एवं सर्वं ततः सर्वं सः इति ज्ञान योगतः, यः सेवते हरिं प्रेम्णा श्रवणादिभिरुत्तमः॥(शा.प.१०१)



## चर्चा

पुष्टिमार्गीय फल-विवेचन : शास्त्रार्थ प्रकरणके सन्दर्भमें

डॉ. गजानन शर्मा

**गजानन शर्मा :** एक प्रश्न यह था कि बूला मिश्र जैसे भक्त कि जिनको भगवत्साक्षात्कार हो चुका है वो भगवत्साक्षात्कारके बाद भी भक्ति मांगते हैं वे किस कोटिमें आते हैं. पीरजादीकी वार्तामें भी ऐसी बात देखने मिलती है. उसको भी भगवान्‌का साक्षात्कार हो गया फिर स्वयं भगवानने श्रीगुसांईजीके पाससे दीक्षा लेनेकेलिये कहा. इसमें ऐसा है कि प्रभु तो किसी भी भक्तके ऊपर कृपा कर सकते हैं लेकिन भक्तका कर्तव्य यह है कि वह माहात्म्यज्ञान पूर्वक सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेहका अंग बनाकरके भगवत्सेवा करे. भगवत्साक्षात्कार मात्र पर्याप्त नहीं है.

**गो. शरद् :** तत्त्वार्थदीपनिबन्धके मङ्गलाचरणमें श्रीमहाप्रभुजीने अधिकारीका निरूपण करते हुवे “सात्त्विका भगवद्भक्ता...” सात्त्विकको अधिकारी बताया है. प्राकृत गुणोंको लेकर अधिकारिताका निरूपण स्पष्ट शब्दोंमें प्रकरणग्रन्थोंमें देखने नहीं मिलता है. इसी तरह जिस तरहसे भगवद्गीता आदि शास्त्र ग्रन्थोंमें गुणोंसे ऊपर उठनेकी प्रक्रिया समझायी है ऐसा भी कोई निरूपण पुष्टिमार्गीय साधनाके प्रसंगमें प्राप्त नहीं होता है. प्राकृत गुणोंका अच्छा-बुरा प्रभाव तो सर्वमान्य है ही. तो क्या कारण है कि इस सम्बन्धमें अपने यहांकी साधनाप्रणालीमें विशेष भार नहीं दिया गया है. सिद्धान्तरहस्य ग्रन्थको देखें तो उसमें सर्वदोषनिवृत्तिका उपाय आत्मनिवेदन, असमर्पितत्याग और सर्वस्वके त्याग के रूपमें दिखाया गया है. क्या गुणकृत दोष/प्रतिबन्धका निवारण भी इसी हो जायेगा ऐसा समझना चाहिये? इस विषयमें आपका क्या अभिप्राय है?

**गजानन शर्मा :** अलगसे इस विषयमें अपने यहां कोई प्रणाली दिखलाई गयी नहीं है. भगवत्सेवाके द्वारा ही पुष्टिमार्गी गुणोंसे ऊपर उठ जाता है, उसके सारे दोष दूर हो जाते हैं.

**गो.श्या.म.:** “मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते, स गुणान्

समतीत्येतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते’’. “दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया, मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते’’. प्रपत्ति और भक्ति दोनों भगवान् द्वारा कण्ठोक्त साधननकु पकड़ लिये फिर गुणनिवृत्तिकेलिये अलगसुं क्यों यत्न करनो, भक्तिकेलिये ही क्यों यत्न नहीं करनो! अत्के चेत् मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्, इष्टस्यार्थस्य संसिद्धौ को विद्वान् यत्नमाचरेत्! जिनके भीतर भक्ति-प्रपत्ति नहीं होवे उनकु वा दिशामें प्रयत्न करनो चाहिये. पर जिनके भीतर प्रपत्ति-भक्ति है वो भक्ति-प्रपत्तिमें ही यत्न करें बाकी सब भगवान् संभाल लेंगे.

**परेश शाह :** आपने जैसे गुणनकी बात कही ऐसे ही सुबोधिनीजीमें “शुद्धाश्च सुखिनश्चैव ब्रह्मविद्याविशारदाः, भगवत्सेवने योग्या” ऐसे भी कह्यो है. याको भी विचार होनो चाहिये.

**गो.श्या.म.:** राजकुमारकी शादी राजकुमारीके साथ होनी चाहिये ऐसी धारणा अपनी है. पर यदि कोई राजकुमार चाण्डालीकु ब्याहनो चाहे तो अपन क्या कर लेंगे! राजकुमारके लायक कौन मान्यो जाय वो बात “शुद्धाश्च सुखिनश्चैव”में बताई है. पर राजकुमारकी पसंदगी कोई ओरपे गई तो! गुजरातीमें कहावत है “राजाने गमी ते राणी, छाणा वीणती आणी”.

**गो. योगेश :** आपने शास्त्रार्थप्रकरणमेंसे उद्धृत किया है कि “भगवान् कृष्णकी सेवासे निर्गुण मुक्ति प्राप्त होती है और अन्य देवोंकी सेवासे सगुण मुक्ति प्राप्त होती है’’. अन्य देवोंकी उपासनासे निर्गुण मुक्ति नहीं प्राप्त होती है इसको कैसे समझना? अभी जैसे समझाया वैसे यदि कोई सर्वात्मभावसे किसी देवका भजन करता है तब भी उसको सगुण मुक्ति ही मिलेगी?

**गजानन शर्मा :** सगुण मुक्ति ही मिलेगी. क्योंकि जितने भी देव हैं वे गुणोंसे पर नहीं हो पा रहे हैं. यहां तक कि ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी गुणावतार हैं.

**गो.श्या.म. :** इसमें थोडा अन्तर है. अन्य देवोंमें जो ब्रह्मा-विष्णु-महेश हैं वे प्राकृत नहीं है, प्राकृतगुणाभिमानी हैं. दूसरे देव प्राकृत भी हैं. ये त्रिदेव गुणोंके इंचारज जैसे हैं, पर हैं ब्रह्मके ही रूप. बालबोधमें श्रीमहाप्रभुजीने इसका स्पष्टीकरण किया है कि “निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः कृता’’. वहां भी ब्रह्माजीको बाकी इसलिये रखा है कि वो रजोगुणाभिमानी हैं, मुक्ति देना उनके स्वरूपसे विपरीत कार्य है. पर हैं तीनों देव अप्राकृत ही.

**गजानन शर्मा :** उनकी कृपासे प्राप्त होनेवाली मुक्ति को कैसी मानेंगे?

**गो.श्या.म. :** ब्रह्मतया यदि उनका आराधन किया जा रहा है तो उनमें निर्दोष-पूर्णगुणता आती है. ऐसेमें जो मुक्ति मिलेगी वो निर्गुणा मुक्ति होगी. पर यदि गुणाभिमानितया उनका भजन कर रहे हो तो वो आपको सगुणमुक्ति ही देंगे. ब्रह्मतया भजन करने पर आपने उनके उस पोर्टफोलियोमें एप्लिकेशन भेजी है. ये स्थिति तो श्रीगुसांईजीने कृष्णके सम्बन्धमें भी बताई है कि कृष्णका सकाम भजन विभूतिपरक हो जाता है. तब तो इन तीन देवताओंसे भी नीचेकी स्थिति हो गई! क्योंकि ये तीन देव तो विभूतिसे उच्च कक्षाके हैं. श्रीगुसांईजी लिखते हैं कि यदि कृष्णका सकाम भजन किया जाता है तो भजन वाला भ्रान्तिवश ही समझता है कि वह कृष्णका भजन कर रहा है. वस्तुतः वहां कृष्ण है ही नहीं जब आप लोकार्थी होकर भजन कर रहे हो. भागवतमें भी कृष्णके अनेक रूप दिखलाये हैं. कभी कृष्ण परब्रह्म है, कभी नारायण है, कभी गुणावतार है, कभी अन्तर्यामी है, कभी क्षुद्रदेव है...और अर्जुनको लेकर जब उमाके पास गये तो कृष्ण किसीकी स्तुति भी करते हैं.

**असित शाह :** पर आदिमूर्तितया भजन कियो तो निर्गुण मुक्ति मिलेगी.

**गो.श्या.म.:** श्रीमहाप्रभुजीके स्टेंडकी खुबसुरती देखो. आदिमूर्तितया साक्षात् कृष्णको नहीं, यदि जड मूर्तिको भी भजन कियो तो भी निर्गुणा मुक्ति है. और आनन्दमात्रकपादमुखोदरादि वाले साक्षात् कृष्णको भी यदि सकाम भजन कियो तो कृष्ण भी पाछो सगुण हो जावे है.

**गो. शरद् :** सगुण मुक्ति और निर्गुण मुक्ति की अवस्थामें फलभोगमें क्या अन्तर पड़े है?

**गो.श्या.म.:** या बातकु चैतन्य सम्प्रदायके मॉडल्सु अच्छी तरह समझ सकोगे. वो कहे हैं के कृष्ण ब्रजमें पूर्णतम हैं, मथुरामें पूर्णतर हैं और द्वारकामें पूर्ण हैं. ये बात सापेक्ष है. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के “विषयो भगवान्” और सूरदासजी कह रहे हैं के “अब न भाय विषयरस क्षुल्लक वा समुद्रकी आस”. विषयकु अपन कब कौनसी दृष्टिसु देखे हैं वापे निर्भर करे है.

**गो. शरद् :** श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के “ज्ञानेऽपि सात्त्विकी मुक्तिः जीवनमुक्तिरथापि वा, निर्गुणा मुक्तिरस्मादिध सगुणा साऽन्यसेवया”. यहां श्रीमहाप्रभुजीने ज्ञानसु प्राप्त होती मुक्तिकु सगुण कही है. वाको कारण ये दियो है के “सत्त्वात् सज्जायते ज्ञानम्”. ज्ञान क्योंकि सत्त्वगुणको परिणाम है यासुं ऐसे ज्ञानसु प्राप्त होती मुक्ति भी सगुण है. पर प्रश्न ये है के

मुक्तिको साधन सगुण है ये अभिप्राय है या मुक्ति ही सगुण है ऐसो अभिप्राय है?

**गो.श्या.म.:** अपन तो गाली दे ही सकें न! अपनकु वो नहीं चाहिये तो अपन क्यों गाली नहीं दे सकें!

**गो. योगेश :** ठाकुरजीकी सोलह हजार पत्नी जब ठाकुरजीकु मिलतीं तब भी उनकु पूर्णानन्दको अनुभव हो नहीं पातो हतो. वहां हते तो कृष्ण ही.





# पुष्टि भक्ति और प्रपति में फलविचार

(तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत साधनप्रकरणके संदर्भमें)

## भावेश परमार

पुष्टिमार्गीयसर्वज्ञः करुणारसपूरितः।

श्रेष्ठफलप्रदाता च तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

### उपक्रम

तत्त्वार्थदीपनिबन्ध श्रीआचार्यजीको सबसुं प्रथम ग्रन्थ है. याकुं आपने शास्त्रार्थ, सर्वनिर्णय और भागवतार्थ ऐसे तीन प्रकरणमें विभाजित कियो है. शास्त्रार्थ प्रकरणमें श्रीआचार्यजीने सत्, चित्, आनन्द और परमतको खंडन इन विषयनको निरूपण कियो है. और आपश्री आज्ञा करत हैं जो गीताको दर्शन मैंने शास्त्रार्थ प्रकरणमें निरूपित कियो है. दूसरो प्रकरण सर्वनिर्णय है. जो सर्वनिर्णयकुं नहीं पढ़े हैं वो सर्वथा अनिर्णयमें ही रहे हैं, क्योंकि सर्वनिर्णय प्रकरण श्रुति, स्मृति, पुराण आदिकनकु समझवेकी कुंजी है.

सर्वनिर्णय प्रकरणमें प्रमाण, प्रमेय, साधन और फल ऐसे अवान्तर प्रकरण हैं. उनमेंसुं साधनप्रकरणमेंसू श्लोक २१२ सुं २५५ तक यहां उद्धृत किये हैं. याकुं 'भक्तिप्रकरण' भी कहे हैं. षोडशग्रन्थको अध्ययन करवेके बाद अगर साधनप्रकरणको अध्ययन नहीं करें तो पुष्टिभक्तिमार्गको कर्तव्य अच्छी तरहसुं समझमें नहीं आवे है.

अब साधनप्रकरणमेंसुं फलको विचार करनो है. यहां शंका होत है के है तो ये साधनके प्रकरणमेंसुं फल कैसे खोजनो? ताको समाधान यह है जो पुष्टिभक्तिमार्गके साधनमें कछुक फल छुप्यो है और पुष्टिभक्तिमार्गके फलमें कछु साधन छुप्यो है.

शिक्षापत्रवाले श्रीहरिरायजी भी 'पुष्टिमार्गलक्षणानि' ग्रन्थमें कहे हैं "‘फलं च साधने चैव सर्वत्र विपरीतता, फलं भाव साधनं च पुष्टिमार्गः स कथ्यते’"(१६) अर्थ:जहां फल और साधन में सर्वत्र विपरीतता होय है और स्वरूपानन्दकी प्राप्तिको साधनरूप भाव अर्थात् भगवद् विषयक निरुपाधिक स्नेह फल होय है, और वाकी

प्राप्तिके साधन स्वयं भगवान् होय हैं वाकुं ‘पुष्टिभक्तिमार्ग’ कहे हैं. श्रीगुंसाईजी भी श्रीसर्वोत्तमस्तोत्रमें कहे हैं “भक्तिमार्गे सर्वमार्गवैलक्षण्यानुभूतिकृत्”.

अब हम साधन प्रकरणमें फलको विचार करेंगे, बादमें वो फल प्राप्त करवेके साधनको विचार करेंगे, ता पाछें वो फल और साधनमें जो अंतराय/प्रतिबंध हैं ताको विचार करेंगे. क्योंकि साधन और प्रतिबंध कुं समझे बिना फल तक पहुँचनो कठिन है.

## १. श्रीभागवत् मार्गसों फलप्राप्ति:

“अधुना तु कलौ सर्वे... अथापि धर्ममार्गेण स्थित्वा कृष्णं भजेत् सदा, श्रीभागवतमार्गेण स कथञ्चित् करिष्यति” (सा.प्र.२१२-१५). कलियुगमें या बिरियां सब लोग शास्त्रविरुद्ध आचरणमें रत हैं. स्वाध्याय आदि नित्य कर्महू कोउ करत नांही, स्नान, व्रत, प्रायश्चित्तादिकी शुद्धिहू कोउ पालत नांही, कोउ कछुक मेंड-मरजाद पालत हैं सोउ यथाविधि नांही, ऐसेनको चित्त कहुं एक ठोर ठहरत नांही. जिह्वा अरु उपस्थ को सन्तुष्ट करिवेमें ही सर्वत्र भटकत फिरत हैं. ऐसे ब्रात्यप्रायः स्वतो दुष्ट मनुष्य धर्मबुद्धितेंहु कछुक कर्म करत होंय तो तातें धर्मानुष्ठान सिद्ध होत नांही. सो काहेते? तहां कहत हैं जो धर्म तो देश काल द्रव्य मन्त्र कर्ता कर्म तें सिद्ध होते है. सो या कलियुगमें ये छहों शुद्ध मिलत नाहीं. तोउ बने सो धर्म करत जो श्रीभागवतके अनुसार सदा कृष्णभजन करत हैं वे कैसेहू तरी जावेंगे.

पाखण्ड मतको त्याग करीके, अग्निहोत्रादिकनकुं भक्तिके अंग समुझीके, विनको यथाशक्ति पालन करतो भयो सदा श्रीकृष्णभक्तिमें परायण रहे तो कलियुगकों तरी जावे है. अर्थात् या कलियुगमें मुख्य वैदिक धर्म नांही बन सके तासों वेदोक्त फलहू नाहीं होय. भगवद्भजन करतो रहे तो पातहू नाहीं होय, किन्तु कलिके दोष वा भक्तकु दबाय नहीं सके हे, अल्प साधन करीके बड़े भारी फलकुं देवेको कलियुगको स्वभाव वा भक्तके आगे प्रगट होय जावे है. तब तो भगवदुक्त प्रकारसों श्रद्धा भगवत्कथाको श्रवण भगवद्गुणनको गान, स्मरण, जन्मोत्सवादिक करतो भयो धर्म-अर्थ-कामको भगवानके अर्थ ही आचरण करतो भयो सदा भजन करे है तब “इमं लोकं तथैवामुम्” (भा.३।२५।३९) में कहे गये प्रकारसों जीवनमुक्तिकुं प्राप्त होवे है. यामेंहू उत्तम अधिकरी होय तो “परस्य मे तेऽऽनुवते तु लोके” (भा.३।२५।३७) श्लोकोक्त वैकुण्ठमें अलौकिक भोगकुं प्राप्त होवे है. अर्थात् सेवाफलकी टीकामें जो

प्रकार मुख्य है वाके अनुसार वैकुण्ठादिकनमें सेवोपयोगी देहकुं प्राप्त होवे है.

प्रतिबन्ध: “अत्रापि वेदनिन्दायम् अधर्मकरणात् तथा” (सा.प्र.२१६)  
भक्तिमें हू दो बाधक हैं : १.भक्तिमार्गमें स्थित होयके वेदकु अप्रमाण कहे तथा  
२.अधर्मको आचरण करे तो यद्यपि नरकपात होनो चाहिये, परंतु भगवान्को नाम  
नरकको विरोधी है तासो नरकमें तो वो नांही गिरे है परंतु जन्म-मरणात्मक तृतीय  
मार्गकुं प्राप्त होयके शुद्रादि हीन योनीनमें उत्पन्न होवे है. याहीसों नीच योनिमें कबीर,  
रैदास आदि भगवद्भक्तनके जन्म दीखवेमें आवे है. तासों वेदनिन्दा तथा अधर्मको  
त्याग करीके भगवानकी सेवा करनो योग्य है.

## २.आश्रय मात्रसूं ही कृष्णके सायुज्यकी प्राप्ति:

“सर्वत्यागेऽनन्यभावे...शीघ्रमेव ध्रुवं फलम्”(२१६) बाहिरसों देह-  
वाणी करीके सर्वत्याग होय, भीतरसों मन करीके सर्वत्याग होय, सर्वथा अपने स्वामी  
मानिके श्रीकृष्णचन्द्रमें ही मनको निवेश होय तथा, यदि हृदयमें स्फुरण होय तो, अन्य  
देवतानकुं श्रीकृष्णकी विभूति मानिके, उनके अंश अथवा भगवत्सेवक मानिके सन्मान  
करनो. या प्रकार देहपात पर्यन्त कृष्णैकमानस रहे. अर्थात् मृत्यु होय तहां ताई कृष्णके  
विषे ही चित्त लगायो राखे तो श्रीकृष्णचन्द्रके संग शीघ्र ही सायुज्यफलकुं प्राप्त होय.  
देह तथा वाणीको श्रीकृष्णमें विनियोग नाहीं होय, प्रेमहु नाहीं होय, केवल अभ्याससों  
भगवानमें मनकी सर्वदा स्थिति करी जाय तथापि ये फल होय. यहां “अनन्येनैव  
योगेन मां ध्यायन्त उपासते” (भग.गीता १२।६) या श्लोकको स्पष्टार्थ कियो है.  
(प्रकाश) ये भक्तिकी विकल्परूपा शरणागति है जो श्रीगुसांईजीने श्रीसर्वोत्तमस्तोत्रमें  
‘पृथक्शरणमार्गोपदेष्टा’में समझाई है.

प्रतिबन्ध : “अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव च, प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि  
तथान्यत्र विवर्जयेत्” (वि.धै.१४), “अन्यसम्बन्धो गंधोऽपि कन्धरामेव बाधते”  
(विज्ञप्ति).

## ३.स्वसर्वस्वके निवेदन पूर्वक कृष्णसेवा करवेवारेकी दुर्लभता :

“यो दारागार पुत्राप्तान्...प्रेमप्लुतः सदा”(२१९) ऐसो पुरुष क्रोड  
पुरुषनमेंहु दुर्लभ है के जो स्त्री, घर, पुत्र, प्राण, वित्त, इहलोक तथा परलोक कुं

छोड़ीके कृष्णचन्द्रमें परम भावकुं प्राप्त होय. ऐसे भक्तकी श्रीभागवतमें प्रशंसा कीनी है : “मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः, सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुनेः” (भाग.पुरा.६।१४।५) अर्थ:साधन करिवेवारे क्रोड पुरुषनमें एक मुक्त होय है. ऐसे क्रोडन मुक्त पुरुषनमें हु नारायणमें परायण पुरुष होनो दुर्लभ है. ज्ञानमिश्र भक्त यदि प्रेमयुक्त होय सो वासुहूँ दुर्लभ है. या भक्तिको “देवानां गुणलिङ्गानाम्” (भाग.पुरा.३।२५।३२) या तृतीयस्कन्धके श्लोकमें वर्णन है. अर्थ : संकल्प-विकल्प रहित देवरूप जाको मन होय जाय, जो पुरुषके इन्द्रियनकी गुणातीत भगवानमें स्वभाव करीकें निष्ठा होय वाकुं भक्ति कहे हैं. “नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचित्” (वहीं ३।२५।३४) ऐसे भक्त मुक्तिकुं नाहीं चाहे हैं. ऐसे भक्त कितनेक ही हैं. यासों दुर्लभता दिखाई.

जा भक्तिसों भगवान् भक्तके वश होय जावे हैं वा भक्तिकी अवस्थाको नाम ‘प्रेम’ कह्यो जावे है. वा भक्तिको हू सायुज्य ही फल है. याको “अनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुंक्ते” (वहीं ३।२५।३६) या श्लोकमें वर्णन है. यासों हू उत्तमाधिकारीको वर्णन करे हैं : “तत्रापि सदा प्रेमप्लुतः”. जो सर्वदा प्रेममें निमग्न रह्यो आवे वो सबसों उत्तमाधिकारी है. वेसे भक्तकुं भगवान् अलौकिक सामर्थ्यरूप परम फलकुं दे हैं. वाके द्वारा भक्त भगवानके भजनानन्द अर्थात् सेवाके आनन्दको अनुभव करे है. या मुख्य भक्तिके लक्षण श्रीभागवतके तृतीय स्कन्धमें “अहेतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे” (वहीं ३।२९।१२) या श्लोकमें लिखे हैं. वो ही “दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनः” (वहीं ३।२९।१३) या श्लोकमें भगवत्सेवाके आनन्दमें निमग्न भक्त सेवा विना दीनी भई चार प्रकारकी मुक्तिकुं हू नाहीं ग्रहण करे है ये बात लिखी है. ऐसे भक्तके आधीन भगवान् होय जावे हैं. “अहं भक्तपराधीनः” (वहीं ९।४।६३) अलौकिक सामर्थ्यरूप फल मिले है. ये फल ‘सेवाफल’ ग्रन्थमें स्पष्ट लिख्यो है(आवरणभङ्ग).

#### ४. सेवाफल वर्णित फलानुभूतिकेलिये साधननको उपदेशः

“एतद् देहावसाने....कृष्णं परिचरेत् सदा”(२३४) देहावसान होयवेपर फल अवश्य मिलेगो. तासों “कब देहावसान होय, कब फल मिले” ऐसे ही “कालं प्रतीक्षन् विमदो विमत्सरः” इत्यादि वाक्यानुसार नारदजी अपनी मृत्युकी बात देखते-देखते भगवत्स्मरण-कीर्तन परायण रहे आये हते और देहान्त भये पीछे

भगवत्पार्षद होय गये या प्रकार ही “देहके अन्तमें अवश्य कृतार्थ होउंगो” ऐसी दृढ़ निश्चय राखिके जहां ताई बन सके तहां ताई बाह्य सेवा तनु-वित्तजा तथा आन्तरसेवा मानसी कुं करतो रहे.

ये सब ऊपर कह्यो उपदेश हीनाधिकारी तथा मध्यामाधिकारीके अर्थ है. उत्तमाधिकारीकुं तो भगवत्साक्षात्कार होयवेसों सेवामें आनन्द प्रकट होय जावे है. फिर वो “**विना मत्सेवनं जनाः**” (भाग.पुरा.३।२९।१३) मुक्तिकुंहु नाहीं चाहे है. सेवाकुं स्वतःपुरुषार्थरूप मानिके याके आनन्दमें निमग्न भयो सर्वदा सेवा ही करतो रहे है (प्रकाश, आवरणभङ्ग). यहां तात्पर्य यह है के हमारे श्रीआचार्यचरणने सेवाकुं ही फलरूप मानी है. तासों सेवा ही स्वतन्त्रपुरुषार्थरूप है. दयारामभाईने भी कही है “सेवाको फल सेवा कहीये”. तासों पुष्टिभक्तिमार्गमें साधन और फल कुं अलग करनो कठिन है. या मार्गके फलमें कुछ न कुछ साधन छिप्यो है और साधनमें कुछ न कुछ फल छुप्यो है.

प्रतिबन्ध : पुष्टिमार्गमें आज सेवा एक व्यापार बन गयी है. घरमें सेवाके बजाय व्यावसायिक हवेलीनमें मनोरथ करके आत्मसंतोष मान ले हैं.

#### ५. श्रीकृष्णकी प्राप्तिमें साधन : प्रेम और नवधाभक्ति

क. “**विशिष्टरूपं वेदार्थः फलं प्रेम च साधनम्**”(२२०). या भक्तिमार्गमें जानिवे योग्य पदार्थ भगवान् ही है. अर्थात् विनको क्रियारूप अंश वेदके पूर्वकाण्डद्वारा वर्णित भयो है और ज्ञानरूप अंश वेदके उतरकाण्डद्वारा वर्णित भयो है. भक्तिमार्गमें तो दोऊ अंश सहित अर्थात् पूर्णज्ञान-क्रियावान् भगवान् ही प्रमेय हैं, जानिवे योग्य हैं तब भगवान् ही फल हैं. भगवानकी प्राप्तिमें प्रेम ही साधन है.

ख. “**तत्साधनं नवविधा भक्तिस्तत्प्रतिपादिका**”(२२०) प्रेमको साधन नवधाभक्ति है. श्रवणादिक नवधाभक्ति किये विना, संस्कारवशसों किंवा फलकामनासों उत्पन्न भई प्रीति ‘गौणप्रेम’ कहावे है. श्रवणादि भक्ति भगवत्प्राप्तिको साधन है. यामें “**भक्त्या त्वनन्यया शक्यः**” (भग.गीता ११।५४) इत्यादि गीताके वाक्य प्रमाण हैं. साध्यरूप प्रेम भक्ति तथा साधनरूप श्रवणादि भक्ति इन दोउ भक्तिनकुं एक समुझीके “में एक (केवल) भक्ति करिके ही जान्यो जाउं हूं तथा दर्शन

देउं हूँ” या प्रकार आज्ञा कीनी है. जिन श्रीकृष्णकी प्राप्ति भक्त चाहे है विन फलरूप कृष्णके वचन श्रीगीताजी हैं. तासों परमप्रमाण श्रीगीताजी माने जावे हैं. परमानन्दरूप पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं. तासों कृष्ण ही फलरूप हैं.

ग. “श्रीकृष्णं पूजयेद्...तथा स्थानपुरःसरम्”(२२९-३०). अनिन्दित वृत्तिसों तथा सहजतया उपार्जित होवे ऐसी सेवोपयिक सामग्रीन्सों भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णमूर्तिको पूजन करनो. जहां मूर्तिके श्रीहस्त-चरणारविन्द हैं वहां ही भगवानकेहुं हस्त-चरणादिक हैं. मूर्तिके सब अवयवनमें भगवदवयव हैं. क्योंकि भगवान् साकार-व्यापक ब्रह्मरूप हैं. तासों कडा, किरीट, कुण्डल आदि उपचार भगवान्के अवयवन्में ही साक्षात् अङ्गीकृत होय हैं. अन्य देवतानकी मूर्तिमेंहू पूजन होय सके है परन्तु वहां दो व्यवधान होवे हैं : १.भगवानको अंश अक्षरपुरुष (ये प्रथम अन्तराय और) वाके २.अंशावतार तथा अन्य देवता उनको आवेश (ये दूसरो अन्तराय). सो लोहेके गोलामें जैसे अग्निको आवेश होत है तैसें मूर्तिमें (अन्यान्य देवतानको) आवेश होत है. परन्तु श्रीकृष्णकी मूर्तिमें अंशी मूलरूप परब्रह्म पुरुषोत्तमको ही आवेश होत है (श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी प्रणाली अनुसार सेवा कीनी होय तो). तासों श्रीकृष्णकी ही प्रेमसहित सेवा करनी. राजाधिराजको जा प्रकार उपचार कियो जाय है ता रीतिसों सेवा करनी.

घ. “यथा-यथा हरिः...परिनिष्ठा विवर्धते”(२४०). भक्तिमार्गकी सर्वविध बाधानकुं हरवेवारे हरि तथा भक्तिभावको स्वरूपानन्दसूं पोषण करिवेवारे कृष्ण अपने मनमें जैसे-जैसे अधिक प्रवेश करत हैं तैसे-तैसे भक्तिके साधनन्में भक्तकी परिनिष्ठा वृद्धिगत होत जात है.

प्रतिबन्ध : क. “विक्षेपाद् अथवा...सर्वेषां वर्णिनां तथा”(२४७) कबहुक भगवद्भक्तन्में स्वतो रुचि न होयवेपेहुं हठात् भजन करिवेपे मानसिक विक्षेप होत है. अथवा स्वतः रुचिशील होयवेपे हू कबहुक रोगादिजन्य शारीरिक अशक्तितेंहू भजन दुष्कर हवे जात है, कबहुक स्वतः समर्थ होयवेपेहुं घर आदिके बडरे भगवद्भजन विरोधी होयवेतें तामें प्रतिबन्ध करत हैं, कबहुक बडरे प्रतिबन्ध न करत होंय तोउ भजनकर्ताको ऐसो मूढाग्रह बंधी जात है जो भजन करत भगवान्तें भिन्न अन्य सब कछुकी सुधि रहत है परि भगवानकी नाहीं. कबहुक भजनीय भगवानकी सुधिके आवेशमें भजनकर्ताको निज भजनप्रक्रियाके विस्तारतें परिवारजनकों पीडा होत है ताकी

सुधी रहत नाही.

ख. “वर्णाश्रमवतां धर्मे...तस्मान् न मोचनम्” (२२३) मेंड-मरजाद, आचारादिके अत्याग्रहके कारण चित्त श्रीकृष्णमें प्रवण होयवेके बजाये आचार आदिमें ही प्रवण होय जात है.

ग. “सर्वापेक्षां परित्यज्य...सर्वथैव परित्यजेत्” (२३५). वृथा क्रिया, वृथा आलाप तथा वृथा ध्यान न करने.

घ. “स्वधर्माचरणं शक्त्या...न त्यजेत् त्रयम्” (२३८) स्वधर्माचरणमें प्रमाद न करना, विधर्माचरण न करना, इन्द्रिय निग्रह करना.

ङ. “अहङ्कारं न कुर्वीत मानापेक्षां विवर्जयेत्” (२४१) अहङ्कार न करना और मानकी अपेक्षा न राखनी.”

च. “सर्वं सहेत परुषं...सर्वथा न परित्यजेत्” (२३३) धीरज राखनी, वैराग्य-परितोष राखने.

## ६. प्रपत्तिमें फलविचार

क. तीर्थाटन “यज्ञास् तीर्थानि...अव्यग्रात्मा सदा गतिः” (२४९-५०). तीर्थस्थलमें जा दिना प्रवेश करे ता दिना उपवास करना. दूसरे दिना अन्नमात्र नहीं होय तो जितनेमें उदर भर जाय उतने ही अन्नकी याचना करनी. तीर्थमें दान नहीं लेनो, नित्य विचरते रहनो. बहुत काल एक स्थानमें नहीं रहनो. ऊंचे स्वरसों, संकोच छांडिके भगवानके नामनको कीर्तन करते रहनो ये सब तीर्थाटनको अंग है. भीतर भगवानको सर्वदा स्मरण राखनो. एकाकी रहनो. मार्गमें इन्द्रियनके विषयभोगनके अर्थ स्पृहा नहीं करनी. चित्तकुं शान्त राखनो. देहपात नहीं होय तहां ताई विचरतो रहे. “देहपात भये पीछे मैं अवश्य कृतार्थ होउंगो” ऐसो निश्चय राखनो. सदा शुद्ध रहनो. सन्ध्या-वन्दन आदि नित्य कियो जावे है तेसे नित्य ही तीर्थाटन करते रहनो. या पक्षमें अन्तःकरणमें सर्वदा श्रीकृष्ण स्फुरण होवे है.

प्रतिबन्ध : आचार्यजीने जा प्रकारको तीर्थाटन देहपात पर्यन्त बतायो है ऐसो

तीर्थाटन करवेवाले तो पुष्टिमार्गमें कोई दृष्टिगोचर होत नहीं. परि आधुनिक ब्रजयात्राको विचार करें तो वामें तो हजारनकी सङ्ख्यामें लोग होवे हैं. वामें एकाकी पर्यटन सम्भव नहीं होत है. और आज तो ब्रजयात्राको संकल्प केवल धन कमायवेके लिए ही कियो जात है.

ख.स्वगृहमें भगवत्सेवा : “गृहं सर्वात्मना...कृष्णोऽनर्थस्य वारकः”(२५१-५२). याको विवेचन आगे हो चूक्यो है.

ग.निरंतर आदरसों श्रीभागवतजीके पाठसुं कृष्णप्राप्ति : “अथवा सर्वदा शास्त्रं...कृष्णम् अवाप्नुयात्”(२५३-५४), “बाह्याभ्यन्तरभेदेन रूपे भेदद्वयं मतं, नाम्नि चैकं ततस् त्रेधा भक्तिमार्गो निरूपितः”(प्रकाश)

स्वगृहमें श्रीकृष्णसेवा निभ न सके अरु तीर्थाटन हु न बनि आवे तो निरंतर आदरसों श्रीभागवतको पाठ करना. परि श्रीभागवतके पाठसों अन्य कोउ हेतु जुरि न जाय वा बातकी अत्यन्त सावधानी राखनी. तहां आजीविकाके हेतुसों तो प्राण गलामें आए अटकें होंय तोउ भागवतकथातें अपनो निर्वाह न चलावनो. भागवतकथाकी आजीविका न करिवेपें दूसरी कोई आजीविका अनुकूल न परत होय तो जैसी रीतसुं निर्वाह चलत होय तैसें चलावनो परि आजीविकार्थ भागवतकथा नहीं ही करनी. गृहसेवा, तीर्थाटन अरु भागवतपाठ इन तीनों उपायनमें एकहु उपाय आछी तरह कियेतें भक्तको कृष्णप्राप्ति होत है “स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः”(मुण्ड.उप.२।१।२) इत्यादि श्रुत्यनुसार भगवानको एक बाह्य रूप है. वो सब पदार्थनके बाहिर रहे है. दूसरो आन्तररूप है वो सब पदार्थनके भीतर रहे है. तीसरो आपको रूप शब्दनमें रहे है. तासों तीन प्रकारसों भक्तिमार्गको वर्णन कियो है.(प्रकाश)

प्रतिबन्ध : अ. “साधनं परमेतद्धि...निर्हेतुकम् अदम्भतः”(२४३) दम्भ-लोकोपकार अथवा पाषण्ड करिवेके हेतुसों, उदरभरी कथामें अश्रुपातादिके भावुकता प्रदर्शनके दम्भसों, मर्यादामार्गीय प्रणालीवारी धुंधुकारीमोचक सप्ताह-कथाके श्रवणके नियमसों श्रीभागवतको पाठ करना.

आ. “अत्यन्तमलिना लोकाः...मुच्यतेऽनुपजीवनात्” (स.नि.६७)



### प्रपतिमार्ग :

“जगन्नाथे विट्ठले...तत्र तिष्ठेत तत्परः”(२५५). पुरुषोत्तमक्षेत्ररूप जगदीशजी, भीमा तटपे पंढरपुर विठोबा, श्रीरंगजी, तिरुपति बालाजी तेसेई जहां वैष्णवतन्त्रानुसार पूजाप्रणाली प्रचलित होय तहां भगवन्मूर्तिके पूजादिमें तत्पर होयके रहेनो. “सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज” (भग.गीता १८।६६) में सर्वधर्मनकुं छांडिके एक भगवानकी ही शरण जानो लिख्यो है. अन्याश्रय छांडिके श्रीभगवानको ही दृढ विश्वास राखनो. “ब्रह्मास्त्र-चातकौ भाव्यो” (वि.धै.) ऐसेही भगवानके आश्रयमें सन्देह करके जब अन्य देवको आश्रय कियो जाय है तब वो भक्त शरणमार्गसों पतित हो जाय है. और शरणधर्म सिद्ध होयवेके अर्थही श्रीआचार्यजीने कृष्णाश्रयस्तोत्र प्रकट कियो है. या श्लोकके आवरणभंगमें श्रीपुरुषोत्तमजी कहे हैं के द्वारभूत गुरुके द्वारा भगवानके शरण आवे, पाछें सत्संग करके श्रीआचार्यचरनमें “ये भगवान् हैं” ऐसी अभेदबुद्धि होय, तदनन्तर सर्वोत्तमस्तोत्रादिकनके पठनसों गुरुकी सेवा करतो रहे, ता पाछें भगवदीयनको संग करके पूर्वरीतिके अनुसार भगवानकी सेवा करतो रहे. ऐसे करत जब स्वमार्गीय ग्रन्थनकुं सुनिवे-देखिवेसों प्रतिबन्धक निवृत्ति होय तब देशनिवृत्ति तथा सेवाके उपयोगी गुणनकी प्राप्ति होय ... सेवाको अनधिकार होय तो श्रीभागवताश्रय करनो. यामेंहु अधिकार नाही होय तो पुरुषोत्तमसहस्रनाम-त्रिविधनामावलीको आश्रय करनों. उत्तमाधिकारमें तो तीर्थपर्यटन श्रेष्ठ है. वामेंहु अनाधिकार होय तो शरणागत होयके सहस्रनामादिकनको पाठ करतो भयो जहां पूजाप्रवाह होय तहां समीप अथवा दूर स्थित रहनो. कहे भये प्रकारनके अनुसार बर्ताव करिवेसों साधक भक्त फलोन्मुख होय है तथा फलकी प्राप्ति होत है. प्रपतिमार्ग अर्थात् शरणमार्ग भक्तिमार्गको अनुकल्प है. तासों भक्तिमार्गमें ही याको प्रवेश है.

### उपसंहार :

“मार्गोऽयं सर्वमार्गानाम् ... मोचकः सर्वथा यतः”(२२२) या मार्गमें प्रमेय अर्थात् जानिवे योग्य वस्तु भगवान् हैं और फलहु भगवान् हैं. तासों प्रमेयको ज्ञान होनो ही फलको अनुभव करनो है. साधन जो भक्ति है वो फलसोंहु अधिक है. याहीसों भक्त फलरूप भगवानमें लीन होनों नाही चाहे है किन्तु सर्वदा भक्ति ही करते

रहनो चाहे है. फलसोंहु या मार्गमें ज्ञान-कर्मदिकनसों साध्य पदार्थनसों अधिक है. तासों या मार्गमें दुर्गतिको भय नांही है. (प्रकाश) श्रीगोकुलनाथजी भी भक्तिवर्धिनीकी विवृत्तिमें आज्ञा करे हैं कि “अत्र भजने ‘कृष्ण’पदस्य फलवाचकत्वेन ‘इदं भजनं मम फलरूपम्’ इति ज्ञात्वा भजनं कर्तव्यम्, नतु साधनबुद्ध्या” (भ.व.वि.२) यहां भजनमें फलरूपताको जतायेवारो ‘कृष्ण’पद होयवेसूं “ये मेरे द्वारा कियो भजन फलरूप है” ऐसो जानीके भजन करनो, न कि भजनमें साधन बुद्धि राखीके भजन करनो (ग्रन्थमें). “लभते सुदृढां भक्तिं” ऐसे कह्यो है तासूं अलौकिक देहसम्पत्तिपूर्वक साक्षात् पुरुषोत्तमको भजन ही फलरूप है वेसी उक्ति होयवेसूं हो रहे भजनको साधनपनो प्राप्त होवे है, तोहु पुष्टिमार्गमें पुरुषोत्तम ही भजनीय होयवेसूं यद्यपि अलौकिक देहसंपत्तिकी प्राप्ति न भई होय फिर भी हो रह्यो भजन पुरुषोत्तम पर्यवसायी ही है. तासूं ये भजन फलरूप ही है और पुष्टिमार्गीय फल है सो अन्य साधननसूं असाध्य होयवेसूं पुरुषोत्तमको भजन ही साक्षात् पुष्टिमार्गीय फलको सिद्ध करवेवारो है. सर्वोत्कृष्ट साधननको विचार करते भजनसूं अतिरिक्त सर्वमें सर्वोत्कृष्टपनेको अभाव होयवेसूं सर्वोत्कृष्ट ही साधन ओर सर्वोत्कृष्ट ही फल ऐसे भजन ही साधन है और भजन ही फल है वामें कोई अनुपपत्ति नहीं” (भ.व.वि.२)

अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे।

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमुप्युत।

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

(भाग.पुरा.३।२९।१३).



## चर्चा

पुष्टि भक्ति और प्रपत्ति में फलविचार  
(तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत साधनप्रकरणके संदर्भमें)

### श्रीभावेश परमार

**असित शाह :** अહીં એક રિમાર્કબલ્ વાત છે કે શ્રીમહાપ્રભુજી “યદ્યદિષ્ટતમં લોકે” માં ‘ઈષ્ટતમ’ કહી રહ્યા છે, ‘ઉત્તમ’ નથી કહી રહ્યા.

**રસિક શાહ :** મને એમ લાગે છે કે ઠાકોરજીને ઉત્તમ ધરવું જોઈએ એ વાત આના બેફાળાઈમાં છે. ઉત્તમતા નક્કી કેમ કરવી તે ત્રણ રીતે બતાવી છે. પહેલું એ કે લોકમાં ઈષ્ટતમ હોવી જોઈએ. બીજું, પ્રભુને અતિપ્રિય હોવું જોઈએ. અને ત્રીજું, યેન સ્યાત્ નિર્વૃત્તિશિયત્તે. આ ત્રણ પ્રક્રિયામાંથી જે પસાર થાય તે ઉત્તમ ગણાય એવી મારી સમજ છે.

**અસિત શાહ :** બેઝિકલિ ‘ઈષ્ટતમ’ વાઈડ્ પોપ્યુલારિટીના અર્થમાં છે. ઉત્તમમમાં એવું જરૂરી નથી હોતું કે એ બધાને ઉપલબ્ધ હોય. લોકમાં ઈષ્ટતમ એ કહેવાય છે કે જે બધાને ઉપલબ્ધ હોય. એટલે શ્રીમહાપ્રભુજીએ ઉદાહરણ પાણ “આમ્રદ્રાક્ષાદિકમ્” આપ્યું છે.

**રસિક શાહ :** આ કારિકામાં ઉત્તમની વાત ભલે નથી આવતી પણ ઉત્તમ વસ્તુ કોને કહેવી એ નક્કી કરવામાટે આ કારિકા છે એવી મારી સમજ છે.

**અસિત શાહ :** ચિત્તમાં નિર્વૃત્તિ(આનન્દ) કેવી રીતે થશે એના માટેના આ બે કાઈટેરીયા છે. લોકમાં ઈષ્ટતમ પદાર્થનું પ્રભુને સમર્પણ કરીશું તો ચિત્તમાં નિર્વૃત્તિ થશે. પ્રભુને પ્રિય પદાર્થનું સમર્પણ કરીશું તો ચિત્તમાં નિર્વૃત્તિ થશે. જો અસન્માર્ગથી ઉપાર્જિતનું પ્રભુને સમર્પણ કરીશું તો ચિત્તમાં નિર્વૃત્તિ નહીં થાયે.

**રસિક શાહ :** મને આ બાબતમાં કંઈક બીજું લાગે છે. ઘણા વખતથી કોઈ વસ્તુનું પ્રભુને સમર્પણ કરવાની આભિલાષા છે તેથી તેનું સમર્પણ કરવાથી ચિત્તમાં આનન્દ થાય છે.



# सेवाफल ग्रन्थान्तर्गत फलका निरूपण

योगेश गोस्वामी

श्रीमदाचार्यमार्गेण सेव्यमानोस्मदीश्वरः।  
निवारयतु नस्तापात् सुखसन्दोह सिद्धये॥  
करुणाचार्य चरणवरणं शरणं मम।  
यत्पथे सुकथे सेवाफलं कृष्णः प्रयच्छति॥

## सेवाफलकी प्राप्ति करवाना ही श्रीआचार्यचरणके वाङ्मयका प्रयोजनः

श्रीआचार्यचरण अपने शास्त्रार्थप्रकरणके प्रकाशके मंगलाचरणमें आज्ञा कर रहे हैं कि सबके उद्धारके लिये प्रयत्नशील अथवा जिससे सबका उद्धार हो जाये इस प्रकारका प्रयत्न करनेवाले भगवान् सभीजीवोका उद्धार करनेके लिये, कृष्णरूपमें स्वरूपतः प्रादूर्भूत हुए, जिससे सभी लोग उनके दर्शन कर सके और सभीका उद्धार हो सके. जिन जीवोका उद्धार भगवान् अपने मूल‘रूप’द्वारा करना चाहते थे उनका उद्धार अपने अवतारकालमें किया. अन्यजीवोका ‘नाम’द्वारा उद्धार करनेकी इच्छासे, अपने अनवतारकालमें श्रीकृष्णने ही व्यासका रूप धारण कर सभीके लिये अत्यंत सुखदायक श्रीमद्भागवत्महापुराणका प्रकाशन किया. जिससे भगवान् श्रीकृष्णके ‘सर्वोद्धारप्रयत्नात्मा’ नामकी सिद्धि भी हुई. श्रीमद्भागवत् महापुराण तभी उद्धारक हो सकता है जब उसका यथार्थज्ञान हो. सुबोधिनीजीके प्रथमस्कन्धकी कारिकामें श्रीआचार्यचरण आज्ञा कर रहे हैं कि जब भगवान्ने देखा कि श्रीमद्आचार्यचरणके अतिरिक्त किसीमें भी भागवतके यथार्थ अर्थ करनेकी सामर्थ्य नहीं है क्योंकि आप स्वयं वाणीके पति-वैश्वानर हैं. वाणीके पति अग्नि हैं और पत्नी अपने स्वरूपको अपने पतिके समक्ष ही प्रकट करती हैं. यह विचार कर भगवान्ने अपने ही मुखारविन्द स्वरूप श्रीआचार्यचरणको भी श्रीमद्वेदव्यासकी तरह ही मानवदेह सम्पन्न करके श्रीभागवतका उत्तम अर्थ प्रकट करनेकी आज्ञा प्रदान की. इस कारण श्रीआचार्यचरणने विचारपूर्वक भागवतके तात्त्विक अर्थका प्रकाशन करनेके लिये तत्त्वार्थदीपनिबन्ध, अणुभाष्य, षोडशग्रन्थ और भागवतटीका इत्यादि ग्रन्थोका निर्माण किया. जिससे श्रीमद्भागवतका उद्धारकत्व सम्पन्न हो सके. इसी लिये सर्वोत्तमस्तोत्रमें आपके नाम बताये गये- ‘दैवोद्धारप्रयत्नात्मा’, ‘भागवतगूढार्थ प्रकाशन परायण’ इत्यादि. अतः भागवतके यथार्थज्ञानके अभावमें सात्विक व्यक्ति भी अन्य मतोंके द्वारा भ्रान्त हो जानेके कारण

भगवान कृष्णकी सेवा नहीं कर पाते है. उन सात्त्विक लोगोको कृष्णसेवामें प्रवृत्त करनेके लिये ही इन सभी ग्रन्थोकी रचना की गई है. (शा.प्र. २२)

### **वाल्लभ वाङ्मयमें षोडशग्रन्थका स्थान :**

श्रीआचार्यचरणके अन्य ग्रन्थोकी तुलनामें षोडशग्रन्थका स्थान पुष्टिजीवके लिये कुछ विशेष ही है, क्योंकि पुष्टिमार्गकी साधनाप्रणाली एवं फलका निरूपण जितना सुस्पष्ट षोडशग्रन्थमें हुआ है उतना अन्यत्र नहीं हुआ है. वैसे तो तत्त्वार्थदीपनिबन्ध अणुभाष्य सुबोधिनीजी में भी पुष्टिमार्गका निरूपण हुआ ही है परन्तु निबन्धमें तो समग्र शास्त्रोका अर्थ स्पष्ट किया होनेसे समग्र दैवीजीवोको बात समझाई गई है, उसीके अन्तर्गत पुष्टिमार्गका निरूपण भी हुआ है. जबकि सुबोधिनीतो भागवतकी व्याख्या होनेके कारण दशविधलीलाके निरूपणके अन्तर्गत पुष्टिमार्गका निरूपण वहां हुआ है. षोडशग्रन्थमें हर एक ग्रन्थ में यही निरूपण किया गया है कि पुष्टिजीवोका पुष्टिमार्ग पर सुगमतासे चलनेमें आतें प्रतिबन्धको दूर कैसे किया जाय एवं उसे पुष्टिभक्तिमार्गीय फल कैसे प्राप्त हो. अतः अन्य ग्रन्थोका अवगाहन करते समय पुष्टिजीवोको यह विवेक होना आवश्यक है कि कोनसी बात पुष्टिमार्गके लिये है और कोनसी नहीं. जबकि षोडशग्रन्थ तो पुष्टिमार्गीयके लिये ही होने से ही इस विवेककी इतनी आवश्यकता नहीं होती. सिद्धान्तमुक्तावली ग्रन्थकी व्याख्यामें श्रीपुरुषोत्तमचरण स्वयं षोडशग्रन्थका अनुबन्ध चतुष्टय बताते है. यहां 'स्वसिद्धान्त विनिश्चय' इस श्रीआचार्यचरणकी उक्तिका विवरण करते हुए आप समझा रहे है कि स्वसिद्धान्त इस ग्रन्थका विषय है और सिद्धान्तके विशेषण 'स्व' पदसे श्रीमदाचार्यचरण (अनुरक्त) आपश्रीके सिद्धान्तका जिज्ञासु इस ग्रन्थका अधिकारी है. इस ग्रन्थमें सिद्धान्त प्रतिपाद्य है और यह ग्रन्थ इस सिद्धान्तका प्रतिपादक है. यही सम्बन्ध है. इस ग्रन्थके उपसंहारमें कहा है कि "एतद् बुद्ध्वा विमुच्येत पुरुषः सर्व-संशयात्" यही ग्रन्थका प्रयोजन है. सिद्धान्तमुक्तावलीके अनुबन्ध चतुष्टयको ही षोडशग्रन्थके अनुबन्ध चतुष्टयरूपमें भी मान्य किया जा सकता है. क्योंकि कृष्णसेवा सदा करनी है इस सिद्धान्तका विनिश्चय जो इस ग्रन्थमें किया है उसी सेवाका निरूपण समग्र षोडशग्रन्थमें अलग-अलग पक्षोके रूपमें हुआ है. अतः यह सिद्ध होता है कि षोडशग्रन्थ केवल पुष्टिमार्गीय जीवके लिये ही है ऐसे कहनेमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी.

### **षोडशग्रन्थका तात्पर्य एवं सेवाफल ग्रन्थका स्थान :**

तात्पर्य निर्धारणके लिये शास्त्रमें छह तात्पर्यनिर्धारक लिङ्गोका निरूपण हुआ

है. “उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम्, अर्थवादोपपत्तिश्च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये”. (१)उपक्रमोपसंहार (२)अभ्यास (३) अपूर्वता (४)फल (५)अर्थवाद (६)उपपत्ति रूप छहों लिङ्गोके द्वारा तात्पर्य निर्णयकी सिद्धि होती है.

गोस्वामी श्रीश्याममनोहरकाकाजीने (मुम्बई-किशनगढ) अपने षोडशग्रन्थ परिचयनामक ग्रन्थमें उपरोक्त छहो लिङ्गोके द्वारा षोडशग्रन्थका तात्पर्य भगवान्की सेवा ही है यह सिद्ध किया है.

(१)उपक्रमोपसंहार- उपक्रमरूप यमुनाष्टकमें “ममास्तु तव सन्निधौ तनु-नवत्वम्” कह कर भगवत्सेवार्थ अपेक्षित देहकी नूतनताकी प्रार्थनाके द्वारा भगवत्सेवाकी महत्ता दिखलाई गई है. षोडशग्रन्थके उपसंहाररूप सेवा-फल ग्रन्थका नामाभिधान ‘भक्तिफल’ ‘कथाफल’ ‘त्यागफल’ ‘निरोधफल’ या ‘प्रपत्तिफल’ न कह कर सेवाफल कहना और अलौकिक सामर्थ्यके रूपमें सेवाका फल पुनः सेवाको ही मानना भी पुष्टिमार्गमें सेवाकी महत्ताका ही प्रमाण है. इसीलिये सेवाफलमें ‘सेवाका फल’ ऐसे न कह कर ‘सेवामें फल’ ऐसा अर्थ लिया गया है.

(२)अभ्यास- सिद्धान्तमुक्तावली, पुष्टिप्रवाहमर्यादा, सिद्धान्तरहस्य, भक्तिवर्धिनी तथा निरोधलक्षण ग्रन्थोंमें शब्दशः तथा अन्य ग्रन्थोंमें तात्पर्यशः सेवाके महत्वके पुनः पुनः उल्लेख द्वारा जो अभ्यास किया गया है उसके आधार पर भी सेवाकी असाधारण महत्ता सिद्ध होती है. सिद्धान्तमुक्तावलीमें कृष्णसेवाको ही प्रथम कर्तव्य बताया गया है. मानसीसेवाको श्रेष्ठ बताइ है. जिसकी सिद्धि तनु-वित्तजा सेवासे होती है. इस ग्रन्थमें इस सेवाके स्वरूप एवं सेवाकर्तृके बारेमें भी विवेचन किया गया है. समग्र षोडशग्रन्थोंकी एकवाक्यता या आधारशिलाके जैसी केन्द्रिय धारणा पुष्टिप्रवाहमर्यादा ग्रन्थके “भगवद्-रूप-सेवार्थं तत्सृष्टिः नान्यथा भवेत्” वचनमें श्रीमहाप्रभुजीने स्पष्ट कर दी है कि सेवाके अधिकारी पुष्टिजीव ही होते हैं सभी नहीं. अतएव षोडशग्रन्थके उपसंहाररूप सेवाफलमें पुष्टिमार्गीय फलसे भिन्न किसी फलका निरूपण स्वीकारने पर अथवा पुष्टिमार्गमें भी सेवा से भिन्न किसी कर्तव्य या अवस्थाको पुरुषार्थ या फलरूप मानने पर उपक्रम-उपसंहार आदि तात्पर्य निर्धारक अंगोंमें परस्पर विस्वादा उपस्थित हो जायेगा. सिद्धान्तरहस्य ग्रन्थमें पुष्टिजीवोको पुष्टिभक्तिरूप सेवामें दीक्षित करनेके लिये आत्मनिवेदनका प्रकार समजाया है. जिससे भोगासक्ति सेवामें बाधा पहुंचानेमें असमर्थ बन जाती है. नवरत्नग्रन्थमें सेवाको उद्वेग रहित बनानेके लिये चिन्तात्यागकी बात समझाई गई है.

अन्तःकरणप्रबोध-विवेकधैर्याश्रय-कृष्णाश्रय ग्रन्थमें इस पुष्टिमार्गीय भगवत्सेवामें विघ्नरूप उद्वेग एवं प्रतिबन्धोंसे बचनेके उपाय दिखलाये गये हैं। भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें इस सेवाके बीजभावसे ले कर व्यसनदशा तक होते विकासकी रूपरेखा खींची गई है। सेवाके अनवरसरमें चित्तके भगवत्प्रवण बने रहनेमें कोई व्यवधान न आये इस लिये जलभेद-पञ्चपद्यानि ग्रन्थमें भगवत्कथाके श्रवण-कीर्तनका स्वरूप समझाया है। सन्न्यासनिर्णय ग्रन्थमें यह सेवा न निभती हो तो भोगासक्तिके उपर काबू पानेके लिये गृहत्याग कर देना चाहिये और यह गृहत्याग व्यसन दशा सिद्ध होने पर ही करना चाहिये अन्यथा नहीं, यह सावधानी बरतनेकी सलाह यहां दी गई है।

(३) अपूर्वता- श्रीमहाप्रभुजीके अन्यग्रन्थोंमें भी जैसेकि निबन्ध, भाष्य या सुबोधिनीमें सेवाका उल्लेख मिलता है परन्तु भगवत्सेवाका सांगोपांग सपरिकर स्वरूप जैसा षोडशग्रन्थमें वर्णित हुआ है वह अन्यत्र सुलभ नहीं है। सेवाके अन्तरंग रूपमें भाव-भावना, सेवाके बहिरंग रूपमें आत्मसमर्पण, तनु-वित्तजा सेवा, गृहस्थित वस्तु एवं परिजनोका भगवत्सेवामें विनियोग और अन्य भी नवधा भक्त्यंगभूत श्रवण-कीर्तनादि उपाय माने गये हैं। इन सारी बातोका जैसा स्पष्ट एवं सुसंगत विचार अपूर्वतया यहां षोडशग्रन्थोंमें हुआ है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

(४) फल- पुष्टिमार्गमें भगवत्सेवाद्वारा किसी फलकी कामना नहीं की जाती है। क्योंकि सेवाका फल सेवा ही होता है। अतएव सेवाफलविवरण ग्रन्थमें 'सेवायाः फलत्रयम्' न कह कर "सेवायां फलत्रयम्" कहा गया है। अतः तीनो ही फल (अलौकिक सामर्थ्य, सायुज्य एवं वैकुण्ठादि लोकमें सेवोपयोगी देह) षोडशग्रन्थमें मुख्यतया प्रतिपाद्य सेवाके अन्तर्भूत ही है। इस फलसंकीर्तनसे भी षोडशग्रन्थका तात्पर्य भगवत्सेवोपदेशमें ही पर्यवसित होता है। सेवाफल ग्रन्थमें तनु-वित्तजाका फलितरूप अलौकिक सामर्थ्यके रूपमें दिखलाया गया है।

(५) अर्थवाद- चतुश्लोकी ग्रन्थमें सेवाका पुष्टिमार्गीय धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी पुरुषार्थ चतुष्टयीमें क्या स्थान है यह दिखलाया गया है। "सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो ब्रजाधिपः। स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन" द्वारा कृष्णसेवाकी प्रशंसा की गई है। बालबोध ग्रन्थमें मर्यादामार्गीय पुरुषार्थ चतुष्टयके मोक्षका विवरण करके इसकी पुष्टिमार्गीय मोक्षकी तुलनामें गौणता सिद्ध की गई है। निरोधलक्षण ग्रन्थमें "नातः परतरो मन्त्रो नातः परतरः स्तवः। नातः परतरा विद्या तीर्थ नातः परात्परम्" इस वचनद्वारा अन्य उपर्योकी निन्दा की है अतः अर्थवादके विचारसे भी भगवत्सेवाकी महत्ता सिद्ध होती है। इस सेवाके मानसीसेवाके रूपमें विकासके

सहायक कारणोंको यहां परिभाषित किया गया है.

(६) उपपत्ति- किन्हीं प्रमाणोंसे किसी एक बातका खंडित होना सम्भव नहीं है, इस तरहका निरूपण करना उपपत्ति कहलाता है. अतएव श्रीआचार्यचरण सेवाफल ग्रन्थमें आज्ञा करते हैं कि इन सोलह ग्रन्थमें मुख्यतया प्रतिपाद्य भगवत्सेवाके स्वरूपको अन्यान्य साधनोंकी तुलनामें गौण बनानेवालेको पुष्टिकी सुंदर सृष्टिमें कुसृष्टिरूप ही समझना चाहिए. इस ग्रन्थके उपसंहारमें श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं “**कुसृष्टिरत्र वा काचिद् उत्पद्येत स वै भ्रमः**”.

इस तरह उपक्रम-उपसंहार, अभ्यास, अर्थवाद, अपूर्वता, फल और उपपत्ति रूप छहों तात्पर्य निर्धारक लिङ्गोंके द्वारा यह निःसन्दिग्धतया सिद्ध होता है कि पुष्टिजीवोंके लिये स्वर्गमें श्रीकृष्णके पुष्टिस्वरूपकी सेवा, ब्रजभक्तोंके भावोंका भावात्मक अनुसरण करते हुए निज तन-मन-धनका भगवान्में विनियोग तथा सेवाके अनवरतमें इस भावकी वर्धन करनेवाली भगवत्कथाका श्रवण-कीर्तन-स्मरण करना प्रथम एवं चरम कर्तव्य है. यहां वहां भटकनेवाले चित्तकी सभी वृत्तियोंका निरोध भगवत्सेवा और भगवत्कथा में होना चाहिये. क्योंकि निरोधलक्षण ग्रन्थमें कहा है कि “**ये निरुद्धास्तएवात्र मोदमायान्त्यहर्निशम्**” का नियम अकाट्य है.

**सेवाफल ग्रन्थान्तर्गत ‘सेवाफल’ शब्दपर विचार :**

सेवाफलविवरण ग्रन्थमें स्वयं श्रीआचार्यचरणने ‘सेवाफल’ शब्दका समासविग्रह और फलका विवेचन बताया है. वहां ‘सेवाफल’का अर्थ बताया है ‘सेवायां फलत्रयम्-अलौकिक सामर्थ्य-सायुज्यं-सेवोपयोगीदेहो वैकुण्ठादिषु’ अर्थात् अलौकिक सामर्थ्य, सायुज्य अथवा वैकुण्ठादिक लोकमें सेवामें उपयोगी देहकी प्राप्ति. इस तरह सेवामें तीन फल हैं. यहां यह ध्यातव्य है कि ‘सेवाफल’ शब्दका समासविग्रह षष्ठीतत्पुरुष न करके सप्तमी तत्पुरुष किया है. इससे यह सिद्ध हो ही जाता है कि पुष्टिमार्गमें सेवासे भिन्न अन्य किसी कर्तव्य या अवस्थाको पुरुषार्थ या फलरूप नहीं माना जा सकता है. इस ग्रन्थमें कहा है कि “**‘यादृशी सेवना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलमुच्यते’**” अर्थात् सेवाका जो स्वरूप समझाया गया उसके सम्पन्न होने पर सेवाकी फलरूपताका स्वरूप यह समझाया जा रहा है. यहां सेवाके कौन कौन से स्वरूपकी बात कह रहे हैं कि जिसके सम्पन्न होने पर उस सेवामें तीन फल प्रकट होंगे यह पहले विचार करना आवश्यक है.



## सेवास्वरूपः

सेवाफल ग्रन्थके पूर्व मुख्यतः सिद्धान्तमुक्तावली, चतुश्लोकी एवं भक्तिवर्धिनी इन तीनों ग्रन्थोंमें सेवाका स्वरूप समझाया गया है। सिद्धान्तमुक्तावली ग्रन्थमें स्वसिद्धान्त विनिश्चयरूपमें सदा कृष्णसेवाकी आवश्यकता समझाई है। वह बात मनसे होने लग जाय तब उसे श्रेष्ठ माना है। ऐसी सेवाका स्वरूप है चित्तकी श्रीकृष्णमें प्रवणता जिसकी सिद्ध होगी अपने ही तन और धनके साथ सर्वस्वसमर्पणपूर्वक सेवा करनेसे। चतुश्लोकी ग्रन्थमें यह बताया है कि गृहसेवा कृष्णके ब्रजाधिप स्वरूपकी करनी है अपना स्वधर्म मानकर। इस ब्रजाधिपकी सेवा गोपीजनोंकी भावना अनुसार करनी है जिसका उल्लेख “गोपिकाः गुरवः प्रोक्ताः” कह कर संन्यासनिर्णय ग्रन्थमें किया है। भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें भक्तिका ही अर्थ सेवा बताकर उस सेवाकी फलावस्थापर्यन्त पहुंचनेके लिये अपने ही घरमें अव्यावृत्त हो कर स्वधर्मका यथाशक्ति पालन करते हुए पूजाके द्वारा एवं श्रवण-कीर्तन-चिन्तनकी प्रणालीसे कृष्णकी सेवाका कल्प बताया है।

श्रीमद्भागवत एवं सुबोधिनीजीमें इस सेवाका स्वरूप यों समझाया है— “जिसका चित्त भगवान्में ही लग गया है ऐसे मनुष्यकी वेदविहित कर्मोंमें लगी हुई तथा विषयोंका ज्ञान करानेवाली इन्द्रियोंकी जो सत्त्वमूर्ति श्रीहरिके प्रति स्वाभाविकी प्रवृत्ति है यही भगवान्की अहैतुकी भक्ति है। यह मुक्तिसे भी बढ़ कर है क्योंकि जठराग्नि जिस प्रकार खाये हुए अन्नको पचाती है उसी प्रकार यह भक्ति कर्मजनित लिङ्गशरीरको तत्काल भस्म कर देती है।” (भाग.पुरा. ३।२५।३२-३३)

इस श्लोककी सुबोधिनीमें बता रहे हैं कि “एकाग्रमन पुरुषकी सभी इन्द्रियोंकी सत्त्वमूर्ति भगवान्में जो स्वाभाविक वृत्ति है वह भक्ति कही जाती है। जो दैवी सम्पदमें उत्पन्न हुए हैं उनकी इन्द्रिय देवरूप ही होती है और आसुरीरूप भी होती है। एक ही गोलोकमें दोनों ही रहेते हैं। जो इन्द्रिय अलौकिक वेदोक्त कर्म एवं ज्ञानको उत्पन्न करती हैं वे देवरूप इन्द्रिय हैं और जो निषिद्ध एवं लौकिकमें अनुराग करती हैं जिस कारण वे हठात् विहितकर्मोंमें प्रवृत्त होती हुई भी ठीक तरहसे पुष्ट नहीं होती हैं वे आसुरी इन्द्रिय हैं। उनमें भी भक्ति/सेवा दैव इन्द्रिय से होती है आसुरी इन्द्रियोंसे नहीं होती। चक्षु आदि इन्द्रियां लोकमें केवल दर्शनादि मात्र ही कर्म करती हैं, कार्य तो उनके वैदिक ही होते हैं। भाग्यसे वैसी इन्द्रियां जिनकी होती है उन्हींको भक्ति होती है। और जिनकी इन्द्रियां कर्मयोग ज्ञानादि अनेक रूपवाले वैदिककर्मोंमें अपनी पूर्व वासनाके अभ्याससे प्रवृत्त होती हैं उनकी भी यही फलावस्था होती है, तो शुद्ध सत्त्वरूप भगवान्के स्वरूपमें ही स्वभावसे प्रवृत्त

होती है. वास्तवमें तो इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति गुणातीत भगवान्में होती है. यह भगवत् शास्त्रमें बताया है. भगवान्की सारी सामग्री निर्गुण है... मन भी दैव-आसुरी भेदसे दो प्रकारका होता है. उसमें आसुरीमन संकल्प विकल्पात्मक नाना प्रकारके भावोंसे युक्त होता है. जबकि दैवमन एक स्वभाववाला और मनन करनेवाला ही होता है. इन्द्रियां भले ही दैव अथवा आसुरी हो. उनमें आसुर कार्य होना अच्छा नहीं है. परन्तु मन तो दैवके सिवाय दूसरा नहीं होना चाहिये. वैसा होनेसे इन्द्रियोंकी पूर्वोक्तप्रवृत्ति नहीं होगी. इसलिये जिसका मन एकस्वभावापन्न होगा उसीकी भक्ति होगी. अन्योके द्वारा (जिनकी इन्द्रियां और मन दैव नहीं है)कि गई भगवान्में खंडशः अक्षयवृत्ति, जब अनेक जन्मोंमें पुष्ट हो जाती है तब अन्तिम जन्ममें भक्तिरूप वृत्तिको उत्पन्न करती है. इस अन्तिम जन्ममें यह भक्तिरूप वृत्ति अनिमित्त होती है. वह भक्ति भागवती होती है अर्थात् साक्षात् भगवान् ही उस भक्तिके विषय होते हैं”. इस वृत्तिका भागवतमें भी (भाग.पुरा.११।१२।१२)निरूपण किया है कि “उन ब्रजभक्त गोपीजनों, जिनकी बुद्धि मेरे में ही आसक्त हो गई है उन्हे भगवान्में प्रेमके कारण खुदके देह गेह या अन्य पदार्थों का ज्ञान नहीं रह जाता था. जिनकी चित्तवृत्ति भगवान्में ही लग गई है अर्थात् एकतान हो गई है, वे खुदके देहको तथा पति, पुत्र इत्यादिकी जो अहं-ममताके स्थान है उन सभीमें एवं यह लोक तथा परलोक का ज्ञान भी न था. क्योंकि ज्ञानका साधन तो मन है, वह तो भगवान्में ही आसक्त था. इस तरहका मन भगवान्से अतिरिक्त अन्यपदार्थको ग्रहण नहीं करता है. जहां देखता है वहां भगवत् साक्षात्कार ही होता है. यही सेवा उत्तम मानी गई है.” जिसका उल्लेख यहां सेवाफल ग्रन्थमें ‘सेवा’ शब्दसे किया है.

### सेवामें प्राप्त होते फलका निरूपण :

श्रीआचार्यचरण सुबोधिनी (३।२५।३९) आज्ञा कर रहे हैं कि यहां पर सायुज्य, वैकुण्ठ और जीवन्मुक्ति इन तीनों प्रकारके भेदोंका निरूपण किया गया. इन फलका ही उल्लेख श्रीआचार्यचरण सेवाफल ग्रन्थमें कर रहे हैं. सेवाफल ग्रन्थमें जिसको अलौकिक सामर्थ्य बताया है उसीको सुबोधिनीमें जीवन्मुक्ति कहा है. सेवाफल ग्रन्थमें कहा फल वैकुण्ठादिमें सेवोपयोगीदेह और सुबोधिनीमें बताया फल वैकुण्ठलोक प्राप्ति दोनों एकरूप है. दोनों ही ग्रन्थमें सायुज्यफल तो समान ही है. सुबोधिनीजीके (३।२५।३४-३७) अनुसार इन तीन फलोंका निरूपण कर लेनेसे सेवाफल ग्रन्थमें निर्दिष्ट फलत्रयका भी स्वरूप निर्धारण सुकर हो जाता है. श्रीभागवतमें (२।१०।६-७) निरोधका प्रयोजन मुक्ति और आश्रयभावापत्तिको बताया है. परमात्माका खुदकी सर्व शक्तियोंके द्वारा यहां भूतल पर प्रकट होना निरोध है. अन्यथाभावका त्याग कर खुदके वास्तविक स्वरूपमें स्थित

होना वह मुक्ति है. इस जगतकी उत्पत्ति स्थिति और लय जिस तत्त्वमें प्रकाशित होता है वह परब्रह्म ही आश्रय है. इस तरह भागवतार्थ निबन्ध (१०।१५-१६)में भी कहा है कि पूर्वमें (नवम स्कंधमें)कहे हुए भक्त यहां दशमस्कंधमें कहे गये हैं, जिनका निरोध मोक्षके लिये हुआ है. (भाग.नि.१२।१७) कृष्णमें निरोध होनेसे भक्त मुक्त हो जाते हैं. और उनके आश्रय हरि ही है ऐसे मुक्तोका वर्णन है. इस तरह भागवतमें निरोधोत्तर दो अवस्था (१)मुक्ति (२)आश्रयभावापत्ति स्वीकारी गई है. षोडशग्रन्थमें जबकि निरोधलक्षण ग्रन्थके बाद आते सेवाफल ग्रन्थमें सेवामें तीन फल (१)अलौकिक सामर्थ्य (२)सायुज्य (३)वैकुण्ठादिषुसेवोपयोगीदेह स्वीकारे गए हैं. इनमें 'सायुज्य' और 'मुक्ति' समानार्थी पद हैं. इसी तरह 'वैकुण्ठादिषु सेवोपयोगी देह' और 'आश्रयभावापत्ति' भी एकरूप ही हैं.

षोडशग्रन्थ परिचयमें बताया है कि भागवतमें दशमस्कंधमें तामस्-राजस् एवं सात्त्विक प्रकारके भक्तोंके भक्तिकी प्रेमासक्ति एवं व्यसनदशाका वर्णन क्रमशः प्रमाण प्रमेय और साधन रूपमें हुआ है. साधनके बाद तीनो ही प्रकारके भक्तोंकी फलावस्थाका वर्णन भी किया गया है. निरोधकी यही फलावस्था सेवाफलमें अलौकिक सामर्थ्यके रूपमें वर्णित है. इसे 'व्यसनोत्तर कृतार्थता' 'सर्वात्मभाव' 'मानसी सेवा' अथवा 'फलनिरोध' कहो बात एक ही बनती है. इस भूतलपर भगवत्सेवा करते हुए सकल इन्द्रियोंसे भगवदनुभूतिके रूपमें अलौकिक सामर्थ्य प्रकट होता है. यही पुष्टिमार्गीय जीवन्मुक्ति है.

भागवतमें दशमस्कन्धका वर्ण्यविषय निरोध है. एकादशस्कन्धका वर्ण्यविषय मुक्ति है. द्वादशस्कन्धका वर्ण्यविषय आश्रय ब्रह्मभावापत्ति है. अलौकिकसामर्थ्य फलनिरोध है. इस भूतलपर घटित होनेवाली भक्तोंकी जीवन्मुक्तिकी तरह जो दशमस्कन्धके भक्तोंके जैसी भगवदनुभूतिका एक अलौकिक प्रकार है. सायुज्य परमात्मामें लय है, विदेहमुक्तिकी तरह जो एकादशस्कन्धका वर्ण्यविषय है. वैकुण्ठादिषु सेवोपयोगीदेह आश्रयब्रह्मभावापत्ति है, वैकुण्ठादि दिव्य भगवद् धाममें दिव्यदेह प्राप्त करके पुनः भगवद्भजनके सुअवसरकी प्राप्ति है. जो भागवतके द्वादशस्कन्धका वर्ण्यविषय है.

पुष्टिप्रवाहमर्यादा ग्रन्थमें (का-१७) श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते हैं कि पुष्टिमार्गमें फल स्वयं भगवान् है. वे गुण या स्वरूप के भेदसे जैसेभी इस भूतल पर प्रकट हो जाये उन्हें फल माना जाता है. स्वयं स्वरूपात्मना इस भूतल पर भगवान्का भक्तोके बीच प्रकट होना पुष्टिमार्गीय फल है. इस तरह गुणगानकी प्रक्रियाद्वारा भी भक्तके हृदयमें

भगवान्का प्रकट होना फल ही है. दोनो ही तरहके भगवत्प्राकट्यके कारण भक्त प्रपञ्चको भूलकर भगवदासक्त हो पाता है. जब इस भूतलपर यह भगवदनुभव नहीं होता तो इस देहके छूटनेके बाद भगवान्में सायुज्यरूप मोक्ष मिलेगा अथवा वैकुण्ठादि लोकमें सेवोपयोगी देह मिलेगा. ये दोनो ही इस भूतलपर घटित होनेवाली अनुभूति नहीं है. अतः पुष्टिप्रवाहमर्यादा ग्रन्थमें परिभाषित पुष्टिमागीय फलानुभूतिकी तुलनामें ये कुछ गौण अनुभूतियां हैं. अतएव इन अनुभवोके सामर्थ्यको 'अलौकिक' नहीं कहा गया है क्योंकि उनके लौकिक होनेका अनुभव होनेका प्रश्न ही नहीं उठता. फलनिरोध इस भूतलपर होनेवाली अनुभूति है मानसी सेवाकी तरह. अतः इसके अनुभवको अलौकिक सामर्थ्य कहा गया है. अन्यथा भूतलपर घटित होती अनुभूतिको कोई लौकिक समझ सकता है. वास्तविकता जबकी यह है कि वह इस लोकमें घटित होने पर भी अलौकिक घटना ही है. सायुज्यमुक्तिमें जीवात्मा परमात्मामें लीन हो जाती है. परन्तु यह लय अक्षरसायुज्यसे तो अच्छा ही है क्योंकि यहां भजनानन्दका अवसर प्राप्त होता रहेता है. ये कोई आत्यान्तिक लय नहीं है. फिरभी भक्तके हृदयमें ऐसे मनोरथ नहीं हाने पर भी चल नहीं सकते क्योंकि भगवान् स्वयं कहते हैं कि वह “अनिच्छितो मे गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते” (भाग.पुरा.३।२५।३६). इसलिये वेणुगीतकी सुबोधिनीमें श्रीमहाप्रभुने निरोध और मुक्तिकी तुलना नेत्रवान व्यक्तिको किसी सुरम्य दर्शनीय स्थल दिखाने और उसे निबिड अन्धकारवाले कूपमें बन्दकर देनेसे की है.

**“इदम् एव इन्द्रियवतां फलं मोक्षोऽपि नान्यथा  
यथान्धिकारे नियता स्थितिः नाक्षणोः फलं भवेत्  
एवं मोक्षोऽपि इन्द्रियादियुक्तानां सर्वथा नहि”.**

इसी तरह आश्रयभावापत्तिके भी अनेक प्रकार वर्णित हुए हैं उनमें वैकुण्ठादि लोकमें नूतन सच्चिदानन्दात्मक दिव्यदेह, यदि सेवोपयोगी मिलता हो तो ऐसे दिव्य देह इन्द्रियोंसे भगवदासक्ति तो सम्भव है. अतः इस फलको भक्त भी स्वीकार सकता है. परन्तु भक्तको तात्कालिक आवश्यकता है इसी भूतलपर इन देहेन्द्रियोंसे अपने प्रियतम परमात्माके अनुभूतिकी है. यह अनुभूति सम्भव है जीवके प्रपञ्च विस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिसे सम्पन्न होने पर अन्यथा श्रीहरि जिन्हे विनिर्मुक्त करते हैं अर्थात् जिन्हे निरुद्ध नहीं करते वे भवसागरमें मग्न हो जाते हैं. यहां इस भूतलपर भगवान्की आन्तर एवं बाह्य संयोगानुभूतिके कारण अथवा सेवा और कथा के कारण अहर्निश मोद-प्रमोदका अनुभव तो भगवान्के द्वारा निरुद्धजीव ही कर पाते हैं. (नि.ल.-११).

### सुबोधिनीजीके अनुसार तीनो फलोंके स्वरूपका निरूपण :

भागवतके (३।२५।३४-३६) श्लोकोमें भक्तोंके ऐहिक लौकिक भोगका वर्णन किया गया है. यहां भक्तोंको लौकिक भोगकी इच्छाका अभाव ही बताया है. सेवाफल ग्रन्थमें भी लौकिक भोगको सेवामें प्रतिबन्धरूप माननेके कारण त्याज्य ही माना है. भक्तोंको सद्योमुक्ति भिन्नफल प्राप्त होनेमें इन इच्छाओंका अभाव ही बतलाया है. भाग.पुरा.३।२५।३४ की कारिकामें बताया है कि भक्तोंकी तीन अवस्था होती है. प्रथम साधनावस्था द्वितीय फलावस्था और तृतीय सायुज्य. अतः उनकी इन्द्रियोंका देहसे उत्क्रमणकी प्राप्ति नहीं कही गई है. पहले दो श्लोकसे (भाग.पुरा.३।२५।३४-३५) अलौकिक सामर्थ्यरूप फलका निरूपण किया है. पहले भक्तोंकी साधनावस्था कहते है.

“नैकात्मना मे स्पृहयन्ति केचिन् मत्पादसेवाभिरता मदीहाः।

येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि॥”

(भाग.पुरा.३।२५।३४)

अर्थ:कितने ही भक्त मेरी चरणसेवामें आसक्त होते हैं और मेरी सेवामें तत्पर रहते हैं. ऐसे भक्त आपसमें मिलकर मेरे पराक्रमोकी चर्चा करते हैं. मेरे गुणगान सर्वस्तुति करते हैं. सुबोधिनीजीमें आज्ञा कर रहे हैं कि “यह भक्त आजीवन फलरूप भक्ति करते रहते हैं. फलरूपा भक्ति तभी होती है जब भजनसे उनमें बहुधा रस अभिव्यक्त होता है, जिसकी पहचान है कि वे भक्त भगवान्के साथ एकात्मता रूप सायुज्य फलको नहीं चाहते हैं ऐसे लोग भक्तोंमें विरले ही होते हैं. फिर सायुज्यकी प्रार्थना करना तो दूर रहा. ऐसे लोगोकी कायिक वाचिक मानसिक वृत्ति स्वभावसे हि भगवान्में होती है. सब और हट कर भगवत्कार्य करना एवं भगवान्के चरणोंमें ही उनकी मनोवृत्ति रहती है. भगवान्से सम्बन्ध रखनेवाली ही उनकी चेष्टा है. ऐसी उनकी कायिकी वृत्ति है. ये सब भगवदीय भगवान्में आसक्ति करके भगवान्की लीलाओंका वर्णन करते हैं. यह उनकी वाचनिकी वृत्ति है. श्रीआचार्यचरण दूसरी कारिकामें आज्ञा कर रहे हैं कि भक्त परस्पर आपसमें मिलकर भगवान्की दिव्य-अमानुषिक लीलाओंका वर्णन करते हैं. एवं अपने कार्यके निर्धारणमें और विचारमें भी भगवान्की लीलाओंको भी प्रमाणरूप मानते हैं अन्यको नहीं”.

उन भक्तोंकी फलावस्थाकों कहते हैं

“पश्यन्ति ते मे रुचिरावतंस प्रसन्न-वक्त्रारुणलोचनानि।

रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति”

(भाग.पुरा.३।२५।३५)

अर्थ : वे साधुपुरुष कर्णाभरण और अरुणनयनसे युक्त प्रसन्न मुखवाले वरदायक दिव्यरूपोंके दर्शन करते हैं. तथा इस शरीरसे भगवान्‌के साथ सप्रेम सम्भाषण भी करते हैं. सुबोधिनीजीमें श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते हैं कि वे साधुपुरुष भगवान्‌के भक्तोंको भगवान्‌का साक्षात्कार निरन्तर होता रहेता है. जैसे लोग अपने मित्रोंके साथ खेलते हैं आपसमें बातचीत करते हैं उसी तरह ये भक्त उन भगवान्‌के दिव्यरूपोंका दर्शन करते हैं. एवं वर्तमान शरीरसे भी इस लोकमें भगवान्‌के साथ प्रेमभरी बातचीत करते हैं. (इसीको अलौकिक भोगभी कहते हैं जिसे सेवाफल ग्रन्थमें त्याज्य नहीं बल्कि फलरूप ही माना है) इसके बाद उन भक्तोंका सायुज्य बताते हैं.

**“तैः दर्शनीयावयवैरुदारविलासहासेक्षितवामसुकैः।**

**हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्तिर् अनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते”**

(भाग.पुरा.३।२५।३६)

श्लोकार्थः दर्शनीय अङ्गप्रत्यङ्ग उदार हास-विलास मनोहर चितवन और मधुरवाणीसे युक्त भगवान्‌के उन सुंदररूपोंमें उन भक्तोंके मन और इन्द्रियां फंस जाती है. एसी भगवान्‌की भक्ति न चाहने पर भी उन्हें परम पदकी प्राप्ति कराती है.

सुबोधिनीजीमें आप आज्ञा करते हैं कि भगवान्‌के रूप एवं लीला सभीके लिये सब पुरुषार्थोंको देनेवाली है इसलिये दोनोंमें ही भगवत्त्व है. भगवान्‌का रूप अनन्त-आनन्दरूप हैं इसलिये भक्तोंको किसीकी इच्छा ही नहीं होती और वह रूप सभी इन्द्रियोंका सुखरूप है. अतः अन्तःकरण एवं इन्द्रियोंको वह रूप अपनी और आकर्षित कर लेता है. वे भगवान्‌ जब अपने धामको पधारते हैं तो उन भक्तोंको भी अपने साथ ले जाते हैं, तब वे भक्त तो इन्द्रियां और मन के साथ ले जाते हैं. भक्ति जो अवश्य ही फलदायिनी होती है वह भक्ति भक्तोंके लिये कालादिसे भी अगभ्य अतिसूक्ष्म भगवत्प्राप्तिरूप फलको देती है.

यहां सायुज्यरूप फलके रूढार्थ और यौगिकार्थ ऐसे दोनों तरहसे अर्थ ले सकते हैं. भगवान्‌में लय हो जाना यह शास्त्रीरतसे सायुज्य फलका रूढ अर्थ है. जबकी यौगिक अर्थ है “सह युनक्ति इति सयुक्, सयुजो भावः सायुज्यम्” इस अर्थके अनुसार किसीके साथ शारीरिक या मानसिक रूपसे जुड जानेको भी ‘सायुज्य’ कहा गया हैं. इस अर्थमें सदा उसमें प्रवेशरूप लय हो जाना, ऐसा अर्थ लेना जरूरी नहीं है. यौगिकार्थरूप सायुज्यमें केवल आत्मना भगवान्‌के साथ न जुडकर देह एवं सर्व इन्द्रियोंसे प्रभुमें जुडजाना ऐसा अर्थ लिया जा सकता हैं. इस अर्थमें सालोक्यादिरूप फलको भी समाविष्ट

कर सकते हैं. इसीको अब आगे कह रहे हैं. इस तरह सायुज्यरूप फल कहकर सालोक्यादि रूप फल कहते हैं. (इसीको सेवाफल ग्रन्थमें वैकुण्ठादि लोकोमें सेवोपयोगी देहकी प्राप्तिरूप फल बताया है.)

**अथो विभूतिं मम मायाविनस्तामैश्वर्यमष्टाङ्गमनुप्रविश्टाम्।**

**श्रियं भागवतीं वास्पृहयन्ति भद्रां परस्य मे तेऽऽनुवते तु लोके॥**

(भाग.पुरा. ३।२५।३७)

अर्थ—मध्यम भक्ति होनेपर मायापतिरूप भगवान्की पुत्रधनादिरूपा अथवा स्वर्गादिरूपा विभूतिको जिसके आठ अङ्ग है ऐसे ऐश्वर्यको और श्री तथा भगवत्कृत् सम्पत्तिको एवं मोक्ष तककी सम्पत्तिको भी भगवान्के भक्त नहीं चाहते वे व्यापि वैकुण्ठमें इन विभूति आदि सभीको स्वयं ही प्राप्त कर लेते हैं.

यहां सुबोधिनीजीमें निरूपण किया है कि वह भक्ति यदि मध्यम है तो यहां इस श्लोकसे भिन्न क्रम बतानेके लिये ‘अथ’ पद दिया है. अर्थात् जिन भक्तोंको अलौकिक सामर्थ्यका दान नहीं हुआ है ऐसे भक्त वर्तमान शरीरमें ही भगवत्साक्षात्कार नहीं कर सकते. उनकी मध्यम भक्तिका फल है, वैकुण्ठादि लोकोमें नूतन सेवोपयोगी देहकी प्राप्ति जिससे कि वे सभी अलौकिक भोग प्राप्त कर सकें. यह मध्यमा भक्ति भी फलतो अवश्य देती है. यदि इन भक्तोंके यहां कहे हुए भोगरूप फल (ऐहिक—पारलौकिक मोक्षरूप फल) रुचिकर नहीं होते हैं तो वैकुण्ठमें ही उनके लिये वह भक्ति उन भोगोंको दान करती है. यह लोक व्यापिवैकुण्ठ होनेसे यह कालसे पर है. इसबातको स्पष्ट करनेके लिये आगेका श्लोक कह रहे हैं. यहां सुबोधिनीजीमें शंका उठाइ है कि वैकुण्ठमें सब प्रकारके भोगोकी प्राप्ति होने पर भी उनको कालका भय लगा ही रहता है. “जब पुण्य पूरा हुआ और मनुष्यलोककी प्राप्ति हो जायेगी” तब अपने स्थानके त्यागसे और वैकुण्ठमें विषयोंके अनुभवसे क्या कल होगा.

**न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः।**

**येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम्॥**

(भाग.पुरा. ३।२५।३८)

अर्थ—जिनके केवल भगवान् ही प्रिय आत्मा पुत्र मित्र गुरु सुहृद देव इष्ट हैं ऐसे भगवान्के आश्रयमें रहनेवाले भक्तोंके सर्वदोष वर्जित वैकुण्ठमें कालचक्र उन्हें ग्रसित नहीं कर सकता है.

सुबोधिनीमें निरूपण हुआ है कि कालका विषय जहां होता है वहीं उसकी

प्रवृत्ति होती हैं। कालके आठ विषय हैं। (१)विषय (२)देह (३)पुत्र (४)मित्र (५)गुरु (६)सम्बन्धी (७)इष्टदेवता (८)कामना। इस व्यापि वैकुण्ठमें ये आठों ही नहीं है तब काल वहां क्या करता है। क्योंकि इन आठोंका कार्य केवल भगवान् ही करते हैं। भगवान् ही इन आठों प्रकारसे उन-उन रूपोंमें हैं। भगवान् ही वहां सबकुछ हैं और भगवान्के उपर कालका अधिकार है नहीं। अतः भगवान्के भक्तोंका विनाश नहीं होता।

यहां सेवाफल ग्रन्थमें भी कहा है कि “न कालोत्र नियामकः” अर्थात् भगवान् ही जब फल हों और वे यदि काल-कर्म-कर्ता-मन्त्र-द्रव्य-देश-स्वभावादि हेतुओं अथवा साधनोंके अधीन न होतो पुष्टिमार्गीय फलात्मिका सेवा अथवा अधिकारात्मिका सेवा (सायुज्य एवं वैकुण्ठादि लोकोमें सेवोपयोगी देह) का नियामक काल कैसे हो पायेगा ?

### विभिन्न टीकाकारोंके अनुसार तीनों फलोंके स्वरूपका निरूपण :

इस सेवाफल ग्रन्थमें सेवाफलके रूपमें ‘अलौकिक सामर्थ्य, सायुज्य तथा वैकुण्ठादिषु सेवोपयोगी देह’ की अनेक व्याख्याएं विभिन्न टीकाकारोंद्वारा की गयी है।

#### श्रीकल्याणरायजी:

अलौकिक सामर्थ्य, सायुज्य और सेवोपयोगी देह क्रमशः उत्तम मध्यम तथा साधारण कोटिके फल है। मुख्य ब्रजभक्तोंकी तरह भगवान्के साथ गानादिका सामर्थ्य जो दशमस्कन्ध तामसफलप्रकरणमें रासादि लीलाके रूपमें वर्णित हुआ है यह अलौकिक सामर्थ्य रूप उत्तम फल है। सायुज्यका अर्थ है ‘सह युनक्ति इति सयुक्, सयुजो भावः सायुज्यम्’ अर्थात् उनके साथ जुड़जाना, ब्रजस्थ गोपबालकोंकी तरह यह सायुज्य मध्यम फल है। ‘वैकुण्ठादि लोकमें सेवोपयोगी देह’ यह साधारण फल है। उद्धवादि भक्तोंकी तरह पुष्टिभक्तिफलका दर्शन तो कर सकते हैं किन्तु उस फलको वे जी नहीं पाते हैं।

#### चाचा श्रीगोपेशजी:

अलौकिक सामर्थ्य और सायुज्य पुष्टिभक्तिके फल हैं तथा सेवोपयोगी देह मर्यादाभक्तिका फल है।

अलौकिक सामर्थ्य: यह अलौकिक भजनके आनन्द अनुभवकी योग्यता है। जब जीव अलौकिक भजनका अलौकिकरूपमें भजन कर पाते हैं तब वह इस अलौकिक भजनके आनन्दका अनुभव भी कर पाता है। जैसे भगवान् जीवके साथ बातचीत करने



लग जाय, यह फल पुष्टि-पुष्टिके जीवको प्राप्त होगा।

सायुज्यः यह फल पुष्टि-मर्यादाके जीवको मिलेगा। यह पुष्टिपुरुषोत्तममें लयरूप सायुज्य है। यह ज्ञानमार्गीय सायुज्य फलसे अलग है क्योंकि ज्ञानमार्गीय सायुज्यमें अक्षरस्वरूपमें लय होता है। यहां पुष्टिमार्गमें पुरुषोत्तममें सायुज्य होनेसे, यह लय सार्वदिक नहीं है। ब्रजमें जैसे अन्तर्गृहगता गोपीजनोको यह फल मिला था।

वैकुण्ठादिलोकमें सेवोपयोगी देहकी प्राप्तिः सेवोपयोगी देहकी प्राप्ति रमावैकुण्ठमें होती है। व्यापि वैकुण्ठमें नहीं क्योंकि यह मर्यादाभक्तिका फल है।

**देवकीनन्दनजी** (पंचम लालजी श्रीरधुनाथलालजीके पुत्र):

भक्तिमार्गमें पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा भेदसे जीवका भगवदंगीकार त्रिविध है। इस लिये उनके अधिकार भेदके कारण उनके द्वारा कि जाती सेवा त्रिविध है। और उस सेवाके फल भी त्रिविध है। अलौकिक सामर्थ्यः ब्रजस्थ गोपीजनोको सर्वात्मभावसे जिस भजनानन्दका अनुभव हुआ उसीको अलौकिक सामर्थ्य कहा जा रहा है। यह पुष्टि सेवाका फल है। सायुज्यः पूर्वोक्त टीकाकारके अनुसार ही यहां भी सायुज्यका अर्थ पुरुषोत्तममें ही सायुज्य जानना है। सेवोपयोगी देहः यहां भी पूर्वोक्त टीकानुसार रमावैकुण्ठमें सेवोपयोगी देहकी प्राप्तिरूप फल माना है।

**श्रीहरिरायजीः**

अलौकिक सामर्थ्यः यहां आप तनु-नवत्व और नव-तनुत्व जैसे दो भेद बता रहे हैं। तनु-नवत्वका अर्थ है, इस विद्यमान देहमें ही नविनता प्रकट हो जाना। जबकी नव-तनुत्वका अर्थ है विद्यमान देहपातके बाद नयी देहकी प्राप्ति। यमुनाष्टक ग्रन्थमें श्रीआचार्यचरण आज्ञा कर रहे हैं कि श्रीयमुनाजीकी कृपासे जीवको इस तनु-नवत्वकी प्राप्ति होती है। तनु-नवत्वकी प्राप्तिके बाद ही अलौकिक सामर्थ्य जीवमें प्रकट होता है। इस अलौकिक सामर्थ्यके कारण जीवके हृदयमें सर्वलीला विशिष्ट प्रभुका स्वरूप प्रकट होता है वह विप्रयोग आनन्दात्मक केवल धर्मी स्वरूप है। यही आनन्द और रसरूप स्वरूप है। आनन्द और रस पर्यायवाची शब्द माने हैं। यह केवल प्रमेयबलसे ही प्राप्त हो सकता है। भागवतमें भ्रमरगीतमें “सर्वात्मभावोधिकृतो भवतीनाम् अधोक्षजे” (भाग.पुरा.१०।४।१२७) वचनमें विप्रयोग कालीन सर्वात्मभावका वर्णन है।

सायुज्यः यह मध्यम फल है। जिनको तनु-नवत्वकी प्राप्ति नहीं होती है उन्हें नव-तनुत्व प्राप्त होकर प्रभुका सार्वदिक संयोग रसानुभावकी प्राप्ति होती है। विप्रयोगका अनुभव इन जीवोंको नहीं होता है। यहां जो सहयोगमें प्रभुका स्वरूप प्रकट होता है वह

धर्मसहित धर्मरूप माना हैं क्योंकि बहिः प्रकट परमात्माका रूप भक्तके स्नेहमय स्थायीभावका ही आलंबनविभावके रूपमें हृदयके बहार प्राकट्य है।

सेवोपयोगी देहकी वैकुण्ठादि लोकमें प्राप्ति: व्यापिवैकुण्ठमें ही सेवोपयोगी देहकी प्राप्ति होती है। परन्तु इन जीवोंका अधिकार साधारण होनेसे उन्हें द्वितीयफलकी तरह प्रभुके साक्षात् संयोग रसानुभवकी प्राप्ति नहीं होती है। व्यापिवैकुण्ठमें पक्षी वृक्ष इत्यादि रूपकी प्राप्ति जीवोंमें होती है। उस रूपमें वह वहां प्रकट हुई भगवल्लीलाका दर्शन एवं चिन्तन कर पाता है।

### श्रीवल्लभजी:

अलौकिक सामर्थ्य: यहां आपने वेणुगीतकी सुबोधिनीमें वर्णित सकल इन्द्रियोंका भगवान्में विनियोगरूप सर्वात्मभावका सन्दर्भ लिया है। यहां सुबोधिनीजीकी कारिकाओ में संयोग कालीन सर्वात्मभावका वर्णन आया है। “वाणीसे भगवान्के साथ संलाप, नयनोंसे दर्शन, बाहुओंसे भगवान्का आलिंगन, हाथोंसे सेवा, त्वचासे स्पर्श, रसना से अधरामृतपान, कानोंसे वेणुकूजनका श्रवण, नासिकासे भगवद्गन्धका आध्राण, चरणोंसे भगवान्के निकट गमन, अन्तःकरणसे भगवत्स्वरूपको भजना, पायूपस्थ इन्द्रियोंसे रोमोद्गम और भोगको वेणुगीतमें इन्द्रियवानोंका परम फल माना गया है। सकल इन्द्रियोंसे भागवतमें ऐसे विनियोगकी तुलनामें मुक्ति तो भक्ततोंको अपनी सर्वविध सम्पूर्ण निष्फलता ही प्रतीत हाती है। जैसे किसी नयनवान्को सदा-सर्वदाके लिये अन्धकूपमें धकेल देना, या उसे नयनोंसे वञ्चित कर देना। दोनोंमें कोई विशेष अन्तर नहीं होता है। जागतिक विषयोंमें अनुरागके नष्ट होने पर तथा सर्वात्मभाव सम्पन्न होने पर भक्तोंको सकल इन्द्रियद्वारा भगवत्स्वरूपानन्दकी अनुभूति मिलती है”। (वेणुगीत सुबो.कारिका) यह संयोगकालीन सर्वात्मभावका भक्तको अनुभव होजानेके बाद उसे भक्तिके उत्तरदल विप्रयोगका भी अनुभव होता है। जिसका वर्णन भ्रमरगीतमें विप्रयोगकालीन सर्वात्मभावके रूपमें हुआ है। इसीको यहां टीकाकार अलौकिक सामर्थ्यके रूपमें बता रहे हैं।

सायुज्य : इस फलके अन्तर्गत भक्त भगवान्से जुडकर उनके साथ अलौकिकभोग प्राप्त करता है। परन्तु उपरोक्त सर्वात्मभावके अभावके कारण सर्वेन्द्रियोंके द्वारा अनुभव नहीं हो पाता है। संयोगका अनुभव यहां होता ही है।

वैकुण्ठादिलोकमें सेवोपयोगी देह : व्यापिवैकुण्ठ एवं आदि पदसे श्रीमथुरा वृन्दावन इत्यादिक स्थलोंमें भक्तको लीलासृष्टिमें पक्षी पशु वृक्ष आदिके देहकी प्राप्ति होती है। भगवदिच्छासे जीवके अधिकारानुसार प्राप्त देह आनन्दात्मक होता है।

### श्रीपुरुषोत्तमजी:

अलौकिक सामर्थ्य: 'प्रदीपवदावेश' ब्रह्मसूत्रका सन्दर्भ देते हुए आप आज्ञा करे हैं कि भगवान्का आवेश जब इस देहमें होता है तब वह रसात्मक भगवान्के पूर्णस्वरूपके आनन्दका अनुभव कर सकता है. इसीको अलौकिक सामर्थ्य कहा है.

सायुज्य: भगवान्के पुरुषोत्तम स्वरूपमें लय होना ही सायुज्यफल है.

सेवोपयोगी देहकी प्राप्ति: व्यापिवैकुण्ठ नित्यलीलामें आनन्दात्मक देहकी प्राप्ति.

### श्रीलालुभट्टजी:

अलौकिक सामर्थ्य: श्रीवल्लभजीने जो सर्वेन्द्रियोंद्वारा भगवत्स्वरूपानन्दके अनुभवका सामर्थ्य लिया है यहि अलौकिक सामर्थ्य इनको भी मान्य है.

सायुज्य: जिन्हे भगवान्में मोक्षदाताके रूपमें प्रेम होता है उन्हे भगवान्में लयरूप सायुज्यफलकी प्राप्ति होती है.

सेवोपयोगी देहकी प्राप्ति: यह भी मर्यादाभक्तिका फल है. जिनको देहभाव दृढ है उन्हे सेवोपयोगी अलौकिक अप्राकृत देहकी प्राप्ति होती है. परन्तु प्रथम फलकी तरह भगवान्का सर्वेन्द्रियोंद्वारा अनुभव नहीं होता है परन्तु केवल सेवामात्रके योग्य देहकी प्राप्ति होती है. यहां आप व्यापिवैकुण्ठमें ही अप्राकृतदेहकी प्राप्ति कह रहे हैं. व्यापिवैकुण्ठसे अन्य वैकुण्ठको नहीं.

### श्रीजयगोपालभट्ट:

अलौकिक सामर्थ्य: सेवाका यह उत्तमफल नहीं हो कर प्रथमफल है. जब जीवको तीव्रतम विप्रयोगकी अनुभूति होती तब भी उस जीवका देहपात नहीं होता, तो उसे अलौकिक सामर्थ्यकी प्राप्ति हुई ऐसा मानना चाहिये. यह विप्रयोगात्मकरूप अलौकिक सामर्थ्य अवान्तरफल है. क्योंकि जब विप्रयोग होने पर भी जीवके देहका पात नहीं होगा तब उसे आगे चल कर संयोगानुभूतिरूप परमफलकी प्राप्ति हो पायेगी.

सायुज्य: सर्वात्मभावरूप भगवान्का नित्यसंयोगानुभूति सायुज्यफल है. यह उच्चतम फल है.

सेवोपयोगी देह: जिनको अलौकिक सामर्थ्यकी प्राप्ति नहीं हुई है उन्हें देहपात हो जाने पर अधिकारसिद्धिरूप वैकुण्ठमें सेवोपयोगी देहकी प्राप्ति होती है. इस फलमें भक्त सेवामात्रका अनुभव कर पाता है परन्तु संयोग फलानुभूतिकी तरह सर्व इन्द्रियोंद्वारा प्रभुके आनंदका अनुभव नहीं कर पाता है. यह फलभी मुख्य न होकर अवांतरफल ही है.

## श्रीलक्ष्मणभट्टजी:

अलौकिक सामर्थ्य : यह अति अन्तरङ्ग सेवाका फल है.

सायुज्य : अन्तरङ्ग सेवाके द्विविध सायुज्यरूप फल होते हैं. प्रथम केवल आत्मासे ही अनुभवरूप सायुज्य और दूसरा अलौकिक देहेन्द्रिय-अन्तःकरण-आत्मा-आत्माद्वारा अनुभवरूप सायुज्य.

सेवोपयोगीदेह : यह बहिरङ्गसेवाका फल है. वहां तृण लता औषधि वृक्ष पशु पक्षी आदिके रूपमें सेवोपयोगी देहकी प्राप्ति है.

## विभिन्न टीकाकारकी तीन सेवाफलकी व्याख्यामें आते मतभेद पर विचार :

सभी व्याख्याकार अपनी अपनी फलरुचिके अनुसार यहां फलकी व्याख्या कर रहे हैं. मूलमें इन फलोंमें भेद (१)मार्गभेदसे (२)अधिकारभेदसे (३)सेवाभेदसे व्याख्याकार ला रहे हैं. जिसके कारण उनमें मतभेद दिखलाई पड़ता है. भगवान्‌के द्वारा जिस प्रकारके भावका दान भक्तोंको हुआ है तदनुसार ही भक्तोंको अनेक भगवदनुभूतिके प्रकारोंमें फलरूपता प्रतीत होती है. मतभेदोंमें मुख्यतया दो प्रकारके मतभेद दिखलाई पड़ते हैं.

(१)कई व्याख्याकार सायुज्य और वैकुण्ठादिलोकमें सेवोपयोगीदेहकी प्राप्तिको पुष्टिभक्तिका फल न मानकर मर्यादाभक्तिका फल मान रहे हैं. यहां यह विचारणीय है कि क्या पुष्टिमार्गीय सेवाका (जिसका स्वरूप सेवाफल ग्रन्थके पूर्व अन्य षोडशग्रन्थमें वर्णित हुआ है) फल मर्यादाभक्तिका फल हो सकता है?

(२)परमफल संयोगको मानना चाहिए कि विप्रयोगको? इस समस्याका समाधान षोडशग्रन्थ परिचयमें श्रीश्याममनोहर काकाजी (मुंबई-किशनगढ) इस तरह दे रहे हैं. “परमफल संयोगको मानना चाहिये कि विप्रयोगको इस विवादमें अतिवादी दृष्टिकोण अपनाने पर या तो अधूरे शृंगारकी महत्ता माननी पड़ती है या शृंगार विप्रयोग और करुण विप्रयोग के मौलिक भेदकी उपेक्षा हो जाती है क्योंकि रसशास्त्रमें यह माना गया है कि विप्रयोगके बिना केवल संयोगानुभूतिमें वह चमत्कृति नहीं आती है. अतएव पूर्वागोत्तर मानोत्तर और प्रवासोत्तर संयोगमें विशेष चमत्कृतिका हेतु पूर्वाग, मान या प्रवास जनित विप्रयोगको ही माना गया है “न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते”. यहां यह अवधेय है कि रसशास्त्रीय द्रष्टिसे करुणविप्रयोग और शृंगारविप्रयोग में, एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यही है कि जहां

पुनर्मिलन निश्चित हो, वहां विप्रयोग शृंगाररसात्मक माना जाता हैं, पर जहां पुनर्मिलन असम्भव हो अथवा जन्मान्तरमें सम्भव हो तो ऐसा विप्रयोग शृंगाररस न रहकर करुणरस बन जाता हैं. “युनोरेक्तरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनरलभ्ये विमनायते यदैकस्तदा भवेत् करुणविप्रलम्भाख्यः” (साहित्यदर्पण-३।२०९) “शोकस्थायितया भिन्नो विप्रलम्भादयं रसः विप्रलम्भे रतिः स्थायी पुनःसम्भोगहेतुकः”. श्रीमहाप्रभुजी अतएव जैसे “बाह्याभावे तु आन्तरस्य व्यर्थता” का विधान करते हैं. वैसे ही “आन्तरं तु परं फलम्” भी स्वीकारते हैं. श्रीप्रभुचरणने भी अतएव स्पष्ट शब्दोंमें इसका खुलासा “स रसस्तु संयोगविप्रयोगाभ्यामेव पूर्णो भवत्यनुभूतो नैकतरेण” (अणु.४।२।१) कह कर दिया है. केवल विप्रयोग अथवा केवल संयोग को परमफल मानना भगवान्‌के ‘नटवरवपु’ रूपकी अस्वीकृति है. विप्रयोगमें भक्तके हृदयमें भगवान्‌की आन्तरअनुभूति होती है नटवत् और संयोगमें भक्तके नेत्रादि इन्द्रियोंद्वारा भगवान्‌की बाहर वरवत् अनुभूति होती है. श्रीमहाप्रभु किन्तु ‘केवल नटवत्’ या ‘केवल वरवत्’ रूपको फल न मानकर ‘नटवरवपु’के रूपमें भगवान्‌को “इदमेवेन्द्रियवतां फलं” स्वीकारते हैं.

### उपसंहारः

अतः अलौकिक सामर्थ्य सर्वात्मभावरूप होनेके कारण संयोग या वियोग दोनों अवस्थाओंमें फलनिरोधरूप है इसे ‘तनु-नवत्व’ या ‘मानसीसेवा’ या आधिदैविक सेवा’ भी कहा जा सकता है. पुष्टिभक्तके लिये यह जीवनमुक्तिके जैसी अनुभूति है. जब तीन प्रतिबन्ध-लौकिकभोग, उद्वेग एवं प्रतिबन्ध सर्वथा निवृत्त हो जाते हैं तभी यह संभव है अन्यथा नहीं. पुरुषोत्तममें लीन हो जाना ही सायुज्य है विदेहमुक्तिकी तरह. वैकुण्ठादि लोकोमें सेवोपयोगी देहकी प्राप्ति नवतनुत्व है इसे ब्रह्मभावापत्ति या आश्रयभावापत्ति भी कहा जाता है. श्रीआचार्यचरणने विष्णुदासजीको ब्रह्मसम्बन्धका दान करके उन्हे मार्गका सिद्धान्त ज्ञात करवानेके प्रयोजनसे उनकी विनती करने पर यह सेवाफल ग्रन्थ एवं सेवाफल विवरण ग्रन्थ प्रकट किया. जिससे पुष्टिमार्गिके सभी सिद्धान्त विष्णुदासजीके हृदयारूढ हुए और वे अहर्निश मानसी सेवा, श्रीआचार्यजीके ग्रन्थ, सुबोधिनीजीके भावमें मग्न रहते थे.

॥श्रीकृष्णार्पणस्तु॥



## चर्चा

### सेवाफल ग्रन्थान्तर्गत फलका निरूपण

#### श्रीयोगेश गोस्वामी

**गो. शरद् :** पत्रमें एक पंक्ति लिखी है “ ‘सेवाफल’ शब्दका समासविग्रह ... पुष्टिमार्गमें सेवासे भिन्न अन्य किसी कर्तव्य या अवस्था को पुरुषार्थ या फलरूप नहीं माना जा सकता है ”. याको विवरण अपेक्षित है. सेवासुं भिन्न कर्तव्य कौनसे हैं के जो पुष्टिमार्गमें पुरुषार्थ या फल रूप नहीं माने गये हैं ?

**गो. योगेश :** जैसे कोई जप कर रह्यो है, परिक्रमा कर रह्यो है. कोईसु सेवा नहीं निभ रही है ऐसेमें अपनी कृष्णप्रवणता बनाये रखनेके उपाय कर रह्यो है तो वाकु भी सेवाको ही एक प्रकार समझके करना चाहिये. सेवाकु छोडके कोई इन उपायनकु करे तो गलत कह्यो जायेगो. सेवाको अनुकल्प मानके करे तो ठीक है.

**गो. श्या.म. :** अनुकल्पकु मुख्यकल्प नहीं मान लेनो चाहिये. अनुकल्पकु यदि मुख्यकल्पतया प्रस्तुत करेगो तो वाकु पुष्टिमार्गमें पुरुषार्थतया मान्य नहीं होयगो.

**गो. योगेश :** अनुकल्पकु निभाके जानो तो वहीं है न, मुख्यकल्पमें !

**गो. श्या.म. :** नहीं भी पहोंच पावें अपन फिर भी अनुकल्पको अनुसरण कर तो वाही लिये रहे हैं के मुख्य कल्पको अनुसरण नहीं हो पा रह्यो है.

**गो. योगेश :** मेरी समझ ऐसी है के जाको भगवानने पुष्टिजीवतया वरण कियो है वो तो पहोंच पायेगो, जो पुष्टिजीव नहीं है वो नहीं पहोंच पायेगो. यों तो कह सकें न !

**असित शाह :** एज़ अ रूल् ये सही है पर एक्सेप्शन् भी होवे हैं. सेवा बिना भी कोईकु फलप्राप्ति हो सके है. जैसे अवतारलीलामें प्रभु प्रकट ही हो गये. सेवा तो करी नहीं पर फल मिल गयो. ऐसी आपवादिक प्रक्रिया हो सके है. आपने ‘पुष्टिमार्गमें’ लिख्यो या लिये चक्कर पड रह्यो है, ‘पुष्टिमार्ग’सुं आपकु अभिप्राय पुष्टिसम्प्रदाय होवे तो ठीक है. ‘पुष्टिमार्ग’ कहेंगे तो फिर अवतारकालीन लोगनको भी विचार प्राप्त हो जायेगो.

**गो. योगेश :** उनकुं भी सेवा तो मिली है न ! ब्रजभक्तनकुं सेवा नहीं मिली है ?

**असित शाह :** हां. पर फलकी प्राप्ति उनके केसमें सेवाके पहले भी भयी है. अपने सम्प्रदायमें फलप्राप्तिको जो रूट बताया है वा रूटसुं उनकु फल प्राप्त नहीं भयो

है. यासुं अवतारकालीन भक्तनके ऊपर ये स्टेटमेंट लागू नहीं होयगो के “पुष्टिमार्गमें सेवासे भिन्न अन्य किसी कर्तव्य या अवस्था को पुरुषार्थ या फलरूप नहीं माना जा सकता है”. सेवा नहीं कर रहे हैं फिर भी उनके सामने प्राकट्य हो गयो तो फलकी प्राप्ति तो उनकुं हो गयी. सेवा नहीं करके कुछ अन्य कर्तव्य कर रहे हैं तो भी उनके केसमें भगवान् फलरूप भये हैं.

**गो.श्या.म.:** जैसे अक्रूरजी और उद्धवजी जो सेवा नहीं करते हते तो भी उनकुं काफी ग्लोरिफाय कियो गयो है.

**गो. योगेश :** मैने षोडशग्रन्थके सन्दर्भमें ही ये विधान कियो है पर यदि ‘पुष्टिमार्ग’को सन्दर्भ भी यदि लेवें तो क्या हानि है ये सोच रह्यो हूं.

**गो.श्या.म. :** अवतारकालीन् लोगनकु “यादृशी सेवाना” प्रसक्त नहीं है. पुष्टिमार्गको दायरा बहोत बडो है. श्रीमहाप्रभुजीके पहले भी पुष्टिमार्ग हतो, पुष्टिसम्प्रदाय नहीं हतो. इन्द्रपे भी श्रीमहाप्रभुजी पुष्टि माने हैं : **“एवमिन्द्रे महापुष्टिः सर्वबाधा निरूपिता”**. **“सर्वबाधकरूपा हि दैत्ये पुष्टिरथोच्यते”** यहां भी पुष्टि कहदी है. और यदि अपन भागवतार्थ निबन्ध देखें तो जैसे दान बांट्यो होवे ऐसे “ये पुष्टिमार्ग है, वो पुष्टिमार्ग है” लिख दियो है. वहां कहीं भी श्रीमहाप्रभुजी द्वारा वर्णित सेवाको कोई प्रकार मिले नहीं है.

**असित शाह :** अवतारकालमें सेवाको नेचर काफी अलग है. नारदजी यदि झगडा करवा रहे हैं तो भी वो सेवा है. अपनकु जा तरहकी सेवा बतायी गयी है वा तरहको वहां कुछ भी देखने नहीं मिलेगो.

**धर्मेन्द्रसिंह :** जब अपन ‘सेवा’ कहें तो सामान्यतया तनुवित्तजाकी प्रोसेससुं फलरूपा चेतस्तत्प्रवणात्मिका मानसी समझी जावे है. पर कई जगह ऐसो भी देखनेमें आवे है के बिना तनुवित्तजाके भी जैसे दिनकरदासकुं मानसी जैसी अवस्था सिद्ध भई हती. तो क्या सेवाके अनुकल्पभूत साधनाके प्रकारनके द्वारा भी मानसी जैसी सिद्धि अपन सोच सकें ?

**गो. योगेश :** कल अपनी चर्चा भई हती वामें अपनने देख्यो के कथाप्रणालीसुं भी गुणस्वरूपसुं ठाकुरजीको प्रकट्य होवे है. वो भी अन्ततः चित्तकी प्रवणता होनेसुं मानसीको स्वरूप धारण करे है.

**धर्मेन्द्रसिंह :** वाकु अपन सेवातया गिन सकें ?

**गो. शरद् :** झालाको आशय मोकु ऐसो लगे है के **“यादृशी सेवना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलमुच्यते”**में सेवाद्वारा जो सिद्धि प्राप्त होयवेपर फलकथन कियो जा रह्यो है

वा तरहकी सिद्धि सेवानुकल्पभूत जो भी साधनसुं होती होवे वाके होनेपर सेवाफलोकत फलकी प्राप्ति हो सके है ऐसो मानें तो ये समस्याको समाधान हो सके है.

**गो. योगेश :** अच्युतदासजीकु बिना तनुवित्तजाके भी मानसी सिद्ध भयी ही हती.

**गो. शरद् :** असितने या सम्बन्धमें ऐसो अभिप्राय दियो हतो के फलप्राप्ति यदि मुख्य प्रणालीसुं हटके कोई दूसरे प्रकारसुं हो रही है तो वाकु अपवाद माननो चाहिये.

**परेश शाह :** 'यादृशी'सुं केवल सिद्धान्तमुक्तावली, सिद्धान्तरहस्य, चतुःश्लोकी कुं नहीं लेके पूरे षोडशग्रन्थकुं लेवें तो फिर याकु अपवाद कहनेकी जरूरत नहीं रहेगी ऐसो लगे है.

**गो. शरद् :** अपवाद होनो कोई बुरी बात नहीं है.

**असित शाह :** "यादृशी सेवना प्रोक्ता" अपन सिद्धान्तमुक्तावलीकी लाईटमें सोच रहे हते. अपने पास तीन स्टेटमेंट हैं : १.चेतस्तत्प्रवणं सेवा २.तत्सिद्धौ तनुवित्तजा और ३.मानसी सा परा मता. इनमेंसुं "यादृशी सेवना प्रोक्ता"सुं क्या लेनो ? मानसीवालेकुं फल मिलेगो या चेतस्तत्प्रवणं वालेकु मिलेगो या तनुवित्तजावालेकु मिलेगो ? टीकाकारनमें भी या सम्बन्धमें मतभेद हैं. यामें मोकु ऐसो लगे है के जैसे सृष्टिव्यवस्थामें स्वरूप, कारण और कार्य ऐसे तीन कोटियें होवे हैं ऐसे यहां भी अपन सोच सके हैं. "तत्सिद्धौ तनुवित्तजा" कारणकोटिको लक्षण है. "चेतस्तत्प्रवणं सेवा" स्वरूपकोटिको लक्षण है. और "मानसी सा परा मता" कार्यकोटिको लक्षण है. तो "यादृशी सेवना प्रोक्ता"में स्वरूपकोटि लेवें तो "चेतस्तत्प्रवणं सेवा" ये मिनिमम् रिक्वायर्मेंट है. अब चित्तकी प्रवणता तनुवित्तजा पूर्विका है या मानसीरूपसूं चित्त प्रवण है वो इम्मटीरियल है. यदि स्वरूपकोटि रिटेइन् हो रही है तो "यादृशी सेवाना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलमुच्यते"को अधिकारी बन जावे है.

**गो. शरद् :** मैं वो ही कह रह्यो हूं. फलप्राप्तिमें सन्निकृष्टोपकारक कोई एक अवस्था है जाको निर्देश "तत्सिद्धौ"सुं कियो जारह्यो है. अतः यदि अपन "यादृशी सेवना प्रोक्ता"के ऊपर भार न दें और "तत्सिद्धौ" या 'सति'पे भार दें तो ऐसी अवस्था जा कोई भी साधनसुं प्राप्त होती होवे वो फिर इम्पोर्टन्ट नहीं है. यदि ऐसी अवस्था तनुवित्तजा सेवाके द्वारा प्राप्त हो रही है तो 'मानसी' कही जायेगी और यदि गुणगानके द्वारा प्राप्त हो रही है तो 'व्यसन' कही जायेगी. दोनों अवस्था समकक्ष हैं. मानसी जाकु सिद्ध भई है वाकु अलौकिकसामर्थ्य और



देहावसानके बाद सेवोपयोगीदेहकी प्राप्ति रूपी फल भगवदिच्छानुसार प्राप्त होंगे. और जाकु गुणगानकी प्रणालीसुं व्यसन सिद्ध भयो है वाकु सायुज्यकी प्राप्ति होयगी. या तरहसुं सोचें तो साधन-फलभावकी संगति बैठ जावे है.

**असित शाह :** यामें एक उपाय ये भी है के तनुवित्तजासेवासुं सेवाफलोक्त फलनकी प्राप्ति होवे है वहां साधन-फलमें नियत साहचर्य है. पर सेवाफल ग्रन्थ ये नहीं कह रह्यो है के तनुवित्तजासेवाके अलावा दूसरी कोई प्रक्रियासुं वो फल प्राप्त नहीं हो सके हैं. यासुं गुणगान या शरणागति की प्रणालीसुं ये फल नहीं मिले हैं ऐसो निषेध यहां नहीं मिले है. बस इतनी व्याप्ति बताई गई है के यदि ऐसी सेवा करोगे तो ऐसो फल मिलेगो.

**गो.श्या.म. :** माने वनवे नियतसायचर्य है, डबलवे नहीं है.

**असित शाह :** और इतनो कहते भये भी श्रीमहाप्रभुजी ये आज्ञा कर रहे हैं कि यथोक्त सेवा करते भये भी यदि फल प्राप्त नहीं हो रह्यो है तो भगवान्की इच्छा फल देवेकी नहीं है. “तदा ज्ञानमार्गेण स्थातव्यं शोकाभावाय”.

**गो.श्या.म. :** मेरो यामें मतभेद है. क्योंकि अपन ‘यादृशी’को जो अर्थ ले रहे हैं वो बहोत ही नेरो अर्थ है. मैने शायद तो सेवाफलग्रन्थके परिचयमें ही ये लिख्यो है के कैसे सेवाफल ग्रन्थ षोडशग्रन्थमेंके बाकीके पंद्रह ग्रन्थनके संग चल रह्यो है. यासुं ऐसो कोई ग्रन्थ नहीं है के जाकु श्रीमहाप्रभुजीने सेवाफलमें रिकलेक्ट नहीं कियो होवे. मेरे हिसाबसुं सेवाफल और शिक्षाश्लोकी दो ग्रन्थ श्रीमहाप्रभुजीके ऐसे हैं के जो दूसरे सब ग्रन्थनकुं प्रिसपोज़ करके लिखे गये हैं.

यासुं जब “यादृशी सेवना प्रोक्ता” कह्यो तब मात्र तनुवित्तजा ही नहीं पर जासुं तनुवित्तजा नहीं होती होवे वो ऐसी स्थितिमें गुणगान करे है तो वो सेवाको ही विधान है, कथाको विधान नहीं है. जैसे व्याकरणमें आदेश स्थानिवत् होवे है ऐसे जैसे रमा + ईश = रमेश होवे है. पाणिनी कहे है के ‘आ’के साथ जब ‘ई’ जुडे तब ‘ए’ करो. ‘ए’ यहां ‘आ’ और ‘ई’ के बराबर है. ऐसे ही सेवाके अनिर्वाहमें जो आदेश कियो जा रह्यो है वो सेवाके जैसो ही मान्यो जायेगो. जैसे प्रधानमन्त्री बीमार पड गये तो प्रणव मुखर्जीकु प्रधानमन्त्रीको चार्ज सोंप्यो गयो. मुखर्जी वैसे केबिनेटको वन् ऑफ् द मिनिस्टर्स है पर वाकी फंक्शनल् वेल्यु प्रधानमन्त्रीकी हो गयी. या तरहसुं ‘यादृशी’को भी है. ‘यादृशी’को गेमुट् इतनो बडो है. यासुं ‘तत्सिद्धौ’में ‘यादृशी’कु डायल्युट् करनेकी जरा भी जरूरत नहीं है. क्योंकि तनुवित्तजाके नहीं

हो पाने पर जो अनुकल्प अनुसर्गो जा रह्यो है वो सेवाको ही स्थानी है. यद्यपि फोर्मेट् वाइस् वो सेवा नहीं है, मे बी एसेन्शियली सेवा नहीं है पर वाको फंक्शन वाको सेवाको होयगो. जैसे पुराने जमानेमें पंखिया रखे जाते हते, जलघडिया होते हते आज अपन इलेक्ट्रिक फेन और जलके पम्प रखे हैं. वो तत्तस्थानी हैं. यासुं “यादृशी सेवना प्रोक्ता” में अपनकु पूरी रेंज लेनी पडेगी. श्रीमहाप्रभुजीने सेवाके अनुकल्प या विकल्प तया जो-जो कल्प दिये हैं उनमें ये बात खास ध्यानमें रखनी चाहिये के वो स्वतन्त्र कल्प नहीं हैं, सेवाके अनुकल्प या विकल्प हैं. यासुं वो सेवास्थानी हैं. और या ही कारणसुं वाकु अपवाद माननेकी भी जरूरत नहीं है क्योंकि वो रूलके तहत ही कह्यो गयो है. वा रूलने वा अपवादकु प्रिसपोज कियो है के ये-ये नियम नहीं निभे तो क्या करनो? अपवादतया ये करनो. तो ये रूलके अंदर आते क्लोज़ हैं.

**गोपालदास :** सेवाको ये फल है वो तो बराबर है. पर आप तो ये कह रहे हो के ओर कोई भी कर्तव्य करेगो वाकु भी ये फल मिल जायेंगे! जरा स्पष्ट करके बताओ.

**गो.श्या.म.:** वचनात् प्रवृत्ति वचनात् निवृत्ति. श्रीमहाप्रभुजी पुष्टिजीवकु कौनसी तरहकी साधना करवानो चाह रहे हैं वाको पूरो सेटअप आपने समझायो है. पुष्टिजीवके भी पाछे शुद्ध और मिश्र के भेदसुं चार प्रकार हैं. उन सबकी पाछी अलग-अलग अवस्थायें होंगी : अदृढबीजभाव, दृढबीजभाव, प्रेमासक्तिव्यसन, तनुवित्तजासेवाकरवेमें सक्षम, वामें अक्षम, भगवत्प्रवणचित्त, भगवदप्रवणचित्त ऐसी कई अवस्थायें हो सके हैं. यामें सबसु ज्यादा गडबडी कहां होवे है वापे ध्यान दो. “चेतस्तत्प्रवण”में ‘तत्’ पदसुं कृष्ण लेनो के सेवा लेनी? कृष्णसेवामें प्रवण चित्त ही सेवा है. केवल कृष्णप्रवणता सेवा नहीं है पर कृष्णसेवामें प्रवण चित्त सेवा है. ये मेजर ईशु है.

**गो. शरद् :** यहां दो तरहकी प्रवणता दीख रही है. एक तो “भैयाजी गोकुल कब चलोगे” वा प्रकारकी. अर्थात् सेवामें खुद प्रवृत्त नहीं है पर सेवामें प्रवृत्त चित्तवालो. और दूसरो वो के जो स्वयं तनुवित्तजा सेवा कर रह्यो है और अनवसरमें भी ...

**गो.श्या.म.:** अनवसरमें वो सेवा नहीं कर पा रह्यो है और गुणगान कर रह्यो है. वो गुणगानमें क्यों प्रवण है क्योंकि वाको चित्त सेवामें प्रवण है. जैसे अपनकु प्यास लगी होवे तब जल नहीं मिल्यो तो जलके विकल्पतया फलको रस, दूध, नारीयलपानी जो भी मिले वो पी लेवे हैं. ये सब जल नहीं है, जलके जितने तर्पक भी ये सब नहीं होंगे पर काम तो कैसे भी चलानो ही पडेगो!

**गो. शरद् :** तो जो बाह्यसेवामें प्रवृत्त नहीं है वाकु भी सेवापरायण कह्यो जा रह्यो है वो या सेन्समें कह्यो जा रह्यो है के जो कथञ्चित् टिक्यो रहनो चाह रह्यो है.

**गो. श्या.म.:** टिक्यो रहनो चाह रह्यो है करके वाको चित्त तो सेवामें प्रवण है न! चित्त प्रवण होनेके दो मतलब हैं : आपको चित्त कन्विन्ड है के सेवा मेरो मुख्य कर्तव्य है. मैं जो भी कछु करूंगो वो सेवार्थ ही करूंगो. धर्म करूंगो तो सेवार्थ करूंगो, अर्थोपार्जन करूंगो तो सेवार्थ करूंगो, कामभोग करूंगो तो सेवार्थ करूंगो. यदि ऐसी बात है तो आपको चित्त सेवामें प्रवण है. अब आप कर तो कुछ ओर काम रहे हो पर आपको चित्त सेवामें प्रवण है. तो मुख्य बात अपने यहां चित्तकी कृष्णमें प्रवणताकी नहीं है पर कृष्णकी सेवामें प्रवणता मुख्य है. यासुं ही **“भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिः” “दैवीसृष्टिर्व्यर्था च भूयात् निजफलरहिता”** ऐसे सारे वचनको सर्वे करोगे तो आपकु निश्चय होयगो के कृष्णकी सेवामें चित्तको प्रवण होनो श्रीमहाप्रभुजीके हिसाबसुं मुख्य बात है. अब कोई कारणसुं आप सेवा कर नहीं पा रहे हो वाके कारण आपकु रोनो आ रह्यो है तो वो या बातको प्रमाण है के आपको चित्त कृष्णकी सेवामें प्रवण है.

**गो. योगेश :** आप जैसे कह रहे हो ऐसे कोई व्यक्तिको सेवामें ओरियेन्टेशन है पर पर कोई कारणसुं वो सेवामें प्रवृत्त नहीं हो पा रह्यो है. ऐसी स्थितिमें श्रीमहाप्रभुजीने सेवाके जो अनुकल्प बताये हैं उनकु जब अपन सेवाके स्थानी मानें तो ऐसे व्यक्तिकु भी ब्रह्मसम्बन्ध दियो जा सके.

**गो. श्या.म. :** प्रश्नोत्तरीमें ये बात कई बार आवे है. मैं क्या जवाब दऊं हूं वो आपकु सुनाऊं. एक लड़की विवाह लायक भई. मां-बापने लड़का देख्यो. लड़की कह रही है के मोकु ये लड़का पसंद नहीं है, मेरी याके साथ बनेगी नहीं. मां-बापने कही के कोई बात नहीं, एक बार शादी करलो, साथ रहोगे तो बनने लगेगी! कोई मां-बाप अपनी लड़कीकु लड़काके माथे थोपनेकेलिये तो कह सके है. पर ये बात यदि लड़काकु कहें के लड़की तोकु पसंद नहीं करे है फिर भी हम वाको कन्यादान तोकु कर रहे हैं तो! लड़का खुद डरके ना पाड देगो के याके साथ विवाह करनेमें रिस्क है. ऐसे अपन कोईकु ठाकुरजीके श्रीकंठमें मंढनो चाहें तो बात अलग है...

**गो. योगेश :** मैं ऐसे व्यक्तिकी बात नहीं कर रह्यो हूं. जाको ओरियेन्टेशन सेवामें है...

**गो. श्या.म.:** ‘ओरियेन्टेशन’ मतलब क्या है, अपन स्वस्थ लड़की कोईकु ब्याहें. ब्याहके बाद वो बीमार पड गयी तो कोई भी सज्जन व्यक्ति इतनेसे कारणसुं

अपनी पत्नीकु छोड नहीं देगो के बीमार क्यों पड गयी. पर जब अपन पहलेसु ही कह रहे हैं के लडकी बीमार है, केंसर होनेकी सम्भावना है, किडनी भी खराब है, डायबिटीज़ भी है. पर शादिके बाद स्वस्थ हो जायेगी ऐसी हम आशा रखें हैं. सबके नियामक तो भगवान् हैं. पर ऐसी लड़कीके साथ कौन ब्याहेगो? और ऐसी लड़कीके साथ बेटाको ब्याह कौन समझदार पिता करेगो? तो, जितनी केर् अपन् लड़की या लड़का के केसमें लेवे हैं उतनी केर् अपन् ठाकुरजीकी क्यों लेनो नहीं चाह रहे हैं? सवाल बस इतनोसो है.

**गो. शरद् :** उत्तर तो इतनोसो है के स्वरूपयोग्यता हो सके है पर फलमुखयोग्यता नहीं दीख रही है तो ब्रह्मसम्बन्ध नहीं देनो चाहिये.

**गो.श्या.म.:** सीधीसी बात है.

**गो. मनोज :** भक्तिवर्धिनीके अन्तमें जो कह्यो है के “य एतत्समधीयीत तस्यापि स्यात् दृढा रतिः” वाकु आदेशस्थानी वाली स्टेटस् मिलेगी के नहीं?

**गो.श्या.म. :** क्यों नहीं मिलेगी? मिलेगी ही. क्योंकि वो शादीके बाद होनेवाली बीमारीकी स्थिति है. दो बातको प्रभेद समझो. एक लड़काकु पढाई करनी है और वो एड्मिशन लेके पढ रह्यो है. पढने वालो विद्यार्थी फेल भी हो सके है. पर कोई लड़का कॉलेजमें आके कहे के मेरो मन तो पढाईमें बहोत है पर मैं क्लासमें बैठुंगो नहीं. ऐसेकु कौन एड्मिशन देगो? कोई घूस खानेवालो ही ऐसेकु एड्मिशन दे सके है. जबलपुर युनिवर्सिटीमें बबलू गेंस्टरको बेटा एम्.ए.की परीक्षामें बैठ्यो और फेल हो गयो. बबलू गेंस्टर गयो वाईस् चांसलरके घर. वो नहा रह्यो हतो पर डरके मारे बबलूके सामने टोवेल लपेटके आ गयो. बबलूने कही के वाईस् चांसलर साहब, युनिवर्सिटीमें बडी अराजकता फैल गयी है! वाने बडी दीनतासुं पूछ्यो के क्या बात हो गयी? बबलूने कही के मेरे बेटेने डिस्टिंक्शन लानेवाले लड़केके पेपरमेंसे कॉपि करके सब जवाब लिखे थे फिर फेल कैसे हो गया! ऐसे तमाशा तो होने ही हैं जब अपन गेंस्टरनकु एड्मिशन देंगे. पुष्टिमार्गमें भी येही स्थिति है. तो दो बातकु अलग-अलग समझो. एक व्यक्ति तहेदिलसु सेवा करनो चाह रह्यो है पर कोई कारणसु कर नहीं पा रह्यो है वो अलग बात है. और एक बीमार लड़कीकु कोईके माथे थोप देनेकी हीन मानसिकताकी बात है.

**गो. योगेश :** वार्तामें ऐसे दृष्टान्त हैं के जामें वैष्णव कह रह्यो है के मैं सेवा नहीं कर पाउंगो तब भी उनकुं ब्रह्मसम्बन्ध दियो गयो है!

**गो.श्या.म.:** समझो, जहां तक श्रीमहाप्रभुजीकी बात है तो आपके अंदर चरणोदक मात्रासुं भी मानसी सिद्ध करानेकी सामर्थ्य है. ऐसी सामर्थ्य अपने अंदर है? यदि नहीं है तो अपनकु क्या करनो है वो बडेनने ग्रन्थनमें स्पष्ट लिख दियो है. ब्रह्मसम्बन्ध कौनकु देनो वाकेलिये अपने यहां स्पष्ट कह्यो है के जाकु मार्गीय साधनाके अनुसरणमें रुचि होवे वाकु दीक्षा देनी. अब यदि अपन जान-बूझके जो अनुसरण कर नहीं सके ऐसेकुं ब्रह्मसम्बन्ध देवें तो फिर गुंडागिरि कहलायेगी के नहीं? व्हेर ईगल् केन् नोट डेर, फूल केन् डेर! जो अपनो चरणोदक देके जीवको उद्धार कर सके हैं ऐसे श्रीमहाप्रभुजीके चरित्रमें भी ऐसे प्रसंग मिले हैं के जामें आप आज्ञा कर रहे हैं के “तोसों भगवत्सेवा नाहीं निभेगी तासों तोकों ब्रह्मसम्बन्ध नाहीं देत हूं. नाम मात्रसों तेरो उद्धार होयगो”. इन वचननको विचार अपन क्यों नहीं करें हैं? अपन तो टके शेर भाजी टके शेर खाजा ब्रह्मसम्बन्ध बांटने निकल पडे हैं!

**गो. मनोज :** पेपरमें लिख्यो है कि “कालके आठ विषय हैं. इन आठोंका कार्य केवल भगवान् ही करते हैं” याको विवरण अपेक्षित है.

**गो. योगेश :** जितने भी विषय हैं, पुत्र मित्र आदि सब कछु भगवद्रूप हो जावे हैं, आनन्द प्रकट हो जावे है. वहां ये सब विषयरूप रहेवे ही नहीं हैं....

**गो.श्या.म. :** ये सर्वात्मभावको ही एक शेड है जो वैकुण्ठमें भी उपलब्ध है यों बता रहे हैं. वो वहां भी केरिफोर्वर्ड होयगो.



## उपसंहार

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी

फलके सम्बन्धमें अपने या पूरे सत्रके सम्बन्धमें मैं कुछ बातें कहनो चाहूं हूं. अपनने सर्वभाव और पूर्णभाव के ईशु डिस्कस् किये. या बारेमें गीता क्या कह रही है वापे ध्यान दो. भगवान् गीतामें आज्ञा करे हैं “ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना, करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः”. याकी ब्यूटी देखो. कर्मके विधानमें ज्ञान ज्ञेय और परिज्ञाता की त्रिपुटी काम कर रही है. यहां ‘ज्ञानचोदना’ नहीं कह्यो है. और कर्मके संग्रहमें करण कर्म और कर्ता की त्रिपुटी काम कर रही है. विधानको मतलब “तुम कर्म करो”.

आगे भगवान् ज्ञानको स्वरूप बतावे हैं के “सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते, अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्”. भगवान् सर्वात्मभावकी भूमिका बांधते भये कह रहे हैं के उत्पत्ति-नाशवाले विभक्त भूतनमें अनुत्पत्तिशील अनाशशील अविभक्त एक भावकु देखनेकेलिये जो ओरिएण्टेड है वाको ज्ञान सात्त्विक है. कर्मको विधान करते बखत ये बात चेक् करनी पडेगी. दैवी जीव है के आसुरी जीव है. दैवी है तो पुष्टि है के मर्यादा है. पुष्टिजीव है तो दृढ बीजभाववालो है के अदृढबीजभाववालो है. अदृढबीजभाववालो है तो व्यावृत्त है के अव्यावृत्त है. या तरहसुं ज्ञाताकु चेक् करनो पडेगो कर्मविधान करनेके पहेले. ज्ञाता कैसो है, ज्ञानको नेचर् कैसो है...पुरुषोत्तमजीने सिद्धान्तरहस्यकी टीकामें और साधनप्रकरणके आवरणभङ्गमें जो सब बातें बतायी हैं उनकु याके साथ मिलाके देखो तो मेरी बातको थ्रस्ट आपकु समझमें आयेगो के वहां ये सब बातें क्यों कह रहे हैं. इन सब बातनकु चेक् करके कर्मको विधान होयगो.

कर्मको संग्रह कैसे होयगो? करण कर्म और कर्ता सु. यहां ज्ञाता काम नहीं आयेगो. जहां कर्ताकी बात आयी वहां भगवान् ज्ञान छोडके बुद्धि पकड रहे हैं. “प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च कार्याकार्ये भयाभये, बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धि सा पार्थ! सात्त्विकी”. ज्ञान और बुद्धि के बीच अन्तर क्या है? कोईकु समझनो है तो वा तरहसु समझनो है. जब इम्प्लिमेंट करनो है तो वा तरहसु नहीं करनो है. वाकी फंक्शनल् वेल्यु

देखनी है. विभक्तमें अविभक्त देखनो सात्त्विक ज्ञान है पर यहां तो विभाग ही विभाग जानोगे तो बुद्धि सात्त्विक कही जायेगी! निर्भयकु सात्त्विक कह्यो गयो है. पर कर्ताकी बुद्धि तब सात्त्विक कही जायेगी के जब वो भय और अभय दोनोंको विचार कर सके!

अब प्रभु जाकु राजस ज्ञान कह रहे हैं वाके साथ मिलाके देखो. “**पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान्, वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्**”. जो आदमी हर चीजकु पृथक्-पृथक् करके समझतो होवे वो तो राजस है! कर्म करनेकेलिये कर्तामें राजस ज्ञान कर्तृबुद्धितया सात्त्विक बतायो है! एकदम समसॉल्ट है! याके द्वारा भगवान् कहनो ये चाह रहे हैं के एक बातकु समझनो है के “**ब्रह्मरूपं जगद् ज्ञातव्यम्. ब्रह्म जगतोऽतिरिच्यते इति न तत्र आसक्तिः कर्तव्या**”. कौनमें ब्रह्मतया आसक्ति करने पर निर्भयता होयगी अन्यथा भय होयगो, कौनके साथ ब्रह्मतया व्यवहार करेंगे तो आनन्द मिलेगो अन्यथा सत्यानाश हो जायेगो इन सबकु जो जान रह्यो है वाकी बुद्धि सात्त्विक माननी के राजसी? याकु थोडोसो जीवनमें इम्प्लिमेंट करके देखो, लीलाभाव अभी प्रकट हो जायेगो. स्थितप्रज्ञकी बडी महिमा गायी गयी है. वाकु रहने दो अभी. ज्ञान और बुद्धि के हेंडलकु पकडो और अपने थोढ़, इमोशन और बिहेवियर् कु ड्राईव् करना शुरू करो. स्थितप्रज्ञ बाजूमें रह जायेगो, लीलाबोध प्रकट हो जायेगो सर्वात्मभावको. क्यों? क्योंके कार्याकार्य-भयाभयके पृथक्त्वके ज्ञानमें एक अविभक्तकु जाननो ये प्रभुके माहात्म्यको ज्ञान है और कर्ममें उनके पृथक्त्वको विवेक रखनो ये कर्मसंग्रह है. ये पूरो सेटअप् वहांसु डिराईव् हो रह्यो है.

याके विरुद्ध तामसज्ञान देखो : “**यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तम् अहैतुकम्, अतत्त्वार्थवदल्पञ्च तत्तामसमुदाहृतम्**”. कोई एक वस्तुकु कृत्स्न माननो जैसे कि “**पुरुषोत्तम तो मेरे यहां ही बिराजे है, ओर सब तो अल्लटप्पु हैं**”. और ऐसो कर क्यों रह्यो है वो वाकु खुदकु भी पता नहीं है. ऐसी सोचको कोई सैद्धान्तिक या भक्तिमार्गीय आधार नहीं है, बधा करे छे तेथी अमे पण करीए छीए! घासलेट्नी क्यू छे के साकरनी? क्यू छे तो जोडाई जाओ. ऐसे ज्ञानकु भगवान् तामस कह रहे हैं. अब बुद्धिकु देखो : “**यया धर्मम् अधर्मञ्च कार्यञ्चाकार्यमेव च, अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ! राजसी**”. धर्म, अधर्म, कार्य, अकार्य कु जो अच्छी तरह नहीं जाने वो बुद्धि राजसी है. और तामसी बुद्धि कैसी है? “**अधर्मं धर्मइति या मन्यसे तमसावृता, सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी**” अधर्मकु जो धर्म जाने वो बुद्धि

तामसी है. ऐसे सात्त्विक राजस तामस बुद्धिको एक आखो अलग प्रकार है, ज्ञानको अलग प्रकार है.

अपनकु लगे के भगवाने कर्मको विवेचन कियो, ज्ञानको कियो पर भक्तिको विवेचन यहां क्यों नहीं कियो? श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के “तद्विस्तारो भागवतम्” भागवतमें तृतीयस्कन्धमें कपिलगीतामें भक्तिके भेदनको वर्णन है. वहां तो वो है ही पर गीतामें वाके बीज कैसे रहे भये हैं वो देखो. “करणं कर्म कर्तेति” की पेराफ्रेज़िंग “भजनं भगवान् भक्तश्च” करोगे तो भक्तिसंग्रह होयगो के नहीं! भक्ति तब हो सकेगी के जब कोई भगवान् होवे, कोई भक्त होवे और भजन होवे. भक्तिको मूल कहां है? श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के भगवाने अपनी आत्तरति सबनकु खंडशः बांटी है. यासुं “यो यत्र प्रीणाति तत्र तस्य सुखो भवति” जाहां जाकी प्रीति हो रही है वहां वाकु सुख होवे है. प्रीतिके कारण वस्तुमें सुख या दुःख होवे है. प्रीति है तो “यच्च दुःखं यशोदायाः नन्दादीनाञ्च गोकुले...यत् सुखं समभूत तन् मे भगवान् किं विधास्यति” दुःख भी अभिलषित हो रह्यो है. और प्रीति नहीं है वाके कारण बादशाहके आमन्त्रणमें भी दुःख लग रह्यो है “भक्तनकों सीकरीसों कहा काम!”. गीतामें जहां भगवाने सुख और धृति को विवेचन कियो है वहांसुं अपनकु प्रीति-भक्ति मिलेगी. ये दो ऐसे फिनोमिना है के जो तुरंत अपनकु कैनलाईज़ करके भक्तिके तरफ ले जाने वाले हैं.

सात्त्विक-राजस-तामस धृतिके लक्षण देखोगे तो भक्तके भी सात्त्विकादि भेद समझमें आ जायेंगे. भगवाने कह्यो है के “मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम्”. यासुं वो भक्ति सात्त्विक-राजस-तामस कैसी भी होयगी, मन्निष्ठ होनेके कारण निर्गुण हो जायेगी. ये तो प्रभुके अनुग्रहकी बात है. मैने शुरुमें कही हती के अपनी भक्ति लंगडी नहीं है. भगवान्के अनुग्रह और अपनो पुरुषार्थ इन दो पैरनसुं भक्ति चले है. अपनकु जो पैर उपलब्ध भयो है भक्ति करनेकेलिये वो पैर धृति और सुख हैं. अब धृतिकु भगवान् समझा रहे हैं : “धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रिया, योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ! सात्त्विकी”. मन प्राण इन्द्रिय क्रिया कु अव्यभिचारी योगसुं मतलब इनमें डिस्कोओर्डिनेशनके बिना आप धारण कर रहे हो तो आपकी धृति सात्त्विक है. मन कहीं ओर है, प्राण कहीं ओर हैं, इन्द्रियें कहीं ओर हैं... “पेट मशगुल है कलकीमें दिल है ईरान और टर्की में” ऐसी धृति सात्त्विक नहीं है. ‘धृति’ मतलब धारणा, आपके अंदर रही भई इन्क्लिनेशन, हाउ डु यु पर्सीव् इट. कोई चीज आपके सामने है, वोही मेरे सामने भी है,



इनके सामने भी है। पर इनको एक अपना एप्रोच है, मेरो एक अपना एप्रोच है। सांख्यकु जाने हानोपादानोपेक्षा कह्यो है। शेरके सामने तिलोत्तमा भी आयेगी तो भक्ष्य लगेगी, कामुककु वो कामिनी लगेगी और वैरागीकु वो उपेक्ष्य लगेगी। ये धृति है। मेंटल् सेटअप, माईन्ड सेट आजकी भाषामें प्रोपर टर्म है।

राजस धृति कैसी होवे है? “यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयतेऽर्जुन!, प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी”। धर्म-अर्थ-काम पुरुषार्थ सिद्ध कर रह्यो है पर कभी-कभी फलनपे मन चलायमान् हो जावे तो ऐसी धृति राजस है। “लोकार्थी चेद् भजेत् कृष्णं क्लिष्टो भवति सर्वथा” मन चंचल होतो रहे वो राजस स्वभाव है। अब तामसी धृति देखो : “यया स्वप्नं भयं शोकं विशादं मदमेव च, न विमुञ्चति दुर्मेधा धृति सा पार्थ तामसी”। जो अपने स्वप्न, भय, शोक, विशाद, मद मेंसुं बाहर ही निकल नहीं सके है वो धृति तामसी धृति है। वैष्णव भयमेंसुं बाहर नहीं निकल पावे हैं वा कारण सेवासु विमुख रहे हैं, अपन गोस्वामी “हम तो साक्षात् पुरुषोत्तम हैं” ऐसे मदमेंसुं बाहर निकल नहीं पावे हैं। इनके सामने सुख-दुःखकी त्रिविधता प्रभु बता रहे हैं। “अभ्यासाद् रमते चित्तं दुःखान्तं च निगच्छति, यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमं, तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तम् आत्मबुद्धिप्रसादजम्”। सात्त्विक ऐन्द्रियक सुख तुरन्त नहीं मिले है। इन्द्रियनकु या लिये आसुर भावसुं ग्रस्त मान्यो है। यम-नियम करके अभ्यास करो, इन्द्रियनकु ट्रेनिंग दो। शुरुमें ये सब विषवत् कष्टकारक लगेगो पर अन्तमें परम सुख मिलेगो। ऐसे सात्त्विक सुखमें जाकी धृति है वो भक्तिकेलिये कण्ड्युसीव होयगी।

राजस सुख : “विषयेन्द्रिय संयोगात् यत्तदग्रेऽमृतोपमं, परिणामें विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्”। शुरुमें अमृत जैसो लगे पर अन्तमें विष जैसो हो जावे वो राजस सुख है। “बूदीके सेवके मनोहरके मगद हू के घनश्याम प्यारे पेड़ा बाफी बदामपाक मावादार गूजा देख खायके” शुरुमें अमृत जैसे ये लगे हैं। पर अन्तमें डायबिटीज़, किडनी फेल्योर, ब्लड कोलेस्टरोल् के कारण जीवन नर्क जैसो हो जावे है। ये राजस सुखको परिणाम है।

तामस सुख : “यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः, निद्रालस्य-प्रमादोत्थं तत्सुखं तामसं स्मृतम्” तुम सेल्फ चीटींग किये बिना सुख नहीं मान सकते

हो, सुख माननेसुं पहले तुम अपने आपको बेवकूफ बनानो पडेगो के सुख तो यामें ही है, याके अलावा कोई ओर चीजमें सुख नहीं है. ऐसे सुखकी कामना अपनकु कभी भी भक्तिकी तरफ ले नहीं जा सके है. फिर भी यदि कोई भक्ति करने लग्यो तो वाकी भक्ति भी तामसी बन जायेगी. इनकु समझके सोचो के भक्तिकेलिये कन्ड्युसीव धृति और सुख कैसे हैं, नोन् कन्ड्युसीव धृति-सुख कैसे हैं और भक्तिकेलिये बेड् कन्ड्युसिव् धृति-सुख कैसे हैं. भगवानने गीतामें याको खुलासा कियो है. ये अपने पैरकी बात है. भगवानकु अपने तरफ दौडके आनो है तो वो अनुग्रहको मार्ग है “**कामं क्रोधं भयं स्नेहं ऐक्यं सौहृदमेव वा, नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते**”. ये परन्तु भगवान्को मार्ग है, अपनो नहीं है.

सर्वभावमें भी, देखा, ये ही ईश्यु रख्यो है के ये सब कछु भगवान् भयो है. भगवान् गीतामें स्पष्ट आज्ञा करे हैं के क्रोध भय सब कछु मैं ही पैदा करूं. अपन ये सोचें के जब भगवान् ही क्रोध पैदा करे हैं तो वामें दोष क्या! निश्चत् भगवान् ही सब कछु करे हैं पर तुम्हारो जो क्रोध, काम, मोह आदि तुमकु विषयासक्त बना रहे हैं वो सर्वात्मभावमें तुमकु कन्ड्युसिव् नहीं होंगे. सर्वात्मभावको सायकल् ऐसो है के सबमें पहले एक देखो, फिर वा एकमें सबकु देखो. पूर्ण भाव बनाओ. तब तुम्हारेमें पूर्णता आयेगी. ब्रह्मकी लीलामें तो सब कछु है. कृष्ण स्वधाम पधारे वाकु पांच हजार वर्ष बीत गये. अपन आज तक जन्माष्टमी मनावे हैं पर जा दिन कृष्णने आसुरव्यामोह लीला करी वो दिन नहीं मनावे हैं. मोकु तो वाकी तिथि भी याद नहीं है. दूसरे लोग मनावे हैं के या दिन क्राईस्ट मर गयो, या दिन मुहम्मद मर गयो, या दिन बुद्ध चले गये. अपन नहीं मनावें हैं. क्योंकि अपनो धर्म रोजेको नहीं है. निद्रालस्यप्रमादोत्थ अपनो धर्म नहीं है. अपनो धर्म कृष्णजन्माष्टमी मनानेको है, राम नवमी मनानेको है, नृसिंह चतुर्दशी मनानेको है. इन्सिडेंटली अपनकु पता है के श्रीमहाप्रभुजी रथयात्राके दिन लीलामें पधारे हैं पर वा दिन एक भी पद वा बातके गावें नहीं हैं. अपनो एक अलग ही एप्रोच् है. वाकु समझो. अपनो एप्रोच् सर्वात्मभावकु कोई तरहसुं पूर्णभाव तक पहुँचानवेको अपनो एप्रोच् है. वा तरफ ब्रह्मकी सर्वात्मकता और या तरफ अपनो सर्वात्मभाव. या एप्रोचसु श्रीमहाप्रभुजीके सारे उपदेशनकु देखनो चाहिये. षोडशग्रन्थमें ये एप्रोच ऐसे व्याप्त है जैसे जगत्के सब नाम-रूप-कर्ममें ब्रह्म व्याप्त है.

शास्त्रार्थप्रकरण गीतार्थ है. यासुं या लाईट्में शास्त्रार्थकु चेक् करो के या तरहकी

धृतिकु श्रीमहाप्रभुजी इन्वोक् कर रहे हैं के नहीं, या तरहके सुखकु श्रीमहाप्रभुजी इन्वोक् कर रहे हैं के नहीं, या तरहके ज्ञानकु, कर्मसंग्रहकु श्रीमहाप्रभुजी इन्वोक् कर रहे हैं के नहीं. जब-जब भी श्रीमहाप्रभुजी इनकु इन्वोक् कर रहे हैं तो पता चल जायेगो के श्रीमहाप्रभुजी अपनेसुं चाह क्या रहे हैं. और ये नहीं देख पाये तो पता ही नहीं चलेगी के “शास्त्रार्थो गीतार्थः” कहके श्रीमहाप्रभुजी कहनो क्या चाह रहे हैं. या ही लिये श्रीमहाप्रभुजी लिख रहे हैं के “सात्त्विकाः भगवद्भक्ता ये मुक्तावधिकारिणः, भवान्तसम्भवा दैवात् तेषामर्थे निरूप्यते”. श्रीमहाप्रभुजी सात्त्विकताकु इन्वोक् करनो चाह रहे हैं.

अन्तमें, इतने दिन तक अपनने माथाफोडी करके श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तनको विचार कियो वो माथाकी हड्डीयें फोडवेकेलिये नहीं पर श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्त अपने माथाके भीतर उतर सकें या लिये. पुस्तक माथापे होनी उतनी अच्छी बात नहीं है जितनी माथाके भीतर होवे वो अच्छी बात है. ऐसे ही ठाकुरजी अपने माथापे बिराजें वो ठीक है. वो साधन निरोध हो सके है पर फल निरोध वो है के अपने माथापे बिरजनेवालो अपनो ठाकुर अपने हृदयमें भी बिराजे. यदि बालकी तरह माथेपे ही बिराजे रहे तो कोई हजाम अपनो माथा मूंड जायेगो! ऐसो अपने साथ नहीं होवे वा लिये अपन आश्रयको पद गाके या चर्चासंगोष्ठीको समापन करें.

दृढ इन चरणन केरो भरोसो.

श्रीवल्लभनखचन्द्रछटा बिन सब जग मांझ अंधेरो,

साधन ओर नहीं या कलिमें जासों होय निवेरो,

सूर कहा कहे द्विविध आंधरो बिनामोलको चरो. भरोसो दृढ इन चरणन केरो.



॥ શ્રીકૃષ્ણાય નમઃ ॥  
॥ શ્રીમદ્આચાર્યચરણકમલેભ્યો નમઃ ॥

## ન્યાસાદેશ ગ્રન્થમાં પુષ્ટિફલ

હિતેન્દ્ર શાહ

### ઉપક્રમ :

સામાન્યરીતે ઈષ્ટની પ્રાપ્તિ, સાધ્યની સિદ્ધિ કે ગન્તવ્ય સુધી પહોંચવું તેને ફલ કે ફલાવસ્થા ની પ્રાપ્તિ કે સ્થિતિ કહેવાય છે. સ્વાભાવિક છે કે ચમત્કારને છોડીને ફલની પ્રાપ્તિમાં કોઈક સાધન, પ્રક્રિયા, કરણ, વિધિ-નિષેધ ની જરૂર પડે છે. સાથે-સાથે ફલઈચ્છુકની નિષ્ઠા, આવડત, કૃતિશીલતા, ફલમુખ અધિકારિતા અને નિશ્ચિત સાધના વગેરે પરિબળો પણ ફલમાટે કામ કરતાં હોય છે. ખૂબી કહો કે વૈચિત્ર્ય, ફલપ્રાપ્તિ પછી તેના સાધનો અને જવાબદાર તથા નિમિત્ત પરિબળો ગૌણ બની જતાં હોય છે. અધ્યાત્મમાર્ગે કે આત્મકલ્યાણ ની ઈતર સાધનાના પ્રકારોમાં પણ આ જ પરિસ્થિતિ હોય છે.

ખેર ! ફલના સન્દર્ભમાં આ તો થઈ ગ્રેય અને શ્રેય પ્રાપ્તિની લૌકિકી અને શાસ્ત્રીય સાધનાની વાત. પરન્તુ શ્રેયમાં પણ વિશિષ્ટ એવા પુષ્ટિભક્તિમાર્ગીય કે પુષ્ટિપ્રપત્તિમાર્ગીય ફલ શું છે તથા કઈ રીતે સર્વાંશે વિલક્ષણ છે ? ત્યાં શ્રીમહાપ્રભુજી કહે છે “ભગવાન્ એવ હિ ફલં સ યથાવિભવેત્ ભુવિ, ગુણસ્વરૂપ ભેદેન તથા તેષાં ફલં ભવેત્” (પુ.પ્ર.મ.-૧૭) પુષ્ટિમાર્ગીય જીવોનું સાધન જેમ ભગવાનની પુષ્ટિ કે અનુગ્રહ છે તે જ પ્રમાણે પુષ્ટિમાર્ગીય ફલ એકમાત્ર સ્વયમ્ ભગવાન્ છે. પુષ્ટિમાર્ગીય સાધનાની તે જ તો વિલક્ષણતા છે કે જ્યાં પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલ ની એકરૂપતા છે. ભક્તોના અધિકાર/ભાવ અનુસાર ગુણ અને સ્વરૂપના ભેદથી જે-જે રૂપ ધારણ કરી ભગવાન્ પ્રકટ થાય છે તે-તે નિજ ભગવદ્રૂપ સાથે પુષ્ટિસૃષ્ટિના વિભિન્ન જીવોની ફલાનુભૂતિ સમ્પન્ન થાય છે. યદ્યપિ ફલની અનુભૂતિ તો પુષ્ટિમાર્ગીયને ભગવાન્ કરાવે ત્યારે જ થઈ શકતી હોય છે પરન્તુ ફલની અનુભૂતિ કરવા યોગ્ય પોતાને બનાવવામાટે સાધકે શરણમાર્ગીય કે ભક્તિમાર્ગીય સાધનાચરણદ્વારા ભાવની અવસ્થા પ્રાપ્ત કરવાની હોય છે જેને સમ્પ્રદાયમાં ‘નિરોધ’ નામથી ઓળખવામાં આવે છે. ભક્ત જેમ જગતને ભૂલીને ભગવાનમાં આસક્ત બની જતો હોય છે તેમ ભગવાન્ પણ ભક્તમાં આસક્ત થતા હોવાના અનેક પ્રસંગો ભક્તિશાસ્ત્રોમાં પ્રસિદ્ધ છેજ. ભગવાન્ પણ શ્રીમુખે ગીતાજીમાં કહે છે “જે ભક્તો મને પ્રેમપૂર્વક ભજે છે તેઓ મારામાં છે અને હું તેઓમાં

છું” (ભગ.ગીતા.૮.૨૮) લીલા-ગુણગાન, તનુવિત્તજ્ઞ સેવા કે શ્રવણ-કીર્તન-સ્મરણદ્વારા સાધક જ્યારે જગતને ભૂલી જઈને ભગવાનમાં અનન્યરૂપથી આસક્ત બની જાય છે ત્યારે તેને નિરોધની ફાવવસ્થા કહેવામાં આવે છે. ભક્તિમાર્ગીય સમસ્ત સાધનોનો સાર નિરોધની સિદ્ધિમાં રહેલો છે. નિરોધની સિદ્ધિ થતાંજ ભક્તને માનસી સેવા, વ્યસન, સર્વાત્મભાવ, તનુનવત્વ, અલૌકિક સામર્થ્ય, સાયુજ્ય કે સેવોપયોગી દેહ વગેરે રૂપમાં ભક્તિમાર્ગીય ફલોની અનુભૂતિ થવા લાગે છે.

### ગ્રન્થનો ઐતિહાસિક સન્દર્ભ :

એકશ્લોકાત્મક ન્યાસાદેશ ગ્રન્થની રચના જોકે શ્રીમહાપ્રભુજીદ્વારા ન થઈ હોવા છતાં મૂલમાં રામાનુજ મતના શ્રીવેદાન્તદેશિકદ્વારા લખાયેલ ન્યાસવિંશતિ નામના વીસ શ્લોકમાંથી આચાર્યચરણોદ્વારા અપનાવાયેલ છે. જેમકે નિબન્ધમાં આચાર્યચરણોએ શ્રીમદ્વાચાર્યની અમુક કારિકાઓ સીધેસીધી લીધી છે. વાક્યપતિનો દ્રષ્ટિકોણ એટલો વિશાળ છે કે જે વાત પોતાના તત્ત્વદર્શન, ધર્મદર્શન કે લીલાદર્શન સાથે સુસંગત હોય તેને અપનાવવામાં કોઈ છોછ નથી. ભલેને તે ઈતર મતની કેમ ન હોય ! પાછળથી આ ગ્રન્થ પર શ્રીમદ્પ્રભુચરણોની વિવૃત્તિથી એ માન્યતા પાકી થઈ ગઈ કે ન્યાસાદેશ શ્રીઆચાર્યચરણ વિરચિત જ છે. પરન્તુ નિઃસંદેહ વેદાન્તદેશિકનો કાલ આચાર્યચરણથી પૂર્વનો હોવાથી અને વેદાન્તદેશિકની પોતાની ટીકા પણ આ વીસ શ્લોકો પર ઉપલબ્ધ હોવાથી આ ગ્રન્થને આચાર્યચરણ વિરચિત માનવાને કોઈ કારણ નથી. આની પુષ્ટિ શ્રીવલ્લભજી વિરચિત ‘તત્ત્વટીપિકા’માં “એતચ્ચ ન્યાસાદેશેષુ...વેદાન્તાચાર્યપદ્યે નિરૂપિતમ્” થી પણ થાય છે કારણકે વેદાન્તદેશિક વેદાન્તાચાર્ય તરીકે પણ ઓળખાતા હતા.

### ગ્રન્થની ભૂમિકા :

ભગવાને ગીતામાં અન્તિમ આજ્ઞા અને ચરમોપદેશ અર્જુનને નિમિત્ત બનાવીને કહ્યો :

“સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજ,  
અહં ત્વા સર્વપાપેભ્યો મોક્ષયિષ્યામિ મા શુચઃ”

(ભગ.ગીતા ૧૮.૬૬)

સર્વધર્મોનો પરિત્યાગ કરીને મારે એકને જ શરણે આવ, શોક નહીં કર, હું તને સર્વપાપોથી મુક્ત કરીશ.

ગીતાજીના અઢાર અધ્યાયોમાં ભગવાને ઘણા ધર્મો કહ્યા જેમકે સાંખ્ય, યોગ, કર્મ, જ્ઞાન, તપ, યજ્ઞ, ભક્તિ, વૈરાગ્ય વિ. પણ છેલ્લે સર્વધર્મોના ત્યાગપૂર્વક શરણે

આવવાની આજ્ઞા કરી. આજ્ઞા સ્વામીદ્વારા કહેવાયેલી હોવાથી તેનો ગૃહાર્થ સમજવો પડશે કે જ્ઞાન, વૈરાગ્ય, સાંખ્ય વિગેરે અને પુષ્ટિશરણ, પુષ્ટિભક્તિ, ભગવદીયતામાં શું તારતમ્ય છે ? શું મુખ્ય/કેન્દ્રમાં અને શું ગૌણ ?

**શંકાઓ :**

સર્વધર્મનો ત્યાગ પુષ્ટિમાર્ગમાં છે. મર્યાદામાર્ગમાં નથી. આ ઉપદેશ અર્જુનને અપાયેલો હોવાથી એ નિશ્ચિત થાય છે કે અર્જુન પણ પુષ્ટિમાર્ગમાં અંગીકૃત હતા.

ધર્મનો ત્યાગ કરવાથી મર્યાદામાર્ગમાં જ પાપ લાગવાનો ભય છે અને તે પાપભયની સંભાવના શ્લોકના ઉત્તરભાગમાં કરી છે. તેથી સંદેહ થાય છે કે અર્જુન મર્યાદામાર્ગીય ભક્ત હશે.

પણ કૃતિની ( સાધન ) અપેક્ષા નહીં રાખી હું સ્વયં ( પ્રમેયબલથી ) તને પાપથી ( પ્રતિબંધકતાથી ) છોડાવીશ એમ કત્યું છે તેથી સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે કે અર્જુન મર્યાદામાર્ગીય નથી.

પ્રભુના ઉપર પૂર્ણ વિશ્વાસ હોવાથી પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તને કોઈ પણ પ્રકારનો શોક હોતો નતી પણ અહીં ‘મા શુચઃ’ શોક નહીં કર તેથી શોક કરવાનો નિષેધ કર્યો છે માટે નિશ્ચય થાય છે કે અર્જુન શોકગ્રસ્ત હતા. તો શું અર્જુન મર્યાદામાર્ગીય હતા ?

આ રીતે જેમ અધિકારીમાં અનેક સંદેહ થાય છે તેમ પ્રભુના અંગીકાર અને આજ્ઞા માં પણ વૈપરીત્ય લાગે છે. જેમકે પુષ્ટિલીલાના ફલપ્રકરણમાં ( રાસપંચાધ્યાયીના પ્રારંભમાં ) પ્રભુએ ‘ગૃહશુશ્રૂષણં સ્ત્રીણાં’ ઇત્યાદિ વચનોદ્વારા પ્રથમ મર્યાદાનો ઉપદેશ કર્યો પછી ભક્તોના આગ્રહથી પુષ્ટિમાર્ગીય અંગીકારદ્વારા પુષ્ટિફલનું દાન આપે છે. ગીતાજીમાં તો ભક્તને મર્યાદાનો આગ્રહ છે છતાં પણ ‘સર્વધર્માન્’ ઇત્યાદિ વાક્યોથી પુષ્ટિનો ઉપદેશ કરે છે તે વિપરીતતા દેખાય છે. પુષ્ટિલીલામાં અંગીકૃતજીવોમાં ભાગવતમાં આવે “અત્યાપૃતં નિશિ શયાનમ્ અતિશ્રમેણ લોકે વિકુણ્ઠ ઉપનેષ્યતિ ગોકુલં સ્વમ્” ઇત્યાદિમાં સાધનરહિતોને પણ ફળ આપ્યું છે પણ અર્જુનને આજ્ઞા કરે છે કે “તું દ્રોણાદિને માર અને મારા શરણે આવા, હું તને પાપોથી છોડાવીશ” આ સ્થિતિમાં પાપોથી મુક્ત કરાવીશ એમ સ્પષ્ટ મર્યાદા આવી જાય છે. તેના વિરુદ્ધ સર્વધર્મોના પરિહરણ કથનની શું આવશ્યકતા ? આવા બધા પ્રશ્નોના સમાધાન આપણને “ન્યાસાદેશેષુ...” શ્લોકમાંથી મળે છે.

**વિષયવિચાર :**

“ન્યાસાદેશેષુ ધર્મત્યજનવચનતોડકિઞ્ચનાધિક્ષિયોક્તા ।

કાર્પણ્યં વાઙ્ગમુક્તં મદિતરભજનાપેક્ષણં વા વ્યપોઢમ્ ॥

દુઃસાધ્યેચ્છોદ્યમૌ વા ક્વચિદ્વપશમિતાવન્યસંમેલને વા ।

બ્રહ્માસ્ત્રન્યાય ઉક્તસ્તદિહ ન વિહતો ધર્મ આજ્ઞાદિસિદ્ધઃ ॥

ન્યાસાદેશ (ત્યાગની આજ્ઞાઓ)માં જે ધર્મત્યાગના વચનો મળે છે તેમાં પ-૬ અંગો/હેતુઓનો વિચાર કરવામાં આવ્યો છે.

(૧) અર્જુનનું ભગવત્શરણગમન પુષ્ટિમર્યાદાના રૂપમાં થયું. આથી શરણાગતિ અન્તર્ગત ધર્મત્યાગનો ઉપદેશ પુષ્ટિઅંશ છે અને શરણે આવવા પર રક્ષાનું વચન મર્યાદાઅંશ છે. આમ પુષ્ટિભક્તિ અને મર્યાદાભક્તિ ના મિશ્રણથી બધી વાતોનું સમાધાન થઈ જાય છે. પુષ્ટિમર્યાદામાં કેવલ મર્યાદામાર્ગીય ધર્મોને છોડવા દોષાવલ નથી હોતા યથા સંન્યાસી બ્રહ્મચર્યાશ્રમના કે ગૃહસ્થાશ્રમના ધર્મોનું આચરણ ન કરે તો દોષ નથી. શરણાગતિના સ્વરૂપ પ્રમાણે પુષ્ટિપથના ધર્મો જેમ સંન્યાસીમાટે ગાર્હસ્થ્યના ધર્મો પ્રકારે હોય છે. એટલે કહે છે “તદિહ ન વિહતો ધર્મ આજ્ઞાદિ સિદ્ધઃ” “સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય” સર્વધર્મોનો ત્યાગ કરો. ‘કરો’ એ આજ્ઞા મળે છે તેથી સર્વધર્મત્યાગ પણ ધર્મ કહેવાશે. “આજ્ઞાદિ સિદ્ધઃ”માં મનુસ્મૃતિ આદિ શાસ્ત્રમાં કહેલા ધર્મોનો ટકરાવ ભગવદાજ્ઞા સાથે નથી થતો કારણ કે ‘ત્યાગ’નું વિધાન સ્વયં ભગવદાજ્ઞા હોવાથી ધર્માજ્ઞાજ કહેવાય છે.

જો એવું જ હોય તો પછી અર્જુનને તેમના ત્યાગની આજ્ઞાથી ધર્મહાનિ કઈ રીતે કહેવાશે? એથી સવાલ થાય કે પાપના ઉલ્લેખની સંગતિ શું? તેના સમાધાનમાં ગીતાના ‘સર્વધર્માન્’ શ્લોકમાં ‘સર્વ’ પદનું તાત્પર્ય શરણાગતિ સિવાયના અન્ય ધર્મો છોડવાથી પાપની સંભાવના નથી પણ શરણાગતિના અંગભૂતધર્મોનો ક્યાંક બાધ થવાથી પાપની સંભાવના રહેશે જેમાંથી ભગવાન્ મુક્ત કરશે. પાપથી મુક્તિનો અભિપ્રાય છે કે ભગવાન્ પાપ ઉત્પન્નજ નહીં થવા દે! નહીં તો શરણાગતિમાં વિઘ્ન પેદા થાય કારણકે શરણમાર્ગથી શરણાગત અનભિજ્ઞ હોવાથી પાપની સંભાવના અને તેનાથી પેદા થતા શોકમાટે ભગવાન્ અર્જુનને આશ્વાસન આપે છે. તો પછી “મામેકં શરણં વ્રજ” આ કહેવું પર્યાપ્ત હતું કારણકે આ તો શરણનું રૂપ છે. આ શંકાના સમાધાનમાં ‘ન્યાસાદેશેષુ ધર્મત્યજવચનતઃ’ કહે છે. ન્યાસ એટલે સંન્યાસ અને તેનો આદેશ એટલે “યદહરેવ્ વિરજેત્તદહરેવ પ્રવ્રજેત”, “તાવત્ કર્માણિ કુર્વિત ન નિર્વિદ્યે તે યાવતા” અહીં સ્પષ્ટતયા ધર્મ અને કર્મ ના ત્યાગમાં વૈરાગ્યને મુખ્ય શર્ત માની છે જ્યારે ઐહિક - પારલૌકિક સાધનોમાં પરસ્પર વિરોધ, તેના અનુષ્ઠાનમાં તકલીફો અને સ્વયં પોતાની અસમર્થતા વિગેરેથી સાધનોમાં નિષ્ફલતાનું ભાન થવાથી તે સાધનોમાં વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થાય છે. સામે પક્ષે ભગવાન્ તો કર્તુમ્ - અકર્તુમ્ - અન્યથાકર્તુમ્ સમર્થ છે એમ પ્રતીત

થવાથી જીવ ભગવાનને શરણે જાય છે. આ અંશમાં શરણાગતિ સંન્યાસ જેવી હોવાથી સર્વધર્મોના ત્યાગનો ઉપદેશ સુસંગત છે કારણકે ધર્મત્યાગજ શરણાગતિ કે સંન્યાસ નો પૂર્વાંગ છે. જો આમ ન હોત તો શરણાગતિ સંભવજ ન હોત ! આમ ‘ન વિહતો ધર્મ’ ધર્મબાધ ન થવાનું કારણ સિદ્ધ થઈ જાય છે. ‘વચનતઃ’ આ ભાવપ્રધાન નિર્દેશ છે કારણકે ધર્મત્યાગ વચનબલથી પ્રાપ્ત છે. તેથી શરણાગતિમાં અન્ય બધા ધર્મો પરધર્મ છે એમ સમજવું.

આમ ન્યાસાદેશને કારણે કેમ ધર્મનું ઉલ્લંઘન ન થયું એ હેતુ બતાવ્યો પણ આ ઉપદેશ પછી અર્જુને ન તો ઐહિક કે ન પારલૌકિક ધર્મ છોડ્યા! આ સ્થિતિમાં ધર્મત્યાગનો ઉપદેશ નિષ્ફલ નથી તેમાટે બીજો હેતુ બતાવે છે.

### અકિંચનાધિક્રિયોક્તા :

જેની પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિ ભગવાનને અધીન છે. જે કાંઈ કરે છે તે ભગવાનજ કરે છે. પોતાની પાસે કરવાનું કાંઈજ નથી. એવા નિઃસ્વ કે અકિંચ્યન જ શરણાગતિના અધિકારી છે. અને અકિંચ્યન થવામાટે સર્વધર્મત્યાગના રૂપમાં ઉપદેશ છે. યથા દ્રોણાદિને અલંકાર રહિત મારવા તેમજ રાજ્યાદિને ઉપભોગ કે ત્યાગ ભગવદ્વિચ્છા અનુસારજ કરવાના છે એમ સૂચિત થાય છે. શરણાગતે કેમ અકિંચ્યન હોવું જોઈએ ? કારણકે ભગવદીય તો સ્વતઃ અન્યત્ર પ્રવૃત્ત થશે નહીં, થશે તો નિષ્ફલ જશે તેથી ભગવદિતર વાતોથી તો દૂરજ રહેશે. આ શંકાના સમાધાનમાં ત્રીજો કલ્પ કહે છે.

### કાર્પણ્યં વાઙ્ગમુક્તમ્ :

અર્થાત્ દીનતા શરણાગતિનું પ્રથમ અંગ છે. ઐહિક કે પારલૌકિક સાધનોથી રહિત હોવાનું ભાન પોતાનામાં દીનતાની અનુભૂતિ છે. કોઈક વાર ભગવદ્બલને કારણે ઉદ્ધત થવાથી શરણાગતિ બાધિત થઈ શકે છે. તેથી દીનતાનો ઉપદેશ સર્વધર્મત્યાગથી ઈંગિત છે. મારી પાસે કોઈ સાધન નથી કેવલ ભગવાનજ મારા જેવા દીન-હીનને આશરો આપી શકે આ ભાવ આવવો તે જ સર્વધર્મત્યાગ છે. “કૃપણઃ સ તુ વિજ્ઞેયો યઃ અનાલોચિત યાયકઃ” ભગવાન્ અર્જુનને કહે છે ‘તું કૃપણ બન’ અર્થાત્ તું મારા કે તારા પોતાના બારામાં કોઈ પણ સ્વરૂપ કે ધર્મનો વિચાર કર્યા વગર શરણાગતિનો અનાલોચિત યાયક બની જા. આમ કૃપણતાજ આ કલ્પમાં શરણાગતિનું અંગ છે. અને ભગવાનનો આશરો થવામાં જે વિઘ્ન આવશે તે બધી વાતો પાપ (પ્રતિબંધકતા) કહેવાશે. આ વિઘ્નો આધિભૌતિક, આધ્યાત્મિક કે આધિદેવિક કે અનેક પ્રકારે હોઈ શકે છે પણ ભગવાન્ અને અર્જુનના પારસ્પારિક સમ્બંધને કારણે ભગવાન્ સ્વયં દૂર કરશે. જેનો ઉલ્લેખ ‘પાપેભ્યઃ’ એ બહુવચનદ્વારા કર્યો છે.



પરન્તુ જે સંસારી છે, આર્ત છે તેનેમાટે ભગવત્ કે સ્વસ્વરૂપ અને ધર્મનું જ્ઞાન શરણાગતિમાં પ્રતિબન્ધક નહીં થાય. પ્રત્યુત ભગવાનનું માહાત્મ્યજ્ઞાન ભગવાનના ધર્મોના જ્ઞાનથીજ થશે અને અધિક માહાત્મ્યજ્ઞાનથી શરણાગતિ દઢ થશે. આ શંકાના સમાધાનમાં ચોથો કલ્પ બતાવે છે.

### મદિતરભજનાપેક્ષાણં વા વ્યપોઢં :

મહત્ અશક્ય કે સુશક્ય કામમાં કેવલ હરિનોજ આશરો રાખવો જે સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્યથી સ્પષ્ટ થાય છે. ભગવાન્ સિવાય તત્ત્વ દેવતાઓના ભજનના શાસ્ત્રીયવિધાનોથી પ્રાપ્ત બધા ધર્મોને છોડી કેવલ એક ભગવાનનુંજ શરણ સ્વીકારવું. ‘સર્વધર્મપરિત્યાગ’માં ‘પરિ’નો અર્થ છે લૌકિક અપેક્ષાઓનો ત્યાગ કરી દેવો જેમકે ભગવાન્ સિવાય બધી વસ્તુ, કોઈનું પણ ભજન, કોઈ પાસેથી કોઈ પણ અપેક્ષા રાખવી આ ત્રણે વાતોનું નિરાકરણ અભિપ્રેત છે. સુશક્ય અથવા અત્યન્ત અશક્ય કાર્યમાં પણ ભગવાનનો જ આશરો રાખવાથી શરણ સિદ્ધ થશે.

એક શંકા એ થાય છે કે પાપના ડરથી શરણાગતિના વિધાનની આવશ્યકતા નહોતી. કારણકે પાપ તો પ્રાયશ્ચિત્તથી પણ દૂર થઈ શકે. તેના સમાધાનમાં કહે છે.

### દુઃસાધ્યેચ્છોદ્યમૌ વા ક્વચિદ્વપશમિતૌ :

અર્થાત્ ભગવાન્ એક વાર જીવનો અંગીકાર કરી લે તો પાપની સંભાવનાજ રહેતી નથી અને પ્રાચીન પ્રારબ્ધવશ પાપની સંભાવના પણ ભગવાન્દ્વારાજ દૂર થાય છે તેથી દુઃસાધ્ય પાપનિવૃત્તિમાટે જે ઈચ્છા કે ઉદ્યમ થાય તેને દૂર કરવા ધર્મત્યાગની વાત કહી છે. અહીં ભગવાન્ સિવાય અન્ય બધા ધર્મોનો ત્યાગ કરીને ભગવાનનાજ શરણમાં જવું જોઈએ. આ જ ‘સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજ’નો અર્થ છે. ભગવાનનું એ ઐશ્વર્ય છે કે જીવને નાનીવાતમાં પણ બહુ મોટું દાન આપી દે છે. ભગવાને અર્જુનને શરણાગતિનું દાન કર્યું છે. કેવલ શરણમાં આવવાની આજ્ઞાજ નહીં પ્રત્યુત તેને શરણાગત માની લીધો છે એ આશ્વાસન આપે છે. આ સમજવાથી સમાધાન થાય છે કે જે શરણાગત છે તેને દુઃસાધ્ય ઈચ્છા કે ઉદ્યમની આવશ્યકતાજ નથી. પરન્તુ ક્યારેક અજ્ઞાનવશ આવી ઈચ્છા કે ઉદ્યમ થઈ જાય, જેમકે વ્રજભક્તોદ્ધારા ઈન્દ્રયાગ વિગેરે કરવો. તેથી મૂલશ્લોકમાં જે ‘ક્વચિત્’ પદથી દ્યોતિત છે તે ક્યારેક શરણાગતિથી વિપરીત કૃતિ પણ થઈ શકે છે. જેને સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય કહીને એ સંભાવનાનું ઉપશમન કર્યું છે.

આ પ્રમાણે અન્યભજન કે અન્યથી કોઈ અપેક્ષા રાખવાનો નિષેધ કરીને

ધર્મત્યાગ કત્યો. પણ લોકમાં કોઈ પર આ ધર્મત્યાગથી વિપરીત પ્રભાવ પડી શકે છે તો ધર્મત્યાગ તો ન કરવો જોઈએ ! આ આક્ષેપનું સમાધાન છઠ્ઠા વિકલ્પથી કરે છે.

### અન્યસંમેલને વા બ્રહ્માસ્ત્રન્યાય ઉક્ત :

શ્રીહનુમાનજીની કથાથી સુવિદિત છે કે અન્ય ધર્મનો આશરો લેવાથી શરણાગતિ નિર્બલ થઈ જાય છે. તેથી શરણાગતિની રક્ષામાટે પણ ધર્મત્યાગ આવશ્યક છે તેથી ‘મામેક’માં ‘એક’ શબ્દ ભારપૂર્વક કત્યો. ‘મામ્ શરણં વ્રજ’ પણ કહી શકાત. વ્યાકરણની દૃષ્ટિથી પણ ‘મામ્’ એકવચનનું રૂપ હોવાથી એકત્વતા તો પ્રાપ્ત થતી હતીજ પણ ‘એક’ શબ્દથી ઈંગિત છે કે દેશ - કાલ કે અન્ય કોઈની અપેક્ષા રાખ્યા વિના કેવલ ભગવાનનીજ શરણમાં જવું. આથી ધર્મનો બાધ થતો નથી પહેલાના વિકલ્પોની જેમ.

### પુષ્ટિપ્રપત્તિમાર્ગીય ફલ :

ઉપરોક્ત ન્યાસાદેશ ગ્રન્થપર વિઠ્ઠલેશપ્રભુની વિવૃત્તિના પુરસ્કૃતિક વ્યાખ્યાનના આધારે ‘સર્વધર્માન્’ શ્લોકથી સ્વતન્ત્ર શરણાગતિમાર્ગ અધિકારીને કઈ રીતે ફલિત થઈ રત્યો છે, ચાલે અંશાત્મના કે પૂર્ણરીતે તે બોધિત થઈ રત્યું છે.

પુષ્ટિપ્રપત્તિસ્વરૂપ : ભક્તિના અનુકલ્પતયા પ્રપત્તિ કે શરણાગતિ માર્ગનો ઉપદેશ કરવાવાળા શ્રીઆચાર્યજી પૃથક્કશરણમાર્ગોપદેષ્ટા છે. જે શરણાગતિમાં અન્યાશ્રયત્યાગપૂર્વક અનન્યાશ્રય છે, સાધકને સાધનોની વિફલતા અને કર્તુમ્ - અકર્તુમ્ - અન્યથાકર્તુમ્ સમર્થ ભગવાનની પ્રતીતીથી સર્વધર્મોનો ત્યાગ કરી એકમાત્ર ધર્મનેજ શરણે જાય છે. વળી જે શરણાગતિ ભગવદાસક્તિ અને ભગવદ્વ્યસનભાવમાં પર્યવસાયી થવાવાળી છે તે શરણાગતિ તો પુષ્ટિમાર્ગીય સિદ્ધ થઈ જાણવી. “તસ્માન્ મચ્છરણં ગોષ્ઠં મન્નાથં મત્પરિગ્રહમ્, ગોપાયે સ્વાત્મયોગેન સોડયં મે વ્રત આહિતઃ” આમાં શરણાગત જીવોની પાપમુક્તિનો ઉલ્લેખ હોતો નથી પરન્તુ આ જીવોની સર્વપ્રકારે રક્ષાનો ભાર ઉપાડવાની પ્રતિજ્ઞા એ પૃથક્કશરણમાર્ગના લક્ષણનો ઉપદેશ આપશ્રી ભગવદ્વચનોથી અને ગોવર્ધનધારણ લીલા પ્રસંગથી બતાવે છે. આથી આ પ્રકારની શરણાગતિમાં, શરણાગતિના અંગભૂત ધર્મોને છોડીને અન્ય બધા ધર્મો પરધર્મો હોવાથી ધર્મત્યાગની ભગવદાજ્ઞા અને વચનબલથી ઉપદેશ સુસંગત અને સાધક છે નહીં કે ધર્મ બાધ હોવાનો હેતુ. એટલુંજ નહીં પુષ્ટિશરણમાં ભગવાનની આજ્ઞામાં એક વિશેષ આશ્વાસન એ છે કે ક્યાંક જો શરણાગતિના અંગભૂત ધર્મોનું ઉલ્લંઘન થાય તો પાપની સંભાવનાનો અભિપ્રાય એ છે કે પાપ ભગવાન્ ઉત્પન્ન થવાજ નહીં દે. અને એ રીતે પ્રભુ રક્ષા કરશે જેથી પ્રપત્તિમાં વિઘ્ન ન આવે. તેથી શરણાગતિના દાનના ભગવદ્

આશ્વાસનથી પુષ્ટિજીવોને શોક પણ નહીં થાય. આ પુષ્ટિશરણની પ્રાપ્તિ એ ફલપ્રાપ્તિ છે. ભગવત્પ્રયત્નારબ્ધા ધર્મશરણાગતિ જે ભગવદ્ભક્તિ પર્યવસાયિની થાય છે તે શુદ્ધપુષ્ટિરૂપા શરણાગતિ જાણવી. અને અધિકારભેદથી જીવપ્રયત્નારબ્ધા ભક્ત્યર્થા ધર્મશરણાગતિ મર્યાદાપુષ્ટિ, ભક્તિઅંગભૂતા ધર્મશરણાગતિ પ્રવાહપુષ્ટિ હોઈ શકે છે. એ રીતે અર્જુનનો અંગીકાર મર્યાદાપુષ્ટિના રૂપમાં થયો હતો. ન્યાસાદેશ એ એક શ્લોકમાં શરણાગતિના જે ધર્મો/અંગો કઈ રીતે ધર્મત્યાગની આજ્ઞા સાથે સુસંગત થઈને શરણાગતિના સાધક, ફલરૂપા થાય છે તે શ્રીમદ્ગુસાંઈજીની વિવૃત્તિથી જોશું.

કાર્પણ્ય વા અરૂગમુક્તમ્ : અર્થાત્ દીનતા શરણાગતિનું પ્રથમ અંગ છે. ઐહિક પારલૌકિક સાધનરહિતતાથી પોતાનામાં દીનતાની અનુભૂતિ, ક્વચિત્ ભગવત્બલથી ઉદ્ધત થવાથી શરણાગતિ ભગ્ન થઈ શકે છે. તેથી દીનતાની પ્રપ્તિમાટે સર્વધર્મત્યાગનો ઉપદેશ છે. બીજા અર્થમાં કૃપાણતા, શરણાગતિનું વિલક્ષણ અંગ છે. તેથી ભગવાનનો ઉપદેશ છે કે તારા પોતાના કે મારા કોઈ પણ ધર્મ કે સ્વરૂપ નો વિચાર ન કરતાં/છોડીને અનાલોચિત યાચક બની જા. વળી ભગવાનનો આશ્રય બનવામાં જે વિઘ્ન/પ્રતિબંધ આવશે જેને ભગવાન પાપ કહે છે, ચાહે આધિભૌતિક આધ્યાત્મિક કે આધિદૈવિક કે અન્ય કોઈ પણ. પ્રભુ શરણાગત જીવ સાથેના સમ્બંધને કારણે આશ્વસ્ત કરે છે કે તેની ચિન્તા નહીં કર/શોક નહીં કર. ભગવદાશ્રયની લભ્યતામાં પ્રભુદ્વારા સ્વયં વિઘ્ન દૂર કરવા કે ઉત્પન્ન ન કરવા, આ શું ફલશ્રુતિ નથી ?

મદિતરભજનાપેક્ષણં વા વ્યપોઢમ્ : શરણાગતિનું સ્વરૂપજ એ પ્રકારનું છે કે અન્યાશ્રય ત્યાગપૂર્વક કેવલ ભગવાનમાંજ અનન્યાશ્રય રાખવો. અહીં મદિતરભજનમાં મત્ શબ્દ ભગવાનના સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્યનો એક રીતે અનુવાદ પણ કહી શકાય તેથી ભગવાનને છોડીને ઈતરભજન કે અપેક્ષા નો નિષેધ કર્યો છે. આ ભગવદેકનિષ્ઠા અને અન્યાશ્રય ત્યાગ શરણાગતિનું સાધક થશે.

દુઃસાધ્યેચ્છોદમૌ વા ક્વચિદ્વપશમિતૌ : ભગવાનના એક વાર અંગીકાર પછી પાપની સંભાવનાજ રહેતી નથી. તેથી દુઃસાધ્ય પાપનિવૃત્તિમાટે જે ઈચ્છા કે ઉદમ ન થાય અને શરણાગતને તેની આવશ્યકતાજ નથી. પરંતુ ક્વચિત્ અજ્ઞાનવશ પાપ કે દોષ દૂર કરવા અન્યસાધનો, ઈચ્છા કે ઉદમ કરશે તો શરણાગતિથી વંચિત રહી જવાશે. તેથી સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજ કહીને ભગવાન શરણાગતિનું દાન કરે છે. આ જ તો વિશેષતા છે જે ફલાત્મક છે.

અન્યસંમેલને વા બ્રહ્માસ્ત્રન્યાય : શ્રીહનુમાનજીની કથાથી સિદ્ધ છે કે

શરણાગત જો અન્યધર્મોનો આશરો લે તો શરણાગતિ નિર્બલ થઈ જાય છે. તેથી શરણાગતિની રક્ષામાટે પણ ‘ધર્મત્યાગ’ આવશ્યક છે (અન્યાશ્રય ત્યાગ) અને મામેકમાં એક શબ્દદ્વારા સ્કૂટ છે કે દેશ - કાલ અથવા અન્ય કોઈની પણ અપેક્ષા રાખ્યા વિના કેવલ ભગવાનના શરણમાંજ જવું. જે અનન્યાશ્રયની પ્રાપ્તિ અને શરણાગતિનું ફલ છે. અને ધર્મનો બાધ નથી થતો. પુષ્ટિપ્રપત્તિને સર્વધર્મોના ત્યાગપૂર્વક કેવલ ધર્મશરણાગતિને પુષ્ટિપ્રપત્તિતયા સિદ્ધ કરે છે. આમ ભગવાનના વચનોને સુસંગત ન્યાસાદેશની વ્યાખ્યામાં અને તેમાં બતાવેલ શરણાગતિના ધર્મો/અંગો સહિત આશ્રયનો ભાવ અને કાયિક વાચિક અને માનસિક execution એ તો ઉત્તમાધિકારીમાં પ્રગટ થાય છે જ્યારે મધ્યમ કે કનિષ્ઠ અધિકારીમાં શરણાગતિનું સ્વરૂપ તત્તદ્ અંશોમાં ફલિત થતું હોય છે.

### પુષ્ટિભક્તિમાર્ગીય ફલ :

ગીતાજીના શ્લોકનું મુખ્ય તાત્પર્ય તો ‘સર્વાત્મભાવ’માં જ છે. ધર્મત્યાગની આજ્ઞાથી ધર્મહાનિ નથી થતી તેના હેતુ (કારણ) ‘ન્યાસાદેશ’થી લઈને ‘બ્રહ્માસ્ત્રન્યાય’ સુધી દેખાડ્યા. ભક્તિમાર્ગીય સંન્યાસી તો કેવલ વ્રજગોપિકાઓજ થઈ શકી. ગોપીજનોના સન્દર્ભમાં ન્યાસનું કથન ભાગવતના દશમસ્કન્ધના ફલપ્રકરણમાં આવે છે.

“સન્ત્યજ્ય સર્વવિષયાન...” (ભાગ.પુરા.૧૦૧૨૮૩૧) ગોપીજનો કહે છે અમે વાસનાસહિત સર્વવિષયોને છોડીને આપના ચરણમાં આવ્યા છીએ તેથી આપ અમને ભજો પણ અમને છોડો નહીં.

“કાસ્ત્ર્યંગ તે ...” (ભાગ.પુરા.૧૦૧૨૮૪૦) આના સુબોધિનીજીમાં શ્રીમહાપ્રભુજી કહે છે પ્રમાણબલથી વિરુદ્ધ ભલે કાંઈ મર્યાદાભંગમાં દૂષણ હોય અમને તો પ્રમેયમાંજ આસક્તિ હોવાથી સાધનદષ્ટિથી અપકિર્તી થતાં અમને વાંધો નથી. કારણકે ભગવાનમાટે આર્યપંથનો ત્યાગ સ્ત્રીઓમાટે સૌથી મોટો ત્યાગ છે. આથી આ ત્યાગ તો (સાધનોનો, પ્રમાણનો) ફલાત્મક છે.

“કિંકરીણામ્...” (ભાગ.પુરા.૧૦૧૨૮૪૧) આના સુબોધિનીજીમાં કહે છે અમારા શિર પર આપ હસ્ત ધારણ કરશો તો આ મર્યાદાભંગ નથી. ધર્મમર્યાદાના આપ રક્ષક છો છતાં પણ અમે તો કિંકરી (દાસી) છીએ. આપનો શ્રીહસ્ત પધરાવશો તો મર્યાદાભંગ થશે તો પણ તે અમારા રસનું પોષણ કરશે. વળી દાસ - દાસીનો સ્વતન્ત્ર ધર્મ ન હોય. સ્વામીના કૃત્યા પ્રમાણેજ કરવાનું હોય.

“એવં મદર્થોજ્જિહત લોકવેદ સ્વાનામ્...” (ભાગ.પુરા.૧૦૧૩૨૧૨૧) ભગવાન કહે છે જેમણે મારા માટે લોક - વેદ છોડ્યા છે જે અતિદુષ્કર છે. તે વૃથાત્યાગ પણ નથી કે મોક્ષાર્થ પણ નથી પણ મદર્થે ત્યાગ છે. મને એકનેજ પ્રાપ્ત કરવાની

ઈચ્છાથી મારું ભજન કર્યું તેથી મેં તેમનું પ્રતિભજન કર્યું. મારે પણ તેમને મળવું છે અત્યાર સુધી હું પણ તેમનું પરોક્ષ ભજન કરતો હતો, અન્તર્યામન થઈને.

“પતિસુતાન્વય ભ્રાતૃબાન્ધવાન્...” (ભાગ.પુરા.૧૦।૩૧।૧૬) પતિ સુત ભાઈ બધાંને છોડીને આપની પાસે આવ્યા છીએ જે અતિશય મુશ્કેલ છે. સર્વત્યાગની વાત. ધર્મીની પ્રાપ્તિમાટે કરવામાં આવતો ધર્મનો ત્યાગ.

આ બધાં વચનોથી વ્રજની ગોપિકાઓએ લોક - વેદના બધા ધર્મોનો પરિત્યાગ કરી એક ભગવાનનોજ આશરો લીધો હતો. આ ભાવને ‘સર્વધર્મીન્’થી કહી રહ્યા છે. વળી કર્મ જ્ઞાન કે ભક્તિ થી મોક્ષ આપવાવાળા માર્ગોની પહોંચ ભગવાનના ધર્મો સુધીજ સીમિત છે. આથી ભગવાનના ધર્મ કે આજ્ઞા માંજ તેમનું પર્યવસાન થાય છે નહીંકે ધર્મીમાં. જ્યારે સર્વાત્મભાવ તો કેલવ ધર્મી ભગવાનમાંજ પર્યવસિત થાય છે. આથી સર્વાત્મભાવનો ઉપદેશજ ત્યાગના વિધાનમાં છે.

અકિંચનાધિક્રિયોક્તા : માં જે ભાવ ભાગવતના “તદર્થ વિનિવર્તિત સર્વકામ:...”(ભાગ.પુરા.૧૦।૨૮।૩૦) એવં “તન્મનસ્કાઃ તદાલાપા..” (ભાગ.પુરા.૧૦।૩૦।૪૪) એમાં કહ્યું છે ‘તદર્થ’ અથવા ભગવદર્થજ સઘળી કામના કરવા જેવી છે એમ નિશ્ચય કર્યો. ગોપીજનોએ બધી કામનાઓનો ત્યાગ કર્યો છે અને જેમનું મન અને વાણી પણ ભગવાનમાં લાગી રહેતી, જેમને પોતાની functional Identity પ્રભુને સોંપી દીધી હતી તેવા ભક્ત અકિંચ્યન કહેવાય છે. જેમને ભગવાનનો ક્ષણભર પણ વિલંબ સત્ય થતો નથી. અર્થાત્ જેમને સર્વાત્મભાવ થઈ જાય છે તેને પહેલાંજ બધું છૂટી જાય છે/ધર્મત્યાગ થઈ જાય છે. જેમ વસંત આવતાં જૂના પાન ખરી પડે છે અને નવી ફૂંપણો ફૂટે છે. અહીં અકિંચ્યન પદદ્વારા અધિકાર બતાવ્યો છે.

કાર્પણવાહ્નમુક્તમ્ : ભગવાન ન પ્રકટ થવાથી ક્લેશ અહીં પણ થાય છે. બધા સાધનો નિષ્ફલ જવાથી ગોપીજનો ભાગવતના તામસફલ પ્રકરણમાં કૃષ્ણદર્શનની તીવ્રતમ લાલસાથી રોવા લાગ્યા. “રુરુદુઃસુસ્વરં રાજન્ કૃષ્ણદર્શન લાલસા” (ભાગ.પુરા.૧૦।૩૨।૧) તેથી રુદનથી જે દૈન્ય પ્રકટ થાય છે, તેમાં પ્રભુપ્રાપ્તિમાટે નિઃસાધનતાનો ભાવ થાય છે. તે દૈન્યજ ભગવાનના પ્રકટ થવાનું કારણ બની જાય છે પછી ક્લેશ રહેશે નહીં, દીનતાથી ક્લેશ દૂર થાય છે.

મદિતરભજનાપેક્ષાણં વા વ્યપોઢમ્ : ભગવત્ અપ્રાકટ્યથી જો ક્લેશ રહે તો તે ક્લેશ પણ રસાત્મક હોવાથી આનન્દાત્મક છે. અહીં એ આશય છે કે ભગવાન જીવના ભજનને અનુરૂપ તેને ફલદાન કરવાના રૂપમાં તેનું ભજન કરશે તે અપેક્ષા ઉચિત નથી.

આ વાત ‘નાહં તુ સખ્ય...’ (ભાગ.પુરા.૧૦।૩૨।૨૦)માં કહી છે. અર્થાત્ પ્રભુ જે ફલદાન આપી દે તો કદાચ તેમના ભક્તોની મનોવૃત્તિ પ્રભુમાંથી જરા પણ હટી જાય તે માટે તેમનું (ભક્તોનું) ભજન કરતા નથી. અથવા ‘સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય’નો અર્થ એમ પણ થઈ શકે કે ભગવાન્ પોતાનો આત્મારામ કે નિરપેક્ષ હોવાનો સ્વભાવ કે ધર્મને છોડી દે છે. આવા ભક્તોને છોડીને ભગવાન્ પાસેથી અન્યકોઈના ભજનની અપેક્ષા અસંભવ છે. (ભગવાનનું જીવ પ્રતિભજન) અને આ જ તો પરમ ફલ છે.

દુઃસાધ્યેચ્છોદ્યમૌ વા ક્વચિદ્વપશમિતૌ : સર્વાત્મભાવ સાધનોથી સિદ્ધ થવો અશક્ય છે. તેથી સાધનોથી આ ભાવને સાધવાની ઈચ્છા કે પ્રયત્ન વ્યર્થ છે.

અન્યસંમેલને વા બ્રહ્માસ્ત્રન્યાય : જેમને આ ભાવ થઈ જાય છે તેમનો અન્ય સાથે સમ્બન્ધ પણ ન રહેવો જોઈએ. બ્રહ્માસ્ત્રન્યાયે સાવધાની રાખવાની છે કે આ ભાવ રહેતાં કોઈ પણ પ્રકારનો અન્યાશ્રય ન થઈ જાય અથવા સર્વાત્મભાવ અન્યભાવો સાથે સમ્મિલિત ન થવો જોઈએ. જેમકે રાસપ્રકરણમાં ગોપીજનો પાછા જવાની આજ્ઞાના મર્યાદાભાવને પોતાના પુષ્ટિભાવસાથે મિશ્રીત કરવા ઈચ્છતા નહોતા. આથી અહીં પણ ‘સર્વધર્માન્’ એ ભગવાન્ સાથે જોડવું જોઈએ અર્થાત્ પુષ્ટિથી અતિરિક્ત ભગવાનના અન્ય બધા મર્યાદા ધર્મોને છોડીને એક ભગવાનને શરણે જવું જોઈએ. અધિકારી જીવ જ્યારે સર્વાત્મભાવને મોક્ષથી પણ અધિક પરમપુરુષાર્થ જાણીને ભગવદ્ભજન કરે છે પણ જ્યારે એ ભાવ તેને પ્રાપ્ત થતો નથી ત્યારે તે તેની તીવ્રતર અપેક્ષામાં આર્ત બનીને સમજી જાય છે કે આ ભાવતો કેવલ ભગવાનના અનુગ્રહથીજ મળી શકે છે. ત્યારે પોતાની અસમર્થતા અને નિઃસ્વ હોવાની અનુભૂતિમાં ભગવદનુગ્રહ કે સર્વાત્મભાવ પ્રાપ્ત કરવા ભગવાનનુંજ શરણ પકડે છે અને તેને તે ભાવ પ્રાપ્ત પણ થઈ શકે છે. પરન્તુ ફલરૂપા શરણાગતિ કે સર્વાત્મભાવ કોઈ સાધનથી પ્રાપ્ત નથી થઈ શકતા. આથી બન્ને ભાવ માટે ‘વરદાન’રૂપી વચનથી કહે છે. ‘સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજ’ આમ લૌકિક વૈદિક કે ભગવાન્ ના ધર્મોની અપેક્ષા રાખ્યા વિના ‘શરણં વ્રજ’ આ ઉત્તરાર્ધના વચનમાં શરણાગતિનું વરદાન છે. તથા ‘એકં મામ્ વ્રજ’ અંશથી ભગવાન્ જે કેવલ ભાવ વિષયજ છે. તેની પ્રાપ્તિનું વરદાન છે પછી શોક પણ નહીં રહે. જે માશુયથી કત્યું. પુષ્ટિમાર્ગી ભક્તના શોકની નિવૃત્તિ તો કેવલ ભાવમાત્ર પ્રાપ્ત થતાં રસથીજ થઈ શકે છે. આથી ગોપીગીત (૧૪)માં આ ભાવૈકલભ્ય સ્વરૂપને શોક દૂર કરવાના રૂપમાં વર્ણિત કર્યો છે. આ રીતે ગીતાજ્ઞના શ્લોકની સંગતિ છે.

**ઉપસંહાર :**

ભગવાને દૈવીજીવોમાટે અર્જુનને નિમિત્ત બનાવી પરમની પ્રાપ્તિનું ગુપ્તતમ

રહસ્ય બતાવી દીધું અને વાક્યપતિએ ત્યાં સુધી પહોંચવાનો સુકરપથ નામે પુષ્ટિભક્તિમાર્ગ કંડારી આપ્યો. પુષ્ટિ સાધના ચાહે ભક્તિપક્ષ, ચાહે કથા - ગુણગાન સંગે કે શરણમાર્ગે હોય સાધ્ય તો કેવલ અને એકમાત્ર ભગવાનજ છે. ભગવાનથી ઈતર જે પણ કાંઈ સાધન, ધર્મો છે તે તો ભગવદ્ભાવમાં વિઘ્ન પેદા કરનારા છે. તેથી ધર્મરૂપની પ્રાપ્તિમાટેનો ઉપદેશ, શરણાગત અને ભક્ત માટે ‘તથાસ્તુ’ પ્રકારે પ્રભુનું વરદાન છે. જોકે તેનો બોધ અને પ્રાપ્તિ પોતાના અધિકારાનુસાર, ભગવદ્દિશ્ણા અને અનુગ્રહ થી ફલ વૈવિધ્યરૂપે સર્વાંશે કે અંશાત્મના થવો લીલાર્થ ભગવાનનું આત્મરમાણજ છે. જે સાધનાનું તત્ત્વ અને દર્શન એકમેવાદ્વિતીય બ્રહ્મ છે (પ્રમેય) જે સિદ્ધાન્તનું પ્રમાણ સ્વયં પરમાત્મા છે, જે માર્ગનો ભજનીય ભગવાન છે (સાધન) તે ભક્તિ કે શરણાગતિ ની સાધનાનું ફલ/સાધ્ય કે ગન્તવ્ય એ બ્રહ્મ પરમાત્મા અને ભગવાન નું જ્યાં એકીકરણ છે તે ધર્મિશરણાગતિ કે ધર્મિસર્વાત્મભાવ સિવાય બીજું શું હોઈ શકે ? તેથી તો કદાચ શ્રીલક્ષ્મીજી ભગવાનના હૃદય કે મનમાં સ્થાન ન ઝંખતા પ્રભુના ચરણોમાં સ્થાન આપવા વીનવે છે. કારણકે એકવાર ભગવાન જેને પોતાના ચરણોમાં સ્થાન આપે છે તેને કદાપિ છોડતા નથી. અને આ જ તો પરમફલ છે જે કોઈ પણ વિલિતફલથી સર્વોત્કૃષ્ટ અને પરમપુરુષાર્થ છે.

જે અકિંચન છે, જે કૃપણ છે, જે નિઃસાધન છે, પોતાને આશ્રય કે સર્વાત્મભાવની પ્રાપ્તિમાં અસમર્થ કે દીન અનુભવે છે, જે નિઃસ્વ છે, જેને વાસનાસહિત સર્વધર્મોને ભગવદર્થે છોડ્યા છે, જે દાસ કે દાસીના ભાવથી કોઈજ સ્વતન્ત્રધર્મ, ઈચ્છા, સમ્બન્ધ, કર્તૃત્વ, જ્ઞાતૃત્વ કે ભોક્તૃત્વ ધરાવતાં નથી, જેઓ ભગવાનને છોડીને સ્વતઃ ક્યાંય પ્રવૃત્ત કે આશ્રિત થતા નથી. તેઓ તો ધર્મીની શરણાગતિ કે સર્વાત્મભાવ વાળા ભક્તો છે. જેમનું ભગવાન પ્રતિભજન કરે છે અને ત્યારે તો ઠાકોરજી કહે છે મારું માથું દુઃખતું ત્યારેજ મટે જ્યારે આવા ભક્તોની ચરણરજ મળે. ફલમાં કહો કે લીલામાં કહો, આનાથી વિશેષ શું climax હોઈ શકે !!

યાદશોડસિ હરે ! કૃષ્ણ ! તાદશાય નમોડસ્તુ તે ।

યાદશોડસ્મિ હરે ! કૃષ્ણ ! તાદશં માં હિ પાલય ॥

ત્વં જય સતતં શ્રીગોવર્ધનધર પાલય નિજદાસાન ।

સન્દર્ભ ગ્રન્થ :

ન્યાસાદેશ - શ્રીમદ્વિઠ્ઠલેશપ્રભુચરણ વિરચિત વિવૃત્તિના આધારે.

(સમ્પાદક ગો. શ્રીશ્યામમનોહરજી)



# વાર્તા સાહિત્યમાં ફળનિરૂપણ (પુષ્ટિ)

દેવેન્દ્ર શાહ

## ૧. ફળનું સ્વરૂપ :

શ્રીગોકુળનાથજીનો વાર્તા સાહિત્ય અને ફળ સમ્બન્ધિત પ્રસિદ્ધ પ્રસંગ છે. એકવાર નિત્યસત્સંગમાં કોઈક ભગવદીયોના ચરિત્રોનું વિવેચન - પરિચર્યા એવી ચાલીકે સૌ તેના રસમાં ડૂબેલા રહ્યા તેથી સમયનું ભાન રહ્યું નહીં અને અર્ધરાત્રી થઈ ગઈ તેથી સત્સંગને આપશ્રીએ વિરામ આપ્યો. ત્યારે કોઈક વૈષ્ણવે આપને સુધી કરાવી કે આજે શ્રીસુબોધિનીજીનું વાંચન તો રહી ગયું. ત્યારે આપશ્રીએ સસ્મિત આજ્ઞા કરી કે “આજે તો શ્રીસુબોધિનીજીનું ફળ કહ્યું”. આપશ્રીનો કહવાનો આશય એ હતો કે ભગવદ્ રસાનુભૂતિ તે જ ફળ છે. આજે, જેઓને તેવી રસાનુભૂતિ સંદેવ રહે છે તેમના ચરિત્રોમાં આપણે પણ ડૂબેલા રહ્યા. આવા ફળથી વિશેષ શાની અપેક્ષા હોય!

## ૨. ફળની(રેન્જ) :

શ્રીઆચાર્યજી સિદ્ધાન્તમુક્તાવલીથી સેવાને જ ફળ કહેવા માંગે છે અને શ્રીસુબોધિનીજીમાં ભગવાનને જ ફળ કહ્યું છે. વળી પ્રભુ અંતઃકરણમાં જે સુખાનુભવ કરાવે છે તે પણ ફળ છે. (ભગવાનરૂપી) ફળની (સેવારૂપી) ફળથી જે (સુખાનુભૂતિ) થાય તે ફળ.

કારણ - કાર્યમાં દરેક કડીરૂપ કાર્ય કે જે ફરી કારણ બનવાની ક્ષમતા ધરાવે છે તે પણ ફળ તો છે. વૃક્ષના બીજમાંથી અંકુરથી શરુ કરી ખાવાલાયક પાકું ફળ થાય “બ્લેડ્ બ્લેડ્ એન્ડ્ સૂ” તે પરમ ફળ.

## ખોડશગ્રન્થમાં ફળનું નિરૂપણ :

ખોડશગ્રન્થોમાં ફળનું સાક્ષાત્ કે પરોક્ષ નિરૂપણ બધે જ છે પણ સેવાફળમાં તો સેવાથી થતું સેવારૂપ ફળ, સેવ્યફળ, સેવ્યાનુભૂતિ પણ ફળ વગેરે પ્રકારે સ્પષ્ટરૂપે ફળનિરૂપણ છે. પરંતુ દરેક પ્રાચીન ટીકાકારની સમજણ અને અનુભૂતિ માં ભેદ હોવાને કારણે મુખ્ય અને ગૌણતા ક્રમ બદલાઈ જાય છે. પરંતુ કુલ્લે મળીને સર્વનો આશય સમાન જણાય છે. ભેદ એટલા માટે કે પ્રમેયરૂપ ફળને પ્રમાણથી સમજાવે છે. પ્રમેયને કદી પ્રમાણથી બાંધવામાં પણ આવે તો બે આંગળ છેટુ રહી જાય. હા, ભક્તના પ્રેમથી બંધાઈને કહી દે કે “અમે એવા રે, વળી બીજું કંઈ જે કહો તેવા રે”. કેમકે સર્વ કાંઈ તે જ છે. પ્રમેય - ફળ વાણીથીકે સમજથી અગોચર રહે તેમાં જ તેની ગરિમા છે અને



પૂર્ણતા છે. જે કંઈ ભેદ જણાય તેને આનંદમયી લીલા જાણે તો ભક્તિ, નહીં તો ભગતિ.

### ૩. સેવાફળમાં વર્ણિત વિષય :

શ્રીઆચાર્યજીએ સેવાફળને મુખ્ય ત્રણ વિભાગમાં વહેંચ્યો

૧. અલૌકિક સામર્થ્ય

૨. સાયુજ્ય

૩. વૈકુણ્ઠમાં સેવોપયોગી દેહ.

ફળપ્રાપ્તિમાં બાધ તે

૧. ઉદ્વેગ

૨. ભોગ

૩. પ્રતિબંધ

‘ભોગ’ નામથી ભાગવું નહીં કેમકે અલૌકિકભોગ તો ફળની મધ્યમાં પહેલા આવી બિરાજે છે. પ્રતિબંધ પણ જો ભગવત્કૃત હોય તો અનિવાર્ય. તેથી ત્યારે જીવે સ્વયં પોતાના પ્રતિ દષ્ટિ કરવી. શ્રીઆચાર્યજી ત્યાં પણ ઉપાય તો બતાવે છે, નિરાશ નથી કરતા. એકંદરે સેવાફળનું વિવરણ કરવામાં વિષ્ણુદાસ પ્રતિ નહીં પણ સર્વદાસ પ્રતિ સુદઢભાવ રાખ્યો છે, નહીં કે વિદ્રદ્દષ્ટિ.

### ૪. મારો વિષય :

જો કે મારો વિષય વાતસાહિત્યમાં ફળનિરૂપણ છે પરંતુ અહીં તેનું ‘એક્સટેન્શન’ શ્રીમહાપ્રભુજીના ઉપદેશગ્રન્થોમાં જે ફળરૂપ ઉપદેશ છે તેના સંદર્ભ સહિત વાતસાહિત્યમાં ફળનિરૂપણ તેમ લીધો છે. પોડશગ્રન્થો મુખ્યત્વે ઉપદેશ ગ્રન્થો છે. તેના વચનો ફળરૂપ નહીં તો પણ ફળનિર્દેષક કે ફળપ્રતિ દોરી જનાર કે ફળરૂપ તેમ સર્વ રીતે છે. પણ જે ભગવદીયને આ વચનો લાગુ પડે છે તે ભગવદીયોની અનુભૂતિ અધુરી નથી. તે તો શ્રીયમુનાજીમાં ખીલેલા કમળો પર ચાલીનેય સ્વસેવ્ય પ્રભુરૂપ ફળ સુધી પહોંચનારા સામર્થ્યવાન છે. તેઓ તો પ્રભુના સ્વરૂપકે લીલા સહિતના સ્વરૂપની અનુભૂતિ કરનારા ફળાનુભૂતિ જ કરી રહ્યા છે.

### ૪/૧. યમુનાષ્ટક :

યમુનાષ્ટકના આધારે પ્રભુના ઐશ્વર્ય સ્વરૂપા શ્રીયમુનાજીની અનુભૂતિ કિશોરીબાઈને થઈ. આ સ્તોત્રના ચોથા શ્લોકમાં શ્રીકૃષ્ણ અને શ્રીયમુનાજીમાં અભેદ દર્શાવેલ છે. તેથી કિશોરીબાઈને ફળાનુભૂતિ જ થઈ.

“સ્મરપિતુઃ શ્રિયં બિભ્રતીમ્” કામદેવ પ્રદ્યુમ્નજીના પિતા શ્રીકૃષ્ણની

શોભાને ધારણ કરનાર.

માધવદાસ (૯) : કે જે કામાસક્ત હતા, તેમણે વેશ્યા રાખી હતી. તેવા ઉપર પણ અલૈતુકી કૃપા કરીને ભગવદીય ગદાધરદાસે ભાજી મંગાવી, તેથી તેમની લૌકિક કામાસક્તિ અલૌકિક કામાસક્તિ બની ગઈ, કેમકે ‘અ’ વિષ્ણુરૂપ છે. તેમનો (૯) સ્મર વેશ્યામાંથી છૂટીને કૃષ્ણમાં લાગી ગયો અને ફળની શોભા તો છે કે તેમના સંગે તે વેશ્યા પણ કૃષ્ણાથી જોડાઈ. વળી તેમના માટે શ્રીવલ્લભે વચનામૃત કર્યા કે “જુઓ આ એ જ માધવદાસ છે...કેવો ટેકનો વૈષ્ણવ થયો”.

**“મુકુંદ રતિ વર્ધિની”** આ પણ ફળ.

એક સંન્યાસી નામે નરહર સંન્યાસી(૭૨) જેમને ત્યાગ તો કર્યો પણ વૈરાગ્ય નહોતો કેળવાયો, છતાં શ્રીવ્રજ અને શ્રીવલ્લભના સંગે ભક્તિમાર્ગ પર ચડી ગયો. સંન્યાસનો નિર્ણય શ્રીઆચાર્યજી પાસેથી સાચા અર્થમાં સમજ્યા. મોક્ષની કામનાથી સંન્યાસમાં પ્રવેશ્યા પણ મુકુંદ એવી પુષ્ટિ કરી કે શ્રીઠાકોરજીની લીલામાં મગ્ન કરી દીધા. આ ફળ કે મોક્ષની કામના મુકુંદ સુધી લંબાઈ.

**“ભુવં ભુવનપાવનીમ્”** પ્રભુને લાયક( પવિત્ર ) થવા રૂપ ફળ.

સાંસારિક રંગ - રાગમાં રત થવાથી અપવિત્ર થયેલા જીવાણદાસ (૫૧) નું બંધન-કેદ, વૈષ્ણવોના વચનમાં વિશ્વાસરૂપ યમુનાજીની ધારામાં સ્નાન કરવાથી છૂટી ગયું. શ્રીઆચાર્યજીની કૃપાદષ્ટિથી પાવન થયો (ફળ ૧) (વિશ્વાસ=ચાતક-સ્વાતિન્યાય) ત્યારે સંસારકેદમાંથી પણ છૂટ્યો (ફળ ૨) ભગવદ્ સુખાર્થ તે મેઘને વરસતો રોકવા પણ સમર્થ બન્યા (ફળ ૩) શ્રીઆચાર્યજીએ પૂછ્યું કે “મેઘ વર્ષ્યો હોત તો” ત્યારે તે કહે “એવો તે કોણ છે કે આપની આજ્ઞા દીધા પછી પણ વરસે” શ્રીઆચાર્યજીમાં વિરાટ વિશ્વાસ અને તે વિરાટ ફળ પણ.

**“કૃપાજલધિ સંશ્રિતે”** કૃપાસાગરથી સારી રીતે આશ્રય પામેલો હતો.

બુલામિશ્ર (૪૬) : અબૂધ પરંતુ વિદ્યારૂપ સરિતાની શોધમાં નીકળ્યો અને સાગરને પામી ગયો. અને ત્યાંથીય આગળ વધી ભક્તિને પામવા જતાં મહાસાગર શ્રીમહાપ્રભુજીની કૃપાને પામ્યો. આપશ્રીએ તેને ‘કૃષ્ણાશ્રય’ ભણાવ્યો અને કરાવ્યો. આ બુલામિશ્રે ભગવાનનો યશ ગાયો તો ભક્તનો યશ પ્રકટાવ્યો. આમ અનન્યાશ્રયરૂપ ફળ પામી તે માનસીમાં મગ્ન રહેતો. જુઓ, અહીં ફળરૂપ સરસ્વતી, ભગવાન, ભક્તિ, શ્રીઆચાર્યકૃપા, ભગવદ્ગુણગાન, ભગવાને બુલાનો યશ ગાયો. અનન્યાશ્રય અને માનસીમાં નિમગ્નતા...કોની - કોની બડાઈ કરવી ?

“મુરરિપોઃ પ્રિયમ્ભાવુકા”

“પ્રિયો ભવતિ સેવનાત્ તવ હરેર્યથા ગોપિકા”.

ગજજન (૧૩) : ગજજનના ઢીંચણ ઘસાઈ ગયા, ભગવાનની ઈચ્છાથી રિંગણલીલાનું અનુસરણ કરવાથી. કદાચ ભગવાન ભક્ત દ્વારા અસુરોના દલનની લીલા (મુરરિપુ) કરતા હોય, આવી માહાત્મ્ય જતાવનારી લીલાઓ કરીને, જીવના દોષોનું દલન કરીને ભક્તને સ્નેહની ટોચ પર દોરી જાય છે. તેવો વ્યસનભાવ ભક્તમાં પ્રકટ્યો તો શ્રીનવનિતપ્રિયજમાં વિરહજ્વરનો અનુભાવ પ્રકટ્યો. અને તે આવેશમાં આપ શ્રીઆચાર્યજીને કહે છે “મારા ગજજન વગર નહીં આરોગું” આનાથી વિશેષ ક્યું ફળ ?

“તનુનવત્વમેતાવતા” લીલોપયોગી અલૌકિક દેહ પ્રાપ્તિ.

શેઠ પુરુષોત્તમદાસ (૬) : શેઠ પુરુષોત્તમદાસનું ધન તો પ્રભુ અર્થે જ હતું. પરંતુ તનથી ગાયોની, ગુરુની, વૈષ્ણવોની અને સ્વપ્રભુ શ્રીમદનમોહનજીની દીનતાપૂર્વક સ્નેહાર્દ્ર સેવા કરતા. જે તન સેવામાં વપરાય તે ઘસાતું નથી પણ નવું થાય છે તેવો સાનુભવ તેમને પોતાના ભક્તપુત્ર ગોપાલદાસને કરાવ્યો, પોતાની તરુણાવસ્થાના દર્શન કરાવીને. તે એટલા માટે કે ગોપાલદાસનો બગાડ ન થાય. પુરુષોત્તમદાસ માટે આ નૂતન-દેહ તે ગૌણ છે. તેમને મન તો પ્રેમપૂર્વિકા સેવા જ મુખ્ય છે. આવો ફળ. “સ્મરશ્રમ જલાણુભિઃ સકલ ગાત્રજૈઃ સંગમઃ” ભગવલ્લીલાને અનુભૂતિરૂપ પરમફળનો રસ જ્યારે અધિકતાને કારણે છલકાઈ જાય તે સ્મરશ્રમજલાણુ તેવા ભગવદીયોનો સંગ ભગવત્કૃપાથી મળી જાય તો સૂક્ષ્મ કપડું પણ ભિંજાઈ જાય, તે “સકલ ગાત્રજૈઃ સંગમઃ” તેથી તેને પણ ભગવલ્લીલાનો સાનુભવ થાય.

વીરબાઈ (૬૧) : વીરબાઈને શ્રીગિરિરાજજી - હરિદાસવર્ધના સંગથી ભક્તિ દઢ થઈ છે કેમકે લીલામાં તે પુલિંદીની છે. આ વીરબાઈ પાસે શ્રીઠાકુરજીએ પુત્રપ્રસવ પછી પીંડરુમાં પણ પ્રીતિ=તાપવશ સેવા કરાવી. વાર્તાનો ભાવપ્રકાશ કહે છે, જેમ પુલિંદિનીને ચરણારવિંદના કુંકુમ દ્વારા બધા રસનો સાનુભવ કરાવ્યો તેમ અહીં પણ પતિભાવથી બધા રસનો સાનુભવ કરાવ્યો. આ ફળ.

૪/૨. બાલબોધ :

સ્વધર્મ (વાણશ્રમ ધર્મ) તદાશ્રય, તદીયતા. ભિન્ન - ભિન્ન અધિકારીના ભિન્ન - ભિન્ન ફળ. જે ‘સ્વધર્મ’ને પુષ્ટિભક્તિનું નામ આપીએ તો તદાશ્રય, તદીયતા તેમાં સમાઈ જાય. અને વણશ્રમ ધર્મ કહીએ તો તે તદાશ્રય અને તદીયતાનું અંગ બની જાય. માત્ર તદીયતા કહીએ તો તદાશ્રય તેનું અંગ બની જાય. જે અંગી તે મુખ્ય ફળ.

પદ્મનાભદાસ (૪) : પદ્મનાભદાસનો વણશ્રમધર્મ- બેટીનો વિવાહ કરતાં

તે જમાઈ વૈષ્ણવ હતો પણ સ્વજાતીનો નહોતો ત્યારે તદ્દીયતાના આવેશમાં -તિરોહિત થઈ ગયો. સ્નેહ ઘુંટાવાના કારણે તદ્દીયતા એટલી ગાઢ થઈ ગઈ કે શ્રીમથુરાનાથજીએ અંડેલમાં શ્રીવલ્લભને ઘરે બિરાજવાનું અસ્વીકારીને કમ્બોજમાં પદ્મનાભદાસને ત્યાં બિરાજવામાં સુખ જાણ્યું. પદ્મનાભદાસના દૃઢ શ્રીવલ્લભ પ્રતિના તદાશ્રયે તો પોતાની પુષ્ટિભક્તિને ગીરવે મુકાવી, વાણઝારાને પૈસા ચૂકવ્યા. અહીં પુષ્ટિભક્તિના બદલામાં ૧૭ હજાર રૂપિયા લીધા કેવું આશ્ચર્ય અને કેવું બળ તદાશ્રયનું? અહીં શ્રીવલ્લભના આશ્રયરૂપ પિંજરામાં પુષ્ટિભક્તિ હતી. હકીકત એ હતી કે પદ્મનાભદાસનો આશ્રય, પુષ્ટિભક્તિ, વાણઝારાનું દ્રવ્ય સઘળું શ્રીમથુરાનાથજી બન્યા હતા. આ સર્વ તેમનું ફળ.

### ૪/૩. સિદ્ધાંતમુક્તાવલી :

“કૃષ્ણસેવા સદા કાર્યા” આ ફળ જે પુરુષોત્તમદાસ શેઠની બેટી રુક્મિણી ( ૬/૧ ) એ જાણ્યું. શ્રીગુસાંઈજીએ રુક્મિણીને પૂછતાં ઉત્તર વાળ્યો, મહારાજ ૨૪ વર્ષ પછી ગંગા સ્નાને ( શ્રીગુસાંઈજીના દર્શને ) આવી છું. રુક્મિણીના આ વચન સાંભળી શ્રીગુસાંઈજીનું હૃદય ભરાઈ આવ્યું કે તે સેવામાં એવી મગ્ન છે કે ગંગા સ્નાન માટે પણ અવકાશ નથી. સંયોગ સેવારૂપ ફળ.

ગોપાલદાસ ( ૬/૨ ) : પુરુષોત્તમસદાસના બેટા સેવા બાદ સદા વિરહમાં મગ્ન રહે. તેથી તો હોળીના દિવસોમાં એક વાર, સંયોગરસની વિસ્મૃતિ થઈ જતાં ‘લલના...’ ના સંબોધનથી વિરહ કીર્તન કરતા. તનુ-વિત્તની સેવા પછી વિરહભાવ સ્વયં ફળ અને માનસી દશામાં વલોપાત તે પણ ‘પરા મતા’. દામોદરદાસ સંભલવાળાને મળવા કોઈ વૈષ્ણવ આવ્યો ત્યારે તે સેવા કરતા હતા પણ તેમની દાસી ( ૩/૧ ) એ કહ્યું “એ તો નકાસમાં ઘોડા ખરીદવા ગયા છે”. દામોદરદાસે સેવાના અનવસરમાં આ બાબતે પૂછતાં દાસીએ કહ્યું “તે વખતે તમારું મન ક્યાં હતું?”. “યેતસ્ તત્પ્રવાણં સેવા” ચિત્ત પ્રભુમાં-સેવામાં પરોવાઈ જાય તે પણ એક ફળ.

રાજા આશકરણદાસને ચોરે તીર માર્યું. લોહી વહેવા છતાં તેમનું ચિત્ત ચલીત ન થયું. ખવાસોએ ફેંટ બાંધી દીધી તેની પણ ખબર ન પડી. આવા પ્રવાણચિત્તે સેવા કરતાં. આશકરણદાસજીની તનુવિત્તજ્ઞ સેવા કરતાં માનસી સિદ્ધ થઈ ગઈ હતી. “તત્ સિદ્ધ્યૈ તનુવિત્તજ્ઞ” આ ફળ.

### તત: સંસાર દુઃખસ્ય નિવૃત્તિ:

અમ્મા ક્ષત્રાણી( ૧૨ ) : અમ્મા ક્ષત્રાણીના બન્ને બેટા મરી ગયા. સેવા પછી તે ખૂબ રડતી. પોતાના બેટા માટે નહીં પણ મારા સેવ્ય લાલનના ખિલૌના ચાલી ગયા તે

દુઃખથી રડતી. તેનું જીવન તો બ્રહ્મબોધનના માર્ગવસ્તોનથી જોજનો આગળ નીકળી ગયું હતું. તે પોતાના સેવ્યના ઉપયોગમાં આવનારી સર્વ ચીજોને ( બેટા સહિત) સેવ્યની સામગ્રી જાણતી. આ મુકામ પર તે હતી.

### બ્રહ્મવાદેન કૃષ્ણો બુદ્ધિર્વિધિયતામ્

પુરુષોત્તમ જોશી( ૩૦ ) : પુરુષોત્તમ જોશી એ પૂણ્યું કર્મમાર્ગ મોટો કે જ્ઞાનમાર્ગ, શ્રીઆચાર્યજી એ જાણી ગયા કે આ જીવ બ્રહ્મવાદ પર ચડીને ભક્તિમાર્ગ પરનો મુસાફર છે. શ્રીઆચાર્યજીના વચન માત્રથી તેમની બુદ્ધિ ભક્તિમાર્ગ પર ચડી ગઈ. તે એવી ચડી કે ઘોડા પર આખી રાત બેઠા - બેઠા કૃષ્ણભટ્ટ સાથે ભગવદ્વાર્તા કરતાં - કરતાં દેહાનુસંધાન પણ ન રહ્યું અને કૃષ્ણાવેશી થઈ ગયા. કૃષ્ણ તેમની બુદ્ધિમાં જ નહીં પણ પ્રત્યેક અંગમાં છવાઈ ગયા હતા.

### આત્માનન્દ સમુદ્રસ્થં કૃષ્ણમેવ વિચિન્તયેત્

અચ્યુતદાસ સનોઢિયા( પ૪ ) : અચ્યુતદાસ સનોઢિયાને શ્રીઆચાર્યજીએ આજ્ઞા કરી કે “તમે શ્રીનાથજીની સેવા કરો”. ત્યારે અચ્યુતદાસે શ્રીઆચાર્યજીને દાણવત્ કરી વિનંતી કરી કે “મહારાજ ! મારી ઉપર એવી કૃપા કરો કે એકાંતમાં રહું અને માનસી સેવામાં મન લાગે.” શ્રીઆચાર્યજીનું ચરણામૃત આંખે, મસ્તકે, હૃદયે લગાવતાં તેમનાં નેત્રો અલૌકિક થઈ ગયાં અને લીલાના દર્શન કરવા લાગ્યા, આ ક્ષણ.

### અનુગ્રહ પુષ્ટિમાર્ગે નિયામકઃ ઈતિ સ્થિતિઃ

આત્માનન્દ સમુદ્રની લહેરો પર લહેરાતા કૃષ્ણ ક્ષણ છે કે અનુગ્રહ ક્ષણ છે ? દાન બડો કે દાતા ? અહીં અનુગ્રહ દાન છે અને કૃષ્ણ દાતા. સાપેક્ષતાએ અનુગ્રહ મોટો પણ નિરપેક્ષતા કૃષ્ણ મોટો. જેમ પુરુષોત્તમદાસનો પ્રશ્ન હતો કે કર્મમાર્ગ મોટો કે જ્ઞાનમાર્ગ ? ત્યાં શ્રીઆચાર્યજીનો ઉત્તર એ હતો કે સાપેક્ષતા જેને જે રુચે તેના માટે તે મોટો પણ મને પૂછો તો ( નિરપેક્ષતા ) ભક્તિમાર્ગ મોટો. ક્ષણ બાબતે પણ આ પ્રકારના પ્રશ્નો ઘણી વાર મુંઝવે છે ત્યારે ક્યારેક સાપેક્ષતા મજા લેવાની હોય છે, સ્થાયી ભાવસમા નિરપેક્ષને ગુમાવ્યા વગર ! સફેદ રંગને ભૂલ્યા વગર સપ્તરંગી મજાની જેમ.

ક્ષણ માત્ર જીત્વા કે માત્ર કર્ણોન્દ્રિય કે માત્ર દ્રાણોન્દ્રિય કે માત્ર સ્પર્શોન્દ્રિય કે વાણી કે આત્માનો જ વિષય ન બની રહેતાં તે આ સર્વનો વિષય બની જાય તે ક્ષણ. પ્રભુના સ્વરૂપનું જ્ઞાન, પ્રભુનું માહાત્મ્યજ્ઞાન, શ્રીકૃષ્ણમાં અનન્ય રતિ, તદનુસાર ક્રિયા - સેવા, ભાવપૂર્વિકા સેવા, તનુવિત્તજ્ઞ સેવા, માનસી સેવા, આ બધા ક્રમબદ્ધ ચઢીયાતાં ક્ષણ ખરા પણ બધું ભેગું થાય અને એક પુષ્પગુચ્છ બને તે પરમક્ષણ. આપણે ત્યાંના

વાર્તાચરિત્રોમાં તે બધાની નોખી - નોખી ઓળખ પણ છે અને ગુચ્છરૂપે પણ.

**૪/૪. પુષ્ટિ પ્રવાહ મર્યાદાભેદ :**

**ભગવદ્ગુપ્ત સેવાર્થ તત્સૃષ્ટિર્નાન્યથા ભવેત્**

ગોરજા સમરાઈ ( ૪૪ ) : ગોરજા સમરાઈની વાર્તામાં વલુની એક દિવસની રૂપસેવા ફળરૂપા થઈ ગઈ કેમકે તે જેની સેવા કરે છે તે ભગવાન્ સ્વયં છે તેમ સર્વ પ્રકારે માનતી હતી તેવી નિષ્કપટ પ્રીતિ હતી. તેથી તો શ્રીઆચાર્યજી પ્રસન્ન થઈને કહે છે કે “આવા વૈષ્ણવને તો ઘરે જઈને દર્શન દેવા ઉચિત છે, પરંતુ શું કરીયે સરસ્વતી ઉલ્લંઘવી નથી”. ઠાકોરજી કહે છે “વલુના હાથે હું સારી રીતે આરોગુ છું.” પ્રભુ જ જેની સેવા લેવા ચાહે છે તેવા માર્ગમાં ફળના આ જાત - ભાતના રંગ છે.

**ભગવાનેવ હિ ફળં યથાવિર્ભવેદ્ ભૂવિ**

સિંહનન્દની ક્ષત્રાણી ( ૬૦ ) : સિંહનન્દની ક્ષત્રાણીપર સાસુ - વલુના ઠાકોરજીનો અનુગ્રહ થઈ ગયો. સેવકની થયા પહેલાં જ પોતાના વાઘામાં વેલબુટ્ટી કઢાવવા આજ્ઞા કરી. સેવકની થયા પછી કોણ જાણે તેણે કેવી સેવા કરી હશે કે ફળના ટોપલા ભરાઈ ગયા. તેના ઠાકુર તેની સાથે લૌકિક બાળકની જેમ ઝગડો કરતા “માં, શાકવાળી આવી છે શાક લઈ લે.” “અરે શાકવાળી આવ, મારી માં શાક લેશે” તેમ ટેરતા. “શાકવાળી ચાલી ગઈ તો ક્યાંથી લેતી” તેમ કહી - કહી ઠાકોરજી તેની કાંધ પર ચડી જતા. “મને તોતરી કરીદે.” “માં, ઉધાર લાવી, કરજ કરી પકવાન કેમ કર્યા ? મને તો માત્ર ચોપડેલી રોટલી પણ બહુ ભાવે છે, ઉધાર ન લાવજે” સારસ્વતકલ્પથી પણ ચડીયાતા, આવા - આવા સાનુભવ જતાવતા. આવી ક્ષત્રાણી માટે જ આપ ભૂતલ પર પધારી અલૌકિક લેહન ચટાડતા તેમ જણાય છે.

**ગુણસ્વરૂપભેદેન તથા તેષાં ફલં ભવેત્, ભગવત્તારતમ્યેન તારતમ્યં ભજન્તિ હિ**

એક જ કુટુંબના જગન્નાથ જોશીના માતા ( ૩૧/૧ ) જગન્નાથ જોશી ( ૩૧ ) નરહર જોશી ( ૩૧/૨ ) : માતાને શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપમાં અટલ વિશ્વાસ, નાનાભાઈ જગન્નાથ જોશી માર્ગની રીત જાણે છતાં અપરાધ તો થઈ જાય. મોટાભાઈ નરહર ભોળા તેથી પ્રભુ પણ તેમના પ્રતિ ઉદાર રહે, પ્રભુને શ્રમ કરાવે તો પણ ! આ દરેકને પ્રભુ વિવિધ પ્રકારે ફળરૂપ થતા હતા.

**૪/૫. સિદ્ધાન્ત રહસ્ય :**

સહસ્ત્રપરિવત્સરથી વિખૂટા પડેલાને પુનઃસ્મૃતિ રૂપ સમ્બન્ધ તે પ્રથમ ફળ, તાપ કલેશ થવો તે બીજું, દોષ નિવર્તન ત્રીજું, સમર્પણ નભવું તે ચોથું, દાસભાવ પ્રકટ

થઈ સ્થાયી થવો તે પાંચમું, પ્રભુનો દાસ તરીકેના સ્વીકારની અનુભૂતિ તે અંતીમ ફળ.

દામોદરદાસ (૧) : દામોદરદાસ પોતાના ઘરમાં બેસી કાગડોળે શ્રીઆચાર્યજીના મિલનની રાહ જોતાં, તાપ-કલેશમાં દિવસો વિતાવતા, આપશ્રીના ચરણોમાં પડી અશ્રુધારોથી પોતાના દોષ ધોયા, પાછું વળીને સંસાર પ્રતિ નજર ન નાખી તેવું સમર્પણ અને સદા છાયા બનીને રહ્યાં. તેવો દાસ ભાવ, શ્રીઆચાર્યજીએ તેમના હૃદયમાં માર્ગનો સિદ્ધાન્ત અને રહસ્ય બન્ને ભર્યું. પેટમાં રાખ્યું. અનધિકારી પાસે પ્રકટ ન કર્યું શ્રીગુસાંઈજી પાસે સર્વ ખાલી કર્યું. ‘વિવેક’નું વિવરણ કરનાર શ્રીઆચાર્યજી કહે છે “પ્રાર્થિતે વા તતઃ કિં સ્યાત્?” કૃષ્ણદાસ મેઘનની વાર્તામાં ભાવપ્રકાશમાં કહે છે “જીવ શું માંગી જાણે? જીવનું માંગવું જ બાધક છે”.

શ્રીઆચાર્યજી શ્રીઠાકોરજી પાસે ત્રણ-ત્રણ વખત માંગે છે “મારા પછી દામોદરદાસની સ્થિતિ રહે”. અહીં દામોદરદાસ પ્રતિનો અપ્રતિમ્ સ્નેહ મંગાવે છે. માર્ગની સ્થિતિ માટે મંગાવે છે. જે હોય તે પણ આ જ તો દામોદરદાસ માટે ફળ છે કે જેમના પ્રતિ શ્રીવલ્લભ અને શ્રીપ્રભુ સદા નિષ્ઠાવાન રહે.

માલવાના દિનકરદાસ (૧૮) : તેમને શ્રીઆચાર્યજીએ સેવા માટે બ્રહ્મસમ્બન્ધ મંત્ર લખી આપ્યો હતો. તેમાંથી પ્રકટતો ભાવ ગ્રહીને તે નિત્ય માર્થ પીટીને રડતા કે અમે લીલામાં નંદરાયજીના ભાઈ થઈને પણ આટલા કાળથી સંસારમાં ભટકીએ છીએ. અમને ધિક્કાર છે. આ પ્રકારે વિરલ કરી ત્રણ મહિનામાં લીલાને પ્રાપ્ત થયા. સેવારૂપ સંયોગ પછી થતો વિપ્રયોગ પરમ ફળ છે તેમ શ્રીહરિરાયજી આજ્ઞા કરે છે. સહસ્ત્રપરિવત્સરથી જ તાપકલેશ ધૂમાડાના કારણે ક્ષીણ થઈ ગયો હતો તે શ્રીઆચાર્યજીના ફૂંક માત્રથી પ્રજ્વલી ઉઠ્યો. આ દીનકરદાસ માટે ફળ વચ્ચેની કડી ફળ.

#### ૪/૫. નવરત્ન :

નવરત્નમાં સેવામાં આવતા પ્રતિબંધોને લીધે થતી ચિંતાના ઉપાયો ૧. આત્મનિવેદનના સ્વરૂપનું ચિંતન, ૨. ભગવલ્લીલાની ભાવના, ૩. ભગવત્ શરણાગતિ આપે બતાવ્યા આ કડીરૂપ ફળ. ગોપાલદાસ વાંસવાડોવાળા પોતાના સર્વને પ્રભુ સમ્બન્ધિત્ કર્યા.

#### સર્વેષામ્ પ્રભુ સંબંધો ન પ્રત્યેકમ્ ઈતિ સ્થિતિ:

તેમને ધર્મશાળા નહીં પણ વૈષ્ણવો માટે વિશ્રામસ્થળ બનાવ્યું તેથી વૈષ્ણવોનો સંગ નથી મળતો તેવી ચિંતા દૂર થઈ. માતા - પિતાએ સેવક થવાની ના કહી તો તેને પણ

ભગવદીચ્છા જાણી સ્ત્રીને નામનિવેદન માટે લઈ ગયા પણ શ્રીઆચાર્યજી કહે “તેનાથી ધર્મ નહીં નભે” વળી તારાથી તે સર્વનો ઉદ્ધાર થશે” તેથી માત્ર નામ અપાવીને આવ્યા આમ સર્વનો સમ્બન્ધ તેમના થકી થયો સીધો ન થયો, તો પણ ચિંતા ન કરી. તેમના માટે તો ભગવદ્ સેવા-કથા-સત્સંગ તે ફળ હતું.

### યૈઃ કૃષ્ણસાત્ કૃતઃ પ્રાણૈઃ તેષાં કા પરિદેવના

કૃષ્ણ જો આપણો જીવનમાં દાળ - સખડીની જેમ પરસ્પર ભળી ગયાં છે તો પછી પોસ્ટ - મોર્ટમનું શું કામ છે ? ફળ મળ્યા પછી સાધના બરાબર ન થઈ તેવી ચિંતા શું ? પદ્મનાભદાસે ( ૪ ) વિચાર્યું “શ્રીઆચાર્યજીના ભોજનમાં ઘડી વિલંબ થાય તો મારો જન્મ વૃથા જાય.” “વિલંબ ન થવા દેવો” તે તેમના માટે ફળ હતું. તેમને પુષ્ટિધર્મ, ગિરવે મૂક્યો કેમકે ત્યારે તેમને તેને મુખ્યફળ ન જાણ્યું. “શાસ્ત્રકથા કહીને વૃત્તિ નહીં કરું” તેવી ટેક લેનાર પદ્મનાભદાસે મહાભારતની કથા વાંચી વણઝારા માટે લીધેલ દેવું ચૂકવી દીધું. ટેકીલા પદ્મનાભદાસ માટે ટેક તે ગૌણફળ હતું. ત્યાં સ્વધર્મની હાની ન જણાઈ. “શ્રીઆચાર્યજીનું સુખ” તેમના માટે પરમફળ હતું. શ્રીમથુરાનાથજી સ્વસેવ્યને સુખ થાય માટે શ્રીઆચાર્યજીને ત્યાં પધરાવી દેવા વિચાર્યું. આ તેમના માટે ફળ હતું. તેમના માટે સેવા તે ફળ નહોતું પણ સમર્પણ તે ફળ હતું ભક્તિ તે ફળ હતું. શ્રીમથુરાનાથજી માટે પણ પદ્મનાભદાસ પ્રતિનો સ્નેહ તે ફળ હતું. નહીં કે શ્રીઆચાર્યજીનો સંગ કેમકે શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીમથુરાનાથજી એકમેક કર સાન્યા હતા “કૃષ્ણઃસાત્ કૃતઃપ્રાણૈઃ” હતા.

તુલસાં ( ૪/૧ ) : તુલસાંને શ્રીગુસાંઈજી પુછે છે “શ્રીઠાકોરજી સાનુભવ જતાવે છે”. ત્યારે તુલસાં પ્રત્યુત્તરમાં કહે છે “પેટ ભરીને ખાઈએ છીએ, નીંદ ભરીને સોઈએ છીએ પણ શ્રીઆચાર્યજીના ગ્રન્થોનો નિત્ય પાઠ કરીએ છીએ”. સ્વકીયભાવ વાળાં તુલસાંને પ્રભુ પેટ ભરીને રસદાન કરે છે પછી ચિંતા કેવી ? વળી આગળના બધા જન્મોથી ભૂખ્યા હતા તે આપની કૃપાથી પેટ ભરાયું. શ્રીઆચાર્યજીની અમારા પર કૃપા છે. તુલસાંના વચન સાંભળી શ્રીગુસાંઈજીનું હૃદય ભરાઈ આવ્યું. તુલસાં ફળને પામી હતી. એકમેકમાં સાનેલી હતી. “સેવાપરં ચિત્તં વિધાય સ્થિયતાં સુખમ્” સેવાપર ચિત્તવાળાને કયું દુઃખ ?

હરિવંશ પાઠક ( ૧૦ ) : હરિવંશ પાઠકને તેના સેવ્યએ આજ્ઞા કરી “મને ડોલ નહીં ઝુલાવે”. ત્યારે હરિવંશ તો રાજ્યના કામકાજ અર્થે પટણામાં હતા. અને સેવા તો કાશીમાં બિરાજતી હતી પણ હરિવંશજીનું ચિત્ત સેવાપર હતું તેથી ત્રણ દિવસ ઘોડા પર ખેપ કરી ચિત્તની ઝડપથી કાશી પહોંચ્યાં. “બીજા દિવસે પ્રભુને ડોલ ઝુલાવ્યા બહુ સુખ



થયું” તેમ વાર્તા કહે છે. હકેમ લાખેક રૂપિયા આપત, તે ન ચાહ્યા પણ સેવાસુખ ચાહ્યું. સેવ્યની આજ્ઞા ચાલી, સેવ્યનું સુખ ચાહ્યું. અને પોતાનો ધર્મ ગોપ્ય રાખ્યો. “સેવાપર ચિત્ત” તે ફળ.

### તથૈવ તસ્ય લીલેતિ

સર્વ કંઈમાં ભગવદ્લીલાનો અનુભવ જેને થાય તેના માટે તે ફળ. પછી ચિંતા કેવી? શ્રીઆચાર્યજી સુબોધિનીજી લખાવતા અને માધવભટ્ટ કાશ્મીરી સમજીને લખતા. માધવભટ્ટ એક રાત્રે લઘુશંકા કરવા ઉઠ્યા ત્યારે કોઈ ચોરે તીર માર્યું અને તેમનો દેલ છૂટી ગયો. હવે સુબોધિની લખવાના રહ્યા. શ્રીઆચાર્યજી કહે ભગવદ્દિચ્છા એટલું જ પ્રકટ કરવાની હતી! પ્રભુની ત્રીજી આજ્ઞા પાળવારૂપ દાસધર્મ બજાવ્યાનો સંતોષ તે પણ ફળ. “આજ્ઞૈવ કાર્યા સતતં” માધવભટ્ટને અને શ્રીઆચાર્યજી બન્ને માટે દાસભાવરૂપ ફળ.

### તસ્માત્ સર્વાત્મના નિત્યં શ્રીકૃષ્ણઃ શરણં મમ

નારાયણદાસ કાયસ્થ(૫૭) : નારાયણદાસ કાયસ્થ હકેમ થઈને કામ કરતા. ગોકુળ આવવાનું મન ઘણું પણ કામ છૂટી શકે નહીં તેથી એક ચાકર રાખ્યો તે તેમને ગોકુળનું સ્મરણ કરાવતો ભૈયાજી ! ગોકુળ શ્રીઆચાર્યજીના દર્શને ક્યારે ચાલશો? ત્યારે નારાયણદાસ કહેતા “હા, હમણાં ચાલીશું” નેત્રોમાં જલ ભરી લીલારસમાં મગ્ન થઈ જતા. ફરી કામકાજ કરતા. ફરી ચાકર કહે એટલે ફરી મગ્ન થઈ જતા. આમ સતત સર્વાત્મના શ્રીકૃષ્ણસ્મરણ તે શરણભાવ અને લીલારસમાં મગ્નતા તે વિશિષ્ટ ફળ.

### અતઃકરણ પ્રબોધ :

#### “આજ્ઞૈવ કાર્યા સતતં...સેવકસ્ય તુ ધર્મોડયં”

કૃષ્ણદાસ મેઘનને(૨) : શ્રીઆચાર્યજીએ આજ્ઞા કરી “તું ઉભો રહેજે”. પછી શ્રીઆચાર્યજી ગુફામાં પધાર્યા. ત્રીજા દિવસે આપ બહાર પધાર્યા ત્યારે કૃષ્ણદાસને તે જ સ્થાને ઉભેલા જોઈ પ્રસન્ન થયા અને પૂછ્યું “તું ત્યારનો ઉભો છે, ગયો નહીં?” ત્યારે કૃષ્ણદાસે કહ્યું “મહારાજ! હું ક્યાં જાઉં? મને આપના ચરણારવિંદ વિના બીજો કોઈ આશ્રય નથી”. અહીં શ્રીઆચાર્યજીની પ્રસન્નતા અને ચરણાશ્રય તે ફળ છે.

### સર્વ સમર્પિતં ભક્ત્યા કૃતાર્થોડસિ સુખી ભવ

અહીં સમર્પણ સાધન બન્યું, ‘કૃતાર્થતા’ સાધન સિદ્ધિ અને ‘સુખ’ તે સિદ્ધિ ફળ. ગદાધરદાસ અવ્યાવૃત્ત રહી જે બને તે તનુ-વિત્તજ સેવા કરતા. ભગવદ્દિચ્છાથી

એક દિવસ યજમાન કંઈ ન આપી ગયો ત્યારે દરેક ભોગમાં માત્ર જલની લોટી ધરી પણ હૃદયમાં વિરહરૂપ આગ લાગી કે “આજે કંઈ ન ધર્યું” જેને વિરહ નથી તેને પુષ્ટિમાર્ગનું ફળ નથી. રાત્રીના દોઢ પ્રહરે કોઈ યજમાન રૂપેયા ૪ દક્ષિણાના આપી ગયો. ઉતાવળે ભોગ ધરવા બજારમાંથી અર્ધભુક્ત નહીં તેવી જલેબી લાવીને, ન્હાઈને ધરી તેનો પ્રસાદ વૈષ્ણવોને લેવડાવી દીધો પોતે ભૂખ્યા સુઈ ગયા પરંતુ મનમાં ‘સુખ પામ્યા’ વૈષ્ણવોને પ્રસાદ લેવડાવવારૂપ ‘સુખ’ ફળ, પ્રભુની પરીક્ષામાં સફળ થયા તે ‘કૃતાર્થતા’ પ્રભુને ભોગ સમર્પણ કર્યો તે ‘સાધન’ અને જ્યાં લગી વૈષ્ણવોને પ્રસાદ ન લેવડાવી શક્યા ત્યાં લગીનું વિરહદુઃખ તે ‘પરમફળ’.

### ભક્તો નિશ્ચિંતતાં વ્રજેત્

ગોવિંદ દુબે (૩૪) : ગોવિંદ દુબેનું મન સેવામાં લાગે નહીં. ચિત્તમાં ઉદ્વેગ રહે, તેથી શ્રીઆચાર્યજીને ઉપાય માટે પત્ર લખ્યો. શ્રીઆચાર્યજીએ નવરત્ન ગ્રન્થ લખી મોકલ્યો. પાઠ કરતાં, શ્રીઆચાર્યજીની કૃપાથી ચિંતા મટી ગઈ. મન ભગવત્સેવામાં લાગ્યું. મન ભગવત્સેવામાં લાગ્યું તે કૃતાર્થતા, શ્રીઆચાર્યજીની કૃપા તે ફળ, નવરત્નનો પાઠ તે સાધન.

### વિવેક ધૈર્યાશ્રય :

“સ્વામ્યધીનત્વભાવનાત્” નારણદાસ બ્રહ્મચારી (૧૪) : નારણદાસ બ્રહ્મચારી એ એક વાર શ્રીઠાકોરજીને પૂછ્યું કે “મહારાજ ! આ ઘટા ક્યાં વરસશે ?” ત્યારે શ્રીઠાકોરજીએ પ્રસન્ન થઈને કહ્યું કે શ્રીરઘુનાથજીની ઉપર ત્યારે નારાયણદાસ બહુ પ્રસન્ન થયા. એકવાર નારાયણદાસ પર પ્રસન્ન થઈને શ્રીઠાકોરજીએ કહ્યું ‘કશું માંગ’ ત્યારે નારાયણદાસે કહ્યું “હું માંગુ છું કે શ્રીગુણાંઈજીને ઘરે પધારીને સેવા કરાવો”. આમાં એ બતાવ્યું કે હું તો દાસ છું. દાસનો ધર્મ તો સ્વામીનું સુખ જોવું. અને તે જ સાચી આધિનતા આવી અધિનતારૂપ ફળમાં રાચતાં.

કૃષ્ણદાસ (૩૯) : કૃષ્ણદાસને કેશોરાયજીમાં શ્રીગોવર્ધનધરના દર્શન હૃદયના નેત્રથી થયાં પરંતુ સાક્ષાત્ ગોવર્ધનધરજીના દર્શનની તલપ (અઘૈર્ય) એટલી વધી કે “આલી તૂ દેખરી નયન ગિરિવરઘર” કીર્તન ગાવાનું પુરું થતાંમાંજ તેમના દેહ છૂટી ગયો. આ અઘૈર્ય પણ ફળરૂપ. કૃષ્ણદાસની કૃષ્ણમિલાપની તલપની તીવ્રતા એવી ચરમસીમાને ઓળંગી ગઈ કે પલનો વિરહ પણ ન ખમાયો. આમ અહીં ‘તીવ્ર વિરહ’ તે ફળ.

બાબાવેણુ (૩૪) : બાબાવેણુએ થોડી વધારે ધીરજ ધરી. તેથી

શ્રીગોવર્ધનધરના દર્શન કરી, પર્વત પરથી નીચે ઉતરી દેલ છોડ્યો. કેમકે સાક્ષાત્ દર્શન પછી જ તેમનો વિરલ જાગ્યો, માલારૂપ વ્રજભક્તો ગળામાં પડતાં તેમની આડીથી વિરલ થયો.

જાદવ ખવાસ (૩૪) : જાદવ ખવાસના વિરલે નવીન રૂપ ધર્યું. તેમણે વિચાર્યું કે “કોઈ વૈષ્ણવની સેવા ન છૂટે” માટે પોતે જ સૂકા લાકડાં એકઠાં કરી ચિતા રચીને, વિરલાનુભવ કરીને દેલ છોડ્યો. આ ધૈર્યરૂપ વિરલ. ધૈર્યના વિવિધ રૂપો, પાણ બધાં જ ફળ.

૧. “હરિરેવાસ્તિ સર્વમાશ્રયતો ભવેત્” ૨. “સર્વથા શરણં હરિઃ ૩. “શરણં ભાવવેદ્ હરિમ્”

શેઠ પુરુષોત્તમદાસ : શેઠ પુરુષોત્તમદાસ દક્ષિણમાં મંદાર પર્વત પર ગયા કે જ્યાં શ્રીઆચાર્યજી પધાર્યા હતા. ત્યાં અર્ધરાત્રીએ સિદ્ધ બ્રાહ્મણના વેશમાં શ્રીઠાકુરજી પધાર્યા અને એક મણિ આપવા લાગ્યા કે જેનાથી જેટલું માગે તેટલું સોનું થાય. ત્યારે પુરુષોત્તમદાસ શેઠ કહે “મને મણિ ન જોઈએ” બાજુમાં સૂતેલા બ્રાહ્મણે આપને પૂછ્યું “તમે તો ગૃહસ્થ છો, મણિ કેમ ન લીધો?” ત્યારે શેઠ કહે “તને જે જગદીશ શેર ચૂન આપે છે તે જ પ્રભુ મને દશશેર ચૂન આપશે, જગદીશને ત્યાં શું ખોટ છે? અરે બાવરા, હું શ્રીઠાકોરજીનો આશ્રય છોડી, મણિનો આશ્રય કરું?” અહીં ફળનું સ્વરૂપ દઢાશ્રય છે.

કૃષ્ણાશ્રય :

“કૃષ્ણ એવ ગતિર્મમ” તેમના માટે તો કૃષ્ણરૂપ મણિનો આશ્રય હતો.

ચતુઃશ્લોકી :

શ્રીહરિની સ્થાયી ભાવરૂપ દાસ્યભાવથી ભક્તિ તે ધર્મ, શ્રીહરિ જ અર્થ, આપશ્રીના સ્વરૂપમાં આસક્તિ દર્શન તે કામ, તારાથી ન્યૂન તેવું કંઈ ન ખપે, તું જ મારો ગોલ.

રામદાસ સાંચોરા (૩૩) : રામદાસ સાંચોરા નાની - મોટી ટલેલ કરે, જે મળે તે ભાગ્ય માની લે. શ્રીઆચાર્યજીના માર્ગમાંથી કાંટા - કાંકરા સાફ કરે. પોતાને કાંટો વાગ્યો તે કાઢવા પાણ ન થોભ્યા કેમકે સ્વામીને પાણ થોભવું પડે તો શ્રમ થાય અને મારો ધર્મ જાય ... શ્રીઆચાર્યજીએ પ્રસન્ન થઈને માંગવા કહ્યું, તો રામદાસ કહે “આપનું શરણ મળ્યું છે તેથી અધિક શું?” સ્વામીના શરણથી અધિક કોઈ સંપત્તિ, અર્થ નથી જાણતા. રામદાસ કહે છે “તેથી મને કૃપા કરીને આપો કે આપનો આશ્રય દઢ થાય”. છે

તેથી અધિક દઢતા આશ્રયની ચાહે છે. જાણે છે પોતાની કાચી દશા છે જેથી બીજે માંગી ન બેસે આવી કામના. “ઠાકુરજનું સ્વરૂપ ( નટુવાગોપાલજી ) તથા પાદુકાજી રામદાસને સેવા માટે પધરાવી આપ્યા અને કહ્યું “હવે તમે ભગવત્સેવા કરો. જ્યાં રહો ત્યાં તમને ડર નથી. ભક્તિ તમને દઢ થઈ”. સેવા - ભક્તિ તે જ ભક્ત માટે મોક્ષ. પહેલા શરણ સિદ્ધ થયું હવે ભક્તિ દઢ થઈ આ બન્ને ફળ. ત્યાર પછી રામદાસજીએ ત્રણ દિવસ સુધી શ્રીઠાકોરજીની સેવા અને પાદુકાજીની સેવા કરી. ભોગ ઘરે તે ગાયોને લેવડાવી દે. ચોથા દિવસે શ્રીઆચાર્યજીએ દર્શન દીધા અને કહે “વિરહ ન કર હું તારી પાસે છું” સંયોગરસ, વિપ્રયોગરસ અને શ્રીઆચાર્યજીને તેની થતી ફીકર આ બધાં જ ફળ.

### ભક્તિવર્ષિની :

“યદા સ્યાદ્ વ્યસનં કૃષ્ણે કૃતાર્થ સ્યાદ્ તદૈવ હિ” કૃષ્ણ વગર તરફડવું તેવી પ્રેમની દશા.

ગજજન શ્રીનવનિતપ્રિયજીની ઈચ્છાથી આપશ્રીને શ્રીઆચાર્યજીને ત્યાં પધરાવી લાવ્યો. પોતાના સેવ્યસમા - સ્વામીથી વિખૂટો નહોતો પડતો. પણ એક વાર અકકાજીએ તેને પૈસા આપી પાન લેવા બજારમાં મોકલ્યો, તે વખતે રાજભોગનો સમય થયો હતો. ગજજન અકકાજીની આજ્ઞા ઉલ્લંઘી ન શક્યો કે ન વિરહ સહી શક્યો તેથી મંદિર બહાર એક ઓટલા પર વિરહજ્વરને કારણે મૂર્છિત થઈ ગયો. આ બાજુ શ્રીઆચાર્યજીએ પ્રભુને આરોગાવવા વિનંતી કરી ત્યારે શ્રીનવનિતજી કહે છે “મારો પ્રિય ગજજન નહીં આવે ત્યાં સુધી નહીં અરોગું”. આમ પરસ્પર પ્રિયતા તે જ નવનિતરૂપ ફળ. અહીં શ્રીઆચાર્યજીના પ્રિયત્વ પર પ્રશ્નાર્થ નથી પણ કોઈક માટે વ્યસન હોવું તે જુદી વાત છે. પ્રભુનું ગજજન - વ્યસન તે ગજજનનું ફળ.

“સેવયાં વા કથાયાં વા યસ્યાસક્તિર્દઢા ભવેત્ યાવજ્જીવમ્”. સેવા - કથામાં આસક્તિ કોઈને તો બીજાને કથામાં આસક્તિ જે તે માટે ફલરૂપ.

રુકિમણી ( ૬/૧ ) : રુકિમણીના કાત્યાયની વ્રતનો વિશેષ પ્રકાર તે પણ સેવાસક્તિ અને ગંગાકાંઠે રહેવા છતાં ૨૪ વર્ષ સુધી ગંગાસ્નાનની સુધ ન રહેવી અને ૨૪ વર્ષે જવું પણ શ્રીગુસાંઈજીના કારણે આવી સેવાસક્તિ તે ફળ.

દિનકરદાસ શેઠ ( ૧૮ ) : જલધરીયાએ પ્રત્યુત્તર આપ્યો કે શ્રીઆચાર્યજી પોથી ખોલી રહ્યા છે ત્યારે દિનકરદાસ કાચા લોટની કનેક આરોગી ગયા શેકીને રોટી પણ ન કરી. અને તુરંત કથા સાંભળવા પહોંચી ગયા. શ્રીઆચાર્યજી પણ તેમના આવ્યા વગર કથા ન કહેતા. શ્રીઆચાર્યજીના મુખની વાણી-અમૃત નિત્ય પીવાનું આ વ્યસન તે ફળ.

જલભેદ :

“ તેડમૃતોદા સમાખ્યાતા તદ્વાક્વાનમ્ સુદુર્લભમ્ ”. ઉજ્જેનમાં મુકુંદદાસ ( ૧૮ ) ને ત્યાંનો એક પાણ્ડત કહે “ હું તમને ભાગવત્ સંભળાવું ” પાણ્ડ મુકુંદદાસ બહાનું કાઢે “ હમણાં સમય નથી ” તેમ કહી ભાગવત્ સંભળવાનું ટાળે. અને પોતાનું ભાગવત્ પાણ્ડ ન સંભળાવે. મુકુંદદાસ ભાગવત્ - સુબોધિનીની કથામાં રસમગ્ન રહેતા. તેમને ‘મુકુંદસાગર’ નામે ભાષામાં ભાગવત્કથા લખી હતી. આ મુકુંદદાસે દેહ છોડ્યો ત્યારે શ્રીઆચાર્યજી કહે “ અવંતિકા મુકુંદદાસને પામ્યા ”. કોઈ એમ બોલ્યું કે “ મુકુંદદાસ અવંતિકાને પામ્યા ”. તેવું કહેનારને આપે ટોક્યો. આમ જલભેદની દષ્ટિથી કથાનું અમૃતત્વ જાણાતા હતા. તે અનુસાર પાન કરતા હતા. આ પાનરૂપ માનસી તેમને ફળ હતું. અન્યમાર્ગીને પોતે કથા ન સંભળાવવી કે તેવાની ન સંભળવી ને માનસીની વાડ ( રક્ષણ ) છે. તે પાણ્ડ ગૌણફળ છે.

દામોદરદાસે પોતાની કાર્ણેન્દ્રિયથી પ્રભુના સાક્ષાત્ વચનો સાંભળ્યા તે અમૃતરૂપ ફળ છતાંય શ્રીઆચાર્યમુખે જે સમજ્યા તે વિશેષ ફળ.

શ્રીઆચાર્યજી દામોદરદાસને કહેતા “ દમલા ઘણીવાર થઈ શ્રીઠાકોરજીની વાર્તા નથી કરી ”. આવી અતીવ આતુરતા બાદ થતી કથા - વાર્તા કેવી અમૃતથી અધિક હશે ! “ હરિ તેરી લીલાકી સુધિ આવે ” તેવું કીર્તન પરમાનન્દદાસે ( ૮૩ ) ગાયું ત્યારે શ્રીઆચાર્યજીની લીલાસની સુધિ કેવી આવી હશે કે ત્રણ દિવસ લગી સુધ ન રહી ! આ લીલાસપાન ફલ. આ બધી ફલની વિવિધ છટા છે.

પંચપદ્યાનિ :

“ શ્રીકૃષ્ણરસવિક્ષિપ્તમાનસા અરતિવર્જિતા,  
અનિર્વૃતા લોકવેદે તે મુખ્યા શ્રાવણોત્સુકા ”.

૨૫૨ વૈષ્ણવની વાર્તામાં અલિખાન - પીરજાદી શ્રીગુસાંઈજીના મુખથી થતી કથા સાંભળવા નિત્ય આવતા. તેમના આવ્યા પછી જ આપ કથા શરુ કરતા. કેટલાક દ્રેષીને દોષ દેખાયો. શ્રીગુસાંઈજી સમજી ગયા. તેથી સર્વને પૂછ્યું “ કાલની થઈ ગયેલી કથા કોણ કહેશે ? ” બધા ચૂપ થઈ રહ્યા પાણ્ડ પિરજાદીએ ઉભા થઈ સવિનય વિનંતી કરી ... મહારાજ, કાલની કથાને કહું કે જ્યારથી હું સાંભળવા આવતી ત્યારથી કાલ લગીની કહું ? ત્યારે દ્રેષીઓ ચૂપ થઈ રહ્યા. સવાલ યાદશક્તિનો નથી પાણ્ડ કૃષ્ણરસ વિક્ષિપ્તમાનસનો છે, રતિનો છે. અને તે સિવાયનું સર્વ લોક-વેદમાંથી મન હટાવી જે મુખ્ય ભગવદ્કથા છે તેમાં શ્રવણની ઉત્સુકતાનું છે. આવી ભગવત્લીલામાં નિરોધસિદ્ધિ તે ફળ. જેનામાં ઠાકોરજી તન્મય થઈ જાય પછી કયું ફળ ?

## સંન્યાસનિર્ણય :

“વિરહાનુભવર્થં તુ પરિત્યાગો પ્રશસ્યતે:” ગુસાંઈદાસ (૨૬) : પોતાના સેવ્યની સારી રીતે સેવા કરતા પરંતુ બીજા કોઈ વૈષ્ણવની સેવા લેવાની અને ગુસાંઈદાસને વિપ્રયોગદાનની ઈચ્છા પ્રભુને થઈ તેથી ગુસાંઈદાસને પ્રેરણા કરી કે આ વૈષ્ણવને માથે સ્વરૂપ પધરાવી દે. ગુસાંઈદાસે સ્વસેવ્યને પોતાના હૃદયમાં પધરાવી વિરહાનુભવ કરતા બદ્રિકાશ્રમ તરફ ગયા. ત્યાં વિરહ કરી દેહ છોડ્યો ભાવપ્રકાશાનુસાર વૈકુણ્ઠમાં સેવોપયોગી દેહ ‘સેવા’રૂપે થયા. પૂર્વજીવનમાં ઘણા તીર્થ કર્યા પણ ફળરૂપ ન લાગ્યા, થાક્યા. દીક્ષાબાદ સંયોગસુખરૂપ સેવા અને વિરહાનુભૂતિ બન્ને ફળરૂપ લાગ્યા. સંન્યાસનિર્ણયને અનુકૂળ થયા.

## નિરોધલક્ષણ :

“અહં નિરુદ્ધો રોધેન નિરોધપદવીંગત:”. અન્યમાર્ગ થકી દુર્લભ તેવો નિરોધ, ભક્તિથી સિદ્ધ થઈ શકે છે તેમાં શ્રીઆચાર્યજી પોતાનું પ્રમાણ આપે છે.

કુંભનદાસને(૮૩) : કુંભનદાસને દ્રવ્યનો ઘણો સંકોચ છે તેવી વાત વૈષ્ણવોએ શ્રીગુસાંઈજીને કહી ત્યારે શ્રીગુસાંઈજીએ કુંભનદાસને આજ્ઞા કરી કે અમે પરદેશ પધારીએ છીએ, તમો પણ અમારી સાથે ચાલો. ત્યાં વૈષ્ણવોથી મિલાપ થશે(૧) અમને તમારા સંગથી દુઃખ (ઠાકોરજના વિરહનું) ઓછું થશે(૨) વળી તમોને દ્રવ્ય સંકોચ છે તે અમે જાણ્યું છે તે પણ કાર્ય સિદ્ધ થશે(૩) ૧+૨ ફલ ખરા ૩ ને ફલ કહ્યું પણ છે નહીં. શ્રીગુસાંઈજીની આજ્ઞાને કુંભનદાસ ટાળી શકે નહીં. બીજા દિવસે શ્રીગુસાંઈજી તો રાજભોગ આર્તિ કરી પહેલા મુકામ અખસરાકુણ્ડ પર આવી તંબુમાં પોદ્યા. કુંભનદાસ તૈયાર થઈને આવ્યા પણ મનમાં વિચારે “કહીયે કહા કહિવેકી હોય, પ્રાણનાથ બિહુરનકી વેદના જાનત વિરલા કોઈ”. ઉત્થાપન સમય થતાં સુધીમાં તો વિરહ અંગે અંગમાં વ્યાપી ગયો. આંખોમાંથી અશ્રુ વહે, રોમાંચ થાય અને વૃક્ષ નીચે ઉભા - ઉભા, શ્રીગોવર્ધન પ્રતિ મુખ રાખી ગાવા લાગ્યા “કિતે દિન બિત ગયે બિનુ દેખે ... કુંભનદાસ લાલગિરિધર બિનુ જીવન જન્મ અલેખે”. આ શબ્દો શ્રીગુસાંઈજીએ તંબુમાં સાંભળ્યા. તે આપ સહી ન શક્યા. તેથી બહાર આવી કહે “કુંભનદાસ તમે શ્રીગોવર્ધનધર પાસે જાઓ. તમારો પરદેશ થઈ ચૂક્યો”. આ સાંભળતાં જ શ્રીગુસાંઈજીને દાણ્ડવત્ કરી શ્રીગોવર્ધન તરફ દોડ્યા. આવો શ્રીગોવર્ધનનાથજીમાં તેમનો નિરોધ સિદ્ધ થઈ ગયો હતો. જ્યારે પ્રભુ સન્મુખ કુંભનદાસજીએ કીર્તન ગાયું “જોઈ ચોંપ મિલનકી હોય તો ક્યોં રહ્યો પરે સુન સજની લાખ કરેકી ન કોય...ગિરિધરલાલ તોય બીનુ દેખે છિન - છિન કલ્પ વિહાય”. આ પદ સાંભળતાં જ શ્રીગોવર્ધનનાથજી કહે “હું પણ તારા વગર રહી શકતો નથી તેથી હવે તું સદા મારી પાસે જ રહીશ” આવો નિરોધ

અહીં સર્વોત્તમ ફલરૂપ છે. ઠાકોરજી પણ કહે છે “અહં નિરુદ્ધો રોધને...”.

**‘નાતઃ પરતરો મંત્રો નાતઃ પરતરઃ સ્તવઃ,  
નાતઃ પરતરા વિદ્યા તીર્થ નાતઃ પરાત્પરમ્’**

શ્રીઆચાર્યજીના આ શબ્દો જ ફળનું નિરૂપણ કરી રહ્યા છે.

રાજદુબે - માધોદુબે ( ૩૫ ) : પરમ ભાગ્યશાળી કે જેમને સુતકમાં પણ શ્રીમહાપ્રભુજીએ સામે બેસાડી કથા કહી અને કહ્યું “તમે સદા શુદ્ધ છો”. સુતક બાદ આ ગ્રન્થનો પાઠ કરાવતા માત્રમાં તેમને નિરોધ સિદ્ધ થઈ ગયો. આ પ્રકારે શ્રીઆચાર્યજીએ સુપાત્રોને અતુલ પુષ્ટિદાન કર્યું.

**“યચ્ચ દુઃખ યશાદાર્યાં નંદાદિનાં ચ ગોકુલે,  
ગોપિકાનાં તુ યદ્દુઃખં તદ્દુઃખં સ્યાત્ મમ કવચિત્”**

પરમાનન્દદાસ ( ૮૨ ) : “હરિ તેરી લાલાકી સુધિ આવે ...” ગાવામાં પરમાનન્દદાસનો જે વિરલભાવ હતો તે શ્રીઆચાર્યજીમાં સાકાર થયો.

ગોપાલદાસ ( ૬/૨ ) : રાત્રે ગોપાલદાસ વિરલભાવે પોકારે છે ત્યારે શ્રીમદનમોહનજી કહે છે “મને તારો વિરલ સહન થતો નથી”.

જીવદાસ ( ૧૬ ) : જીવદાસે શ્રીલાડીલેશજીની ચાર પ્રહર સેવા કરી વિરલભાવે કરી દેલ છોડ્યો.

કૃષ્ણદાસ ( ૧૬ ) : કૃષ્ણદાસે પણ કેશોરાયજી સમક્ષ ગોવર્ધનધરના ભાવથી કીર્તન ગાઈ દેલ છોડ્યો.

અચ્યુતદાસ સનોદિયા ( ૫૪ ) : અચ્યુતદાસ સનોદિયા માનસીમાં મગ્ન રહેતા અને વિરલભાવમાં રહેતા.

અચ્યુતદાસ ગૌડ ( ૫૫ ) : અચ્યુતદાસ ગૌડ શ્રીમહાપ્રભુજીનો આસુર વ્યામોહ લીલા જાણી ત્યારે વિરલમાં દેલ છોડ્યો.

ગોપાલદાસ નરોડાના ( ૭૮ ) : “કેકી સિખંડી શ્યામઘન કંઠ મનોહર હાર, ધન્ય તે દિન દેખશું નેનન નન્દકુમાર”. આમ વિરલમાં રહેતાં. આ આત્મીય વિરલ પણ

ફળસ્વરૂપ “યત્યુષ્ઠં સમભૂત્ તન્મે ભગવાન્ કિં વિધાસ્યતિ”.

“ઉદ્ધવાગમને જાત ઉત્સવઃ સુમહાન યથા,  
વૃંદાવને ગોકુલે વા તથા મે મનસિ ક્વચિત્”

ગોપાલદાસ વાંસવાડાના : ગોપાલદાસે વિશ્રામસ્થાન, આવા ઉદ્ધવો ક્યારેક પધારે તે આશામાં જ બંધાવ્યું.

તુલસાંને ત્યાં વૈષ્ણવ પ્રસાદ લીધા વગર ચાલ્યા ગયા, ત્યારે બીજે દિવસે આજ પ્રકારે ફરી આવવાની રાહ જોતી બેઠી અને જ્યારે મથુરાનાથજીની પ્રેરણાથી બીજા દિવસે તે વૈષ્ણવ આવ્યા ત્યારે તેને મન પણ ઉદ્ધવ આવ્યા.

શ્રીગુસાંઈજી પણ કહેતા “મારો નાગીયો આવ્યો”. દામોદરદાસ હરસાનીજી વધમાં પોતાના ઘરના ઝરુખામાં બેસી જેમની વાટ જોતા હતા તે શ્રીઆચાર્યજીના પધારવાના દૂરથી દર્શન થતાં વેંત ગવાક્ષમાંથી સીધા જ કુદી આપના ચરણમાં પડ્યા. અહીં આર્તી અને પ્રાપ્તિ બન્ને ફળ.

**સર્વાનન્દમયસ્યાપિ કૃપાનંદઃ સુદુર્લભઃ**

સુરદાસજી અને પરમાનન્દદાસજી ભક્તિથી તો આનંદ પામી રહ્યા હતા પરન્તુ શ્રીઆચાર્યજીએ કૃપા કરી બન્નેને દશમસ્કંધની અનુક્રમણિકા ભણાવી કે તુર્ત જ સુરદાસજીને પ્રેમલક્ષણભક્તિ સ્ફુરિત થઈ ગઈ અને પરમાનન્દદાસજીને બાળલીલા સ્ફુરિત થઈ ગઈ, આ કૃપાક્ષણ.

મથુરાનાથજી પદ્મનાભદાસજીને કહે છે “મને તારું કર્યું રુચે છે તેથી જે ધરીશ તે પ્રીતિથી આરોગીશ”.

વળી પાર્વતી કહે છે “હવે દાળ કર મારું ગળું છોલાય છે”. શ્રીમથુરાનાથજી આવી કૃપા કરતા જે ફલરૂપ હતી.

ત્રિપુરદાસનો ડગલો ઓઢી ઠાકોરજી કહે “હવે મારી ઠંડી ગઈ”.

કનૈયાશાલ ક્ષત્રી : કનૈયાલાલ ક્ષત્રી જેમની પાંપણ પર શ્રીગોવર્ધનધર બિરાજતા. જેથી રણછોડજી સામે હોવા છતાં શ્રીગોવર્ધનધરના જ દર્શન થતાં.

આ પ્રકારે ભક્ત ઉપર ભગવાન્ અતુલ કૃપા કરતા જેનાથી જૂદું કયું ફળ હોય.



**સેવાફલ :**

“અલૌકિકસ્ય દાને” દામોદરદાસ હરસાનીને શ્રીમહાપ્રભુજીની આસુરવ્યામોહ લીલા પછી સતત શ્રીઆચાર્યજીની અનુભૂતિ થતી અને દર ત્રીજે દિવસે શ્રીઆચાર્યજી તેમને દર્શન દેતા. શ્રીઆચાર્યજીએ ઠાકોરજીને પણ “દામોદરદાસને સાનુભવ જતાવજો” તેવી ભલામણ કરી હતી.

કનૈયાશાલ ક્ષત્રી : કનૈયાશાલ ક્ષત્રી હંમેશાં લીલામાં મગ્ન રહેતાં. શ્રીગુસાંઈજી કહે “મારી વાણી આપ સિવાય બીજે ક્યાંય ખૂલે જ નહીં”. આવું અલૌકિક દાન પામતા.

સાયુજ્ય : પદ્મારાવલ ગોવિંદ દુબે.વગેરે. પ્રભુની વ્રજલીલાના અધિકારી નહોતા તેમ વાર્તાના શબ્દો પરથી જણાય છે. તેથી આ પ્રકારનું ફલ હોઈ શકે. ભાવપ્રકાશમાં શ્રીહરિરાયજી આજ્ઞા કરે છે મનમાં જાણ્યું કે “તે એટલું જ પાત્ર છે તેથી રણછોડજીમાં ભાવ થયો. ભગવદ્વિચ્છા, સંસારથી છૂટી કૃતાર્થ તો થયા”.

**અધિકાર = લીલામાં સેવોપયોગી દેહ :** નારણદાસ ભાટ (૫૮) : શ્રીઆચાર્યજીની મના છતાં ધ્રુવઘાટ પર ધન પડ્યું હતું તે જોતાં જ લેવા ગયા. તેથી શ્રીઆચાર્યજી તેને કહે “આખર પશુ તો ખરોને ! વિશ્વાસ નહીં”. લીલામાં તે ગોકુળના બંદર હતા. તેથી નિત્યલીલામાં પણ તેવો જ અધિકાર.

**૫. ઉપસંહાર :**

સેવાફળમાં સેવાના ફલ રૂપે જે ફળ બતાવ્યા છે તે એક ફોલ્ડર છે. જેમાં અનેક પેટા ફોલ્ડર અને ફાઈલો છે. તે બધા ગૌણ છે તેમ નથી વિચારવાનું. પણ તે બધા મુખ્ય ફલના સ્વરૂપના અનેક પાસાં છે. જેની જેવી અભિલાષા તેને તેવું ફળ. ભક્તના મનોરથોનો તોટો નથી તેમ પ્રભુના ફલદાનનો પણ તોટો નથી. કેટલાક મુખ્ય ફળ મળતાં પહેલાંની કડીરૂપ ફળ પણ છે. આ દરેક ‘કડી’ પણ સુખાનુભૂતિ કરાવનારી છે. તે કારણ-કાર્યની સાંકળમાં વચ્ચેની એક કડી સમાન છે.

ફળ એક એવી સ્થિતિ છે કે જેનું વર્ણન ગમે તેટલું કરો તો પણ અધૂરું. અને અનુભૂતિ કરીને વર્ણન કરે તો પણ વાણીની સીમાના કારણે અધૂરું. તેથી અનુભૂતિ જ ફળ છે.

શ્રીઆચાર્યજીના સર્વગ્રન્થોમાંથી જે આશય નીકળે છે તદનુસાર આ ત્રણ

ફળોનો ક્રમ ભિન્ન - ભિન્ન પ્રકારે પ્રાચીન બાળકો/વિદ્વાનોએ કર્યો છે.

“આજે શ્રીસુબોધિનીજીનું ફળ કહ્યું” તેવું કહેવાનો શ્રીગોકુળનાથજીનો આશય એ જ છે કે જે ચરિત્રો કહ્યા તે ચરિત્રનાયકને થયેલ ભગવદ્ અનુભૂતિ તેમની સાધનાપ્રણાલી અને તેમના પર ભગવદ્કૃપા આ સર્વ દુર્લભ છે અને સારનોય સાર છે. તથા ફળરૂપ છે.

કોને કયું ફળ આપવું અથવા ન આપવું અથવા અન્ય કંઈ આપવું તે બધું આખરે તો ભગવદ્દીચ્છા પર જ આધારિત છે. બાકી તો જે કંઈ સાધના અને ફળ છે તેની ત્રિરાશી માંડી શકાય તેમ નથી. જો માર્ગ પર છીએ, વરણ છે તો ફલ તો મળશે જ. ક્યારે અને કેવું તે તો ભગવદ્લીલાનું એક અંગ છે. અને કોઈ એક લીલા બીજાથી ચડીયાતી કે ઉતરતી ગણાશે તો તે પુષ્ટિભક્તિના ચોક્કામાં નહીં બેસી શકે.

ભગવદ્દીચ્છા, ભગવદ્કૃપા અને ભગવદ્લીલામાં શું શબ્દ વાપરીયે તે આપણો અધિકાર છે. પ્રભુ માટે તો સર્વ સમાન છે.

### ખાસ વિનંતી :

ષોડશગ્રન્થમાં જે વચનો છે તે ઉપદેશ - સાધનાને અનુલક્ષીને છે અથવા માર્ગનું સ્વરૂપ સમજાવવા માટે છે. પરંતુ જ્યારે તેનો ઉપયોગ ફલ વિષયક કરીએ ત્યારે તેના પ્રતિ જોવાની નજરીયા પણ બદલવી પડશે. થોડાક ફલેક્ષીબલ થવું પડશે, વોટર - ટાઈટ રહીશું તો ફલ નહીં દેખાય.



# कीर्तन साहित्यमें फलका स्वरूप

ख्याति द्वारकादास

उपक्रम:

श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभुजी पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदमें फलका स्वरूप बताते हुए आज्ञा करते हैं कि “**भगवान् एव ही फलं स यथाविर्भवेद् भुवि, गुणस्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत्**”. भगवान् ही फलरूप होते हैं, अर्थात् अपने गुण या स्वरूप के भेदोंमें वे जैसे भी इस भूतल पर प्रकट होते हैं वे पुष्टिजीवकेलिए फलरूप होते ही हैं. इस भूतल पर भगवत्सेवा और भगवत् कथा दोनों अथवा सेवा या कथामें से किसी एकके भी निभ पाने पर भगवद्भक्तको होती भगवत्स्वरूपानुभूति अथवा भगवद्गुणानुभूति ही पुष्टिमार्गीय फल है. भक्तिवर्धिनी कारिका ९ “**सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिर् दृढा भवेत्**” में सेवा अथवा कथा, दोनों ही या दोनोंमें से किसी एकको भी यावज्जीवन दृढासक्तिके साथ निभानेवालेका कभी नाश नहीं हो पाता.

भगवद्गुणासक्तिमें कीर्तनप्रणाली मुख्य है, परंतु सेवा प्रणाली भी सम्मिलित है. और स्वरूपासक्तिमें सेवाप्रणाली मुख्य है परंतु साथमें कीर्तन बिना सेवा अधूरी मानी जाती है. भगवानके बाह्य स्वरूपकी सेवा बाह्यावलंबनके द्वारा भीतर भगवत्प्राकट्यकी प्रक्रिया है. भगवद्गुणगान या भगवत्कथाके श्रवण-कीर्तन-स्मरणके अवलंबनसे भीतर रहे भावात्मक स्वरूपको बाहर अनुभव करनेकी प्रक्रिया है. फल दशामें किसी एकके भी निभ जाने पर किसी तरहकी भीतिका कोई हेतु नहीं रहता जब कीर्तन, श्रवण और मननकी प्रक्रिया चक्रवत् चलती हो, तब वह फलित होती है.

कीर्तन और अन्य संगीतमें यही एक मुख्य अंतर है कि जब अन्य संगीत लौकिक मनोरंजनकेलिए होते हैं, कीर्तन केवल प्रभुके आनंदकेलिए होते हैं, प्रभु सन्मुख या अनवसरमें गाये जाते हैं, यही भक्ति है. इस प्रकार भक्त कीर्तनसे अपने चित्तको ज्यादासे ज्यादा प्रभुकी ओर मोड़ सकता है.

कीर्तन मुख्यतया दो प्रकारके होते हैं. १. भगवानके गुणोंका वर्णन करनेवाले जो अनवसर समय किये जाते हैं. २. भगवानकी लीला और स्वरूपके वर्णन करनेवाले

जो प्रभु सन्मुख प्रभुकी लीलानुसार गाये जाते हैं.

‘यत् कीर्तनम् यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वदनं यच्छ्रवणं यदर्हणं’  
श्रीमद्भागवत् (२।४।१५) के अनुसार कीर्तनको प्रथम स्थान दिया गया है क्योंकि केवल गुणगानमें कीर्तन द्वारा ही प्रभु रीझते हैं अतः कीर्तन स्वयं एक भक्ति है. कीर्तनसे ही नवधाभक्तिके अलौकिक सामर्थ्यका लीलात्मक अनुभव भावनया होता है तथा उसका फल प्राप्त होता है.

कीर्तनमें स्वरूपात्मक भाव है. कीर्तनसे श्रवण और स्मरण भक्ति सिद्ध होती है. “प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरूहं, धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्”. जो नाद स्वर एवं भाव कीर्तन करनेवालेके हृदयमें कर्ण द्वारा जाकर पुनः दृढ हो जाते हैं, वही रसात्मक भाव जोकि भगवद्रूप हैं, स्थिर होकर भजनानन्दका अनुभव कराता है. स्वयं या अन्य द्वारा कीर्तन श्रवण करने पर श्रवण भक्ति एवं उसका अनुसन्धान या स्मरण करने से स्मरण भक्ति सिद्ध होती है.

श्रीसुबोधिनीजीमें श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि “भगवत्कर्माणि धर्मरूपाणि तानि मनसा भावितानि मनोयज्ञा भवन्ति कीर्तितानि वाग्यज्ञा (श्रुतानि ज्ञानयज्ञा)”. अर्थात् भगवत्कर्म धर्मरूप हैं, मनसे भावित होने पर वे मनोयज्ञ होते हैं, कीर्तन द्वारा वाग्यज्ञ होते हैं एवं श्रवणसे वे ज्ञानयज्ञ होते हैं.

**कीर्तनः**

“नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च, मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद” (भगवद्वाक्य). अतः पुष्टिसम्प्रदायकी सेवाप्रणालीमें कीर्तनको प्रथम स्थान दिया गया है. जिस प्रकार यज्ञमें देवताओंका आह्वान सामवेदके गानसे किया जाता है, उसी प्रकार भगवत्सेवा प्रारम्भ होते ही कीर्तनका प्रारम्भ होता है. इनकी रचनाका प्रकार वेदके द्विपाद और त्रिपाद छंद आदिको लक्ष्य करके हुआ है. प्रबंधोंके गान आदि विषयमें दान, मान आदि अनेक लीलाके वर्णनात्मक कीर्तन उपलब्ध होते हैं. अपने यहां पदोंके सरस गायन द्वारा ही प्रभुकी सेवा प्रणाली है. ये भावभीने पद सेवामें मन्त्रोंके रूपमें प्रयुक्त होते हैं. कीर्तनका प्रत्येक अक्षर भावात्मक, रसात्मक और मन्त्रोंके समान मात्राओंमें पूरित विशिष्ट उच्चारण ध्वनिमें आबद्ध होता

है. इस रससरिताका प्रवाह भक्तोंको निजधामका अलौकिक आनंद प्रदान करता है.

“ऋषयः मन्त्रदृष्टारः” जैसे ऋषियोंने वेदोंको देखा है वैसे ही श्रीमहाप्रभुजी एवं श्रीगुसांईजी के समयमें अष्टछाप भगवदीयोंको यादृश प्रभुदर्शन भगवत्कृपा और गुरुकृपा से होते थे, तादृश कीर्तन सत्वर ग्रथित करके उसका उद्गान प्रभु सन्मुख करते थे. पुष्टिमार्गीय सेवा प्रणालीमें कीर्तनका अपना एक विशिष्ट स्थान है. इसीलिए श्रीमहाप्रभुजीके अवतारकालमें भक्त कवियोंने श्रीठाकुरजीके स्वरूप, नाम, रूप, गुण, लीला के कीर्तन, दीनता, विनती, आश्रय, अनेक राग, ताल और प्रत्येक ऋतु, उत्सव और नित्य क्रमके अनुसार प्रभुसुखार्थ रचे हैं. हमारे कीर्तन किसी कविकी कल्पनायुक्त काव्य रचनाएं नहीं है अपितु जिन भक्तकवियोंने अपने गुरुकी कृपासे साक्षात् श्रीप्रभुकी लीलाएं प्रत्यक्ष देखी, उन लीलाओंका रसानुभव किया उसीका भावयुक्त गान करके प्रभुको रिझाया, वही रचनाएं हैं. हमें तो मात्र उनकी प्रसादी रूप कीर्तन गान करनेका अधिकार है.

“सम्प्रदायमें श्रीमहाभगवदीय दिव्य वाणी संगीत, गीत, साहित्यका स्थान सर्वाधिक है. हमारे प्रभु मन्त्रोपासनासे सेवामें प्रसन्न नहीं होते हैं किन्तु भगवद् गुणानुवादात्मक महद् भगवदीय कृत कीर्तनोंसे ही प्रभु जागते हैं, पोढते हैं, आरोगते हैं. यही परम तथ्य है. स्वल्प सेवा भी आप कीर्तनोंके बिना अंगीकार नहीं करते हैं.”

(नि.ली.पू.पा.गो.श्रीदीक्षितजी महाराज)

पुष्टिभक्तिमार्गमें कीर्तन परम्पराकी अपनी एक विशिष्टता है. ‘रास रसिक वै सः’ ऐसे हमारे प्रभु भक्तिरसात्मक हैं. उस भगवद्रसको प्राप्त करनेकेलिए परमफलको पानेकेलिए भक्तिके बीजरूप निरवधि स्नेहसे उसका सिंचन/भावन करना है.

कीर्तन साहित्यके कला और भाव पक्ष, दोनोंका चरम उत्कर्ष ब्रजभक्तोंके साथ प्रभुकी लीला/क्रीड़ाके भावका भावन करते हुए कीर्तन गानमें दृष्टिगत होता है.

पुष्टिभक्तिमार्ग अनुग्रहका मार्ग है. भगवत्कृपाकी अनंत अहैतुक आकांक्षाका मार्ग है. इसमें आराध्य नंदनंदन श्रीकृष्ण ही हैं. यह शिशु स्वरूप सम्मोहिनी आभासे

अभिमण्डित हैं. सम्मोहन हैं इनकी रागात्मक मनोहारी लीलाओंका, इनकी बालसुलभ सौख्यदायिनी क्रीड़ाओंका. तभी तो भक्तके अंतरमनमें यह छबि स्थायीरूपसे अधिष्ठित हो जाती है.

नैना अंतर आव तू पलक ढांपि तोहे लेहूं ।

ना मैं देखूं और कौं, ना तोही देखन देहूं ॥

यह द्वैतसे अद्वैतकी अन्तर्यात्रा भावाविष्ट पावन उद्भावनाओं पर आधारित है, इसमें अपने छैल विहारी रास रसिक मनमोहन बालकृष्णको रिझानेकी प्रसन्न करनेकी, तुष्ट करनेकी चेष्टाएं हैं. शिशु स्वभाव है कि वह राग और रंगके प्रति आकर्षित होता है, स्नेह और दुलार से प्रसन्न होता है, मां लोरियां सुनाती है, गीत गाती है. प्रभु तो सर्वरसो, सर्वगंध, सर्वरूप हैं किन्तु भक्तिरसात्मक होनेसे यशोदाजी इत्यादिको बालभाव, शिशुभाव दान करनेकेलिए, शिशुभावात्मकता भी आपने प्रकटकी है.

श्रीसूरदासजी लिखते हैं : “जसोदा हरि पालने झुलावै, हुलरावै, दुलरावै मल्हावै, जोई सोई कछु गावै” यह जोई सोई क्या है? यह तो हृदयसे हृदयको झंकृत करनेवाला राग है. मनकी अनंत आत्मीयतासे सरोबार भावात्मक राग है. वात्सल्यकी सुकुमार अभिव्यंजनाका पावन राग है, इसलिए मां यशोदा जोई-सोई कछु गा रही हैं.

हमें भक्तिका बीज श्रीमहाप्रभुजीकी कृपासे मिला तो है परंतु श्रीगुसांईजीकी बताई “भावैरंकुरित...”की पद्धतिसे सुसंस्कृत करके भक्तिरसका भलीभांति सिंचन करके उस भावात्मक बीजको फलदशा तक पहुंचाना है. “भाव प्रेम प्रणय स्नेह रागानुराग व्यसनानि, अंकुर कंदल शाखा पल्लव कलिका प्रसून फलानि इति”.

“भक्ति कल्पतरुकी सब शाखा नव अंकुरित बनाई, बाजत आज बधाई”. जब-जब जहां-जहां जिस पर प्रभु कृपा करके फल प्रदान करना चाहते हैं, तब-तब वहां उसे वह फल प्राप्त होता है. गोकुलादि स्थानोंमें रसात्मक पुष्टिपुरुषोत्तमकी रसमयी लीलाओंका दर्शन फलकी प्राप्ति ही तो है.

परमरस पायो ब्रजकी नारी॥

जो रस ब्रह्मादिकको दुर्लभ सो रस दियो मुरारी॥

मनको दियो सदा रस भावन, सुख समूहकी खान॥

‘रसिक’ चरणरज ब्रजयुवतिनकी, अति दुर्लभ जिय जान.

ब्रजवनिताओंको प्रभुने जो स्वरूपानंदका दान किया, उससे उत्तम कुछ नहीं है. ब्रजभक्तोंके मनको सुखसामूहकी खानमें रसानुभूति करनेका सुख, संयोग और वियोग के अनुभवरूप आनंदका अनुभव लेनेका फल प्रदान किया है, यह फल जीवकेलिए अति दुर्लभ है.

भगवानके रूप और नाम उभय रसात्मक हैं. उनका अनुभव केवल उस रसके अधिकारीको ही होता है.

अष्टसखाओंको श्रीमहाप्रभुजी एवं श्रीप्रभुचरण की कृपासे प्रभुकी रसात्मक लीलाओंका जो अनुभव हुआ है वह तो एक अगाध रत्नाकर है. श्रीगुसांईजी, श्रीगोकुलनाथजी, श्रीहरिरायजी, इत्यादि आचार्य वंशजों एवं परम कृपापात्र भगवदीय वैष्णव पद्मनाभदासजी, रसखानजी, हितहरिवंशजी, गंगाबाई, धोंधी, ताजबीबी, तानसेन, माधवदास, सगुणदास, माणिकचंद, आदि समकालीन वैष्णव; उनके कीर्तनसाहित्यका यत्किंचित अवलोकन हम करेंगे विस्तारभयसे संक्षिप्तावलोकन करेंगे.

### श्रीसूरदासजी :

श्रीसूरदासजी उत्तम भक्तकवि थे और उनकी अनेकानेक रचनाएं प्रसिद्ध हैं. श्रीमद्वल्लभाचार्यके दर्शन करते ही उन्हें अपनी आंतरदृष्टिसे श्रीआचार्यचरणके अलौकिक रूपके दर्शन हुए. सूरदासजीने श्रीवल्लभको शरण लेनेकी विनती की और “प्रभु हों सब पतितनको टीको” और “प्रभु हों सब पतितनको नायक” इत्यादि पद गाये. तब श्रीमहाप्रभुजीने आज्ञा की “सूर व्हेके काहेको घिघियात हो, कछु भगवल्लीला गाओ”. तत्पश्चात् श्रीवल्लभने सूरदासजीको समर्पण दीक्षा देकर प्रज्ञाचक्षु होते हुए भी कृपा करके दिव्य चक्षुओंका दान किया तभीसे उनके हृदयमें भगवल्लीलाओंकी स्फूर्ति होने लगी. श्रीमद्भागवतके १० स्कंधकी अनुक्रमणिका सुनाई. १०स्कंधकी कारिका :

नमामि हृदये शेषे लीलाक्षिराब्धि शायिनम्॥

लक्ष्मीसहस्र लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्॥

सुनाते ही उन्हें वह लीला फलित हो गई. श्रीसूरदासजीने तब “चकई री चल चरण सरोवर जहां नहीं प्रेम वियोग” पद गाया.

इस पदसे दृष्टिगत होता है कि सूरदासजीको श्रीसुबोधिनीजीकी सभी लीला स्फुरी. श्रीमहाप्रभुजीने सूरदासजीको नंदालयकी लीला गानेकी आज्ञा की. तब सूरदासजीने “ब्रज भयो महरिके पूत” यह पद गाया जिसमें नंदालयकी सभी लीलाओंका अनुभव हुआ. तत्पश्चात् श्रीमद्आचार्यचरणने उन्हें श्रीपुरुषोत्तमसहस्रनाम सुनाया. तब पूरे भागवतजीकी लीला श्रीसूरदासजीके हृदयमें स्फुरी. तब श्रीसूरदासजीने श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कंधसे लेकर द्वादश स्कंध पर्यंत सभी लीलाओंके कीर्तन वर्णित किये. इनमें अनेक पद दानलीला, मानलीला आदिके प्राप्त हैं. भगवल्लीलाका यशोवर्णन करनेका सामर्थ्य प्राप्त किया और नवधा भक्तिके साथ उन्हें प्रेमलक्षणा भक्ति फलित हुई.

श्रीसूरदासजीको अपने सम्पूर्ण जीवनमें लीलाओंकी स्फूर्तिसे फलानुभव होता रहा और उन्होंने अनेक पदोंकी रचनाकी जिनमेंसे कुछ पद यहां उद्धृत किये गये हैं.

श्रीमहाप्रभुजीकी कृपासे सूरदासजीकी अविद्या श्रीनाथजीने पहले ही दूर की थी “कौन सुकृत इन ब्रज बासिनकौ, बदत बिरंच सिव सेष” सूरदासजी ब्रजवासियोंके भाग्यकी सराहना करते हुए कहते हैं कि इनके कौनसे सत्कर्म फलें हैं जिनके कारण भगवान् मनुष्यके रूपमें प्रकटे हैं. प्रस्तुत पदसे महात्म्यज्ञानयुक्त स्नेह जो पुष्टिमार्गमें सर्वोपरि है ऐसी फलानुभूति कराता है.

“जाको मन लाग्यो गोपालसों” इस पदमें अहैतुक प्रेम, अव्यवहित और अनुभवैकगम्य फल दृष्टिगत होता है.

“भजि सखि भाव भाविक देव” श्रीसूरदासजीने इस पद द्वारा चतुर्भुजदासजी और सभी वैष्णवोंको पुष्टिमार्गके रसका अनुभव कराया है.

अंत समय तक श्रीसूरदासजीको फलानुभव होता रहा. उनकी चित्तवृत्तिको प्रभुके युगल स्वरूपमें स्थिर किया जिसका उदाहरण हमें इन दो पदों द्वारा प्राप्त हैं. “खंजन नयन रूप रसमाते” और “बलि बलि हों कुंवरि राधिका नंदसुवन जासों रति मानी” श्रीगुसांईजीके चरणस्पर्श करते हुए “दृढ़ इन चरणन केरो भरोसो” अंतिम पदगान किया.



## श्रीछीतस्वामीजी :

छीतस्वामी मथुराके उद्दण्ड चौबे थे. एक बार वे श्रीगुसांईजीकी परीक्षा करने निकले. श्रीमत्प्रभुचरणने दैवी जीवको पहचाना और अनुग्रहमार्गकी नैसर्गिक करुणासे उन्हें अपने अलौकिक स्वरूपके दर्शन कराये. सम्प्रदायमें प्रवेशके बाद, छीतस्वामीके भावुक हृदय पर भक्तिसुधासिंचनसे जो स्निग्धता आई वह उनको फलित हुई.

उच्च कोटिके सभी भक्त निःसाधन दशासे श्रेयसिद्धिमें प्रवृत्त होते हैं. वे भगवत्कृपा सौलभ्यार्थ ही यावज्जीवन सेवा या कथाका अवलंबन लेते हैं. यही उनका परम पुरुषार्थ है. छीतस्वामी भी स्वीय शरणागतिके अनन्तर सहसा इसी रसानुभूतिमें रचपच गये. प्रमेयबलसे प्रारम्भमें ही गुरुचरणके प्रति उनकी भावना उदित हो गयी. वे सहज ही बोल उठे “भई अब गिरिधरसों पहचान” और “हों चरणातपत्रकी छैयां” किस पूर्वके पुण्यफलस्वरूप गिरिधरसे बिना किसी प्रयत्न केवल प्रमेयबलसे साक्षात् परिचय हो गया. यही फलानुभूति है.

छीतस्वामीको श्रीप्रभुचरणके स्वरूपमें साक्षात् पुरुषोत्तमके दर्शन होते थे. इस भावनाकी प्रतीति करानेवाले यह पद है.

जै वसुदेव किये पूरन तप, सो फल फलित श्रीवल्लभ देह॥

जे गोपाल हुते गोकुलमें ते अब आन बसे करि गेह॥

जे वे गोप वधू ही ब्रजमें ते अब वेद रिचा भई येह॥

छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल तेई एई तेई कछु न संदेह॥

इसी तरह “अबके द्विजवर व्है सुख दीनो” और “श्रीगोकुलमें प्रकट बिराजे श्रीविट्ठल पुरुषोत्तम रूप”.

छीतस्वामी भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य उपासक हैं. वे संपूर्ण जगतको श्रीकृष्णमय दी देखते थे. निम्नलिखित पदमें वे गोपी, गोप बनकर कृष्णको अपने आगे-पीछे इधर-उधर सर्वत्र देखते हैं. इससे स्पष्ट है कि वे शुद्धाद्वैत मतका प्रतिपादन करते हुए ईश्वर और जीवकी तात्त्विकी एकताको मानते थे. “आगे कृष्ण पाछे कृष्ण इत कुष्ण उत कृष्ण जित देखूं तित कृष्णमई री”

परम प्रभुको प्रेमसे ही वशमें किया जा सकता है. वे श्याममनोहरको हृदयके

अंतरतमके रंचमात्र भी बाहर जाने नहीं देते. प्रियतम कृष्णका वियोग वे पलभर भी सह नहीं सकते. उन्होंने यह नियम, व्रत ले लिया है. छीतस्वामी इसे श्रीविट्ठलनाथकी भक्ति और कृपाका प्रसाद मानते हैं.

प्रीतम प्रीततें बस कीनो ।

उर अंतरतें श्याम मनोहर नैंकहु जान न दीनो ॥

सहि नहीं सकत बिछुरनो पल भरि भलो नेमु यह लीनो ।

गिरिधर लालके रंग राची।

तन सुधी भूलि गई मोकों अब कहति हैं तोसों सांची॥

इस पदमें छीतस्वामीकी आत्मविस्मृति और प्रभुके प्रति गहन-गम्भीर आसक्ति दृष्टव्य है.

छीतस्वामीके हृदयकी समस्त वृत्तियां कृष्णके सौंदर्य विग्रहमें खो जाती हैं. उनके अंतःकी संपूर्ण वृत्तियोंका कृष्णमें संकेन्द्रित हो जाना उनकी भक्तिसाधनाकी चरम अवस्था है. “छीतस्वामी गिरिधरन बिराजित नख-सिख रूप अनूप, बिनु देखे मोहे कल न परत छिनु सुभग बदन छपि जूप”.

श्रीमत्प्रभुचरणके भूतलपरित्यागका समाचार सुनकर वे व्यथित हो गये. अंतिम अवसर पर प्रभु श्रीगोवर्धनधरणने उन्हें साक्षात् दर्शन दिये. पुष्टिमार्गके विशेष प्रचारार्थ उस व्यापक, विभक्त रूपमें प्रत्यक्ष कर छीतस्वामीके अंतरमें त्रिकालाबाधित लीलानुभूति जागृति हो गई. उन्होंने प्रभुचरणकी सतत भूतल अवस्थितिकी अनुभूतिमें एक पद गाया “विहरत सातों रूप धरे”. पदकी अंतिम तुक “छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल जिहिं भजि अखिल तरें”की संपूर्ति, समकाल ही वे भजननौकाका सहारा लेकर भवसागरसे पार हो गए. भगवल्लीला संकीर्तनके फलस्वरूप उन्होंने साक्षात् दिव्यरसकी अनुभूति प्राप्त कर ली.

### श्रीपरमानंददाजी :

शरणागतितसे पूर्वकालमें परमानंददासजीकी ख्याति चारों ओर फैली हुई थी. श्रीआचार्यचरणके सेवक, देवा कपूर क्षत्रीय जो जलसेवा करते थे वे परमानंददासजीका पदगान सुनने रात्रिमें तैरकर प्रयाग पहुंचें. गान सुनकर भगवत्स्मरण किये और लौट गये. तब रात्रिमें परमानंददासजीको देवा कपूर क्षत्रीय और उनकी गोदिमें बिराजे

श्रीनवनीतप्रियाजीके दर्शन हुए. यह सर्वप्रथम फल उन्हें प्राप्त हुआ.

तत्पश्चात् अडेलमें श्रीआचार्यचरणके दर्शन होते ही उनको भगवल्लीला गानेकी आज्ञा हुई. परमानंददासजीको श्रीनवनीतप्रियाजीके सन्मुख ब्रह्मसम्बन्ध कराया और श्रीमद्भागवतके १० स्कंधकी अनुक्रमणिका सुनाई जिससे उन्हें बाललीलाकी स्फूर्ति हुई.

श्रीपरमानंददासजीने सर्वप्रथम “माईरी कमलनयन श्याम सुंदर झूलत हैं पलना” गानेके बाद बाललीलाके और भी पद गाये.

श्रीपरमानंददासजीकी दास्यभावभक्तिकी विशेषता है. साथ ही उनका सख्यभाव भी कुछ कम नहीं है. वार्तामें इस बातकी प्रतीति मिलती है कि एक बार एक राजा अपनी रानीके साथ श्रीजीके दर्शनको आया. श्रीजीने मंदिरके सारे किंवाड खोल दिये तब परमानंददासजीने “कौन यह खेलवे की बान” यह पद गाया. श्रीमहाप्रभुजी वहीं विद्यमान थे और उन्होंने “भली यह खेलवेकी बान” गानेकी आज्ञा की.

श्रीपरमानंददासजीको सख्यभक्ति भी फलित हुई है जो होरीकी गारीके इस पद द्वारा हमें दृष्टिगत होती है :

तुम आवो री तुम आवो।  
मोहन जु को गारी सुनावो। होरी रसरंग बढावौ...  
यह जस परमानंद गावै कछु रहसि बधाई पावै॥

नीचे उद्धृत कुछ पदों से हमें दृष्टिगत होता है कि श्रीपरमानंददासजीको निरोध लीलाकी फलानुभूति हुई है.

माई मेरो हरि नागरसों नेह।  
जबतें दृष्टि परी मनमोहन, तबतें बिसर्यो गेह॥१॥  
सरितासिंधु मिली परमानंद भयो एकरस देह॥२॥  
“माई मेरो माधोंसों मन मान्यो” और  
“मैं अपुनो मन हरिसों जोर्यो”.

परमानंददासजीको दुध अधरामृत पीते ही सब रात्रिकी लीलाके रसका अनुभव हुआ है. तब रात्रिकी लीलामें मग्न हो कर उन्होंने यह पद गाये हैं.

“प्रिय मुख देखत ही रहिवे”

“कौन रस गोपिन लीनो घूटा”

“याते माई भवन छाण्ड बन जैये”

“अमृत निचोई कियो इकठोर”

“यह तन नवल कुंवर पर वारों”

“आनंद सिंधु बढ्यो हरि तनेमें।

श्रीराधा पूरन शशि निरखति, उमग चलयो श्रीवृंदावनमें”॥१॥

जैसे पूर्णिमाके दिन पूर्ण चंद्रको देखकर समुद्रमें ज्वार आता है, जल उछलने लगता है वैसे श्रीपरमानंददासजीने इस पदमें राधारानीको पूर्ण चंद्र कहा है जिन्हें देखकर श्रीकृष्णके तन-मनमें आनंद रूपी जल उछलने लगता है। इस पदकी अंतिम तुकमें परमानंददासजी कहते हैं कि नंदलालाकी अनुकम्पासे उस आनंदका एक कण उन्हें भी मिला। “कछुक लह्यो नंदसुवन कृपातें सों देखियत परमानंद जनमें” यही फलानुभव इस पदसे दृष्टिगत होता है।

निम्नलिखित पद परमानंददासजीकी श्रीठाकुरजीमें सहज प्रीतिका उदाहरण है। प्रस्तुत पदमें परमानंददासजी बताते हैं कि जैसे राधा नंदनंदनकी प्रीति है वैसी ही चातकको स्वाति जलकी है, कमलको सूर्यसे है वैसे ही मन-कर्म-वचनसे हमारी श्रीठाकुरजीमें सहज प्रीति होनी चाहिये।

सहज प्रीति गोपाले भावे।

मुख देखे सुख होय सखीरी, प्रीतम नैनसों नैन मिलावे॥१॥

सहज प्रीति कमल और भाने, सहज प्रीति कुमुदिनी और चंदे॥

सहज प्रीति कोकिला बसंते, सहज प्रीति राधा नंदनंदे॥२॥

सहज प्रीति चातक और स्वाते, सहज प्रीति धरनी जलधारे॥

मन क्रम वचन दास परमानंद, सहज प्रीति कृष्ण अवतारे॥३॥

“आज प्रभात जाय मारगमें, सगुन भयौ फल फलित जसोदाके” इस पदमें श्रीपरमानंददासजी कहते हैं कि यशोदाजीको भगवदीय जीवनके फलस्वरूप पुत्ररूपमें जीवनका फल प्राप्त हुआ।

जन्माष्टमीकी मध्यरात्रिमें जब श्रीआचार्यचरणने श्रीनवनीतप्रियाजीको पलनेमें पधराया तब श्रीपरमानंददासजीने “जसोदा रानी सोवन फूले फूली” पद गाया। इस पदमें “ऐसे दशक होय जो और, सब कोउ सचुपावै” तुक गायी। अपने कृपापात्र भगवदीयके वचन फलित करनेकेलिए श्रीगोवर्धननाथजी, श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजी और उनके

सात बालकोंने इन दस स्वरूपोंसे प्रकट होकर पुष्टिमागीय दैवीजीवोंको सुख प्रदान किया। श्रीपरमानंददासजीका चित्त नंदोत्सवके आनंदमें सम्मिलित होकर इतना विक्षिप्त हो गया कि प्रभु प्रेममें विकल होकर वे बेहोश हो गये। श्रीगुसांईजीकी कृपासे सभी लीलाओंका फलानुभव उन्हें होता रहा। उच्छलित प्रेमावस्थामें जैसी लीलाका स्फुरण उनके हृदयमें हुआ वैसे पद वे गाते रहे। लीलारसमें निमग्न ऐसी अलौकिक दशामें उन्हें देखकर श्रीगुसांईजीने कहा कि जैसे श्रीकुंभनदासजीका निरोध किशोरलीलामें हुआ वैसे ही श्रीपरमानंददासजीका बाललीलामें निरोध हुआ है।

अंतिम समयमें उनका मन युगलस्वरूपकी लीलामें निरुद्ध था उसकी प्रतीति “राधे बैठी तिलक संवारति” पद द्वारा हमें होती है।

### श्रीकुंभनदासजी :

कुंभनदासजी प्रभुके ऐसे अंतरंग सखा थे कि श्रीगोवर्धनधरण उनकी गोदमें बिराजकर खेलते थे। अष्टाक्षर और ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षाके बाद कुंभनदासजी पर अहैतुकी भक्तिका प्रभाव पडा। नटवरवपु श्रीनंदनंदन और युगलस्वरूप श्रीश्याम-श्यामाके रूपमें भगवद् लीलाकी उन्हें ऐसी स्फूर्ति होने लगी कि नित्य नई पदरचना और गायन द्वारा प्रभुको रिझाकर उनके मुखारविंदके दर्शन करनेमें ही उन्हें भक्तिकी पराकाष्ठारूप भगवल्लीलाओंका साक्षात्कार होने लगा और परमानंदकी प्राप्तिका अनुभव होने लगा। शरण आनेके समयसे ही इनकी लीलानुभूतिके पद सुनकर स्वयं श्रीमहाप्रभुजीने उनके भाग्यको सराहा है और सदा हरिरसमें मग्न रहनेका आशीर्वाद दिया था। श्रीगोवर्धनधरणके स्वरूपमें उन्हें इतनी प्रबल आसक्ति थी कि उनका क्षणिक वियोग भी वे सह नहीं सकते थे। श्रीप्रभुचरणोंके साथ द्वारिका यात्राके समय श्रीनाथजीको एक क्षण भी छोड़ नहीं सके और अप्सरा कुण्ड पर बेहोश हुए। “किते दिन व्है जु गये, बिनु देखे...कुंभनदास लाल गिरिधरन बिनु, जीवन जनम अलेखे” प्रभुके विप्रयोगकी तीव्र व्यथाका दर्शन हमें इस पद द्वारा होता है।

“रूप देखि नैननि पलक लागे नहीं” पद द्वारा श्रीकुंभनदासजी एक सखीकी लीलात्मक फलानुभूति दृष्टिगत करवा रहे हैं कि गोवर्धनधर प्रभुके जिस अंग पर दृष्टि पडी वहीं कि वहीं जम कर रह गईं। प्रभुने दहीं मांगते ही उस गोपीका चित्त हर लिया।

“तेरौ मन गिरिधर बिनु न रहैगौ, कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु, प्रेम प्रवाह बहैगौ”.

इस पद द्वारा श्रीकुंभनदासजीकी प्रेमासक्ति फलित होती हुई दृष्टिगत हो रही है.

“जौरी रति नैननि नैन मिलाई. जबतें दृष्टि परे नंदनंदन घर आंगन न सुहाई” श्रीकुंभनदासजीको प्रभु प्रति सखीकी आसक्तिके दर्शन होते हैं. वे कह रहे हैं कि जबसे नंदनंदनके दर्शन हुए तबसे उसे घर-आंगन इत्यादि काटनेको दौड़ते हैं. “आसक्त्या स्याद् गृहारुचिः”.

अंत समय तक उन्हें प्रभुकी लीलाओंकी फलानुभूति होती रही. आन्यौरके पास संकर्षण कुण्ड पर भगवल्लीला गान करते हुए उन्होंने भौतिक शरीरका परित्याग किया. उस समय उनकी चित्तवृत्ति प्रभुकी लीलामें थी और “बिसरि गयौ माई लाल हिं करत गो दोहनु, निरखि अनूप चंद्रमुख इकटकु रह्यौ सांवरौ मोहनु”. यह लीला गान करते इहलीला समेट कर श्रीजीकी निकुंज सेवामें पहुँच गए.

### श्रीचतुर्भुजदासजी :

केवल ४१ दिनकी वयमें चतुर्भुजदासजीको नाम और निवेदन श्रीगुसांईजीने कराया. बालकके हाथसे तुलसी लेकर समर्पते ही, श्रीजीने बड़ा अद्भुत स्मित किया जिससे चत्रभुजदासजीकी अलौकिकताकी प्रतीति होती है. आपने अधरामृत प्रसाद और चर्वित तांबुल देकर चत्रभुजदासमें अलौकिक सामर्थ्यका स्थापन किया.

एक समय श्रीकुंभनदासजी और श्रीचत्रभुजदासजी, पिता-पुत्रकी जोड़ी अर्धरात्रिके समय अपने घर बैठे थे. बहां श्रीनाथजीके मंदिरके झरोखेमें प्रज्वलित दीपकको देखकर कुंभनदासजीको श्रीजीके पौढ़नेकी लीलाका दिव्य दर्शन हुआ और उन्होंने “वे देखो बरत झरोखन दीपक, हरि पोढ़े उंची चित्रसारी” इस तुकका गान किया और चुप हो गए. तब श्रीचतुर्भुजदासजीको श्रीगुसांईजीकी कृपासे और श्रीमहाप्रभुजीकी कानि से उसी लीलाका अनुभव फलित हुआ और उन्होंने “सुंदर वदन निहारन कारन, राखे हैं बहुत जतन कर प्यारी” कह कर उसी तुककी पूर्तिकी.

“नैनभर देखों नंद कुमार” चत्रभुजदासजी श्रीकृष्ण जन्मकी बधाई गाते हुए मानों उस दृश्यको अपने नेत्रोंसे देख रहे थे.

श्रीगुसांईजीकी आज्ञासे श्रीजीकी सेवाकेलिए पुष्प चुनने वे अप्सराकुण्डकी

ओर श्रीगिरिराजजीकी एक कंदराके पास पहुंचे. वहां उन्हें रति चिन्होंसे अंकित श्रीयुगल-स्वरूपके दर्शन हुए. आनंदसे विभोर होते उन्होंने “गोवर्धनगिरि सघन कंदरा, रैन निवास कियो पिय प्यारी” पद गाया तब श्रीनाथजी बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें दूसरा पद गानेकी आज्ञाकी. “रजनी राज लियो निकुंज नगरकी रानी” यह पद गाते ही युगल स्वरूपके अद्भुत दर्शन उन्हें होते थे.

श्रीचत्रभुजदासजीको अपने पिताकी ही तरह अनेक लीलाओंकी फलानुभूति होती रहती थी. अपने आराध्य देव श्रीविट्ठलनाथजीमें उनका अकल्प्य एकात्म भाव था. जब श्रीगुसांईजी सदेह श्रीगिरिराजजीकी कंदरामें पधारे तब चतुर्भुजदास ऐसे व्यथित हो गये और “फिर ब्रज बसो श्रीविट्ठलेश, कृपा करिके दरस दिखावहु, वह लीला वह वेष” यह पदगान किया. विरहावस्थासे उनका हृदय फटा जा रहा था. तब श्रीगुसांईजीने कुछ क्षणोंकेलिए केवल चतुर्भुजदासजीको अपने दिव्य दर्शन दिये. “श्रीविट्ठलनाथ प्रभु भयो न वहै है, श्रीवल्लभ सुत दर्शन कारन सब कोउ तपे हैं” अपने गुरुके गुणगान करते हुए उनके चरणकमलमें अपना चित्त एकाग्र करके रुद्रकुण्डके पास उन्होंने देहत्याग किया.

### श्रीगोविंदस्वामीजी :

श्रीगुसांईजीके अलौकिक चरित्र और उनकी भगवद्भक्तिसे आकर्षित होकर गोविंदस्वामी उनके सेवक बने. शरण आते ही उन्हें श्रीगुसांईजीके स्वरूपमें जो फलानुभूति हुई वह निम्नलिखित पदसे हमें दृष्टिगोचर होती है.

“श्रीवल्लभ नंदनरूप अनूप सरूप कह्यो न जाई,

प्रकट परमानंद गोकुल बसत है सब जगको सुखदायी,

भक्ति मुक्ति देत सबको निजजनको कृपा प्रेम बरखत अधिकाई,

सुखमय सुखरूप सुखद एक रसना कहां लउं बरनों गोविंद बलि जई”

इसी प्रकार होरीके दिनोंमें शयन समय श्रीगोविंदस्वामी “श्रीगोवर्धन राय लाला” धमार गा रहे थे. “अचका-अचका आयके भाजि गिरिधर गाल लगाये” इतना गा कर श्रीगोविंदस्वामी रुक गये. श्रीगुसांईजीके पूछने पर उन्होंने बताया कि “धमार तो भाजि गयी और मन तो अरुझाई गयो. तातें आगे खेल कहां होई” यह सुनकर गोविंददासजीकी भावप्रवणता पर मुग्ध होकर स्वयं दो पंक्ति रचकर श्रीप्रभुचरणने धमारको पूर्ण किया “यह बिधि होरी खेल ही ब्रजबासिन संग लगाय, श्रीगोवर्धनधर रूप पर जन गोविंद बलि-बलि जाय”.

नवधाभक्तिमें श्रीगोविंदस्वामीको सख्यभक्ति सिद्ध हो गई थी. अनवसरमें श्रीनाथजी उनके साथ गिल्ली-दण्डा खेलते तो कभी उन्हें घोड़ा बनाकर घुड़सवारी करके वनमें पधारते. एक बार गिल्ली-दण्डा खेलते समय श्रीनाथजी पर दाव आया और आप उत्थापनके समय मंदिरमें पधार गये, पीछे भागते गोविंददास्वामीने भी मंदिर पहुंचते ही श्रीजी पर गिल्ली मारी. अन्य सेवकोंने उन्हें रोका, तब रूठ कर उन्होंने

पोत लैं आयो भाजि गंवार.

खोलि किंवाड धस्यो घर भीतर, सिखई दिये लंगवार॥१॥

कबहूँ तौ निकसैगौ बाहिर तो ऐसी दउंगो मार.

गोविंद साँ तू अब बैर करके, सुख नहीं सोवे यार॥२॥

इस तरह सख्यकी तीव्रताके वश गारी सुना देना उनकी सख्यभक्तिके फलका ज्वलंत उदाहरण है. साथ ही, “खेलतमें को काको गुसैया” और “अरी तुम नंद महरके छोहरा....गारी देदे भाग जनावे, और उपजावे मोहरा” इत्यादि अनेकविध पद मिलते हैं.

प्रभुकी हिंडोर लीलाकी अनुभूति करानेवाले यह चार पद उद्धृत हैं.

१. झूलन आई ब्रजनार

२. झुलत सुरंग हिंडोरे राधामोहन

३. तेसोई वृंदावन

४. रंग मच्यो सिंह द्वार

यह चारों पद अद्यावधि सम्प्रदायमें प्रभु हिंडोरा झूलें तब प्रथम गाये जाते हैं.

“प्रीतम प्रीत ही तें पैये. गोविंदप्रभु बिना स्नेहसू आलो रसना कहा नचैये” प्रियमत श्रीकृष्ण प्रेमके भूखे हैं. वे तो प्रेमसे प्रीतिसे प्राप्त होते हैं. गोविंदस्वामी कह रहे हैं कि इस पदमें मार्गके मुख्य तत्व-प्रीतकी पराकाष्ठाका सूचन यही परम फल है.

**श्रीकृष्णदास अधिकारी :**

श्रीवल्लभाचार्यजीसे दीक्षा ग्रहणकी. गुरुकृपासे उसी क्षणसे कृष्णदासजीको सभी लीलाओंका अनुभव हुआ. तब इस फलानुभूतिरूप उन्होंने “श्रीवल्लभ पतित उद्धारन जानो” यह पद गाया.

श्रीकृष्णदासजीको रासलीलाकी फलानुभूति होती थी. परासोलीमें स्वयं श्रीनाथजीने जब रास किया तब उस लीलाके दर्शन करते हुए श्रीकृष्णदासजीके मुखसे



यह पद निःसृत हुआ. “श्रीवृषभान नंदिनी नाचत लाल गिरिधर संग, लाग डाट उरप तिरप रास रंग राख्यो”.

यह पद सुनकर अतीव प्रसन्न होकर श्रीनाथजीने अपने श्रीकण्ठकी प्रसादी माला कृष्णदासजीके गलेमें डाल दी और उनका रोम-रोम भाव विभोर होकर आनंदसे झूम उठा. ऐसे ही “ततथेई रासमण्डलमें बनि नाचति पियके संग प्रीतम प्यारी” और “चंद गोविंद गोपी तारागन बन्यो रासमें बनवारी” जैसे अनेक पद प्राप्य हैं.

मो मन गिरिधर छबि पर अटक्यौ ।  
ललित त्रिभंगी अंगन पर चलि, गयौ तहांई ठटक्यौ ॥  
सजल स्यामघन चरन नील व्है, फिर चित अनल न भटक्यौ ।  
कृष्णदास कियौ प्रान न्यौछावर, ये तन जग सिर पटक्यौ ॥

प्रभुकी ललित त्रिभंगी छबिकी अनुभूति उन्हें सदैव होती रहती थी. प्रस्तुत पद इस बातकी प्रतीति कराता है. “लाल गुपाल गुलाल हमारी, आंखिनमें जिन डारो जु...नागरि नायक सब सुख दायक, कृष्णदासकौ तारो जु”. इस प्रसिद्ध होरी लीलाके पद द्वारा उन्हें होरी लीलाके दर्शन होते थे यह बात हमें ज्ञात होती है.

“गिरिधर देखे ही सुख होय. नयनवंतको येही परमफल, यह बिधि मोहे त्रैलोक्य”. जैसे वेणुगीतमें “अक्षण्वताम् फलम् इदं” कहके सर्व इन्द्रियोंसे आस्वाद्य फल बताया है वैसे ही यहां वह फलानुभूति श्रीकृष्णदासजीको हुई है.

### श्रीनंददास :

श्रीगुसांईजीकी कृपासे नंददासजी पुष्टिमार्गमें दीक्षित हुए. इससे इनके जीवनमें आमूल परिवर्तन हो गया और ये पूर्णतः श्रीकृष्णकी भक्तिमें तल्लीन हो गये. गुरुके प्रसादसे नंददासजीको स्वारूपानंदका अनुभव होने लगा. श्रीगुसांईजी द्वारा प्रदत्त पुष्टिभक्तिका उदय उनके मानसमें हुआ और कृष्णलीलासे सम्बद्ध श्रेष्ठ पदोंकी रचना करके कीर्तन करने लगे. उनकी कुछ रचनाएं यहां उद्धृत हैं.

कृष्ण नाम जबतैं श्रवण सुन्यौ री आली, भूली री भवन हों तो बावरी भयी री।  
भर-भर आवैं नैन, चित हू न परै चैन,  
मुख हू न आवैं बैन, तनकी दशा कछु औरैं भईरी॥१॥  
जेतेक नैम धर्म कीनेरी मैं बहुविध, अंग-अंग भई हूं तो श्रवण मई री।  
नंददास जाके श्रवण सुने यह गति माधुरी मूरति केंधो कैसी दर्ई री॥२॥

इस पदसे यह फलित हो रहा है कि केवल कृष्णनामके श्रवणसे सखी बावरी भई तो आगे बढ़कर व्यसन दशामें क्या होगा ? श्रीमहाप्रभुजी द्वारा प्रकट की गई सेवाके सिद्ध होने पर सर्वात्मभावसे प्राप्त होनेवाला भजनानंद ही अलौकिक फल है, जो अपने किये हुए करोड़ों साधनोंसे भी प्राप्त नहीं हो सकता. इसका दान प्रभु ही अनुग्रह करके देते हैं.

रही हो मेरी अंखियां लाल संग अटकी ।  
 सुरतिकी मूरत चितमें चुभि रही, छूटत नाहिन जटकी ॥  
 भ्रोंहकी मरोर मारि डारत हैं, बानी पीर मेरे हियमें छिटकी ।  
 नंददास प्रभु प्यारी लाज तजी, चली है डगर बंसीबटके निकटकी ॥

प्रस्तुत पद द्वारा नंददासजीकी युगल-स्वरूपमें आसक्ति फलित हो रही दृष्टिगत होती है.

नंददासजीकी रासपंचाध्यायी द्वारा उनकी फलानुभूतिकी कुछ कणिका हम देखेंगे.

सब रसको निर्यास रासरस कहिये सोई ।  
 धर्म नेम जप तप व्रत, सबको फलही बतावे ॥  
 यह कहू नाहिन सुनि फलही फिर धर्म सिखावे ।

रासमें श्रीव्रजवनिताएं प्रभुके प्रति कह रहे हैं कि हे प्रिय धर्म, नियम, जप, तप, व्रत, इन सब साधनोंसे फल प्राप्ति होती है ऐसा शास्त्र बताते हैं किन्तु फल स्वयं ही धर्म सिखाये ऐसा कभी सुना नहीं हैं. अर्थात् फलस्वरूप आप हमें प्राप्त हो गये हो.

“और तुम्हारे यह रूप धर्मके धर्म हों मोहे, धर्मनके तुम धर्म, भ्रम यह आग को है”  
 आप तो धर्मके भी धर्म हो; धर्मी हो. धर्मीके सन्मुख हमारे भ्रमकी क्या गणना.

नित्य रास रस मन, नित्य श्रीगोपीजन वल्लभ ।  
 नित्य नियम जो कहियत, नित्य नौतन अति दुर्लभ ॥  
 श्रवन कीर्तन सार सुमिरणको है पुन ।  
 ज्ञान सार हरि ध्यान सार श्रुत सार गूंथी गुन ॥

प्रभुकी रासलीलामें नंददासजीको जो फलानुभव हुआ वह प्रेमलक्षणा शुद्ध पुष्टिभक्तिका परिचायक है. अंत समयमें भी उनकी चित्तवृत्ति फलस्वरूपा रासलीलामें ही थी.

देखो देखो नागर नट, निरतत कालिंदी तट ।

गोपिनके मध्य राजे, मुकुट-लटक...रासमें राधे राधे ॥

मुरलीमें एक रट, नंददास गावें तहां निपट निकट ।

निभृत-निकुंजकी नित्य रासलीलामें प्रवेश कर निपट निकट श्रीनाथजी और श्रीप्रियाजीके आनंद प्रेम रस से परिपूर्ण हो गये।

### नित्य-वर्षोत्सवके पदोंमें फलानुभूति :

नित्य पद और वर्षोत्सवके कई पदोंमें फलानुभूतिके दर्शन होते हैं :

“मंगलं मंगलं ब्रजभूवि मंगलं” प्रभुचरण श्रीविट्ठलनाथजीके इस पदसे स्पष्ट होता है कि प्रभु सर्व रीतसे आनंदात्मक हैं। साथ ही में सकल लीलापरिकर भी आनंदात्मक है। श्रीमद्भागवतके तामस प्रकरणका सार इस मंगल चतुष्पदीमें श्रीगुसांईजीने दर्शाया है। इस पद द्वारा आनंदात्मक ब्रह्मवाद और लीलाबोधककी फलानुभूति होती है।

ऐसी बंसी बाजी बन-घनमें व्याप रही ध्वनि महामुनिनकी समाधी लागी।

रास आदि अनेक लीला रस भाव पूरित मूरति, मुखारविंदकी छबि धरें विरह अनंग जागी प्रस्तुत पदकी फलानुभूतिमें श्रीपद्मनाभदासजी बता रहे हैं कि श्रीकृष्णावतारके समय भगवान् श्रीकृष्णने जैसा वेणुवादन किया वैसी ही बंसी आज श्रीलक्ष्मणभट्टजीके द्वार पर बज रही है। जैसे प्रभुके वेणुनादसे सब मुनी, ज्ञानी, ध्यानीकी समाधि लग गयी वैसी ही वे समझ गये कि दैवोद्धारप्रयत्नात्मा श्रीमहाप्रभुजी इस भूतल पर पधारे हैं। जिस प्रकार देवताओंने क्षीरसागरका मंथन कर अमृत निकाला, उसी प्रकार आपश्रीने भागवत रूपी अमृत सागरका मंथन कर, रासस्त्रीभाव अर्थात् गोपीजनोंके भावरूपी नवनीत निकाल कर भजनानंद रूपी पूर्णफल भक्तोंको बांटा।

कौन रस भूतल प्रगट भयौ। देखौ देखौरी नैनन प्रभु आनंद मयौ॥१॥

जो रस निगम अगमहू अगोचर, सो सब सच लयौ।

सो रस श्रीलक्ष्मण भट्ट गृह प्रकटित प्रेम मयौ॥२॥

घर घर नंद नंदन फल फूल्यौ, सेवा विधि सिखयौ।

आपुन किये रसाल रीतिसों श्रीवल्लभ गिरिधर रिझयौ॥३॥

प्रस्तुत पदमें श्रीगोकुलनाथजीको यह फलानुभूति हुई कि श्रीवल्लभाचार्यजीने भागवत रूपी अमृत सागरका मंथन करके उससे रसमय ज्ञान और ज्ञानमय रस भजनानंद

रूपी नवनीत बाहर निकाल भक्तोंके हृदयमें रसेश श्रीकृष्णके प्रति एक अनूठे प्रेमका बीज बोया. भक्त सर्व इन्द्रियोंका विनियोग भगवानकी सेवामें करते हैं; भक्तकेलिए इन्द्रियां भगवत्प्राप्तिमें सहायक हैं. अपने अहंभाव और ममभावको त्यागकर अहंकार रहित हो कर प्रभुका दासत्व स्वीकार करके, स्वामीके सुखार्थ सेवामें लग जाना ही सेवा है. प्रभुको आनंद किस प्रकार हो इस विचारके साथ सेवामें प्रवृत्त होना ही सेवा है. भक्त भगवानको आनंदित करे, तभी भगवान् भक्तको अपने स्वरूपका आनंदानुभव कराते हैं. यही पुष्टि भक्तिका शरण मार्ग श्रीमहाप्रभुजीने दिखाया हैं.

प्रकटे पुष्टि महारस दें।

श्रीवल्लभ हरि भाव अति मुख रूप समर्पित लैन॥१॥

नित्य सम्बन्ध कराय भाव दें, विरह अलौकिक बैन।

यह प्राकट्य रहत हृदयमें, तीन लोक भेदनकों जेन॥२॥

रहिये ध्यान सदा इनके पद, पातक कोउ लगैन।

रसिक यह निरधार निगमगति, साधन और नहैन॥३॥

श्रीहरिरायजीके अनुसार श्रीमहाप्रभुजी भक्ति, समर्पण, शरणागति द्वारा महारस प्रदान करने प्रकटे हैं. आपश्रीने जीवका ब्रह्मसम्बन्ध कराकर बीजभावको दृढ किया, सेवाधिकार दिलाया.

विप्रयोगावतार श्रीमहाप्रभुजीने विरहकी स्थितिमें आंतर हृदयमें स्थित लीलाविहारीके साथ नित्य आनंदानुभूतिमें रमण करते थे. आपश्रीने आज्ञा की हैं कि अहर्निश भगवल्लीलाओंका स्मरण करना चाहिए. लीलानुसंधान पूर्वक चिंतन करनेसे लौकिकासक्तिका त्याग होने लगता है और प्रभुमें आसक्ति बढ़ने पर प्रभुमें प्रेम बढ़ता हैं. इस प्रकार जीवको भगवत्प्राप्तिका यही एकमात्र कर्तव्य हैं. तभी फलानुभूति होगी.

“सृष्टिर् व्यर्था च भूयात् निजफलरहिता देव वैश्वानरैषा”

(वल्लभाष्टक) “जो पै श्रीवल्लभ प्रकट न होते...‘सगुणदास’ सिद्धान्त बिना यह उर कपाट क्यों खोते”. सगुणदासजी इस पद द्वारा श्रीमहाप्रभुजीके प्राकट्यकी फलानुभूति कराना चाहते हैं कि आपश्रीके प्राकट्य बिना भक्तिका वास्तविक सिद्धान्त जाने बिना भक्तोंके हृदयके कपाट कैसे खुलते, उनका अज्ञान दूर कैसे होता ?

सखी हों जू गयी दधि बेचन ब्रजमें उलटी आप बिकाई।

बिनु ग्रन्थ मोल लई नंदनंदन सर्वस्व लिख दैं आई॥१॥  
चितवत चलत सोवत और जागत यह ध्यान मेरे आगे री।  
नीलमणि मुक्तामाल देहूं जो मोहि श्याम मिलायेरी।  
कहे माधो चिंता क्यों बिसरे बिनु चिंतामणि पायेरी॥६॥

प्रस्तुत पदमें माधवदासजी बतला रहे हैं कि लोकव्यवहारके बावजूद, दधि बेचनेके बावजूद, इस सखीको परमफलकी प्राप्ति हुई है। जैसे श्रीगोपीगीतमें भी “सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका” बताया है।

“फल फलित होय फलरूप जाने” जैसे निगम कल्पतरुका गलित फल श्रीमद्भागवत है, और उसमें जो गूढ सेवारस वर्णित है, वह रस तो श्रीभागवतजी स्वयं कृपाकरके बतायें तभी फलित होता है। वैसे ही श्रीयमुनाजी स्वयं फलात्मक होनेसे उनकी कृपासे प्रभुके लीलारस समुद्रमें भक्तकी स्थिति होती है, फिर संयोग विप्रयोगात्मक भाव स्वरूपानंदका अनुभव होता है।

### आधुनिक परिप्रेक्ष्य :

श्रवण और कीर्तन वैष्णवके मुखसे ही करने चाहिये। आधुनिक परिस्थिति ऐसी है कि अवैष्णवके मुखसे भी श्रवण या कीर्तन, या किसी भी प्रकारकी वृत्तिकेलिए किया गया श्रवण या कीर्तन श्रोता या वक्ता को फलित नहीं होता। श्रीमहाप्रभुजी जलभेदमें आज्ञा करते हैं कि “जलार्थमेव गतास्तु नीचागानोपजीविनः” कीर्तन किसी लौकिक मनोरंजनकेलिए न होते हुए केवल प्रभुको रिझानेके लिए है। किसी लौकिक या पारमार्थिक हेतुसे कीर्तनके कार्यक्रम टिकट या डोनेशन कार्डसे आयोजन करके भगवन्नामविक्रय नहीं करना चाहिए। कीर्तनकी गरिमा हमें बनाये रखनी है।

महापुरुषों (ब्रजभक्तोंकी) कृपासे, एवं भगवानकी कृपासे किये गये कीर्तनसे निश्चित आनंदसमूहकी प्राप्ति होगी। जैसे महापुरुषोंकी कृपासे भक्तों द्वारा किया गया कीर्तन सदा सुखदायी होता है, वैसे लौकिक लोगोंसे लौकिकतया लौकिक विषयोंका कीर्तन सुखद नहीं होता है, जिस प्रकार स्निग्ध भोजन चाहनेवालेको रूक्ष भोजन सुखद नहीं लगता। निरोधलक्षण ग्रन्थमें श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं :

महतां कृपया यावद् भगवान् दययिष्यति, तावदानंदं संदोहः कीर्त्यमानः सुखाय ही  
महतां कृपया यद्वत् कीर्तनं सुखदं सदा, न तथा लौकिकानां तु स्निग्धभोजनरूक्षवत्  
गुणगाने सुखावाप्तिः गोविंदस्य प्रजायते।

## उपसंहार :

श्रीमद्भागवतमें भी “निवृत्ततर्षैः उपगीयमानात् भवौषधात् श्रोत्रमनो-  
भिरामात्, क उत्तमश्लोक गुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुध्नात्” वचन  
मिलते हैं। श्रीहरिरायजी भी कीर्तनका फल बताते हुए कहते हैं कि “हों वारि इन  
वल्लभियन पर। नेहभरी देखो मेरी अंखियन मण्डल मध्य विराजत गिरिधर” जहां प्रभुका कीर्तन  
होता है वहां श्रीप्रभु अवश्य पधारतें ही हैं। अतः “वल्लभी सृष्टि समाज संग मिल जीवनको  
फल पाईये, श्रीवल्लभ गुण गाईये याहीते रसिक कहाईये”.

## संदर्भ ग्रन्थ :

१. श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणविरचिता सुबोधिनी. वि.सं. २०८४ श्रीवल्लभाब्दः ५२१, प्रकाशक  
श्रीवल्लभविद्यापीठ श्रीविट्ठलेशप्रभुचरण ट्रस्ट, कोल्हापुर, महाराष्ट्र.
२. परमानंदसागर-विद्याविभाग, कांकरोली.
३. सूरसागर खण्ड प्रथम एवं द्वितीय, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी.
४. चतुर्भुजदास-विद्यावुभाग, कांकरोली.
५. कुंभनदास-विद्याविभाग, कांकरोली.
६. गोविंदस्वामी-विद्याविभाग, कांकरोली.
७. छीतस्वामी-विद्याविभाग, कांकारोली.
८. कृष्णदास-विद्याविभाग, कांकारोली.
९. अष्टछपके कोकिल कण्ठी कवि और कीर्तनकार छीतस्वामी-सम्पादक भगवती प्रसाद देवपुरा,  
साहित्य, मण्डल, नाथद्वारा.
१०. अष्टछपके महाकवि ब्रज कोकिल नंददास-सम्पादक भगवती प्रसाद देवपुरा, साहित्य, मण्डल,  
नाथद्वारा.
११. पुष्टिमार्गीय कीर्तन सेवा प्रथम एवं द्वितीय खण्ड-सम्पादनः रवि प्रभा बर्मन. (कलकत्ता)
१२. अष्टछाप परिचय-प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक अग्रवाल प्रेस, मथुरा, १९५०.
१३. रास पंचाध्यायी (श्रीनंददासजीकृत) लेखक गो.श्रीमोतीलाल हरजीवनदास महेता (धंधुका)  
प्रकाशक विट्ठलदास सी. शाह. तंत्री वेणुधर, १९६८.
१४. पुष्टिविधानम् पाठावली.



# भक्तकवि श्रीसूरदासजीके पदोंमें 'फल'का निरूपण

अरविन्द भट्ट

## (१) प्रस्तावना:

महाप्रभु श्रीभद्वल्लभाचार्यजीने दैवीजीवोंके उद्धारके लिये अनेक ग्रन्थोंकी रचनायें की हैं, जिसमें प्रमाण प्रमेय प्रकरण प्रक्रिया व्याख्या आदि ग्रन्थोंमें फलका विशेषरूपसे निरूपण किया गया है. जिसके परिणाम स्वरूप श्रीमहाप्रभुजीके अनन्यसेवकोंने भिन्न-भिन्न फलावस्थाओं, प्रेम आसक्ति व्यसनादि का अनुभव अपने जीवनकालमें किया है व उसीका गुणगान स्वरचित पदोंमें भी किया है. ऐसे ही भक्तकवियोंमें श्रीसूरदासजीका नाम इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा गया है.

## (२) श्रीसूरदासजीका प्रारम्भिक जीवन परिचय:

श्रीसूरदासजीका जन्म श्रीमहाप्रभुजीके प्राकट्यके दस दिन बाद वैशाख सुदि पञ्चमी वि.सं.१५३५में दिल्लीके नजदीक 'सीही' गांवमें हुआ. इनके माता-पिता सारस्वत ब्राह्मण थे. अपने पिताके चोथे प्राकृत नेत्रविहिन पुत्र श्रीसूरदासजी निर्धन परिवारसे थे. निर्धन परिवारमें अन्धे चोथे पुत्रका जन्म एक चिन्ताका विषय बन गया. पूरे परिवारमें एक उदासीनता छा गयी. माता-पिता, भाई-बन्धु की बालकके प्रति उपेक्षा बढ़ती गयी. बालक किसीको घरमें नहीं सुहाता था. वास्तवमें सांसारिक परिवारकी वह वृद्धिशील उपेक्षा, निरपेक्ष जगतपिता श्रीप्रभुके हृदयमें इनके प्रति अपेक्षाको जगानेकी पूर्व भूमिका ही थी. सर्वथा संसारसे निरपेक्ष होने पर ही तो अशरणजीवको शरणदेनेवाले भगवान् अपनाकर भक्तवत्सल कहलाते हैं.

श्रीसूरदासजी छः वर्षके हुए कि इनके परिवारमें एक विशेष घटना घटी. इनके पिताके एक धनवान् क्षत्रियने दो स्वर्णमुद्राएं दानमें दीं जिसे पिताने पोटलीमें बांधकर एक अलमारीमें रख दिया. प्रातःकाल पिताने जब उन मोहरोंको वहां नहीं पाया तो बहुत दुःखी हुए व छाती पीट-पीट कर रोने लगे. श्रीसूरदासजीने जब यह जाना तब पितासे उन्होंने भगवत्स्मरण करनेकी सलाह दी. सूरदासका इतना कहना जले पे नमक छिड़कने समान लगा. पिता बोले, 'अरे जबसे तू मनहूस पेंदा हुआ है तभीसे हम दुःख भोग रहे हैं, आयी लक्ष्मी भी हाथसे चली जाती हैं'. तब सूरदासने कहा कि मोहरे तो

में आपको अभी बता देता हूं पर मेरी एक शर्त है कि मैं इस घरमें रहूंगा नहीं. पिताने यह शर्त मंजूर कर ली. चूंहींके बीलसे पोटली प्राप्त करनेके बाद श्रीसूरदासजीने घर त्याग दिया व अपने घरसे चार कोस दूर एक तालाबके किनारे आकर रह गये.

एक दिन अचानक श्रीसूरदासजीको वैराग्य उत्पन्न हुआ. श्रीसूरदासजी उस स्थलको छोड़कर मथुरामें गऊघाटपर आकर अपने चेला-सेवकोंके साथ रहने लगे. इस प्रकार श्रीसूरदासजीने अपने जीवनके ३२वर्ष व्यतीत किए. इन्ही दिनो श्रीमहाप्रभु पृथ्वीप्रदक्षीणा करते हुए यहां पधारे वहीं श्रीमहाप्रभुजीकी मुलाकात श्रीसूरदासजीसे हुई.

### (३) श्रीसूरदासजीका पुष्टिभक्तिमार्गमें प्रवेश:

गऊघाटपर श्रीमहाप्रभुजी बिराजमान् हुए तब श्रीसूरदासजीने आकर श्रीमहाप्रभुजीको दण्डवत् प्रणाम किये. श्रीमहाप्रभुजीने कहा “सूरदास हमें भी कुछ कीर्तन सुनाओ”. श्रीसूरदासजीने श्रीमहाप्रभुजीको दो पद गाकर सुनाये.

(१) प्रभु हौं सब पतितनकौ टीकौं (सू.क.१)

(२) हरि हौं सब पतितनको नायक (सू.क्र.२)

श्रीमहाप्रभुजीको सूरदासजीका यह हीनभाव अच्छा नहीं लगा. श्रीमहाप्रभुजीने कहा कि “सूर वहेके काहे घिघियात हो, कछु भगवल्लीला गाओ”. श्रीसूरदासजीने कहा कि महाराज मुझे भगवल्लीलाका अनुभव नहीं है. श्रीमहाप्रभुजीने श्रीसूरदासजीको नाम-निवेदन कराया. उसी दिन श्रीमहाप्रभुजीने श्रीमद्भागवतजीके दशमस्कन्धकी अनुक्रमणिका श्रीसूरदासजीको सुनाई. यहींसे श्रीसूरदासजीका भाग्योदय हुआ. श्रीमहाप्रभुजीकी कृपा होते ही श्रीसूरदासजीने प्रथम पद गाकर सुनाया.

(३) ‘ब्रज भयो महरके पूत जब यह बात सुनी’ (सू.क्र.३)

श्रीकृष्ण जन्मलीला तथा नन्दमहोत्सवका ऐसा सांगोपांग वर्णन श्रीसूरदासजीने गाकर सुनाया कि महाप्रभु आनन्दविभोर हो उठे. वहांसे श्रीमहाप्रभुजी श्रीसूरदासजीको अपने साथ गोकुल ले गए. तबसे सूरस्वामी सूरदास बन गए.

### (४) श्रीसूरदासजीका कीर्तन साहित्यमें स्थान :

वि.स. १५८७ में श्रीमहाप्रभुजीके नित्यलीला प्रवेशके बाद श्रीमद्विठ्ठलेश



प्रभुचरणने वि.स. १६०२में अष्टछाप कविमंडल की स्थापना की. जिसमें श्रीमहाप्रभुजीके चारों शिष्योंके अलावा अपने चार शिष्य भक्तकवि श्रीगोविंददास, श्रीनन्ददास, श्रीछीतस्वामी और श्रीचर्तुभुजदासजी का समावेश किया. इस मंडलके मुकुटशिरोमणीरूप श्रीसूरदासजी ही विभूषित होने लगे.

श्रीसूरदासजी ने अपने जीवनकालमें एकलाख पदों की रचना की. ऐसा कहा जाता है कि श्रीठाकुरजीने श्रीसूरदासजीका सवालाख पदोंका संकल्प 'सूरश्याम'के २५००० पदोंको जोड़ते हुए पूर्ण किया. इस प्रकार श्रीसूरदासजी कीर्तनसाहित्यमें आज भी सर्वोपरि माने जाते हैं.

श्रीसूरदासजी भी प्रसंशा 'भक्तमाल' के रचयिताकवि नाभादासने निम्न शब्दों में की है. "उक्ति योज अनुप्रास बरन अस्थिति अति भारी". (सू. क.४)

#### (५) फल:

- (१) श्रीसूरदासजी महाप्रभुजीके सन्मुख पद गा रहे थे. "ब्रज भयो महरिके पूत" तब श्रीसूरदासजीके मनमें एक विचार उत्पन्न हुआ कि प्रभुके प्राकट्यके समय ब्रजवासीयोंको जो सुख मिला वह सुख क्या आधुनिक भक्तोंको भी मिल सकता है? तब श्रीआचार्यजीने कहा "सुन सूर सबनकी यह गति जे हरिचरन भजे" (८४ वै.वा. ८१).
- (२) श्रीआचार्यचरण 'सर्वनिर्णय' में आज्ञा करें हैं कि सब कुछ छोड़कर अनन्यभावसे केवल श्रीकृष्णमें जो अपना मन लगातें है उनका श्रीकृष्णके साथ निश्चितरूपसे सायुज्य होता है. (सर्व.नि.का.२१८, सू.क्र.५)
- (३) श्रीमहाप्रभुजी शास्त्रार्थप्रकरणमें भक्तिका स्वरूपवर्णन करे है कि माहात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह भक्ति कहलाती है. उसीसे मुक्ति प्राप्त होती है अन्य किसी रीतिसे नहीं". (शा.प्र.का.४२, सू.क्र.६)
- (४) श्रीमद्भगवद्गीताके अठारहवे अध्यायमें भगवान् अर्जुनको उपदेश देते हैं कि तू सभी धर्मोंको त्यागकर केवल एक मैरी ही शरणमें आ, मैं तुझे सभी पापों से मुक्त कर दूंगा. (गीता.१८।६६, सू.क्र.७)
- (५) श्रीमद्भगवतगीताके एकादश स्कन्धमें भगवान् आज्ञा करते हैं कि मैं सन्तोंका प्रियतम आत्मा हूं. मैं अनन्य श्रद्धा और भक्तिसे पकड़में आता हूं. मेरी

अनन्यभक्ति उन्हे भी पवित्र कर देती है जो जन्मसे ही शूद्र है. (भाग.११।१४।२१, सू.क्र.८)

(६) श्रीआचार्यचरण श्रीसुबोधिनीमें आज्ञा करते हैं कि भगवानके स्वरूपका किसी भी प्रकारसे सम्बन्ध हो तो दूसरे किसी साधनकी अपेक्षा बिना ही फल प्राप्त हो जाता है. भगवान गुणोंको ही ग्रहण करते हैं दोषों को नहीं क्योंकि प्रभु दयालु हैं” (सुबो.३।२।२३, सू.क्र.९)

(७) सेवाफलग्रंथमें श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते हैं कि फल तीन प्रकारका है : १.अलौकिकसामर्थ्य २.सायुज्य और ३.सेवोपयोगीदेहो वा वैकुण्ठादिषु” (से.फ.१, सू.क्र.१०)

(८) पुष्टिप्रवाहमर्यादा ग्रंथमें श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि पुष्टिमार्गमें गुण व स्वरूप के भेद से भगवान जैसे भूतलपर भक्तके सामने प्रकट होते हैं पुष्टिजीवों को फल प्राप्त होता है. (पु.प्र.म.१७, सू.क्र.११)

#### (६) श्रीसूरदासजीके पदोंमें ‘फल’का निरूपण:

श्रीसूरदासजीने अनेक पदोंकी रचनायें की हैं जिसमें श्रीहरिके गुणगान व श्रीठाकुरजीकी लीलाओंके पदोंकी संख्या अधिक है. विशेषरूपसे विनयके पद, गोकुललीलाके पद, वृन्दावनलीलाके पद, मथुरालीलाके पद, गोपी विरह, भ्रमरगीत, दानलीला, मानलीला, आवनीके पद आदि अनेक सारगर्भित पद भावोंसे भरपूर हैं. प्रत्येक पदमें किसी न किसी प्रकारका फलनिरूपण अवश्य है. सूरदासजीके पदोंमें उनके अन्तःकरणके भाव, दिव्यलीलादृष्टि भरी हुई है. जो वर्णन एक प्राकृत नेत्रोंवाला नहीं कर सकता, उसका वर्णन श्रीसूरदासजीने अपनी दिव्य व अलौकिक दृष्टिसे किया है. सारेके सारे पद गुणात्मक, लीलात्मक व आनन्दात्मक हैं.

“तिहारो दरस मोही भावे श्रीयमुनाजी” (सू.क्र.१२) इस पदमें श्रीसूरदासजी श्रीयमुनाजीके गुणोंका, स्वरूपका, स्वभावका वर्णन कर रहे हैं, साथ ही साथ मुझे आपका ऐसा दर्शन भाता है, ऐसे फलकी अभिलाषा भी है.

#### प्रेम आसक्ति व व्यसन दशा के पद :

(१) जाको मन लाग्यो गोपालसों ताहि ओर कैसे भावे हों...

इन पदोंमें श्रीसूरदासजीने गोपीओंकी दशाका वर्णन किया है. (सू.क.-१४)

यहां श्रीसूरदासजी श्रीगोपीजननकी व्याकुलता, तन्मयता का सजीव वर्णन कर रहे हैं।

- (२) किंहि मिस यशोमति हीके जाऊं—(सू.क्र.१५)
- (३) अँखियन ऐसी टेव परी—(सू.क्र.१६)
- (४) मन तो हरिही हाथ बिकान्यो—(सू.क्र.१७)
- (५) नयन भए वश मोहन ते—(सू.क्र.१८)
- (६) लोचन भये श्यामके चरे—(सू.क्र.१९)
- (७) नन्दलालसों मेरो मन मान्यो—(सू.क्र.२०)
- (८) हरि देखैं बिनु कल न परे—(सू.क्र.२१)
- (९) सखीरी श्यामसों मन मान्यौ—(सू.क्र.२२)
- (१०) हों संग सांवरेके जैहों—(सू.क्र.२३)
- (११) जब तें प्रीति श्यामसों किन्ही—(सू.क्र.२४)
- (१२) को जाने हरि कहा कियोरी—(सू.क्र.२५)
- (१३) नन्दके लाल हरयो मनमोर—(सू.क्र.२६)
- (१४) मेरो मन गोपाल हरयौरी—(सू.क्र.२७)
- (१५) श्यामरूप मेरे मन अरयो—(सू.क्र.२८)
- (१६) आजु बन बेनु बजावत श्याम—(सू.क्र.२९)

#### (७) षोडशग्रन्थोंमें वर्णित फल व श्रीसूरदासजीके पदोंका तुलनात्मक अध्ययन:

षोडशग्रन्थोंमें श्रीमहाप्रभुजीने जिन-जिन फलोंका निरूपण श्रीयमुनाष्टकसे लेकर सेवाफल ग्रन्थ पर्यन्त किया है उन फलोंका आशय हमें श्रीसूरदासजीके पदोंमें भी प्राप्त होता है। जैसे श्रीयमुनाष्टकमें तनुनवत्व और स्वभावविजय, बालबोधमें तदाश्रय-तदीयता, सिद्धान्तमुक्तावलीमें मानसी, पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद ग्रन्थमें “भगवानेव हि फलं स यथाविर्भवेद्भुवि, गुणस्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत्” ... इसी तरह सेवाफल ग्रन्थमें सायुज्यादि फल। ये सभी प्रकारके फलोंका निरूपण श्रीसूरदासजीके पदोंमें प्रकटरूपसे दिखाई देता है जिनका संकलन हम यहां प्रस्तुत है।

- (१) श्याम बलराम को सदा गाऊं—(सू.क्र.३०)  
(गुणगान करनो जलभेदके मुख्यवक्ता जैसो भाव)
- (२) मेरो मन अनत कहां सुख पावे—(सू.क्र.३१)  
(भगवदाश्रय-विवेकधैर्याश्रय)

- (३) तुम्हारी भक्ति हमारे प्राण-(सू.क्र.३२)  
( पञ्चपद्यानि-उत्तम श्रोता)
- (४) हरिमुख सुनत बेनु रसाल-(सू.क्र.३३)  
(प्रेमासक्तिव्यसन, भक्तिवर्धिनी, सि.मु.)
- (५) करत शृंगार जुवती (सू.क्र.३४)  
(स्वभावविजय-यमुनाष्टकम्)
- (६) मन गयो चित्त श्यामसों लाग्यो-(सू.क्र.३५)  
(श्रीयमुनाष्टकम्)
- (७) जबहि बन मुरली श्रवन परी-(सू.क्र.३६)  
(लोकासक्ति छूटनी, गृहत्याग -सन्यासनिर्णय)
- (८) मुरली शब्द सुनि ब्रजनारी-(सू.क्र.३७)  
(काम पुरुषार्थको वर्णन -चतुःश्लोकी)
- (९) ब्रज जुवतिन मन हर्यो कन्हई-(सू.क्र.३८)
- (१०) मेरो हरि-नागरसों मन मान्यो -सू.क्र.- ३९
- (११) सखी मोहिं हरि दरसनको चाउ -सू.क्र.- ४०
- (१२) मेरे जिय ऐसी आनिबनी -सू.क्र.-४१  
(तदीयत्व तदाश्रय, बालबोध)
- (१३) दृढ करि धरी अब यह बानि -सू.क्र.- ४२
- (१४) दधि-मटुकी सिर लिए ग्वालिनी -सू.क्र.- ४३  
(भगवदासक्ति, निरोध)
- (१५) कहा करेगो कोऊ मेरो -सू.क्र.- ४४  
(भगवदाश्रय, कृष्णाश्रय)
- (१६) विकानी हरि-मुखकी मुसुकानि -सू.क्र.४५
- (१७) नंद-नंदन बिनु कल न पौ -सू.क्र.४६  
(तदाश्रय, तदीयत्व, बालबोध, कृष्णाश्रय)
- (१८) नैन न मैरे हाथ रहे -सू.क्र.४७  
(व्यसन, मानसी -सि.मु.)

#### (८) श्रीसूरदासजीका अन्तिमजीवन परिचय व फलावस्था:

पुष्टिभक्तिमार्गमें 'फल' दो प्रकार का है, एक तो पुष्टिभक्तके द्वारा की जाने

वाली सेवा जिसमें भक्त अपना तन मन धन सबकुछ प्रभुको समर्पित कर देता है. दूसरा, भक्त पर प्रभुकी कृपा “पोषणं तदनुग्रहः”. साधनावस्थामें भक्तको प्रयत्न करना होता है परन्तु सिद्धावस्थामें भक्तका ध्यान स्वयं प्रभु रखते हैं.

एक समय श्रीसूरदासजी प्रभुके कीर्तनकी सेवा करके अपने घर लोट रहे थे. रास्तेमें खड़ड़ा आया उसमें गिर पड़े. जब सूरदासजी खड़डेके बाहर नहीं निकल पाए तब उन्होंने आवाज लगाई. इतनेमें एक बालक आया, उसने श्रीसूरदासजीको हाथ पकड़कर बाहर निकाल दिया. फिर बालकने पूछा, बाबा मैं जाऊं? सूरदास फौरन समझ गये कि यह कोई साधारण बालक नहीं है ये ही मेरे नन्दनन्दन हैं. उन्होने एक पद बनाकर प्रभुको सुनाया: “बांह छूड़ाकर जात हो, निबल जानके मोही, हृदय छुड़ाकर के जाओ तो सबल बखानु तोही”. अतः फलदशामें प्रभु भक्तका ध्यान रखते हैं.

एक समय श्रीगिरिधरजीको श्रीगोविन्दरायजी, श्रीबालकृष्णजी व श्रीगोकुलनाथजी तीनों भाईयोंने मिलकर कहा कि श्रीठाकुरजीके रोज जैसे शृंगार होते हैं उनका वर्णन श्रीसूरदासजी उसी प्रकार करते हैं. आज आप अनोखा शृंगार करो. पर श्रीसूरदासजीको मत बताना कि कैसे वस्त्र-शृंगार धराये हैं. श्रीगिरिधरजीने उसी दिन ठाकुरजीके श्रीमस्तक पर तिलक, नकवेसर, कर्णफूल व मोतीकी माला धराई, वस्त्रादि नहीं. उस दिन सूरदासजीने उसी प्रकारका पद गाया : “देखे री हरि नंगम नंगा...(सू.क्र.४८). श्रीसूरदासजीको प्राकृत नेत्र नहीं थे, परन्तु उनकी दिव्य अलौकिकदृष्टिथी जिससे वे प्रभुकी सभी लीलाओंका दर्शन करते थे.

### उपसंहार :

एक दिन श्रीगुसांईजी जब सेवामें पधारे तो उन्होने सूरदासको श्रीजीके सन्मुख नहीं पाया. पूछने पर पता चला कि श्रीसूरदासजी आज अस्वस्थ होनेकी वजहसे घर गए हैं. श्रीगुसांईजीने तुरन्त कहा कि “पुष्टिमार्गको जहाज जा रह्यो है, जाई कछु लेनो होय सो ले लो” श्रीगुसांईजी श्रीजीकी राजभोग तककी सेवा करके, अपने साथ कुछ सेवकोंको लेकर श्रीसूरदासजीके घर पधारे. श्रीसूरदासजीका हाथ पकड़कर पूछा कि आप कैसे हो? सूरदासजीने दण्डवत् प्रणाम किये व उसी समय एक पद गाकर सुनाया :

देखो देखो हरिजुको एक सुभाव,

अतिगंभीर उदार उदधि प्रभु ज्ञानि शिरोमनी राय॥१॥

राई जितनी सेवाको फल, मानत मेरु समान।  
 समझ दास अपराध सिंधुसम, बूंद न एको मान॥२॥  
 बदन प्रसन्न कमलपद सन्मुख, देखत हों हरि जैसे।  
 विमुख भए कृपा या मुखकी, जब देखों तब तेसे॥३॥

श्रीगुसांईजीके साथ चतुर्भुजदासजी भी थे. उन्होंने श्रीसूरदासजीसे प्रश्न किया कि आपने तो प्रभुकी लीला गुणगानके तो अनेक विध पद गाये परन्तु गुरुकी प्रशंशा आपने नहीं की. तब श्रीसूरदासजीने कहा कि मैने कभी भी श्रीहरिमें व गुरुमें भेद नहीं देखा. उसी समय उन्होंने जिस पदकी रचनाकी वह पद आज पुष्टिभक्तिमार्गमें आश्रयके पदके रूपमें गाया जाता है...

भरोसो दृढ इन चरनन केरो।  
 श्रीवल्लभनखचन्द्रछटा बिनु सब जग मांझ अंधेरो॥१॥  
 साधन ओर नहीं या कलिमें जासों होय निवेरो।  
 'सूर' कहा कहे द्विविध आंधरो बिना मोलको चेरो॥२॥

तब श्रीचतुर्भुजदासजी आदि सभी सेवकोंने धन्य-धन्य कहा. फिर श्रीसूरदासजीने एक अंतिम पद गाया- "खंजन नैन रूप रस माते"(सू.क्र.४९)

